ओ३म्

सीताचरित्र

प्रथम भाग

स्त्रीशिक्षा विषयक–उत्तम २ कहानी और स्त्रीधर्म सम्बन्धी उपाख्यानयुक्त सरल, मनोहर, पुस्तक

जिस को

मुं० दयाराम साहब ने

अपने रचे उर्दू सीताचरित्र नावल से

देवनागरी अक्षरों में उल्था करके प्रकाशित किया

सामवेदभाष्यकार तुलसीराम स्वामी के

प्रबन्ध से

(मेशीनयुक्त) स्वामियन्त्रालय–मेरठ में छपा

जनवरी सन् १९०३

तृतीयवार ११५०

मूल्य ।–)

ओ३म्

भूमिका

आज तक कोई पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य ऐसा नहीं छपा, जिस की भाषा सरल हो, स्त्रियां समझ सकें और उन का मन बहले तथा धर्म के साथ गृहप्रबन्ध के लिये उत्तम शिक्षा की प्राप्ति हो सके। इस अभाव को दूर करने के लिये मैंने "सीताचरित्र" नावल नामक पुस्तक उर्दू में रच कर छपाई थी, जिस के हाथों हाथ ग्राहकों की मांग पर मांग आने से मैंने यह समझा कि मेरा परिश्रम सफल हुवा और अपने कई मित्रों की सम्मति से कि "उर्दू में होने के कारण बहुधा स्त्रियों को इस के लाभ से वञ्चित रहना पड़ता है, इस का नागरी भाषा व देवनागरी अक्षरों में अनुवाद होना चाहिये" मैंने नागरी में अनुवाद किया है। यह पुस्तक चार भागों में है, इस में धर्माऽधर्म, सत्यासत्य, गृहप्रबन्ध, पातिव्रत आदि बड़ी उत्तमता से रोचक कहानियों द्वारा दिखलाये गये हैं और श्रीमती सीता महारानी, दमयन्ती, तारामती आदि का जीवनचरित्र सरल भाषा में लिख कर उन के सुन्दर उदाहरणों के ग्रहण कराने के लिये शक्ति भर परिश्रम किया गया है। इस के बार २ पढ़ने पर भी जी नहीं भरता। इस के होते रामायण, नलोपाख्यान और हरिश्चन्द्र आदि की आवश्यकता नहीं रहती। आज मैं इस के चारों भाग पाठकों को अर्पण करता हूं॥

ग्रन्थकर्त्ता

ओ३म्

सीताचरित्र

एक दिन एक गांव की कुछ स्त्रियां जब कि गर्मी का मध्य था एक घर की दुबारी में जिस के आगे गहरी छाया के वृक्ष लगे थे और ठण्डी २ पवन आरही थी इकट्ठी हुईं । आपस में यों बात चीत करने लगीं:-

चन्द्रमुखी—(गृहिणी) आहा ! आज तो हमारे हरदेवी, जयदेवी, चम्पा, रेवती और चावली ने अनुग्रह किया है । कहो बहनो ! मैं तुम्हारा क्या सत्कार करूं, पानी ठण्डा रक्खा है पीओ । और बड़े सन्मान से सब को बिठाती है ॥

हरदेवी—प्यारी ! आज यह सब तुम्हारे घर आती थीं, मेरे भी जी में आगया कि चल कर देखूं तो वहां क्या किया करती हैं इस लिये मैं भी चली आई हूं ॥

जयदेवी—भाभी ! तुम से मिले बहुत दिन होगये थे, बहुत ही जी चाहता था और यह चम्पा रेवती और चावली भी आती थीं, इन को देख मैंने भी विचारा कि वहां दुपहरी भी अच्छी कटैगी और मिल भी आऊंगी ॥

चम्पा—चाची ! क्या कहूं मैं तो जब से सासुरे से आई हूं, तुम्हारे दर्शन ही नहीं हुए, इस कारण आगई हूं ॥

रेवती—आहा ! सासुरा तो मुझे अच्छा मिला है, मैं तो कितने ही दिन वहां रही, मुझ से तो किसी ने कुछ भी नहीं कहा और मेरा तो बहुत ही आदर रक्खा । हां जो कोई स्त्री कुछ कहती तो निगोड़ी का ओढ़ना उतार लेती और जो मर्द बोलता तो उस की पगड़ी [illegible] लेती । ससुराल में डर ही किस का है । वहां कोई बाप भैया तो बैठा ही नहीं, केवल स्वामी ही स्वामी है सो वह भी बहुत सरल स्वभाव, कुछ भला बुरा जानता ही नहीं । भला और किसी की क्या सामर्थ्य जो कुछ कह सके ?

चावली—बहिन रेवती ! यह कहती क्या हो । अरी ! यह लड़ाई झगड़ा कैसा ! अभी तो तुम ब्याहती ही गई हो, जो यही हाल है तो आगे २ तो हवा से लड़ोगी ॥

हरदेवी—क्या चावली ! तुम यह चाहती हो कि कोई अपने सास ससुर जेठ देवर जिठानी द्यौरानी ननन्द व पति की दासी बन कर रहे ?

जयदेवी—हां, हरदेवी ! इस का यही मनोरथ है कि दासी बन कर सब की सेवा करे और चाहे कोई कितना ही बुरा भला कहे पर चूं तक न करे॥

चावली—(हौले से) मैं तो यह नहीं कहती कि दासी बन कर रहे परन्तु यह अवश्य कहती हूं कि सब से मिलजुल प्रीतिपूर्वक रहना चाहिये ॥

हरदेवी—(जयदेवी, चम्पा, रेवती सब मिल) तू तो सत की सीता है, सास, ससुर, ननन्द, देवर, द्यौरानी, जेठ, जिठानी, पति सब की टहलनी बन कर रहेगी, पढ़ लिख गई है न ! लिखी पढ़ी ऐसी ही रहती हैं ॥

चम्पा—(हंस कर) बहिनो ! हमारे स्वामी भी पढ़ लिख गये हैं । हमने तो उन को देखा है, ऐसे मर्द हैं, जहां किसी ने बल से बात कही, बस घबरा गये॥ मुख जब देखो पीला२ बीमारों का सा, मार्ग चलने में वह गिरे वह गिरे, नित्य उदास, कभी मैंने उन को हंसते ही नहीं देखा और चावली सती सीता है।

चावली—(कुछ उदास हो) चचो ! चन्द्रमुखी ! अनपढ़ों में तो पढ़े हुए की मिट्टी ख़राब है । मेरा तो इन के पास बैठने को मन भी नहीं चाहता ॥

हरदेवी, जयदेवी—(तुनक कर) तुझे बुलाने कौन गया था कि चल हमारे साथ चल । क्या हमने रास्ता नहीं देखा था । तेरे विना किस को रोटी नहीं भावती, कौन तेरे पीछे २ फिरता था । हमारी तो जवानी और जिह्वा बनी रहे पति निगोड़ा तो चूं कर ही नहीं सक्ता, सास निगोड़ी जो बोले तो ओढ़ना उतार लें, ससुरा बेहूदा कुछ कहे तो पगिया को रोता फिरे, औरों की तो सामर्थ्य ही क्या ! देवर जेठ भी तो कांपते ही रहते हैं । अरी तू तो सती सीता है॥

चन्द्रमुखी—अहे बहन ! तुम तो लड़की के मुंह लगती हो । बच्चों के मुंह नहीं लगा करते और चावली ने तुम से कहा ही क्या है ? बात सोच समझ कर कहनी चाहिये, देखो बुरा न मानना, तुम्हारे सास ससुरे देवर जेठ तुम से कांक्षा रखते हैं और को क्या प्रयोजन जो तुम्हारी सुने और सहे । ऐहे ! जो कहीं चावली ने उत्तर दे दिया होता तो मुझे बड़ा ही दुःख होता ॥

हरदेवी—(सुन कर) चावली में बूता ही क्या है जो उत्तर देगी । उत्तर देगी तो उत्तर पावेगी ॥

चावली—(बहुत अधीनता से हाथ जोड़) चची ! क्रोध न करिये मैं तो आप की पुत्री हूं । भला आप को क्या उत्तर दूंगी परन्तु यह तो कहूंगी कि जो तुम भी पढ़ी लिखी होतीं तो सीता जी का नाम ऐसे ताने से न लेतीं । श्रीमती सीता महारानी सी कोई हो तो सही । सहस्रों लाखों वर्ष बीते जब सीता जी हुई हैं । परन्तु आज तक उन का नाम सब जगत् जानता है । तुम्हारी चची, ताई, मामी, फूफी, दादी, मा का कोई नाम भी नहीं जानता और तुम्हारे मुख से भी उनके नाम के साथ सती का शब्द अवश्य निकलता है । चची ! क्रोध न कीजिये किसी ने कहा है कि (कहा बड़े का कीजिये और सिख बारें की लीजिये)॥

हरदेवी—(कुछ लज्जित हो) अच्छा तू सीता जी का वृत्तान्त तो सुना दे॥

चन्द्रमुखी—सीता जी का वृत्तान्त तो तुम को मैं सुनाऊंगी परन्तु प्रथम तुम अपना अपना वृत्तान्त तो सुना चलो ॥

अब यह बात ठहरी कि प्रथम तो हरदेवी पीछे जयदेवी तीसरे चम्पा चौथे रेवती पांचवें चावली अपना२ वृत्तान्त जहां तक जानती हैं वर्णन करें ॥

हरदेवी का वृत्तान्त—

हरदेवी—बहिनो ! जब मैं पैदा हुई तो उस समय मेरी बड़ी बहिन गोकुली मौजूद थी । दो तीन वर्ष की अवस्था में जब माता मुझे लड़ाया करती तो कहती कि बेटा हरदेवी ! सास की चुटिया पकड़ कैसे घसीटोगी ? गोकुली कहती—सास तो हरदेवी की चुड़ैल और बड़ी लड़ाका है । मा कहती कहो बेटा ! सास से कैसे लड़ोगी ? मैं हाथ हिला दिया करती । एक दिन मेरे माता पिता दोनों में यह वार्त्तालाप हुआ, जो मुझे याद है ॥

मा—कहो बेटा ! हरदेवी ! सास से कैसे लड़ोगी, अपने लाला जी को तो बतला दो । मैंने हाथ हिला दिये (अभी मैं कुछ लड़ाई झगड़ा नहीं जानती । बाज़ीगर की पुतली की भांति हाथ हिला रही हूं) परन्तु वे बड़े प्रसन्न हो रहे हैं और मेरे हाथ हिलाने को लड़ाई समझ रहे हैं ॥

बाप—(हंसकर) हां, बेटा ! हां, कैसे लड़ोगी । मैं हाथ हिला रही हूं॥

बाप—(गोद में ले) बाहर मर्दों में ले आये और कई बेर यही प्रश्न किया । कहो बेटा ! सास से कैसे लड़ोगी । मैं हाथ हिला रही हूं और यह मेरा हाथ हिलाना उन को बहुत ही आनन्द दे रहा है और बार२ यही प्रश्न

हो रहा है कि हां बेटा ! कैसे लड़ोगी। फिर मुझ से कहा कहो बेटा ! तू गज्झी लू लुंजी। मैंने ऐसा ही कह दिया। इस पर मेरे पिता और उन के पास बैठने वाले सब हंस पड़े और मैं भी उन को हंसता देख हंसने लगी। यहां तक कि प्रति दिन दो एक बार सास की लड़ाई का पाठ मुझे मेरे माता पिता पढ़ाया करते। वार्ता बहुत है कि मेरी अवस्था छः सात वर्ष की होगई और पड़ोस की दो लड़की एक उदिया दूसरी गङ्गा जो मेरी सहेली थीं और अवस्था में कुछ बड़ी थीं और बहुत सी हमारे ही घर खेला करती थीं वे ऐसी ही बातें किया करतीं कि आज फ़लानी पड़ोसन ने अपनी बहू से कुछ कहा बहू ने लड़ से उत्तर देदिया कि सासु अपनासा मुंह लेकर रह गई। कल फ़लानी सास बहुओं में ख़ूब लड़ाई बजी। परसों एक बहू ने अपनी सास की अच्छी ख़बर ली॥

अब एक दिन की कथा सुनिये कि हमारे पड़ोस में गौनहाई बहू आई और सासु ने उस से कुछ बुरा भला कहा। बहू विचारी लज्जा की मारी चुप हो गई। बस सास सिंहिन बन गई और समझ लिया कि भली सीधी बहू मिली है। अब वह नित्य बहू से बुरा भला कहती। बहू भली मानस जवाब तक न देती। अब यहां तक बढ़ गई कि उस की मा को भी गाली देती और बाप को भी निखट्टू बेहूदा बतलाया करती और बहू के साथ बड़ी अनीति करती। सारे घर का बोझ उसी अकेली पर डाल दिया और आप आनन्द से बैठी रहती। प्रयोजन यह है कि झाड़ना बुहारना पीसना पकाना सब यह अकेली बहू ही किया करती। मुझे उस की यह दशा देख बड़ी दया आती और मन ही मन में कहा करती कि सासु से दबना अपने को दुःख में डालना और बड़ा कष्ट सहना है। और अपने मन में विचार प्रण कर लिया कि जब सासुरे जाऊंगी तो जो बात सास कहेगी उन का शीघ्र ही उत्तर दूंगी॥

गोकुली—हरदेवी ! तुझे तेरी सास इस पड़ोसन की तरह रक्खैगी॥

मैं—रक्खै तो वही निगोड़ी का ओढ़ना उतार लूं और जो बहुत कहे तो चुटिया पकड़ ऐसे जूते लगाऊं कि याद करै॥

गोकुली—(मेरे पिता से) लाला जी ! हरदेवी कहती है कि जो मेरी सास मुझ से कुछ भी कहै तो निगोड़ी की चुटिया पकड़ ऐसे जूते लगाऊं कि याद करे॥

बाप—(हंसकर मुझ से) कहो बेटा ! कैसे सास की चुटिया पकड़ जूते लगाओगी ?

मैं—(प्रसन्न हो) अच्छा मा ! और सब को बुला ला और उदिया ! तू मेरी सास बन, आज मैं लाला जी को तमाशा दिखाऊं ॥

उदिया—अच्छा मैं तेरी सास रही, तू बहू बन जा ॥

मैं—(घूंघट खेंच) अच्छा मुझ से कह ॥

उदिया—अरी ! बहू कुछ घर का काम काज कर, देख तो तू कई बेर की आई गई हो गई ॥

मैं—मुझ पै कुछ काम काज होता ही नहीं ॥

उदिया—अरी ! तू बड़े गये घर की है जो तुझ पै कुछ काम काज नहीं आता । क्या तेरी मा निगोड़ी ने तुझे कुछ भी नहीं सिखाया । तेरा बाप निरा निखट्टू ही है ? ॥

उदिया—गये घर की होगी तू और निगोड़ी होगी तेरी मा, निखट्टू होगा तेरा बाप । ख़बरदार जो कुछ भी कहा ॥

उदिया—अरी बहू ! जुबान संभाल कर बोल, तू तो अभी गौनहाई ही आई है, देख अगर पड़ोसन हंसेंगी ॥

मैं—जुबान संभाल तू । अगर पड़ोसन सुसरी हंसें तो सही, जुबान निकाल लूं, मुझ से तू बहू मा,सास कह । बहू कभी तेरी मा के भी हुई होंगी ! तू मेरी सास नहीं, सौत है । इस पर उदिया बहुत बिगड़ी और मैंने बाप की जूती ले खूब तड़ातड़ लगाई और सब हंसने लगे । बस बड़ा भारी कोलाहल मचा ॥

बाप—वाह ! बेटा ! वाह ! अच्छी सास की ख़बर ली ॥

मा—धन्य बेटा ! धन्य ॥

गोकुली—ख़ूब बहन ! ख़ूब, सास की ऐसी ही ख़बर लेनी चाहिये ॥

गङ्गा—वाह बहन हरदेवी ! वाह ! अब तो तू निपुण हो गई, कुछ कसर नहीं रही—(हर गुण पूरी कौन कहै लंहूरी) ॥

मैं—(अपने मन में अति प्रसन्न हो प्रकट में) आई हैं सुसरी सास बन के, हम से कहने को, क्या कोई हम इस की दबैल हैं, अब तक कोई मिली न थी, जैसे चाहा कह लिया, जो तू सेर है तो मैं सवासेर हूं । अब उदिया चुप लज्जित हो सिर खुजा रही है ॥

बीबी—मेरे माता पिता के हाथ यह हंसी आगई और मुझ से नित्य प्रति यह कहा करते कि कहो बेटा ! सास की चुटिया पकड़ कैसे जूते लगाओगी ? मैं अवह बवह कह देती । यहां तक कि मेरी अवस्था दश या बारह

वर्ष की हो गई और सगाई लेकर नाई गया। थोड़े दिन पीछे जब मेरी अवस्था चौदह या पन्द्रह वर्ष की हुई, तो विवाह की तैयारी हुई और मेरी बहन और सखी सहेलियों ने मुझे पढ़ाना आरम्भ किया॥

गोकुली--बहन! अब तुम्हारा विवाह शीघ्र होने वाला है। सास, ननन्द, जिठानी, पति, ससुर, देवर, जेठ; सब की धूल झाड़ती रहना, दबना नहीं। जो तुम दब गईं तो जीते जी दबना ही पड़ेगा, पति कदाचित उभरने न पावे, सास चूं न कर सके, जिठानी मुंह की ओर देखती रहे, ननन्द डर की मारी कांपा ही करे॥

उदिया व गङ्गा--हां बहन! ऐसा ही करना, नहीं तो तुम को ही कष्ट सहना पड़ेगा। हां, तुम्हारी दशा देख हम को शोक अवश्य होगा। जैसे इस पड़ोसन की दशा देख २ हम कभी २ शोकातुर होती हैं॥

मैं--बहन! तुमने उस दिन तो तमाशा देख ही लिया है, जब कि उदिया सास बनी थी। क्यों उदिया! तेरे सिर में चोट तो नहीं लगी? बहुत लगी तो होगी॥

उदिया--मैं क्या कहूं कि मेरी तो खोपड़ी भन्ना गई। बहन! वह खेल की बात थी। नहीं तो मैं भी तमाशा दिखा देती। ख़ैर जब मैं ब्याह को ससुराल में गई, तो तुम जानती हो कि ब्याहती बहू तो सब को प्यारी होती है, मुझे सास ससुर गोद में लिये २ अति प्रसन्न हो फिर रहे हैं, बड़ा आदर सत्कार हो रहा है, कोई बीस बेर तो मुझ से खाने को पूछा जाता है॥

सास--अरी बहू! कुछ तो खा ले, देख न खाने से तू दुबली हो जायगी और जब तू अपने बाप के घर जायगी तो तेरी मा मुझे उलाहना देगी॥

ननन्द-भाभी कुछ तो खालो, देखो अब चार पांच दिन में तो तुम अपने पीहरको चली जाओगी कुछ मिठाई लाऊं? हलुवा बनाऊं? जो कहो तैयार कर दूं॥

ससुर-फलाने की मा! तू कुछ बहू की भी सुध लेती है? देखो पराई बेटी बड़े भाग्य से मिलती हैं, इन को बड़े प्यार से रखना चाहिये॥

मैं-अपने जी में बड़ी प्रसन्न हो कहती हूं कि यह तो मेरा बड़ा आदर करते हैं। मैं चार बार के कहने में कोई एक बार खाती और बात बात पर चिड़चिड़ाया करती। एक दिन महल्ले की स्त्रियां इकट्ठी हुईं और यों बातें होने लगीं॥

पड़ोसन--(मेरी सास से) बीबी! सुना है कि तेरी बहू कुछ नहीं

खाती पीती, इस को माता पिता बड़े प्यारे हैं रात दिन उन्हीं की बातें किया करती है ॥

दूसरी पड़ौसन—ऐ बहन ! कभी बिचारी ने घर थोड़ा ही छोड़ा था अब के पहले ही पहल माता पिता छोड़े हैं, सब नये हैं नये मनुष्य दीखते हैं, भला माता पिता कैसे याद न आवें ॥

तीसरी-फ़लाने की मा ! बहू की अच्छी तरह से खातिर करना। ऐसा न हो कि मयके में जाकर उलाहना आवे और हमारी भी निन्दा हो ॥

सास--बीबी ! मैं तो रात दिन चापलोसी करती हूं पर इस को मा बाप बहुत ही याद आते हैं। कई बेर के कहने में एक आध बेर कुछ खा लेती है। बड़ी बहू तो बिचारी एक दो बार के कहने से मान भी जाती थी पर यह तो मेरे कहने की कुछ परवाह ही नहीं करती ॥

ननन्द-ऐ है ! मा ! ऐसा न कहो, यह अपने माता पिता की लाड़ली है, पहिले ही पहिल माता पिता बहिन छोड़े हैं और बड़ी भाभी से छोटी भी तो है, और है ही के दिन की, वह तो बातें करना भी नहीं जानती, जब घर का बोझ पड़ेगा तब कुछ उत्तर न देगी ॥

मैं--(मन ही मन में) देखो गौने वाले को आकर कैसा ठीक बनाती हूं। जो उंगलियों पर न नचाया तो तब ही कहना। स्वामी मेरा बच्चा था, वह तो मारे लज्जा के मुंह से कुछ कहता ही न था। ऐ है ! और लज्जा काहे की थी, वह तो निगोड़ा कुछ बुरा भला जानता ही न था। बस मैं उसी आदर सत्कार में विदा होकर पिता के घर चली आई ! ॥

मा--कहो बेटा ! कैसे रहीं, सास ने कैसे रक्खा, ननन्द से तो कभी लड़ाई नहीं हुई, जिठानी ने तो कुछ नहीं कहा ? ॥

बाप---बेटा उदिया ! कहो तो तुम्हारी सास कैसी है, लड़ाका तो नहीं है?

बहन--कहो बहन ! कभी किसी ने तुम से कुछ कहा तो नहीं ?

मैं--रही तो अच्छी पर सास ननन्द मेरी बड़ी लड़ाका हैं, ढङ्ग से बातें ही नहीं करतीं, मैं तुम्हारे डर से चुपकी हो रही, नहीं मन में तो आया था कि खूब झाड़ूं, पर चुप ही होगई ॥

सब मिलकर-बेटा ! लड़ाई झगड़े की कौन बात है, अब के जाओ तो खूब उत्तर देना, दब के मत रहना, कुछ तू टहलनी तो है ही नहीं, हमने मोल तो बेच ही नहीं दी जो सास ननन्द की सहे ॥

मैं--चुप होगई। अब कुछ दिन पीछे गौने को गई। दो चार दिन तक तो किसी ने कुछ नहीं कहा॥

एक दिन–

सास-बहू ! मैं तो बूढ़ी हूं देख घर का काम काज संभाल॥

मैं--मैं तो मांदी हूं, मेरे शिर में दर्द रहता है और कभी २ ज्वर भी आजाता है॥

ननन्द--हां मा ! भाभी कुछ बीमारसी है, इस से अभी कुछ न कहो, होते २ सब काम करेगी, घर संभालेगी, अन्त को तो कुटुम्बी की बेटी है॥

अब की बार तो मेरी बीमारी के बहाने से टल गया, अब के जाऊंगी तो तैयार हूं। कोई एक कहे तो मैं दो कहूं और जो बहुत कहे तो ऐसी सूधी सुनाऊं कि सयुरी याद करे कि कोई मिली थी॥

गङ्गा--ऐ उदियां ! जो तुम्हारी सास तुम को मारे तो क्या करो ?

उदिया--प्रथम तो सास की सामर्थ्य नहीं कि जो दृष्टि उठाकर देखे, और मारे तो मैं भी मारूं॥

गङ्गा--और जो खाने को न दे ?

उदिया--मैं अपने मालिक को लेकर न्यारी हो जाऊं॥

इस पर सब ने प्रसन्न हो उदिया को धन्यवाद दिया और कहा कि ऐसा ही चाहिये, क्यों न हो, आखिर तो उदिया हमारी सहेली है !!!

गङ्गा का हाल

गङ्गा—बहिनो ! मैं सीखी सिखाई तो थी ही, विवाह को सासुरे पहुंची और मुझ से स्त्रियों ने कहा कि बहू मुंह दिखलाओ, मैं चुप हो रही और खूब ज़ोर से मुंह ढक लिया। जब मेरी बहुत चापलोसी की, तब मैंने कहा कि पहिले मुंह दिखाई लाओ, तब दिखलाऊंगी। उस पर सब कहने लगीं कि बहू बड़ी सुघड़ है। मैंने उत्तर दिया कि हां, सुघड़ हूं, मेरी मा बहन ने सिखा दिया है॥

पड़ौसन—बहू तो बड़ी बोलने वाली है॥

मैं—हां, बोलने वाली हूं, क्या कोई दबैल हूं ? मोल तो नहीं आई ?

ननन्द—ऐहै ! यह बिचारी बोलना क्या जाने, अभी तो बच्चा है, अल्हड़पने से कह रही है॥

मैं—(जी में) यह ननन्द भली मिली, अब यहां का सब हाल इस से पूछ लूंगी। और ननन्द से प्रीति करली॥

ननन्द—(बड़ी भावज से अप्रसन्न थी, मुझ से) ऐ भाभी ! अपनी जिठानी से मत दबना, यह बड़ी लुच्ची है, उस को अच्छी तरह आड़े हाथों लेना, हमारी मा तो बावली है, बोझ सिर पर रख छोड़ा है और कुनबे भर का। कई ऐसी ही बातें उस ने सिखलाईं प्रथम तो मैं कुछ घर से ही सीख कर गई थी और कुछ नंद ने सिखाई, बस आठों गांठ कुम्मेत होगई। जब मेरे बाप के घर से कोई नाई ब्राह्मण आता तो मैं उस से अपनी सास ननन्द द्यौरानी जिठानी की बुराई किया करती और कह देती कि मुझे जल्द बुला लेवें। यहां तक कि मेरे बाप ने मेरे लेने को आदमी भेजे और मैं पीहर में आगई और सुसराल की खूब बुराई मा बाप से की। एक समय मेरा स्वामी मेरे पीहर में आया॥

मा—(मेरे पति से) ऐ लाला ! तुम्हारी मा कैसी है ? क्या उसने कभी बेटियों को नहीं पाला ? भला पराई बेटी को ऐसे रखते हैं ? पराई बेटी बड़े भाग्य से मिलती हैं, मेरी गङ्गा ने रोते २ घर भर दिया, अपनी मा को समझा देना कि मेरी बेटी को अपनी बेटी जान अच्छी तरह से रक्खे और नहीं तो लाला ! तुम न्यारे होजाओ, परमेश्वर बनाये राखे, तुम ही तो कमाऊ हो और सब घर का बोझ भी सिर पर रख छोड़ा है और फिर मेरी बेटी दुःखी रहे, राम जी तुम को बनाये राखै॥

पति—माजी ! मैंने तो कभी कुछ बात नहीं सुनी, मेरी मा और बहन तो सदैव प्यार करती हैं, उन्होंने तो कभी कुछ भी नहीं कहा॥

मैं—(नाक भौं चढ़ा, क्रोध से) कभी तू मेरे पास भी आया होगा ? वह मूंडेकाटी सदा मेरे पीछे पड़ी रहती थीं, कभी उन्होंने चैन से बैठने भी दिया होगा ? सदैव हल्ला पुकार रखती थी। तू यहां ऐसी २ बातें बनाता है। इस पर मेरी मा व बहन और दो चार पड़ौसन हंस पड़ीं और कहा कि देखो लाला ! तुम्हारे मुंह पर तो गङ्गा कहती है। वह बिचारा सीधा सादा बड़ा गावदी चुप होरहा और मैंने समझ लिया, बस मार लिया है, यह तो कुछ बोलता ही नहीं, जहां घुड़क दिया, चुप हो जावेगा। और बाहर चला गया। यहां स्त्रियों में यह बात चीत होने लगी॥

मा—(पड़ौसन से) बहन ! मेरी गङ्गा बड़ी धींग है, ऐसा ललकारा कि निगोड़ा चुप ही होगया और कान भी न हिलाया (मेरी ओर देख कर) बस बेटा ! बस, ऐसे ही रहना चाहिये, अच्छी तरह घुड़कते धमकाते ही रहना अच्छा है॥

बहन—मा! मुझे तो हंसी आती है कि गङ्गा के घुड़कने पर जीजा टुक २ देखा किये, कुछ भी न बोले ॥

पड़ौसन—बीबी! तुम को जमाई भी अच्छा मिला है, देखो बिचारा घुड़कने पर चुप होगया, चूं तक न की, गङ्गा सच्ची है। उस ने कुछ भी उत्तर न दिया, जो झूंठी होती तो अवश्य उत्तर देता ॥

दूसरी पड़ौसन—बीबी गङ्गा बड़ी भाग्यवती है, इस को स्वामी भी भला भोला मिला है। बेटा गङ्गा! सदैव स्वामी को दबाये ही रखना, उभरने न देना॥

तीसरी—ऐहै! हमने तो विवाह ही को गङ्गा की जूती इस से पुजवा दी थी, देख लेना उमर भर जूती ही सीधी किया करेगा ॥

अब एक दिन की कथा सुनिये कि एक पड़ौसन यह गीत गा रही थी॥

गीत—कातूंगी सूत रहूंगी पिया न्यारी, कोठे में से कोठा लूंगी आधी लूंगी दुबारी। मात पिता तेरे बाहर काढं, करूंगी पिया उन की बहुत सी ख़्वारी।

मुझे यह गीत बड़ा ही प्रिय लगा (मा से) मा! मुझे यह गीत बड़ा ही प्यारा लगता है, कैसा अच्छा गीत यह पड़ौसन लहरा २ कर गारही है ॥

मा—बेटा! हां ठीक तो गारही है, जो तेरी सास तुझसे कुछ भी कहै तो अपने पति को ले न्यारी हो जाना। ससुर तो तेरा बूढ़ा ही है, देवर छोटे २ हैं, कमाऊ की जोरू और किस की सहै ॥

मैं—मैं ने "बहुत अच्छा" कहकर मन में ठान ली कि जो सास कुछ भी कहै तो तुरन्त ही न्यारी हो जाऊं ॥

थोड़े दिन पीछे गौने की चिट्ठी और सामान होने लगे। मैं बड़ी प्रसन्न हुई कि अब के जाकर सास ननन्द से लड़, आनन्द से न्यारी रहूंगी ॥

अब गौने वाले आये और नेगटेहले हो, सासुरे को बिदा हुई। पांच दिन तक तो वहां किसी ने कुछ कहा नहीं परन्तु मैंने ख़सम के कान भरे कि हम से तो यह कुटुम्ब का काम काज नहीं होता, न्यारे रहैं, सेर भर पीस पो आनन्द से चैन उड़ावैंगे, तुम्हारे ऊपर भी इतना भार न रहैगा, जो कमाओगे अलग धरोगे, अब कमाते तुम हो और उड़ाते सब हैं ॥

पति—अच्छा तुम कहो, मैं अपने मुख से कुछ न कहूंगा परन्तु तुम्हारे साथ अलग रहने को तैयार हूं ॥

एक दिन—

सास—बहू! कुछ घर का काम काज देखो, रामजी बनाये राखे, तुम अब स्यानी हो, कुछ बालक तो हो ही नहीं ॥

मैं--मुझ से तो तुम्हारे आग लगे घर का काम काज नहीं होता, मैं तो न्यारी रहूंगी ॥

सास--ना बहू ! ऐसे ना कहा करें हैं, अभी तुम को अलग न रहना चाहिये, देखो बंधी सोहनी अच्छी होती है,बन्धी सोहनी से पनसेरा सरक जाता है, एक सींक से छटङ्की भी नहीं सरकती ॥

मैं--मैं तो इस चौके में अन्न जल न करूंगी,जो तुम्हारे चौके में पानी भी पीवे तो वह बुरी चीज़ खावे और अपने प्यारे मोंडे का मांस खावे । यहां तक कि मैंने खाना पीना सब छोड़ दिया, मेरा मालिक मुझ को दुबका कर कुछ पकवान मिठाई ला देता,मैं उसे छिपा कर खालेती, सब मोहल्ले की स्त्रियां यह जानती थीं कि यह कुछ खाती ही नहीं । अब मुझे और सास को यों समझाने लगीं, परन्तु मैं चुप ॥

पड़ौसन--गङ्गा की सास ! बहू को समझाओ,यह न खाना तो बुरी बात है॥

दूसरी--ऐ बहू ! मान जा,कुछ दिन तो निबाह,देख तो तेरी सास ने तेरे पति को कैसे दुःखों से पाला पनासा है और कैसी अब तक मिली जुली रहती है॥

तीसरी--ऐ गङ्गा की सास ! जाने दे, इस को न्यारी ही कर दे, यह नित्य का लड़ाई झगड़ा तो अच्छा नहीं,दांता किल २ अच्छी नहीं होती॥

सास--मैं क्या करूं बहुतेरा समझाती हूं पर अब दो तीन दिन से जब से इस ने खाना पीना छोड़ा है कुछ भी नहीं कहती, चुप साध लिया है और जो बहुत समझाती हूं तो कह देती है कि जो इस चौके में अन्न जल करे वह बुरी चीज़ खावे । बीबी ! कल वा परसों इस के पीहरिया आवेंगे,मैं भेजवा दूंगी,•आगे को देखा जावेगा । इतने ही में मेरे भाई व नाई और कहार मुझे लेने को आगये और मैं बिदा हो अपने बाप के घर चली आई और मा बाप से सास ससुर की बहुत सी झूंठी बातें लगाईं और मेरे बाप भरा गये और उन्हों ने कह लिया कि जब तक हमारी बेटी को न्यारा घर रहने को न मिले, हम नहीं भेजेंगे । इस के थोड़े दिन पीछे मेरा मालिक मुझे लेने को आया और उस ने मेरी मा से प्रण किया कि जो अब की बार न्यारा न हो जाऊं तो दूसरे न भेजना और बाप के घर से बिदा हो सासरे पहुंची, जाते ही वह झगड़ा बखेड़ा मचाया कि सब दिक्क हो गये और पांच दिन तक वह तातायेही रही कि घर के तो क्या मुहल्ला भर दुखी हो गया। बस फिर हम न्यारे हो गये । अब हम लोग लुगाई न्यारे रहते हैं और चैन से दिन काटते हैं॥

ऐं बीबी हरदेवी ! जब अच्छे थे कि सब की टहल करते या अब, कि लोग लुगाई चैन से रहते हैं और कोई हम से कहने सुनने वाला नहीं है ॥

हरदेवी--हां बहन ! ऐसे ही मैं भी करूंगी । निश्चय जानो यह बातें हो ही रही थीं कि एक लड़का आया ॥

गोकुली--कहो भैया ! सुनाओ तो आज कल क्या पढ़ते हो ॥

लड़का--बहन ! हमने चौक चांदनी के लिये यह याद किया है। सुनो--

चौपाई

एक कूहर ने कियो सिङ्गार । चौंड़े ऊपर धरो अंगार ॥ बाप कहे मेरी लाड़ो आई। सिर के बाल कहां धर आई ॥ ऐ बाबुल मैंने दो कुल तारे । सासुर सुसर मैंने जूतिन मारे ॥ नन्दोइया की डाढ़ी भारी । बड़े जेठ की मूछ उखारी ॥ एक मेरे जी रह्यो उमांग। खसम निखट्टू के काटन कान ॥

मुझे यह राग बहुत ही प्यारा लगा और ठान ली कि चाहे जैसी हो, सब को सुसराल में दबा कर रक्खूंगी । बस इस के कुछ दिन पीछे विवाह की तैयारियां होने लगीं और मैं सासुरे को विदा हुई । मा बाप की लाड़ली तो थी ही, थोड़े ही दिन में अपने बाप के घर चली आई । कोई मौका बात चीत का न मिला, तीसरे वर्ष मेरा गौना हुवा, सास ने मुझे बड़े प्यार से रक्खा । वह मुझ से घर का काम काज करने को कहती, मैं टाल जाती । कभी बीमार बन जाती । कभी सिर दुखने का बहाना कर देती। यहां तक कि एक दिन ऐसे बात चीत हुईः--

सास--ऐ बहू ! अब तुम को घर का काम काज करना चाहिये । देखो बिना किये किसी को टुकड़ा भी नहीं मिलता ॥

मैं--कोई बांदी बन के तो आई ही नहीं ? जो तुम्हारा काम काज करूं, टहलनी रख लो, वह घर का काम काज कर दिया करेगी ॥

सास--(कुछ बड़बड़ा कर चुप) मेरा मुंह देखने लगी ॥

ननन्द--(मुझ से) भाभी ! मा तो हमारी बूढ़ी हो गई है, बुढ़ापे में मनुष्य की बुद्धि जाती ही रहती है, इन के मुंह न लगना चाहिये, कुछ ध्यान न करो, तुम तो घर की मालिकनी हो (अपनी मा से) मा ! कुछ भाभी के कहने सुनने की ओर ध्यान न दो । इस समय बिचारी आप ही अपने मा बाप के सोच में बैठी थी । सोच में ही यह कह दिया है, कुछ क्रोध न कर॥

सास---बेटी! मैं क्रोध कर क्या कर लूंगी। यह तो अपने कर्म की बात है कि ऐसी सुपात्र बहू मिली। संसार में सब की बहू बेटी घर का धन्धा करती हैं।क्या कहूँ बेटी! जैसा हम ने किया है, भोगेंगे। मेरे इकलौते को ऐसी बहू मिली,मुझे तो आस थी कि बहू मेरी टहल करेगी। अपने भाग्य की बात है॥

मैं---(मन ही मन में) मालिक तो मेरा मुझ से प्यार रखता ही है, ननद अपने घर चली ही जावेगी, रही बुढ़िया, सो क्या कर लेगी॥

बस अब मैं घर के काम काज में हाथ न लगाती और बुढ़िया अकेली फांय २ कर घर का धन्धा किया करती, प्रारब्ध से मालिक भी ऐसा भोला मिला कि जो कहती वह तुरन्त ही करने को तैयार। सास कभी मुझ से कुछ कहती ही न थी, सुसरा चुप चाप रोटी खा जाता है-बोलो चावली! बहन मैं अब अच्छी हूं या जब कि तेली के बैल की तरह पिला करती?

चावली—(चाची से) क्या कहूं पहिले तो मुझे नाना नानी और मावसी पर हंसी आती है कि तुम को उन्होंने क्या सिखाया, तुम्हारा क्या दोष बताऊं, तुम को तो बचपन से सिखलाया ही ऐसा गया था कि सास से लड़ना। दूसरे मुझे बड़ी लज्जा आती है कि माता पिता के समीप तुमने कैसे घूंघट खेंच, उदिया से सास कहा होगा।।

हरदेवी—ऐहै! लाज की कौन बात थी, यह तो एक खेल था।।

चावली—हां खेल तो था परन्तु जो इस के विरुद्ध यह खेल होता कि तुम सास के पांव दाबना, सासु की टहल करना, तो कैसा अच्छा होता॥

हरदेवी-यह क्यों! गङ्गा उदिया ने भी तो सास की कुछ टहल नहीं की॥

चावली-चाची! यही तो बुराई है। ऐसी बुरी लड़कियों ही की सङ्गत से तो सब ख़राबी पड़ती है। वे सास सुसर पति सेवा की रीति क्या जाने। देखो सास धर्म की माता और सुसर धर्म का पिता है और स्वामी स्त्री का पति कहलाता है। उस की सेवा ही से मुक्ति मिलती है। विना पति के स्त्री की कुछ भी पत नहीं, परन्तु स्त्री को सुख पति ही की सेवा से मिलता है॥

हरदेवी--मुझ से तो सिवाय तेरे और किसी ने यह बात नहीं कही, जिस ने कहा उस ने यही कहा कि सब को दबाकर रखना चाहिये।।

चावली-सुनो चची! जब तुम्हारे बहू आवे और वह तुम को इस तरह रक्खे। जैसे तुम ने अपनी सास को रक्खा है तो तुम प्रसन्न होगी या नहीं?

हरदेवी--भला मैं कैसे प्रसन्न हूंगी॥

चावली--क्यों, तुम को तो सास का दुखी करना और जवाब देना और उस को दबाना अच्छा लगता है। फिर तुम्हारी बहू ऐसा क्यों न करे और जब ऐसा करे तो तुम उस से क्यों अप्रसन्न हो?

हरदेवी--वाह! मेरी बहू मेरा सामना कैसे करेगी, उस को मेरे आधीन रहना होगा, और जो वह मेरा कहना न मानेगी तो पछतावेगी॥

चावली--चची! तुम्हारे कहने की यह बात नहीं है क्योंकि तुम बहुत प्रसन्न हो २ कर कह चुकी हो कि सास को सदा दबाना चाहिये और तुमने जो अपनी सास से भला बुरा कहा, वैसा बहू से क्यों न सुनोगी?॥

हरदेवी--वाह! बहू जो मुझ से कुछ भी कहेगी तो मुझे बड़ा दुःख होगा॥

चावली--चची! अब सोचो तो, जब तुम को दुःख होगा तो तुम्हारी सास को दुःख क्यों न हुआ होगा, थोड़ा सा मन में तो सोच लो॥

हरदेवी--(सोच कर) हां, मैंने किया तो बुरा। ओ हो! आदमी भी क्या है, हर बात में अपना ही लाभ ढूंढ़ता है॥

चावली--चची! यह संसार है। जैसा करोगी, वैसा पाओगी। जो तुम अपनी सास को प्रसन्न रक्खोगी तो तुम्हारी बहू तुम को प्रसन्न रक्खेगी और जो तुम अपनी सास को दुःखी रक्खोगी तो तुम्हारी बहू तुम को दुःखी रक्खेगी।

हरदेवी--ऐ चन्द्रमुखी! इस लड़की चावली ने तो बहुत ठीक कहा, मैं तो अब समझी। हाय आज कल के मा बाप भी कैसे बुरे हैं और कैसी बुरी २ बातें सिखाते हैं। अब मुझे इस बात पर बड़ा शोक है कि हाय! मैंने गुड़िया को सास बना कैसे जूते लगाये। जो मेरी बहू ऐसा खेल भी खेले तो मैं तो उस की बैरिन हो जाऊं॥

चन्द्रमुखी--बीबी इसी से तो अच्छी स्त्रियां ऐसी बातों को बुरा जानती हैं। तुम श्रीमती सीता महारानी का वृत्तान्त जब सुनोगी तो जानोगी कि कैसी २ विपत् में उन्हों ने अपने पति की सेवा की है॥

हरदेवी--बहन! मैं अब प्रण करती हूं, चाहे कुछ हो, अपने सास ससुर की भलेप्रकार सेवा करूंगी और स्वामी से कभी एक क्या, आधी बात भी न कहूंगी। बहन! सच है कि बेपढ़े पशुसमान होते हैं। वे पाप पुण्य कुछ भी नहीं जानते--इस के पीछे जयदेवी की बारी आई॥

जयदेवी का हाल--

जयदेवी--मेरी मा कहा करती थी कि मेरे पांच बेटे पैदा हुवे, परन्तु

मुझे बेटी पैदा होने की बड़ी अभिलाषा थी और ईश्वर से प्रार्थना किया करती कि मेरे एक बेटी पैदा हो जो मेरे पांच बेटों की बहन कहलावे। ईश्वर की कृपा से छठी बार मेरे तू पैदा हुई, मुझे लड़कों से अधिक प्यारी है। एक दिन मेरी मा और पड़ौसन में जो बात चीत हुई, वह मुझे याद है:-

मा--बहन! मेरे पांच बेटों पर ईश्वरकृपा से जयदेवी पैदा हुई है, अब यह शोच है, कि सास अच्छी मिलै जो मुझ से भी अधिक प्यार से रक्खे, नहीं तो मुझे बड़ा शोक होगा ॥

पड़ौसन--बहन! बहुत देखा गया है कि लाड़ली बेटी को प्यार से रखने वाली सास कम मिलती हैं, जो जयदेवी को सास भलीमानस मिले तो मैं तुम्हें बड़ी भाग्यवती जानूं ॥

दूसरी--हां, बीबी! क्यों न हो, एक भाई की बहन बड़े प्यार से रहती है। यह जयदेवी तो पांच भाइयों की बहन है, पर यह तो मैं भी कहूंगी कि ऐसी सास मिलनी तो कठिन है जो तुम्हारी बराबर प्यार से रक्खे ॥

तीसरी--बीबी! तुम्हें वह कहानी याद नहीं है कि एक दिन बहन ने व्रत रक्खा था, भाइयों ने कहा कि बहन खाने को खाओ ॥

बहन--भैया! आज चन्द्रमा निकले भोजन करूंगी, पहिले नहीं कर सक्ती ॥ तो बस भाइयों ने दिन में चन्दा निकाल दिया ॥

चौथी--सास तो जब ही अच्छी मिल सकती है, जब जयदेवी सास की अच्छी टहल करे, नहीं तो अच्छी सास मिलनी कठिन दिखाई देती है ॥

मा--बहन! मेरी जयदेवी सास की टहल तो न करैगी ॥

पड़ौसन--तो सास अच्छी मिल चुकी ॥

मेरी भावज--माजी! बीबी जयदेवी को ऐसे घर दो, जहां सास न हो, सास का आज कल बड़ा झगड़ा है ॥

मा--बहू! यह बड़ी कठिन बात है कि बेसास के घर में जयदेवी दी जाय। भला वहां बैठेगी किस के पास? सास होगी तो सौ लाड़ लड़ावेगी, चाची ताई किस की ख़ातिर करती हैं?

भावज--मा जी! यह तो कठिन ही है कि जयदेवी सास की सेवा भी न करे और सास और जयदेवी में प्यार भी रहै ॥

पड़ौसन--बहन! बहू कहती तो ठीक है, पर जयदेवी से यह बात तो होगी नहीं कि सास की सेवा करै ॥

मा–बीबी ! यह तो बतलाओ कि लड़ाई बहू की ओर से होती है या सास की ओर से ?

पड़ौसन––बीबी ! पहिले तू ही बतला ॥

मा––मेरी समझ में तो पहिले लड़ाई सास की ओर से उठती है, जब वह बहू से किसी काम के लिये कहती है और उस के दुःख सुख की सुध नहीं लेती, तो बहू दुखी हो जवाब दे बैठती है और लड़ाई हो जाती है ॥

पड़ौसन––बहन ! कहती तो ठीक है, देख तेरी बहू कैसी प्रसन्न है। इतने में मेरे बाप आगये, मेरी भावज और दो पड़ौसनों ने, जो छोटी थीं, घूंघट कर लिया और बाक़ी सब बैठी रहीं ॥

बाप––जयदेवी की मा ! क्या बात चीत थीं ॥

मा––जयदेवी के लाला ! जयदेवी की सास के लिये बात चीत कर रहे थे, मैं कहती थी, जयदेवी को ऐसी सास ढूंढूं जो मुझ से भी अधिक प्यार से रक्खे। बहू कहती थी कि सास न हो तो अच्छा है ॥

बाप––सास मैं ऐसी ढूंढूंगा कि जो तुम से अधिक प्यार करे, और जो सास लड़ाका मिलेगी तो मैं यहीं जयदेवी को अलग घर बनवा दूंगा। तुम जानती हो दहेज तो मेरे पांच बेटों का रक्खा है, इतना दूंगा कि उम्र भर के लिये बहुत होगा। सास जयदेवी को प्यार से रक्खेगी तो जयदेवी रहेगी, नहीं तो जयदेवी को क्या परवाह, को सास की सहे ॥

मैं–(मन ही मन में) लाला जी तो मुझे धन दौलत बहुत देंगे, फिर सास मुझ से क्यों लड़ेगी और जो कुछ कहेगी भी तो यहीं आ रहूंगी ॥

मा–(मुझ से) बेटा जयदेवी ! तेरे लाला जी क्या कहते हैं, सुनती हो ? सासकी कुछ परवाह न करना, जो वह एक कहे तो तुम सौ कहना, दबके मत रहना।

मैं–मा ! जब मेरे पांच भाई और मा बाप मौजूद हैं तो सास निगोड़ी मुझ से कहेहीगी क्या और जो कहेगी भी तो जवाब पावेगी। अब कुछ दिन पीछे नाई सगाई लेकर गया और मेरे मा बाप में यह बात चीत हुईः–

मा–जयदेवी के लाला ! मेरी जयदेवी को कैसी सास ढूंढी है ? यह तो बतला दो, ससुर कैसा है ? वह प्यार से रक्खेंगे ॥

बाप––प्यार से रखने की अच्छी कही। कोई भी अपनी बेटी को बुरी जगह देता है ? जो लोग बेटियों पर रुपये लेते हैं वे भी तो एक बार अच्छा घर देख लेते हैं। मैंने तो जयदेवी को सास बड़ी अच्छी ढूंढी है, ससुर को तो

बहू को बड़ी चाह है, हां यह बात है कि लड़के की मांग खुल चुकी है सो मैंने समझ लिया है कि दुजिहां की बहू बड़े प्यार से रक्खी जाती हैं और एक बात और अच्छी है कि सब से बड़े लड़के से सगाई हुई है। जेठ तो जयदेवी के कोई है ही नहीं, छोटे २ देवर हैं। द्योरानी तो छोटी होती ही हैं, वे कुछ कह भी नहीं सकतीं॥

मा—जयदेवी के लाला! बेटियों पर भी कोई रुपया लेता है? ऐ है! वे कैसे माता पिता हैं जो अपनी बेटी बेचते हैं, ऐहै जयदेवी के लाला! लोग रुपया क्यों देते हैं?

बाप—जयदेवी की मा! बनियों की जाति में बेटी बेचने की बड़ी चाल होगई है। बहुतसे जो बूढ़े आदमी अपना दूसरा तीसरा विवाह करना चाहते हैं, वे रुपये देकर विवाह करते हैं॥

मा—तो कितने २ रुपये लोग देते हैं॥

बाप—जो लड़का बीस या पच्चीस वर्ष का हो गया और विवाह न हुआ या पहिली स्त्री मर गई तो एक हज़ार वा डेढ़ हज़ार और जो बूढ़ा होता है तो पांच हज़ार वा छः हज़ार तक मोल देते हैं॥

मा—ऐहै! वह कैसे मा बाप होते हैं जो अपनी प्यारी बेटी को रुपया लेकर बेचते हैं। मैंने सुना है कि सरकार में तो आदमी बेचने की मनाई है, फिर सरकार उन से कुछ भी नहीं कहती?

बाप—जिन की नियत बिगड़जाती है, उन का क्या ठीक है। हमारे शास्त्रोंमें तो बेटीके गांवका पानी भी पीना नहीं लिखा,जो कोई बेटीके गांव का पानी भी पीवे तो बड़ा पापी समझा जाता है और सरकार क्या बंदोबस्त करे,वे तो विवाह कर देते हैं।हां जो कोई लड़का बेचा जाय तो सरकार सुने॥

मा—तो बिरादरी भी उन से कुछ नहीं कहती?

बाप—आजकल बनियों की बिरादरी तो ऐसी निर्लज्ज होगई है कि कोई मदिरा पान करता है,कोई मांसभक्षण करता है और बहुतसे बेटी बेचते हैं,फिर कहै कौन? किसी ने कहा है कि (तू कहै ना मेरी और मैं कहूं ना तेरी) इस कारण कोई किसी को नहीं कहता। किसी को कुछ दण्ड तो रहा ही नहीं, जिस के जो जी में आता है सो करता है॥

मा—तो जयदेवी के लाला! इस का कुछ प्रबन्ध होना चाहिये॥

बाप—अब लोग बालविधवाविवाह का प्रबन्ध कर रहे हैं। जो यह

चल गया तो बेटी बेचना बन्द होजायगा ॥

मा—(मुझ से) बेटा ! तुम्हारी सगाई तो होगई अब जल्दी विवाह होगा, पर तू है बड़े नसीबे वाली, दूजिहां का पति मिला है, वह तो तेरे आधीन ही रहेगा, पर हां जो थोड़ीसी तूभी सावधान रही और उस को धमकाती डराती रही और वही तो सब में कमाऊ है, जो तू थोड़ा सा भी कहती सुनती रहेगी तो झट न्यारा हो जायगा, सास से तुझे काम ही क्या पड़ेगा, सास को आते ही फटकार देना, जिस से मन बढ़ न हो जाये ॥

सहेली—ऐ जयदेवी ! सुना है कि पति तो तेरा बड़ा सीधा है,उस को सदा धमकाये दबाये रखना, उभरने न देना,सास एक कहे तो तू दो कहना, देवरों को सदा ललकारती रहना, प्रथम तो सास कुछ कहे ही गी नहीं और जो कहे भी तो अपने घर वाले को ले अलग होजाना, चाहे यहां आ रहना, तेरे मा बाप भैया भावज जीते रहें, तुझ को कमी ही क्या है,किसीने कहा है कि"दूजिहां की जोरू और बादशाह की घोड़ी,जितनी कूदे उतनी ही थोड़ी"॥

अब कहां तक कहूं।मेरे विवाह का समय आगया और विवाह बड़ी धूम धाम से हुवा । मेरे पिता ने बहुतसा दहेज़ दिया क्योंकि पांच जगह का दहेज़ घर में रक्खा था,कुछ मोल तो लेना पड़ा ही नहीं । मैं ससुराल पहुंची और गांव की लुगाई दहेज़ देखने को आई और आपस में कहने लगीं:—

एक—(मेरी सास से) बीबी ! बहू का नाम क्या है ?

सास—बहन ! बड़ा प्यारा नाम है "जयदेवी" ॥

एक—बहन ! इस के बाप ने तो बड़ा दहेज़ दिया है, आज से पीछे तुझे सब लुगाई जयदेवी की सास कहा करेंगी ॥

सास—बहन ! यह तो सब तुम्हारी दया और परमेश्वर की कृपा है, बहन ! मेरे ऐसे भाग कहां थे जो ऐसी बहू मिलती, जब से मेरे फलाने राम (जैसीराम) की पहिली बहू मरी थी, मुझे तो बड़ा सोच था कि विवाह भी होगा या नहीं और ऐसे बड़े घर की बहू की तो मुझे आशा भी न थी, लो अब दहेज़ तो देख लो ॥

एक—बहन ! तीयल तो बहुत अच्छी दी हैं,देख सब ओढ़नों परगोटा ठप्पा लगा है और दामन कैसे अच्छे हैं ।।

दूसरी—और देखो बर्त्तन कैसे ठेल हैं ॥

तीसरी—जयदेवी की सास ! तुझ को भी तो पांच चीज़ सोने की दी हैं ?

चौथी--विर ! जयदेवी के मा बाप ने बड़ा भारी दहेज़ दिया है। ऐसा तो आज तक हमने किसी के आता नहीं देखा ॥

पांचवीं--जयदेवी की सास ! अब तुझे चाहिये कि जयदेवी को बड़े प्यार से रक्खे, जिस से इस के मा बाप की भी तो छाती ठण्डी रहै ?

सास--ऐहै ! बीबी ! जयदेवी तो मेरी आंखों का तारा है, भला तुम क्या कहती हो । बहू की सब को लालसा होती है, बहू के लिये कुछ उठा रखते हैं ? और यह तो मेरे दूल्हिहां की बहू है ॥

अब सास ससुर मुझे बड़े प्यार से रखते और रात दिन मेरी चापलोसी में लगे रहते और मुझे किसी बात का दुःख न देते थे । मैं सोचती थी कि सास से कैसे लड़ूं, कैसे झगड़ा करूं, यह तो मुझ से कुछ कहती ही नहीं और सब तरह से आदरसन्मान करती है। मेरे दो द्योरानी थीं वह भी मेरी बड़ी सेवा करतीं, पति भी कभी २ अवसर पाकर मुझ से पूछ जाता कि किसी तरह का दुःख तो नहीं है ? मैं नाक भौं चढ़ाकर उसे फटकार कह देती कि यहां सुख ही क्या है ? घर निगोड़ा फाड़खाने को दौड़ता है,वह कुछ लज्जित हो माता पिता की लज्जा से चुप हो चला जाता।एक दिन मैंने मन में लड़ाई की ठानी॥

सास--बहू ! देख तो रात भी तो तैने कुछ नहीं खाया और अब दुपहर होगया, रोटी खाले । जानदे जो चीज़ तू कहै खाने को तैयार करदूं ॥

मैं—(घुड़क कर) नहीं मैं कुछ नहीं खाती, हमारा जी नहीं चाहता, हम से मत कहो ॥

सास—बेटा ! देखो कुछ तो खालो, मुझे तुम्हारी मा का बड़ा डर है, और यह भी ध्यान है कि सब अगर पड़ौसन हंसेंगी कि बहू रोटी नहीं खाती॥

मैं—अगर पड़ौसन निगोड़ी क्यों हंसेंगी ? किसी के बाप का कुछ देना है ? नहीं खाते, नहीं खाते ।।

नन्द—मा ! जाने दे, भाबी जयदेवी को दुःखी मत करे, इस समय मा बाप याद आगये होंगे, मैं समझा बुझा कर खिला दूंगी ॥

और नन्द मेरी खुशामद करने लगी। बहनो ! मैंने बहुत बुरा भला कहा, परन्तु उस ने कोई अवसर लड़ाई का न दिया। यहां तक कि मेरा भाई और नाई नेवगी मुझे बिदा कराने को आगये और मैं पीहर पहुंची । मैंने जाते ही बहुत सी झूठी सास नंद की खोटी मा बाप से कहीं । मेरे मा बाप ने कहा कि हम समझा देंगे, जो तेरी सास लड़ेगी तो हम अपनी जयदेवी को यहीं घर बनवा देंगे ॥

अब मेरे सासरे से गौने की चिट्ठी आई और मेरा गौना हो गया और सासरे पहुंची। चार पांच दिन तक तो सास ने कुछ न कहा, मेरा सन्मान करती रही, एक दिनः-

सास—बेटा! मैं तो बूढ़ी हूं और तुम ही सब में बड़ी हो, अब तुम घर संभालो, कोई मैं सदा तो बैठी ही न रहूंगी॥

मैं—मैं तो घर संभालना ही नहीं जानती॥

सास—हां, बेटी! यह तो मैं भी जानती हूं कि तुम भी मा बाप की लाड़ली बेटी हो, तुमने घर का धन्धा कुछ किया थोड़ा ही होगा, फिर बेटा! वह बाप का घर था, यह तुम्हारा घर है। तुम को यहां तो घर का धन्धा देखना ही होगा॥

मैं—मैं घर का धन्धा करने को नहीं आई, घर का धन्धा करो तुम, मैं तो घर की मालिकनी बन के आई हूं। जो अच्छी तरह रहो तो रहूंगी, नहीं तो अपने मालिक को ले पीहर जा रहूंगी॥

मेरी सास यह सुन चुप हो गई और बहुत घबराई, क्योंकि वह कुछ डरपोक सी थी। अब मेरी चापलोसी करने लगी, अब तो मैं सिंह बन गई, जब मन में आती, सास को बुरा भला कह लेती, वह कुछ भी न बोलती और मेरा पति तो मुझ से कुछ कहता ही न था, परन्तु इन सब बातों की मेरी सास ने किसी पड़ोसन को ख़बर तक न की, बहू बन्दी को सब गांव यह जानता था कि बहू बड़ी अच्छी है, यहां तक कि जब मैं सासरे से बिदा हो पीहर आई और रो २ कर मा बाप से सास ससुर की ख़ूब बुराई की और कहा कि मुझे तो वहां निर्वाह की सूरत नहीं दीखती। मा ने कहा—पुत्री! अब की बार तुम्हारे दूल्हा को समझा दूंगी, जो अब के प्रबन्ध न हुआ तो मैं तुझे यहीं घर बनवा दूंगी, तेरे भैय्या भावज बने रहें, यह तेरी अच्छी सेवा करेंगे। थोड़े दिन पीछे मेरे भतीजा पैदा हुआ। उस में मेरा पति भी आया मेरी माता और मेरे पति में यों बात चीत हुईः-

मा—देखो बन्ना! अपनी मा को समझा देना कि मेरी जयदेवी को अच्छी रक्खें, उसे दुखी न करें, मुझे जयदेवी बेटों से भी प्यारी है॥

बन्ना—मा जी! मेरी मा तो बहुत प्यार से रखती है, उस ने तो कभी कुछ नहीं कहा और उलटी अवड़ बवड़ (कह कर चुप)

मा—बेटा! तुम मर्द मानस हो, तुम को घर के झगड़ों की क्या ख़बर। तुम अपनी मा को मेरी ओर से समझा देना और देखो तुम को दूसरी बहू कहां नसीब थी? जो परमेश्वर न करे तो तुम को बड़ा दुःख होगा॥

बन्ना—मा जी ! मैं अब जाके अपनी मा से ज़रूर पूछूंगा और कह दूंगा कि दिक्क़ न करे ॥

मा—बेटा ! जो तुम्हरी मा तुम्हारा कहना न माने तो तुम यहां आ रहियो, मैं न्यारी हवेली तुम को दूंगी, और मेरे बेटे तुम्हारी बड़ी भारी ख़ातिर करेंगे । पर मैं जीते जी अपनी जयदेवी को दुखी न देख सकूंगी ॥

थोड़े दिन पीछे मेरा चाला हुआ और मैं सासरे पहुंची, देखा सास मुझ से कुछ नहीं कहती, द्योरानी बड़ी सेवा करती है। पति आधीन। अब सोचा कि मैंने जो मा बाप से सास सुसरे की बुराई की है, उन को क्या उत्तर दूंगी। दूसरे कमाता तो मेरा पति है और खाते सब हैं । तीसरे मा बाप भाइयों से भी यहां अलग रहना होता है, कुछ ऐसी बात निकालनी चाहिये कि जिस से पीहर जा रहूं, यहां तो सब बहू ही बहू कहते हैं और सबकी शरम लिहाज करनी पड़ती है, यह सोच कर मैंने बीमारी का बहाना बनाया और बीमारी भी ऐसी सोची कि किसी की समझ में न आवे और वैद्य भी घबरा जावे॥

एक दिन की वार्ता सुनो, मैं खाट पर पड़ी थी ॥

सास—बहू ! तू आज कैसे है ? बतला तो ॥

मैं—(कराहकर) मेरे तो कलेजे में बड़ा दर्द है, बड़ी बेचैन हूं (और धाड़ मार रोने लगी)

सास—(घबरा, मेरे सुसर को बुला) ए फ़लाने के लाला ! बहू तो बड़ी मांदी हो रही है, कलेजे में बड़ा दर्द है, इस का जल्दी इलाज करवाओ, किसी स्याने दिवाने को ही बुलाओ, या किसी वैद्य हकीम को लाओ, जल्दी करो, इस की तो जान पर बन रही है ॥

सुसर—अरे फ़लाने ! जा, तू हकीम जी को बुलाला ॥

(यह फ़लाने का इशारा जयसीराम जयदेवी के पति की ओर है) ॥

पति—(घबराया हुआ, हकीम जी को बहुत जल्द बुला लाया और आते ही दो रुपये भेंट के दिये, हकीम जी ने मेरी नाड़ी देख, झट नुसख़ा लिख दिया और घर को चल दिये, अब कितने ही दिन तक हकीम जी आते रहे और भेंट ले २ कर जाते रहे । परन्तु कुछ भी आराम न हुआ और होता क्या धूल, वहां कोई बीमारी तो थी ही नहीं, अब मेरी सास और ससुर में यह बात चीत होने लगीः—)

सास—फ़लाने के लाला ! वैद्य हकीम को रहने दो, स्याने दिवाने को

बुलाओ, देखो जयदेवी पीली पड़ गई है और सूखती चली जाती है। कितने दिनों से कुछ भी नहीं खाती ॥

ससुर—तो अच्छा भगतनी को बुलाता हूं, उसे दिखलाओ, जैसे वह कहेगी वैसा ही करूंगा। (भगतनी आई)

भगतनी—(मेरे सास ससुर से) बहू कहां है? तुम बैठो मैं देखती हूं,थोड़ी सी गङ्गोटी लाओ और पांच चार काली मिर्च,मैं अभी आराम किये देती हूं ॥

सास—(शीघ्र गङ्गोटी और काली मिर्च ला) भगतनी जी ! जो बहू अच्छी हो जायगी तो मैं तुम को इतना राज़ी करूंगी कि याद करोगी और बहू इस कोठे में सोती है ॥

भगतनी—ऐ फ़लाने की मा ! देने लेने की कौन बात है, मैं जयसी को अपना बेटा समझती हूं। जो बहू बनी रहेगी तो तीज त्योहार में बहुत कुछ मिल रहेगा और मैं तो तुम्हारे घर से ही खाती पीती हूं, अभी बहू को गण्डा गोली करती हूं। तुम थोड़ी देर मेरे पास बैठ कर चली आना,शायद तुम्हारे आगे वह कभी हाल न बतलावे ॥

सास—भगतनी जी ! यहां भी सब तुम्हारा ही दिया हुआ है, यह सब बच्चे कच्चे तुम्हारे ही हैं,तुम्हारी बदौलत आज तक तो हवा लगी नहीं। मुझे तो ठयार भूतलियों का खटका है ॥

भगतनी—(मेरी खाट के पास बैठ कर गङ्गोटी को मल, मेरे माथे से लगा, कुछ मेरे ऊपर फूंक छू २ करने लगी। मैंने आंखें निकाल भगतनी को धमका दिया। भगतनी एक तराज़ू मंगा,हिलाने लगी और बोली–"कामरू देश कुमंच्छा देवी, जहां बसे इसमाईल जोगी, इसमाईल जोगी ने बोई क्यारी, फूल चुने लोना चमारी, लोना चमारी की आन, तारा बनजारी की आन, लुकमान हकीम की आन, गुरु गोरख की आन, मेरा मन्त्र चले पर चले कुरु कुरु बाचा"। यह कह, मेरे ऊपर गङ्गोटी फूंकने लगी)॥

मैं—(और चिल्ल पुकार मचा) ऐ भगतनी ! मैं मरी, मैं मरी, अब न बचूंगी, मेरा तो कलेजा ऐंठा जाता है ॥

भगतनी—बेटा ! घबराओ नहीं, अभी आराम हुआ जाता है (और मेरी सास से) तुम बाहर जाओ। मैं अकेले में कुछ मन्त्र पढ़ूंगी ॥

(फिर मुझ से)—बहू ! अब यहां और तो कोई है ही नहीं, मैं हूं और तू है और सांची बात यह है कि बीमारी तो तोकू है ना, तू सांच सांच बता दे, कहा चाहे है ॥

मैं--भगतनी जी ! मैं तो मरी जाती हूं और तुम ऐसी बातें करती हो।

भगतनी--अरी बहू ! मैंने धूप में तो बाल सफ़ेद किये ही नहीं। मेरी उम्र तो इसी काम में बीत गई। अब मैं अपने प्यारे बेटे की सौगन्ध खाकर कहती हूं कि जो तू चाहती है सोई करा दूंगी। पर सांची २ कह दे, नहीं तो तेरा फ़ज़ीहता कर दूंगी ॥

मैं--(सोच कर) अच्छा भगतनी जी ! जो नहीं मानती तो गङ्गा जी को बीच में देलो, मैं सब कह दूंगी, पर जो कहूं सो करना होगा ॥

भगतनी--(गङ्गाजली बीच में रख) बहू ! मेरे तेरे बीच गङ्गा है, जो दग़ा करूं ॥

मैं--लो भगतनी जी ! सुनो, मैं यहां रहना नहीं चाहती, अपने पीहर में रहूंगी, जैसे बने मुझे मेरे पीहर भिजवादो, मैं जब तक जीऊंगी, तुम्हारी चेरी रहूंगी ॥

भगतनी--तो अच्छा बहू ! तू महीने बीस दिन ऐसे ही बनी रह, मैं भी तो कुछ तेरे सास सुसुर से कह लूं। जो तुझे तेरे बाप के घर न भिजवाया तो मेरा नाम बदल देना।(और मेरी सास को बुला) फ़लाने की मा ! मैंने अच्छी तरह देख लिया, अब तुम केवला स्याने से तो इस पर चौकी धरवा दो, भूत प्रेत तो वह पकड़ लेगा, रहीं चुड़ैल, सो वह मैं पकड़लूंगी। तेरी बड़ी बहू चुड़ैल बनी है और बड़े जंजार में मिलगई है। सब के सब ने मिलकर इसे घेरलिया है, घर की चुड़ैल बड़ी कठिनाई से टलती है ॥

सास--भगतनी जी ! बड़ी का तो मैंने नारायणबलि और गरुड़ सब करा दिये थे, फिर वह चुड़ैल कैसे बनी ?

भगतनी--फ़लाने की मा ! यह तो पण्डितों की ठगने की बातें हैं, इन में क्या लोगी। भला कहीं नारायणबलि और गरुड़ से भी कोई योनि छूट जाती है? देखो मैंने कथा में सुना है कि जीव चौरासी लाख योनि भोगता है, जो ऐसे ही गरुड़ से योनि छूट जाय तो फिर शीघ्र ही मनुष्य बना लिया जाया करे। यह तो सब लूटने खाने की बातें हैं। तुम इस सोच विचार में क्या लोगी।जैसे मैं कहती हूं वैसे ही करो।नहीं तो बहू को हाथ धोबैठोगी॥

सास--(घबराकर) अच्छा, जो आज्ञा हो वह करूं ॥

भगतनी--तुम केवला स्याने से अभी इलाज कराओ, वह पांच चार दिन में सब जंजार पकड़ देगा। फिर चुड़ैल रह जायंगी, उन को मैं पकड़

लूंगी । और मैं इस समय अपने घर जाती हूं, केवला को बुलाकर अभी समझाऊंगी, वह मन लगाकर मन्त्र जन्त्र करेगा ॥

सास--(दो रुपये ले) भगतनी जी! यह तो लेती जाओ, तुम ही केवला को समझा बुझा, मेरी बहू को अच्छी करादो, मैं तो तुम्हारी टहलनी हूं इसे याद रक्खो ॥

भगतनी--(रुपये हाथ में ले) बहू ! इस को रहने दो, कुछ जरूरत नहीं, वैसे ही हम राज़ी हैं । और रुपये लेकर प्रसन्नतापूर्वक चली गई ॥

भगतनी व केवला

भगतनी व केवला के वृत्तान्त सुनने को श्रोतागण लोभित होंगे, सुनिये-भगतनी एक दुष्ट और चञ्चल स्त्री, जाति की ब्राह्मणी है, जो आपने देहली के नील के कटरे की भगतनियों को देखा होगा तो आप ही समझ लेंगे । परन्तु ऐसे मनुष्य तो थोड़े होंगे-सुनिये, इस चञ्चल स्त्री ने अपने घर के दालान में एक देवता का स्थान बना रक्खा था, जिस को क़लई से पोत, कुछ २ लाल गेरू व हलदी से लकीरें खेंच रक्खी थीं और सब गांव में यह बात प्रसिद्ध कर रक्खी थी कि मैं देवी की भक्त हूं, मूर्ख पुरुष और स्त्रियां आप अपने बच्चों को इस के पास लाते और यह झाड़ा फूंकी करदेती और गांव के रहने वालों को लूटा करती । इस का गांव के मनुष्यों को बड़ा विश्वास था, हर समय दो चार पुरुष स्त्री उस के घर बने रहते थे । आप जानते हैं कि बहुत से रोगी छोटे २ रोगों के थोड़ी २ देर में आप ही अच्छे हो जाते हैं, ऐसे ही किसी २ को आराम भी होजाता और मूर्खता के कारण इस की प्रशंसा करते चले जाते। केवला स्याना जाति का सानी था, इस के भी होली दिवाली को बड़ा मेला रहता और गण्डा तावीज़ और मिर्च बनाकर लोगों को दिया करता । इस का भी सारा नगर चेला था ॥

इस की और भगतनी की एक सम्मति थी, जहां कहीं यह जाती, वहां आप भी माल मारती और केवला को भी दिलाती । जहां केवला जाता, वहां भगतनी को अवश्य बुलाता ॥

भगतनी ने केवला को बुलाकर सब तरह से पट्टी पढ़ादी और साथ ले:-

भगतनी--(मेरी सास से) फ़लाने की मा ! मैं इन केवल को लाई हूं, यह आप के सामने खड़े हैं ॥

सास--भगत जी! बहू कितने ही दिनों से बीमार है, कुछ खाती पीती नहीं और पीली पड़ती जाती है, तुम इस का मन लगा कर इलाज करदो, मैं तो तुम्हारी दासी हूं ॥

केवला--बहू जी! जहां तक मुझ से हो सकेगा, कसर न करूंगा। तुम एक चिलम तमाकू लेकर बहू को छुआ लाओ, मैं अभी तार देखता हूं ॥

सास--(मेरे पास तमाकू ला)बहू! इस में फूंक मारदे (मैंने फूंक मारदी)

केवला-चिलम भर, हुक्का सामने रख, दम लगा, होंठ हिला, आंखें लाल कर, ज़ोर से सिर हिलाने लगा ॥

भगतनी--महाराज! आप कौन हैं?

केवला-- हूं हूं हूं, हम हैं, हम हैं, हम हैं॥

भगतनी- महाराज! इस बहू पर तो मेहर करो, देखो इस की सास कैसीफूट २ कर रो रही है, फ़लाने की मा! पांव ले, पांव॥

सास--(केवला के पांव पकड़ गिड़गिड़ाकर) महाराज! मुझे अपनी दासी जान इस को तो बख़्श ही दीजिये॥

केवला--(मेरी सास के लात मार) हठ २ परे हठ, नहीं बख़्शते, नहीं बख़्शते, हूं हूं हूं (आंखें निकाल) सब दहेज़ घर में धर लिया, हम को कपड़े भी न पहनाये॥

सास और भगतनी—(दोनों मिल कर) महाराज! अच्छे से अच्छा जो आप कहें और जिस को बतलादें, पहना देंगे। आप क्षमा कीजिये, देखो मनुष्यों से भूल चूक भी हो जाती है॥

केवला---हूं भूलचूक भूलचूक भूलचूक हो जाती है, जब ही तो रोते हैं, ऐसे ही तो पहिली बहू खोई, अब इस को भी खोवेगी। इस पर बड़ा जंजार है, हम अकेले नहीं है, पूरी चौकड़ी है, पूरी चौकड़ी, पूरी चौकड़ी॥

सास—महाराज! अब तो मेहर करो, जो आप बतलावें करने को तैयार हैं॥

केवला--तुम हम को बहुत दुखी करती हो, लो अब हम जाते हैं, (यह कह, हाथ उठा, ऊपर को उछल, ज़ोर से सिर हिला, जंभाई ली और आंखों की लाली बदल नीचे को सिर कर बैठ गया)

सास--भगत जी! देवता ने मेहर तो न की, अब तुम ऐसा करो कि बहू अच्छी हो जाय, मैं जब तक जीऊंगी, गुण न भूलूंगी और ताबेदार रहूंगी, चाहे मेरी खाल की जूती बना लेना॥

केवला--(भगतनी और मेरी सास से)तुम ने नाम भी पूछा,कौन देवता था ?

सास आदि--भगत जी ! हमने पूछा तो था, पर बतलाया नहीं ॥

केवला--तुम ने बड़ा ग़ज़ब किया, देखो मैं तो कलकान हो गया, मैं तो पीला पड़गया, एक पोत के देवता के आने से पंद्रह दिन में सूधा हूंगा । अब एक काम करो, एक थाली और एक लोटा पानी और थोड़ीसी आग लाओ, मैं तार देखूं गा ॥

सास-दौड़ कर लाती है ॥

मैं--(मन ही मनमें) ऐ है ! यह संसार भी कैसी लीला का भरा है ।

केवला--पानी थाली में भर और उस में उलटा लोटा रख, ऊपर आग रखदी और कहने लगा-"तुम हिंगलाज वाली हो, तुम नगरकोट वाली हो, जाहरदीवान हो, मीरां हो, मसानी हो, कलकत्ते वाली हो, मिर्ज़ापुर वाली हो, चौंठेरे वाली हो, शाकम्भरी हो, हनुमान हो, बुर्ज वाले हो, पीपल वाले हो (इस पर पानी से बबूला निकला) हां हां तुम्हारे साथ तो बहुत से भूत चुड़ैल हैं (फिर बबूला निकला और बबूलों का तार बन्ध गया)

केवला--कोई ना फ़लाने की मा ! यह तो गड़बड़ मच गई । लोटे को उठा, अब तुम तराज़ू लाओ, तराज़ू ले पलड़ा हिलाने लगा और बोला-"ऐ नगर कोट वाली, हिंगलाज वाली, आजा आजा आजा,ऐ पीपल वाली,आजा" इस पर पलड़ा ठहर गया।बोला कि फ़लाने की मा ! मान तो लिया पर एक माला और लाओ, मैं अच्छी तरह से ठीक करलूं,माला की चोटी पकड़ हिला- "लङ्कासा कोट समुद्र सी खाई,जहां फिरे वीर हनुमान की दुहाई। कौन२वीर साथ चले,कलुवा वीर साथ चले, मुहमदा वीर साथ चले, नादरशाह वीर साथ चले, लोना चमारी साथ चले, लुक़मान हकीम साथ चले, कुरु कुरु बाबा " फिर थोड़ी देर ठहर-"अलीच-मलीच-कुलीच-कुलेना, तान-मकान-मकून-निकोना-(और दुसरा तिसरा कर तार लगाया और मुझे हंसी आई, फिर कुछ बड़बड़ा पीछे हट चुप हो बोलाः-)

केवला-लो फ़लाने की मा ! हमने मालूम तो कर लिया,अब कल इलाज करेंगे । पर एक लोटा और छलनी और लाओ ॥

सास--(बहुत जल्द ला) लो लाला लो ॥

केवला-चलनी लोटे के मुंह पर रख, लोटे को उलटा करता है, थोड़ा सा पानी तो निकल गया और कुछ पानी लोटे में भरा रहा और गुन गुन

कर, हां ठीक २ (मेरी सास से) फलाने की मा ! देखो मन्त्रों का बांधा पानी भी चलनी से नहीं गिरता, बस मैंने समझ लिया ॥

सास--हां लाला, मन्त्रों में ऐसा ही बल है ॥

केवला--अच्छा आज तो हम जाते हैं, कल शुक्र है, शुक्र सनीचर को इलाज होता है, आज तो जुमेंरात पीरों का दिन है। ठयार भूतली भूत प्रेतों का दिन नहीं है ॥

भगतनी--(मेरी सास के कान में) इन को पांच रुपये भेट के तो दे दो, नहीं तो नाराज़ हो जावेंगे, नाराज़ होने पर कुछ ठिकाना नहीं ॥

सास--(पांच रुपये ले) भगत जी ! यह भेट तो लेते जाओ ॥

केवला--रुपये ले, बहू जी ! इन को रहने दो, हम तो तुम्हारी और अपनी बहू को एक ही जानते हैं, कुछ रुपये पैसे के तो भूखे हैं ही नहीं, परमेश्वर ने सब कुछ दे रखा है । तुम्हारी प्रीति के मारे चले आते हैं। अच्छा तुम्हारी मरज़ी, हम नहीं फेरते, पर बहू को तो देखो कैसे है ? मेरी समझ में तो अब अच्छी होगी, क्योंकि जंजार घर से बाहर है ॥

सास--(मेरे पास आ) (मुझे तो उस की बातों पर पहले ही से हंसी आ रही थी, हंसती देख, बड़ी खुश हो तुरन्त बाहर जा) भगत जी ! तुम्हारी और भगतनी जी की कृपा से बहू तो अब अच्छी है ॥

भगतनी--तो बहू ! मैं भी जाती हूं, सांझ को आऊंगी ॥

(अब मेरी सास ने दो रुपये भगतनी को भी दिये, और दोनों चले गये)

मैं--सांझ तक उस केवला की बातों पर हंसती रही। सांझ को भगतनी आई, और यों बात चीत हुई:-

सास--भगतनी जी ! आज तो बहू अच्छी रही ॥

भगतनी--हां बहू अच्छी तो है पर अभी तो ली जञ्जीर पकड़ा नहीं गया, आधीरात के पहरे फिर अमल होगा, पर कुछ डर की बात नहीं, केवला ने मुझ से कह दिया है कि मैं पकड़ लूंगा । पर मैं भी आज एक मन्त्र बहू पै पढूंगी । बहू ! तू धरती में बैठ जा । (सास से) तुम सब अपना २ धन्धा देखो, मेरे पास किसी की ज़रूरत नहीं, तुम सब अलग होजाओ। और होंठ हिलाये, बस मेरी सास नन्द द्यौरानी सब अलग होगईं ॥

भगतनी--बेटा जयदेवी! मैं तोको तेरी मा के पहुंचा दूंगी, पर यह तो बता कि हम को क्या देगी ?

मैं--जो मांगो, देने को तैयार हूं। पर मेरी मा के पहुंचा दो॥

भगतनी--तो अच्छा, रुपये पचास लूंगी, पूरे पच्चास॥

मैं--भगतनी जी! रुपये तो मेरे पास हैं नहीं,पर यह गुलूबन्द पच्चीस रुपये का है, यह तुम को देती हूं॥

भगतनी--और जो तेरी सास ने पूछा कि गुलूबन्द कहां है,तो क्या कहेगी?

मैं—कह दूंगी कि मैंने सन्दूक़ में रख दिया है। जब माके जाऊंगी, और मा पूछेगी तो कहदूंगी कि टूट गया था,दूसरे ने और चीज़ बनवादी। इस से तुम तिशाख़ातिर रहो, किसी को ख़बर न होगी॥

भगतनी—बहू! आज आधीरात से तू फिर मांदी बन जाइयो और जब तक अपने पीहर न पहुंचे, अच्छी मत हूजियो। पर कभी २ अच्छी भी होती रहियो। (यह बातें हो रहीं थी कि मांदगी की ख़बर सुन मेरा भैया आया, मैं उस से मिली और यह बातें होने लगीं:-)

सास—(मेरे भाई से) लाला! तुम्हारे घर सब राजी खुशी हैं? बेटा! जयदेवी सब से आई है,नित्य मांदी रहती है। हकीम का भी इलाज कराया, पर कुछ आराम न हुवा, तुम्हारे मौसा बहुत क़ायल होगये, अब लाचार स्यानों का इलाज किया है॥

भाई—मा जी! मेरी मा ने सुनते ही मुझे भेजा है और कह दिया है कि जो जयदेवी को वहां आराम न हो तो यहां ले आना,मैं यहां इलाज कराढूंगी॥

सास—लाला! जहां तक हो सकेगा, इलाज में तो कसर न करूंगी, आगे परमेश्वर की मरज़ी। भला मुझे क्या बहू कुप्यारी है?

मैं—(भाई से) भैया जी! मुझ को तो घर ले चलो, यहां तो आराम वाराम होना नहीं॥

भाई—बीबी! इलाज तो होही रहा है,इसे हो लेने दो, परमेश्वर आराम कर दे, आराम हो जावेगा तो भी, और न होगा तोभी मैं तुम को ले तो चलूं ही गा, इस लिये तो आया ही हूं॥

इस बात चीत के पीछे मेरी सास ने मेरे भैया का बड़ा आदर सत्कार किया और सब सोरहे। मैंने विचारा कि पीहर चलने का बहाना तो अच्छा है और भैया लेने को भी आगया, अब जब तक पीहर में रहने का पूरा २ उपाय न हो, तब तक यह ढंग छोड़ना न चाहिये और दिल में ठान ली कि चाहे कुछ हो, अब अच्छी तरह से मांदी बनूं॥

सवेरे होते ही केवला और भगतनी आये और आते ही गोबर से धरती लिपवा, उस पर मुझे बिठला और मेरे ऊपर कुछ राख पढ़कर फूंक, मिर्चें चाबने को दीं, परन्तु मैंने सिवाय कलेजे के दर्द के और कोई बीमारी ही न बतलाई और जब मुझ से पूछा गया कि कुछ आराम है, मैंने कह दिया कि कुछ आराम नहीं॥

केवला–फ़लाने की मा! बहू पर तो बड़ा भारी जंजार है। मैं इस पर उतारा करूंगा, राम जी चाहैगा तो आज ही जंजार जरमूल से जाता रहैगा और जो न गया तो कल इस पर चौकी धरदूंगा॥

सास––भगत जी ! जो तुम्हारे जी में आवे सो करो, पर बहू अच्छी हो जावे। मुझे तो इसके दुःख में कुछ भी नहीं सुहाता, यह मिट गई बहू आप तो मरगई और औरों को दुःख देरही है॥

केवला–तो अच्छा सवा सेर पेड़ा, तोला भर सिंदूर, कुछ काले पीले बिनौले, थोड़ी सी सरसों, एक पान का बीड़ा, ग्यारह रुपये नक़द और एक फूल का थाल और एक चौमुखा दीया मंगवा रखना, मैं पहर रात गए आकर उतारा करूंगा॥

भगतनी–– (मेरी सास के कान में) भगत जी की भेट तो देदो, आज ज़रूर यह अच्छा कर देंगे॥

सास––(पांच रुपये केवला की नज़र कर, एक रुपया भगतनी को दे) मैं तुम को कुछ देने के लायक़ नहीं पर यह तो ले ही लो॥

केवला––(रुपये हाथ में ले) ना बहू जी! रहने दो, कुछ ज़रूरत नहीं है, मेरे पास भी तो सब तुम्हारा ही दिया हुआ है, (और लेकर जाता है)

अब सांझ हुई और मेरी सास ने सब सामान इकट्ठा किया और केवला एक आदमी और भगतनी के साथ आया और धरती लीपलाप और उस पर कुछ राख सी छिड़क, मुझ को बिठला और थाल में पेड़े और चौमुखा दीया और सब सामान रख बीच में रुपये रख दिये (और मेरी सास से) किसी लेजाने वाले को बुलाओ, जब मैं उतारा करूं, पर जो आदमी रखने जावे, वह पीछा फिरके न देखे, नहीं तो जीता न आवेगा॥

सास—(सोच कर) भगत जी! मेरे पास लेजाने वाला कौन है, यह जो मोहन तुम्हारे साथ आये हैं ये ही ले जावेंगे और (मोहन से) ऐ मोहन! देखो तुम सदा हमारी अड़ी भीर में काम आते रहे, आज यह उतारा तो पहुंचा दो॥

मोहन—बहू जी! मुझे क्या उज़र है॥

केवला—(मेरे ऊपर उस थाल को उतारता हुवा कहता जाता है कि

हनूमान वीर जागे, लांगर वीर जागे, मुहम्मदा वीर जागे, कलुवा वीर जागे, टलजा २ सत्तर बला टलजा, झाड़वाला टलजा, नींब वाला टलजा, दुहाई है देवी की, दुहाई है दुर्गा जी की, दुहाई २ जो इस बला को न टाले। और मोहन से) लो भाई मोहन ! इस को दक्खन के मरघट वाले चौराहे में रख कर चले आना और पीछे फिर के न देखना ॥

मोहन—लेकर गांव से बाहर निकल, बागों में पहुंच चौमुखा बुझा सब सामान घर ले आया ॥

केवला—फ़लाने की मा! बहू की सब बला टल गई, जो कुछ रह जायगी, तो कल चौकी रख दूंगा, आज रात को देखो कैसी रहती है ॥

मैं—एक पहर तक तो चुप रही और फिर दर्द ही दर्द कहने लगी, मेरी सास ने भगतनी को बुलाया। भगतनी नें आते ही मेरे ऊपर कुछ छू मन्त्र की और कल के लिये मुझे पट्टी पढ़ा, (मेरी सास से) बहू जी ! अब ज़रूर कल चौकी रखवा देंगे। सब बहू के मुंह से आप बकार जायंगे और अपने घर को चली गई। और मैंने भगतनी के कहने के मुताबिक़ कह दिया कि अब कुछ आराम है, दूसरे दिन ठीक दुपहर को केवला और भगतनी आये॥

केवला—बहू जी ! बहू को धरती पर बिठालो, मैं चौकी धरता हूं (और मुझे बिठाल, घी का दीया जला, मेरे शिर पर हाथ रख, यह पढ़ने लगाः–)

लङ्कासा कोट समुद्र सी खाई, जहां फिरे राजा रावण की दुहाई। हनुमान ने लङ्का फूंकी जहां फिरी राजा रामचन्द्र जी की दुहाई, कलुवावीर मुहम्मदा वीर, लादे २ पकड़ कर ला दे, जो मेरा मन्तर झूंठा जावे तो तू अपनी मा बहन से हराम करे, हां भाई हां, हां, हां, हां, वह आया २ वह आया २ बहू के शिर वह आया। (मैं भगतनी की शिक्षानुसार शिर हिलाने लगी और यों बातचीत हुईः–)

केवला—बोलो महाराज कौन हो? बता तो दो, देखो बे बताये कोई क्या जाने कौन हो, तुम्हें दुहाई है हनुमान जी की, सौगन्द है अपने माता पिता की, सौगन्द है वैद्य धन्वन्तरि की, सौगन्द है लोना चमारी की, सौगन्द है तारा बनजारी की ॥

मैं—हम हैं पीपल वाले ॥

केवला—अजी महाराज ! मैं तो तुम्हारा ही भगत हूं, इस बहू को तो बख़्श दो, देखो भगतों पर तो सब मेहर करते हैं, और जो तुम कहो हम वह करें॥

मैं—भाई ! मैंने बहुत समझाया, पर साथ की व्यार, भूतली नहीं मानतीं और कहती हैं कि हम इस को न छोड़ेंगे ॥

सास—(डर कर) हा राम ! अब कैसे होगी ॥

केवला—महाराज ! यह तो बख़शनी ही होगी, जैसे बने बख़्श ही दीजिये । तुम्हें आन है गौ माता की, आन है गङ्गा जी की ॥

मैं-भाई ! जब से तुम आये हो तब से ही समझा रहा हूं, औरों को तो मना भी लिया पर इस की सौक नहीं मानती, वह कहती है कि इस को इस घर में बसने ही न दूंगी, चाहे दुनिया इधर की उधर हो जाय और उस का पति हमारा सर्दार है, वह उस की बड़ी प्रतिष्ठा करता है, जब वह भूतली हुई थी तभी उस ने वचन भरवा लिया था कि जो मेरी सौक आवे वह सुख से न रहे । भगत जी ! तुम हमारे भगत हो, इस बहू को इस गांव में मत रक्खो, यहां का मालिक और मालिकनी इस की सौक और उस का पति हैं, हां दूसरे गांव में उस का दख़ल न होगा ॥

केवला—महाराज ! इस को तो बख़शना ही होगा ॥

मैं—भगत जी ! जो मैंने लड़ झगड़ कर इस को बचा भी लिया और घर कील भी दिया, तो फ़लाना तो घर में बैठा ही न रहेगा, वह अपना अवसर पा, उसे जान से मार डालेगी, या लूला लङ्गड़ा कर देगी, इस से यही अच्छा है कि इस को पीहर भेज दो ॥

केवला—(मेरी सास से) कहो बहू जी ! क्या कहती हो, क्या सलाह है॥

सास—अच्छा भगत जी ! इस का भैया लेने आया है, इसे इस के पीहर भेज देंगे, पर यह तो मैं न मानूंगी कि मेरे फ़लाने की उंगली भी दुःखे॥

केवला—जब कभी जयदेवी यहां आवेगी, तब ही यह जंजार उसको घेर लेगा, अच्छा इस के भैया से तो पूंछ लो ॥

भाई—(बैठा हुआ सुन ही रहा था) अजी ! हमारी मा ने कह दिया है, हम जयदेवी को घर ले जावेंगे और जीजा भी वहीं रहा करेंगे और न्यारी हवेली बनवा देंगे ॥

मैं—(गुस्से से) भगत जी ! हम को तो देर होती है, तुम मा बहन करते हो, कहो क्या कहते हो, जल्दी जवाब दो, अब हम जाते हैं ॥

केवला—अच्छा महाराज ! यहां न आवेगी, पर पीहर में तो कुछ दख़ल न होगा ?

मैं—"अच्छा बख़्शा, पर पीहर में रहने के हम ज़िम्मेदार हैं, परसों यह पीहर को चली जाय, वहां कुछ दख़ल न होगा। अब हम जाते हैं। यह कह, मैं अच्छी हो गई और सब लोग चले गये। और मेरे जाने की तैयारी हुई, और सास ने मेरे भाई से कहा कि लाला! जयदेवी को ले जाओ (पछ-ताकर) लाचारी की बात है, पर क्या करूं, बे बश हूं। फ़लानेराम भी दो चार दिन में आ जावेगा। अब मैं अपने पीहर पहुंची और मा ने मुझे रहने को एक हवेली दे दी और भाई ने सब मेरा वृत्तान्त जो आंख से देखा और कान से सुना था, मा से कह सुनाया। और पांच दिन पीछे मेरा मालिक भी आगया। अब जब कभी वह अपने बाप के घर जाने को कहता है, तभी भांति भांति के रूप बनाती हूं, अब यहां तक कि उस के मा बाप ने भी जान लिया कि वह अलग ही रहेगा और उधर मेरे देवर भी स्याने हो गये, अब चैन से अकेली रहती हूं, पर एक दुःख है कि मेरी भावजों की मुझ से नहीं बनती, उन को मेरा यहां का रहना बहुत ही बुरा लगता है। कुछ दिनों तक तो भावज कुछ भी न बोलीं थीं, पर एक दिन मेरी मा और भावजों में लड़ाई हुई॥

भावज—तू तो सब धन दौलत धी जमाई को देगी?

मा—हां हां धी जमाई को दूंगी, तुम्हारे बाप का हो, वह मत देने दो॥

भावज—यह मिटगई हमारी छाती पर कहां से आगई॥

इस पर मेरी मा बहुत बिगड़ी और सब भावजों ने एक मुंह हो मेरी मा को ख़ूब फटकारा, उस रोज़ से मा कुछ ऐसी डर गई है कि बहुओं के मारे चुप है, और बाप तो बिचारा बूढ़ा ही हो गया है। ऐ है! भैया भी तो अपनी लुगाइयों का साथ देने लगे। उन्हों ने तो लाज शरम सब उतारके रख दी, जो लुगाई कहती हैं वह ही करते हैं, मा और बहन की कुछ भी शरम नहीं करते, बाप को पूंछते भी नहीं, जो कुछ कमा कमूकर लाते हैं, लुगाइयों को सौंप देते हैं, मा को एक पैसा भी तो नहीं देते, पर मा का जिस प्रकार बस चल जाता है, उसी प्रकार मुझे दे देती है। जब मैं आई थी तब तो बड़े आनन्द में घुटती थी, पर अब कुछ तङ्गी रहती है, पर अब भी अच्छी हूं। न सास का झगड़ा, न द्योरानी जिठानी का टंटा, मालिक भली ताबेदारी करता है, जो मन में आता है, कह लेती हूं, चूं भी नहीं करता, पर अब मुझे भैये बुरे लगते हैं कि लुगाइयों के गुलाम बन, मा बहन की कुछ भी परवाह नहीं करते। बस बहन! मेरा तो यह वृत्तान्त है॥

चावली—फूफी! कुछ भैया भावज पर जादू टोना क्यों नहीं करातीं॥

जयदेवी—अरी! वह तो सब झूंठ है, मेरा तो अच्छी तरह से भुगता हुआ है॥

चावली—(हंस कर) फूफी! तुम ने मा के घर आने को जो २ बखेड़े किये, उन को तो मैं पीछे कहूंगी, पर यह तो बतला दो कि भैया भावज की बुराई क्यों करती हो?

जयदेवी—ऐ है, लें भैया की बुराई क्यों न करूं, वे तो मा बहन का कुछ भी आदर नहीं करते, अन्त को तो मा से जन्म लिया है। बहन भी तो माजाई ही है। माता पिता का आदर सत्कार सदा करना चाहिये, यह नहीं कि लुगाई का गुलाम बन जाय। और भावज निगोड़ी को इतना तो लर्स चाहिये कि मा ने पाला पनामा है, उन की तो सेवा करने दे। लिया और अपना गुलाम बना लिया॥

चावली—फूफी! यही तो मैं भी कहती हूं कि जो तुम अब ऐसा कहती हो वह ही ठीक है, पर तुम ने ऐसा क्यों न सोचा, जब फूफा को ले सास ससुरे को छोड़, मा बाप से न्यारा कर लाईं तब भी कुछ सोचा? जैसा तुम ने किया वैसा ही तुम्हारी भावज करती हैं और वह बिचारी भी क्या कोई नई बात करती हैं, जैसे तुमने सास नन्द की कुछ परवाह न की और फूफा ने तुम्हारे कहने से मा बाप भाई बहन छोड़ दिये, वैसे ही तुम्हारे भाई भावज भी करते हैं॥

जयदेवी—(कुछ सोच, ऐं ऐं कर चुप)॥

चन्द्रमुखी—बीबी जयदेवी! अब ऐंऐं कैसी, तुमको जवाब तो है नहीं, यों जुबान ज़ोरी करो यह दूसरी बात है। अच्छा सोचो तो कि तुम्हारी भावजों ने इतना तो अच्छा किया है कि अपने पीहर जाने को रुपया पैसा तो नहीं लुटाया, जो कुछ मिला समेट सपाट अपने घर में आबरू से बैठी हैं और जो कुछ बनती है तुम्हारी मा की सेवा भी करती हैं। परन्तु जब से तुम आई और तुम्हारी मा तुम को ख़र्च देने लगी तब ही से लड़ाई होने लगी, नहीं तो कुछ झगड़ा था, न बखेड़ा और यह भी सब तुम्हारे ही आने से हुआ। न तुम यहां आतीं और न यह रंग खिलता। अब तुम यह कहीं नहीं कह सकतीं कि भावज भाई बुरे हैं। बहन! तुम से तो हज़ारदर्जे अच्छे हैं॥

जयदेवी—(लज्जित हो चुप हो गई)॥

चावली—फूफी! क्रोध न हो तो मैं एक बात और कहूं॥

जयदेवी—कह बेटी ! हमने जैसा किया वैसा पाया, क्या कहैं जब तो यह ही अच्छा लगता था ॥

चावली—हां फूफी ! अच्छा तो लगता ही क्योंकि मा बाप बहन भाई सब ने यही सिखाया था कि सास से अलग रहियो। सच तो यह है कि यहां रहने में तुम को सब गांव तानें देता है। एक दिन एक आदमी ने फूफा के मुंह पर कहाः—

कुत्ता पाले सो कुत्ता,कुत्ता मारे सो कुत्ता,सास घर जमाई कुत्ता, बहन घर भाई कुत्ता, सब कुत्तों का वह सर्दार, ससुरा बसे जमाई द्वार ॥ फूफा सुन चुप हो गये, पर मुझे तो बड़ी ही लज्जा आई और मन ही मन में कहा कि फूफी ने क्या किया कि अच्छे ख़ासे ज्वान जवान कमाऊ पुरुष को मनुष्यों से ताने दिलाये । सत्य तो यह है कि मुझे बड़ा ही शोक हुआ परन्तु क्या करूं, कुछ मेरे तो बस की बात थी ही नहीं, जो प्रबन्ध करती। मैं ने अब तक तुम्हारे डर से कुछ नहीं कहा, अब तुम भी सोच लो कि आप तो टुकड़ा खावा कहलाईं तो कहलाईं, पर फूफा बिचारे को भी बेहा बनाया ॥

चन्द्रमुखी और हरदेवी-- बहन जयदेवी ! चावली कहती तो ठीक है और हमने तो बहुतों से सुना है । बहन ! तुम्हारे सामने तो कोई कहता नहीं पर पीछे तो सब कहते हैं कि जयदेवी बड़ी बेहा है,ख़सम को ले पीहर में आरही, इस ने सब लिहाज़ उतार डाली ॥

जयदेवी—(कुछ सोच आंखों, में आंसू भर) भाबी ! मैं क्या कहूं, मैं ने तो अच्छा समझ कर किया था पर अब समझा कि मैंने बुरा और बहुत ही खोटा काम किया जो पीहर में आई और जो मेरा हाल किसी को मालूम होता तो और भी मुझ को लज्जित होना पड़ता, ख़ैर तो यह हुई कि किसी को यह मेरा रूपक मालूम नहीं। अब तो मैं यही कहती हूं कि चाहे भूखी क्यों न मरूं पर पीहर रहने का नाम न लूं । भाबी ! यह तो बतलाओ कि अब सासरे जानेमें तो द्यौरानी और सास हंसैंगी ॥

चन्द्रमुखी–नहीं२ बहन ! मैं बहुत सहज बात बतलाती हूं । अपने पति को अपने सासरे भेजो और समझा दो कि जब तुम्हारी मा कहैं कि बेटा ! एक बेर तो बहू का मुंह दिखा दिया होता, बस वे तुरन्त कहदें कि मैं अब के ज़रूर लाऊंगा और तुम चली जाना ।जब तक तुम आने को न कहोगी, सास द्यौरानी तो यह कहैंगी ही नहीं कि तुम चली आओ, वहां पहुंच घर का

धंधा अच्छी तरह मेहनत से करना और ऐसे प्यार से रहना कि सास और द्यौरानी सब दंग रह जावें । अन्त को कोई ज़िकर न करेगी क्योंकि उन सब को तो यह मालूम है ही कि चुड़ैलों के भय से गई है ॥

जयदेवी—हां भाबी ! है तो ठीक, अब कल ही तेरे नंदोई को भेजूंगी और सास को मा से अधिक और ससुर को बाप से बड़ा और देवरों को बेटों की बराबर और द्यौरानियों को बेटियों की बराबर रक्खूंगी। किसी ने सच कहा है कि "कुछ खो के पाता है" पर भाबी ! मेरा तो कुछ दोष नहीं, जैसा मैंने मा बाप से सीखा था वैसा ही कर दिखाया ॥

चन्द्रमुखी—बीबी ! जब ही तो अच्छे माता पिता की सब प्रशंसा करते हैं और ख़ान्दानी घर ढूंढ़ते हैं ॥

चम्पा—मैं क्या कहूं, चाची हरदेवी और फूफी जयदेवी और बहन चावली की बातें सुन, मुझे तो अपने कर्मों पर बड़ी हंसी आती है और जी नहीं चाहता कि कहूं, मुझे तो बड़ी लाज आती है। पहिले तो मैं कहने को तैयार भी थी पर अब तो मैं कहना नहीं चाहती। (आप ही आप) ओ हो ! कैसी मूर्खता की बात की ॥

चन्द्रमुखी—नहीं बेटी ! तुम भी कह डालो, अब छिपाना उचित नहीं, नहीं तो इन सब को यही संदेह होगा कि तुम्हारे साथ क्या बीती ॥

चम्पा का हाल

चम्पा—(अच्छा, कह, इस भांति वर्णन करने लगी-) बहनो ! जैसा कि तुम को तुम्हारे मा बाप ने सिखाया था, उसी तरह मुझे भी सिखलाया गया। बेशक इतना वृत्तान्त मेरा तुम से अधिक है कि मेरा स्वामी सरकारी नौकर था । विवाह गौने को तो सासरे रही, चाले को उन के साथ नौकरी पर चली गई, वहां देखती हूं कि जो कुछ बचता है, सब मा बाप के पास भेज देते हैं, मैंने कई बार समझाया पर न माना । एक बात और अच्छी थी कि मुझ से मेरे स्वामी बहुत प्यार रखते थे । मैंने अपनी पड़ौसिनों की सलाह से उन को कुछ दम दे बीमारी का बहाना कर लिया और बीमारी दर्दसर, दर्द पेट, दर्द कलेजा और घर में डरना, बतलाई, जिन का पता भी न लगे । एक दिन द्वार पर यों बात चीत हुई:-

एक पड़ौसी—लाला ! तुम्हारी दूजिहां की औरत है, इस का इलाज करो, परमेश्वर न करे, जो कोई बात होगई तो बड़ा दुःख होगा । देखो बिना स्त्री मर्द का ख़ाना ख़राब हो जाता है औ ख़ाना ख़राबी से अधिक कोई दुःख नहीं॥

दूसरा—भाई ! कहने को तो हम भी थे,पर भाई साहब ने ही कहदिया॥

पति—भाई साहब ! मैं तो बड़ी चापलोसी करता हूं और फूंक २ कर पांव रखता हूं, जैसे कोई दूध का जला छाछ फूंक २ पीता था, वही मेरी दशा है, मेरी समझ में तो कोई बीमारी है नहीं, कुछ मकर है ॥

पहिला पड़ौसी—नहीं भाई मकर नहीं,मुझे तो कुछ मालूम न था, मुझ से तो मेरे घर में कहा, जब मालूम हुआ । भाई ! डाक्टर को बुला, इलाज कराओ, रुपया तो सदा कमाओ ही गे, जो सौ दो सौ रुपये के ऋणी हो जाओगे तो क्या बड़ी बात है, हर बार स्त्री मिलनी कठिन है ॥

दूसरा पड़ौसी—हां भाई ! इस का कुछ फ़िक्र करना चाहिये, हम ने भी अपने घर में सुना है, ज़रूर कुछ न कुछ बीमारी है, नहीं तो हमारे घर में कभी न कहती । भाई ! स्त्रियों की बीमारी स्त्री ही जानती हैं ॥

पति—(मेरे पास आ) कहो जी ! क्या हाल है ?

मैं—(नाक भौं चढ़ा) होगा, हाल तुझ को किसी की क्या परवाह, कोई मरे या जिये, हमारी तो मौत इस घर में ले आई,सब दुनिया में औषधि बूंटी कराते हैं, हमारे भाग्य में तो औषध भी नहीं ॥

पति—अच्छा मैं अभी डाक्टर को लाता हूं । और जाकर एक काला सा सण्डा मुसण्डा आदमी साथ ले आये, मैं घबराई कि परमेश्वर यह भूत कहां से आया ॥

डाक्टर–(कुरसी पर बैठ)कहां दर्द रहता है?पेट में,पेट में? खांसी तो नहीं है?दस्त तो नहीं आता?ज़बान दिखलाओ और आंख भी दिखाओ,कैसा है॥

पति—डाक्टर साहब ! जुबान और आंख तो हम आप को न दिखावेंगे॥

डाक्टर—क्यों शाब ! डर का कौन बात है?हमारी माफ़क़ सब डाक्टर लोग बड़े बड़े अमीरों के जाता, बेगम लोगों का इलाज करता, जुबान देखता है । शाब यह तो बीमारी का मामला है, इस में पर्दे का कौन बात है?

पति—अच्छा डाक्टर साहब ! मैं उन से पूछ लूं (मुझ से) सुना ? डाक्टर साहब क्या कहते हैं ?

मैं—(होले से) मैं तो इस मूंड़े काटे को जुबान और आंख न दिखलाऊंगी, फिर कहेगा कि पेट दिखलाओ ॥

पति—(डाक्टर से) डाक्टर साहब ! नब्ज़ देख लीजिये, वे आंख और जुबान तो नहीं दिखलातीं ॥

डाक्टर—अच्छा तो बाबा ! पेट दिखलाओ कैसा है, सख्त या नर्म । अरे मुन्शी जी ! आप लोग बिल्कुल उल्लू का माफ़क है, आप लोग जानता नहीं कि हम लोग बीमारी के सबब देखना मांगता है, अरे बाबू ! सब औरत लोग हमारी मा बहन का माफ़क हैं और अंग्रेज़ों में और बङ्गालियों में सब देखा जाता है, देखो जब तक हम लोग रोग समझे नहीं, इलाज कैसे करने सकता है ॥

पति—डाक्टर साहब ! यह अपने २ देश की रीति है, जो है सो है ॥

डाक्टर—वल मुन्शी जी ! जो औरत लोग का मरज़ी, हम इस में कुछ नहीं करने सकता और तुम भी कुछ नहीं करने सकता। अच्छा नब्ज़ दिखला सकता है ? अच्छा बतलाओ तो यह कब से ऐसा होने लगा ॥

पति—हां हां नब्ज़ देखिये, कोई पन्द्रह दिन से बीमार हैं ॥

डाक्टर—क़लम काग़ज़ दावात तुम यहां देने सकता है ? हम एक नुसख़ा लिखेगा, तुम डाक्टर एम० सी० घोष की दूकान से ला, सुबह शाम देने सकता है, और खाने को दूध बहुत अच्छा होगा और हम जाना मांगता है, हमारे बीमार लोगों का वक्त आचुका॥ अब मेरे स्वामी ने डाक्टर साहब को पांच रुपये फ़ीस के दिये और डाक्टर साहब विदा हुवे । पांच रुपये की दवा आई, यहां तक कि कुछ दिन में सौ दो सौ रुपये के क़रज़दार हो गये । उन के पिता ने ख़र्च के लिये लिखा, यहां से जवाब साफ़ मिला । अन्त को मेरे सुसरे आये और उन्हों ने ख़र्च मांगा, पति ने कहा कि मैं तो बीमारी में ऋणी हो गया हूं । सुसरे ने कहा, अच्छा बहू को मेरे साथ करो, मैं घर पर इलाज करा लूंगा । स्वामी ने कहा ले जाइये, मैंने सुना तो बड़ी घबराई और झट पड़ौसन को बुला, कहा कि इस बला को टालो, नहीं तो सब बनी बनाई बात बिगड़ जायगी ॥

पड़ौसन—(अपने पति से) ऐ जी ! तुम ज़रा पड़ौस वाले मुन्शी जी को समझा दो कि चम्पा तो चारपाई से उठ भी नहीं सकती, जो रास्ते में कोई बात हो गई तो कैसे होगी ॥

पड़ौसी—(मेरे ससुर से) लाला जी ! बहू बहुत कमज़ोर है, यहां इलाज तो हो ही रहा है, थोड़े अर्से में आराम हो जावेगा, वह जाने के क़ाबिल नहीं है॥

ससुर—भाई ! क्या कहूं मुझे तो ख़बर भी नहीं दी, ख़ैर मजबूरी है, भाई ! मेरा तो बड़ा भारी हर्ज है इस लिये मैं अब जाता हूं, पर थोड़े दिन

में वहां भिजवा दो, मैं अच्छी तरह से इलाज मालजा करालूंगा। यह कह विदा हुए और घर से जा चिट्ठी भेजी, वहां से जवाब साफ़ मिला, अन्त को दूसरे ने लिख भेजा कि मुझ से तुम को कुछ सरोकार नहीं और तुम से मुझ को कुछ मतलब नहीं, तुम जानो और तुम्हारी जोरू जाने। भाई तुम कहना तो मानते ही नहीं॥

बस, बहन भैया का विवाह था, इस लिये आई हूं, मुझे तो बड़ा सोच है, कहीं मेरे पीछे बाप बेटे एक न होजावें॥

चावली—बहन और बात की तो की, पर यह तो बतलाओ कि अपने स्वामी को ऋणी क्यों कर दिया? परमेश्वर न करै जो नौकरी छूट जाय तो क्या होगा? । बाप से तो तुमने लड़वा ही दिया है, वह तो घर आने ही न देगा और यह ऋणी हैं, फिर तुम्हारे गहने पाते पर हाथ पड़ेगा, भला इस में क्या लाभ हुआ?॥

चम्पा—गहने को तो मैं कभी भी हाथ न लगाने दूंगी,गहना तो मैंने मरने जीने को रख छोड़ा है॥

चावली—भला बहन! फिर कैसे होगा,तुम को इस बात का पहिले से ही विचार करना था॥

चम्पा—बहन! किसी तरह से तो सास ससुर से पीछा छूटे॥

चावली—अच्छा पीछा छूटना भला समझो तो यह कौनसी अक़ल की बात की। (हरदेवी, जयदेवी, चन्द्रमुखी सब मिल) चम्पा ने किया तो बुरा बेटी चम्पा! यह तो बहुत बुरा किया॥

चम्पा—(सोच कर) हां, किया तो बुरा, पर हम तो सास से कुछ प्रयोजन नहीं रखते॥

चावली—सास से प्रयोजन क्यों नही रखती? अन्त को तो वह उस का बेटा ही है, कुछ ऊपरी तो नहीं॥

चन्द्रमुखी—प्रयोजन तो रखने से हम नाह नहीं करते, परन्तु अपना कमाया धन उन को क्यों दें॥

चावली—बीबी! धन कहीं सास छाती पर रख ले जावेगी? जब मरैगी, सब तुम्हीं को छोड़ जायगी।

चम्पा—अब तो ख़र्च करने को न मिलेगा, जब उस के पास जा रहा तो चाहें दे चाहें न दे और सास तो सदा बहुओं से लड़ा करतीं हैं॥

चावली—बहन ! सास नहीं लड़तीं, बहू लड़ती हैं ॥

चम्पा—बहू कैसे लड़ती हैं ? ॥

चावली—बहू जब कहतीं हैं कि मेरा पति है, सास का इस में कुछ दावा नहीं, बस इस पर लड़ाई होती है ॥

चम्पा—फिर इस में झूट ही क्या है ॥

चावली—अच्छा जब तुम्हारी बहू आवेगी और वह तुम्हारे बेटे से कहेगी कि अपनी मा के पास न जाओ और तुम्हारे पास न आने देगी और कहेगी कि सास होती कौन है,यह तो मेरा घर वाला है,उस समय यह बात तुम को बुरी लगेगी या भली ? ॥

चम्पा—बहू ऐसा कैसे कहेगी,मेरे बेटे को मेरे पास कैसे न आने देगी। मैं तो उस का मुंह कुचल दूंगी, अरी ! बेटा तो मेरा,मैंने पाला मैंने पनासा वह क्या बाप के से लाई थी ?

चावली—बस तो यही सोच लो,जब बहू कहती है कि पति मेरा,सास ससुर का इस से कुछ प्रयोजन नहीं,उस समयलड़ाई होती है। देखो सब जीव अपने बच्चों को बड़े प्यार से पालते हैं और सब तरह से सावधानी और चापलोसी करते हैं, उन का विवाह करते हैं, अनेक प्रकार की आशा रखते हैं और अपने बच्चों के आनन्द के लिये सौ तरह के फ़िक्र कर पूरा २ प्यार रखते हैं, जो प्रीति न हो तो उस का विवाह ही क्यों करें। जब तक बहू कुछ नहीं कहती,बहूसे भी अति प्रीति रखते हैं,बहू को सहस्रों रुपयेका गहना कपड़ा बनाते हैं,कुछ भी विवेक नहीं करते,जो बहू कहै वही करने को तैयार रहते हैं।पर जब बहूकहती है कि पति मेरा,माता पिताका कुछ नहीं,बस उन को रञ्ज होता है,और यह दावा समझते हैं, कि पाला पनासा बेटा हाथ से जाता है। बस लड़ाईको तयार होजाते हैं।देखो जब तुम्हारे बच्चा होगा तब जानोगी कि बच्चा कैसे दुःखों से पाला जाता है और तुम्हारी बात बड़ी करूं जब बहू तुम्हारे बेटे को तुम्हारे पास न आने देंगी,तुम लड़ोगी, इस में दोष किस का होगा ?

चम्पा—बहू का ॥

चावली—भला बहू को क्यों दोष होगा ॥

चम्पा—देखो,जो बहू मुझ से कहे कि तेरा बेटे में कुछ दावा नहीं, यह तो मेरा मालिक है, तो भला मैं कैसे क्रोध न करूं, चाहैं मुझ से सब घर

मांग ले, मैं दे दूं, बस इतना चाहिये कि मेरे बेटे को यह न सिखावे कि तू माता पिता के पास न जा। ऐ है,मेरे ऐसे भाग कहां जो बहू का मुंह देखूंगी। संसार कहता है कि बेटे बहू के लिये सब कुछ करते हैं, भला बेटा बहू से छिपाव ही क्या होता है॥

चावली--बस तो बहन! अब तुम राह पर आगईं। देखो जो तुम भी अपने पति के लिये ऐसा न कहतीं तो सास से और तुम से कभी वैर न होता। काम काज रुपये पैसे पर सास बहुओं में कभी लड़ाई नहीं होती, इसी बात पर होती है कि सास अपने बेटे को अपना प्राण जानती है,और बहू कहती है कि यह है कौन, यह तो मेरा पति है॥

चम्पा--बहन! समझो, जो हो,मेरी ही मूर्खता थी, ओहो मैंने नाहक़ पति को ऋणी बनाया, जो सास के पास रह, थोड़ी सी चापलोसी करती और उस से गहने कपड़े की फ़रमायश कर स्वामी की कमाई से अधिक का माल ले लेती तो भली की भली रहती और सास भी मुझ से कुछ न छिपा, अधिक प्रीति करती और सब दुनिया भी मुझ को भली मानस बतलाती॥

चावली--बस बहन बस, यही विचार करना चाहिये। अब समझी, अच्छा किसी ने कहा है "सुबह का भूला जो शाम घर आये,उस को भूला न जानिये" अब चम्पा! मैं तुम को एक बात और बतलाती हूं,परमेश्वर वह दिन लावे कि तुम्हारे बच्चा पैदा हो,उस समय जो सास तुम्हारी सेवा करेगी, दूसरी कोई नहीं करेगी। मैंने देखा है कि एक स्त्री जीभ की चटोरी थी,जब उस के बच्चा पैदा हुवा, उसने बहुत सी हाय हुल्ला की और सास को भला बुरा कहा परन्तु सास ने एक वस्तु हानिकारक उस को न खाने दी और अकेली ने सब तरह की टहल की। बहन! मैं भी जी में कहती थी कि वह उस को बुरी तरह से फटकारती है, बहन! उसने दो महीने तक उस की बुरी भली बातें सुनीं, पर हवा में भी न निकलने दिया। दश बारह दिन तक तो सिवाय गुड़ की पात के और कुछ खाने को भी न दिया और दो महीनेतक सिवाय पतली खिचड़ी व पञ्जीरीज़ीरे के दाल रोटी तक न खाने दी, परन्तु बच्चा और स्त्री दोनों प्रसन्न रहे, जब बच्चा दो महीने का हुवा उस समय कह दिया कि अब जो वस्तु तू कहे, खिला सकती हूं। और उस को दूसरी पड़ोसन का वृत्तान्त सुनाया कि जिस का चाल चलन बिल्कुल इसी तरह का था; और इस का उस का बहनाचारा भी था, और एक ही साथ बच्चा

पैदा हुवा था, परन्तु वह स्वतन्त्र थी, और उस के पति ने कई दासी रखदीं थीं, जो उस के आधीन थीं। जिस समय वह कोई वस्तु मांगती,वे तुरन्त दे देतीं,पति की टहलनियों को यह आज्ञा थी कि किसी प्रकार का दुःख न पावे, उन को भले बुरे से क्या प्रयोजन और क्या दर्द,जो आज्ञा दी,वही पूरी कर दी,दो एक उन में बड़ी बूढ़ी जानकार थीं,उन्हों ने समझाया भी पर उस ने उन को धमका दिया, वे ग़ैर, उन को क्या ग़रज़, चुप हो रहीं,और जो कहा काम कर दिया। फल यह हुवा कि बच्चा तो मर गया और स्त्री के पेट में दर्द जड़ पकड़ गया, पैर भी कुछ २ मारे गये, लुड़खुड़ाकर चलने लगी, जब सास ने अपनी बहू को उस का वृत्तान्त सुनाकर एक दिन दिखला भी दिया और समझा भी दिया कि मैंने जो कुछ तेरा कहना नहीं किया वह इस बच्चे के और तेरे लालच और सुख के लिये था। अब तुझ को पांच छः महीने तक और परहेज़ करना चाहिये, पर ऐसा नहीं कि कुछ खावे ही नहीं, हां जिस चीज़ को मन चाहे थोड़ा २ खालिया करो। बहू समझ गई और निश्चय कर ली की संसार में सास से अधिक प्यार करने वाली बहू को और कोई नहीं हो सकती,चाहे हज़ार स्त्रियां पास हों, परन्तु सास के तुल्य कोई भी नहीं हो सक्ती॥

ऐ चम्पा! सास, बहू के लिये वैद्य है, जो बीमारी के दूर करने के लिये कड़वी दवा देता है पर खाने को इच्छानुसार भोजन नहीं देता, अपनी इच्छा-पूर्वक खिलाता पिलाता है, क्या वह वैरी है? नहीं २ सच्चा हितैषी है। वह समझता है कि इस समय दो चार दिन के परहेज़ में यह आयु भर सुख पावैगा। जो वैद्य परहेज़ बिगाड़ दे तो उस का फल यही हो कि बीमार मर जावे, या क्षयी आदि रोगों में ग्रसित हो जन्म भर दुःख और कष्ट उठावे॥

चम्पा—बहन! अब मैं समझ गई। बस अब यहां से सीधी सास के घर जाऊंगी, पति के साथ न जाऊंगी और जिस में सास श्वसुर प्रसन्न रहैं, वही काम करूंगी, पर चावली! यह तो बतलाओ कि काम काज करने से तो मैं थक कर दुबली हो जाऊंगी॥

चावली—नहीं बहन नहीं। काम काज करने से कोई भी नहीं थकता परन्तु हां,जिस मनुष्य ने कभी काम न किया हो और वह एक साथ बहुतसा काम करना चाहे तो उस को कुछ दुःख जान पड़ेगा। हां, जो थोड़ा थोड़ा काम करते २ अभ्यास बढ़ावे तो बहुत कुछ कर सकता है, तुमने जाट गूजर और अहीर आदि की स्त्रियां नहीं देखीं। देखो वह प्रथम घर को झाड़ बुहार, लीप लहेस, अच्छा स्वच्छ रखतीं हैं और सब गोबर कूड़ा आप उठातीं,

गोबर आप पाथतीं, दूध आप बिलोतीं, पानी आप भर कर लातीं, रोटी आप बनातीं, पति के लिये रोटी लेकर आप जङ्गल में कोस २ भर तक जातीं, और वहीं से गाय भैंस बैलों को चारा आप लाती हैं। इस के सिवाय अपने बच्चों का पालन आप करतीं हैं, पति को आप न्हिलातीं और हुक्का पिलातीं, पांव दबातीं और कभी २ उस के साथ खेत भी नलवातीं, खेत में पानी भी दिलवातीं और खेत कटवातीं हैं। प्रयोजन यह है कि अपने पति और दो चार बच्चों और दो बैल और एक भैंस और एक दो गाय की पूरी २ टहल कर लेतीं हैं। कहारी उनके कोई नहीं होती, चमारी उन के कोई नहीं आती, यहां तक कि कोई टहलुवा उन को नहीं मिलता, आप ही सब काम काज करतीं हैं, जिस के लिये तुम्हारे कई २ टहलुवा नौकर हैं और मर्द केवल हल जुआ जोतता है, बाक़ी सब काम स्त्रियां ही करती हैं और रुपये पैसे का हिसाब किताब भी आप ही रखतीं हैं। बहुत से पुरुषों को तो यह भी नहीं ज्ञात होता कि हम को किसी से क्या लेना या किसी का क्या देना है और इतने काम पर भी कैसी मोटी ताज़ी और तैयार रहती हैं। कभी आज तक तुमने कोई उन में की दुबली पतली देखी न होगी॥

चम्पा--बहन! इस हिसाब से तो जो काम न करे वह दुबला पतला और बलहीन रहनी चाहियें॥

चावली--हां, बेशक ऐसा ही है। तुमने देखा होगा कि कोई २ साधु एक हाथ खड़ा रखते हैं, और उस हाथ से कुछ काम नहीं लेते, पर वह सूखकर निकम्मा होजाता है, यह बिलकुल काम न करने का फल है। जो कोई काम नहीं करता वह सदा रोगी बना रहता है। काम करने वाला सदैव भला और चङ्गा रहता और बहुत कम बीमार होता है॥

चम्पा--ओ हो! इस हिसाब से तो मेरी समझ में कोई बात पति की इच्छा के विरुद्ध न करनी चाहिये और घर से बाहर भी न जाना चाहिये॥

चावली--बेशक, शास्त्रों में लिखा है कि छः बात स्त्री को भूल कर भी न करनी चाहियें॥

१--नशा कभी न खाना चाहिये २--कुकर्मी पुरुष स्त्री के निकट न बैठना चाहिये ३--पति से न्यारी न बसना चाहिये ४--विना काम इधर उधर न फिरना चाहिये ५--बेसमय नहीं सोना चाहिये ६--पराये घर में कभी न सोना चाहिये॥

चम्पा--बहन! इस हिसाब से तो मैं समझ गई कि जो सास की टहल करूंगी तो वह अवश्य आधीन होजायगी॥

एक दिन मेरी मा कहती थी कि मेरी सास बड़ी होशियार है, वह रुपये पैसे भी अपने ही पास रक्खेगी। यह मेरी मा ने क्यों कहा था?

चावली--बहन! तुम्हारी मा की भूल है। यह बतलाओ जब तुम विवाही गईं थीं, तब तुम्हारी दादस थी?

चम्पा—हां थी और अब भी है॥

चावली—तो यह भी बतलाओ कि रुपया पैसा कौन रखती थी और अब कौन रखती है॥

चम्पा—मेरी सास रखती थी और अब भी मेरी सास ही रखती है॥

चावली—तुम्हारी दादस तुम्हारी सास से कभी लड़ती तो नहीं?

चम्पा—बहन सास बहुओं में बड़ा प्यार है॥

चावली—बस, समझ लो कि जब तुम्हारी सास ब्याहली आई होगी, उस समय तुम्हारी दादस रखती होगी। जब तुम्हारी सास ने भली भांति टहल की तब उस ने सब काम काज रुपया पैसा उसी को सौंप दिया जो तुम भी अपनी सास की सेवा करो तो तुम्हारी सास कोई काम तुम्हारे से पूछे न करे, इस के सिवाय यह भी समझ लो कि यह संसार है, यहां जैसा कोई करता है,वैसा ही भरता है।मुझे एक कहानी याद है,उसे तुम कान लगाकर सुनो॥

कहानी

एक स्त्री अपनी सास को ठीकरे में खाना खिलाया करती, उस के बेटे का विवाह हुआ और बहू आई॥

बहू--(ठीकरे में दादस को खाना खाते देख मन में) मेरी सास बड़ी कुटिल है।(और सास से)मा जी! अब दादी जी को रोटी मैं खिला दिया करूंगी॥

सास--अच्छा, बहू मैं नित्यप्रति ठीकरा ला दिया करूंगी। अब प्रतिदिन सास एक नया ठीकरा ला देती और बहू उस में दादस को रोटी खिला भीतर घर में रख देती, थोड़े दिनों में बहुत ठीकरे इकट्ठे होगये और एक दिन सास घर में घुसी, देखा कि घर ठीकरों से भरा पड़ा हैं॥

सास--(क्रोधित हो बहू से) यह इतने ठीकरे घर में क्यों भरे हैं?

बहू--मैं कहां से लाऊंगी॥

सास--तू ठीकरों को क्या करेगी?

बहू--मा जी ! जब तुम बूढ़ी होगी तो क्या मुझे ज़रूरत न पड़ेगी ॥

सास--तुझे क्यों ज़रूरत होगी ?

बहू--मा जी ! तुम्हारे खिलाने को ॥

सास--तो क्या तू मुझे ठीकरों में खाना खिलावेगी ?

बहू--बेशक, ठीकरों ही में खाना खिलाऊंगी ॥

सास--क्यों ?

बहू--तुम्हारे तो कुल की रीति है कि बूढ़ी सास को ठीकरे में भोजन दिये जावें, जैसा कि मैंने अब तक देखा है कि तुम दादी जी को ठीकरों में रोटी खिलाती हो, मुझे क्या प्रयोजन जो कुल रीति को छोड़ूं ॥

सास--(सोच कर) अच्छा जो मैं अपनी सास को अच्छे बर्त्तनों में भोजन दूं तो तू क्या करेगी ॥

बहू--मैं भी तुम को अच्छे बर्त्तनों में भोजन दूंगी । मा जी ! जैसे तुम दादी जी से बर्त्ताव करोगी मैं भी वैसा ही तुम से बर्त्ताव करूंगी ।

इस पर सास ने सब ठीकरे घर से बाहर फिकवा दिये और अपनी सास की बड़ी सेवा करने लगी ॥

वह यह दुनियां है । जो कहे तो मैं तुझे एक गांव का झगड़ा सुना दूं, तू तो क्या, उस पर सब हंसती २ लोट हो जावैंगी ॥

सब मिल, हां चावली ! वह ज़रूर सुना ॥

एक लड़ाका की कहानी

चावली--एक गांव में एक लड़ाका थी, वह सब गांव की स्त्रियों से लड़ती, उस से सब स्त्रियां महा दुःखी थीं, सब ने बहुत कुछ समझाया पर वह न मानी और कहने लगी कि मुझे तो बलड़े चैन ही नहीं पड़ता । मुझ को तो कोई लड़ने को चाहिये । लाचार सब ने सलाह कर यह राह निकाली, कि प्रतिदिन एक घर में लड़ आया करे और उस को सब घरों का हिसाब बतला दिया ॥

चम्पा--अच्छी लड़ाका थी और भली राह निकाली कि एक घर में प्रतिदिन लड़ाई रक्खे, यह क्यों किया ?

चावली--यह राह इस लिये निकाली कि एक दिन एक ही दुःखी रहे, बाक़ी गांव तो सुख से सोवे । कुछ दिनों तक यही नियम रहा पर एक दिन की बात सुनो कि उस गांव में एक ब्याहली बहू आई और प्रातःकाल

सास ने कहा कि बहू तू घर में जा बैठ ॥

बहू--सास ! मैं कानी नहीं, अन्धी नहीं, कुरूपा नहीं, मुझे क्यों घर में बिठलाती हो, क्या इस गांव में से कोई स्त्री तुम्हारे घर मुझे देखने न आवेगी (अचम्भे में हो) यह यहां अच्छी रीति है ।।

सास--बहू यह रीति नहीं है, आतीं तो आज ही पर तेरे देखने को कल सब गांव की लुगाई आवेंगीं ।।

बहू--यह क्यों ॥

सास--बहू ! हमारे गांव में एक लड़ाका लुगाई है, उस की प्रतिदिन लड़ाई की बारी एक घर में बन्ध रही है,सो आज हमारी और उस की लड़ाई का दिन है,वह लड़ने को आती होगी और सांझ तक लड़ाई रहेगी इस लिये मैं तुझ से कहती हूं कि तू घर में बैठ जा,मैं उस लड़ाका से दिनभर लड़ूंगी ॥

बहू--अब तो जी ! मैं तुम्हारी, टहलनी आगई,तुम्हारे सब कामकाज करूंगी और तुम को सुख दूंगी । तुमने बहुत घर का काम काज कर लिया, अब तुम पलङ्ग पर बैठी चैन करो ।लड़ाका से मैं लड़ूंगी,देखो तो कैसी सीधी करती हूं कि याद करे। किसी ने कहा है ॥ दृष्टान्त--

कबहुं न मिले सुभट रण गाढ़े । द्विज देवता घर हि के बाढ़े ॥१॥

सास--ना बहू ! तू अभी ब्याहली है, तुझे ऐसा न चाहिये ॥

बहू--ना जी ! न जानूं मेरे यहां रहने तक उस की बारी आवै या नहीं, तुम घर में बैठो, मैं उसे देख तो लूं । किसी ने कहा है कि "बेटा होंगे स्याने, दरिद्र जायेंगे बिराने" जो आज ही तुम को आराम न दिया तो मेरी मा ने क्या जन्म दिया, तुम ने नहीं सुना ?

दोहा

माता पुत्तर जन्मियो,के दाता के शूर।कूर औ कायर जन्म के,तू क्यों खोवै नूर ॥१॥

सास--अच्छा बहू ! जो तेरी इच्छा ॥

इतने में गालियों का शब्द सुनाई दिया ॥

सास-बहू ! लड़ाका आती है। देख,वह गालियों का शब्द सुनाई देता है॥

बहू--('अच्छा' कह, घूंघट खेंच, पीढ़ा डाल, चौक में बैठ गई) ॥

लड़ाका--(दरवाज़े में आते ही अनगिनत गाली सुनाईं) ॥

बहू--(चुप घूंघट खेंचे बैठी है और कुछ नहीं बोलती) ॥

लड़ाका--(थोड़ी देर में) आज तो इस घर में सब मर गये कोई बोलता ही नहीं, मैं अपने घर जाती हूं (और चलने का मनोरथ करती है) ॥

बहू--लड़ाका की ओर मुंह कर, अंगूठा नचा दिखाती है ॥

लड़ाका-(अब फिर गालियां देने लगी और बड़ी अन्धाधुन्ध सुनाईं) ॥

बहू--(चुप, घूंघट खेंचे सुन रही है) ॥

लड़ाका-(थोड़ी देर में थक) यह तो बोलती है न चालती और मुझे बकवाती चली जाती है। अब मैं जाती हूं (और मनोरथ करती है) ॥

बहू--(फिर खड़ी हो, अगूंठा नचा दिखाती है) ॥

लड़ाका फिर गालियां देने लगी। कई बार बहू ने ऐसा ही किया और लड़ाका ने बहुत ही गालियां दीं, परन्तु अन्त को दुखी होगई और बोली:-

लड़ाका--ऐ निगोड़ी ! तू तो बोलती है न चालती, अब मैं नहीं सुनती और जाती हूं, तू पड़ी अंगूठा दिखाया कर (और चलने का मनोरथ करती है)

बहू-(घूंघट खोल लड़ाका का पहुंचा पकड़) जाती कहां हो, आज ही तो जोड़ मिला है, क्यों जाती हो, अभी लड़ो तो सही ? देखें तो किस की जीत होती है और किस की हार ॥

लड़ाका-तू तो कुछ मुंह से कहती ही नहीं। ऐसे भी कहीं लड़ाई होती है, ऐ चल परे हो ॥

बहू--सुनो जी सुनो, लड़ाई हैं तीन, तुम कौनसी लड़ोगी ॥

लड़ाका--तीन कैसी ?

बहू-एक तो छः महीने की, दूसरी वर्ष दिन की, तीसरी उमर भर की। तुम कौनसी लड़ना चाहती हो। जौनसी मंज़ूर हो, मैं लड़ने को तैयार हूं। इतने में गांव की सब स्त्रियां इकट्ठी होगईं और तमाशा देखने लगीं ॥

लड़ाका—बहू ! यह छः महीने की कैसी और वर्ष दिन की कैसी और उमर भर की कैसी ?

बहू—सुनिये, छः महीने की लड़ाई यह कि हम तुम एक जगह पथनवारा बनालें और छः महीने तक मुझ में और तुम में अच्छी तरह गोबर उपले पर लड़ाई रहै, कहिये यह मंज़ूर है ? और वर्ष दिन की यह कि मेरे ख़सम के साझे अपने ख़सम को खेती करादो, बस वर्ष दिन तक मुझ में और आप में बाल भुटिया पर ख़ूब बजैगी, यह मंज़ूर है ? तीसरी सुनिये जो उमर भर की लड़ाई मंज़ूर है तो आप मेरे ख़सम को करलें, बस उमर भर मुझ में और आप में रात दिन लड़ाई बजैगी। बोलो जी बोलो, अब आप को कौनसी लड़ाई रुचती है ? बोलो कौनसी लड़ोगी ? अजी तनक मुंह से

तो बोलो ? सिर से तो खेलो? मैं सब तरह से तैयार हूं, जैसी आप की सलाह हो। परन्तु कुछ तो कहिये, ऐसी भी चुप क्या? आपने तो मौन ही साध लिया॥

लड़ाका–(घबड़ा अचेत हो, मन में, यह तो बड़ी टेढ़ी बात है और प्रकट में कांपती हुई) बहू ! तू मुझे छोड़, मैं आज से सौगन्ध खाती हूं, किसी से न लडूंगी, सब गांव की स्त्री मौजूद हैं, सब के सामने शपथ करती हूं कि आज से मुझे कोई हजार बात भी कहे, पर एक का भी उत्तर न दूंगी, जो उत्तर दूं तो मन में आवे सो करना॥

बहू––(हाथ जोड़, पांव पकड़) जो आप ने लड़ाई छोड़ी तो मैं भी आप की टहल को तैयार हूं। अब आप ठहरिये और पानी पीजिये, रोटी खाइये, यह घर तो आप का ही है और लड़ाका को पीढ़े पर बिठलाया। अब सब गांव की स्त्रियां बहू की चतुराई पर दङ्ग हो, शाबाश दे, कहने लगीं कि अच्छी बुद्धिमती बहू आई, सहज में हमारा पीछा छुड़ा दिया॥

चम्पा–(हंस कर) चावली! तैने यह दुनियां भर की बातें कहां से सीख लीं।

जयदेवी––(हंसती हुई) ऐहै, मेरे तो पेट में मारे हंसी के बल पड़ २ गये और यह कैसी चुप चाप कहे चली जाती थी, इस को हंसी ही नहीं आती थी, भला हाल सुना। ऐहै, चावली ! तैने यह बातें कहां से सीख लीं, हम तो तुझ को ऐसा नहीं जानते थे॥

जयदेवी––बीबी ! पहल २ तो चावली की बातें मुझे बड़ी बुरी लगीं, अब तो मेरा जी यही चाहता है कि इस को खूब प्यार करूं॥

चन्द्रमुखी––बीबी ! पढ़ने लिखने में तो यही लाभ है। अभी देखो तो श्रीमती सीता महाराणी का वृत्तान्त सुनोगी जब प्रसन्न होगी॥

चावली––चची ! मेरे ताऊ जी ने मेरे भाई को और मुझ को बहुत ही कहानियां सुनाई हैं, उन में से कुछ २ मुझे याद हैं, जो बड़ी अच्छी २ हैं, वे मैं तुम को सुनाऊंगी। अच्छा अब रेवती का वृत्तान्त और सुन लो, फिर जो समय रहा तो मैं भी तुम को अपना वृत्तान्त सुनाऊंगी, नहीं तो कल कहूंगी॥

रेवती का हाल

इन वृत्तान्तों को सुन, प्यारी चावली की तर्कना ने इस रेवती के दिल पर ऐसा असर किया कि यह रोने लगी। यह लड़की रेवती बड़ी चञ्चल और टर्री थी, बात २ में चपलता, बात बात में लड़ाई। और चपलता तो इस

की हड्डियों में कूट २ कर भरी थी, ब्रह्मा ने ऐसी चुलबुली शायद ही कोई बनाई हो, श्रोताओं को इस की प्रथम की वार्त्ता जिस का वर्णन हो चुका है, याद होगी। परन्तु विचार करने से यह बात जान पड़ती है कि ईश्वरीय नियम है कि जो बच्चे चञ्चल होते हैं। वे जिस ओर मन लगाते हैं उधर ही पूर्णता प्राप्त करते हैं, किसी २ फ़िलासफ़र की राय है कि जिस को अपना बच्चा बहुत ही अच्छा बनाना हो उस को चाहिये कि पहिले ही से बच्चे को ख़ूब चुलबुला बनावे, परन्तु (बेअदब) निर्लज्ज और कुचाल न होने देवे। किसी फ़ारसी वाले का वचन है"बेअदब बेनसीब,बाअदब बा नसीब"चञ्चल बच्चा अच्छी संगति में रह शीघ्र ही योग्य हो जाता है, परन्तु बुरी संगतमें रह कर शीघ्र ही बुरा भी बन जाता है। जब चुलबुले बच्चे को कोई सत्यगुरु मिल जाता है तो बहुत ही शीघ्र अच्छा हो जाता है,नहीं तो बुरी बातों में भी पूर्ण हो बढ़का लुच्चा हो जाता है। बहनो! रेवती का मन इन की बातों में अच्छा लगा था और अच्छी तरह मन लगाकर बातें सुन रही थी, ये बातें उस के हृदय में ऐसी बैठीं कि आगे को प्रण कर लिया कि अब सब से मिल कर रहूँगे और समझ लिया कि जन्म का आनन्द ही मेल में है और कहने लगी—

रेवती—बस अब तुम हाल चाल कुछ न पूंछो, अभी मैं बस एक बार सासरे गई हूं,मैंने तो कह दिया था कि मुझ से तो किसी ने कुछ भी नहीं कहा।

चावली—भला बहन!कुछ तो कहो,थोड़ा बहुत तो सुनाओ कि कैसे कैसे तुम सिखाई पढ़ाई गई थीं और उन सिखलाने पढ़ाने पर तुम ने क्या ध्यान दिया॥

रेवती—(लज्जित हो,आंसू भर) मुझे अब न छेड़ो नहीं तो मैं रोते २ बन्द न हूंगी।मेरा और चाची हरदेवी और फूफी जयदेवी और बहन चम्पा का अपराध ही क्या है, आज कल तो माता पिता ही ये बखेड़े सिखाते हैं। अब मैंने तो यह प्रतिज्ञा करली है कि चाहे कैसी ही विपत्ति पड़े,परन्तु सब से मिल कर रहूंगी, चाहे कोई मुझे बुरा भी कहे, पर मैं सुन कर चुप हो जाऊंगी और उत्तर न दूंगी॥

हरदेवी-जयदेवी—(आदि मिल कर) अच्छा बीबी चावली! रेवती से कुछ न कहो, यह इस समय बड़ी उदास है। और क्यों न हो, क्या हम नहीं सोचते कि क्या २ बुराई की बातें हमने की हैं। अब बहन चावली! अपना वृत्तान्त जैसा कुछ बीता हो, सुना दो॥

चावली--अब दिन भी बहुत थोड़ा है और मेरा वृत्तान्त भी बड़ा है, जो तुम को अच्छा लगे तो कल सुना दूंगी ॥

चन्द्रमुखी--हां, अब तो सांझ हो आई, कल ही कहना, परन्तु बहनो ! कल सब आना । (अब सभा उठ गई और सब अपने २ घर गईं । हरदेवी भी अपने घर पहुंची) ॥

हरदेवी का वृत्तान्त

हरदेवी--(सास के पास जा) मा जी पालागूं ॥

सास-जीती रहो बहू ! बूढ़ी सुहागन रहो, मेरी सात पोतों की मा हो,

हरदेवी-मा जी ! जो काम मेरे योग्य हो, मैं करने को तैयार हूं ॥

सास-(ज़ोर से सांस ले) बेटा ! मैं अपना धन्धा आप ही देख लेती हूं, यह तो अपने २ भाग्य की बात है । दुनियां की बहुवें सासों की सेवा करती हैं और मुझ को तेरी सूरत भी देखने को नहीं मिलती । आज तैने पालागन की, रूंग २ हरा भरा होगया । सारी दुनियां का धन मिलगया । बेटा ! हम तो बूढ़े हो गये, बोरिया बंधना बाँधे मरने को तैयार बैठे हैं । आज मरे कल दूसरा दिन । मुझे तो बड़ी आशा थी कि बेटा बहू का सुख देखूंगी । पर बेटा ! तेरी इच्छा, प्रसन्न रहो, हम इस में भी प्रसन्न हैं कि बेटा बहू सुख से तो रहते हैं ॥

हरदेवी-(आंसूभर) मा जी ! वह तो मेरी मूर्खता की बातें थीं, उन को क्षमा करिये । आज से रात दिन आधीन रहूंगी, कभी कुछ अपराध न करूंगी, अब मैं अपने किये पर आप पछताती हूं ॥

सास-बेटा ! क्षमा की कौन बात है, मेरे धन दौलत की तो तुम ही मालिक हो, चाहे जीते जी लो, चाहे मरे पर । कोई और तो तेरे होते ले ही नहीं सकता । क्या कहूं, दुनियां की बड़ी ममता होती है, जहां किसी ने कैड़ी बात कही और क्रोध आगया । बहू ! घर तेरा ही है, चाहे जहां रह, जो चाहे सो कर, तू तो मेरी आंखों का तारा है, कहीं तेरी ममता मुझ से जा सकती है ?

हरदेवी--(सास की ऐसी बातें सुन) बुहारी ले, सब घर साफ़ कर, चौका बरतन अपने हाथ से लगाने लगी ॥

सास-ना बहू ! रहने दे, चौका बरतन टहलनी कर देगी ॥

हरदेवी-ना मा जी ! मैं करूंगी, और चटपट तरकारी बना भोजन तैयार कर, एक कोने में हो बैठी ॥

ससुर-(हरदेवी की सास से) आज कैसे पलङ्ग पर बैठी हो, कुछ खाने पीने का भी फ़िक्र है? क्या किसी के आज नीता है? या समध्याने से कुछ आ गया है? आज तो बहुत प्रसन्न हो॥

सास-नीता तो आज किसी के नहीं और न कुछ समध्याने से आया, पर आज बहू हरदेवी ने आकर रसोई तैयार की है और वह चौके में बैठी है॥

ससुर--एं, हरदेवी २ क्या तुमने इस को बुलाया था?

सास-मैंने तो नहीं बुलाया, आज आप ही आई और मुझ को पालागन की, मैंने असीस दी, फिर कहने लगी कि मुझ से बड़ा अपराध हुआ जो न्यारी हो गई। अब मैं तुम्हारी टहल करूंगी। मैंने कह दिया कि बेटा! हमारे तो आगे पीछे तू ही है, जो चाहे सो कर। इस पर उसने सब घर झाड़ बुहार, अपने हाथ से चौका लगा, रसोई तैयार कर रक्खी है॥

ससुर-भौंदू की मा! हरदेवी वैसे तो बड़े घर की बेटी है, माता पिता उस के बड़े योग्य हैं। मेरी समझ में नहीं आता था कि क्या बात हुई, जिस से उस ने न्यारा साझा कर डाला। मेरी समझ में तो किसी स्त्री ने बहका दिया होगा। बचपन की अवस्था ऐसी ही होती है, अब समझ आगई होगी। अब अच्छा है, हम अपने को बड़ा भाग्यवान् समझेंगे। जो बहू बेटा आंखों के सामने रहें तो इस से अधिक और क्या सुख है। (हरदेवी से) बेटा हरदेवा! भोजन लाओ। हरदेवी ने शीघ्र ही आसन बिछा, हाथ पांव धुला, भोजन परस, आगे रख दिया। भोजन करते २ (उस की सास से) आज तो बहू ने बड़ा स्वादिष्ट व सुन्दर भोजन बनाया है। ऐसा तो आज तक हमने कभी खाया ही नहीं, मैं अपने भौंदू को बुलाता हूं और सवेरे ही सब असबाब इस का यहीं मंगालूंगा॥

सास-ऐ भौंदू के लाला! रात में ही मंगवालो, गांव की लुगाई दिन को देख, दांत मारेंगी और दांत पड़ा अच्छा नहीं होता॥

यह सुन भौंदू के बाप चले गये और सब असबाब दमभर में ढुलवा लाये॥

एक पड़ौसन-(ऐ जी पांव लगूं) आज हरदेवी की क्या बात हो रही हैं।

सास--आओ भुल्लू की मा! बूढ़ सुहागन हो, सतपूती हो (हरदेवी की ओर देख) अपनी चचिया सास के पांव लग (पड़ौसन से) आज हरदेवी यहां आगई है॥

हरदेवी-चाची जी! पांव लगूं॥

पड़ौसन—बहू ! बूढ़ सुहागन हो, सात बेटों की मा हो, तेरा राजपाट बना रहे। बहू ! यह बात है—अच्छे घर की बहू बेटी को ऐसा ही चाहिये ॥

सास—(पड़ौसन से) बीबी ! हरदेवी के माता पिता को तो परमेश्वर बनाये राखै, बड़े घर वाले हैं। पर मेरी हरदेवी को किसी ने बहका दिया होगा। जब से आई है, मैं तो फूली नहीं समाती, तुम जानो हो, बेटा बहू किस को प्यारे नहीं हैं, मेरी तो आंखों के तारे हैं, बहन ! घरबार सब इन का ही है, हम तो रोटी खाबा हैं, वर्ष दिन छः महीने के पाहुने हैं। आज मरे कल दूसरा दिन। बहन ! हमैं तो हरदेवी दो रोटी देदे और तो कुछ चाहिये ही नहीं है, सब घरबार इसी का है ॥

हरदेवी—(खिस्यानपन से कुछ बोल नहीं सकती) ॥

पड़ौसन—बीबी जी ! तुम को ज्ञात भी हुआ कि यह कैसे बहू हरदेवी का मन बदल गया और एक साथ ऐसी प्रीति होगई ॥

सास—नहीं, मुझ को कुछ ख़बर नहीं ॥

पड़ौसन—ऐ, यह लो, हां, पर जब से हरदेवी न्यारी रहती है, तुमने तो सब के पास बैठना ही छोड़ दिया, तुम से कौन कहता। मुझ से तो वह लड़की चम्पा कहती थी कि दादी ! आज हम और चाची हरदेवी और फूफी जयदेवी और बहन रेवती और चावली चची चन्द्रमुखी के घर गईं थीं, वहां बड़ी २ बातें हुईं। बहन चावली ने सब को अच्छी तरह समझाया और चची हरदेवी ने कह दिया कि मैं आज से ही अपने सास ससुर की भली भांति सेवा करूंगी और जयदेवी भी अपने सासरे जाने को तैयार है, मैंने तो उस की हंसी समझी थी, पर बीबी ! चावली बड़ी सुघड़ है। मैं तो उसे देख कर कहा करती थी कि यह बावली सी फिरा करती है, मुझे तो अब उस के गुण जान पड़े। आज बहू हरदेवी को देख मेरा तो मन अति प्रसन्न हुआ और यह ही जी चाहता है कि उसे बहुत ही प्यार करूं, परमेश्वर उसे प्रसन्न रक्खे, वह बड़ा नाम पैदा करेगी ॥

सास—बहन ! किसी ने कहा है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" मैंने चावली को भी देखा है, बड़ी होनहार है, कभी किसी चाची ताई के सामने नहीं बोलती। दो एक पोत (बार) मेरे घर आई, कभी कहती थी कि दादी ! जो काम तुम्हारा हो मैं करदूं, मैंने उस से खाने पीने को कहा तो उत्तर दिया कि मैं तो अपनी मा के बेपूछे न खाऊंगी, वैसे तुम्हारे काम

काज करने को तैयार हूं। और बीबी ! उसे लोभ तो बिलकुल नहीं परन्तु उस की मा से कह, यहां बुला, घी शक्कर से उस का मुंह भरूंगी ॥

पड़ौसन--हां हां बीबी ! अब बहू आगई, तुम्हें ठण्डक हुई, राम जी तुम्हारी आत्मा में सदैव ठण्डक रक्खे। अब मैं जाती हूं, मुन्नू के लाला दूकान से आये होंगे, अब फिर आऊंगी (और जाती है) ॥

यहां की बातें तो यहीं छोड़ीं, अब जयदेवी का वृत्तान्त सुनिये, जिस समय जयदेवी घर पहुंची तो पति से यों बात चीत करने लगीः-

जयदेवी का वृत्तान्त

जयदेवी--ऐ जी ! तुम अपनी मा के पास बहुत दिनों से नहीं गये, उन का जी बहुत फड़कता होगा, एक दिन मिल तो आओ ॥

जयसीराम--जी तो मेरा भी चाहता है, पर क्या करूं, तुम्हारे क्रोध होजाने का भय है, अब तुमने कहा तो मैं कल हो आऊंगा ॥

जयदेवी--नहीं जी, कल जरूर जाओ और मेरी भी पांवलागन कह देना और जो वे मेरे बुलाने को तुम से कहें तो हां कर लेना। अब बुलावेंगी मैं तुरन्त ही चली चलूंगी। अब मुझे पीहर का रहना अच्छा नहीं लगता ॥

जयसीराम--(मन में प्रसन्न हो) अच्छा जो तुम ने फिर यहां रहने के लिये कहा तो कैसे होगा ? अब हमने निर्लज्जता साध, तुम्हारे साथ रहना अङ्गीकार कर लिया। जो वहां गये और तुम ने यहां आने को कहा तो सब लोग हमारी हंसी उड़ावेंगे और जीना भी कठिन होजायगा ॥

जयदेवी--नहीं अब मैं अच्छी तरह समझ गई हूं, चाहे भूखी प्यासी नङ्गी ही क्यों न रहूं पर घर से बाहर निकलने का नाम न लूंगी और तुम्हारे माता पिता की ऐसी सेवा करूंगी कि याद करें, तुम बिलकुल निस्सन्देह रहो ॥

जयसीराम--कहीं हंसी तो नहीं करती? ऐसा न हो जो मुझे उल्लू बनाओ ॥

जयदेवी--(सौगन्ध खाकर) ले अपने भैयों की सौगन्ध, अब जरूर सासरे रहूंगी, यहां कैसा ही राज मिले पर कदापि पीहर न रहूंगी। तुम बड़े तड़के चले जाओ, पर ऐसे ढङ्ग से कहना कि मा जी अपने ही मुंह से बुलाने को कहें और तुम तुरन्त ही 'हां' कर लेना ॥

जयसीराम--(अपने बाप के घर जाता है और घर पहुंच पिता से) लाला जी ! राम २ (माता से) अम्मा ! राम २

बाप—आओ बेटा ! जीते रहो, आज किधर की हवा चली ? कैसे रास्ता भूल गये ?

मा—बेटा जयसी ! कह, (कौली में भर बहुत प्यार कर) बेटा ! अच्छी बहू मिली, मेरा बेटा ही मुझ से छुड़ा दिया, बेटा ! तेरा क्या दोष है, वह ऐसी ख़लक़ख़्वार आई कि मेरा सब कुटुम्ब बारह बाट कर दिया, पर बेटा ! तेरे देखने को बड़ा जी चाहता था, अब मेरी आत्मा में ठण्डक पड़ी ॥

जयसीराम—मा जी ! मन तो मेरा भी बहुत चाहता था, पर क्या करूं लाचार था परन्तु अब तो उस ने ही कहा है कि अपनी मा से तो मिल आओ॥

मा—तो बेटा ! उस को भावजों ने लताड़ा होगा, अब उस ख़लक़-ख़्वार को कुछ शरम आई होगी, बेटा ! जमाई की सुसराल में कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती, जो वह मान जाय तो यहीं ले आओ। बेटा ! इस में मुझे भी दुनियां चरचती है कि बहू को घर से निकाल दिया। अब बेटा ! उस के पास कौन जाय, पर बेटा ! उस का भी दोष नहीं है और मेरी आत्मा में तो यों भी ठण्डक है कि तुम प्रसन्न तो हो ॥

जयसीराम—माता ! मैं अब उन को यहीं ले आऊंगा, प्रथम तो वह प्रसन्नता से चली आवेगी, नहीं तो ज़बरदस्ती से ले आऊंगा ॥

अब जयदेवी और उस की मा की बात चीत सुनिये—सवेरा होते ही जब पति तो अपने बाप के चला गया और जयदेवी अवसर देख, समय अच्छा समझ, अपने माता पिता से मिलने को गई और आपस में यों बात चीत होने लगी:—

मा—बेटा जयदेवी ! आज तो तू कई दिन में आई। जो तू सासरे होती तो समझ लेती कि यहां नहीं है पर तुझ को इतने दिन बिना देखे मुझे कैसे चैन पड़े, अचरज की बात है॥

जयदेवी—भाभी के डर से नहीं आई थी, अब तो मेरे भी जी में आता है कि सासुरे चली जाऊं, यहां सब गांव की स्त्रियां ताने देती हैं ॥

मा-बेटी ! ठीक तो है, अब तुम को यही उचित है कि अपने घर चली जाओ, पर क्या करूं, मा की ममता नहीं मानती और पछताती भी हूं कि पहिले मैंने तुझे यहां क्यों रख लिया। एक दिन एक लड़के ने जयसीराम से कहा—

"दूर जमैया फूल बराबर, गांव जमाई आधो। घर जमाई गधा बराबर जब मन चाहे लादो" ॥ मुझे बहुत ही बुरा लगा, पर क्या करूं, दुनिया की जीभ नहीं रुकती, किसी ने कहा है—

"मारने वाले के हाथ रोके जाते हैं, पर कहने वाले की जीभ नहीं पकड़ी जाती" बेटी ! अब मेरे हाथ पांव क्या थक गये, बहू कहा करती हैं कि हमारी छाती पर धी बिठला दी है, दुनियां की बेटियां अपने २ घर रहती सहती हैं, यह निराली बेटी है। मैं सोचती हूं कि जयसीराम बराबर का तो कमाऊ है और यह तब भी ताने देती हैं। बेटी ! यह मेरी बुद्धि का टोटा है कि तुझ को यहां रखलिया, पर किसी ने कहा है–

"सहस्र टक्कर लगती हैं तब एक बुद्धि आती है" मैं तेरे बाप से भी पूछ लूंगी, बेटा ! अब कोई और तो यहां है ही नहीं, तुम्हारी प्रतिष्ठा जो अपने घर में है, वह बाप के घर नहीं हो सकती। पहिले मैं नहीं कह सकती थी और मन में सोचती हूं कि मेरे मरने पर ये बहू जयदेवी को बड़ा दुखी करेंगी, सो बेटा ! अब अपने घर रहो तो मेरी आत्मा में भी ठण्डक पड़े॥

हरदेवी का घर

हरदेवी की सास ने चन्द्रमुखी और चावली की मा को बुला कर कहा कि मैं तुम्हारा अहसान उमर भर न भूलूंगी, तुमने मेरी बहू को मुझ से मिला दिया॥

चम्पा––ऐ जी ! हरदेवी का कुछ दोष नहीं, इस को तो इस की मा बहन ने ऐसा ही सिखला दिया था कि सास से अलग रहना॥

भौंदू की मा–(चौंक कर) बहू ! वे क्या २ सिखलाया करती थीं॥

चम्पा––ऐ जी ! चावली बड़ी होशियार लड़की है, उस ने पुचकार २ इन से और हरदेवी और चम्पा से सब हाल पूछ लिया और सब से इक़रार करा लिया कि अब सास ससुर की अच्छी तरह टहल करेंगे। अभी तो चावली ने बहुत सी कहानियां कहने को कह लिया है और मैंने श्रीमती सीता महाराणी का वृत्तान्त सुनाने का इक़रार किया है। जब यह सुन लेंगी तो देखोगी कि कैसी तुम्हारी टहल करती हैं॥

भौंदू की मा––हरदेवी तो अब भी मेरी बड़ी टहल करती है, मैं इसी सोच में थी कि हरदेवी कहां तो मेरी परछाईं से दूर भागती थी और कहां मेरी ऐसी टहल करती है। अब एक काम करो कि तुम और चावली सब यहीं आजाया करो और कुछ और भी बगड़ पड़ौसन आजाया करेंगी और यहीं कहानी कहा करो, मैं तुम्हारे लिये अपना दालान खाली करे देती हूं और सब तरह का सुख रहेगा॥

चम्पा--अच्छा, कल से दुपहरी में यहीं कहानियां हुआ करेंगी। अब तो सब जाती हैं, रात्रि का समय है (और चली गईं)

फिर वही वृत्तान्त

दूसरे दिन सब पञ्चायत इकट्ठी हुई, बीस पच्चीस स्त्री थीं, वे सब सोच रही थीं कि क्या बातें होती हैं ॥

चम्पा--बेटा चावली ! अब तुम अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो ॥

चावली--चाची ! आज तो तुम कुछ सीता जी का वृत्तान्त सुना दो, कल से मैं अपना वृत्तान्त कहूंगी ॥

चम्पा--अच्छा भाई सब से पूंछ लो कि पहले तुम्हारी कहानी सुनेंगी या सीता जी का हाल, जैसी कुछ सलाह हो वैसा करें॥

सब स्त्रियां--हम तो पहिले श्री सीता महारानी का वृत्तान्त सुनेंगी ॥

चावली--चाची ! आज सीता जी की उत्पत्ति का वृत्तान्त तो सुना ही दो, कल से मैं अपना वृत्तान्त व्यौरेवार कहूंगी ॥

चम्पा-यह तो ठीक है, पर सीता जी का वृत्तान्त तो महीनों में पूरा होगा और मैं तेरा बाल्यावस्था का वृत्तान्त सुनाना बहुत जरूरी समझती हूं, क्योंकि ये स्त्रियां अपनी लड़कियों को तेरी सी परिपाटी सिखावें ॥

चावली--तो अच्छा, चाची ! आज तो सीता जी का वृत्तान्त सुना दो, कल पहिले अपना ही वृत्तान्त सुना दूंगी ॥

सब स्त्रियां-बीबी ! आज तो श्रीमती सीता महारानी के ही वृत्तान्त का आरम्भ करो। पहिले ऐसी ही महात्मा का वृत्तान्त होना चाहिये। कल से पहिले चावली का वृत्तान्त होगा। जब चावली का वृत्तान्त पूरा हो लेगा तब फिर सीता जी का वृत्तान्त सुनेंगे। अच्छा बीबी ! आरम्भ करो ॥

श्रीमती सीता महारानी का वृत्तान्त

चम्पा--सुनो बहनों ! सावधान हो जाओ, यह ऐसी महात्मा का वृत्तान्त मैं कहती हूं कि आज तक दुनियां में कोई ऐसी दूसरी रानी हुई ही नहीं। अगले समय में जब कि इस भारतवर्ष में आर्य राजा होते थे और सब दुनियां में इस आर्यावर्त्त की शूरता व वीरता व राज्य व वृद्धि व विद्या व न्याय के झंडे गड़े हुए थे और दुनियां भर में यही देश सिरमौर समझा जाता था और सब प्रजा सुख से रहती थी, सिंह बकरी एक घाट पानी पीते थे,

तब यह आर्यावर्त्त तीन बड़े भागों में बटा हुआ था। पहिला हिमालयपर्वत दूसरा हिमालय से विंध्याचल पर्वत तक, तीसरा दक्षिण। दूसरे हिस्से में सात भाग थे, पहिला पञ्जाब, दूसरा अन्तर्वेद तीसरा जो अब बुन्देलखण्ड कहलाता है, चौथा अवध पांचवां विहार, छटा बङ्गाला, सातवां व्रज॥

उस समय विहार देश के मिथिला अर्थात् तिरहुत में जनक वंश के राजा राज्य करते थे और जो गद्दी पर बैठता था, वह जनक कहलाता था। इस वंश का राजा निमि से आरम्भ माना गया, निमि से पीछे तिथि उस का पुत्र और तिथि का पुत्र जनक हुआ, तब से सब राजा जनक कहलाये। राजा निमि की बाईसवीं पीढ़ी में राजा ह्रस्वरोमा हुये, उन के दो पुत्र थे, एक सीरध्वज, दूसरा कुशध्वज, इन में से राजा सीरध्वज को गद्दी मिली और वह भी नियमानुसार जनक कहलाये, जिन को आज कल सब लोग जनक=जनकपुरी का राजा बतलाते हैं। पहिले राजधानियों के नाम बहुत कर राजाओं के नाम पर रक्खे जाते थे क्योंकि वंश विदेह से तिरहुत के राजा जनक कहलाते थे, इस लिये राजधानी भी जनकपुरी के नाम से विख्यात हुई॥

राजा जनक पण्डित और विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा करता था इस लिये उस के दर्बार में बड़े २ पण्डित इकट्ठे रहते थे। दैवयोग से एक बार तिरहुत देश में बड़ा भारी अकाल पड़ा और प्रजा लोग अत्यन्त दुःखी हुये, राजा ने बहुत से प्रबन्ध किये परन्तु अकाल न टला, लाचार हो राजा ने बड़ी भारी सभा कराई॥

राजा—(पण्डितों से) महाराज! मेरी प्रजा महा दुःखी है और अकाल ने उसे बहुत ही पीड़ित कर रक्खा है, मुझ को भी रात दिन नींद नहीं आती, भोजन बुरा लगता है, आप कृपा कर इस का प्रबन्ध कीजिये॥

पण्डित लोग--भला महाराज! आप को कैसे चैन पड़े, धर्मात्मा राजाओं का यही धर्म्म है कि प्रजा के सुख में सुख और दुःख में दुःख समझें। इसी लिये राजा प्रजा से छठा अंश लेता है, जो राजा छटा अंश ले प्रजा की रक्षा नहीं करता वह सीधा नरक पाता है। हम लोग भी बहुत विचार कर रहे हैं पर कोई बात समझ में नहीं आती॥

राजा--(पण्डितों से) महाराज! जब आप ही की समझ में नहीं आती तो फिर कौन इस का प्रबन्ध कर सकता है, कृपा कर इस अकाल को तो मेरे

राज्य से दूर ही कर दीजिये, नहीं तो मुझे आप की सेवा से क्या फल है। मैं जानता हूं कि जब मेरी प्रजा दुःखी रही तो मेरा सुख पाना मुझ को नरक ले जावेगा। अब या तो इस का कुछ यत्न कीजिये, नहीं तो मैं राज्य नहीं करूंगा, जिस को आप लोग चाहैं, राजा बना लें॥

पण्डित लोग—(आपस में सलाह कर) महाराज! हमने अपने बड़ों से सुना है कि राजा को कृषियज्ञ अवश्य करनी चाहिये, सो आप जब से गद्दी पर बैठे हैं आपने बहुत यज्ञ किये परन्तु कृषियज्ञ नहीं किया, हमारी समझ में तो इसी कारण यह अकाल पड़ा है। अब आप को उचित है कि आप यज्ञ के लिये हल लेकर कुछ पृथ्वी जोतैं और रानी आप के लिये किसानियों की भांति भोजन जङ्गल में ले जावैं। इस विधि से यज्ञ करने में अवश्य वर्षा होगी और अकाल दूर होजायगा॥

राजा—(मन्त्री से) तुरन्त ही यज्ञ व हल का प्रबन्ध करो, हम अवश्य हल जोत, कृषियज्ञ करैंगे, हम से यह प्रजा का दुःख नहीं देखा जाता॥

मन्त्री—(बहुत अच्छा, कह, विदा हुये और प्रबन्ध किया, चन्दन का हल सोने की फाली, अति सुन्दर बैल, जिन पर सुनहरी काम की झूल पड़ी हुई थीं। और सींग सोने से मढ़े हुये, खुर चांदी से बंधे थे, तैयार किया)॥

दूसरा दिन—राजा हल कन्धे पर रख, बैल आगे कर, उस पृथ्वी में जो जोतने के लिये नियत की गई थी, खड़े हुये और प्रजा भी सब इकट्ठी हो गई, रानी अकेली सिर पर राजा के लिये पानी और भोजन ले चलीं और प्रजा लोगों में यह बात चीत होने लगी:-

एक-भाई! हमारा सा राजा तो दुनियां में कोई न होगा। देखो राजा हल कन्धे पर रख, ले पहुंचे हैं, और रानी कैसे रोटी लिये अकेली किसानियों की तरह से चली जाती हैं॥

दूसरा-भाई! राजा ही तो प्रजा का पिता है, जो वह भी ऐसा न करे तो कौन करेगा॥

तीसरा-यह अकाल के पड़ने से राजा ने ऐसा किया, नहीं तो राजा क्यों हल जोतने लगे थे॥

चौथा-भाई मेह अवश्य बर्षेगा और आज ही देखो उत्तर दिशा से वह बादल चढा॥

बस बहनों! राजा ने यज्ञभूमि को हल से जोतना आरम्भ किया, पांच

चार ही फेरे लिये होंगे कि एक जगह हल रुका और राजा ने आगे को चलाना चाहा कि हल की अनी एक घड़े में लगी और घड़ा बाहर निकल आया, राजा ने हल रोक, देखा तो एक कन्या देवरूपिणी अतिसुन्दरी उस घड़े में दृष्टि पड़ी। उसे देख, राजा ने मन में बड़ा आश्चर्य किया कि कन्या यहां कहां से आई और रानी की ओर देख–

राजा–रानी ! देखो परमात्मा ने हम को एक कन्या देवरूपिणी दी, इस को लो और पालन करो, परन्तु यह समझ में नहीं आता कि यह पृथ्वी में कैसे बन्द थी। कदाचित् इसी के कारण से अकाल पड़ रहा था। मैं जानता हूं आज ही वर्षा होगी और अभी देखो वह उत्तर दिशा से बादल उठे॥

रानी–(प्रसन्न हो, कन्या को गोद में ले) महाराज ! यह कन्या तो देवरूपिणी है। महाराज ! यह हल जोतने से उत्पन्न हुई है, इस लिये मैं इस का नाम 'सीता' रक्खूंगी और यह मिथिला देश में पृथ्वी से निकली है इस लिये कभी २ इस को 'मैथिली' भी कहूंगी। महाराज ! बादल तो बहुत चढ़ आया, अब चलने का प्रबन्ध कीजिये, नहीं तो मैं और आप और यह कन्या तीनों भीग जावेंगे॥

राजा—मैं अभी मन्त्री को बुलाता हूं, वह तुरन्त इस कन्या का प्रबन्ध करेगा और मैं और तुम तो जब तक अच्छी तरह से वर्षा न हो लेवे, यहां से हिल नहीं सकते, तुम क्या नहीं जानतीं कि आज हम और तुम किसानों का वेष बनाये हुये हैं (और मन्त्री को बुलाते हैं) और मन्त्री और २ भी पण्डित पुरोहित इकट्ठे होजाते हैं (राजा मन्त्री से) मन्त्री जी ! यह कन्या देवरूप साक्षात् देवी मेरे हल जोतने में इस घड़े से उत्पन्न हुई है, इस के लिये दाई का प्रबन्ध करो, देखो बादल बहुत चढ आया, अब वर्षा हुआ ही चाहती है, कहीं ऐसा न हो कि यह कन्या भीग जावे और रानी और हम तो उस समय तक न जांयगे जब तक कि अच्छी तरह से वर्षा न होले, पर यह कन्या मेह में न भीगने पावे, इस का प्रबन्ध बहुत ही शीघ्र होना चाहिये (और आप हल जोतने लगें)॥

मन्त्री–(जो आज्ञा) यहां पर सब पुरवासी स्त्री पुरुष खड़े हैं (अभी २ प्रबन्ध करता हूं) यह कह, जहां सब प्रजा इकट्ठी थी, चले गये और एक दाई ढूंढ़ कर कन्या सौंप दी और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि जो मेह भी वर्षे तो कन्या न भीगने पावे॥

प्रजालोग—भाई ! कैसा श्याम बादल उठा है, अब शीघ्र ही वर्षा हुआ चाहती है॥

पण्डित लोग—भाई ! अवश्य वर्षा होगी । कहीं ब्राह्मणों के वाक्य भी झूठे होते हैं ? और उच्चस्वर से मङ्गलाचरण गाने और स्वस्तिवाचन पढ़ने लगे । कहीं २ वेदमन्त्र बहुत ही उच्चस्वर से पढ़े जा रहे थे । उस समय उन मङ्गलाचरण और वेदमन्त्रों की ध्वनि ऐसी प्रिय जान पड़ती थी, कि राजा और प्रजा सब मोहित हो रहे थे, जैसे कि नाग बीन का शब्द सुन, मोहित होजाता है और मृग मोहिनी राग सुन, अपनी सुध नहीं रखता, कैसा अच्छा समय था ॥

काली २ घटा चारों ओर से उठ रही थी, मोर और कोयल अपनी२ बोली बोलरहे थे, ठंडी २ पवन मन को लुभा रही थी, सब मनुष्य विस्मित हो कह रहे थे कि हे परमात्मा ! यह क्या था और क्या होगया, सूखा जङ्गल जिस की ओर देखा भी नहीं जाता था, आज बड़ा रमणीक जान पड़ता है, मोर नाच रहे हैं, पण्डुक कू कू कर रही हैं, कोयल कूक लगा रही हैं, पक्षी वृक्षों पर बैठे चहचहा रहे हैं, कैड़ी धूप के बदले काली घटा आनन्द देरही है। यह सोचते ही थे कि वर्षा होने लगी। प्रथम तो नन्ही २ बूंदें पड़ीं, जिन के पड़ते ही सब नगर की स्त्रियां गीत गाने लगीं, उनकी मनोहर वाणी का शब्द सुन एक ही का नहीं, सब का मन लुभा गया और बहुत से मनुष्य यह चाहने लगे कि यहां से भाग उन गाने वाली स्त्रियों के पास चलैं, परन्तु राजा और रानी को दृढ़ता से भीगते और हल जोतते देख, कोई भी न हिल सका, सब के सब भीगते ही रहे, तिस पश्चात् बड़े वेग से मेह वर्षा, बस एक मूहूर्त्त में चारों ओर पानी ही पानी दीखने लगा, और ऐसी वर्षा हुई कि बैल भी न चल सके, और राजा और रानी भी खड़े हो प्रसन्नतापूर्वक भीगते रहे ॥

राजा—(हंसते हुये) रानी ! आज हमारा जीवन सुफल हुवा, अब हमारी प्रजा इस दुष्ट काल से बचैगी । और हम भी पेट भर भोजन कर, आनन्द से सोवैंगे ॥

(पण्डितों की ओर) महाराज ! यह सब आप की कृपा से हुआ । अब मेरी प्रजा इस दुष्ट काल से छुटैगी, अब मैं भी कृतार्थ हुआ, आज ही से अच्छी तरह यज्ञ कराइये और ब्राह्मणों को मुंह मांगा दान दीजिये ॥

रानी—महाराज! मुझे बड़ा सोच था कि जो वर्षा न हुई, तो प्रजा मुझे दोष लगावेगी, पर सत्य की सदा जय होती है। मेरा भी मन इस समय अतिप्रसन्न है, प्रथम तो देवरूपी कन्या मिल गई, दूसरे अच्छी वर्षा होजाने से हमारे देश का अकाल भी जाता रहा ॥

अब थोड़ी देर में वर्षा रुकी, राजा रानी मन्त्री पण्डित और प्रजालोग सब भीगे भिगाये ठण्डी पवन से हिलते कांपते राजा के पीछे २ नगर में आये और यज्ञ का आरम्भ हुआ। राजा सहस्रों गौ व वस्त्राभूषण और रुपया ब्राह्मणों को दान देने लगे और सीता जी का पालना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही दिन में सीता जी स्यानी हुई, तो राजा ने एक पाठिका पढ़ाने को नियत कर दी, अब वह विद्या पढ़ाया करती, राजा और रानी सीता जी को धर्म समझाया करते॥

एक दिन

रानी—बेटी सीता! तुम अच्छे प्रकार विद्या पढ़ो, कन्या का धर्म यही है कि ब्रह्मचर्य धारण कर, विद्या पढ़, युवति होने पर समान वर को प्राप्त हो। पुत्री! देखो स्त्री कभी स्वतन्त्र नहीं होती, बाल्यावस्था में माता पिता के आधीन, युवावस्था में पति के आधीन, वृद्धावस्था में पुत्र के आधीन रहनी है। स्त्री का पति ही देवता है और पति ही गुरु, स्त्री को सिवाय अपने पति की सेवा के और किसी की सेवा उचित नहीं। स्त्री पति ही की सेवा से स्वर्गलोक पाती है। स्त्री को सदैव अपने पति का ध्यान रखना चाहिये। सास ससुर को माता पिता के समान समझै, जेठ को भी पिता मानै, देवरों को छोटे भ्राता या पुत्र के समान जानै। ऐसा ही जब अवसर मिलता, समझाया करतीं और पण्डिता भी बहुत अच्छे प्रकार विद्या पढ़ातीं। एक दिन राजा रानी विवाह के अर्थ सलाह करने लगे॥

राजा—हमारी सीता बड़ी शीलस्वभाव है और विद्या भी अच्छी पढ़ी है इस के लिये कोई अति उत्तम राजकुंवर हम ढूंढैंगे॥

रानी—हां महाराज! ऐसा ही चाहिये। परन्तु राजकुंवर की परीक्षा अवश्य होनी चाहिये, बिना परीक्षा के गुण अवगुण नहीं जान पड़ते, मेरी समझ में तो स्वयंवर रच, कोई प्रतिज्ञा करदीजिये जो पूरी करै वही सीता से विवाह रचे, क्योंकि स्वयंवर में सब राजा और राजकुंवर आवेंगे और आप उन को देख भी लेंगे और भले प्रकार बल पौरुष भी ज्ञात होजायगा, उस समय आप सीता का विवाह करदें॥

राजा—रानी! एक बात और विचार में आती है कि वह जो हमारी पूजा में शिव जी का धनुष धरा है, उस का प्रण कर दें, जो राजा तोड़े, वह सीता से विवाह करै, क्योंकि वह धनुष हमारे तो युद्ध के काम का ही नहीं

और इस के अनन्तर वह बड़ा दृढ़ है, बड़े भारी शूर वीर का काम है जो तोड़े॥

रानी–हां महाराज ! आप का विचार तो उत्तम है ॥

राजा–(मन्त्री से) मन्त्री जी ! सब देश देशान्तरों में पत्र भेज दो कि श्री सीता जी जनककुमारी का स्वयंवर है, सब कुंवर और राजा महाराजा कृपा करैं। जो राजा शिव जी का धनुष तोड़ेगा वही सीता जी से विवाह रचैगा और उन की सेवा का भी प्रबन्ध कीजिये कि किसी को कुछ क्लेश न हो ॥

मन्त्री–(जो आज्ञा, कह, विदा होता है) प्रबन्धकर, अब यह बात ठहरी कि जो राजा या राजकुंवर आवें उन को शिवधनुष दिखलाया जावे और कहा जावे कि जो चाहे उस की जांच करे, जो भूप धनुष तोड़ैगा वही सीता जी से विवाह करैगा ॥

अब सुनिये कि थोड़े समय तक तो एक २ दो दो राजा या राजकुंवर आते रहे, धनुष का तोड़ना तो क्या, उठाना भी कठिन होगया। पर थोड़े दिन पीछे पांच २ चार २ मिल मिल कर बल करने लगे, परन्तु सब हार २ कर बैठ रहे। उस समय संसार में कोई राजा या राजकुंवर ऐसा न था, जो धनुष पर बल करने न आया हो। अन्त में यह फल निकला कि स्वयंवर के दिन राजा इकट्ठे न हुये और स्वयंवर न हो सका, परन्तु सब संसार में इस प्रण की चर्चा फैल गई, कोई मनुष्य ऐसा न था, जो धनुष तोड़ने की चर्चा न करता हो। थोड़े दिन पीछे राजा को सोच हुआ कि प्रण तो हमने कठिन कर दिया जिसका निर्वाह होना कठिन है, अब संभव है कि सीताजी कुआरी रह जायं॥

चावली––चची ! अच्छा उत्तम वृत्तान्त सुनाया, लो अब दिन तो थोड़ा रह गया है, अब कल पर रक्खो ॥

एक स्त्री–बहन ! यहां से तो उठने को मन नहीं चाहता, पर घर का धन्धा भी देखना है, चलो बस कल ही कहना, इस समय बन्द करो ॥

चम्पा–अच्छा पर इतना और भी कहती हूं कि कल से चावली की कहानियां होंगी, जब वह पूरी हो जायंगी तब आगे का वृत्तान्त कहूंगी। तुम यह न समझो कि चावली की कहानी अच्छी न होंगी, नहीं २ उन में भी तुम्हारा मन अच्छा लगैगा, कल सब अवश्य आवैं और अपनी पड़ोसनों को भी साथ लेती आवें कि वे भी सब सुन लें। यह कह सभा उठ गई और सब अपने २ घर चली गईं ॥

दूसरा दिन

सब स्त्रियां भोजन कर काम काज से निवृत्त हो हरदेवी के घर पहुंचीं

और चन्द्रमुखी ने चावली से कहा कि अपना वृत्तान्त सुनाओ, क्योंकि वह पूरा हो जावे तो मैं श्रीमती सीता महारानी का वृत्तान्त वर्णन करूं। चावली ने बीच में बैठकर यों कहने का आरम्भ किया॥

चावली का वृत्तान्त

चावली—माता व बहनो! जितनी तुम यहां इस समय बैठी हो,मुझ से सब बड़ी हो, चाहे कोई छोटी हो, सुनो मेरा वृत्तान्त तो ऐसा नहीं कि जो सब को अच्छा लगे पर आप को ध्यान लगाकर सुनने से बहुत लाभ होंगे। इस समय, मैं इतना और भी कहूंगी कि हमारे इस आर्यावर्त्त में स्त्रियों को पढ़ाया नहीं जाता, जिस के कारण वह कुछ धर्माऽधर्म नहीं जानतीं कि पुरुषों की कैसी प्रतिष्ठा करनी चाहिये और छोटों से कैसा बर्त्ताव रखना चाहिये और बड़ों से कैसा। ना समझ स्त्रियां भला बुरा न जान स्वार्थ के वश हो अपनी बेटियों को बुरी बातें सिखलाती हैं। मुझे भी ऐसा ही पढ़ाया जैसा कि आज कल पढ़ा रहे हैं। पर मेरे ताऊ जी ने मुझे बहुत कुछ सिखाया है, वह सब आज मैं आप से कहूंगी। और आशा रखती हूं कि तुम सब को लाभकारक होगा॥

अब सुनो जो कुछ मैंने अपनी दादी या मा से सुना है, पहिले उस को कहती हूं—मेरे दादा चार भाई थे, बड़े के दो बेटे थे, एक का नाम धर्मसिंह दूसरे केवलराम, दूसरे के अकेले मदनमोहन, तीसरे के केवल दो लड़कियां, चौथे के चार बेटे, एक रामचन्द्र दूसरे मोहनलाल तीसरे सेवकराम चौथे मदन लाल। मेरे तीसरे दादा सरकारी नौकरी करते थे। और दादी भी उन के साथ रहती थीं इस लिये वह न्यारे समझे जाते थे, वे न्यारे अपनी खुशी से तो नहीं हुये थे पर सब अवस्था नौकरी में ही व्यतीत की। इस कारण अलग ही माने जाते थे। दूसरे दादा थोड़े ही दिनों में अपने भ्राताओं से न्यारे होगये। अब मेरे सब से छोटे दादा साझे रहे। अचानक ईश्वर की करनी से दोनों भ्राता निर्धन हो गये और विचार करने लगे कि भाई बाल बच्चों का घर है और पूरा गृहस्थ है, कुछ फ़िक्र करना चाहिये॥

छोटे दादा—भाई साहब! आप घर रहें, मैं तीन चार लड़कों को परदेश में लिये जाता हूं। किसी ने कहा है कि ढूंढने से परमेश्वर भी मिलता है, अवश्य कुछ कमा कर लावेंगे॥

बड़े दादा—अच्छा भाई ! अख़्त्यार है, जाओ ॥

छोटे दादा—एक तो मेरे बड़े दादा के बड़े बेटे और तीन अपने बड़े २ बेटों को लेकर परदेश को सिधारे, थोड़े दिनों में भगवत् की कृपा से बहुतसा धन कमाकर ले आये और आनन्द से दिन कटने लगे। कई बेटों को न्यारी २ दुकानें खुलवादीं और आप व्यापार आदि करने लगे। परन्तु समय के फेर से मेरे बड़े दादा का परलोक होगया और उन से थोड़े ही दिन पीछे चचा केवलराम का भी देवलोक होगया। अब उन की राड़ें रह गईं, एक दिन का वृत्तान्त सुनो॥

धर्मसिंह—(अपनी चची से) चची ! हम को कुछ रुपये की आवश्यकता है और माल जिन्स तो हमारे पास बहुत है, परन्तु अब उस के बेचने में सिवाय हानि के लाभ कुछ नहीं जान पड़ता, जो आप हम को कुछ गहना देदें तो हम गिरवी रख अपना काम निकाललें, थोड़े दिन में छुड़ाकर ला देंगे॥

छोटी दादी—बेटा ! मेरे पास क्या है, जो तुमने बनवाया हो वह लेलो।

धर्मसिंह—(चुप) और कहा कि चची ! बस अब हम को न्यारा कर दो अब हम जब बनावेंगे, तब ही कुछ मानेंगे ॥

छोटी दादी—बेटा ! मैंने तुझ से न्यारे साझे को तो नहीं कहा, भला न्यारे रहने की कौन बात है ? बेटा ! मिलजुल कर रहना चाहिये ॥

धर्मसिंह—चची ! तुम जानती हो कि मैं बड़ा हठीला हूं, अब साझे न रहूंगा। इतने ही में दादा आगये, इन को धर्मसिंह से अतिप्रीति थी और अपने बेटों से अधिक प्यार रखते थे, यहां तक कि मेरी दादी को धर्मसिंह की चाची कहा करते थे ॥

दादा—धर्मसिंह की चाची ! आज चाची भतीजों में क्या बात चीत हो रही है॥

दादी—धर्मसिंह कहता है कि मैं न्यारा रहूंगा, साझे नहीं रहूंगा ॥

दादा—क्यों बेटा धर्मसिंह ! क्या बात है ? बेटा ! किस से न्यारे रहोगे ? मैं तो बूढ़ा हूं, अब मुझ से वृद्धावस्था में न्यारे होगे ? और भाई ! तुम से छोटे हैं, भला किस से न्यारे होगे ?

धर्मसिंह—चचा जी ! बात तो कुछ नहीं, मेरी इच्छा, अब मैं साझे नहीं रहता। (और कुछ आंसू भर लाये)

दादा—नहीं, बेटा, नहीं, मन मैला मत करो, जो कोई तुम्हारी ओर देखे तो आंखें निकालने को तैयार हूं, क्या तुम्हारी चाची ने कुछ कह दिया है ॥

धर्मसिंह—नहीं चची ने तो कुछ नहीं कहा, अजी चचा जी ! मैं आप के सन्मुख कभी बोला तक नहीं पर अब मुझ से ज़ियादा न कहिये, न्यारा ही कर दीजिये, मैं साझे नहीं रहूंगा और चुप होगये । दादा ने बहुत ही समझाया, परन्तु उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया ॥

दादा—भाई ! यह बुराई तो मैं अपने सिर न लूंगा कि भतीजे को न्यारा कर दिया इस लिये रामचन्द्र और मोहन सब को बुला लो, उन की बहू भी सदा झगड़ा रखतीं हैं, सब न्यारे हो जावें तो दुनियां यही कहेगी कि भाई २ न्यारे होगये, मुझे तो कोई बुराई न देगा (और आंसू भरकर) भाई धर्मसिंह ! मान जा, देख मेरी ओर देख, देख मेरे बुढ़ापे की ओर देख॥

धर्मसिंह—चचा जी ! मैं तो कह चुका, जब तक जीऊंगा सेवा करूंगा, पर यह मेरा कहना मान लीजिये कि मुझे न्यारा ही कर दीजिये,अब साझे रहने में कुछ सुख नहीं है ॥

बहनो ! मेरे ताऊ धर्मसिंह की दृढ़ता को तो देखो कि न्यारे होने की तो हठ की और दादा से मेरी दादी के कहे वचनों की नाम भी न लिया, यह बड़े दृढ़ और गम्भीर पुरुष का काम है कि जो बात मुंह से कही पत्थर की लकीर हो गई, चाहे इधर की दुनियां उधर हो जाय,परन्तु बात न टले उन के मन में यह थी कि सब घर बार चची व चची के बेटों को छोड़ूं और फिर बहुत से रुपये कमाकर चची को गहना बनवाऊं,जिस में मुझे चची होनहार समझे । आज के समय के आदमियों का सा बुरा प्रण उन का नहीं था । अब तुम आगे इन के वृत्तान्तों से जान लोगी । उन का वचन यह था कि आदमी कभी हिम्मत न हारे, हिम्मत से काम ले, काम के बिगड़ने से न घबरावे, काम का बिगड़ना काम के पूरा होने का मार्ग है । जो घबरावेगा नहीं, वह सब में अच्छा रहेगा ॥

दादा—(चुप बैठे हैं) अरे मदन ! जा अपने बड़े भाई को बुला ला ॥

रामचन्द्र और मोहनलाल

लाला जी ! आपने क्यों याद किया है ॥

दादा—बेटा ! तुम्हारे बड़े भाई धर्मसिंह न्यारे होते हैं इस लिये बेटा तुम को भी बुलाया है कि अब तुम सब न्यारे हो जाओ । रामचन्द्र ! तेरी बहू तो कई महीने से न्यारी रहती ही है और मदन की घर वाली सदा से न्यारी रहना चाहती है ॥

मदनलाल—(धर्मसिंह से प्रकट में) भाई साहब ! क्यों न्यारे होते हो और (बाप से) लाला जी ! भाई साहब तो उत्तर नहीं देते, अच्छा अब आप जैसी आज्ञा दें हम करने को तैयार हैं ॥

दादा—पांच तो तुम भाई हो और छठी केवल की बहू है । भैया छः बांट बराबर के करलो, मुझे तो सब एकसे हो ॥

धर्मसिंह—नहीं चाचा जी ! रामजी जो मुझे रोटी कपड़ा देगा तो केवल की बहू को भी देगा। वह तो मेरे साझे रहैगी, उस बिचारी का क्या न्यारा साझा है, अकेली का न्यारा साझा ही क्या ॥

दादा—अच्छा भाई धर्मसिंह ! तो तू दो बांट ले ले ॥

धर्मसिंह—चचा जी मुझे हिस्से बांट की कुछ आवश्यकता नहीं और मैं यह तो कदाचित् न कहलवाऊंगा कि बुढ़ापे में चचा से बन्ट बांटा। मुझे तो आप पांच वर्त्तन दे दें और एक छोटा सा झोंपड़ा बतला दें। एक रुपया रोक मेरे पास है ही, यह खाने कमाने को बहुत है ॥

दादा—(ताऊ के मुंह की ओर देख) अरे भाई ! तू कहता क्या है । क्या मुझे संसार में मुंह दिखाने के योग्य रहने देगा या नहीं ? और मुझे जीता छोड़ेगा या नहीं ॥

धर्मसिंह—चचा जी ! चाहे जो हो, इस से अधिक तो मैं न लूंगा। आप की वैसे ही कृपा चाहिये । सब कुछ हो रहैगा। क्या मैं बंट बांट कर न्यारा हूंगा, कदाचित् नहीं ॥

हमारी दादी—ताऊ धर्मसिंह जी की माता बड़ी भोली और सुशीला थीं, उन को इन बातों की कुछ खबर ही नहीं और न इन से कुछ प्रयोजन है, अपने घर के धन्धे में लग रही हैं, किसी से पूंछतीं भी नहीं कि यह कर क्या रहे हैं। वह जानती हैं कि कुछ घर के काम काज में सलाह कर रहे हैं॥

दादा—भाई धर्मसिंह ! ऐसा न चाहिये। तू तो आधे का शरीक है? मैंने पहिले ही भाई बंट कर दिया था। क्योंकि जानता था कि तू आधा न लेगा अब तू बिलकुल भरा भराया घर छोड़ता है, भाई सोच, मेरे बुढ़ापे की ओर तो देख॥

धर्मसिंह—चचा जी ! कुछ भी हो, यह तो न मानूंगा ॥

दादा—(बहुत सोच समझ) अच्छा भाई दस पांच मन नाज तो लेले यह तो कहा मानजा, देख बड़ों का कहना नहीं टाला करते ॥

अब पन्द्रह मन अन्न, दश बर्त्तन कांसी पीतल आदि के देकर दादा ने मेरे ताऊ को न्यारा कर दिया और अपने बेटों की ओर मुंह कर बोले ॥

दादा--भाई तुम भी जो चाहो सो लेलो, मैं अब तुम से कुछ न कहूंगा धर्मसिंह ने अब मेरा मुंह कहने के योग्य नहीं रक्खा, मैं तो सेवग में रहूंगा उस की बहू (विद्यावती) मेरी बड़ी सेवा करती है ॥

दादी--(चचाओं से) हां बेटा! मैं तो अपने सेवग में रहूंगी, बड़ी बहू तो कई महीने से न्यारी रहती ही है, छोटी लाड़ो न्यारी रहने को रात दिन कहती ही रहती है, मोहन की बहू सेवती तो सरस्वती की सेवा में प्रसन्न रहती है, मुझ से तो कुछ कहती ही नहीं, वह अवश्य धर्मसिंह में रहैगी, इस लिये जो २ वस्तु तुम को अच्छी लगै ले लो, बोल मोहन! पहिले तू बोल ॥

मोहनलाल--माता! मैं क्या बोलूं, मैं तो छः रुपये का नौकर हूं मुझे मेरी नौकरी बहुत है, रोज़ कुवां खोदना रोज़ पानी पीना, मुझे तो यह न्यारा साझा अच्छा नहीं लगता, जो तुम्हारी और लाला जी की सलाह है तो मेरे कपड़े मुझे दीजिये और न्यारा ही समझो ॥

दादा--अरे! मोहन तू तो धर्मसिंह न बन, अच्छा भाई जो इच्छा, अब हम तुम से क्या कहैं, भाई अब तुम ज्वान होगये, जो मन में आवे सो करो, बोलो भाई रामचन्द्र! क्या कहते हो ॥

रामचन्द्र--लाला जी! मैं क्या कहूं मेरी दूकान मुझे देदीजिये और मैं क्या कहूं॥

दादा--अच्छा भाई तुम अपनी दूकान ले लो ॥

मदनलाल--लाला जी! तो मेरी दूकान मुझे भी दे दीजिये ॥

दादा--मदन! सोचो तो धर्मसिंह ने कुछ नहीं लिया और न मोहन ने। रामचन्द्र की दूकान तो बहुत हलकी है, भाई जो कुछ मालटाल है वह सब तेरी ही दूकान में तो है, सेवग की दूकान भी कुछ ऐसी ही है (दादी से) रामचन्द्र की मा! तू इस की बहू से तो पूछ, वह क्या कहती है ॥

दादी--अरी लाड़ो! मदन अपने बन्ट में अपनी पूरी दूकान मांगता है, तेरे श्वसुर पूछते हैं, क्या कहदूं ॥

लाड़ो--(चुपके से) तुम को अख़्तियार है। पर सब धन जो दूकान में है, वह तो मेरे ही मालिक का कमाया हुवा है। उस में किसी का क्या झगड़ा, उस में से तो मैं एक पैसा भी किसी को न दूंगी ॥

दादी--अरी! बहू तू क्या कहती है। साझे में किस का कमाया हुआ, अरी! बहू साझे में सभी की कमाई होती है, तनक सोच तो सही॥

लाड़ो--कौनसा कमाऊ था, जेठ चारों कुछ करते ही न थे, मेरा ही मालिक तो कमाता था। अब हम स्त्री पुरुष न्यारे रहेंगे, अब मेरे कलेजे में ठण्डक पड़ेगी॥

दादी--(दादा से) रामचन्द्र के लाला! बहू तो बड़ी कड़वी २ बातें कहती है और यह भी कहती है कि सब धन मेरे ही ख़सम का तो कमाया हुआ है। उस में से तो मैं किसी को एक पैसा भी न दूंगी॥

दादा--(सांस लेकर) अच्छा भाई! पर, मदन! तुम क्या कहते हो॥

मदन--(चुप) कुछ नहीं बोलते॥

सेवगराम--आप को अख़त्यार है। परमेश्वर जब देगा तो बहुत कुछ हो जायगा॥

दादा--अच्छा भाई तू भी ले,पर मैं तो बेटा धर्मसिंह और मोहन को शाबाश दूंगा और उन की स्त्री तो देवी हैं (मेरी दादी से) ऐ रामचन्द्र की मा! मुझे आज बड़ा शोक है,चाहे सब बेटे न्यारे हो जाते पर धर्मसिंह साझे रहता तो मुझे कुछ दुःख न होता। अब नगर के लोग कहेंगे कि भतीजे को न्यारा कर दिया और कुछ नहीं दिया॥

दादी--रामचन्द्र के लाला! धर्मसिंह बड़ा हठीला है, मैंने तनिक सी बात कही थी उस ने झट न्यारे की ठान दी,पर शाबाश उस को और सरस्वती को कि एक बात ताने की मुख से न निकाली॥

दादा--फिर वह बात क्या थी मुझे तो ज्ञात भी न हुआ बतलाओ तो सही॥

दादी--(अति प्रसन्न) मुझ से धर्मसिंह ने यह कहा था कि चची! कुछ गहना देदो हम को रुपये की ज़रूरत है जब मालटाल बिकजायगा छुड़ादेंगे। मैंने उत्तर दिया कि जो बनवाया हो सो लेलो। बस इसी बात पर न्यारा होगया और शाबाश तो मैं मोहन और उस की बहू को भी दूंगी कि उसे कुछ न्यारे साझे से प्रयोजन नहीं पर मुझे तो लाड़ो ख़लथख़्वार की बातों पर बड़ा शोक आता है कि कैसी चटपट कहती है कि मैं दूकान में से किसी को कुछ न दूंगी॥

दादा--मुझे तो धर्मसिंह के न्यारे होने का बड़ा दुःख है, मेरी खुशी तो इस में थी कि मेरे सामने कोई न्यारा न होता पर तुम्हारी जीभ ने सब कुछ कर दिखाया। याद रक्खो कि हम भी अब थोड़े ही दिन जीयेंगे अब कुछ जीने का धर्म नहीं रहा॥

सरस्वती--(मेनका से) बहन रोटी चढ़ाओ, अब देखती क्या हो अब तो ऐसे ही बीतेगी, अब किसी के भरोसे पर काम नहीं चलेगा, बहन कर्म की बात है कि मेरे कोई बालक नहीं और मेरे कुछ होने की आशा नहीं जो परमेश्वर ने एक भी बालक दिया होता तो दिन तो उन के सहारे से काट लिया करते (आह भरकर) जो इच्छा परमेश्वर की ! हम तो समझे थे कि चार द्यौरानी हैं,इन के हो बालकों से मन बहलावेंगे पर तेरे जेठ की मरजी ! उन के विरुद्ध तो हम स्वर्ग भी नहीं चाहते॥

मेनका--बीबी जी ! बहन सेवती आज सब में उदास हैं। और तो सब न्यारी होने से प्रसन्न हैं पर इन बिचारी ने तो किसी से न्यारे साझे को कहा भी नहीं। यह तुम्हारी और मेरी ओर देख रही हैं पर कुछ नहीं कह सकतीं,तुम बड़ी हो तुम को तो इन से भी पूछना चाहिये। चाची जी ने तो अब तक इन से पूछा भी नहीं, जिठानी किसी से प्रयोजन ही नहीं रखतीं, मा जी तो, अपने घर का धन्धा कर रही हैं,चाची जी अब भी उस ख़लकख़्वार लाड़ो की चापलोसी करती हैं, सच है लुच्चे से सब डरते हैं॥

सरस्वती--कहो बहन सेवती कैसे बैठी हो कुछ अपनी रोटी पानी का भी फ़िक्र है॥

सेवती-बीबी जी ! क्या कहूं कुछ कर नहीं सकती,करूं तो क्या करूं मैं तो आज तक न्यारी रही ही नहीं और तो न्यारे रहने को सदा लड़तीं रहीं। और तुम्हारे देवर ने मुझ से कुछ कहा नहीं। माजी कहती हैं कि यह तो सरस्वती की सेवा करेगी, बर्त्तन तक मेरे पास नहीं, अब सोचती हूं कि क्या करूं,क्या न करूं,कुछ करते धरते नहीं बनती,जो तुम कह दो तो यहीं रोटी चढ़ा दूं॥

सरस्वती--अच्छा, मैं तेरे जेठ जी को बुलाती हूं, पहिले उन से पूछ लूं कि वे क्या कहते हैं। मैं तेरी ओर से कहदूंगी,जो वे मान गये तो तू रोटी चढ़ा देना, पर बहन ! हमारे पास है ही क्या और ख़र्च भी हमारे सब से द्विगुणा है। यही उचित है कि तू न्यारी रहे॥

सेवती-बीबी जी ! यह धन दौलत तो ईश्वर की देन है। इस का तो कुछ संदेह नहीं। अपना कर्म अपने साथ है। सब को अपने भाग्य का मिलता है। (रो कर) बीबी जी ! मुझ अपने पास ही रक्खो, मैं बीबी मेनका से अधिक सेवा करूंगी॥

सरस्वती-(अपने पति धर्मसिंह और मेरे पिता मोहनलाल को बुला) ऐ महाराज ! बहू सेवती कहती है कि मैं तो कभी न्यारी नहीं रही,जो आप

आज्ञा दें तो तुम्हारी रोटी चढ़ा दूं, तुम्हारी सेवा करूंगी और बँची कुची आप भी खालिया करूंगी ॥

धर्मसिंह-ये मोहनलाल भी बैठे हैं और सेवती भी। इन से पूछलो, जो टहलुआ टहलनी बन कर रहैं तो मैं नांह नहीं करता, परन्तु यह भी समझ लें कि मेरे पास कुछ धन दौलत नहीं है, मैं तो परमेश्वर के भरोसे पर हूं ॥

सरस्वती-(सेवती के मुख से कान लगा) महाराज ! वह तो कहती है कि मुझे दासी बन कर रहना अङ्गीकार है, पर न्यारी न रहूंगी। अब लाला मोहनलाल से और पूछ लीजिये ॥

मोहनलाल-भाभी ! हमने तो लाला जी से न्यारे रहने को नहीं कहा, और जो उन्हों ने आज्ञा दी, मानली। अब भाई साहब पिता की बराबर हैं, जो अपनी सेवा करने को आज्ञा दें, तो हम सदैव तैयार हैं। नहीं तो जैसा होगा, भुगतैंगे। जैसे परमेश्वर रक्खैगा, रहैंगे। कर्म अपना अपने साथ है, किसी का क्या गिला ॥

धर्मसिंह-अच्छा तो सेवती से रसोई चढ़वा दो, पर मेनका से तो पूछ लिया होता ॥

सरस्वती-वह तो राज़ी है। उस ने ही तो मुझ से कहा था कि बीबी सेवती हमारे साथ रहैं तो अच्छा है ॥

अब मेरी माता सेवती ने रसोई चढ़ादी और सब सुख से रहने लगे, सदैव पहले मेरे ताऊ रोटी खाते, पीछे मेरे पिता। कभी मेरे पिता मेरे ताऊ के सामने हुक्का तक नहीं पीते थे। अब सुनिये एक दिन भाइयों में यों बात चीत हुई ॥

धर्मसिंह-भाई मोहनलाल ! अब कुछ करना चाहिये कि जिस से सुख से दिन कटैं और धन्धा चले, नहीं तो बड़ी हंसी होगी ॥

मोहनलाल—कल मैं तनख़्वाह लेने जाऊंगा, मुझ को आज्ञा हो मैं करूं ॥

धर्मसिंह-अच्छा तनख़्वाह तो ले आओ, फिर मैं सोचूंगा ॥

मोहनलाल-(छत्तीस रुपये आगे धर) भाई साहब ! यह तनख़्वाह रक्खी है, जैसी आज्ञा हो, वैसा करूं ॥

धर्मसिंह-(रुपये ले, बाज़ार में जा, दो रुपये मन के भाव से एक हज़ार आठ सौ रुपये का नील का बीज ख़रीद, छत्तीस रुपये साई में दे, चौकड़ायत से) चौकड़ायत जी ! रुपये तो हम सहज में एक महीने में देंगे ॥

चौकड़ायत-लाला जी ! जब मन में आवै, दे दीजिये। आप से रुपये

मांगता कौन है, पर बिकरी का क़रार रखिये। एक महीने का न रखिये, क्योंकि व्यापारियों का माल है और मेरे आगे इतना रुपया नहीं, सौ दोसौ हैं। जब माल बिक जायगा, उसी समय व्यापारी मांगेंगे ॥

धर्मसिंह–अच्छा तो बारदाना भेजता हूं, दोसौ मन रोज़ के हिसाब से रोज़ मंगवा लिया करूंगा ॥

चौकड़ायत—बहुत अच्छा ॥

धर्मसिंह–(घर आ, मेरे पिता जी से) भैया मोहन ! तुम शहर गये थे कुछ नील के बीज का भाव भी सुना था ?

मोहनलाल–भाई साहब ! कल तक तो दो रुपये मन था, परन्तु मार्ग में सुना है कि बीज की तेज़ी और दिशावर की मांग है ॥

धर्मसिंह–भाई ! आज हमने दो रुपये मन के भाव से नौसौ मन का सौदा किया है। दोसौ मन नित्यप्रति तुलवा कर शहर में बेंचलाया करो ॥

मोहनलाल–जो आज्ञा हो, पर आज दो चार व्यापारी शहर से यहां आवेंगे, पहिले देख तो लीजिये। मेरी समझ में तो यहीं कुछ लाभ पर सौदा बिक जाय तो बहुत अच्छा, नहीं तो कल ले जाऊंगा ॥

घासीराम—राम २ लाला धर्मसिंह !

धर्मसिंह—राम २ भाई ! राम २ आज किधर भूल पड़े ? मोहन ! जल्दी से जा, हुक्का भर ला और (आप पानी ला, लाला घासीराम के हाथ पैर धुलाय) कहो भाई घासीराम ! खाने पीने की बात कहो, अब तैयार कराऊं या ठहर कर, भाई ! अब समय नहीं रहा, नहीं तो चौका तैयार मिलता ॥

घासीराम—भाई साहब ! खाने को तो मैं घर से ही लेता आया था। मार्ग में खा चुका हूं और बाक़ी रात को खाऊंगा ही ॥

मेरे पिता जी शीघ्र हुक्का भर लाये और घासीराम और ताऊ हुक्का पीने लगे और यों बातें होने लगीं ॥

घासीराम—भाई साहब ! बीज की बड़ी तेज़ी होगई। कहीं नील का बीज तो बतलाओ ॥

धर्मसिंह—भाई ! किस भाव तक लोगे और बाज़ार में क्या भाव है ॥

घासीराम—भाई साहब ! आज तीन रुपये मन का भाव था, परन्तु इस भाव से भी न मिला और कल तो निश्चय है कि साढ़े चार रुपये अथवा पांच रुपये मन हो जायगा। और जो इकट्टा मिल जावे तो मैं चार रुपये मन तक ले लूंगा ॥

धर्मसिंह—भाई ! मैंने आज दो रुपये मन के भाव नौ सौ मन बीज लिया है, बानगी रक्खी है, जो यह अच्छा लगै तो चार रुपये मन दे दूंगा ॥

घासीराम—(बानगी देख) भाई साहब ! ले लिया । यह लो हज़ार रुपये साई के लो, मैं अभी अपने मज़दूरों को भेजता हूं, सबेरे तक बारदाना और बाक़ी रुपया ले आवेंगे । पर सब है ? या कहीं से आवैगा ॥

धर्मसिंह—भाई सब यहीं है, बारदाना मंगवा लीजिये ॥

घासीराम—(पल्लेदारों से) भाई तुम शहर को जाओ । सबेरे ही दो हज़ार छः सौ रुपये और नौ सौ मन का बारदाना ले आओ । दुकान पर कह देना कि नौसौ मन का इकट्ठा सौदा हो गया है, लो यह चिट्ठी भी लेते जाओ ॥

अब पल्लेदार चल दिये और लाला धर्मसिंह व घासीराम हुक्का पीने लगे, चौकड़ायत भी बाज़ार से आगये और यह बात चीत होने लगी ॥

धर्मसिंह—चौकड़ायत जी ! हम ने बीज का सब का सब सौदा भाई घासीराम को देदिया । कल तुल जावेगा और रुपया भी कल ही भुगत जावैगा ॥

चौकड़ायत—लाला ! किस भाव दिया ? क्या लाभ हुआ और तुम रुपये की क्या कहते हो, मैंने तुम से रुपये तो नहीं मांगे, यार तुम रुपये का नाम न लिया करो, हमारी तुम्हारी एक ही बात है ॥

धर्मसिंह—भाई ! चार रुपयेमन दिया है, तुम्हारी कृपा से अठारह सौ रुपये बचैंगे ॥

चौकड़ायत—यार ! हो बड़े भाग्य के धनी, पर यार हम तो यह जानते हैं कि नियत सब को फलती है । तुम सा बेधड़क भी न होगा कि भरे भराये घर को छोड़ दिया, इस ज़माने में ऐसा होना बहुत कठिन है । लाला घासीराम ! परसों ही आप चचा जी से न्यारे हुये हैं, सिवाय पांच वर्त्तन और एक रुपये के कुछ नहीं लिया, बहुत कुछ चचा जी ने समझाया पर एक न मानी । भाई ! परमेश्वर मर्दों की ज़रूर सुनता है ॥

घासीराम—चौकड़ायत जी ! ऐसे मनुष्यों की परमेश्वर क्यों न सुनैं । तुमने कभी एक राजा की कहानी नहीं सुनी, वह बिलकुल ऐसी ही है, जैसे भाई साहब का क़िस्सा ॥

चौकड़ायत—भाई ! वह कहानी अवश्य सुनाओ (पालथी मार कर) मैं बे सुने कभी न जाऊंगा ॥

घासीराम—अच्छा, ध्यान लगा कर सुनो, कहानी कहता हूं ॥

कहानी

एक राजा थे। उन के जी में समाई कि योग लें। एक दिन सायंकाल के समय देखते क्या हैं कि एक मनुष्य आया॥

राजा--भाई! तुम यहां छत पर क्या देखते हो॥

मनुष्य--महाराज! मेरा ऊंट खो गया है; उस को ढूंढ़ता हूं॥

राजा--तुम बावले हो, कहीं छत पर भी ऊंट होता है॥

मनुष्य--मैं बावला नहीं, तुम बावले हो। जो तुम यहां योग ढूंढते हो॥

यह सुन राजा एक कटोरा और एक तकिया और पंखा और एक सुई ले, जङ्गल को चल दिये। आगे जाकर देखा कि एक मनुष्य हाथ से पानी पी रहा है, राजा ने विचारा कि कटोरा निष्फल है और तुरन्त ही फेंक दिया फिर थोड़े ही आगे चल कर देखा कि एक मनुष्य अपने बाहों का तकिया दिये सो रहा है, यह देख तकिया भी फेंक दिया। फिर आगे जा कर देखा कि एक मनुष्य वृक्ष के पत्तों से हवा कर रहा है, बस पंखा भी फेंक दिया। जङ्गल में पहुंचे कि एक राजा मिल गया और इन के डेरे में ठहरा, अच्छा २ भोजन कराया। समय आधीन उसी वन में एक साधु बहुत दिनों से रहता था। यह इस राजा को देख, अपने मन में विचार करने लगा कि इस आज के साधु को तो यह आनन्द और मुझे बहुत दिन बीत गये, बस दो रूखी रोटी मिलती हैं, आज मैं रोटी नहीं खाऊंगा॥

एक साधु-(अचानक आ) अरे बाबा! आज कैसे उदास बैठे हो?

पहिला साधु-महाराज! यह सोच है कि इस आज के साधु को तो ऐसा सुख और हम पुराने को वही दो रूखी रोटी॥

एक साधु-(हंस कर) तुम्हारी जाली खुरपी अभी तक झाड़ में रक्खी है, ख़बर भी है? उस ने राज छोड़ योग लिया है॥

सो भाई चौकड़ायत! राजा को सब जगह राज ही मिलता है। भाई धर्मसिंह ने भरा भराया घर छोड़ा, आज ही अठारह सौ रुपये मिल गये। कमी क्या है, आप परमात्मा ने दे दिया, घर छोड़ने का सहज में नाम पा लिया। भाई! मैं तो इन के आदर सत्कार का कायल हूं, आते ही मेरा वह सत्कार किया कि मैं दङ्ग रह गया॥

चौकड़ायत—लाला जी! तुम तो भाई हो, यह तो सब आये गये का ऐसा ही सत्कार करते हैं। सब आस पास आप के आदर भाव की धूम है। सब इर्द गिर्द के मनुष्य इन के अनुचर हैं और मेरा सिंह रुपये पैसे को तो कुछ समझता ही नहीं। दस आवें, बीस आवें, भोजन कराना। भला ऐसों को भी परमेश्वर न दे तो और किस को दे॥

धर्मसिंह—(शरमा कर) लाला घासीराम! क्या खाना खिलाना भी आदर सत्कार है? तुम्हारे घर तो हमारा वह सम्मान होता है कि हम से उस की चौथाई भी नहीं बनता। चौकड़ायत जी! यह आप की कृपा है, मैं तो किसी लायक़ नहीं, मेरे लाला जी कहा करते थे:—

दोहा

पक्षी के पानी पिये, नदी घटै नहिं नीर।
दान दिये धन ना घटे, जो सम्मुख रघुबीर॥१॥

अब उस अठारह सौ रुपये से मेरे ताव व पिता जी ने व्यापार का आरम्भ किया और एक वर्ष के भीतर ही भीतर पांच छः सहस्र रुपया उपार्जन कर लिया और आनन्द से दिन कटने लगे। मेरे चचा व ताऊ, चाची व ताई, सब देख २ जलने लगे। समयान्तर में मेरे ज्येष्ठ भ्राता का जन्म हुवा, उस से पीछे मैं और मेरे पश्चात् दो और भ्राता उत्पन्न हुये। अब मेरे ताऊ ताई पिता माता चाची प्रसन्न रह, हम से अति प्रीति करने लगे। मेरे ज्येष्ठ भ्राता राधारमण और मैं तो ताऊ जी के पास रहते और दोनों कनिष्ठ भ्राता घर में स्त्रियों के निकट खेला करते। राधारमण बात २ में तर्क किया करता, परन्तु कोई बात अनुचित नहीं कहता था। मेरे ताऊ जी ने मुझ को और राधारमण को अति उत्तम शिक्षा दी। हमारा स्वभाव साधारण बालकोंका सा न था। बस प्रथम दिवस से ही हम को कहानियां कहने और सुनने की बान पड़ गई और हमारे ताऊ जी बहुधा हम को स्वाभाविक प्रीति के कारण घंटों तक कहानियां ही सुनाया करते॥

एक दिन की कहानी सुनो, जो हमारे ताऊ जी ने कही थी॥

कहानी

एक गांव में बीर नारायण नाम गूजर जमीदार था। सम्पर्ण प्रान्त में उस की अति प्रतिष्ठा थी। धर्मात्मा मनुष्य था। उस के पांच पुत्र थे। समस्त गांव की प्रजा उस से प्रसन्न थी, और गौ, भैंस, बैल आदि भी अधिक थे। पांच बेटों

में से चार के चार २ बेटे उत्पन्न हुवे,एक के कोई सन्तान न थी,अब उस पूर्वी की सन्तान रहित स्त्री स्याने दिवाने लोगों से नित्य पूंछा करती कि मेरे सन्तान क्यों नहीं होती? वह अगड बगड बतला देते। एक दिन की बातहै ॥

गूजरी—(एक स्याने से जिस का नाम भोला था) ऐ भोला ! तेरी स्यानपत क्या काम आवेगी? तू ही कुछ बतला ॥

भोला—भाभी ! जो तुम लिपाखे घर में, जो छान का हो और जिस में बहुत गौ, बच्छा व बछिया हों, आग लगादो और आग लगाने से अवश्य कुछ जल मरें, तो जितने कि गौ बच्छा या बछिया जलें, उतने ही तुम्हारे पुत्र होंगे ॥

गूजरी—देवर ! यह क्या बड़ी बात है, मैं आज ही कर दूंगी ॥

भोला—पर भाभी! अटोक आग लगाना, कोई टोके नहीं(यह कह चलागया)

गूजरी ने अवसर देख, आग ले, ऐसे ही घर में लगा दी कि उस में कई गौ, बच्छा जल गये, परन्तु सात जान से मर गईं। बीरनारायण ने देखा तो उस को बड़ा शोक हुआ, अपनी लज्जा और अदालत के भय से चुप होकर बैठ रहा, दिल में कहता था कि यह स्त्री कुपात्र और म्लेच्छा है। इसे भय और दया कुछ भी नहीं। थोड़े दिन पीछे उस को गर्भ रहा और तले ऊपर सात लड़के बड़े सुन्दर व मलूक पैदा हुए। गूजरी और उस का पति अपने मन में बड़े प्रसन्न, सब गांव वाले उन को बहुत प्यार करते, परन्तु जब बीर नारायण देखता तो कह देता कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" ॥

गूजरी—(भोला को बुला) ऐ, भोला देवर ! यह सब बच्चे तुम्हारे ही दिये हुये हैं। परन्तु यह पगड़ी और भेंट और कुछ मिठाई बालकों के लिये अपने घर लेते जाओ और मेरे बालकों के लिये गण्डे बनाकर लेते आना॥

भोला—(लेकर) भाभी ! मैं तो ताबेदार हूं, सब तुम्हारा ही दिया हुवा है। जो कभी किसी पर भूत प्रेत दख़ल करे तो मुझे ख़बर कर देना ॥

गूजरी—तुम्हारे होते कोई चुड़ैल मेरे बालकों की ओर देख सकती है? परमेश्वर तुम को बनाये राखै ॥

नाई—(छज्जन से) मुक़द्दम साहब ! हमारा बधावा नहीं मिला, दिलवाइये, हम तो तुम्हारे मङ्गता हैं, रात दिन तुम्हारे जय २ कार मनाते हैं, भरपूर इनाम दीजिये, इनाम पूरा लूंगा ॥

छज्जन—नाई ठाकुर ! बड़े मुक़द्दम से मांग, भला बिना उन की आज्ञा के हम क्या कर सकते हैं ॥

नाई—(वीरनारायण से) मुक़द्दम साहब ! छज्जन मुक़द्दम के बेटे का बधावा हम को नहीं मिला, परमेश्वर तुम को लहने फागने करे, हमारा भी इनाम दे दिया होता ॥

वीरनारायण—(गाय बछड़ों के फुकने का ध्यान कर) भाई ! "परमेश्वर के न्याय नहीं" ॥

नाई—और पास के बैठने वाले–अच्छा मुक़द्दम साहब ! यह क्या कहते हो। भाई मुक़द्दम ! यह तो बताओ कि तुमने क्यों कहा कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" ॥

वीरनारायण – (सोच कर) नहीं भाई नहीं, मेरे मुंह से निकल गया, कोई बात नहीं, एक कहावत याद आ गई थी, तुम जानते हो,बेटों से अधिक प्यारा कौन हो सकता है ? और जिस में छज्जन सा ताबेदार बेटा। भाई, बेटा छज्जन के सन्तान न होने से मुझे अतिशोक था, पर परमेश्वर ने उस की आत्मा में भी ठण्डक दी ॥

रुलिया–(वीरनारायण की स्त्री "न्याय नहीं" का शब्द सुन) ऐ छज्जन के तारू ! तुम्हारी बुढ़ापे से मत मारी गई है । तुम को बालक देख सिहाना चाहिये, न कि उलटे उदास होना । जो छज्जन और छज्जन की बहू सुन लेंगे तो घर में झगड़ा मचेगा या नहीं ? ज्वान बेटा बहू की चापलोसी चाहिये या सख़ती, सोच समझ कर कहा करो, क्या कोई बालक हो ॥

वीरनारायण—मैंने तो कोई बात नहीं कही,मुझे एक बात याद आगई थी। क्या बावला हूं? जो पोतों को देख ऐसा कहूंगा।मुझे कुछ ध्यान आगया था॥

गूजरी—(छज्जन से) क्या बड़े मुक़द्दम की बुढ़ापे में बुद्धि जाती रही है, मुझ से पड़ौसन कहती थी कि मुक़द्दम जब मेरे बालकों को देखते हैं तभी कह देते हैं कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" ॥

छज्जन–हां सुना तो मैंने भी है और मुझे भी यह बात बुरी लगती है,पर क्या करें सब धरती जायदाद तो मुक़द्दम ही के नाम है और सब बेटे उन का आदर सन्मान करते हैं, सगरा गांव भी उन्हीं का साथी है, पर मैं क्या करूं, डर यह है कि कहीं क्रुद्ध हो जावें और मुझे निकाल दें तो कैसे बीतेगी और यह भी डर है कि कभी बेटों में और मुझ में लड़ाई हुई तो वे मुझे मारेंगे । थोड़े दिन चुप हो जाओ, जब लड़के स्याने हो जायंगे तो कहीं अपने रहने का प्रबन्ध कर लेंगे, बुढ़ापे में सब की ही बुद्धि बिगड़ जाती है ॥

एक दिन की बात है कि छज्जन के लड़के खेल रहे थे और पांच चार

बूढ़े आदमी छज्जन समेत वीरनारायण के पास बैठे थे कि धर्म विचार में भजन करते २ वीरनारायण के मुंह से निकल गया, भाई "परमेश्वर के न्याय नहीं"॥

बूढ़े मुक़द्दम–सब गांव में इस बात की चर्चा है कि तुम इन बालकों को देख, कह दिया करते हो कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" मुक़द्दम साहब ! यह क्या बात है ? छज्जन और छज्जन की बहू और सब गांव के मनुष्य इस बात को बुरा कहते हैं ॥

वीरनारायण—(मन में, जो साफ़ २ कहते हो तो फ़ज़ीते का डर है और फल कुछ होगा नहीं, इस लिये इस को टालना चाहिये) । प्रकट में भाई ये बालक बड़े मनूक हैं और राजघर के योग्य हैं, यहां विचारों का आदर सत्कार कुछ नहीं होता, इस लिये यह सोच कर कि परमेश्वर ने इन को कुछ राज पाट नहीं दिया, यह तो राजा होने के योग्य थे, मुझे यह बात याद आजाती है और भाई प्यार में मुंह से निकल ही जाता है कि "परमेश्वर के न्याय नहीं"॥

अब थोड़े दिन में सातों बालक जवान हो गये और बड़े शूर वीर निकले, यहां तक कि एक गांव में क्या दो चार गांवों में इन के बराबर कोई न था । वीरनारायण को इन के देखने से बड़ा शोक होता था और इन की मा का वह अनर्थ याद आजाता था, परन्तु बेटा बहू के भय के कारण कुछ नहीं कह सकता था । एक दिन की बात है कि गांव को धाड़ (लुटेरों की मण्डली) ने घेर लिया और सब गांव उन के लड़ने को इकट्ठा हुआ, सब से आगे छज्जन के सातों बेटे थे, एकाएक गोली चलने लगी और छज्जन के सातों बेटे मारे गये। और धाड़ भाग गई । गांव में से सिवाय छज्जन के बेटों के मरने के और किसी का कुछ बिगाड़ न हुआ । अब छज्जन और छज्जन की बहू ज़ार २ रोते हैं और घर में हाहाकार मचा रक्खी है, सब कुटुम्ब और गांव की स्त्री जमा हैं और बड़ा रोदन मचा रही हैं, घर से बाहर सब गांव के मनुष्य इकट्ठे हुये रो रहे हैं ॥

एक–भाई ! परमेश्वर की इच्छा, ऐसे बालक तो किसी के बड़ी कठिनता से उत्पन्न होंगे, देखो कैसे अच्छे रूपधारी और मर्द थे, पर भाई ! इस में किसी का कुछ बस नहीं चलता, हाय २ ॥

दूसरा—भाई कैसे भलेमानस थे कि दूर से देखते ही राम २ करते, हमने तो उन को आज तक किसी से लड़ते ही नहीं देखा ॥

तीसरा—मुक़द्दम अलग बैठा है, उस को कुछ शोक ही नहीं ॥

चौथा—भाई ! बुढ़ापे में मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है, मुक़द्दम की तो बुद्धि बिगड़ गई है, वह तो सदैव उन को देख, कह दिया करता था कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" आज उसे क्या शोक होगा ॥

पांचवां—भाई ! अन्त को तो वीरनारायण हमारा सर्दार है, चलो उस के निकट तो चलें। (वीरनारायण के पास आते हैं और राम राम करते हैं)

वीरनारायण—आओ भाई ! राम २, बैठो, थोड़ी देर पीछे (आप ही आप) भाई ! "न्याय तो है पर देर में है" (पोतों का कुछ शोक नहीं)

गांव वाले—मुक़द्दम ! बड़ा पहाड़ टूटा, बड़ा अनर्थ होगया ॥

वीरनारायण—(चौंक कर) क्या हुवा, भाई क्या हुवा ? ॥

गांव वाले—अभी यही एक दम से बिचारा छज्जन मुक़द्दम लुट गया। छज्जन की बहू का रोना सुन हमारी तो छाती फटती है ॥

वीरनारायण—(होले से) अपने कर्मों का फल है, इस में किसी का कुछ बस नहीं (और थोड़ी देर में) भाई ! "परमेश्वर के न्याय तो है पर देर से है"

गांव वाले—मुक़द्दम ! यह क्या बात है, पहले तो इन बालकों को देख, तुम कह दिया करते थे कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" अब उन के मरने पर कहते हो कि "न्याय तो है पर देर से है" इस को बतला दीजिये ॥

वीरनारायण—नहीं, कुछ बात नहीं है ॥

गांव वाले—नहीं मुक़द्दम ! बात को तो बतला ही दो और तुम्हें कुछ शोक भी नहीं है (और बहुत ज़िद्वाद किया) ॥

वीरनारायण—सुनो भाई ! अब तुम नहीं मानते तो मैं कहता हूं। भाई ! एक दिन की बात है कि छज्जन की बहू ने इस सामने वाले घर में जहां कि गाय बछड़ा व बछियां इस में बंधी थीं, रात के समय आग दे दी और कई गाय बछड़ा व बछियां जला दिये, सात तो जान से मर गये। भैया मैंने इस की गोहत्या देखी है और उस पर इस हत्यारी के सात लड़के पैदा हुये, मुझे वह गोहत्या याद आजाती थी और कह दिया करता था कि "परमेश्वर के न्याय नहीं" ऐसी हत्यारी के ऐसे सात बच्चे एकदम में पैदा हों ?

गांव वाले—ओहो ! छज्जन की बहू ने बड़ा अनर्थ किया, अरे भाई ! ऐसा तो कोई म्लेच्छ भी नहीं करता ॥

वीरनारायण—भाई ! मुझे उन गाय बछड़े बछियों का डकराना याद है, क्या करूं, इस में अपना ही फ़ज़ीता था और थाने चौकी का भी डर था,

इस लिये मैंने किसी से नहीं कहा। भैया! और जो कोई और ऐसा करता, तो मैं उसे गांव से निकाल देता। अब रांड क्यों रोती है। इस निर्लज्ज को तब भी कुछ दया आई थी, जब यह गाय बछड़े जलाये थे। यह पापिनी नहीं जानती थी कि यहां इन गाय बछड़ों का बदला लेने वाला कोई नहीं, पर परमेश्वर के तो बदला मिलेगा। आज भाई! मुझे तो सबर आया और जान लिया कि "परमेश्वर के न्याय तो है पर देर से है" भैया! मैं तुम लोगों का हर तरह से सहायक हूं पर भाई! ऐसे पाप में मैं किसी का साथी नहीं। देखो संसार में बहुत से मनुष्य ऐसे होते हैं कि जब उन के बेटी बेटा नहीं होते तो यह अपने कुटुम्ब में से गोद ले लिया करते हैं। यह दुष्टा जो मुझ से कहती तो मैं एक २ बेटा अपने चारों बेटों से दिला देता। चारों इस के ही कहे जाते। भाई! जिस दिन से इस ने आग लगाई है और यह गाय बछड़े जले हैं, मुझे इस कम्बख़्त की सूरत बुरी लगती है॥

राधारमण--ताऊ जी! यह स्याने कौन होते हैं?

धर्मसिंह--बेटा! यह जादूगर होते हैं, स्त्रियां इन को बहुत मानती हैं॥

राधारमण--तो ताऊ जी! यह बड़ा अन्याय करते हैं और स्त्रियों को बुरी २ बातें सिखलाते हैं। क्या स्त्रियां नहीं जानतीं कि इन की सब बातें झूंठी हैं॥

धर्मसिंह--बेटा! मूर्ख स्त्रियां इन के कहने को सत्य मानती हैं और उसी रीति पर चलने लगती हैं, क्या कहूं॥

राधारमण--ताऊ जी इस कहानी से तो ज्ञात होता है कि स्यानों की बात सच होती है। देखिये गाय बछड़े बछियां जीते फूंकने से छज्जन की बहू के बच्चे पैदा हुवे॥

धर्मसिंह--बेटा! बात तो कोई सच नहीं होती तुम अभी बालक हो, आगे को जानोगे कि संसार में भांति २ के मनुष्य रहते हैं॥

राधारमण--ताऊ जी! पाप का बदला देर में क्यों मिलता है?॥

धर्मसिंह--बेटा! हलके पाप का बदला जल्द मिलता है और भारी पाप का देर में। देखो छज्जन की बहू ने भारी पाप किया था, इस कारण बालक पैदा होकर मरगये, देखो उस के बच्चे पैदा ही न होते तो वह मरने के दुःख को क्या जानती॥

राधारमण--ताऊ जी! ऐसा ही कोई और भी हाल है जैसा कि आप ने छज्जन की बहू का सुनाया॥

धर्मसिंह--हां बेटा ! तुम को और भी सुनाऊंगा, पर तुम यह बात याद रक्खो कि अपने लाभ व सुख के अर्थ कभी किसी का बिगाड़ न करना चाहिये॥

राधारमण--हां, ताऊ जी ! सज्जन ने तो कोई पाप किया ही न था, फिर उस को यह दुःख कैसे हुवा ?

धर्मसिंह--बेटा ! सज्जन को खुशी हुई न रञ्ज, संसार में मोह के वश होकर और अपनी अज्ञानता से उस को यह दुःख हुवा, जो ज्ञानी पुरुष होता तो कभी दुःख न होता। वह समझ लेता कि इस के पाप से यह हुवे और इसी के पाप से मरगये ॥

राधारमण--तो क्या ताऊ जी ! हर मनुष्य पहिले पाप करने से बढ़ता है?

धर्मसिंह--हां पुत्र ! पाप के बदले के लिये भी मनुष्य की बहुत वृद्धि होती है और ऋषि मुनियों ने अधिक बढ़ने को पाप का बदला माना है। तुम देखो, जो मनुष्य जन्म से ग़रीब और कङ्गाल होता है, उस को कङ्गाली में कुछ भी दुःख नहीं होता, परन्तु जब वह धनवान् होकर निर्धन होजाता है तब उस को बड़ा दुःख होता है ॥

राधारमण--हां, ताऊ जी ! एक दिन आपने कहा था कि हम तुमको हंस और हंसनी की कहानी सुनावेंगे, सो आज आप वह कहानी सुना दीजिये। हम से माता ने कहा है कि हंस और हंसनी की कहानी बड़ी अच्छी है ॥

हंस और हंसनी की कहानी

धर्मसिंह--सुनो बेटा ! पहिले समय में इस देश में एक बड़ा भारी राजा था, फ़ौज, ख़ज़ाना, हाथी, घोड़े, बहुत थे और सब राजा उस का भय मानते थे, नौकर चाकर भी सब बड़े भलेमानस और प्रजा भी उस की बड़ी भारी सुखी धर्मात्मा थी, जगह २ औषधालय और सदावर्त्त नियत करदिये थे, मतलब यह है कि रैयत को किसी तरह का दुःख उसके राज्य में न था। एक दिन राजा ने सभा की:-

राजा--(मन्त्रियों से) कहो भाई ! परमेश्वर परमात्मा की कृपा से हमारे किसी वस्तु की कमी तो नहीं ? सब चीज़ें मौजूद हैं ? ॥

मन्त्री--महाराज ! चतुरङ्गिणी सेना अर्थात् हाथी घोड़े पैदल व जहाज़ों की आप के है ही और पक्षी सब भांति के आप के हैं हीं, तंबेले में सब तरह के चौपाये हैं हीं, कोठार में हरतरह का सामान मौजूद ही है, बस एक हंस नहीं है ॥

राजा--तो अच्छा हंस का जोड़ा और मंगवाओ ॥

मन्त्री--महाराज! बधिकों को भेजता हूं,समुद्र से पकड़ कर ले आवेंगे ॥

राजा--निर्दोषों को हम बन्धन में डालना नहीं चाहते, ऐसा कामकरो कि विना पकड़े ही आप से आप यहां चले आवें ॥

मन्त्री--श्रीमहाराज! भला यह पक्षी विना पकड़े यहां कैसे चला आवेगा।

राजा-जैसे हो, प्रबन्ध करो और जो नहीं करोगे तो तुम को बन्धन में डाल दूंगा ॥

धर्मसिंह-बेटा राधारमण! तीन हठें प्रसिद्ध हैं,एक राजहठ अर्थात् राजा की हठ। जिस बात की राजा हठ करता है वह उस के नौकर चाकर व प्रजा लोग पूरी कर ही देते हैं। दूसरी त्रियाहठ अर्थात् स्त्री की हठ। जिस वस्तु की स्त्री हठ करती है, जहां तक हो सकता है पूरी की ही जाती है। तीसरी बालहठ अर्थात् बच्चों की हठ। जिस काम के अर्थ बालक हठ करता है, जहां तक होता है उस के माता पिता आदि पूरी कर ही देते हैं। ऐसा समझ मन्त्री चुप हो गया ॥

राजा-सुनो मन्त्री! या तो आठ दिन में हंस का जोड़ा मंगवा दो, नहीं तुम को बन्दीख़ाने में भेज दूंगा ॥

मन्त्री-" जो आज्ञा " कह अपने मन में सोचने लगा कि क्या करना चाहिये कि जिस से हंस का जोड़ा आप ही आप आजावे। अब यह भी संदेह है कि कहीं प्रबन्ध न हुआ तो बन्धन में पड़ जायेंगे और सब संसार में अपकीर्त्ति होगी ॥

धर्म का वृत्तान्त

धर्मसिंह-बेटा! यह रीति है कि जब मनुष्य को संदेह अधिक होता है तो बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इस लिये मनुष्य को उचित है कि संदेह अधिक न करें, सदैव सब काम सोच विचार कर करें ॥

राधारमण-ताऊ जी! संदेह को भला मनुष्य कैसे मिटा सकता है? आप ने पहिले मुझ से कहा था कि सन्देह नहीं मिट सकता ॥

धर्मसिंह-धर्मात्मा लोग वही कहलाते हैं जो सोच नहीं करते ॥

राधारमण—ताऊ जी! धर्मात्मा कौन कहलाते हैं? इन को बतलाइये॥

धर्मसिंह-ऐ पुत्र! जो धर्म को जानते हैं ॥

राधारमण-ताऊ जी! धर्म किस को कहते हैं?॥

धर्मसिंह-पुत्र! मनु जी महाराज ने यह कहा है-

" धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दशकं धर्मलक्षणम् " ॥

१-धैर्य रखना कभी कष्ट वा दुःख में घबराना नहीं और सुख पाकर अभिमान न करना ॥ २-अख़्त्यार होने पर दोष को क्षमा कर देना ॥ ३-इन्द्रियों को स्वतन्त्र न होने देना ॥ ४-अस्तेय अर्थात् चोरी न करना ॥ ५-शौच अर्थात् सदैव शुद्ध पवित्र रहना ॥ ६-इन्द्रियों को स्वाधीन न होने देना और उन से इच्छानुसार काम लेना ॥ ७-धी-बुद्धि रखना ॥ ८-विद्या-अच्छी तरह से विद्या सीखना॥ ९-सत्य-सदैव सच ही कहना सच ही करना॥ १०-अक्रोध अर्थात् क्रोध कभी न करना ॥

राधारमण-ताऊ जी ! यह तो बहुत बातें हुईं, मेरी समझ में नहीं आईं, कोई छोटी सी बात बतला दीजिये ॥

धर्मसिंह-बेटा ! धर्म वह है, जिस को श्रुति (वेद) कहे । बेटा ! धर्म वह है, जिस को स्मृति (धर्म शास्त्र) कहे । बेटा ! धर्म वह है, जो सदाचार अर्थात् अच्छे २ मनुष्यों की परिपाटी हो । बेटा ! धर्म वह है,जो आत्मप्रिय अर्थात् आत्मा को प्यारा हो ॥

राधारमण-तौ क्या ताऊ जी ? ! हमारा आत्मा किसी का माल लेलेने को चाहता है, यह धर्म है ? ॥

धर्मसिंह-नहीं बेटा ! यह धर्म नहीं हो सकता । देखो आत्मप्रिय वह कहलाता है, जो दोनों तरह आत्मा को प्यारा हो। देखो जो तुम्हारा माल कोई और अपने बल से छीन ले तो तुम को वह प्यारा होगा या कुप्यारा?

राधारमण-जो हमारा माल कोई लेवे तौ यह हमको प्यारा न होगा॥

धर्मसिंह-बस बेटा ! यह धर्म नहीं हो सकता ॥

राधारमण-तौ आत्मप्रिय बतलाइये ॥

धर्मसिंह-देखो बेटा ! तुम को किसी वस्तु की आवश्यकता है और प्रसन्नता से कोई तुम को देदेवे और जब उस को आवश्यकता हो तौ तुम अपनी वस्तु मांगने पर उसे देदो, यह धर्म है ॥

राधारमण—यह तौ ताऊ जी ! देना लेना ठहरा ॥

धर्मसिंह—देखो बेटा ! धर्म वह है जिस से सुख मिले, जिस काम में या परिपाटी में कुछ सुख मिले, वह धर्म है । देखो जब ऐसा व्यवहार हो कि अपना वस्तु मांगने पर तुम दूसरे को दो और दूसरा तुम्हारी आवश्य-

कता पर तुम को देवै, तो दोनों को सच्चा सुख हुआ, देखो यही धर्म है और यही आत्मप्रिय कहलाता है ॥

राधारमण—ताऊ जी ! मनुष्य किसी की वस्तु क्यों मांगे, मोल न लेलेवै॥

धर्मसिंह—बेटा ! संसार में कोई मनुष्य ऐसा नहीं जो अपनी आयु-भर की आवश्यकता की सब वस्तु मोल ले सके, इस लिये बिना ऐसे व्यवहार के सुख नहीं मिलसकता । अब तुम सोचो कि हमारे जो रथ है, यह सब लोगों के मांगा जाता है, जब तुम्हारा विवाह हम करेंगे तब इस के बदले में बहुत से रथ हमारे आजावेंगे । देखो जो हम अपना रथ किसी को मंगा न देवें तो इतने रथ कैसे बना सकते हैं ॥

राधारमण—तो ताऊ जी ! जिस के जो वस्तु हो उस को वही वस्तु देनी चाहिये, जिस के बदले में वह आजावे ॥

धर्मसिंह—नहीं बेटा ! यह बात नहीं, देखो हम से एक मनुष्य ने जिस को रथ की आवश्यकता है, रथ मांगा और हम ने न दिया और उस के घोड़ा है, जब हम को घोड़े की आवश्तकता होगी तो वह अपना घोड़ा न देगा, ऐसी सूरत में भी बड़ा दुःख होगा । इस से जो हम अपना रथ उस को दे देवैंगे तो वह अपना घोड़ा हम को दे देवैगा, तो देखो एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु मिलेगी और जो ऐसा ही वर्त्ताव रक्खैं कि जिन से वस्तु मिलने की आशा हो उन को ही वस्तु देवैं तो संसार हम को स्वार्थी कहैगा और सब लोग हम को बुरा कहैंगे ॥

राधारमण—तो क्या संसार के मनुष्यों का अच्छा कहना भी धर्म है?॥

धर्मसिंह—हां, बेटा ! जिस बात को अच्छे लोग बुरा कहैं, वह भी अधर्म है॥

राधारमण—हां, ताऊ जी ! अब आगे राजा की कहानी सुनाइये, बहुत मन चाहता है ॥

धर्मसिंह—बेटा ! इसी सोच संदेह में मन्त्री का मुंह उतर गया और बहुत उदास हो, दर्बार बन्द होने पर घर को आया ॥

मन्त्री की बेटी—(हंस कर मन्त्री से) बहुत अच्छे पिता जी ! आज आप का मुंह उदास क्यों है ? जल्द बता दीजिये ॥

मन्त्री—(लड़की के प्रसन्न करने को) नहीं, बेटा ! उदास तो नहीं है ॥

बेटी—नहीं, पिता जी ! यह तो मैं नहीं मानूंगी, तुम्हारे मुंह पर लाली नहीं, होंठ सूख रहे हैं, क्या राजा आप से क्रुद्ध हो गये हैं ? बतलाइये तो क्या बात है । भला जो बात मैं ने पढ़ी हैं, क्या वे झूंठ हैं ? मैंने पढ़ा है कि "सन्देह में मनुष्य का मुंह उतर जाता है, होंठ सूख जाते हैं" वे सब बातें

मैं आप में देखती हूं। अच्छे पिता जी! बतला दीजिये क्या बात है?॥

मन्त्री–(लाचार हो) बेटा! आज राजा ने हम से पूछा कि हमारे सब कुछ है, मैंने कहा कि हंस का जोड़ा नहीं है, राजा ने कहा कि मंगवाओ, मैं ने कहा कि बधिक भेज कर समुद्र से मंगवाता हूं, राजा ने कहा कि विना अपराध तो हम किसी को पकड़वाना नहीं चाहते, मैं ने कहा कि विना पकड़वाये तो नहीं आ सकता, इस पर राजा ने आज्ञा दी कि या तो विना पकड़वाये हंस मंगवादो, नहीं तो हम तुम को दण्ड देंगे। आठ दिन की अवधि है। बेटा! अब हम को यह सन्देह है कि क्या करें, जो हंस विना पकड़े आजावे॥

बेटी–पिता जी! यह क्या बड़ी बात है, मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि एक राजा को हंस की इच्छा थी, उस ने एक बड़ा भारी सरोवर बनवा, मोती डलवा दिये, थोड़े दिन में हंस का जोड़ा उस सरोवर में आ गया। सो राजा के लखियाबाग़ में सरोवर तो है ही, राजा से कह दीजिये कि उस में मोती डलवादें, कभी न कभी हंस का जोड़ा विना पकड़े आ ही जावेगा॥

मन्त्री–(प्रसन्न हो, बेटी को गोद में ले, प्यार से शिर सूंघ) बेटा! हमने आज तेरे पढ़ाने का फल पाया। और रात को सुखपूर्वक सोये और भोर होते ही दर्बार में पहुंचे॥

मन्त्री–श्री महाराज! मैंने एक बात विचारी है कि लखियाबाग़ में जो सरोवर है उस में आप सेर दो सेर मोती डलवा दें और माली को समझा दिया जावे कि जब हंस का जोड़ा जो बड़ा सुन्दर स्वरूप होता है, आवे तो उस के आने की शीघ्र ही ख़बर दे॥

राजा–हां, है तो उचित, सिवाय इस के और कोई प्रबन्ध हो ही नहीं सकता। अच्छा दारोग़ा से कह दो कि शीघ्र ही प्रबन्ध करे॥

समुद्र की वार्त्ता

बेटा! इस पृथिवी के चारों ओर जल ही जल है। रङ्ग उस का हरा हरा, स्वाद में खारी, पीने के काम का नहीं, कहीं २ पृथ्वी पर जहां कोई नदी मिलती है, मीठा है, उस में बड़ी २ मछलियां और जल के जीव रहते हैं, मोती भी समुद्र से ही उत्पन्न होते हैं, सीप एक जल जीव होता है, वह क्वार के महीने में ऊपर को मुंह खोले पड़ा रहता है, क्वार के महीने में जब स्वाति नक्षत्र में मेह बरसता है, और बूंद सीप के मुख में पड़ती है तो वह उस को ले कर समुद्र की तह में बैठ जाता है, उस के पेट में से मोती निकलते हैं॥

राधारमण–ताऊ जी! समुद्र का पानी खारी क्यों है?

धर्मसिंह–बेटा! जब से संसार है, तब से यही रीति चली आई है कि

ग्रीष्म ऋतु में समुद्र से भाप उठती है, वह बादल बन पृथ्वीतल पर बरसती और पृथिवी की रेही को धोती हुई समुद्र को चली जाती है, जिस समय फिर भाप बन कर पानी उड़ता है तो खारापन नीचे रहजाता है और निरा मीठा पानी भाप बन २ उड़ जाता है॥

राधारमण–ताऊ जी ! वह खारेपानी की भाप मीठी कैसे होती है ?

धर्मसिंह––बेटा ! भाप हर पानी से मीठी ही उठती है और सहस्रों लाखों वर्षों से यही रीति है और बराबर पृथ्वी की रेही घुल २ कर समुद्र ही में पहुंचती रही है, इस कारण से समुद्र का पानी खारी है ॥

राधारमण––तो ताऊ जी ! संसार कितने दिन से है ? ॥

धर्मसिंह––बेटा ! प्रत्येक देशवासी भांति २ से कहते हैं, तुम सुनो, जो जो संवत् प्रत्येक देशों में प्रचलित हैं, उन को सुन लो, उन से समझ लेना।

चीनी ९, ६०, ०२, ३९४ खिताई ८, ८८, ४०, ३६६ कालडिया १, ५१, ८९४ इबरानी ५, ८९८ फ़ारिस १, ८९, ८६४ मिसरी २७, ५४८ कलियुगी ४, ९९४ युधिष्ठिरी ४, ९९४ नूही ४,९९४ इब्राहीमी ३, ८१५–पारटा ३, ५९८ मूसवी ३,४६७ दाऊदी २, ९२५ आर्य संवत् १, ९६, ०८, ५२, ९९४ ॥

मेरी समझ में तो संसार एक अरब छानवें किरोड़ ८ लाख ५२ हज़ार९९४ वर्ष से है, मुसलमान, अङ्गरेज़ ८ हज़ार वर्ष से बतलाते हैं, परन्तु उन में भी कोई २ अब डेढ़ किरोड़ वर्ष तक कहने लगे हैं । अब मैं तुम्हारी कहानी सुनाता हूं, सवाधान हो जाओ ॥

कहीं २ अच्छे २ कमलादि जल के वृक्ष समुद्र में होते हैं और कहीं २ सुगन्धित पुष्प होते हैं और कहीं २ जल के पक्षी हंसादि फूलों में रहते हैं और हंस उन सीपों से मोती निकाल २ खाया करते हैं । आज कल समुद्र के बड़े बड़े चार भाग माने जाते हैं और वह दिशाओं के नाम से एक पूर्वी, दूसरा पश्चिमी, तीसरा दक्षिण अर्थात् हिन्द का, चौथा उत्तरी समुद्र कहलाता है । एक जगह समुद्र के किनारे एक हंस का जोड़ा रहता था और वहीं एक काक व काकली भी समुद्र के बाहर एक वृक्ष पर रहते थे । काकली व हंसनी में बहनापा हो गया और एक दिन यूं बातें करने लगीं॥

हंसनी–बहन काकली ! रात को तुम कहां जाया करती हो ?

काकली–बहन ! रात को हम सब काक काकली बाग़ों में रहते हैं क्योंकि जो एक जगह न रहें तो उल्लू हम को मार डाले और उल्लू और काकों की सदा से शत्रुता है, कई बार भारी २ लड़ाई हुई है और बहुत कुछ मारे गये हैं ॥

हंसनी–बहन काकली ! बाग़ कैसे होते हैं ?

काकली–गांव में भांति २ के वृक्ष एक जगह पर लगाये जाते हैं, उन को बाग़ कहते हैं। जो तुम कभी बाग़ में बसो तौ चित्त प्रसन्न हो जावे॥

हंसनी–बहन! हम बाग़ में कैसे बस सकते हैं, हम तौ पानी में रहते हैं, विना पानी हम को चैन कहां॥

काकली–बहन! एक राजा ने बड़ा भारी बाग़ लगा, उस में एक बड़ा सरोवर बनवाया है। उस में कमल भी हैं। मैं जानती हूं कि उस में तुम को बहुत सुख मिलेगा, यहां से दोपहर के मार्ग पर है। भला एक दिन तौ उस में बसो। मेरी समझ में तौ तुम ऐसी प्रसन्न होगी कि वहां से आने को मन न चाहेगा॥

हंसनी–बहन! हम तौ मोती खाते हैं, वहां मोती कहां मिलेंगे॥

काकली–मैंने काक से सुना है कि राजा ने उस में मोती डलवा रक्खे हैं कि कोई हंस आजावे तौ भूखा न रहे। वह राजा सब को भोजन देता है। बड़ा धर्मात्मा है॥

हंसनी–तो आज मैं अपने हंस से पूछूंगी, वह अवश्य चलेंगे, फिर तुम भी साथ हो तौ और भी अच्छी बात है॥

काकली––बहन! हम तौ उस के निकट ही रहते हैं, परन्तु मैं काक से पूछ लूंगी॥

हंसनी––(हंस से) महाराज! जब से हम ने जन्म लिया है, इसी समुद्र में रहते हैं, कभी संसार हमने नहीं देखा, आप दया कर हम को संसार की सैर करा दीजिये॥

हंस–प्यारी! हम समुद्र के जीव हैं, ऐसा जल हम को कहां मिलेगा और जो कहीं जल मिल भी गया तौ भोजन के लिये मोती कहां से आवेंगे?

हंसनी–महाराज! बहन काकली कहती है कि यहां से दोपहर के मार्ग पर एक राजा ने बाग़ लगा, उस में बड़ा भारी सरोवर बनवाया है और उस सरोवर में मोती भी डलवा दिये हैं॥

हंस––प्यारी! राजा लोगों का क्या ठीक है, किसी ने कहा हैः–

दोहा

राजा योगी अग्नि जल, इन की उलटी रीति।
डरते रहियो परशुराम, यह थोड़ी पालें प्रीति॥

कहीं ऐसा न हो कि राजा हम को पकड़वा लेवे और नाहक़ का दुःख भोगना पड़े॥

हंसनी—महाराज ! वह राजा बड़ा धर्मात्मा है, ऐसा कभी न करेगा, और जो ऐसा किया भी तो वह आप ही पापी कहलावेगा और हमें तो एक दिन मरना ही है ॥

हंस—अच्छा तो कल चलो, परन्तु काक व काकनी भी साथ हों ॥

दूसरे दिन जब काक व काकनी आये,तो हंस व हंसनी उन के साथ चल दिये,काक व काकनी वृक्ष पर जा बैठे और हंस व हंसनी सरोवर में उतर गये॥

हंस—(हंसनी से) प्यारी ! जब तक राजा आज्ञा न दे, मोती न चरना, क्योंकि सिवाय परमात्मा के और किसी का माल बिना मालिक के पूछे अपने काम में नहीं लाना चाहिये ॥

हंसनी—("जो आज्ञा" कह दोनों पानी में खड़े हो गये, परन्तु कुछ खाते पीते नहीं) ॥

माली—(हंस का जोड़ा देख, दर्बार में पहुंच) श्री महाराज की बढ़ती रहे, आज सरोवर में बड़े सुन्दर २ दो पक्षी आये हैं, मैंने ऐसे कभी नहीं देखे और एक पांव से खड़े हैं, कुछ खाते पीते नहीं ॥

राजा—(पण्डित व मन्त्री समेत बाग़ में जाते हैं)

मन्त्री—आहा महाराज ! यह तो हंस का जोड़ा आप के आगया ॥

राजा—(हंस से) भाई हंस ! तुम मोती क्यों नहीं चरते ? ॥

हंस—महाराज ! बिना आज्ञा हम किसी की वस्तु नहीं ले सकते। अब आपने आज्ञा दी तो अब चरेंगे और रातभर, बस भोर होते ही चले जायंगे॥

दोहा

हम पंछी हैं पाहुने, आनि कियो विश्राम ।
भोर भये उठ जायंगे, वसो तुम्हारे गांव ॥

राजा—नहीं भाई ! तुम कुछ दिन यहां रहो, तुम्हारे रहने से मेरी बड़ी प्रशंसा होगी, लोग कहेंगे कि राजा के हंस भी हैं,जो और किसी के नहीं ॥

हंस—महाराज ! हमारे भोजन देने में आप को बड़ा श्रम होगा, हम को सवासेर मोती नित्यप्रति चाहियें ॥

राजा—आप को सवासेर मोती नित्यप्रति मिला करेंगे, आप यहीं रहें॥

हंस—(बहुत अच्छा, कह, मोती चरने लगे, राजा ने नियम कर दिया कि तिदिन बाग़ में आना और हंसों को देख बात चीत कर चला जाना। कुछ काल में हंसनी ने सौ अंडे दिये और दिन पूरे होने पर सौ बच्चे निकले)॥

राजा—(हंस के बच्चों को देख, अति प्रसन्न हो) हंस ! बड़ी खुशी का समय है ॥

हंस--महाराज ! अब हमारे सौ बच्चे और हो गये, अब मुझे सोच है कि इतने हंसों को आप भोजन न देसके तो मेरी और आप की अपकीर्त्ति होगी और वियोग तो हो ही जावेगा। किसी ने कहा है कि सदा इस बात का ध्यान रक्खे कि अपनी और अपने मित्र की अपकीर्त्ति न हो, जो मनुष्य अपने मित्र की सामर्थ्य से अधिक उस के घर मनुष्य ले जाता है और उन की अच्छी ख़ातिर नहीं बनती तो दोनों की अपकीर्त्ति होती है, इस लिये आप सोच विचार कर आज्ञा दीजिये कि हम कहीं जाकर अपने रहने का प्रबन्ध कर आवें और एक जोड़ा बच्चों का आप के पास छोड़ देंगे, इस में आप की कीर्त्ति भी बनी रहेगी और हमारी प्रीति भी कम न होगी और कभी २ आप से मिलते भी रहेंगे॥

राजा--(सोच कर) आप की इच्छा, पर अब तो बच्चे यहीं रहेंगे, मैं इन पर पहरेदार रख दूंगा, बहुत अच्छी रक्षा करेगा॥

हंस--हां महाराज ! बच्चे तो यहीं रहेंगे, आप तो मालिक ही हैं, यहां हमारा सिवाय आप के और कौन है॥

राजा--(मन्त्री से) मन्त्री जी ! यहां का प्रबन्ध करो, जब तक हंस और हंसनी लौट कर न आवें, तब तक पहरे वाले इन बच्चों की भली भांति रक्षा करें॥

मन्त्री--("जो आज्ञा" कह, प्रबन्ध करता है)॥

अब हंस और हंसनी समुद्र को चले गये और यहां राजा ने बाग़ का आना छोड़ दिया, दैवयोग से एक दिन एक बच्चा कूद कर बाग़ के बाहर चला आया और राजा का शिकारी जो फिरता था, उसने शिकार कर कांसे में पहुंचा दिया, वह मांस राजा को स्वाद लगा और खा कर, बोले-

राजा--आज यह क्या पक्षी बनाया है, यह मांस तो हम को बड़ा ही प्रिय जान पड़ता है, हमने आज तक ऐसा मांस कभी नहीं खाया, क्या ऐसा नित्य मिल सकता है ?

शिकारी--(प्रसन्न हो, इनाम की आशा कर) महाराज ! यह शिकार आज मैं बड़े श्रम से लाया हूं, परन्तु जो आज्ञा हो तो नित्य ला सकता हूं॥

राजा--अच्छा रसोइया जी ! इस को एक हज़ार रुपये इनाम दिलवादो, आज से ऐसा ही शिकार नित्य लाया करे। अब यह बात सब नौकर चाकरों को प्रकट हो गई कि आज राजा का शिकारी बहुत अच्छा शिकार लाया और राजा ने उस को इनाम देकर आज्ञा दी है कि नित्य ऐसा ही शिकार लाया करे (शिकारी और माली आपस में नातेदार थे)॥

शिकारी ने उस से जाकर सब समाचार कहा कि आज तुम्हारे बाग़ से

एक बच्चा हंस का बाहर आगया था, उस को मैंने शिकार कर राजा को खिलाया, राजा ने यह एक हज़ार रुपया इनाम दिया है और आज्ञा दी है कि नित्य ऐसा ही शिकार लाया करो ॥

माली--अरे भाई ! यहां तो ऐसे २ बहुत हैं,पर एक काम करो कि एक रोज़ लेजाया करो, जिस से किसी को ख़बर न पड़े और राजा भी प्रसन्न रहैं॥

अब शिकारी का नियम होगया कि एक बच्चा रोज़ शिकार कर लाता और कांवे में लगवा देता, यहां तक कि सौ बच्चे कुछ दिनों में मारे गये और दैवयोग से जिस दिन सब बच्चे मारे गये उसी दिन हंस और हंसनी बाग़ में आगये और बच्चे न देख, राजा के पास पहुंचे ॥

राजा-(हंस से) आइये, कुशल तो है, सब तरह से अच्छे तो रहे ॥

हंस--महाराज ! अच्छे तो रहे, पर यह तो बतलाइये कि हमारे बच्चे कहां हैं, क्या आप ने कहीं और जगह भेजदिये हैं ? ॥

राजा--(चौंककर)एं,क्या वहां बच्चे नहीं हैं ? मन्त्री ! बच्चेजल्द मंगाओ।

मन्त्री--(बहुत जल्द माली को बुलाता है) ॥

माली--श्री महाराज की बढ़ती रहे, कैसे याद किया है ॥

राजा--माली ! हंस के बच्चे कहां हैं ? जल्द बतलाओ, हमने तो कोई आज्ञा उन के अलग करने की नहीं दी फिर सरोवर में क्यों नहीं हैं ॥

माली—महाराज ! आप का शिकारी नित्यप्रति एक बच्चा मार लाता था, आपने ही तो उस को आज्ञा दी थी कि रोज़ एक मार लाया करो,इस लिये मैं कुछ न कह सका,आज ही तो सब से पिछला बच्चा शिकार हुआ है॥

राजा--(सोच में आ, अचेत हो, थोड़ी देर में सावधान हो, हंस की ओर देख) भाई ! मुझ से यह अपराध बना कि मैंने यह न पूछा कि यह शिकारी शिकार कहां से लाता है । और उस को हुक्म देदिया । हाय ! मैंने बड़ा पाप किया ! अब इस पाप से छुटकारा कठिन है, इस लिये तुम मुझ को शाप दो कि मैं उस को भुगत, इस पाप से छूटजाऊं ॥

हंस--(दुःखित हो और पहिले का पालन याद कर,कुछ धैर्य धर)महाराज ! आपने हमारा बड़ा पालन किया है, जाने दो, अब मैं क्या शाप दूं, जो जीते रहे तो आप की कृपा से बहुत बच्चे होजायंगे ॥

हंसनी--(अपने मन में बड़ी दुःखित हो,मारे स्नेह के) राजन् ! जो तुम मेरा एक भी बच्चा जीता छोड़ देते, तो मैं उस एक को ही सौ के समान समझती,परन्तु तुम ने तो मेरा एक भी बच्चा जीता न छोड़ा, सब खालिये ।

इस लिये मेरी आत्मा को शान्ति नहीं होती और शाप देती हूं। जैसे कि तुमने मेरे सौ बच्चे मारे हैं, वैसे ही तुम्हारे भी सौ बच्चे एक साथ मरें॥

राजा--हंसनी! मैंने बड़ी प्रसन्नता से तेरा शाप अङ्गीकार किया, पर मुझ से तो अपनी आंखों से यह दुःख न देखा जायगा, इस का तो कुछ प्रबन्ध करो॥

हंसनी--राजा! अभी तक मुझे शान्ति नहीं हुई और यह भी अवश्य कहती हूं कि जब यह पाप तुम्हारे ऊपर पड़ेगा, तो पहिले से तुम अन्धे हो जाओगे, तुमने मेरी बड़ी सेवा की है इस लिये आंखों से यह दुःख न देखोगे॥

अब राजा दिन रात इसी सोच विचार में रहने लगे कि दैवयोग से नारद जी एक दिन राजा से मिलने आये॥

राजा--(जलादि से सेवा कर) महाराज! पधारिये, आज तो मेरे ऊपर बड़ी कृपा की, आप कुशल तो हैं और कुशल तो आये? मार्ग में कुछ कष्ट तो नहीं हुआ?

नारद जी-हां, राजा! अच्छे रहे, पर आप यह तो बतलाइये कि आप को आज कल शोक क्या है? जो ऐसे दुःखी हो रहे हो॥

राजा-महाराज! मुझ से अनजाने एक अपराध बन गया कि मैंने हंस के सौ बच्चे मरवा कर बिना पूछे खालिये और हंसनी ने मुझे शाप दिया है कि तेरे सौ पुत्र एक साथ मरें और तू अन्धा हो, सो इस का कुछ उपाय आप बतलावें कि यह शाप मेरे सिर से टले॥

नारद जी-(विचार कर) राजन्! यह शाप वृथा न जायगा, यह बात तो तुम से होनी ही थी कि जो हंसनी ने शाप दिया क्योंकि हर काम को कुछ मिस चाहिये, इस लिये तुम्हारे मांस खाने से यह पाप तुम्हारे ऊपर आया, देखो वेद स्मृति में मांस खाने की इसी कारण आज्ञा नहीं दी गई क्योंकि इस में जीवहिंसा होती है और इसी लिये ऋषि मुनि इस से बचते हैं। देखो तुम्हारे गुरु महाराज ने भी तो तुम को मांस खाना वर्जा था, परन्तु तुम ने गुरु का वचन नहीं माना। अब अवश्य बदला भोगोगे॥

राजा-मुनिराज! यह तो बतलाइये कि यह शाप कब मेरे ऊपर पड़ेगा॥

नारद जी-सौ जन्म तक तो राजन्! तुम को यह शाप कुछ न करेगा और सौ जन्म तक तुम बराबर राजा होते चले जाओगे, अपने सौवें जन्म में तुम अन्धे उत्पन्न होगे और भारी राज तुम को मिलेगा और अपना राज तुम अपने पुत्रों को सौंप दोगे, उस समय तुम्हारे भतीजे झगड़ा करेंगे और उन में लड़ाई होगी और तुम्हारे सब पुत्र मारे जांयगे, जो तुम को याद रहे तो अपने पुत्र और भतीजों में झगड़ा न होने देना॥

राधारमण–ताऊ जी! मांस क्या होता है?॥

धर्मसिंह–बेटा मांस वह है, जिस से हमारा तुम्हारा शरीर बना है और देखो जब तुम्हारी टांग छिल गई थी, तब जो वह लाल २ दीखता था, तुम्हें याद होगा॥

राधारमण–क्या ताऊ जी! इस को मनुष्य खाते हैं?॥

धर्मसिंह–हां बेटा! कुछ मनुष्य खाते हैं और बहुत से नहीं खाते॥

राधारमण–वह लोग इस को क्यों खाते हैं?॥

धर्मसिंह–बेटा! क्या बताऊं, कुछ चलन सा पड़गया है॥

अब राधारमण और मैं और मेरे ताऊ जी उठे और भोजन कर, हम सब सो रहे, दूसरे दिन सांझ हुई, फिर ताऊ जी हम दोनों को ले बैठे॥

राधारमण–ताऊ जी! तुमने हम से एक दिन कहा था कि तुम को लकड़हार की कहानी सुनावेंगे, वह आपने नहीं सुनाई, कृपा कर आज सुना दीजिये॥

धर्मसिंह–अच्छा बेटा! परन्तु तुम जागते रहना, सोना मत, वह कहानी बड़ी है, वैसे तो तुम उसे सुन कर बहुत ही प्रसन्न होगे॥

एक लकड़हारे की कहानी

बेटा! एक शहर में एक लकड़हारा रहता था, उस की एक स्त्री थी, परन्तु बड़ी फूहड़, कुछ घर का काम काज ही नहीं जानती थी और न बालकों का अच्छी तरह पालन कर सकती थी, नित्य पति से लड़ा करती, तुम जानते हो कि परमेश्वर ने प्रीति बुरी बनाई है, इसी कारण वह उस की रक्षा करता, यहां तक कि उस के पांच चार बच्चे उत्पन्न हुवे, अब लकड़हारा नित्य जंगल से लकड़ी लाता और उन को बाज़ार में बेच, रोटी ला दिया करता, परन्तु किसी दिन स्त्री बालक और आप का पेट न भरता, एक दिन लकड़हारा जंगल से लकड़ियां ला रहा था कि उस को एक राजा और रानी मिले

राजा–लकड़हारे! तेरा क्या नाम है?॥

लकड़हारा—अजी मेरा नाम सूरसेन है॥

राजा—सूरसेन तो हमारा भी नाम है (रानी से) रानी! बतलाओ यह क्या बात है कि हम राजा हैं और यह लकड़हारा है और हमारा और इस का नाम एक ही है और चाहे जाति का भी यह क्षत्री ही हो॥

लकड़हारा–हां महाराज! मैं जाति का क्षत्री हूं, इस लिये भिक्षा तो मांग ही नहीं सकता, लकड़ी काट २ कर दिन पूरे करता हूं॥

रानी-(मुसकरा कर) राजन् ! इस की स्त्री मूर्ख है, जो कुछ ज्ञानवान् होती तो इस की यह दशा न होती, देखिये इस के तन पर कपड़ा तक नहीं और दुबलापन से सब हड्डियां दृष्टि पड़ती हैं ॥

राजा-(क्रोध में आ) अच्छा रानी ! तू इस के घर जा, प्रबन्ध कर, देखूं तो कैसे इस को धनाढ्य बनाती है ॥

रानी-महाराज ! जो मुझे आज्ञा है तो जाती हूं और मैं बहुत ही शीघ्र इसे धनाढ्य दिखला दूंगी और आप इस को पहचान भी न सकेंगे ॥

राजा-(सिवाय एक जोड़ी कपड़े नित्य पहरने के सब गहना रानी से ले लिया और आज्ञा दी कि) जाओ, इस के साथ चली जाओ और इस को धनाढ्य बनाओ ॥

रानी-("जो आज्ञा" कह, लकड़हारे के पीछे होली) ॥

लकड़हारा--बेटी ! तुम क्यों मेरी विपत्ति में पड़ती हो, जाओ राजा को मनालो, मैं भी हाथजोड़ी व विनती करूंगा, देखो, स्त्री मेरी बड़ी खोटी और कुटिल है, वह तुम से बुरा भला कहैगी और तुम को क्लेश होगा ।

रानी--पिता ! मैं तुम को कुछ कष्ट न दूंगी और माता जो मुझे बुरा भला कहैगी, उसे सुन लूंगी, तुम विश्वास रक्खो, मुझे राजा की आज्ञा पालनी है, क्योंकि स्त्रियों का पति ही देवता है, पति की सेवा, पति की आज्ञा पालन से ही स्त्री स्वर्गलोक पाती है और किसी तरह पर नहीं पा सकती । सो तुम कुछ संदेह न करो, बहुत थोड़े दिन में परमेश्वर ने चाहा तो तुम्हारा दरिद्र दूर हो जायगा और मैं राजा के पास चली जाऊंगी, पर तुम किसी से मेरा वृत्तान्त न कहना ॥

लकड़हारा--बेटी ! हमारे तो तुम्हारे रहने के योग्य घर भी नहीं और न खाने को बर्त्तन हैं, मैं तो दो आने की लकड़ियां बेच, बाज़ार से रोटियां मोल ले आता हूं और उन्हीं रोटियों में सब बाल बच्चे दिन काट देते हैं, इस में चाहे कोई भूखा रहो, चाहे अघाया ॥

रानी--तो क्या तुम्हारी घर वाली पीसती, पोती भी नहीं है ?

लकड़हारा--बेटी ! जो वह पीसती पोती तो यह दरिद्र ही क्यों रहता । देखना, अब तुम्हें देख, कैसी २ मूर्खता की बातें कहैगी, मुझे तो यही सोच है॥

रानी--पिता जी ! कोई तुम्हारे पड़ोस में ऐसी भी स्त्री है कि जिस के घर चक्की और चरहा मिल जावे ॥

लकड़हारा--बेटी ! मेरी बहन ही का घर है, उस में सब वस्तु हैं ॥

रानी--पिता जी ! तुम्हारे कोई बर्त्तन भी है ?

लकड़हारा--बेटी ! मिट्टी के करुवे से पानी पीते हैं, और हाथ पर रोटी रख, खा लेते हैं, बर्त्तन कोई भी नहीं है ॥

अब रानी ने मार्ग में से कुछ लकड़ियां और कुछ चौड़े २ ढाक के पत्ते बटोर लिये और लकड़हारे से बोली ॥

रानी--पिता जी ! तुम लकड़ी कहां बेचते हो ? ॥

लकड़हारा--बेटी ! कुछ दिनों से एक हलवाई के डाल आता हूं, वह दो आने दे दिया करता है ॥

रानी--पिता जी ! जो मेरा कहना करो तो तुम्हें एक बात बतलाऊं॥

लकड़हारा-बेटी ! अब तो तुझे बेटी कह चुका,जो तू कहेगी वही करूंगा॥

रानी--तो अच्छा, तुम आज लकड़ियां जौहरियों के महोल्ले में ले जाओ और सवा चार आने मोल कहना, किसी से कम न लेना, चाहे बिकें चाहे न, और जब बिक जावें तो तुम चार आने का नाज और एक पैसे का निमक ले आना ॥

लकड़हारा--बहुत अच्छा, बेटी ! अब शहर के निकट ही आगये और यह आगे ही जौहरियों का मुहल्ला है, तुम इस वृक्ष के नीचे बैठो, मैं जल्द लकड़ी बेच कर आता हूं, तुम को साथ ले चलूंगा । (और शहर को चला गया । दैवयोग से एक जौहरी घर से लकड़ियों की तलाश में बाहर आया, देखा कि एक लकड़हारा लकड़ियों का गट्ठा सिर पर रक्खे जा रहा है,बोला कि ओ लकड़हारे ! ओ लकड़हारे ! इधर आ) ॥

लकड़हारा--(लौट कर) महाराज ! आप मुझे बुलाते थे, बताइये क्या काम है ॥

जौहरी--भाई ! लकड़ी बेचता है ?

लकड़हारा--हां महाराज बेचता हूं ॥

जौहरी--बोल क्या लेगा ?

लकड़हारा--सवा चार आने लूंगा ॥

जौहरी--(सवा चार आना दे) इस मकान में जो सामने दीखता है, डाल दे ॥

लकड़हारा--चलिये आगे चलिये । (और लकड़ियां डाल आया, परन्तु अपने मन में मारे प्रसन्नता के फूला न समाता था और कहता था कि आज

तक मेरी लकड़ियां इतने दामों की कभी नहीं बिकीं, निश्चय यह रानी बड़ी भाग्यवान् है। अब कोई दिन में हमारे भले दिन आने वाले हैं, यह कह और किसी दूकान से झटपट चार आने का नाज और एक पैसे का नोन ले, रानी के पास आया और बोला कि बेटी ! नाज तो बहुत आया, आग अच्छे पेट भर रोटी मिलेगी)॥

रानी–पिता जी ! चलिये, मैं देख तो लूं कि तुम्हारे घर का क्या ढङ्ग है, परमेश्वर ने चाहा तो शीघ्र धनाढ्य हो जाओगे॥

अब लकड़हारा आगे और रानी पीछे, दोनों जा रहे हैं, थोड़ी दूर जा कर लकड़हारे ने इशारा किया कि मेरा घर तो यह दीख रहा है। रानी ने जब अच्छी तरह देखा तो जान लिया कि एक टूटा सा छप्पर, आगे छोटी छोटी दीवारें, पृथ्वी पर फूंस बिछा हुआ है, खाट एक भी नहीं, परन्तु छः सात बच्चे कुरूप, जिन के तन पर कपड़ा, न पांव में जूता, लंगोटी बांधे हुये कभी धरती और कभी फूंस पर लोट लगा रहे हैं, हर एक का शरीर मैला काले कव्वे से भी अधिक श्याम हो रहा है। यह दशा देख, रानी ने बहुत सोच किया कि ऐसी भी स्त्रियां इस संसार में बसती हैं। यह इन्हीं बातों का सोच विचार कर रही थी कि इतने में लकड़हारी ने रानी को अपने पति के पीछे देखा, बड़े ज़ोर से एक दुहत्तर लकड़हारे के मारी और कहने लगी कि इस बुढ़ापे में यह क्या बुढ़भस सूझी, अरे ! सौक लाया है ? सौक ! अरे मेरे ऊपर सौक लाया है ? अच्छा, देख तो कैसा मज़ा चखाती हूं॥

अब विचारा लकड़हारा चुप, कुछ नहीं बोलता और रानी की ओर देख रहा है॥

रानी–मा जी ! मैं तुम को सुख देने आई हूं, मैं सौक नहीं, तुम्हारी बेटी हूं॥

लकड़हारन–बेटी २ यह मेरी बेटी कहां से आई ?

लकड़हारा–देखो, यह इन्हीं के सहारे से आज हम को इतना अन्न मिल गया है॥

लकड़हारन–हां, आज तू नाज लाया है, रोटी नहीं लाया॥

रानी–मा जी ! नाज मैंने कह कर मंगाया है, थोड़ी देर में आप को रोटी तैयार कर दूंगी॥

लकड़हारन–अच्छा मैं भी तो देखूंगी, तू कैसे रोटी खुलाती है॥

रानी–(सोच कर)

दोहा–

मूरख को मुह बाम्बई, बोले वचन भुअङ्ग ।
याकी ओषधि मौन है, विष नहिं व्यापे अङ्ग ॥

(लकड़हारे से) पिता जी ! मुझे अपनी बहन का घर बता दीजिये । (और ढाई सेर नाज ले, साथ २ चलदी)

लकड़हारा–(पड़ौसन से) बहन ! यह एक हमारी मुंह बोली बेटी है, आज तुम्हारे नाज पीसना और रोटी बनाना चाहती है॥

पड़ौसन–भैया ! घर तुम्हारा ही है, चाहे सो करो, तुम्हारी इच्छा ॥

अब रानी ने झटपट पीस और रोटी कर, लकड़हारन के सम्मुख जा धरीं, सब ने अच्छी तरह पेट भर खाईं और कुछ बच भी रहीं ॥

श्रोतृगण ! आज यह पहिला ही दिन है कि लकड़हारे और उस की स्त्री और बच्चों ने रानी की चतुराई से पेट भर रोटी खाई है, भला आगे को ऐसी रानी प्रबन्धकर्त्ता के होते क्यों सुख न मिलेगा । देखो, धर्मात्मा स्त्रियां ऐसी ही होती हैं । आप लोग विचार कर देखें तो ज्ञान पड़ेगा कि गम्भीर स्वभाव और आज्ञाकारी और सावधान स्त्रियां ऐसी ही होनी चाहियें। विचारो तो, कि अच्छे क़ालीनों पर बैठने वाली और कैसे २ अच्छे स्वादिष्ट भोजन पाने वाली, जिस के सहस्रों नौकर चाकर सेवक आज्ञा पाते ही कमर बांध काम करने को तैयार, आज वह अपने हाथ से नाज पीस कर रोटी पका, बिना दाल तरकारी आप भोजन करे, यह धर्म में बन्धी हुई नहीं तो कुछ और है ? नहीं नहीं, यह न समझिये कि उस ने लाचार हो, ऐसा किया, वरन धर्म में बन्धी हुई अपने पति की प्रसन्नता और अपने वचन की सच्चाई दिखाने को यह विपत्ति और दुःख उठा रही है ॥

लकड़हारन–(रानी के चरण ले) बेटी ! जो कुछ मैंने तुम से कहा है सो क्षमा करना, मैंने यह न जाना था, तुम्हारे ही कारण आज हमारी और बच्चों की आत्माओं को सुख मिला । पहिला ही दिन है कि जो हम सब ने पेट भर रोटी खाई है, अब जैसे तुम आज्ञा दोगी, वह ही करेंगे ॥

लकड़हारा–(भोर ही अपनी कुल्हाड़ी और रस्सा ले,जङ्गल को जाता है)

रानी–पिता जी ! आज तुम उसी जौहरियों के मोहल्ले में जाना और लकड़ियों का मूल्य सवा चार आने से अधिक न कहना और नक़द पैसे ले आना,क्योंकि अभी तो घर में नाज है ही,सब दाम इकट्ठे हो जांयगे तो मंगा लेंगे॥

लकड़हारा–(बहुत अच्छा, कह) जङ्गल को चल दिया ॥

लकड़हारन–अब बेटी ! जो काम तुम मुझको बताओगी वह ही करूंगी॥

रानी–मा जी ! यह बचा हुआ अन्न तो आज तुम पीस लाओ और मैं चूल्हा तयार करती हूं और बड़े लड़के से कह दो कि पिता जी के साथ जाकर थोड़ी लकड़ियां ले आवे, रोटी करने के काम तो आवेंगी॥

लकड़हारन-(बहुत अच्छा, कह) ऐ सुल्हुवा ! अपने बाप के साथ जाकर जंगल से थोड़ी लकड़ियां ले आ, जा जल्द जा॥

सुल्हुवा–अपने बाप के साथ जंगल को चला गया। रानी और लकड़हारन ने मिल कर एक कोने में चूल्हा तयार किया, संध्या समय लकड़हारन उस में से कुछ अन्न पीस लाई,शेष दूसरे दिन पीस लिया,लकड़हारे ने सवाचार आने के पैसे लाकर रानी के हाथ दिये,अब तीन दिन में पौनेतेरह आने के पैसे इकट्ठे होगये और सब ने पेटभर रोटी भी खा ली। तीसरे दिन दुपहर पीछेः–

रानी—पिता जी ! मण्डी चले जाओ, और यह पौने तेरह आने के पैसे लेते जाओ, आठ आने का अन्न, और एक आने की सांभर, दो आने का तेल, लेआओ और आध आने की मिर्च, और एक पैसे की खटाई लेते आना, एक आना बच रहा, यह और किसी काम आवेगा॥

लकड़हारा—(बहुत अच्छा,कह मण्डी को चल दिया,और आठ आने का पच्चीस सेर नाज और एक आने का तीनपाव नून, और दो आने का आधसेर तेल, और मिर्च खटाई सब वस्तुएं ले आया)॥

रानी—(लकड़हारन से) मा जी ! अब ढाईसेर अन्न तो नित्य तुम पीस लाया करो, और रोटी मैं करलिया करूंगी (लकड़हारे से) सुल्हुवा की लकड़ी तो तुम एक आने की रोज़ बेचलाया करो और सुल्हुवा की जलाने को बहुत होंगी॥

अब यह प्रबन्ध रानी ने करदिया, परन्तु थोड़ी देर में ध्यान आया कि वर्त्तन तो इसके घर में कोई है ही नहीं, अब तक मांग २ कर दिन काटे, चार पैसे हैं, तीन घड़े और एक कूंडा तो अवश्य ही चाहिये (और लकड़हारेसे) पिता जी ! दो वस्तु बाज़ार से ले आओ (और वह ले आया)॥

लकड़हारन—बेटा ! कूंडा और घड़े क्या करोगी ?॥

रानी—मा जी ! एक घड़े में तो नाज रहेगा, और दूसरे में आटा और तीसरे में पानी, पीने के लिये और वर्त्तने के लिये॥

लकड़हारा—बेटी ! तवा तो हमारे है ही नहीं,रोटी काहे पर करोगी।

रानी—मा जी ! कल के पैसों में से तवा भी मंगवालेंगे ॥

अब रानीने पड़ौसन के जा, खटाई पीस, नोन मिर्च डाल, चटनी तैयार की और अपने सामने उस लकड़हारन से रोटी बनवाई और घर लाकर चटनी और रोटी लकड़हारे व लकड़हारन और बच्चों को खिलाईं, इन बेचारों ने जन्म से सिवाय रूखी फीकी रोटी के कभी नोन भी न खाया था, चटनी से रोटी खा, बड़े ही प्रसन्न हुवे और समझे कि आज बड़ा पदार्थ व भोजन मिला और रानी को धन्यवाद दे, कहने लगे कि बीबी ! हमने तो तेरी बदौलत यह आज ऐसा भोजन किया है, आज तक यह वस्तु हमने सुनी भी नहीं॥

रानी—अभी तो चार ही दिन हुवे हैं, जो मैं यहां रही तो तुम को बड़ी २ अच्छी २ चीज़ें जिन का तुमने नाम भी नहीं सुना होगा, खिलाऊंगी॥

लकड़हारा और बच्चे

(रानी के मुंह की ओर देख) अब तुम कहां चली जाओगी ? ॥

अब थोड़े दिन में मिट्टी के वर्त्तन और तवा इकट्ठे कर लिये, और कुछ दिन में एक रुपया बचा कर लकड़हारे के हाथों बाज़ार से ऊन मंगाई, उस को तुन पड़ौसन से चरख़ा ले, कात लिया और कात कर आप और लकड़हारे के बच्चों से ऊन की डोरियां तैय्यार कराईं, घर का धन्धा तो पहिलेही लकड़हारन के सिर डाल दिया था, अब आप बैठी हुई बच्चों से ऊन की डोरियां बनवा रही है, जब डोरियां बनकर तैयार होगईं तो–

रानी—(लकड़हारे से) पिता जी ! इन डोरियों को बाज़ार में लेजाओ और एक सिरे से बोलते जाओ कि ऊन की डोरी, ऊन की डोरी, जब कोई तुम से पूछे कि इन डोरियों का मोल क्या है, तो तुम पांच रुपये बता देना और इतने से कम को कदापि न बेचना और बिकने के पीछे वहीं से चार रुपये की ऊन और आठ आने का चरखा लेते आना ॥

लकड़हारा—('बहुत अच्छा' कह, चला गया और सब चीज़ ला, आठ आने रोकड़ा रानी को आ दिये)॥

अब इस घर का यह प्रबन्ध हुवा कि भोर होते ही लकड़हारन तो नाज पीस, घर साफ़ कर, बच्चों को न्हिला धुला, रोटी बनाती और रानी चारों बालकों समेत ऊन कात, डोरियां बनाया करती, लकड़हारा अपनी और मुल्हुवा की लकड़ियां सवापांच आने रोज़की बेच लाता और मुल्हवा से घर के ख़र्च को लकड़ियें लिवा लाता और दोपहर पीछे लकड़हारन भी डोरी

बनाया करती और दोनों बच्चे गुल्हुवा व मुल्हुवा भी दुपहर पीछे डोरियां बना लेते, यहां तक कि एक रुपये रोज़ की ऊन में पांच रुपये रोज़ की डोरियां तैयार होतीं और लकड़हारा संध्या को उन्हें बेचलाता, दस बारह दिन में रानी के पास पचास रुपये होगये, अब इस ने लकड़हारे को एक ख़िच्चर मोल ले दिया कि उस पर लकड़ियां काट, जङ्गल से लाद लाया करे और एक रुपया रोज़ की बेच दिया करे। ईश्वर की कृपा से ऐसा ढंग बना कि सौ दोसौ रुपया इकट्ठे होगये। अब रानी ने यह प्रबन्ध किया कि पांच तौ ख़िच्चर मोल ले दिये और दस नौकर रख दिये,ख़ूब आनन्द से दिन कटनेलगे॥

रानी—(लकड़हारे से) पिता जी! अब बरसात आने वाली है, और तुम ग्यारह तौ आदमी हो और पांच ख़िच्चर हैं, मेरी समझ में ऐसा करो कि पांच आदमी तौ पांच ख़िच्चर लाद लाया करें, और छः आदमी जङ्गल में ठहरे हुये लकड़ियां काटा करें, क्योंकि वर्षा ऋतु में सूखी लकड़ी बड़े श्रम से मिलती है और गीली लकड़ी कमती मोल पर बिकती हैं। और सूखी लकड़ी के ख़ूब दाम उठते हैं॥

लकड़हारा—अच्छा, आज से यही प्रबन्ध करता हूं, गुल्हुवा जङ्गल में छः आदमियों के साथ लकड़ियां कटवाया करेगा,और वहीं झौंपड़ी भी डाले देता हूं, दोनों वक़्त रोटी नौकरों को जङ्गल में ही पहुंचा दिया करूंगा,और पहाड़ के किनारे २ लकड़ियों का ढेर लगादिया जावेगा॥

रानी—पिता जी! जो तुम पहाड़ पर जाया करते हो तो एक पत्थर की शिल मुझे क्यों नहीं ला देते, मैं इन बच्चों को मसाले पीस २ अच्छे २ भोजन बना कर एक दिन तो खुला दूं॥

लकड़हारा—अच्छा बेटा! अब के लेता आऊंगा॥

अब लकड़हारे ने ऐसा प्रबन्ध किया कि छः नौकर और एक गुल्हुवा पहाड़ की तराई में लकड़ियां काट २ इकट्ठी किया करें, और चार नौकर उन लकड़ियों में से दो फेरे प्रति दिन लाया करें, और इस ने आप अपने घर के पास टाल बना ली, उस में बैठा हुआ लकड़ी बेचता रहे। अब लकड़हारे की जगह इस का नाम शूरसेन टालवाला विख्यात हो गया,कोई मनुष्य इस को लकड़हारा नहीं कहता था,दैवयोग से राजा की सेना ने उसी जङ्गल में पहाड़ के निकट जहां लकड़ियों का ढेर लगा था,पहुंच,मुक़ाम किया और वर्षा होने लगी। सिपाहियों ने लकड़ियां गुल्हुवा से मांगीं उस ने

मोल माँगा, इस में सिपाही क्रुद्ध हो गये और लकड़ियों में आग लगा दी और सुल्हुवा रोता हुआ घर को भागा ।।

सुल्हुवा—(रोता हुआ) पिता ! हमारी सब लकड़ियां फ़ौज वालों ने फूंक दीं ॥

लकड़हारा—(चिल्ला कर रोता है और हाय २ करता है) ॥

रानी—पिता जी ! क्या हुआ ? क्यों तुम चिल्लाद कर रोते हो, बताओ तो ? ॥

टालवाला—बेटी ! राजा के आदमियों ने हमारी सब लकड़ियों में आग लगा दी ॥

यह बातें हो रही थीं कि बहुत ही वर्षा होने लगी ॥

रानी—पिता जी ! ख़ूब मेह वर्षा है, मेरी समझ में तो सब लकड़ियों के कोयले होगये होंगे, इस समय तुम जाओ और देखो, जो कोयले होगये हों तो ख़िच्चरों में भरवा कर यहां डलवा जाना, क्योंकि उन का मोल भी पूरा पूरा मिल जावेगा और जो राजा मिल जावें तो उन के सामने रोना और कहना कि मुझे आप की सेना ने तबाह कर दिया, परन्तु हठ न करना, क्योंकि राजा लोग शीघ्र ही क्रुद्ध होजाते हैं, परन्तु मेरी शिक्ष न भूल जाना ॥

टालवाला—पांचों ख़िच्चर साथ ले, चल दिया, दैवयोग से राजा रास्ते में टहलते मिल गये, देखा कि एक लकड़हारा रोता आ रहा है, राजा धर्मात्मा था, इस लकड़हारे से बोला ॥

राजा—अरे बुड्ढे ! तू ऐसा चिल्ला २ कर क्यों रोता है ? मेरे राज में तुझे किस ने सताया, बता, जल्द बता, नाम ले, किस ने तुझे सताया है ?

टालवाला—महाराज ! आप की सेना ने मेरी सब लकड़ियां फूंक दीं, मैं ग़रीब हूं, मैंने इस लिये यह तैयार की थीं कि बरसात में बेच २ दाम उठाऊंगा, सो अब कहीं का न रहा, मेरा रुपया का तो रुपया ख़र्च हुआ और कुछ मिला भी नहीं ॥

राजा—अच्छा बुड्ढे ! भला तेरा कितना नुक़सान हुआ ।।

टालवाला—महाराज ! मैं यह तो नहीं बता सकता कि कितने का नुक़सान हुआ, यही पांच पचास हज़ार रुपये का हुआ होगा ॥

राजा—(इस को भोला आदमी समझ) अरे बुड्ढे ! पांच कितने और पचास कितने और सौ कितने और हज़ार कितने ? ॥

टालवाला—महाराज ! यह तो मैं नहीं जानता, मेरी बेटी ने मुझे बतलाया है कि पांच तो थोड़े होते हैं, हज़ार सब से अधिक, सो महाराज ! मैं

ने कम से कम भी कहदिये और अधिक से अधिक इस लिये कि मुझे झूठ बोलना न पड़े ॥

राजा—क्या बुड्ढे ! तू झूठ नहीं बोलता ? ॥

टालवाला—महाराज ! पहिले तो मैं झूठ बोला करता था, अब जब से मेरी बेटी आई है और उस ने मुझ से नांह कर दी है तब से मैं झूठ नहीं बोलता।

राजा—बुड्ढे ! जब तू झूठ बोलता था, तब अच्छा था या अब ?

टालवाला—महाराज ! जब मैं झूठ बोला करता था, तब तो मुझे और मेरे बच्चों को पेट भर रोटी भी न मिलती थी । अब जब से सच बोलता हूं तो आप की दया से कई हज़ार रुपये का माल तो मेरे घर में है ॥

राजा—(बुड्ढे को सीधा और सच्चा समझ) मन्त्री जी ! हज़ार रुपये इस बुड्ढे को ख़ज़ाने से दिला दो, इस का नुक़सान हुआ (मन्त्री देता है) ॥

टालवाला—महाराज ! यह कैसे रुपये हैं, इन को कहां रक्खूंगा, और जब आप फिर मांगेंगे तो मैं कहां से दूंगा ॥

राजा—(हंस कर) अरे बुड्ढे ! हमारी सेना ने जो तेरी लकड़ी जलाई हैं उन के नुक़सान के यह रुपये तुझ को देते हैं, तू इन को अपने घर लेजा तुझ से उलटे न लिये जायंगे ॥

टालवाला—तो महाराज ! मुझ से तो कोई छीन लेगा, तब कैसे करूंगा।

राजा—(मन्त्री से) दो आदमी इस के साथ कर दो कि इस के घर पहुंचा दें ॥

टालवाला—तो महाराज ! मैं अपने खिच्चरों पर कोयले कैसे लाऊंगा, पहिले कोयले ले आऊं, तब यह भी लेता जाऊंगा ॥

टालवाले ने जाकर देखा कि वर्षा के होने से सब लकड़ी कोयला हुई पड़ी हैं और कई चौड़ी २ पत्थर की शिल काले रङ्ग की उस में हैं, यह समझ कि लड़की नित्य शिल को कहा करती है और आज चलते समय भी कह दिया है, एक शिल शिर पर रख ली और खिच्चरों में कोयले लाद, घर को ले आया॥

टालवाला—बेटी ! मैं तेरे लिये यह शिल लाया हूं, इस पर मसाला पीसो, और राजा ने मुझे हजार रुपये नुक़सान के दिये हैं, सो यह लो ॥

रानी—(प्रसन्न हो लेती है और शिल को धोने लगी, जब पानी से न धुली तो चिमटा ले, खुरचने लगी, देखा तो निरा सोना है, समझी कि पहाड़ में कोई सोने की खानि है, आग की गरमी से सोना पिघल उस की शिल बन गई है और टालवाले से) पिता जी ! ऐसी शिलें वहां और भी हैं?

टालवाला—बेटी ! बहुत पड़ी हैं ॥

रानी—तो, अच्छा कल सब ले आओ, इन के यहां बड़े दाम चढाऊंगी।

अब लकड़हारे ने दूसरे दिन शिल ढोने का आरम्भ कर दिया और दो दिन में सब शिलें ढोलाया। रानी ने मन में विचारा, अब तो बहुत सा सोना घर में आगया, अब कुछ करतब राजा को दिखलाना चाहिये (और टालवाले से)

रानी—पिता जी! अब तो हम एक मकान बनाना चाहते हैं॥

टालवाला—बेटी! जो तुम्हारी मर्ज़ी॥

रानी—यह जो धरती तुम्हारे घर के आगे पड़ी है, और जिस में तुम्हारी टाल है, यह किस की है? आज ही पूछ लो॥

टालवाला—बेटी! यह धरती तो मेरे बहनोई की है॥

रानी—वह इस को बेचते हैं?

टालवाला—बेटी! वह बेचते तो हैं, पर कोई इस को मोल नहीं लेता।

रानी—तो तुम उन को मेरे पास बुला लाओ॥

टालवाला—(अपने बहनोई रत्नसेन से) भाई रत्नसेन! तुम मेरे घर तक चलो। मेरी मुंह बोली बेटी तुम को बुलाती है॥

रत्नसेन—(आकर) कहो बेटा! क्या कहती हो॥

रानी—(ओट से) फूफा! यह सामने वाली सब धरती बेचते हो?

रत्नसेन—हां बेटा! बेचते तो हैं, पर कोई लेने वाला नहीं, तुम क्या करोगी॥

रानी—हम इस में घर बनावगे। जो तुम कहो, हम मोल देदेवें॥

राजा—बेटी! हमारा तुम्हारा क्या मोल तोल है, जितनी तुम को चाहिये, लेलो और घर बनालो॥

रानी—ना फूफा जी! हम बिना दाम दिये तो न लेवेंगे। तुम को हम देवें या उलटा लेवें? इस लिये जो मांगो, सो देदें॥

रत्नसेन—(सोच कर) अच्छा बेटी! पांच सौ रुपये देदो और सब जगह में तुम अपने मकान बनालो॥

रानी—(पांच सौ रुपये दे, टालवाले से) अच्छा पिताजी! अब तुम कुम्हारों को बुलालो, ईंट चूने का प्रबन्ध कर कल से चिनाई लगवादें॥

अब सुनिये कि पांचसौ रुपये तो राजा के इनाम से बचे और कोई दश हज़ार रुपये रानी ने टाल के इकट्ठे कर लिये थे, एक भलेमानस राज को बुला, राजा के महल का नक़शा तैयार करा, वैसा ही स्थान बनवाने का प्रारम्भ कर दिया, और एक घर शीघ्र ही उस में से रहने को तैयार करा, सब सोना उस में रख दिया। इस मकान की तैयारी में एक लाख रुपये लागत

लगे, सब मकान सोना बेच २ तैयार कराये और नौकर चाकर दीवान मुनीम रख, टाल वाले से कह दिया कि तुम दीवानख़ाने में बैठा करो, नौकर चाकर सब काम करेंगे (एक दिन टाल वाले से) पिता जी! तुम दीवान को साथ ले राजा के जाओ और यह अर्ज़ी दे दो (अर्ज़ी में प्रार्थना एक लाख अशर्फ़ियों की तैयारी की थी) लकड़हारा अपने दीवान के साथ दर्बार में पहुंचा और अर्ज़ी दी॥

राजा—क्या तुम अशर्फ़ी ढलवाया चाहते हो ? ॥

दीवान—हां महाराज ! अशर्फ़ी ढलवाना चाहते हैं, आज्ञा मिल जावे॥

राजा—अच्छा ढलवा लो ॥

टालवाले और दीवान ने आकर रानी से कहा और रानी ने सवा इकत्तीस सौ मन सोना टकसाल में भेज, अशर्फ़ी ढलवा मंगाईं ॥

राजा—(मन्त्री से) अब तक हमारी टकसाल में अधिक से अधिक अशर्फ़ी किस ने ढलवाई हैं ॥

मन्त्री—महाराज ! एक वार में तो एक लाख अशर्फ़ी शूरसेन टालवाले ने ही ढलवाई हैं, वैसे तो कई वार का जोड़ तो कितनों का ही आचुका है ॥

राजा—शूरसेन टालवाला कभी दरबार में आता है ?

मन्त्री—महाराज ! वह दर्बारी नहीं है, परन्तु उस ने मकान भी राज मन्दिर के नमूने का बनवाया है ॥

राजा—अच्छा तो शूरसेन को आज्ञा दो कि हम से मिलने आवे ॥

मन्त्री [जो आज्ञा] कह, चल दिया और सोचा कि इस का हाल ज्ञात भी न था, अच्छा हुवा कि राजा ने अधिक न पूछा। चलो देखें तो सही, यह कौन आदमी हैं और उस की कैसी दशा है ? हम को हाल तो जानना चाहिये और शूरसेन टालवाले के मकान पर पहुंचे । दैवयोग से शूरसेन उस समय रानी के पास बैठा था । शूरसेन के नौकरों ने मन्त्री की बड़ी प्रतिष्ठा कर बिठाला और शूरसेन को ख़बर दी ॥

रानी—(शूरसेन से) देखो पिता जी ! जो मन्त्री साहब कहें, उस की हां कर लेना, उनकी बराबर न बैठना, सम्मुख हाथ बान्ध कर बैठ जाना और यह थाल अशर्फ़ियों का जो मैं तुम को देती हूं, इस को उन के आगे भेट रख देना, वह हाथ रख देंगे, लेंगे नहीं । जब वह हाथ रख देवें तो इस को अपने दाहिने हाथ की ओर रख लेना और जो बात समझ में न आवे, मुझ से पूछ जाना॥

शूरसेन—मन्त्री साहब के सम्मुख जा, हाथ जोड़ प्रणाम किया और

आदमी ने अशर्फी भेंट की और हाथ बांध सन्मुख बैठ गया और सब तरह से आदर सत्कार किया ॥

मन्त्री–आप ब्राह्मण हैं या वैश्य या क्षत्रिय ?

शूरसेन–श्री महाराज ! मैं क्षत्री हूं ॥

मन्त्री–अच्छा ठाकुर साहब ! आप को राजा साहब ने याद किया है, अब आप कब राजा साहब से मिलेंगे, मैं क्या कह दूं ॥

शूरसेन–महाराज ! मैं अपनी बेटी से पूंछ लूं तब उत्तर दूंगा ॥

मन्त्री–अच्छा, तो आप पूंछ लीजिये, हम शीघ्र ही आवेंगे ॥

शूरसेन—(बहुत अच्छा, कह, चल दिया और घर में आ, रानी से कहने लगा) कि बेटा ! मन्त्री साहब यह कहते हैं कि राजा साहब ने मिलने को बुलाया है, कब राजा साहब से मिलोगे ॥

रानी–(मन में प्रसन्न हो) तो पिता जी ! कह दो कि जब आज्ञा हो और मिलने का समय भी उन से पूंछ लेना कि मैं किस समय हाज़िर हूं ॥

(मन्त्री साहब और मनुष्यों की बात चीत)

मन्त्री–(दीवान से) भाई ! ये शूरसेन ठाकुर कहां के रहने वाले हैं? और कहां से आये हैं ? और कौन हैं ?

दीवान–महाराज ! यह पहिले तो जङ्गल से लकड़ियां लाकर बेचा करते थे और लकड़हारे थे । एक दिन कोई भली मानस सती स्त्री इन के साथ चली आई, यह उस को बेटी कहते हैं और वह इन को पिता, थोड़े दिन में उस ने इन को धनाढ्य कर दिया, ख़बर नहीं कि वह इतना धन कहां से ले आई, आई तो अकेली थी ॥

मन्त्री–हाल तो मालूम था ही, समझे कि हो न हो, रानी है । उस ने अपनी बुद्धिबल से इसे धनाढ्य कर दिया है और बहुत दिन से मुझ को रानी के दर्शन भी नहीं हुये, आज मिलने तो चलें और एक परचे पर अपना नाम और दर्शन की अभिलाष लिख, दीवान से कहा कि इस को शूरसेन की बेटी के पास पहुंचा दो ॥

दीवान–(बहुत अच्छा, कह, टहलनी के हाथ परचा महल में पहुंचाता है) । शूरसेन भी वहां बैठा था । रानी (परचा देख मुस्करा कर शूरसेन से) पिता जी ! तुम भी यहीं बैठ जाओ, मन्त्री यहीं आते हैं और टहलनी से कह दिया कि आने दो और बैठने का प्रबन्ध कर दिया, क्योंकि मन्त्री और

रानी का कुछ पर्दा न था, कभी रानी भी उन से पर्दा नहीं करतीं थीं,इस लिये कुछ ओट ओझल न की और मन्त्री महल में चले आये ॥

राधारमण-ताऊ जी ! क्या रानी मन्त्रियों से परदा नहीं करतीं ॥

धर्मसिंह-बेटा ! हिन्दुस्तान की यह रीति है कि सब प्रजा नौकर चाकर रानी को माता मानते हैं और राजा को पिता और तुम जानते हो मा बेटे और बाप बेटी में कभी परदा नहीं हुआ। इसी लिये राजा से कोई स्त्री राजभर में परदा नहीं करती क्योंकि उस को पिता समझती हैं और रानी राजभर के मर्दों को अपना पुत्र जानती हैं और उन से परदा नहीं करतीं ॥

मन्त्री-(दूर से रानी को देख, प्रसन्न हो, हाथ जोड़, प्रणाम करते हैं) ॥

रानी-(प्रणाम ले) कहो मन्त्री जी ! प्रसन्न तो रहे, कुशल तो आये, यहां के मनुष्यों ने आदर तो अच्छा किया, किसी तरह की सत्कार में तो कमी नहीं हुई, महाराज की क्या दशा है, वे कैसे रहे, अब समय तो निकट ही आ चुका है कि हम भी महाराज के दर्शन करैं। यह तो सब उन की आज्ञानुसार हम ने किया। देखो ठीक तो है या अभी कुछ कसर है ॥

मन्त्री-भला अन्नदाता ! जहां आप हैं, वहां हमारी प्रतिष्ठा में क्यों कर कमी हो सकती है। यह आप ही की दी हुई तो प्रतिष्ठा है जो आप ही इस का विचार न रक्खें तो और कौन रक्खेगा। जब से आप यहां से आई हैं राजा साहब बड़े बेचैन हैं। थोड़े दिन तक तो अपनी हठ में कुछ न कहा, परन्तु अब तो एक दो बार जब ध्यान आजाता है, तुम्हारी ही बात कहा करते हैं। कई बार मुझे आज्ञा दे चुके हैं कि चुपके २ रानी का पता लगाओ। मैं बड़े सोच विचार में था कि कहां पता लगाऊं, बहुतेरा ढूंढा, पर आप का समाचार हो किसी को प्रकट न हुआ कि कहां हैं। मेरे आज अहोभाग्य जो आप के दर्शन हुवे ॥

रानी-भला, यह तो बताओ कि किसी दिन हमारे लिये बात चीत ख़ास तुम से भी हुई है ॥

मन्त्री-अन्नदाता ! एक अठवाड़ा बीता कि एक दिन महाराज ने बड़े सोच में मुझ से कहा था कि रानी की तलाश कराओ, हम को तो बिना रानी के देखे अब चैन नहीं और यह भी कहा कि वैसे तो अब बहुत दिन बीत गये हैं, भाई रानी बड़े बाप की बेटी है, अवश्य उसने उस लकड़हारे को धनाढ्य बना दिया होगा। हमारी दाहनी आंख फड़कती है,हम जानते

हैं कि अब हम जल्द रानी को देखेंगे। परन्तु अपने किये पर लज्जित हैं और सिवाय मेरे और किसी से आप का नाम तक नहीं लेते ॥

रानी-(शूरसेन से) पिता जी ! तुम यह बातें किसी से न कहना। यह बड़े भेद की बातें हैं, जो कहीं ज़िकर किया तो तुम्हारा घरबार सब राजा छीन लेंगे, मुझ से कुछ भी न हो सकेगा ॥

(और मन्त्री से) मन्त्री जी ! तुम इन को अपने साथ लेजाओ। तुम जानते हो कि यह तो वही लकड़हारे हैं, यह विचारे राजाओं से मिलना क्या जानें, इन को ऐसी रीति से मिलाना कि कोई इन का वृत्तान्त न जाने और बड़े प्रतिष्ठित ज्ञात हों और मैं कल से इस मकान की अस्तरकारी पलास्तर का प्रबन्ध करती हूं। तुम विचित्रब्रह्म चित्रकार को मेरे पास भेज दो मैं उत्तम २ चित्र इस मकान पर करालूं, परन्तु उस को यह भी समझा देना और तुम भी याद रखना कि श्रीमान् महाराजा साहब को यहां का वृत्तान्त ज्ञात न हो। जिस दिन उनसे सम्मुख हो बात चीत होगी, उसी दिन हम रणवास को चले चलेंगे (और मन्त्री को एक थाली अशर्फ़ियों का इनाम दिया) ॥

मन्त्री—(थाल ले, बढ़ती मना) अच्छा ठाकुर साहब ! कल संध्या समय आप को महाराजा साहब के दर्शनों को ले चलेंगे, परन्तु पहले दाहिना पैर उठाना और जो भोजन राजा साहब देवें, वह शिर पै रख लेना, पीछे खाना, एकाएकी न खाना। जब तुम से बातें होवें तो रानी साहब का नाम न लेना, बरन हाथ जोड़ यह निवेदन करना कि जो श्रीमहाराज मेरे झोंपड़े पर कृपा करें तो नगर में मेरी बड़ी प्रतिष्ठा हो। जिस समय राजा साहब स्वीकार करलें तो कहदेना कि इतवार के दिन संध्या समय के चार बजे कृपा करें, अब मैं जाता हूं ॥

राधारमण-ताऊ जी ! पहिले जब रानी ने थाल अशर्फ़ियों का लकड़हारे के हाथ भेजा था, तब यह क्यों कहा था कि मन्त्री जी न लेंगे। फिर रानी ने मन्त्री को क्यों अशर्फ़ियें दीं और मन्त्री ने क्यों लेलीं ?

धर्मसिंह-बेटा ! जब अशर्फ़ी लकड़हार ने भेंट कीं थीं, उस समय तक मन्त्री जानते थे कि यह प्रजा (रय्यत) का द्रव्य है, इस लिये नहीं ले सकते थे। और रानी तो इन की स्वामिनी थी, उस के देने से वह नांह नहीं कर सक्ते थे, क्योंकि उस के घर से तो पलते ही थे। अब मन्त्री बिदा हुये और जाते ही विचित्रब्रह्म चित्रकार को बुला कर कहा कि भाई ! किसी से भेद न खोलना। महारानी साहब ने एक महल तैयार कराया है जिस का किसी को

ब्यौरा नहीं और न महारानी साहब का वृत्तान्त किसी को ज्ञात है कि वे कहां हैं। वह शूरसेन टालवाले ने बताया है, वहीं हैं। वहां जाकर द्वारपाल से कहना कि विचित्रब्रह्म हाज़िर है। ख़बर कर दो। फिर जो महारानी साहब आज्ञा दें, उस का पालन करना और हम जानते हैं कि तुम सब बातें आप ही महारानी साहब से कह सुन लोगे ॥

विचित्रब्रह्म–(अति प्रसन्न हो) भाई ! तुमने महारानी साहब का तो अच्छा पता लगाया, लो मैं अभी जाताहूं, अभी महारानी साहब के दर्शन करूंगा (और महारानी साहब के महल को चल दिये और द्वारपाल से ख़बर कराई)॥

द्वारपाल–(बांदी से) महारानी साहब से कहदो कि चित्रकार विचित्रब्रह्म जी ड्योढ़ी पर खड़े हैं (और विचित्रब्रह्म को कुरसी डाल दी) ॥

बांदी–महारानी जी ! विचित्रब्रह्म दरवाज़े पर खड़े हैं ॥

महारानी–आने दो ॥

विचित्रब्रह्म–(सामने जा, हाथ जोड़, प्रणाम कर) आज हमारा भाग्य खुला कि हमारी माता श्रीमती महारानी जी के दर्शन हुवे ॥

महारानी–विचित्रब्रह्म ! प्रसन्न तो हो, अच्छे रहे, अब हमने तुम को इस लिये बुलाया है कि इस महल की अति उत्तम अस्तरकारी करा दो और एक तस्वीर हमारी और राजा साहब की और इन पिता जी (शूरसेन) की, लकड़हारे की दशा में खिंचवा कर जगह २ लगवा दो, दीवारों पर तो तसवीर खिंचवा दी जावेंगी, परन्तु परदों पर लगाने के लिये अलग प्रबन्ध करदो। इस महल में कोई स्थान व पर्दा व बर्त्तन ऐसा न रहे जिस पर यह चित्र न हो और सात दिन में सब तैयार हो जावे ॥

विचित्रब्रह्म–(जो आज्ञा) अच्छा, कल सवेरे से आरम्भ कर दूंगा, अब नमूना खेंच कर भेजता हूं और (सोच) थोड़ी देर में तसवीरें बना दिखलादीं ॥

रानी–(तसवीरें पसन्द कर विचित्रब्रह्म को इनाम दे) समझा दिया कि एक अठवाड़े में यह मकान अस्तरकारी व चित्रकारी से पूरा होजावे (विचित्रब्रह्म प्रबन्ध करता है) ॥

द्वारपाल—(राजा से हाथ जोड़) अन्नदाता ! ठाकुर शूरसेन दर्शनों की अभिलाष से खड़े हैं ॥

राजा–आने दो, देखो वह बुड्ढा आदमी है, सावधानी से लाना ॥

द्वारपाल–(शूरसेन से) चलिये महाराजा साहब याद करते हैं ॥

शूरसेन–(चला) जिस समय राजा साहब के सम्मुख हुआ, सोचा कि

दाहना पांव बढ़ाना चाहिये,दैवयोग से राजा के भय से भूल गया, लाचार दोनों पांव एक साथ बढ़ाने चाहे और पृथिवी पर गिर पड़ा ॥

राजा-दौड़ो २ देखो तो यह बुड्ढा आदमी बुढ़ापे के कारण गिर पड़ा (नौकर चाकर उठा कर लाते हैं)

शूरसेन—महाराज ! मैं क्षत्री हूं ॥

राजा-तो तुम ठाकुर हो, प्रसन्न तो हो,तुम कभी दरबार में नहीं आते, अब हमने आज्ञा देदी है । अब तुम दरबार में आया करो ॥

ठाकुर-जो आज्ञा, अन्नदाता ! हाज़िर हुआ करूंगा ॥

राजा—(सेवक से) कांसा तैयार हो ॥

अब राजा मन्त्री और दो चार प्रतिष्ठित २ रईस ठाकुर साहब सहित बैठे हैं, कांसा तैयार हुआ और सब भोजन के लिये बिठलाये गये परन्तु मन्त्री साहब ने यह समझा कि यह शूरसेन तो लकड़हारा है,विचारा राजगृह की क्रिया क्या जाने और रानी ने कह भी दिया है, इस लिये अपनी दाहनी ओर बिठला, समझा दिया कि जिस रीति से मैं भोजन करूं और बैठूं,उसी रीति से तुम भी बैठना और भोजन करना,मेरी ओर देखते रहना । शूरसेन ने ऐसा ही किया और भोजन से निवृत्त हुये और यों बात चीत करने लगे॥

राजा-ठाकुर साहब ! तुम इस नगर में कितने दिन से रहते हो ॥

ठाकुर—यहीं मेरी जन्म भूमि है, मेरे पिता यहां आकर बसे थे ॥

राजा—ठाकुर साहब ! तुम पहिले क्या पेशा करते थे ॥

ठाकुर-महाराज ! जब से होश संभाला है, लकड़ी ही बेचते हैं । आप की कृपा से थोड़े दिन से अधिक लाभ हुआ और सब घर आइर ठीक होगया और कुछ धन भी हो गया है ॥

राजा-अब तुम को राज्य में कोई सतावे तो हमारे पास चले आना और जो कुछ आवश्यकता हुआ करे तो भी कह दिया करना ॥

ठाकुर-अन्नदाता ! आप की कृपा से तो यहां अमन हो रहे हैं, हम को कौन सता सकता है,परन्तु एकनिवेदन है कि जो आप मेरे घर पर कृपा करें तो मेरी बड़ी कीर्त्ति हो ॥

राजा-(मन्त्री की ओर देख,मन्त्री से) कहो, क्या करना उचित है ॥

मन्त्री-महाराज ! कुछ हरज तो है नहीं क्योंकि प्रथम तो यह ठाकुर हैं, दूसरे अब तो दरबारी भी हो गये हैं।मेरी समझ में तो इतवार का दिन अच्छा है॥

राजा-(शूरसेन से) अच्छा हम इतवार के दिन चार बजे शाम को तुम्हारे स्थान पर आवेंगे ॥

राजा साहब ने मन्त्री को आज्ञा दी कि तुम इतवार के दिन चलने का प्रबन्ध करो और जितने मनुष्यों को ठाकुर साहब कहें उतने ही साथ चलें। तुम आप जाकर प्रबन्ध करो। ऐसा न हो जो किसी तरह से प्रबन्ध न हो सके क्योंकि ठाकुर साहब को यह पहिली ही बार है ॥

मन्त्री—(बहुत अच्छा, कह विदा हुआ और) रानी के पास जाः—

महारानी साहब ! महाराज ने तुम्हारी मिहमानी स्वीकार करली, इतवार का दिन नियत किया है। अब जो आज्ञा हो, प्रबन्ध करूं और महाराज ने यह भी पूछा है कि कितने आदमी साथ हों ॥

रानी—मन्त्री जी ! यह तो आप को मालूम ही है कि जिस समय मुझे महाराज ने निकाला है उस समय यह बात चीत हुई थी कि लकड़हारे की स्त्री घर का प्रबन्ध नहीं कर सकती। और आप को महाराज साहब ने प्रबन्ध की आज्ञा दे ही दी है। इस लिये चाहिये कि सब लश्कर और नौकरों की मिहमानी की जावे। तुम प्रबन्ध तो कर ही लोगे ॥

मन्त्री—जो आज्ञा, कह विदा हुवे ॥

अब विचित्रब्रह्म चित्रकार ने सब स्थानों अर्थात् दर बदीवार, ताकों महराबों पर बहुत सी तसवीर उस समय की जिस समय कि महाराज ने रानी को जङ्गल से निकाला था और महारानी आज्ञानुसार लकड़हारे के पीछे २ चल दीं थीं, तैयार करा, वर्त्तनों और परदों पर भी बनवादीं अर्थात् सब सामान पर जो उस मकान में था, वे तसवीरें बनाईं गईं। हां इतना अन्तर हुवा कि जहां स्थान खुले थे वहां पूरी मनुष्याकार थीं और जहां जगह थोड़ी थी वहां छोटी २ तसवीरें थीं और मन्त्री साहब ने भोजन राजगृह का सा तैयार कराया और प्रसन्नतापूर्वक प्रबन्ध किया ॥

मन्त्री-(हाथ जोड़, प्रणाम कर) श्री महाराज ! मैंने ठाकुर शूरसेन से दरयाफ्त किया तो उन्हों ने कहा है कि श्री महाराज और सब श्री महाराज के नौकर चाकर मेरे ऊपर कृपा करें। मैंने प्रबन्ध भी कर दिया है। अब जो आज्ञा ॥

राजा—अच्छा मन्त्री जी ! सब को इत्तिला दो कि इतवार के दिन ४ बजे शाम के सब लोग तैयार हो जावें। सवारी ठाकुर शूरसेन के मकान को चलेगी और तुम आप ठाकुर साहब के मकान पर रह कर प्रबन्ध करो ॥

मन्त्री—महाराजा साहब ! आज यात्रा का समय है । अब तीन बजे होंगे, सब सेना तैयार है ॥

अब महाराज की सवारी तैयार हुई और फ़ौज व लश्कर और ओहदेदार सब साथ चले । अब सवारी पहुंची, और महाराजा साहब ने दरवाज़े पर अपनी और रानी और लकड़हारे की तसवीर देखी और राजा को रानी साहिबा याद आई । तबीयत बेचैन होगई, दिल में सोचने लगे कि बिना अपराध हमने रानी को निकाल दिया । हा ! रानी अब कहां, और किस विपत्ति में होगी । हां रानी ने यही तौ कहा था कि इस की स्त्री घर का प्रबन्ध नहीं जानती । स्त्रियों का चञ्चल स्वभाव तौ होता ही है । जो रानी ने ऐसा कहा था तौ हमारा कुछ अनादर तौ किया ही न था । हमने बड़ी भूल की जो रानी को अलग कर दिया । अब परमात्मा कृपा करे कि रानी हम को मिल जावे । फिर कभी उन को अलग न करूंगा ॥

उधर रानी साहिबा का वृत्तान्त सुनिये कि सब ओहदेदारों और नौकरों के लिये तौ मन्त्री साहब ने प्रबन्ध किया और इन्हों ने अपने हाथ से उत्तम उत्तम पदार्थ महाराजा साहब के लिये तैयार किये ॥

प्रयोजन यह है कि ठाकुर शूरसेन और मन्त्री साहब महाराजा साहब को दीवानख़ाने में ले गये और राजा साहब ने पहुंचते ही सोच किया कि यहां तौ सब सामान हमारे ही से हैं । मकान भी हमारे से हैं । फ़र्श क़ालीन गद्दी तकिया चौकी कुर्सी पलङ्ग किसी में कुछ अन्तर नहीं। क्या यह मैं सब जागते हुये देख रहा हूं ? वा स्वप्न में । और मन्त्री की ओर दृष्टि कर:—

राजा—मन्त्री साहब ! यह महल हमारा है या ठाकुर शूरसेन का ?

मन्त्री—वैसे तो यह सब आप का ही है, परन्तु यह राजमहल नहीं है। यह ठाकुर शूरसेन का मन्दिर है ॥

राजा—सिवाय इन तीन तसवीरों के जो सब जगह दीवारादि पर देखते हैं और कोई भेद अपने और इस मकान और असबाब में नहीं पाते और तसवीरों को देख रानी याद आती हैं । जी बेचैन हुआ जाता है। अब तुम शीघ्र ही रानी साहब का खोज लगाओ कि कहां हैं ॥

मन्त्री—महाराज ! मैं यहां कई दिन से प्रबन्ध कर रहा हूं । धन की तो ठाकुर साहब के कमी नहीं, मालूम ही नहीं होता कि कितना है और इसी सोच में हूं कि यह वस्तु राजमन्दिर की सी हैं । कुछ समझ में नहीं आता जब यहां से राज मन्दिर को चलूंगा तब तुरन्त ही श्रीमती महारानी जी को ढूंढूंगा ॥

अब ठाकुर शूरसेन के नौकर भोजन के सुनहरी थाल लाये और महाराज ने देखा कि भोजन के सब वर्त्तनों पर भी वही तसवीरें हैं और थालादि भी कांसे केसे हैं, भोजन उसी रीति से रक्खा है जैसा कि रानीसाहिबा अपने हाथ से बना कर रखती थीं और उस दिन की जङ्गल की बातें रानी की याद कर विचार किया कि ऐसा जान पड़ता है कि यह सब रानी के प्रबन्ध का फल है (और बेचैन होकरः-)

राजा--ठाकुर साहब ! भोजन हमारे लिये किसने तैयार किया है ॥

ठाकुर--श्री महाराज ! मेरी एक मुंह बोली बेटी ने तैयार किया है ॥

राजा--क्या हम उन को देख सकते हैं ॥

ठाकुर--श्री महाराज ! मैं उन से पूंछ आऊं ॥

राजा--शीघ्र ही पूंछ कर उत्तर दीजिये ॥

ठाकुर—(तुरन्त जा, रानी से) बेटी ! राजा साहब तुम को देखा चाहते हैं परन्तु पराये पुरुषों के सम्मुख स्त्रियों का जाना हमारे क्षत्रीकुल का धर्म नहीं, बेटी ! तुम्हारी क्या इच्छा है ॥

रानी--पिता जी ! महाराज परपुरुष नहीं हैं, वे तो मेरे पति हैं और मैं उन की रानी हूं। अवश्य महाराज के दर्शनों को चलूंगी परन्तु सब मनुष्यों को मेरा वृत्तान्त ज्ञात नहीं इस लिये दीवानख़ाने में परदा करा दो और तुम राजा साहब से कह दो कि आती हैं और पालकी मंगवा-सवार हो राजा के पास को चल दीं, ठाकुर शूरसेन ने महाराज से कह कर परदा करा दिया। इधर पालकी पहुंची और रानी साहब ने उतर, हाथ जोड़, महाराज को प्रणाम किया ॥

राजा—रानी को देख मारे ख़ुशी के चुप रह गये और आंखों में आंसू भर कुछ न बोल सके ॥

रानी--श्री महाराज ! यह ठाकुर साहब तो वही लकड़हारे हैं जिनको आपने जङ्गल में देखा था और मुझे इन के प्रबन्ध के लिये नियत किया था, श्रीमन् ! उस समय इन को पेट भर रोटी भी नहीं मिलती थी। अब राज मन्दिर की बराबर महलात व सामान हैं, और राज्य के सब नौकर चाकर आप के साथ मिहमान आये हैं और इस ख़र्च पर भी ख़ज़ाने की कुछ कमी नहीं। अब मैंने भली भांति आज्ञा पूरी कर दी। अब मुझे साथ चलने की आज्ञा दी जावे क्योंकि पतिव्रतास्त्री एक मुहूर्त्त भी विना अपने पति के नहीं रह सकती जैसे कि सुगन्धि फूल से और गर्मी अग्नि से अलग नहीं रह सक्ती

और पति की आज्ञा मानना स्त्री का परमधर्म है इस लिये यह दिन भी आप से अलग बड़ी कठिनता से पूरे किये हैं। अब यह मेरे पिता जी ठाकुर साहब आप के समीप बैठे हैं। आप भली भांति पूछ लेवें कि इन के धनवान् होने में राज से कुछ भी सहायता नहीं ली गई। आठ दिन हुए हैं जब मन्त्री यहां आये थे उस समय से जो अवश्य मन्त्री व चित्रकार यहां काम कर रहे हैं परन्तु धन यहीं का खर्च हो रहा है॥

राजा--(अति प्रसन्न हो) हम तुम्हारे प्रबन्ध और धर्म से अति प्रसन्न हुवे। धन्य है जो तुमने अपने मुख से कहा था वह कर दिखाया। सत्य है बुद्धिमती स्त्री, पुरुषों की बड़ी प्रतिष्ठा कर देती हैं। अब हम दृष्टान्त किस का दें, तुम्हारा किया हुआ ही आंखों के आगे है, पर अब तुम उस को मन से दूर कर दो। जो कुछ हमारी मूर्खता से हुआ, पर यह भी याद रक्खो कि यह तुम्हारा वृत्तान्त सब संसार जानेगा और बड़ी प्रतिष्ठा से तुम्हारी कहानी सब छोटे बड़े कहेंगे॥

अब सब सेना की आदर सन्मान के साथ मिहमानी हुई और जितना चढाव ठाकुर शूरसेन का हुआ था। राज से दिलवा दिया और जागीरादि दे, शूरसेन को राजा बना दिया॥

धर्मसिंह—बेटा! जैसे यह लोग मिले, परमात्मा सब को मिलावे। अब रात बहुत गई, सो रहो। कल तुम को एक राजा की कहानी सुनावेंगे॥

राजा की कहानी

दूसरे दिन राधारमण ने बहुत शीघ्र भोजन कर मुझ से भी कहा कि बहन तुम भी जल्दी से भोजन कर लो तो आज ताऊ जी से उस राजा की कहानी सुनेंगे। देखो तो कैसी कहानी है॥

राधारमण-(ताऊ जी के निकट पहुंच) ताऊ जी! राजा की कहानी सुना दीजिये॥

धर्मसिंह-बेटा! सुनो। एक नगर में एक राजा था। बड़ा धर्मात्मा, प्रजा उस की सब सुखी थी। उस के दो बेटे पैदा हुये। बड़ा तो राजा हुआ और छोटा पढ़ता लिखता रहा। बहुत से राजाओं के रीति है कि बड़ा बेटा राज्य का मालिक होता है और छोटे राव या बाबू कहलाते हैं। इस लिये छोटे कुंवर को बाबू कहते थे, राजा बड़ा सीधा धर्मात्मा था। जो कोई ब्राह्मण आता और याचना करता, राजा तुरन्त मन माना धन देता, यहां तक कि राज ऋणी होने लगा और राजा पर भारी ऋण हो गया और आमदनी

से व्याज का पूरा भी न पड़ता था, राजा स्वतन्त्र थे, और बाबू अभी छोटी अवस्था में थे। परन्तु राजा के एक कन्या पैदा हो गई और कई बेर रानी ने राजा को समझाया परन्तु राजा ने न माना॥

रानी-(मन्त्री से) मन्त्री जी! तुम राज्य का अच्छा प्रबन्ध नहीं करते। मैं सुनती हूं कि राज बड़ा ऋणी हो गया है और अभी तक तो राजा साहब ने न बाबू का विवाह किया और न कन्या का, इन का प्रबन्ध किस रीति से होगा॥

मन्त्री-माता जी! मैं क्या करूं। महाराजा को बहुतेरा समझाता हूं परन्तु वे मानते ही नहीं। जो आप बाबू जी से कहलवा देवें तो चाहे मान भी जावें क्योंकि वे बाबू की किसी बात को टालते नहीं॥

रानी-समझाया तो मैंने भी बहुत है पर अच्छा, आज बाबू से भी कहूंगी, देखो क्या फल मिलता है (और बाबू से) कुंवर साहब! महाराज ने तो राज की यह दशा करदी कुछ आप ही प्रबन्ध कीजिये नहीं तो हम और तुम को बड़ा दुःख निकलेगा॥

बाबू-माता जी! प्रबन्ध तो मैं बहुत अच्छा कर सकता हूं परन्तु महाराज की आज्ञा के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता क्योंकि वे हमारे धर्म पिता हैं। जब हम अपने को पुत्र मानते हैं तो हमारा यह धर्म नहीं कि उन्हें किसी कर्म से रोकें। हां जो वे आप आज्ञा देवें तो प्रबन्ध सहज में हो सकता है॥

रानी-बहुत अच्छा, आज जब महाराज रनवास में आवेंगे तब मैं कहूंगी। तुम कहीं चले न जाना॥

दैवयोग से जब राजा रनवास में आये तो अतिप्रसन्न थे। किसी प्रकार का क्लेश मन में न था और रानी आप पंखा ले खड़ी होगईं और महाराज को हवा करने लगीं॥

राजा—(अति प्रसन्न हो) रानी! इस समय हम तुम से बड़े प्रसन्न हैं अब जो तुम हम से मांगो, देने को तैयार हैं॥

रानी—महाराज! जो आप मुझ से वचन करलें कि हम तेरा वरदान पूरा कर देंगे तो कुछ मांग भी लूं, नहीं तो आप की दया से कमी ही क्या है॥

राजा-अच्छा रानी! हम वचन करते हैं जो मांगोगी, देंगे॥

रानी-महाराज कृपाकर क्रुद्ध न हों, आप से तो राज्य का प्रबन्ध होता नहीं, ऋण बढ़ता चला जाता है इस से तो बाबू ही को राज्य सौंप दीजिये वही प्रबन्ध कर लेंगे॥

राजा—(प्रसन्न हो) हम अति प्रसन्न हैं और अहोभाग्य जानते हैं जो बाबू प्रबन्ध करें। अच्छा बाबू को बुलाओ॥

बाबू-(हाथ जोड़ प्रणाम कर) महाराज क्या आज्ञा है ॥

राजा-हम चाहते हैं कि तुम राज्य का प्रबन्ध करो । रानी साहब की भी यही सम्मति है और कोशाध्यक्ष से ताली मांग लो और राज्याधिकारियों को समझा दो कि आज से राज काज हम करेंगे ॥

बाबू-श्रीमहाराज ! यह तो मुझ से न होगा कि सब राजकाज मैं करूं और सब प्रजा मुझ को बदनाम करै कि इसने कुल रीति त्याग दी । हां, एक रीति पर प्रबन्ध कर सकता हूं कि जो कुछ आप किसी को देवें चाहे वह नौकरी हो वा पुण्य वा इनाम, वह मेरे हस्ताक्षर से दिया जावे ॥

राजा—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा । अब बाबूने प्रबन्ध किया नक़द रुपये का ढेर महाराज की गद्दी के आगे लगा दिया जावै जिस को महाराज दान देवैं, अपने हाथ से देवें, किसी दूसरे से न दिलावें और जो कुछ धरती पुण्य करैं वह मुझ से पूछ कर दीजावै ॥

धर्मसिंह-पुत्र ! इस राज्य की यह दशा हो गई थी कि सैकड़ों गांव तो पुण्य में ब्राह्मणों को निकल रहे थे,उन की आमदनी ब्राह्मणोंके पास जाती थी और राज्य में टोटा पड़ता जाता था । अब बाबू जी ने सब इनामी लोगों को बुला २ हर एक से गांवों का मूल्य पूंछा, जिस ने जितना रुपया अपने गांव का मूल्य बतलाया उनके कहने अनुसार सब का लिख लिया । एक दिन की बात है कि एक पण्डित आया और महाराज से याचना की । महाराज ने कुछ रुपया देना चाहा । पण्डित ने कहा महाराज ! मुझे एक गांव दे दीजिये, मैं उस में सुखपूर्वक रहूंगा । राजाने आज्ञा दी कि जिस गांव में यह रहता है वही इस को दे दिया जावै, मन्त्री ने हुक्म लिख कहा कि बाबू जी के पास ले जाओ ॥

बाबू—आज्ञापत्र ले, पण्डित जी ! यह गांव कितने रुपये का है ॥

पण्डित-(यह समझ कि बाबू नांह न करदें) महाराज ! यही साठ सत्तर रुपये का होगा ॥

बाबू-(कोशाध्यक्ष से) अच्छा पण्डित जी को सत्तर रुपये दे दो ॥

पण्डित-श्री महाराज ! मुझे तो महाराज ने गांव दिया है आप मुझे रुपये क्यों देते हैं, गांव ही दे दीजिये ॥

बाबू—देखो पण्डित जी ! गांव राजा लोगों को चाहियें, आप लोगों को धन चाहिये सो मैं आप को आपका मुंह मांगा मूल्य देता हूं, फिर क्या कहते हो । सुनिये जब इसी रीति से सब गांव आप लोग ले लेवेंगे तो हम राज्य किस पर करेंगे ॥

पण्डित—(क़ायल हो) मोल ले चला गया ॥

रनवास

राजा और रानी बैठे हैं और बाबू पहुंचते हैं ॥

बाबू-(हाथ जोड़, प्रणाम कर) श्री महाराज ! मेरी एक प्रार्थना है। आशा रखता हूं कि पूरी होगी ॥

राजा-बाबू ! मैं तो तुम को सब कुछ दे चुका, तुम से अन्तर ही क्या है जो कुछ मेरे पास और रहा है उसे भी देने को तैयार हूं ॥

बाबू-महाराज ! इतने गांव इन ब्राह्मणों पर पहुंचगये कि जिन का कुछ हिसाब नहीं कि राज काज में भी हानि होने लगी। आप इतनी कृपा करें कि गांव किसी को न दिया करें और मैं सब गावों का मोल देकर उलटे लिये लेता हूं। जो कुछ किसी ने मोल मांगा है वह ही दिया जावेगा कम नहीं दिया जावेगा और ब्राह्मणों से पूछ २ गांवों का मूल्य उन का मुंह मांगा लिख कर दस्तख़त करा लिये हैं ॥

राजा-अच्छा भाई ! कल से हम किसी को गांव दान न देंगे, नक़द रुपया दे दिया करेंगे ॥

दर्बार

बाबू—(मन्त्री से) मन्त्री जी ! जितने ब्राह्मणों को महाराज ने गांव दिये हैं उन सब को बुलाओ ॥

मन्त्री—जो आज्ञा, कह, बुलाता है ॥

अब बाबू उस रजिस्टर में लिखा हुआ मोल हर गांव के ब्राह्मणों को सुनाते जाते हैं और ब्राह्मण उस को मानते जाते हैं और उन के दस्तख़त कराते हैं। जब यह काम पूरा हो गया तो मन्त्री साहब को आज्ञा दी कि इसी प्रकार सब को मोल दो और गावों को अपने आधीन करलो ॥

ब्राह्मण लोग-श्रीमान् बाबू साहब ! यह हमारे गांव क्यों छीने जाते हैं ?

बाबू—नहीं भाई, छीने तो नहीं जाते, तुम को मुंह मांगा मोल दिया जाता है। गांव तो मोल लिये जाते हैं। सोचो तो जब गांव आप लोग ले लेवेंगे तो हम राज्य किस पर करेंगे। जो आप की यही इच्छा है तो हम को आज्ञा दीजिये कि हम राज्य ही छोड़दें और कहीं जा बसें और आप राज्य करें॥

ऐसा सुन लाचार हो ब्राह्मणों ने मोल ले लिया और बाबू ने हिसाब देख साहूकारों को बुला समझाया कि अब इस राज्य का ख़ज़ाना तुम्हारे हाथ है। जो तुम कुछ सुलूक करो तो राज्य रह सकता है नहीं तो हम वन को चले जांयगे तुम राज्य बांट लेना ॥

साहूकार–नहीं, महाराज नहीं, राज्य आप का सदा बना रहै। आप हमारे सर्दार हैं। हमने इस राज्य में बड़े सुख पाये हैं। यह तो हम से हो सकता है कि रुपये का व्याज छोड़ देवें और जो आप की आज्ञा हो तो मूल से भी हाथ धो बैठें॥

बाबू–बस भाई! व्याज छोड़ दो,मूल का टोटा तो हम किसी को न देवेंगे॥ अब बाबू साहब ने यह प्रबन्ध किया कि बचत का रुपया मूल में दिया जावै॥ बस थोड़े दिन में राज्य ऋण से छूट गया और ख़ज़ाना भी भरा दीखने लगा॥ एक दिन बाबू साहब और रानी साहब में बात चीत होने लगी॥

रानी—बाबू! अब कन्या के विवाह का सूफता करना चाहिये॥

बाबू—हां माता! शीघ्र ही करता हूं, मेरी सम्मति में तो राजा कुरहिल के सिक्का भेजना चाहिये, परन्तु महाराज से पूछ लें॥

रानी—जो तुम्हारी इच्छा, महाराज भी नांह न करेंगे॥

बाबू—(नाई पुरोहित बुला) जाओ लड़की की सगाई राजा कुरहिल के कर आवो,परन्तु राजा से बहुत विनयपूर्वक कहना कि हम ग़रीब आदमी हैं॥

नेवगी—(जो आज्ञा,कह) जाते हैं। राजा कुरहिल का दर्बार लगा है, अमीर उमरा सब बैठे हैं, पुरोहित नाई बड़ा साज सामान लिये गहने से सजी सजाई एक मनोहर घोड़ी आगे किये दर्बार में पहुंचते हैं और राजा साहब को हाथ बांध प्रणाम करते हैं॥

राजा—भाई नेवगी! तुम कहां से आये हो॥

नेवगी—महाराज! हम राजा उरई के नेवगी हैं और कुंवर साहब का सिक्का लाये हैं॥

राजा—(भाई उरई!) उरई वाला तो एक ज़िमींदार है और वह तो क़र्ज़दार है॥

नेवगी—महाराज! अब तो हमारे राजा साहब किसी के ऋणी नहीं हैं और जाति में भी बड़े उज्ज्वल हैं, किसी तरह का उन में दोष नहीं। श्री महाराज! जाती की बेटी जाति में ही विआही जाती हैं॥

राजा कुरहिल का मन्त्री—महाराज! आप को ख़बर नहीं है, राजा साहब के छोटे भाई बाबू ने बड़ा अच्छा प्रबन्ध किया है,अब वह ऋणी भी नहीं और अच्छा कुल है। आप को यह नाता अङ्गीकार करना चाहिये॥

राजा कुरहिल—अच्छा भाई, कुलाचार करो॥

अब बड़ी धूम धाम से सिक्के का प्रबन्ध किया और नेवगी भी निय-

मानुसार विदा हुवे और सब हाल बाबू से जा कहा। अब विवाह का समय आया और बरात बड़ी धूमधाम से पहुंची, बाबू ने सब वस्तु अच्छी अच्छी इकट्ठी कर, बिना प्रबन्धकर्त्ताओं के छोड़दी थीं। जिस समय कि राजा कुरहिल की ओर से कहा गया कि प्रबन्ध रसद के पहुंचाने का किया जावे, बाबू ने उत्तर दिया कि महाराज मैं तो ज़मींदार हूं, मेरे प्रबन्धकर्त्ता कहां, और कारिन्दे कहां, जिन्स सब मौजूद है, आप अपने कारिन्दे भेजदें, भला ज़मींदारों के यह प्रबन्ध कहां? राजा कुरहिल इस बात को न समझे और अभिमान सहित अपने कारिन्दे प्रत्येक वस्तुओं पर नियत करदिये। अब बाबू के नौकरों की यह दशा थी कि जिस वस्तु की आवश्यकता जानते और लाकर मिला देते, यहां तक कि विवाह का समय आगया, और भावरें पड़गईं और ब्राह्मणों को विवाह कर्म कराई दक्षिणा देकर वर कन्या को उठा घर में लेगये॥

कहीं २ राजा लोगों के यह रीति है कि सब ब्राह्मण व टहलुओं को जो बरात में होते हैं, भोजन तो दिया ही जाता है परन्तु कुछ दक्षिणा बेटी वाला देता है और उस से दूना बेटे वाला और यह रीति फेरों पीछे होती है, जब भांवर पड़लेती हैं और इस को हलोटी कहते हैं॥

पुरोहित लोग—महाराज हलोटी की आज्ञा हो॥

राजकुमार—अच्छा, बाबू साहिब से पूछो, जो वे आज्ञा दें॥

बाबू—महाराज! मैं क्या कहूँ मैं तो ग़रीब ज़िमींदार हूं जो आप आज्ञा देंगे, मैं भी उस को पूरी करदूंगा॥

राजकुमार—अच्छा आठ आने प्रत्येक को बाबू जी की ओर से और एक रुपया हमारी ओर से दिया जावे॥

बाबू—नहीं महाराज! एक रुपये से कम देना तो उचित नहीं, मैं एक रुपया प्रत्येक को दे सकता हूं, कुल आठ सहस्त्र तो मनुष्य हैं ही॥

राजकुमार—जो आप को इच्छा, अच्छा आरम्भ कीजिये॥

बाबू ने एक रुपया अपनी ओर से देना आरम्भ करदिया और फिर राजा कुरहिल के ख़ज़ाञ्ची ने दो रुपये प्रत्येक को देने आरम्भ करदिये। दो तीन आदमी को एक २ रुपया दिया गया होगा कि बाबू ने हुक्म दिया कि दो रुपये एक मनुष्य को हमारी ओर से दिये जावें, अब राजा कुरहिल को चार रुपये प्रत्येक मनुष्य को देने पड़े॥

बाबू—(चार आदमियों को दो दो रुपये देकर) अच्छा पांच रुपये प्रत्येक को हमारी ओर से दिये जावें॥

राजकुमार—(अपने ख़ज़ानची से)अच्छा दश रुपये प्रत्येक को तुम भी दो॥

बाबू—(चार आदमियों में पांच रुपये प्रत्येक को देकर) अब दश रुपये प्रत्येक को हमारी ओर से मिलें ॥

राजकुमार—अच्छा बीस रुपये प्रत्येक को दो ॥

बाबू—(दो तीन आदमियों को दश २ रुपये देकर) अच्छा एक अशर्फ़ी प्रत्येक को हमारी ओर से दी जावे ॥

राजकुमार—(कुछ मन में घबरा, प्रकट में प्रसन्नता के साथ) दो २ अशर्फ़ी हमारी ओर से देदो ॥

बाबू—(दो एक को एक २ अशर्फ़ी देकर) अच्छा पांच पांच अशर्फ़ी हमारी ओर से दो ॥

राजकुमार—(अब चुप हैं, कुछ उत्तर नहीं देते, सोचते हैं कि अशर्फ़ी तो इस समय हैं नहीं, क्या किया जावे, फिर सोच) अच्छा दीवान जी ! अशर्फ़ियों के रुपये इन लोगों को फैला कर दिये जावें ॥

बाबू—अजी महाराज ! मैं तो बहुत छोटा सा ज़मीदार हूं, आप ऐसा विचार न कीजिये, मैं तो आप का दास हूं। अब तो नाता हो ही गया है, मेरा राज सो आप का राज, और आप का राज सो मेरा राज, अब मेरे यहां से पांच२ अशर्फ़ी प्रत्येक मनुष्य को मेरी ओर से और दश २ प्रत्येक को आप की ओर से, कुल पन्द्रह २ अशर्फ़ी प्रत्येक मनुष्य को दी जावैंगी (और ऐसा ही हुआ)॥

धर्मसिंह—बेटा ! प्रबन्ध ऐसा ही होता है, देखो थोड़े प्रबन्ध में पच्चीस लाख की अशर्फ़ी एक दम के दम में बाबू ने एक नेग में बांट दीं। सुनो बेटा! विना प्रबन्ध कोई काम ठीक नहीं रहता, प्रबन्ध बड़ी अच्छी वस्तु है, इस का सदैव विचार रखना चाहिये ॥

राधारमण—ताऊ जी ! यह तो कहिये कि नक़द रुपया राजा ने क्यों नहीं दान दिया और पूरे गांव लोगों को दे दिये ॥

धर्मसिंह—बेटा ! मैं तुम को एक फ़िज़ूल ख़र्च की कहानी सुनाता हूं। जिस से तुम अच्छी तरह समझ जाओगे ॥

राधारमण—हां ताऊ जी ! वह अवश्य ही सुना दीजिये ॥

एक फ़ज़ूल ख़र्च की कहानी

धर्मसिंह—बेटा! अगले समय में एक राजा बड़ा धनाढ्य था और उस के सेना और ख़ज़ाना भी बहुत था, रैयत भी बहुत धनवान् थी, यहां तक कि राज्य में किसी प्रकार का दुःख किसी को न था और कोई झगड़ा बखेड़ा भी राज्य में न था, उस के एक पुत्र हुआ, राजा ने जहां तक हो सका पढ़ाया लिखाया, परन्तु सङ्गति में उस के फ़िज़ूल ख़र्च लोग रहने लगे और कुछ यह भी अकेला बेटा मा बाप का लाडला और राजा का कुंवर था। फ़िज़ूलख़र्ची की ओर झुक पड़ा। समय आधीन राजा परलोक सिधारे और क्रिया कर्म से निवृत्त हो दीवान मन्त्रियों ने कुंवर को गद्दी पर बिठलाया। अब कुंवर साहब ने बहुत ख़र्च करना आरम्भ कर दिया। मन्त्री ने जब देखा कि आमदनी से कई बट अधिक उठाव है, ऐसी दशा में तो यह राज बहुत ही जल्द नष्ट हो जायगा तो सोच विचार, राजा को समझाने लगा, परन्तु एक तो तरुणावस्था, दूसरे हुकूमत हाथ में और हुकूमत भी कैसी कि स्वतन्त्र राज्य, तीसरे कोई रोकने वाला नहीं, किसी का भय नहीं, दबाव नहीं, गर्म ठण्डे की पहिचान नहीं। मन्त्री को तुरन्त उत्तर दिया कि जितना हमारे मन में आवेगा, ख़र्च करेंगे। तुम्हारे कहने से न मानेंगे॥

मन्त्री बुद्धिमान् था, सोचा कि बहुत कहोगे तो निकाल देगा और जो आप बैठ रहे तो भी बड़ी निन्दा होगी (और घर को आये) क्योंकि आज तक ऐसे कठोर वचन तो बड़े राजा ने भी न कहे थे और बड़े दुःखित हुवे॥

बेटी—(बाप को उदास देख, हाथ जोड़) पिता जी! आज आप इतने उदास क्यों हैं॥

मन्त्री—बेटी! राजा बड़ा फ़िज़ूल ख़र्च है, आमदनी से अधिक ख़र्च करता है। आज जो मैंने समझाया तो मुझे उत्तर दिया कि हमारे मन में जो आवेगा सो करेंगे, तुम्हारा कहना न मानेंगे। अब सोचता हूं कि जो बहुत कहा तो निकाल देगा और जो आप अलग होता हूं तो निन्दा का विचार है। कोई बात समझ में नहीं आती कि करूं सो क्या करूं॥

बेटी—पिता जी! यह कुछ बड़ी बात नहीं, आप निस्सन्देह रहैं और इस रीति से आप राजा को समझावें कि आप ज़बानी आज्ञा रुपया देने की देते हैं उस में ख़ज़ानची गड़बड़ करता है। जब वह कहैं कि प्रबन्ध करो, आप कहदेवें कि मैं आप के पास रुपये इकट्ठे कर दूं, आप अपने हाथ से दे दिया करें इस रीति से शीघ्र ही फ़िज़ूलख़र्ची भूल जायगा॥

मन्त्री, बहुत प्रसन्न हुये और सब तरह से नीच ऊंच सोच, दूसरे दिन दरबार में पहुंच राजा से:–

मन्त्री—अन्नदाता ! आप रुपये देने की ज़बानी आज्ञा देते हैं, जिससे थोड़े बहुत की कुछ ख़बर नहीं पड़ती, ख़ज़ानची जो चाहता है सो लिख लेता है और जो चाहता है सो देता है। ख़ज़ाना इसी अन्धेर में ख़ाली हुआ जाता है। मुझे सोच है कि थोड़े दिन में ख़ज़ानची तो धनाढ्य हो जावेगा और ख़ज़ाना सरकारी सब ख़ाली होजायगा ॥

राजा—(सोच) मन्त्री ! इस का कुछ प्रबन्ध करो, यह तो बड़े अन्धेर की बात है, (और मन में सोचा कि इस का क्या प्रबन्ध किया जाय कि ख़ज़ानची अधिक रुपये ख़र्च में न लिखे, और मन्त्री से फिर कहा) जल्द प्रबन्ध सोचो ॥

मन्त्री—महाराज ! मेरी समझ में तो एक बात आती है जो आप अच्छी जानैं, उस में पुण्य भी अधिक है ॥

राजा—वह क्या है बतलाओ ॥

मन्त्री—महाराज ! जितने रुपये आप कहैं सबेरे ही आप की गद्दी के सामने ढेर लगा दिया करूं, आप अपने हाथ से प्रत्येक भिखारी को देदिया करें, इस में पुण्य भी अधिक होगा और कोई गड़बड़ भी न कर सकैगा और मांगने वाले को पूरा २ धन भी मिल जाया करेगा ॥

राजा—(इस बात को अच्छी जान) तो अच्छा अभी ढेर लगा दो ॥

मन्त्री—दो थैली रुपयों की मंगवा, ढेर लगा दिया। श्रोतृगण ! सब राज्य में इस राजा के दान का यश फैल गया था, इस कारण लोगबाग भी दूर २ से मांगने आते थे, अब एक भिक्षुक आया ॥

भिक्षुक—महाराज ! मैं ब्राह्मण हूं, मेरी कन्या का विवाह है, कछु दान दिलवाइये ॥

राजा—एक मुट्ठी रुपया दे दिया ॥

भिक्षुक—अन्नदाता ! यह तो थोड़ा है ॥

राजा—एक मुट्ठी और दे दिया ॥

भिक्षुक—महाराज ! यह भी थोड़ा है ॥

राजा—एक मुट्ठी और दे दिया,

भिक्षुक—महाराज ! अभी तो थोड़ा है ॥

राजा--मैंने तीन बार तो दे दिया अब क्या सब तुझे ही देदूं, क्या किसी और को न दूं? कोई है! इस को निकाल दे॥

पहरे वाला--(जो आज्ञा कह) ब्राह्मण को बाहर निकालता है॥

राजा--(मन्त्री से) मन्त्री जी! यह मांगने वाले हम को बहुत दिक़ करते हैं, तुम मनादी करा दो कि जो कोई हम से दुबारा मांगेगा, हम उस से पहला दिया हुआ भी छीन लेंगे। जिस को लेना हो वह एक बार में जो कुछ हम देवें, चुप के से ले जावे॥

मन्त्री--(बहुत अच्छा कह, मनादी कराता है। मांगने वालों की यह गति हो गई कि प्रथम तो मांगने को आवें ही नहीं और जो आवें तो जो कुछ दश पांच रुपये राजा देवे, चुप के से लेकर चले जावें। थोड़े काल में राजा ने एक २ दो २ रुपया देना आरम्भ करदिया और मांगने वालों का आना बन्द हो गया)॥

राधारमण--ताऊ जी! यह ऐसा क्यों होगया॥

धर्मसिंह--बेटा! मुंह से कहदेना सुगम बात है कि इस को एक हज़ार रुपये दे दो, जिस समय कि हज़ार रुपया आंखों के आगे आता है उस समय आप से आप लोभ आजाता है और खर्च करने को मन नहीं चाहता। अब बेटा! तुम सो रहो, फिर तुम को एक बहुत अच्छी कहानी सुनावेंगे॥

अगले दिन मेरे ताऊ जी साहिब रोटी खा कर पलङ्ग पर लेटे और मैं और राधारमण उन के पास जा बैठे॥

राधारमण--ताऊ जी! तुम ने अच्छी कहानी सुनाने को कह लिया था, आज सुना दीजिये॥

धर्मसिंह--अच्छा बेटा! तुम जागते रहना, मैं तुम को आज बड़ी अच्छी कहानी सुनाता हूं॥

एक लोमड़ी की कहानी

एक जङ्गल में एक ऊंट स्वतन्त्रता से वृक्ष चरता फिरा करता था, दैवयोग से एक दिन नदी उतर एक बाग़ में जा पहुंचा, देखा कि अच्छा हरा भरा बाग़ है, वृक्ष अपने २ स्थान पर लगे हैं, रौंस पटरी से सब प्रकार शोभायमान है, बेल बूटे आंखों को आनन्द दे रहे हैं, संबुल देखने वालों को डरा रहा है, नरगिस आंखें दिखला रहा है। सोचा कि यह स्थान तो अतिमनोहर है और चरने को भी उत्तम २ पत्ते मौजूद हैं। अब ध्यान कर लिया कि रात्रि को नित्य आकर रात भर यहां चरा करेंगे, यह विचार इधर ऊंट

तो रात भर चर कर जङ्गल को चला आया, उधर माली ने देखा कि कोई ऊंट कितने ही वृक्षों की पत्तियां चर गया और कई रौंस पटरी ख़राब कर गया है। यह देख, दूसरे दिन ताक में रहा, बाट देखता रहा कि अब के आवेगा तो पूरी ख़बर लूंगा, ऊंट फिर दूसरे दिन बाग़ में पहुंचा और माली सोंटा ले पीछे दौड़ा, ऊंट भाग गया और सोच समझ कर प्रबन्ध कर लिया। अब एक दिन एक दिशा की ओर जाता और दूसरे दिन दूसरी ओर, प्रयोजन यह है कि माली को पता न लगता और रोज़ चर आया करता, थोड़े दिन में तैयार हो गया और उसे एक लोमड़ी मिली॥

लोमड़ी—ऐ ऊंट! तुम रात को कहां जाया करते हो? जब से तुम रात को जाते हो, तब से तुम बहुत मोटे हो गये हो॥

ऊंट—मैं एक बाग़ में चरने जाया करता हूं, बड़ा अच्छा बाग़ है॥

लोमड़ी—क्या वहां अङ्गूर भी हैं?

ऊंट—अङ्गूर तो उस बाग़ में बड़े अच्छे २ हैं, परन्तु लोकाट नाशपाती सेव और अनेक प्रकार की और भी मेवा हैं॥

लोमड़ी—अच्छा तो आज जिस समय आप चलें, मुझ को भी साथ लेते चलें॥

ऊंट—लोमड़ी! मैं तुम को साथ ले चलना अच्छा नहीं समझता। क्योंकि तू अन्य जाति है और अन्य जाति का मेल हानिकारक होता है॥

लोमड़ी—भला मैं तुम्हारे पड़ोस में इस जङ्गल में बहुत दिनों से रहती हूं, तुमने मेरी कोई बात बुराई या हानि करने की देखी है, देखो मनुष्य भी पास रहने ही से गौ भैंस कुत्ते बिल्ली से प्रीति करते हैं, माना कि वे सब प्रकार अन्य जाति ही हैं, इस के सिवाय तोता मैना इत्यादि को पास रहने से ही रखा करते हैं, क्या भला पास रहने से तुम को इतना भी प्रेम नहीं है॥

ऊंट—नहीं कोई बात तो ऐसी नहीं देखी, परन्तु मैंने यह बात सुनी है कि अन्य जाति के मेल से अवश्य हानि होती है, देखो मुझे एक कहानी याद है॥

लोमड़ी—तो अच्छा वह मुझे सुना दो॥

एक सवार और सांप की कहानी

एक सवार जङ्गल में जा रहा था, देखा कि एक जगह आग लग रही है और एक सर्प आग के बीच में तड़पता फिरता है, कोई मार्ग उस को निकलने का नहीं मिलता कि सांप ने सवार को देखः—

सांप-(बहुत दीनता से गिड़गिड़ा) ऐ सवार! परमेश्वर के लिये मेरे प्राण बचा, मैं तेरा बड़ा गुण मानूंगा॥

सवार-(तोबड़ा लटका, उस में सांप को बाहर निकाल) ऐ सांप ! अब तू चला जा, परन्तु किसी मनुष्य को कभी भी दुःख न देना, देख मैंने तेरी जान बचाई है, भूल न जाना ॥

सांप-मेरा तो स्वभाव ही दुःख देने का है, भला मुझ से यह हो सक्ता है ? कि जब तक जीता रहूं, किसी को दुःख न दूं । अब जब तक तुझे और तेरे घोड़े को न काटूं, जाना कैसा ! ! !

सवार-क्या उस नेकी का बदला यही है ॥

सांप-अरे अज्ञानी ! तू नहीं जानता कि मैं मनुष्यों का वैरी हूं। तुझ को मेरे साथ नेकी न करनी थी क्योंकि बदों के साथ नेकी करनी भी बदी है और भलों के साथ बदी करना भी बुराई । क्या तुझे वह कुण्डली याद नहीं है ॥

कुण्डली

वैरी बंधुवा बानियां, जुवारी चोर लबार । बटमारी रोगी ऋणी, नगर-नारि को यार ॥ नगरनारि को यार, भूल प्रतीति न कीजे । सौ सौ कहे बनाय, चित्त में एक न लीजे ॥१॥ कह गिरिधर कविराय, घड़ी आवै अन-घेरी । सौ सौ कहे बनाय, पेट में पूरो वैरी ॥ २ ॥

सवार-भला नेकी के बदले बदी करनी उचित है ?

सांप-अच्छा चल, वह भैंस चर रही है, उस से पुछवा दूं । और (भैंस से) ऐ भैंस ! आदमी के साथ नेकी का बदला नेकी है या बदी ?

भैंस-मनुष्यों के साथ नेकी का बदला बदी ॥

सवार--यह कैसे ?

भैंस--देख, मैं जिस किसान के घर थी उस का घर मैंने दूध घी से भर दिया, जब बूढ़ी हुई तो उस ने मुझे पूंछ काट जङ्गल में निकाल दिया; अब जो मैं जङ्गल में चर कर कुछ मोटी ताज़ी हुई, तो क़साई के हाथ काटने को बेच डाला ॥

सांप--ऐ मुसाफ़िर ! सुन लिया ?

सवार--इस की मैं नहीं मानूंगा, यह तो वैर भाव से कहती है । चलो उस वृक्ष से पूछें ॥

सवार--(चल कर) ऐ वृक्ष ! नेकी का बदला नेकी है वा बदी ?

वृक्ष--मनुष्यों के साथ बदी ॥

सवार--कैसे ?

वृक्ष--देखो, मेरी छाया में सब मनुष्य गर्मी के मारे सुख पाते हैं और गर्मी के मारे हुवों को मैं ठण्डी २ पवन करता हूं और चलते समय मेरी कोई न कोई टहनी तोड़ ले जाते हैं॥

सांप--दो साक्षी तो होगये, अब भी मैं तुझ को काटूं वा नहीं, बोलो॥

सवार--(एक लोमड़ी को आता देख) उस लोमड़ी से और पूछ लेने दे, उस समय तुझ को अख़्तियार है॥

सांप--ऐ लोमड़ी! नेकी का बदला नेकी वा नेकी का बदला बदी॥

लोमड़ी--पहले मुझे असल बात बतला दो तब उत्तर दूंगी॥

सांप--मैं आग में घिर गया था, इस सवार ने मुझे निकाला है, अब मैं इस से कहता हूं कि मैं तुझे काटूंगा और यह जी चुराता है॥

लोमड़ी--मुझे यह निश्चय ही नहीं कि इसने तुझे आग में से तोबरे में रख कर निकाला हो, क्योंकि तू तो बड़ा भारी है, इस छोटे से तोबरे में कैसे आया होगा॥

सवार--नहीं मैंने तोबरे ही में निकाला है॥

लोमड़ी--मैं कभी नहीं मानती कि यह तोबरे में घुसा हो॥

सांप--अच्छा तो मैं तुझ को अब तोबरे में घुस कर दिखला दूं?॥

लोमड़ी--हां, तब मान जाऊंगी और उत्तर भी दे दूंगी॥

अब सांप तोबरे में घुसा और लोमड़ी ने सवार को इशारे से कहा कि अब यह वश में आगया, चाहे तो मार या फेंक दे किसी ने कहा है:-

"आगया क़ाबू में जब दुश्मन न छोड़ा चाहिये"॥

सवार ने तोबरे को धरती पर पटक २ सांप को मारडाला, तब पीछा छूटा॥

लोमड़ी--ऐ ऊंट! इस कहानी से तो विश्वास होता है कि लोमड़ी किसी के साथ बुराई नहीं करती। इस लिये आज तू मुझे लेता चल, देख एक से दो अच्छे होते हैं, किसी ने कहा है कि जब कोई पास न हो तो पगड़ी से ही सलाह ले ले॥

ऊंट--मार्ग में तो नदी है उसे तू कैसे उतरेगी॥

लोमड़ी--जब मेरे ऊपर कृपा करते हो तो अपनी पीठ पर तुम चढ़ा कर ले चलना, मैं नदी तुम्हारी पीठ पर उतर लूंगी और तुम्हें तो कुछ बोझ लगेगा ही नहीं॥

अब सांझ को ऊंट चला और लोमड़ी को पीठ पर चढ़ा, बाग में पहुंचा और लोमड़ी ने थोड़ी देर में ख़ूब अङ्गूर खाये और पेट भर लिया॥

लोमड़ी--ऐ ऊंट ! मेरे गले में तो खुजली आती है, मैं तो इस समय चिल्लाऊंगी ॥

ऊंट--कृपा कर, थोड़ी देर चुप रह कि मैं भी पेट भर लूं, उस समय तू मेरी पीठ पर चढ़, चिल्ला लेना ॥

लोमड़ी--मेरा गला तो बहुत ही खुजाता है और अचेत हुई जाती हूं, इस लिये मैं अभी चिल्लाऊंगी ॥

यहां तक कि ऊंट ने बहुत ही विनती की परन्तु लोमड़ी ने एक न मानी और चिल्लाने लगी। माली चिल्लाने का शब्द सुन दौड़ आया, लोमड़ी तो दुबक गई और ऊंट को मार कर भगा दिया, ऊंट ने सोचा कि जो यह बाग़ में रही तो सदैव दुःख देगी, इस लिये इसे भी साथ ले चलो, फिर न लावेंगे ॥

ऊंट--ऐ लोमड़ी ! चलती है ? मैं तो जाता हूं ॥

लोमड़ी--हां, चलती हूं, भला यहां अकेली क्या करूंगी ॥

ऊंट--(लोमड़ी को पीठ पर चढ़ा) ऐ लोमड़ी ! तुझ को यह बाग़ अच्छा लगता है ? ॥

लोमड़ी--हां, बहुत ही अच्छा है, मैं तो कल से जोड़े समेत यहीं आरहूंगी ॥

ऊंट--यहां रह कर तू क्या करेगी ॥

लोमड़ी--ख़ूब अंगूर सेब आदि खाया करूंगी, यह बड़ी अच्छी जगह है ॥

ऊंट-तो अच्छा जिस समय हम आया करेंगे उस समय तो तू न चिल्लावेगी ?

लोमड़ी-जिस समय मेरे कण्ठ में खुजली उठेगी, अवश्य चिल्लाऊंगी ॥ अब इन्हीं बातों २ में नदी आ गई और ऊंट उस में घुसा, जिस समय कि पानी अधिक आया ऊंट खड़ा होगया ॥

ऊंट--लोमड़ी ! मेरी पीठ खुजलाती है ॥

लोमड़ी--तो फिर क्या उपाय करोगे ॥

ऊंट--मैं तो इस पानी में लोटूंगा ॥

लोमड़ी--तो मैं कहां रहूंगी ॥

ऊंट--इस नदी में डूबोगी ॥

लोमड़ी--मेरा ऐसा क्या अपराध है कि जो तुम मुझ को नदी में डुबाते हो।

ऊंट--आज तैने मुझ को पिटवाया और पेट भी न भरने दिया, इस लिये तुझे डुबाऊंगा ॥

लोमड़ी--अब कृपा करो, आगे को मैं ऐसा न करूंगी ॥

ऊंठ— नहीं २ तेरा गला खुजलाता था, मेरी पीठ खुजलाती है। बदला तो अवश्य मिलना चाहिये। यह कह नदी में लोट गया और लोमड़ी बह गई॥

राधारमण—ताऊ जी! यह कहानी तो बहुत अच्छी सुनाई, पर उस बेईमान शिकारी की कहानी सुनने को बहुत जी चाहता है, वह भी सुना दीजिये॥

एक बेईमान शिकारी की कहानी

धर्मसिंह—बेटा! एक बेईमान शिकारी था, एक दिन वह एक मनुष्य को आधे साझे पर जङ्गल को ले गया, और जङ्गल में जा, एक तोता, एक मृग, एक खरहा, एक बटेर, और एक काक, मारा॥

शिकारी—लो भाई! यह सब ले चलो, हम अपने घर आधे बांट देंगे॥

साझी—(बहुत अच्छा, कह, शिकारी के घर लाया)॥

शिकारी—(खरहा हाथ में ले) भाई "ससा बहू का रसा" यह तो वह देने ही की नहीं (और घर में फेंकता है,) फिर तोता हाथ में ले भाई "तोता खुदा का पोता" यह तो तेरे पै रहने ही का नहीं (और घर में फेंकता है) फिर हिरन को ले भाई! "हिरन जङ्गल का फिरन" यह तो तेरे काम का ही नहीं (और घर में फेंकता है) अब एक हाथ में बटेर और दूसरे में काक ले, भाई "यह काक तोर और बटुरिया मोर"॥

साझी—अरे भाई! यह क्या किया॥

शिकारी—भाई! मैंने तुझे समझाय तो दिया, अब जाओ अपने घर चले जाओ, देखो इतना बड़ा काक तो तुमको दे दिया और छोटी सी बटेर ही तो मैंने ली है (और घर में घुस गया)॥

राधारमण ख़ूब हंसा और मैं भी देर तक हंसती रही, जब हंसी बन्द हुई तो—

धर्मसिंह—बेटा! अब कोई और कहानी सुनो तो कहूं॥

राधारमण—हां ताऊ जी! वह निन्यानवे के फेर की कहानी और सुना दीजिये॥

निन्यानवे का फेर

धर्मसिंह—अच्छा बेटा! सुनो, एक शहर में एक महाजन रहता था। बहुत बड़ा धनाढ्य था, परन्तु ख़र्च वही मर्यादा से मोटा खाना मोटा पहरना, स्त्री भी उस की बड़ी शीलस्वभाव और सुलक्षणा थी, उसे सिवाय अपने घर के काम के और किसी बात से कुछ प्रयोजन नहीं था, परन्तु एक मुसलमान सिपाही उस के पड़ोस में रहता था। तीन या चार आने रोज़

लाता और बड़े आनन्द से दोनों मियां बीबी अच्छी छांही रोटी पका, खा लिया करते। एक दिन महाजनी छत पर चढ़ी और दैवयोग से सिपाही की स्त्री भी छत पर आगई और आपस में यह बात चीत करने लगीं॥

सिपाही की स्त्री—(मुसलमानी) बीबी सेठानी जी! सलाम॥

सेठानी—बीबी बूढ़ी सुहागन हो, सात बेटों की मा हो॥

मुसलमानी--बीबी! आप खुश तो हैं, जो कोई मेरे लायक़ काम हो तो बतलाओ।।

सेठानी-बीबी! क्या बतलाऊं, सब तेरी कृपा है, पर मुझे एक बात पूछनी है, जो तू बता देवै तो पूछूं।।

मुसलमानी-बात तो क्या, मेरी तो जान तक हाज़िर है।

सेठानी-अच्छा तू यह बतलादे कि तुम्हारे मियां को कितनी आमदनी है॥

मुसलमानी—बीबी! कोई तीन चार आने रोज़ की आमदनी होगी॥

सेठानी-इस में से बचत क्या है॥

मुसलमानी-बीबी! बचत तो कुछ नहीं, रोज़ लाते हैं और रोज़ मज़े से अच्छे २ खाने खाते हैं। पर बीबी! तुम क्या खाती हो?

सेठानी-हम तो दाल रोटी खाते हैं॥

मुसलमानी-क्या रोज़ दाल रोटी ही?

सेठानी-हां बीबी! नित्यप्रति दाल रोटी ही खाते हैं॥

मुसलमानी-बड़े अफ़सोस की बात है कि तुम्हारे इतनी बड़ी तो आमदनी है और इस क़दर धन माल है, पर खाती दाल रोटी ही हो॥

सेठानी--आज मैं सेठ जी से कहूंगी (और घर में चली आई, अब सेठ जी आये)॥

सेठानी--(पंखा ले, हवा कर, बड़ी मीठी २ बातें करती हैं)॥

सेठजी--सेठानी जी! रसोई तैयार है?

सेठानी--महाराज! आज तो मैंने पूरी कचौरी बनाई हैं।

सेठजी--आज दिन में आप ने यह सामान क्यों तैयार किया॥

सेठानी--आज हमारी पड़ोसन कहती थी कि हमारे मियां तो तीन या चार आने रोज़ कमाकर लाते हैं और रोज़ अच्छे २ भोजन बनाते हैं इस लिये हमने भी आज दिन में पकवान बना लिया॥

सेठ--वे मियां बीबी दोनों पागल हैं।।

सेठानी--महाराज! पागल कैसे हैं, वे तो ख़ूब ख़र्च करना जानते हैं॥

सेठ--(सोच कर) नहीं, अभी वे निन्न्यान्वे के फेर में नहीं पड़े ॥

सेठानी--महाराज! निन्न्यान्वे का फेर कैसा ?

सेठ—निन्न्यान्वे का फेर मैं तुम को बतलाता हूं सुनो—आज रात को निन्न्यान्वे रुपये एक कपड़े में बांध, उस के घर में फेंक दो, थोड़े दिनों में फेर देखलेना ॥

सेठानी--बहुत अच्छा, आज रात को मैं ऐसा ही करूंगी ॥

अब रात को सेठ जी ने ९९) रुपये एक कपड़े में बांधे और सेठानी ने सिपाही के घर में फेंक दिये ॥

सिपाही सुबह को उठा और देखा कि एक कपड़े में कुछ बंधा पड़ा है, उठाकर खोला तो रुपये मिले, गिनने लगा, जब गिने तो निन्न्यान्वे रुपये हुवे (खुश हो बीवी से):-

सिपाही--बीवी ! आज तो खुदा ने हम को निन्न्यान्वे रुपये दिये ॥

बीवी--(हंसती हुई) कहां से आये, कहां से मिले ॥

सिपाही--अभी यहीं चौक में पड़े पाये हैं ॥

बीवी--अब इन को क्या करोगे ॥

सिपाही—अब इन को सौ करेंगे ॥

बीवी--सौ कैसे होजावेंगे, तुम्हारे पास तो कुछ बचता ही नहीं ॥

सिपाही--बीवी ! एक पैसे रोज़ का घी कम खावेंगे और एक पैसा रोज़ बचावेंगे, बस थोड़े दिन में पूरे सौ होजावेंगे। अब उसी रोज़ सिपाही ने एक पैसे का घी कम ला, नक़द पैसा बीवी को दे दिया ॥

बीवी—मियां कितने पैसों में एक रुपया होगा ?

सिपाही—चौंसठ पैसों में ॥

बीवी—मियां एक पैसे रोज़ के हिसाब से तो दो महीने से अधिक में एक रुपया इकट्ठा होगा ॥

सिपाही—बेशक ॥

बीवी--मियां ! तो बहुत दिन में होगा, कोई ऐसा उपाय करो जिस से जल्द रुपया हो जावे ॥

सिपाही--तो फिर क्या करें ॥

बीवी--नहीं मियां ! दो पैसे रोज़ बचाओ, एक महीने में तो रुपया होजावे॥

सिपाही--बीवी! हमारी तो यह समझ है कि चार पैसे रोज़की तरकारी

लाते हैं और चार पैसे रोज़ का घी। इन में से दोनों चीज़ चार पैसे रोज़ की लावें बस सोलह दिन में एक रुपया होकर पूरे सौ रुपये होजावेंगे ॥

बीवी——अच्छा मियां! तो कल से ऐसा ही करो ॥

अब मियां बीबी ने सम्मति की कि चार पैसे रोज़ बचावें और तीन आने रोज़ में गुज़र किया करें, दूसरे दिन जब सिपाही ने चार पैसे दिये तोः—

बीवी—मियां! चार पैसे रोज़ के हिसाब से तो सोलह दिन में रुपया होगा और घी तरकारी खाने से तो बहुत लाभ होता ही नहीं, इस से जो तुम नाराज़ न हो तो आठ दिन तक नमक डाली रोटी पका लिया करें, बस आठ दिन में यह पूरे सौ हो जावेंगे, कुछ आठ दिन के न खाने से दुबले तो हो ही न जावेंगे ॥

सिपाही—है तो ठीक, अच्छा कल से घी तरकारी न लावेंगे, सूखा आटा और नमक ले आवेंगे ॥

बीवी—हां, यही बहुत मुनासिब है ॥

अब मियां बीबी दोनों यह सोचने लगे कि किसी तरह से यह रुपये बढ़ जावें॥

बीवी—मियां! आटा किस भाव आता है?

सिपाही—एक रुपये का सोलह सेर यानी एक आने का सेर ॥

बीवी—और मियां! नाज रुपये का कितना आता है?

सिपाही—पच्चीस सेर ॥

बीवी—तो मियां! एक रुपये का आटा कितना आवेगा और नाज कितना?

सिपाही—बीबी! आटा तो रुपये का सोलह सेर और नाज पच्चीस सेर॥

बीवी—अच्छा मियां! एक रुपये का नाज कितने दिन को होगा और आटा कितने दिन को?

सिपाही—बीबी! नाज तो साढ़े बारह दिन को होगा, आटा ८ दिन को॥

बीवी—तो नाज लाने से साढ़े चार दिन के नौ आने बचेंगे ॥

सिपाही—हां बीबी! नौ आने और बचेंगे और महीने भर में तो ५।≈)॥ पांच रुपये साढ़े छः आने बच रहेंगे ॥

बीवी—अच्छा मियां! यह बतला दो कि चक्की कितने को आवेगी?

सिपाही—बीबी! कल एक चक्की नीलाम हुई थी, एक हमारे बेड़े वाले ने चार आने को ली है ॥

बीवी—तो तुम उसे ला दो और एक रुपये का नाज ला दो और दो आने

का नमक, और चार आने की लकड़ी। बस कल से पूरे चार आने रोज़ बचेंगे, बस बारह दिन में पूरे सौ हो जावेंगे और फिर चार दिन में एक रुपया बढ़ता रहेगा॥

अब सिपाही बहुत अच्छा कह, दो रुपये ले, एक रुपया दश आने का सामान ले आया और छः आने का एक दुपट्टा ला बीवी की नज़र किया और पांच छः पैसे जो बचे थे, उन के घड़े ला हवाले किये। अब बीवी रोज़ मरंह आटा पीस, नमक डाल, सिपाही को भी खिलाती है और आप भी खाती है, और आठ दश रोज़ में वे रुपये पूरे सौ हो गये॥

बीवी-मियां! अब तो रुपये पूरे १००) हो गये, अब बोलो क्या करोगे॥

सिपाही-बीवी! अब इन को और बढ़ावेंगे, यहां तक कि दोनों मियां बीवी इस निन्न्यानवे के फेर में केवल रूखी रोटी नमक डाली खाने लगे और हांडी डोई सब भूल गये॥

सेठ-सेठानी जी! तुम ने कुछ उस सिपाही की भी ख़बर ली, अब उस का क्या हाल है?

सेठानी-कल पूछूंगी, मुझे याद नहीं रहा, कल ज़रूर पूछूंगी॥

दूसरा दिन

सेठानी ने (छत पर चढ़) सिपाही की जोरू को आवाज़ दी, वह आवाज़ सुनते ही तुरन्त अपनी छत पर चढ़ आई॥

मुसलमानी-बीबी सेठानी जी! सलाम॥

सेठानी-बूढ़ सुहागन हो, बीबी सात बच्चों की मा हो, अब क्या हाल है, अब तुम्हारे कुछ हांड़ी वांड़ी नहीं पकती॥

मुसलमानी-बीबी! हां अब तो नहीं पकती, अब तो हम रूखी नमक डाली रोटी खाते हैं॥

सेठानी-(चौंक कर) यह क्यों? यह क्या बात हुई?

मुसलमानी-बीबी! जिस रोज़ मुझ से और आप से बातें हुईं थीं, उस के दूसरे दिन सुबह ही मियां को निन्न्यानवे रुपये चौक में पड़े मिले, उन को गिन कर यह तजवीज़ की कि एक पैसा रोज़ जमा करें, फिर दो पैसे रोज़ की तजवीज़ हुई, अब ठीक दो आने रोज़ीना जमा करते हैं। इस समय उन के एक सौ दो रुपये हो गये हैं। अब मुझे और मेरे मियां को यही सोच विचार है कि जल्द एक सौ दश रुपये हो जावें॥

यह बातें तो हो ही रही थीं, कि दैवयोग से किसी कार्य को सेठ जी घर में आये और सेठानी नीचे उतर आई और आकर सब वृत्तान्त ब्यौरेवार सेठ जी से कह दिया॥

सेठ जी–देखा, निन्न्यानवे का फेर ऐसा होता है, जिस समय मनुष्य को धन से प्रीति हो जाती है, सब खाना पीना भूल जाता है। हम अब भी बहुत खाते हैं, बहुत से तो रोटी भी पेट भर नहीं खाते॥

मैं यह सुन कर कुछ अपने ताऊ जी से पूछने को थी, कि राधारमण ने मेरे एक थप्पड़ मारा और ताऊ जी ने देख लिया॥

ताऊ जी–ऐ है, बेटा राधा! क्या करते हो, बहन को मारा नहीं करते, देखो संसार में सब से मिल कर रहना चाहिये। किसी को मारना तो क्या, कठोर वचन भी न कहना चाहिये॥

राधारमण–ताऊ जी! इस में क्या बुराई है॥

धर्मसिंह–बेटा! जिस के कुटुम्बी व मित्र सब प्रीति रखते और कहना मानते हैं, वह सदैव प्रसन्न रहता है, कभी दुःख नहीं पाता, क्या तुम ने उस जङ्गल के भूत की कहानी नहीं सुनी॥

राधारमण–ताऊ जी! वह कैसी है॥

जङ्गल के भूत की कहानी

धर्मसिंह–बेटा! सुनो, एक शहर में एक साहूकार रहता था। दैवयोग से वह निर्धन हो गया, अब बेचारा शरम का मारा किसी से कुछ मांग भी नहीं सकता और बड़े दुःख से दिन काटता है, एक रात पुत्रों से सम्मति कर उपाय किया कि कल यहां से निकल चलें, किसी ने कहा है कि (देश चोरी परदेश भीख) सवेरे होते ही सब बाल बच्चों को साथ ले चल दिया और एक जङ्गल में पहुंचा, विश्राम किया। अब सोचा कि प्रातः संध्या तक तो यहां रहना ही है कुछ तो करना चाहिये, विना किये तो दिन कटना भारी हो जायगा, यह विचार करने लगा॥

साहूकार–(अपने दोनों पुत्रों से) भाई! तुम जङ्गल से कांस ही काट लाओ, ठाली बैठे २ क्या करें, कुछ रस्सी ही बट डालें (और स्त्री से) तुम कुआ से पानी ला, रोटी ही चढ़ा दो॥

बेटे व स्त्री–बहुत अच्छा (जाते हैं)

समयअधीन, जिस वृक्ष के नीचे यह ठैरे थे, उस पर एक भूत रहता था, वह उतरा॥

भूत–भाई मुसाफ़िर! तुम कौन हो? और रस्सी क्यों बटते हो?

साहूकार–(क्रोध में) हम मुसाफ़िर हैं और तुम्हारे बांधने को रस्सी बनाते हैं॥

भूत—तुम हम को क्यों बान्धना चाहते हो ?

साहूकार—हमारे पास अब कुछ धन नहीं रहा, इस लिये तुम को बान्धना चाहते हैं॥

भूत—अच्छा, जो हम तुम को बहुत सा धन दे देवें तो तुम हम को न बान्धोगे?

साहूकार—फिर हम को क्या प्रयोजन है॥

भूत—अच्छा, इस वृक्ष के नीचे बीस हज़ार रुपये दबे हुवे हैं, यहां से उखाड़लो, बस अब मैं जाता हूं॥

साहूकार—अच्छा, जाओ, कहू (वृक्ष के नीचे खोदने लगा, वहां से २००००) रुपये मिले और लेकर प्रसन्नतापूर्वक अपने कुटुम्ब सहित घर को चला आया)॥

पड़ौसी—कहो भाई ! कहां गये थे, और कैसे आज ही लौट आये॥

साहूकार—भाई ! रोजगार की तलाश में गये थे, सो मार्ग ही में काम बन गया, इस लिये लौट कर चले आये॥

पड़ौसी—मित्र ! बतला तो दो, कहां और कैसे काम बन गया॥

साहूकार—मित्र ! जङ्गल में पहुंचे, लड़कों को कांस काटने भेज दिया और हम ने रस्सी बटनी आरम्भ कर दी, मित्र ! हम को रस्सी बटता हुआ देख एक भूत हमारे पास आया, उस ने हम से पूछा कि रस्सी क्यों बटते हो हम ने कहा कि तुझ को बान्धेंगे, उस ने कहा कि मुझे क्यों बांधते हो, हम ने उत्तर दिया कि हम को रुपये की आवश्यकता है, उस ने कहा कि हम तुम को रुपया दें दें तो तुम हम को न बांधोगे ? मैंने कहा कि फिर मुझे क्या प्रयोजन है, इस पर उस ने एक वृक्ष के नीचे मुझे बतला दिया और मैंने खोदा कि उस में से मुझे बीस हज़ार रुपये मिल गये॥

पड़ौसी - तो भाई ! कल हम भी जावेंगे॥

साहूकार - तुम्हारी इच्छा (और सब व्यौरेवार वृत्तान्त कहता है)

पड़ौसी—कुछ और तो बातें नहीं हुईं॥

साहूकार—भाई ! मुझ से तो और कुछ बातें नहीं हुईं जो कुछ हुईं थीं वह सब आप से कह दीं॥

अब पड़ौसी ने एक गाड़ी मंगा, चलने की तैयारी की और मकान पर एक मनुष्य नियत कर अपने तीनों बेटे और बेटों की स्त्रियां और अपनी स्त्री और छोटे २ दो तीन बच्चे ले जङ्गल को चल दिया और ठीक साहूकार के बतलाये स्थान पर पहुंच, ठैर गया॥

पड़ौसी—(अपने तीनों बेटों से) जाओ तुम कांस काट लाओ हम रस्सी बनावेंगे ॥

बेटे—हम तो हारे थके आये हैं, तुम आप जाकर काट लाओ ॥

पड़ौसी—(अपनी स्त्री से) तुम रोटी चढ़ाओ ॥

स्त्री–रोटी काहे की चढ़ाऊं, कुछ आटा दाल तो तुम ने रखने ही नहीं दिया, पकाऊंगी क्या तुम्हें ? ॥

पड़ौसी—नहीं, चढ़ा तो दो ॥

स्त्री—मैं कुछ पागल तो हूं ही नहीं,जो बिना आटा दाल रोटी चढ़ाऊं। तुम तो पागल हो गये हो, तुम को तो जंगली दिखा गया है ॥

लाचार हो वह पड़ौसी अपने आप दरांती ले जङ्गल से कांस काट लाया और वृक्ष के नीचे बैठ रस्सी बटने लगा और भूत उतरा ॥

भूत—ऐ मुसाफ़िर ! तुम क्यों रस्सी बटते हो ॥

पड़ौसी—मैं तुम को बांधूंगा ॥

भूत—(हंसकर) तुम पागल हो, तुम से अपना कुनबा तो बंधता ही नहीं, भला तुम मुझे कैसे बांध सकते हो, जाओ अपने घर को चले जाओ, नहीं तो जान से मार डालूंगा। ऐसा सुन वह पड़ौसी उदास हो चला आया ॥

बेटा ! इस से समझ लो कि जिस मनुष्य का कुनबा वश में नहीं होता वह कुछ भी नहीं कर सकता ॥

अब हम दोनों बहन भाई इसी तरह बड़े हुये और मेरे ताऊ जी ने मेरी सगाई का प्रबन्ध किया और कभी २ मुझे शिक्षा किया करते। एकदिनः—

धर्मसिंह—बेटी बावली ! अब तुम को कुछ काल में सासरे जाना होगा, देखो मैं तुम को कुछ शिक्षा करता हूं, उस को याद रखना, भूलना नहीं ॥

मैं—ताऊजी ! जो आप मुझे बतलावेंगे जब तक जीऊंगी, उसे याद रक्खूंगी॥

धर्मसिंह–बेटी ! तुम अपनी सास को अपनी मा के समान और अपने ससुर को मेरे समान, देवरों को राधारमण के समान, जेठ को अपने पिता के समान और जिठानियों को अपनी बड़ी बहन के बराबर समझना। उन को सब रीतियों से प्रसन्न रखना,किसी तरह से अप्रसन्न न करना। देखो, अधिक दिन तो क्या, अब तो जिस रोज़ यहां से जाओगी उसी दिन से समझ लेना कि तुम्हारा वही घर है, यहां तो जितने दिन तुम रहोगी मिहमानों की तरह रहोगी। सास से आदि ले सब की सदैव सेवा करना, जो वे किसी बात की हठ करें तो तुम उसे स्वीकार कर लेना। देखो,जो इस समय तुम से कोई बात बुरी होगई तो वे अवस्था भर याद रक्खेंगे। देखो

जिस रोज़ तुम सासरे पहुंचोगी, तुम्हारा चलना फिरना बैठना उठना सोना सब तुम्हारा सास ननन्द अड़ौसन पड़ोसन देखैंगी और बात२ पर चर्चा करेंगी, तुम बहुत सावधानी से रहना और उनकी सम्मति का ध्यान करना।।

मैं-ताऊ जी ! भला फिर इस सोने बैठने का क्या प्रबन्ध हो सकता है।

धर्मसिंह-बेटी ! सब से पहिले उठना और सब से पीछे सोना । खाने को चाहे भूखी रहो, परन्तु सब से पीछे खाना और होले २ छोटे २ ग्रास खाना । जो किसी चीज़ को मन चाहै तो अवश्य चुप हो जाना और अपना मनोरथ प्रकट न होने देना । जो सास ससुर किसी गहने कपड़े के लिये पूछैं तो कहला देना कि तुम को अख़्त्यार है, मेरी तो कुछ इच्छा नहीं । बेटी ! अधिक बोलना मत, बहुत हंसना मत, यह भी मनुष्य में अवगुण हैं । जो तुम से कुछ हमारे वृत्तान्त पूछैं तो कुछ न कहना ॥

मैं-ताऊ जी ! तुम्हारे वृत्तान्त कहने में क्या दोष है ॥

धर्मसिंह-बेटी ! वे समझ लेंगे कि जब यह अपने बाप के वृत्तान्त हम से कहती है तो हमारे वहां जा कर कहैगी, इस सबब से वे तुम से अपने समाचार छिपावैंगी और तुम्हारे मन में यह बात आजावेगी कि यह अपने वृत्तान्त मुझ से छिपाते हैं तो वैसे ही निष्फल विना कारण बुराई का पैदा मन में जम जावेगा । अड़ौसन पड़ौसन जो तुम्हारे देखने को आवें, उन के बहुत प्रेम से चरण ले, उचित आसन देना, जो बात पूछें नीचे को मुख कर होले २ उत्तर देना, सदा जो वस्तु खाओ अलग एक कोने में बैठ कर खाना, कभी डोलते फिरते या चौके से बाहर कोई वस्तु न खाना ॥

भोर उठते ही सास ननन्द द्यौरानी जिठानी सब को पालागन करना। सदैव ऐसा स्वभाव रखना कि जिस से घर की सब स्त्रियां यह समझैं कि कार्य करने को तैय्यार है । वैसे ही अब की बार वे तुम से बहुत प्रीति करेंगी, कोई कोई घर का काम काज तुम को न करने देंगी, परन्तु तुम को सदैव घर के काम काज में मन लगाना चाहिये । जिस समय हम को चिट्ठी लिखो, अपनी सास को सुना लिया करना क्योंकि चिट्ठी न सुनाने से उन के मन में अनेक प्रकार की शङ्का उत्पन्न होंगी । जो किसी समय तुम्हारे सास ससुर मुझे या तुम्हारी माता को बुरा भला कहैं तो उदास न होना क्योंकि संसार की अब यह परिपाटी पड़ गई है कि समधी समधन आपस में एक दूसरे को पीछे बुरा भला कहते हैं और लोग बाग इस को प्रेम रूपी

ठट्ठा समझते हैं, जब लड़कियां वा स्त्रियां कोई मूर्खता का राग वा गीत गावैं तो उस में शामिल न होना। जो तुम्हारी सास तुम को कहीं पड़ौस में लेजावे तो उन के साथ चली जाना और वहां बहुत ओले परदे से सावधान रहना। जो तुम्हारा मन किताबें पढ़ने को चाहे तो सास से आज्ञा ले दो चार घड़ी अपनी किताबें पढ़ा करना। मैंने तुम को बहुत बातें दृष्टान्त दे दे कर सिखला दी हैं, उन को अच्छी तरह से याद रखना। यह बातें तो मैंने तुम को बतला दी हैं परन्तु पतिसेवा का मार्ग तुम अपनी ताई से पूछ लेना। वह तुम को बतला देवेगी और अभी तो तुम को उस की आवश्यकता भी नहीं। हां, घर का काम काज व प्रबन्ध देखना अवश्य है। जो कुछ बिगाड़ जान पड़े तो उस के दूर करने के लिये जल्दी न करना क्योंकि तुम अब की वार ब्याहली हो जाओगी। जिस दिन अवसर मिलजावे अपनी सास को अकेले में समझा देना और ऐसी अच्छी रीति से प्रबन्ध करना कि किसी को बुरा न जान पड़े। यहां से जो नाई ब्राह्मण या कोई और मनुष्य जावे तो उन के मिलने का अधिक प्रेम प्रकट न करना और बिलकुल अप्रेम वर्त्तना, यह भी अपकीर्त्ति का कारण होगा। यहां के मनुष्यों के पास अधिक देर तक न बैठना। जो अब की वार तुम प्रसन्नता पूर्वक रहीं तो फिर तुम को कुछ कठिनता न होगी॥ प्रयोजन यह है कि ऐसी ही बहुत सी बातें मुझे मेरे ताऊजी ने सिखलाईं॥

अब मेरी सगाई का वृत्तान्त सुनो कि मेरी सगाई एक रईस के यहां हुई थी। और उन की आमदनी भी बहुत थी परन्तु प्रबन्ध अच्छा न जानते थे। जिस समय मेरे ताऊ जी ने विवाह की चिट्ठी भेजी तो नाई को समझा दिया कि लाला साहिब को समझा देना कि बहुत सी बरात का तूमार न करें। बीस पच्चीस वारकश हों, सौ या सवासौ बराती हों, बाजा साधारण हो, आतिशबाज़ी, नाच, रण्डी न लावें। सीधी तरह से विवाह कर ले जावें और कह देना कि हम छोटे हैं और आप बड़े, किसी तरह से हम आप की बराबर नहीं कर सकते॥

नाई--जिजमान की जय रहे, बहुत अच्छी तरह से समझा कर कहूंगा, किसी तरह से वे मेरे कहने को बुरा न समझेंगे और नांह भी न कर सकेंगे॥

यह बातें हो ही रहीं थीं कि पुरोहित जी पुरोहितानी सहित आगये॥

धर्मसिंह—पालागन पुरोहित जी! प्रसन्न तो हो? (और मुझ से) लो बेटी! अब तुम पुरोहितानी जी से सब रीति गृहस्थ आश्रम की पूछ लो (और पुरोहितानी से) पुरोहितानी जी! कृपा करके चावली को सब मार्ग

गृहस्थाश्रम के अच्छी तरह से सिखला दीजिये क्योंकि अब यह ब्याह को सासरे जावेगी ॥

पुरोहितानी--बहुत अच्छा, जिजमान ॥

अब मैं और पुरोहितानी जी घर में चले गये और मेरे ताऊ जी और पुरोहित जी बाहर रहे और रात को मुझे पुरोहितानी जी ने समझाने का आरम्भ किया॥

पुरोहितानी—सुनो बेटी ! अच्छी लड़कियों की इस में बड़ाई है कि अपने पति की सच्चे मन से सेवा करे। देखो मनुशास्त्र हमारे इस देश में धर्मशास्त्र माना जाता है उस में भी लिखा है कि स्त्री किसी समय में स्वतन्त्र वा स्वेच्छाचारिणी नहीं हो सकती ॥

मनु–

स्त्री बचपन में माता पिता व भाई बन्धुओं के आधीन रहती है,युवावस्था में अपने पति के आधीन,बुढ़ापे में अपनी सन्तान के आधीन रहती हैं॥

चावली—पुरोहितानी जी ! जिस के माता पिता भाई न हों तो वह किस के आधीन रहेगी ॥

पुरोहितानी—बेटी ! चाचा ताऊ मामा फूफा, जो अपने बड़े हों उन्हीं के आधीन रहना चाहिये, जो इन में से कोई भी न हो तो राजा सब का पिता है, उस की आज्ञानुसार रहना चाहिये ॥

चावली—पुरोहितानी जी ! जब किसी के सन्तान न हो, तो बुढ़ापे में किस के आधीन रहेगी ?

पुरोहितानी—बेटी ! जो देवर जेठ या उन की सन्तान हो,उस के आधीन रहना चाहिये, परन्तु जो दैवयोग से अकेली ही रह जावे तो धर्म से अपनी अवस्था पूरी करे। एक मुनीश्वर ने कहा है "जो स्त्री अपनी इच्छा के वश में हो धर्म विरुद्ध काम करेगी, वह सीधी नरक में जावेगी" ॥

भागवत में लिखा है कि पति कैसा ही कुरूप,कुमार्गी,रोगी,शठ, खल, निर्धन, हो तब भी स्त्री को चाहिये कि उस को अपना पतिदेव माने और उस की सेवा करे, ऐसा करने से स्त्री व पति दोनों सुख पाते हैं। तुमने सुना होगा कि राजा जलन्धर की स्त्री के ही पतिव्रतधर्म से सदैव जय होती रही, कभी वह हारा नहीं ॥

और महाभारत में भी लिखा है कि जो स्त्री अपने पति की आज्ञाकारिणी रहेगी और पति उस की रक्षा हर तरह से करता रहेगा, तो वह कुल सब प्रकार सुख पावेगा ॥

इस लिये ऐ पुत्री ! स्त्री को सदैव अपने पति की सेवा करनी उचित है॥

चावली-अच्छा पुरोहितानी जी ! अब आप नित्यकर्म बतलावें ॥

पुरोहितानी-सुनो बेटी ! स्त्री को उचित है कि अपने पति से पहले सो कर उठे और जहां तक होसके सब कुटुम्ब के लोगों से पहले उठे । प्रयोजन यह है कि सूर्य न निकल आवे और उठ कर प्रथम पति को हाथ जोड़ प्रणाम कर फिर चरण लवे और रात दिन बराबर पति का ध्यान रक्खे, फिर सास नन्द जिठानी व दादस आदि जो बड़ी हों, उन सब को दण्डवत् प्रणाम कर चरण छुए । इस के पीछे घर की स्वच्छता से निवृत्त हो, जो काम अवश्य करने हों, उन से छुटकारा पा, स्नान कर संध्या अग्निहोत्र कर गृहस्थ के कार्य करे । जिस समय दोपहर होवे, भोजन तैयार कर प्रथम बलिवैश्वयज्ञ करे, फिर जो अपने बड़े हों, उन को भोजन करावे । फिर छोटों को भोजन करा, पीछे आप भोजन करे । हां, जो कोई अतिथि वा सतिथि आया हो तो उस का सम्मान बहुत अच्छी तरह से करे । इसी रीति से संध्या समय सब को भोजन करा,सास नन्द जिठानी से पांव दबाने की विनय करे, जो कोई उन में से कहे तो उन के पांव भी दबा देवे, पीछे अपने पति के पांव दाब सेवा कर सो रहे ॥

चावली-पुरोहितानी जी ! जब घर में बुहारने सकेरने व रसोई बनाने को नौकर उपस्थित हों तो क्या करे ॥

पुरोहितानी-उन की ख़बरदारी रक्खे कि समय पर काम पूरा हो, जावे, देर न करे, जो दैवयोग से कोई अपने समय पर न आ सके तो आप उस काम को पूरा करे ॥

चावली—पुरोहितानी जी!अतिथि किसकोकहतेहैंऔरसतिथिकिसको ॥

पुरोहितानी—बेटी ! अतिथि वह जिस के आने की कोई तिथि नियत न हो और जो नित्य का भिक्षुक भी न हो अर्थात् कोई साधु महात्मा जो फिरता हुआ अपनी मौज से चला आवे ॥

सतिथि में नातेदार, पति के मित्र प्यारे और अपने बान्धव शामिल हैं, जिन के आने का कुछ प्रयोजन होता है, या कोई तिथि वा समय नियत कर आते हैं ॥

चावली—मनुष्य के नित्य कर्म क्या २ हैं ॥

पुरोहितानी – बेटी ! प्रथम तो संध्या, दूसरे अग्निहोत्र, तीसरे बलिवैश्य, चौथे अतिथिसेवा, पांचवें श्राद्ध; जो इन को प्रतिदिन करता रहेगा वह कभी भी दुःख न पावेगा ॥

चावली—भला पुरोहितानी जी ! छोटे २ बच्चे कैसे विना भोजन किये बड़ों के भरोसे रह सकते हैं ॥

पुरोहितानी—बेटी ! छोटे बच्चे जब तक उन में समझ न आवे, अपने बड़ों के आधीन रहें, इस लिये उन पर कर्म धर्म का बोझ भी नहीं डाला गया, उन के लिये अच्छी स्त्रियों को चाहिये कि अलग चौके में थोड़ी सी रोटी वा पूरी कलेऊ के लिये सवेरे ही बना कर खुला दिया करें तो वे पुष्ट भी रहेंगे और फिर दोपहर की रसोई के समय दंगा भी न करेंगे । बेटी ! जो स्त्रियां भोजन बनाना अच्छी रीति से नहीं जानतीं उन के बच्चे चटोरे होजाते हैं और उन के ख़र्च भी अधिक बढ़ जाता है और जिस समय उन की रोक की जाती है, वे चोरी करने लगते हैं और अन्त में यह स्वभाव बढ़ कर बुराई और बिगाड़ का कारण हो जाता है । मैं तुम को एक धर्मवती नाम स्त्री का वृत्तान्त सुनाऊंगी, जिस से तुम समझ लोगी कि स्त्री को भोजन बनाना कैसा लाभ कारक है, परन्तु एक बात और कहती हूं कि सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि दौरानी जिठानियों के जो बच्चे हों उन की भी अपने ही बच्चों के समान रक्षा करे क्योंकि जब तुम अपने बच्चों के साथ सब वस्तु उन को भी खिलाओगी तो वे अपने बच्चों के साथ तुम्हारे बच्चों को खिलावेंगी, इस में दो लाभ होंगे, एक तो आपस में प्रीति रहेगी दूसरे कोई स्त्री किसी बच्चे को छुपा कर कुछ भी न देगी और घर का सब कार बार भली भांति चलेगा । किसी कवि ने कहा है:—

गांठ जुदी घर साझला, कुनबा बारह बाट ॥

बेटी ! जिस समय स्त्रियों में अपने पराये का ध्यान होने लगता है उस समय वे घर की चीज़ें छुपा २ कर दूसरों के हाथ बहुत सस्ती बेच अपने पास न्यारा कुछ धन इकट्ठा करती हैं और उस से घर का नाश हो जाता है । जो घर में एक भी चतुर स्त्री हो और सब बच्चों को एक दृष्टि से देखती रहे तो यह अपने पराये की बात नहीं उत्पन्न होती । क्योंकि बच्चे सदैव नई नई चीज़ों की इच्छा किया करते हैं, जो उन को सदैव उलटता पलटता भोजन मिले तो कभी स्वभाव न बिगड़े ॥

चावली—हां, पुरोहितानी जी ! धर्मवती की कहानी तो सुना दीजिये॥

यह प्रथम भाग समाप्त हुआ ॥

अब द्वितीय भाग में धर्मवती की कहानी लिखेंगे ॥

नोटिस

नीचे लिखी पुस्तकें और सलाई निम्न लिखित पते से मिलती हैं ॥

१ पं० तुलसीराम स्वामी स्वामियन्त्रालय मेरठ

२ बा० केदारनाथ स्टाम्पफ़रोश तहसील के आगे–मेरट

३ मैनेजर तिजारती प्रेस उरई

४ पं० किशोरीलाल काग़ज़ी तहसील के पास मेरठ शहर

(अ) सीताचरित्र नावल हर भाग ।-) कुल १।)

(आ) ऋग्वेद अष्टक १ उर्दू भाष्य सहित ५१२ पेज ॥।=)

(इ) यजुर्वेद का उर्दू भाष्य सजिल्द २)

(ई) कुल्लियात नत्थूलाल जिस में विवाह नाटकादि सब किताब लाला नत्थूलाल वकील ग़ाज़ियाबाद की बनाई हैं उर्दू ॥ ॥)

(उ) विधवाश्रम की सलाई जो सायं प्रातः ख़ाली आँख में फेरने से सब रोग दूर करती है ≡)

(ऊ) आल्हाध्वनि मनुस्मृति ॥=)

डाक ख़र्च ख़रीदार के ज़िम्मे, परन्तु ५ के ग्राहक को छठी कमीशन है ॥

सामवेदभाष्य का पूर्वार्ध समाप्त हो गया ५।) कमीशन छोड़कर ४)

☞ मनुस्मृतिभाषानुवाद १।) बढ़िया काग़ज़ १॥) सुनहरी छापा २॥) ही

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।-) बढिया ।≡)

दयानन्दतिमिरभास्कर का उत्तर "भास्करप्रकाश" २।=) कमीशनछोड़कर २)

*हितोपदेश भाषानुवाद तथा श्लोक १)

मूर्त्तिप्रकाशसमीक्षा।=) दिवाकरप्रकाश ।)

विदुरनीति भाषाटीकास०।-) सजिल्द।≡)

श्लोकयुक्त वैदिक निघण्टु ≡)

वेदप्रकाश मासिकपत्र के प्रथम भाग १ वर्ष का ॥=) द्वितीय ॥=) तृतीय ॥=) चतुर्थ ॥=) पञ्चम ॥=) पांचों भाग साथ कमीशन काटकर २॥) सजिल्द ३)

संस्कृत स्वयंसिखाने वाली संस्कृतभाषा प्रथम पुस्तक)॥ द्वितीय पुस्तक -) तृतीय पुस्तक =)।। चतुर्थ ।=) चारों की कच्ची जिल्द।≡) पक्की जिल्द ।॥)

संस्कृतप्रवेश)॥

संस्कृत–भाषा–प्रथम श्रेणि (रीडर) -)

ऋगादिभाष्यभूमिकेन्दूपरागे द्वितीयोंऽशः -)॥ नियोगनिर्णय =)

अज्ञाननिवारण चतुर्थ भाग मूल्य =)

वैदिकदेवपूजा प्रसिद्ध व्याख्यान -)

मुक्ति और पुनर्जन्म -)॥ नमस्ते)।

ईश्वर और उसकी प्राप्ति-)

चाणक्यनीतिसार भाषा टीका -)।

प्रश्नोत्तररत्नमाला -) भागवतविचार -)

नालिकाविष्कार–जिस में प्राचीन तोप बन्दूक आदि के प्रमाण हैं)॥

विवाहतयोदर्पण-)

बालविवाहनाटक)॥

आर्यसमाज के नियम नागरी ≡)। १०० सैंकड़ा, अंग्रेज़ी में ।) १०० सैंकड़ा

व्याख्यानका विज्ञापन–जो चार जगह ख़ानापुरी करके सब उपदेशकों के काम में आता है =) १०० सैंकड़ा

पौराणिकधर्म और थियासौफ़ी)॥।

नागरी रीडर नं०१ मूल्य)। नं० २ मूल्य-)

सन्ध्योपासन)। १०० का १।) ५०० का ५)

टके सेर लक्ष्मी)॥ ऋषिचरित्र -)

हुक्कादोषदर्पण ।=) भागवतपरीक्षा)।।

जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलय ≡)

१४ विद्या ६४ कला)।

ग़ाज़ीमियां की पूजा)॥

पाषण्डगजकेशरी)।।

(नवीन) आर्यमतमार्त्तण्ड ।)

अष्टाध्यायी मूल मोटा अक्षर ।)

वृक्षों में जीवनिर्णय)॥

वीर्य्यरक्षण)॥ कन्यासुधार -)

सन्ध्योपासनमीमांसा -) मतनिर्णय -)

ईश्वरसिद्धि =)॥ कुरीतिनिवारण -)।

सांख्यप्रवचन भाष्य संस्कृत में १।)

अङ्कगणितार्यमा ≡)।। होमयज्ञ =)॥

शास्त्रार्थरानीगंज)॥ सत्यबोध -)

---

३) में ।।) और १०) में २) कमीशन छोड़े जायंगे। सर्वसाधारण को सामवेद मनु भाषानुवादादि पारमार्थिक और लौकिक सुधार के पुस्तक लेने का अच्छा अवसर है

पता–तुलसीराम स्वामी–मेरठ

ओ३म्

सीताचरित्र

द्वितीय भाग

स्त्रीशिक्षाविषयक-उत्तम २ कहानी और स्त्रीधर्म-सम्बन्धी उपाख्यानयुक्त सरल मनोहर पुस्तक

जिस को

मुंशी दयाराम साहब ने

अपने रचे उर्दू सीताचरित्र नावल से देवनागरी अक्षरों में उल्था करके प्रकाशित किया ॥

सामवेदभाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी के प्रबन्ध से

स्वामियन्त्रालय-मेरठ में छपा

द्वितीयवार १०००] अगस्त सन् १९०३ मूल्य ।-)

भूमिका

आज तक कोई पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य ऐसा नहीं छपा, जिस की भाषा सरल हो, स्त्रियां समझ सकें और उन का मन बहले तथा धर्म के साथ गृहप्रबन्ध के लिये उत्तम शिक्षा की प्राप्ति हो सके। इस अभाव को दूर करने के लिये मैंने "सीताचरित्र" नावल नामक पुस्तक उर्दू में रच कर छपाई थी, जिस के हाथोंहाथ ग्राहकों की मांग पर मांग आने से मैंने यह समझा कि मेरा परिश्रम सफल हुवा और अपने कई मित्रों की सम्मति से कि "उर्दू में होने के कारण बहुधा स्त्रियों को इस के लाभ से वञ्चित रहना पड़ता है, इस का नागरी भाषा व देवनागरी अक्षरों में अनुवाद होना चाहिये" मैंने नागरी में अनुवाद किया। यह पुस्तक चार भागों में है। इस में धर्माऽधर्म, सत्याऽसत्य, गृहप्रबन्ध, पातिव्रत आदि बड़ी उत्तमता से रोचक कहानियों द्वारा दिखलाये गये हैं और श्रीमती सीता महारानी, दमयन्ती, तारासती आदि का जीवनचरित्र सरल भाषा में लिख कर उन के सुन्दर उदाहरणों के ग्रहण कराने के लिये शक्ति भर परिश्रम किया गया है। इस के वार २ पढ़ने पर भी जी नहीं भरता। इस के होते रामायण, नलोपाख्यान और हरिश्चन्द्र आदि की आवश्यकता नहीं रहती। इस के प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थभाग आप की सेवा में प्रस्तुत हैं॥

ग्रन्थकर्त्ता–

ओ३म्

सीताचरित्र द्वितीयभाग

धर्मवती

एक सेठ की बेटी धर्मवती नाम थी, बड़ी नेक चलन और शान्त स्वभाव थी और उस के बाप ने शिक्षा भी बहुत दी थी। गृहस्थ के काम में तो बड़ी ही प्रवीण थी। जब उस का विवाह हुआ और सासरे पहुंची। तो देखा कि घर की बुरी दशा है, सब वस्तु तित्तर, वित्तर ख़र्च बहुत बेढंग। बड़े सोच विचार के साथ सास से बोली॥

धर्मवती–माजी! आप का घर तो बुरी दशा में है। देखो १५०) मासिक की तो आमद है और नित्य सब खाने पीने की चीज़ बाज़ार से उधार आती हैं, टहलवा टहलनी मालिक हैं,जो चीज़ जी में आवे लावें और जो जी में आवे न लावें,जवाब देदें कि दुकानदार नहीं देता। आटा सदा मैला,मोटा आता है और रोज़ २ क़र्ज़ मांगने वाले द्वारे पर खड़े रहते हैं, दोनों जिठानियों के बालक हर चीज़ कू गिड़ गिड़ाया करते हैं,तुम्हारे छोटे बच्चे भी नित्य२ पैसे ही मांगा करते हैं। यह तो ठीक है कि उन को १० या १२ पैसे नित्य मिलते हैं, पर बुरी दशा से दुकानदार पर बता दिये जाते हैं कि जिन में से ४ कौड़ी पैसे पर वह अलग काट लेता है॥

सास–बहू! मैं क्या कहूं,तेरी बड़ी जिठानी ने इन्तज़ाम किया था, इन टहलवा टहलनियों ने मिल, तेरे सुसरे पर उधार का तक़ाज़ा मचवा दिया और जिन्स बन्द करादी, इस पर तेरे सुसर बड़े रिसाये और कहा कि जैसे चला आया है चलने दो,कुछ गड़ बड़ न करो। बहू! जब कोई महमान आवै है, तब तो मैं मर ही जाती हूं, जब बनिये केसे जिन्स आवे तब विचारे को खाना मिले और जब ये सामान नहीं लाते तो मुझे बड़ी ही लिहाज़ आती है। बहू! क्या करूं,कुछ करते धरते नहीं बनती। बहू! मैं तो दिन पूरे करूं हूं। जब कोई इन्तज़ाम का नाम भी लेता है,झट ये नौकर चाकर मिल, दुन्द मचा देते हैं, मैं तो तङ्ग आ गई, अब राम करे सो होय॥

धर्मवती–भला, जिठानी जी भी प्रबन्ध कर चुकी हैं?

सास–बहू! बड़े २ इन्तज़ाम हो लिये, ये तेरी जिठानी नन्द सब चाहती हैं, पर कुछ होता ही नहीं॥

धर्मवती-भला लाला जी की तलब क्या की जाती है ?

सास-तक़ादे वाले पहले ही से द्वारे पर आ बैठते हैं और हाथों हाथ ले जाते हैं। किसी महीने में १० या ५ बचा लेती हूं उस में से बच्चों को -) या =) नित्य दे देती हूं, हाय बहू ! जब कोई बालक कहीं बाहर नई चीज़ देख आता है और मुझ से रो रो कर मांगता है, तब तो मुझे बड़ा दुःख होता है, घड़ियों रोती हूं, पर क्या करूं ॥

धर्मवती-सास ! एक बात मैं कहूं वह कर दो ॥

सास—बहू ! जो कहो सो ॥

धर्मवती-एक दिन ऐसा करो कि इन चारों टहलनियों को तो किसी काम के बहाने घर से बाहर भेज, घर के किवाड़ बन्द करादो और मैं और आप और दोनों जिठानी सलाह करलें ॥

सास-बहू ! मुझे तो कुछ होता हुवाता दीखता नहीं,तैने देखा कि ये चारों कैसी ढीठ हैं, कभी २ तो जवाब भी दे देती हैं और बड़ा कड़ा जवाब दे देती हैं कि जी दुःख जाता है ॥

धर्मवती-माता जी ! इस में कुछ ख़र्च तो है ही नहीं, अबके तो और करके देखलो, जब कुछ न होगा तब ही देखेंगे ॥

सास-अच्छा,मैं अभी २ करती हूं (और एक टहलनी से) तू सेठ जी के जा, उन की घरवाली को ठीक ४ बजे लिवाला और गोकुली ! तू लाला केवल राम के घर जा,उन की घरवाली को ४ बजे लिवाला,उन से कुछ सलाह करनी है और बाक़ी को भी टाल,किवाड़ बन्द कर, चारों सास बहू इकट्ठी हुईं ॥

धर्मवती-(दोनों जिठानियों से) बीबी ! तुमने घर का इन्तज़ाम देखा, मुझे तो बड़ा दुःख होता है, मेरा जी तो बड़ा दुःखी रहता है, आप इस का प्रबन्ध करें ॥

पद्मकुंवर-बीबी ! मैं तो देवकुंवर के और तेरे कहने पर चलूं हूं, जैसे तुम कहो वैसे ही मैं और मा जी करें। हम से तो कुछ होगा हुवावेगा नहीं, तुम दोनों के जी में आवे सो करो । हमें जो बताओ सो करें, जो तुम रोटी दोगी तो खा लेंगे, न दोगी तो भूखी बैठ रहेंगीं ॥

द्रव्यकुंवर-बहन ! मैं तो इन्तज़ाम कर चुकी हूं। ये मा जी और बड़ी तो कुछ सहारा देती ही नहीं, अकेला चना कैसे भाड़ फोड़े,मैं तो लाचार

होगई । बहन ! अब तुम आई हो, मैं भी तुम्हारी साथी हूं, जैसे चाहो करो, मुझे जितना काम बताओगी, करदूंगी ॥

धर्मवती–बीबी ! एक काम करो, रुपया पैसा तुम रक्खो और हिसाब मैं॥

द्रव्यकुंवर–अच्छा(सास और जिठानी की ओर देख)तुम्हें यह मन्ज़ूर है ?

दोनों–हम तो कहचुके कि रोटी दोगी तो खा लेंगे, पर यह फ़ज़ी-हता दूर हो ॥

धर्मवती–अच्छा बीबी ! अब यह सोचो कि घर का ख़र्च कितना है और आमदनी कितनी, जब कुछ कहूं ॥

द्रव्यकुंवर–बीबी १४६॥।-) महीना तो लाला जी के आते हैं और ३५) महीना दोनों भाइयों के, कुल १८१॥।-) महीना ॥

अब ख़र्च–१) रोज़ का तो आटा आता है और ॥) का घी और ।) रोज़ की दाल तरकारी मसाला, चार चार रु० महीना दोनों कहारों का और टहलनियों के ३॥) महीना और २)महीना ब्राह्मण के और ९) साईस और ग्रासकट के और ५)महीना घोड़े के दाने के और १०)मकान केभाड़े के,कुल ८६) और १४) महीना ख़रीज ख़र्च, बस १००) महीना बहुत होगा ॥

धर्मवती–(देवकुंवर से सलाह कर) माजी ! आप एक काम करें कि अब के महीने की तलब तो हमें दें और हमारे हाथ से ख़र्च हो, अब की तलब चचापती को न दीजाय तो प्रबन्ध होजाय और बीबी ! तुम जेठ जी से कह, इतवार के दिन सामान मंगा दिया करो तो हम दोनों छोटी २ मिल काम करें ॥

सास और पद्मकुंवर–अच्छा मन्ज़ूर । उन्हें कचहरी से आने दे अभी२ कहदेंगे और ऐसा ही होगा ॥

धर्मवती–ना बीबी ! अभी चुप रहो, यह भेद न फूटे, जब तलब हाथ में आजाय तब कहना, नहीं तो टहलनी झगड़ा डाल देंगी ॥

चन्द्रमुखी–अब सब ने सलाह करली और भेद छिपाया, शनैश्चर के दिन तलब आई और लाला रामप्रसाद ने १८१॥।-) घरवाली को दिये और उस ने देवकुंवर को दिये और धर्मवती और देवकुंवर कोठे पर जा सलाह करने लगीं ॥

धर्मवती–कहो बीबी ! अब क्या करना ?

द्रव्यकुंवर—पहले तुम बताओ ॥

धर्मवती—मेरी समझ में तो कल लड़के छोटे जेठजी को भेज,२५) के गेहूं और ५) के चने और१)की सांभर और२) का मसाला, २) के उर्द, २) की मूंग १) की मसूर और ५) का घी; मंगालो और कल के लिये १) का आटा भी। और २,४ दिन दुकानदारों को टालो और फिर छोटे जेठ जी से हिसाब करा, कुछ देकर महीने २ का करार करदो। बीबी! लालाजी तो पुराने आदमी हैं, जो वे ख़फ़ा भी हों तो परवाह न करो, दोचार दिन ही तो कहेंगे और नहीं तो मा जी सेकहदो कि लाला जी से कहदें कि तलब तो छोटी बहू ने ले ली, बस वे चुप हो जायंगे। १ कहार और २ टहलनी कम करदो ॥

द्रव्यकुंवर—मेरी समझ में १ टहलनी बहुत है, पर यह तो बताओ टहलनियों को कैसे निकालोगी ॥

धर्मवती—बीबी! यह क्या बड़ी बात है, जब उन को कुछ माल खाने को न मिलेगा, तब आप ही नाक भौं चढ़ावेंगी, बस जो कठोर बोले, उसे ही निकाल देना ॥

द्रव्यकुंवर—अच्छा, तुम जाओ मैं तुम्हारे जेठ जी को बुलाती हूं ॥

चन्द्रमुखी—द्रव्यकुंवर ने टहलनी भेज, अपने स्वामी को बुलाया, आता देख, दो कर जोड़,नमस्ते कर,कुर्सी पर बिठाल, सामने पीढ़ी पर बैठ गई ॥

चतुर्भुज—कहिये प्रिया जी ! कैसे याद किया है ॥

द्रव्यकुंवर—स्वामी जी ! बहू धर्मवती ने हम को बड़ा बड़ा लज्जित किया और कहा कि शोक है कि लिखे पढ़ों के घर की यह दशा, इस पर मैं बड़ी लज्जित हूं और आप की सहायता चाहती हूं, जो आप थोड़ी सी भी सहायता दें तो सब काम ठीक होजायं ॥

चतुर्भुज—लाला जी से भी आज्ञा लेली है, वे तो क्रुद्ध न होंगे ?

द्रव्यकुंवर—लाला जी को राज़ी करने का तो माजी ने ज़िम्मा कर लिया है, इस से निडर रहिये। बस इतवार को १ पहर हमारा काम कर दिया कीजिये ॥

चतुर्भुज—अच्छा तो काम बताओ ॥

द्रव्यकुंवर—बस मण्डी से जिन्स ला दिया कीजिये ॥

चतुर्भुज—मुझे क्या उज़्र है ॥

द्रव्यकुंवर—अच्छा, तो कल सवेरे ला दीजिये ॥

चतुर्भुज—क्या क्या लाना होगा ?

द्रव्यकुंवर—२५) के गहूं, ५) के चने, १) की सांभर, २) का मसाला जिस की मैं फ़हरिस्त दूंगी और २) के उर्द और २) की मूंग और १) की मसूर और ५) का घी और १) का आटा और किसी दुकानदार का चकला, छलना मंगा दीजिये और साईस को हुक्म दीजिये कि उस की लुगाई हमारा आटा पीस दिया करे ॥

चतुर्भुज—अच्छा सवेरे ला दूंगा ॥

चन्द्रमुखी—अब सवेरा हुआ और चतुर्भुज ४४) रुपये और मसाले की फ़ेहरिस्त ले, बाज़ार पहुंच, चौधरी बाज़ार से—

चतुर्भुज—चौधरी जी ! इस पर्चे में लिखी जिन्स हमारे संग करदीजिये और चकला और छलना भी भिजवा दीजिये ॥

चौधरी—बहुत अच्छा, कुंवर साहब ! अभी लीजिये (और दो पल्लेदारों पर रखा साथ कर) कुंवर साहब! दो २ पैसे एक २ पल्लेदार को दे देना ॥

चन्द्रमुखी—अब लाला चतुर्भुज जिन्स सङ्ग ले, घर को आये और रास्ते से साईसन को भी ला, घर में भेज दिया । अब बांदियों ने देखा कि जिन्स इकट्ठी आ गई, तो आपुस में काना फूंसी कर—

मन्थरा—आहा, छोटी बहू इन्तज़ाम करैंगी ॥

गोकुली—बड़े बाप की बेटी हैं, लिखी पढ़ी हैं, करैंगी, इन्तज़ाम करैंगी॥

मन्थरा—हम ने तो कभी इस घर का इन्तज़ाम देखा ही नहीं, देख लेना रोटी भी मुशकिल से मिलेगी ॥

धर्मवती और द्रव्यकुंवर—मा जी ! देखो ये दोनों बांदी कैसे कठोर वचन कह रहीं हैं, आप इन को धमका दें, या निकाल दें, हम को टहलनी बहुत हैं॥

सास—गोकुली ! तुम पागल हो गई हो, तुम्हारी अक़ल मारी गई है, बहुवों पर बोली फैंकती हो ॥

दोनों टहलनी—हमारी तो मत नहीं मारी गई, हम तो सच कहती हैं, कहीं इन का गहना कपड़ा न बिकता फिरे ॥

सास—चुप, जो फिर ऐसा कहा तो घर से निकाल दूंगी, तुमने समझा क्या है॥

गोकुली—तो हम जावें, फिर बुलाओगी तो नहीं, हमें तो बुलाती फिरोगी॥

सास—जाओ, नहीं बुलावेंगे ॥

चन्द्रमुखी—अब दोनों टहलनी चल दीं और सलाह कर उचापती बनिये को जा बहकाया ॥

गोकुली—लाला ! कल अपना तक़ाज़ा करके रुपया ले आओ, नहीं तो मारा जायगा । देखो ललब आ ली और घर में रख ली, अब के उन को देने की सलाह नहीं ॥

लाला—क्या ललब आगई ?

गोकुली—अजी आ क्या गई, वह तो ठिकाने भी लग गई । उन की छोटी बहू आई है, उस की करतूत है, अब के तो उस ने नाज दाल सब इकट्ठा मंगा लिया, अब तो तुम्हारी उचापत भी न रहेगी ॥

लाला—आज तुम उदास क्यों हो ?

गोकुली—लाला हमने समझाया था कि तुम्हारा रुपया दे दें, तो सास बहू दोनों काट खाने को दौड़ीं और कहा कि चलो, तुम ज़ामिन लगाई हो । लाला ! हम को तो इस बात का ख़्याल है कि सौदा हमारे हाथों गया है, जो किसी का मारा गया तो हमारा कौन एतबार करेगा । लाला ! आज तो मुन्शी जी घर हैं, कल कचहरी चले जायेंगे ॥

लाला—अब तो दिन थोड़ा रह गया और मेरी बिक्री का समय है, कल तड़के ही जा, कैड़ा तक़ाज़ा करूंगा, नहीं नालिश ठोक दूंगा, गवाही को तुम दोनों हो ही ॥

दोनों—हां लाला, हम लाखों में गवाही दें, भला क्या तुम्हारा रुपया झूठा है, खाया नहीं है ?

रामप्रकाश का घर

चन्द्रमुखी—धर्मवती और देवकुंवर ने उस साईसन से उर्द मूंग की दाल तयार कराई और दलाई के पैसे दें, कह दिया कि दश सेर आटा रोज़ पीस कर दे जाया करे और -) रोज़ ले जाया करे । जब बाक़ी दो टहलनियों ने देखा कि गोकुली मुन्दरी तो निकल गईं तो चुपके २ काम करने लगीं और समझ लिया कि इन को देख लें, जो फल बुरा निकला तो यहां नौकर ही हैं, नहीं तो उन का संग देंगी और यहां का हाल भी उन से कहती रहेंगी ॥

धर्मवती—बीबी ! राम जी बनाये राखे, २, ४ बालक हैं और ५, ७ बड़े, यह ≡) या ।) रोज़ीना का दूध आता है, तुम ना जी से कह दो कि लाला जी कहीं से एक भैंस मंगा दें, सो आध सेर चूनी भूसी जो निकलेगी, खा लिया करेगी और २) या ४) का सस्ता सा चारा मंगा लें, दो पैसे रोज़ की खली उस को बहुत होगी, और सब को दूध पेट भर मिलेगा ॥

द्रव्यकुंवर–अच्छा, मैं अभी मा जी से कहती हूं और सास के पास आ, माजी ! एक गाय मंगा दीजिये, आज तो लाला जी घर ही हैं ॥

सास–(लाला रामप्रकाश को बुला) मुंशी जी ! बहू कहती है कि एक गाय मंगा दीजिये, यह बाज़ार का दूध तो अच्छा नहीं आता ॥

रामप्रकाश–तुम ने भले वक्त कहा, अभी अभी एक व्यापारी गाय लाया था, २५) मांगता था और ७, ८ आठ सेर दूध की साई करता था ॥

सास–(बहुवों से पूंछ) अच्छा मंगा दीजिये, भला कौन बकेगा ॥

रामप्रकाश–(बाहर आ) कहो मियां व्यापारी ! ठीक ठीक मोल कहो और ठीक २ दूध बतादो ॥

व्यापारी–मुन्शी जी ! ऽ८ दूध से कम हो तो कौड़ी न देना, पर रुपया तो २५) से कम न लूंगा ॥

एक पास बैठा–मियां रुपये २२) लो, देखो मुन्शी जी ने अभी २ तो १ गाय ली है, मियां मुंह मांगी तो मौत भी नहीं मिलती ॥

व्यापारी–अच्छा जी, मुझे क्या उज्र है (और गाय बान्धता है)

रामप्रकाश–(एक अहलकार से) भाई, तुम हम को ५) का भूसा मंगादो॥

अहलकार–मुन्शी जी ! अभी मंगाता हूं (और अपने चपरासी से) अभी जाओ और वे दोनों गाड़ी भूसे की जो बिकने आई हैं, लिवा लाओ ॥

चपरासी–(बहुत अच्छा कह, गया और दोनों गाड़ी ५) को ठहरा लाया और १) की खली मंगाई)

चन्द्रमुखी–रात को दूध निकाला ऽ३ निकला और १) का बूरा मंगाया और धर्मवती ने गर्म कर सब को पिलाया और सो रहे । भोर हुआ, धर्मवती ने सब घर झाड़ा बुहारा और टहलनियों ने चौका बरतन किया, इतने में साइसन आटा पीस कर लाई ॥

धर्मवती–(आटा ले और -) दे, एक पैसा दे) जा १ पैसा का बेसन ले आ॥

बांदी–(बहुत अच्छा कह, बेसन ५ छटांक लाई)

धर्मवती–(थोड़ा सा बेसन और थोड़ा सा आटा ले नमक, मिर्च, धनियां, सोंठ डाल छोटी २ रोटी बना उन पर घी रख, बालकों को बुला) लो मुन्ना ! ये खाओ तो देखो कैसी अच्छी हैं ॥

बालक–(ले और खा) चची ! ये तो बड़े मज़े की हैं, हम तो रोज़ बाज़ार

से कचौरी मंगाते थे, पर उन में यह मज़ा नहीं था, ये तो बड़ी अच्छी हैं॥

धर्मवती–मुन्ना ! जो तुम मेरे बे पूछे बाज़ार से कोई चीज़ न लाओगे और मुझ से कह दिया करोगे तो मैं तुम्हें बड़ी अच्छी २ चीज़ बना दिया करूंगी कि तुम खुश हो जाया करोगे ॥

बालक–अच्छा, हम आप के बे पूछे कोई चीज़ बाज़ार से न लावेंगे ॥

चन्द्रमुखी–अब घर का हाल सुनो कि ब्राह्मण तो रसोई बनाता और धर्मवती और पद्मकुंवर इन्तज़ाम करतीं, नित्य नये खाने बनातीं कभी मिठाई, कभी पक्वान्न और तीनों बालकों को दिन में ४ वक़्त प्रातः, दुपहर, तीसरे पहर, रात को खाना देतीं और नई नई चीज़। और लाला और दोनों उन के बेटों के लिये यह प्रबन्ध कि १० बजे तो खाना खाकर जाते और ४ बजे नाशता मिल जाता और रात को खाना और दूध दो चार दिन पीछे॥

रामप्रकाश–(अपनी घरवाली से) बहू तो बड़ी लायक़ है, खाने पीने का प्रबन्ध तो बहुत अच्छा किया है, पर यह बताओ कि ख़र्च इतना कहां से आवेगा ॥

सास–यह तो मैं नहीं बता सकती, पर तुम्हारी तलब तो मैंने मंझली और छोटी को देदी है, रुपया मंझली के पास है और हिसाब छोटी के पास, वे तो कहती हैं कि ख़र्च भी ख़ूब करलो तो भी कुछ बच ही रहेगा॥

रामप्रकाश–उमापती को कहां से दिया जायगा ॥

सास–वे तो कहती थीं कि महीना पूरा होने पर जो बचत होगी वह उमापती को देंगे और अब के महीने में ५०) देना कहती हैं और हां, ८०) देतीं, पर गाय लेली इस लिये ५०) देंगी ॥

रामप्रकाश–बालकों के ख़र्च में तो कमी नहीं की ?

सास–बालकों का बड़ा अच्छा इन्तज़ाम किया है। अव्वल तो वे कुछ मांगते ही नहीं और जब किसी बच्चे ने कोई चीज़ मांगी, तुरन्त तयार, बाज़ार की सब चीज़ यहीं बना देती हैं, और बालक भी कुछ ऐसे मोहित होगये हैं कि कहे में चलते हैं, कोई चीज़ भी तो नहीं मांगते, दिन में ४ बार तो खाना खिलातीं हैं और रात को दूध पिलाती हैं ॥

रामप्रकाश––इन्तज़ाम तो अच्छा है, पर देखिये जब ख़र्च का पूरा पड़ जाय ॥

सास-ख़र्च से तो आप घबरायें नहीं, उन्होंने मुझ से कहा है कि मुन्शी जी से कह देना कि उचापतियों का हिसाब कर, अगली तलब का क़रार करदें, हम तलब आने पर उन्हें निबटावेंगी और चतुर्भुज को समझा दिया है, उस से हिसाब करा, परचा हिसाब का मंझली बहू के पास भिजवा देना और हां, इतवार को हिसाब हो तो अच्छा है ॥

रामप्रकाश-बहुत अच्छा (और बाहर आते हैं)

मोदी-मुन्शी जी ! सलाम ।

रामप्रकाश-सलाम भाई, आओ, बैठो ।

मोदी-(बैठ) मुन्शी जी ! उचापत क्यों बन्द करदी, क्या ख़फ़ा हो गये? हमतो ताबेदार हैं ॥

रामप्रकाश-भाई ! बहू ने इन्तज़ाम किया है, बाज़ार से सब चीज़ इकट्ठी मंगाती हैं और वह उचापत रखना नहीं चाहतीं ॥

मोदी-तो हमारा हिसाब ही कर दीजिये ॥

रामप्रकाश-भाई ! आज तो कचहरी जाना है, इतवार को हिसाब करलेना ॥

मोदी-मुन्शी जी ! कुछ रुपया तो दे देते, हिसाब जब चाहना करलेना ॥

रामप्रकाश-भाई ! रुपया तो तुम्हारा मार में ही नहीं, मेरे हाथ की चिट्ठी तुम्हारे पास हैं, इतवार को सब तय हो जायगा ॥

मोदी-(बहुत अच्छा कह चल दिया)

हलवाई-मुन्शी जी सलाम ?

रामप्रकाश-सलाम भाई, सलाम, आओ जी ।

हलवाई-मुन्शी जी ! दूध मीठा क्यों बन्द करदिया ॥

रामप्रकाश-भाई ! मीठा तो १) का तुम्हारे से ही आया है । और दूध के लिये गाय लेली है, और तो लौज़ात बहू घर में ही बना लेती हैं ।

हलवाई-तो मुन्शी जी ! हमारा हिसाब चुका दिया होता, हमें तो रुपये की बड़ी ज़रूरत है ॥

रामप्रकाश-भाई ! हिसाब तो इतवार को होगा, इतवार को सवेरे ही आजाना और अपने पड़ोसी बजाज़ और ख़ोमचे वाले से भी कहदेना कि इतवार को हिसाब कर जायँ ॥

बातचीत

चन्द्रमुखी–इसी तरह प्रबन्ध करते २ शनैश्चर का दिन आगया और दोनों ने जिन्स पड़ताली ॥

धर्मवती–बीबी ! और तो सब सामान है,बस ५) का घी और १) का बूरा और १) का तेल और ५) की लकड़ी चाहियें और हां १) की मेवा भी मंगा लीजिये, कुछ लौज़ात बना दिया करेंगे ॥

द्रव्यकुंवर–बहुत अच्छा, मैं प्रातः ही तेरे जेठ जी को १३) का परचा दूंगी और हां,कल उचापतियों का हिसाब भी तो करना है, मैं समझा दूंगी कि समझ सोच कर हिसाब करें ॥

सास–क्या बात चीत हो रही है ?

धर्मवती–माजी ! कल इतवार है,आज जिन्स परताली हैं कि जो चाहिये, मंगालें और मोदियों के हिसाब की बात चीत थी ॥

सास–हां बहू ! तुम्हारे ससुर को बड़ा फ़िकर है कि घर का धन्धा कैसे चलेगा ॥

धर्मवती–देखो, महीना पूरा हो तो उन को मालूम हो ॥

सास–हां बहू ! इन नौकरों की तलब भी तो नहीं बंटी ॥

धर्मवती–मा जी ! जब कल मोदियों का हिसाब होजाय, तब दें ॥

सास–बहू ! जब रुपयाहै तो इनकी तलब क्योंरोकती हो,दे क्योंनहीं देतीं ॥

धर्मवती–माजी ! तलब न देने से जो कुछ गड़बड़ होगी, सब निकल जायगी,जो कोई चीज़ अपने लिये ले आते हों तो उन की तलब में काटाजाय॥

सास–ये चारों टहलनी और मिस्सर और एक कहार बाज़ार से चीज़ लाते हैं और तो कोई लाता ही नहीं ॥

धर्मवती–फिर उस में हर्ज ही क्या है, कल दुपहर पीछे देदेंगे ॥

गोकुली, मन्थरा–(बाहर से आ) रानी जी ! सलाम ।

सास–सलाम, कैसे आईं ?

गोकुली–अजी हमारी तलब तो देदी होती ॥

सास–कल तड़के मोदीका हिसाबहोगा,उसके पीछे तुम्हारी तलबमिलेगी ॥

गोकुली–हमारी तलब हिसाब पर क्यों रोकी जाती है, हमें तो ज़रूरत है, अभी देदीजिये ॥

सास-हिसाब किताब तो तुम्हारे ही हाथ है, जब तक हिसाब साफ़ न कराओगी तलब न मिलेगी ॥

गोकुली-हमें तो अभी देदो, हम तो लेकर जायंगी ।

सास-हां,पहले तुम्हें तलब चुका दूं? जब तक हिसाब साफ़ न कराओगी कौड़ी नहीं दूंगी और तुम्हारे साथियों को भी नहीं दूंगी ॥

गोकुली-हम तो लेके जायेंगी ॥

द्रव्यकुंवर-गोकुली ! क्यों हठ करती है, कल ले लेना ॥

गोकुली-बहू ! हमने कुछ हिसाब में से खातो लिया ही नहीं है ॥

द्रव्यकुंवर-फिर घबराहट ही क्या है,आठपहरमें क्याहारजीत हुई आती है॥

गोकुली-बहू ! हम को ज़रूरत बड़ी है ॥

द्रव्यकुंवर-ज़रूरत तो मालूम है पर बे हिसाब निबटे किसी को १ कौड़ी भी न मिलेगी (और सब को बुला) देखो कल मोदियों का हिसाब निबटादो, जिस के ज़िम्मे कुछ निकलेगा तो उसी से लिया जायगा ॥

गोकुली-तौ हम से और हिसाब से क्या मतलब ॥

द्रव्यकुंवर-हां हक़ पर आओ, जिन्स लाने वाली तौ तुम ही हो या और कोई है ? याद रखना कि जिस के ज़िम्मे जो निकलेगा वह तो देना ही पड़ेगा, पर जेलख़ाना और देखना पड़ेगा। लाला ने तुम्हारा सब बन्दोबस्त कर लिया है, अब तुम बिना हिसाब निबटाये सुख से नहीं रह सकतीं ॥

धर्मवती-बीबी ! क्यों अपना सर पचाती हो, घर का धन्धा देखो । इन के मुंह न लगो ॥

सलाह

चन्द्रमुखी-यह सुन गोकुली मन्थरा तो चली गई। और रात को चारों टहलनी और कहारों ने सलाह की कि हिसाब तो ठीक २ होना चाहिये॥

१ बांदी-बीबी ! हम तो ८ दिन से देखें हैं,इस बहू ने वह इन्तज़ाम किया है कि चार दाने नोन के नहीं मिलते । सारा सामान १ कोठरी में बन्द है और उस का भी तो ताला लगा रहता है । रुपया पैसा मंझली के पास रहता है वह सब अपनी संदूक़ में रखती है, तालीं दोनों अपने कमरबन्दों में रखती हैं, शाम को रोज़ बरतन परताली हैं, एक दिन एक गिलास न मिला था, छोटी बहू ने कह दिया कि हम को कुछ मतलब नहीं हम तो तुम्हारी तनख़्वाह से दाम काट लेंगे ॥

दूसरी–सारे बरतन काग़ज़ में लिख लिये हैं, और सब का मोल बता दिया है॥

पहली–हां, और पान देखे, इतवार के दिन एक ढोली ।॥।) को मंगाई थी, आज तक आधी भी ख़र्च नहीं हुई, दोनों कतरा करती हैं, जिस चीज़ को देखो ताले में बन्द, हम से तो झाड़ बुहारी और चौका बरतन का काम लिया जाता है, किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाने देतीं ॥

दूसरी–और वह भी देखा कि दालान के चिराग़ में तो तेल पूरा डाला जाता है बाक़ी किसी में आधा, किसी में चौथाई और पाख़ाने के चिराग़ में तो चौथाई ॥

पहली–यह छोटी बड़ी कांइयां है, बाज़ार की आई जिन्स को भी तो तोल लेती है, जब तो कोठरी में रखती है और दूध को आंगन में नज़र के आगे गरम करती है, इसे किसी का एतबार ही नहीं और बालक भी ऐसे डर गये हैं कि कोई चीज़ मांगते ही नहीं और न कुछ ज़िद्द करते हैं ॥

गोकुली–तुम बालकों को बहकाती क्यों नहीं कि बाज़ार की ज़िद्द करें।

दूसरी–बीबी! क्या कहूं, एक दिन मैंने उस मंझले बालक से कहा था कि चलो बाज़ार चलें, बस उसने झट जा कहा कि मुझसे यह नौकरनी बाज़ार चलने को कहती है, बस इस पर बीसों बात सुनाईं और कहा कि ख़बरदार, जो बालकों को बहकाया तो घर से निकाल दूंगी। और बालक भी ऐसे परच गये हैं कि कुछ मांगते ही नहीं ॥

कहार–यह बातें तो हुवा ही करेंगी, अब हिसाब का फ़िकर करो। मुझे तो उस का बड़ा डर है ॥

गोकुली–डर काहे का है, डर की कौन बात है, कहीं घोड़े दलालों के सिर पड़ते हैं?

पहली–बीबी! इस भरोसे मत रहना, मंझली ने चतुर्भुज को समझा दिया है कि पहले हिसाब लिख कर मुझे दिखा लो तब मैं समझ लूंगी, । तब रुपया दूंगी। भला बताओ तो, जब पूछा कि यह चीज़ कब आई, तब मैं क्या जवाब दूंगी ॥

कहार–हां है तो ठीक, वे तो बे आई चीज़ मुजरा देंगी ही नहीं, तब तो फ़ज़ीहता होगा, यही बाक़ी है, मेरी समझ में तो हिसाब की गड़बड़ निकाल दो, भला तनख़्वाह भी तो दब रही है॥

गोकुली–हां, ख़याल तो यह हम को भी है, उस चतुर्भुज को मैं पहले से जानती हूं वह बड़ा काइयां है, वह बात २ पर झगड़ा करता था,

पर मैंने तो उतरने नहीं दिया, पर अब वे उभर गया, क्या करूं, छोटी बहू ने क़ाबू कर लिया, ख़ैर मालूम न हुआ नहीं तो चलने न देती। पर अब तो रात में ही हिसाब ठीक करा दो। किसी ने कहा है कि "बद अच्छा बदनाम बुरा" अच्छा है जो ≠) या ।) भी देने पड़े तो भी बड़ी बदनामी होगी, चाहे १०) या ५) घर से जायें पर बदनामी न हो॥

चन्द्रमुखी–अब सब ने सलाह कर रात में ही सब इन्तज़ाम कर लिया।

इतवार का दिन

चन्द्रमुखी–चतुर्भुज बाज़ार से जा, सब जिन्स लाये और मोदियों को बुला हिसाब जोड़ा, ६०) परचूनी के २०) हलवाई के ५) ख़ोनचे वाले के ५०) कपड़े वाले के, कुल १३५) निकले॥

रामप्रकाश–चतुर्भुज! अपनी अम्मा से कहो कि १३५) निकले हैं, इन की क्या सबील करती हो, दोगी या क़रार करोगी॥

मोदी–मुन्शी जी! मुझे तो बड़ी ज़रूरत है, मुझे तो आज ही देदीजिये॥

हलवाई–मुन्शी जी! मैं तो टटपूंजिया हूं मुझ में तो बाक़ी रखने की समाई नहीं॥

रामप्रकाश–भाई! मैंने अभी तो पूछा ही है, कुछ तुम्हारा रुपया मारा तो जाता ही नहीं, अब न हो सकेगा तो महीना दो महीना में देदेंगे। जो कच्चीबात कहलाते हो तो सुनलो कि ज्यादा से ज्यादा तुम नालिश करोगे, तो ३ या ४ महीने से पहले तो मुक़द्दमा ही न निबटेगा, क्या तुम को मालूम नहीं है कि दो दो वर्ष से अदालत में मुक़द्दमात दायर हैं४या५ महीने से पहले तो किसी का फ़ैसला ही नहीं होता और अभी घर में से जवाब तो आने दो॥

चतुर्भुज–लाला जी! घर में से तो यह जवाब मिला कि ४५) रुपया महीने के हिसाब से ३ महीने में देंगे, ४५) अब की तलब पर और ४५) अगली पर और ४५) उस से अगली पर॥

मोदी लोग—अच्छा, ४५) तो अब दिलवा दीजिये, बाक़ी दो महीनों में दे देना॥

रामप्रकाश–चतुर्भुज! देखो तो, जो हो सके तो ४५) अभी देदो, बाक़ी हर महीने पर दे देना॥

चतुर्भुज–(जो आज्ञा कह घर में जा, कहता है)

द्रव्यकुंवर–(धर्मवती से बोली) बीबी ! क्या सलाह है ?

धर्मवती–बीबी ! मेरे अन्दाज़ में तो ४५) अख़ीर महीने पर बच ही रहेंगे, अच्छा है देदो, उन्हें भी सबर आजायगा, बीबी १०) या ५) महीना की तो उन की आमद गई और रुपया भी न मिले ॥

द्रव्यकुंवर–अच्छा लाला जी ! ये ४५) लेते आइये ॥

चतुर्भुज–(रुपया ला)लाला जी ! ये ४५) लीजिये और इन को दे दीजिये ।

रामप्रकाश–अच्छा ५) तो दो, ख़ोमचे वाले को बेबाक़ करो और १०) हलवाई को दो और १५) १५) इन दोनों को, बस लाला, दो महीने में बेबाक़ी हो जायगी ॥

द्रव्यकुंवर–बीबी धर्मवती ! मोदियों का हिसाब तो निबट गया, अब इन नौकरों की तलब भी तो दे दो ॥

धर्मवती–ठहरो, मैं इन का हिसाब बनालूं (और तयार कर) बुलाओ। दोनों कहारों को ४) चारों टहलनियों को ३॥) ब्राह्मण को २) साईस को ५) चारकट को ४) ये सब १८।।) दे दो, बस बेबाक़ ॥

चन्द्रमुखी–अब महीना पूरा हुआ और नई तलब के १८१॥।-) आये और धर्मवती ने ख़र्च जोड़ा तो १७४) जुड़े ॥

धर्मवती–बीबी ! आप के पास पिछले रुपयों में से ७॥।-) बाक़ी रहे ॥

द्रव्यकुंवर–(गिन) हां ७॥।-) बाक़ी हैं ॥

धर्मवती–अच्छा १८१॥।-) और मिलाइये १८९॥=) हुये, इन में से १२५) तो अगले महीने के ख़र्च को बहुत होंगे और ५० मोदियों को दे दीजिये और १४॥=) फ़ालतू रहने दीजिये ॥

द्रव्यकुंवर–बहुत अच्छा (और सास से) माजी ! मुन्शी जी से कहदो कि मोदियों को बुला ५०) दे दें, बाक़ी में से हम घर का ख़र्च चला लेंगे ॥

सास–मिस्सर ! मुन्शी जी को तो बुला लो ॥

ब्राह्मण–अच्छा रानी जी ! जाता हूं (और जाता है)

रामप्रकाश–घर में आ, क्यों, कैसे बुलाया है ?

सास–बहू ५०) देती हैं और कहती हैं कि मोदियों को दे दो,हम बाक़ी में घर का ख़र्च चला लेंगी ॥

रामप्रकाश–(प्रसन्न हो) अच्छा लाओ ।

चन्द्रमुखी–लाला ! रामप्रकाश ने तीनों मोदी बुला १०) हलवाई को

और २०) रुपये मोदी को और २०) रुपये बजाज को दे दिये और दूसरे महीने में ठीक १००) ख़र्च हुये ३९॥=) बचे ॥

धर्मवती-बीबी! जो आप पसन्द करें तो ४०) मोदियों के दे दें और ५०) बेङ्क में भेज दें, वहां से ।) महीना ब्याज मिलेगा और अगले महीने से १००) महीना भेजते रहेंगे, हर महीना पर ॥) ब्याज बढ़ता रहेगा ॥

द्रव्यकुंवर-अच्छी बात है, पास रहे में सौ उचक्का चोर लगते हैं और ये बाल बच्चे भी तो अब स्याने हुवे, इन का ख़र्च भी तो ऊपर आया ॥

द्रव्यकुंवर-मा जी! मुन्शी जी को बुला, हमारी कई बातों का जवाब ले दीजिये ॥

सास-अच्छा बुलाती हूं (और बुलाती है)

रामप्रकाश-क्यों, कैसे बुलाया है ?

सास-बहू कुछ पूछती हैं, आप कुर्सी पर बैठ जायें, मैं बहुवों से पूछ २ आप से बात करूंगी ॥

रामप्रकाश-(कुर्सी पर बैठ) अच्छा कहो ॥

सास—बहू कहती हैं कि ४०) तो मोदियों को दे दो और बङ्क के मैनेजर को बुला उस से तय कर लो कि जो रुपया हम जमा करें उस पर हम को ॥) सैंकड़ा ब्याज दिया करें, इस वक़्त ५०) जमा करेंगे और फिर १००) महीना॥

रामप्रकाश-और ख़र्च कहां से चलेगा ॥

सास-बहू कहती हैं कि ८१॥-) महीना में ख़र्च चल जायगा ॥

रामप्रकाश-बड़े खुश हो, सच तो यह है कि जिस दिन से बहू ने इन्तिज़ाम किया है, उसी दिन से खाना भी अच्छा मिलता है और शाक भाजी भी अच्छी और कुछ नुक़्ल लौज़ात भी, ४ बजे खाने को मिल जाते हैं। अच्छा मैं अभी २ मैनेजर को बुलाता हूं, पर पहले बहुओं को गहना बनवादो ॥

सास-(बहुओं से पूछ) वे तो यह कहती हैं कि ब्याज से ख़र्च चलने लगेगा, तब ब्याज की बचत से गहना बनवावेंगे ॥

रामप्रकाश-अच्छा, जो इन की मर्ज़ी और हां, मुझे याद नहीं रहा बड़े के ५०) और चतुर्भुज के ४०) महीना हो गये हैं, अगले महीने में २३५॥≡)८ महीना मिलेंगे ॥

सास-(हाथ जोड़) परमात्मा की बड़ी कृपा हुई, किसी ने ठीक कहा है

कि "जब दिन अच्छे आते हैं, तब सब काम ठीक हो जाते हैं" (और बहुओं से सलाह कर) अब हम १५०) महीना बङ्क में देंगे और ८५॥≡)८ में ख़र्च चलावेंगे और आठों नौकरों के चपरासी समेत तनख़्वाह ४,४ आने महीना बढ़ावेंगे और यह १) अपने चपरासी को इनाम देना ॥

रामप्रकाश–जो मर्ज़ी, अच्छा जाता हूं और इन्तज़ाम करता हूं ॥

रामप्रकाश की बैठक

रामप्रकाश–(चपरासी से) भाई यह १) तुम कू बहू ने इनाम दिया है और कहा है कि अभी हम तुम को ।) महीना जेब ख़र्च को देंगे, पर हां, मकान का पहाड़ की ओर का हिस्सा खाली पड़ा है, तुम अपने बाल बच्चे ले आओ ।॥) महीना किराये की किफ़ायत होगी ॥

चपरासी–(एक रुपया हाथ में ले, दुआ दे) महाराज ! जो आज्ञा, मुझे तो यह हाथ का दिया इनाम जवाहरात है ॥

रामप्रकाश–अच्छा तो मैनेजर बंक को बुलाओ, कुछ काम है ॥

चपरासी–(जो आज्ञा कह जा और लौट कर आ) महाराज! ये लाला करोड़ीमल मैनेजर आये हैं ॥

रामप्रकाश–आइये लाला !

करोड़ीमल–मुन्शी जी ! सलाम। कैसे याद किया है । मेरे जी में तो बहुत दिनों से सलाम की थी, पर आप को फ़ुरसत न होती थी, इसलिये नहीं आया, माफ़ करना ॥

रामप्रकाश–नहीं भाई, कोई शिकायत नहीं, आज कल नौकरी की यही दशा है, सर उठाने की फ़ुरसत नहीं मिलती ॥

करोड़ीमल–हां तो फ़रमाइये, क्या कुछ रुपये की ज़रूरत है ?

रामप्रकाश–नहीं भाई रुपये की ज़रूरत तो नहीं । आप को मालूम होगा कि हमारे घर में बड़ी बद इन्तज़ामी थी । ३ महीने से छोटी बहू ने इन्तज़ाम किया है, सब क़रज़ा उतार दिया, उधायत बन्द करदी, महीने भरके ख़र्च का सामान घर मंगा लिया । अब उस की मरज़ी है कि कुछ रुपया ॥) सैंकड़ा ब्याज पर आप के बंक में जमा किया जाय, ५०) तो इस वक़्त मौजूद हैं और अगले महीने से १५०) रुपया महीना जमा करूंगा । मगर सूद माहवारी मुजरा देना होगा ॥

करोड़ीमल–मुझे क्या उज्र है । वह तो बंक आप का ही है । कल लाला चतुर्भुज को कचहरी में से ११ बजे भेजदेना, रुपया जमा कर अमानत की किताब दे दूंगा और हर महीने आप ५ तारीख़ तक रुपया भेजा करें, महीना भरका व्याज मिलेगा ॥

रामप्रकाश–अजी ये ५०) तो तुम ही लेते जाओ, मैं चपरासी भेज दूंगा, उसे किताब देदेना। चतुर्भुज का जाना दिक़्क़त तलब है (और रुपया देते हैं) ॥

करोड़ीमल–(रुपया ले, सलाम कर, जाता है और हर महीना १५०) रुपया बंक में बढ़ता है)

धर्मवती–बहन ! मुझे बड़ी खुशी है कि परमात्मा ने बड़ी जल्द ऐसा किया कि आमदनी की बराबर बचत होने लगी ॥

द्रव्यकुंवर–क्यों न हो, तू बड़ी भाग्यवती आई । मैंने जब इन्तज़ाम किया और न चला तो जान लिया कि इस घर का कुछ बन्दोबस्त ही न होगा, लाचार चुप हो गई ॥

धर्मवती–बीबी ! सलूक बड़ी चीज़ है, देखो इसे ही मेल कहते हैं । मेल से बड़े भारी काम सहज में पूरे हो जाते हैं । देखो एक सींक से कटंकी नहीं सरकती और उन सींकों की झाड़ू से पनसेरा सरक जाता है और देखो घास के तिनकों को मिला रस्सा बना लेने से हाथी बान्ध दिया जाता है । ऐसे ही इस घर में बद इन्तज़ामी थी, फूट नहीं थी, सब मिल कर रहते थे तो इन्तज़ाम हो गया और जो फूट होती और सब अपनी २ गठरी बनाते तो कुछ भी न होता । पर मेरी समझ में तो कुछ और भी बचत निकालनी चाहिये । १ टहलनी का काम है, बच्चे खिलाने को बहुत हैं । मैंने एक इन्तज़ाम सोचा है, जो आप पसन्द करें ॥

द्रव्यकुंवर–वह क्या है ?

धर्मवती–बीबी ! सिपाही के रहने को तो लाला जी ने हवेली के कोने में हुक्म दे ही दिया है, जो आप सिपाही और उस की जोरू का खाना अपने ज़िम्मे करलें तो सिपाही की जोरू तो इस टहलनी के बदले में खाया करेगी और बच्चे खिलाया करेगी और २) बचेंगे, उस में एक आदमी का खाना ही तो देना पड़ेगा, इस में यह भी खुश रहेगा और काम भी दिल से करेगा । उसे तनख़्वाह मुफ़्त बचेगी । १० आदमियों में एक

आदमी का खाना क्या बहुत होगा, यह छोटी टहलनी भी टर्री है और कड़वी बात करती है ॥

द्रव्यकुंवर–हां, है तो ठीक, पर मैं मा जी और जिठानी जी से सलाह करलूं (बांदी से का) मा जी और बड़ी जी को बुलाला (और आप उन के बैठने को जगह करती है)॥

धर्मवती, द्रव्यकुंवर–(पांव पकड़) मा जी ! पालागूं, बीबी ! पालागूं ॥

सास और जिठानी–बूढ़ी सुहागन हो, सतपूती हो, कैसे याद कियाहै ?

द्रव्यकुंवर–मा जी ! धर्मवती की मरज़ी है कि छोटी टहलनी निकाल दी जाय, क्योंकि वह टर्री है और सिपाही की जोरू से बच्चे खिलवाये जायं और सिपाही भी हमारे से ही खाना पावे, इस में वह खुश भी रहेगा और काम भी अच्छा करेगा और मुन्शी जी का नाम भी होगा ॥

सास–अच्छा, तुम्हारी मर्ज़ी, जो जी में आवे सो करो ॥

द्रव्यकुंवर-(टहलनी से) जो तुझे रहना है तो भलमन्सी से रह, नहीं॥ तो अलग हो ॥

टहलनी–बहू जी ! आप के मिलता ही क्या है । चार का काम दो पर डाल दिया है, दूना तो अब काम करना पड़ता है और पेट की ख़बर नहीं

द्रव्यकुंवर–अब तो तेरा ।) महीना बढ़ा दिया है ॥

टहलनी–।) महीना में क्या होता है, भूखा तो बर्राया ही करता है । जो तुम पेट भर दो तो क्यों टरटराऊं । किसी ने कहा है कि "मुंह खाय तो आंख लजावे" जब से बहू जी ने इन्तज़ाम किया है हम को तो पेट भर रोटी भी नहीं मिलती ॥

द्रव्यकुंवर–क्या मिस्सर तुझे रोटी नहीं देता ?

टहलनी–अजी बहू जी ! इन रोटियों से क्या होता है ॥

द्रव्यकुंवर–अच्छा तो बता तुझे रहना है या नहीं ?

टहलनी–इस नौकरी में न रहूंगी और रहूं कैसे, मेरा तो तुम्हें एतबार ही नहीं, सब चीज़ों पर ताला लगा है, जहां एतबार न हो वहां हम कैसे रहें, पहले तो सब चीज़ हमारे हाथ में रहती थीं, जब से बहू जी आई हैं, घर २ में ताला पड़ा है ॥

द्रव्यकुंवर–अच्छा तो तेरा हिसाब करदें ?

टहलनी-हिसाब ही क्या है, आधे महीना की तलब चाहिये सो दे दीजिये

द्रव्यकुंवर-(धर्मवती की तरफ़ देख) अच्छा तेरे ॥।) चाहियें, यह ले १) और इनआम (और सास से) मा जी! यह तो जाती है, अब उस सिपाही की जोरू को बुला दीजिये, उस से पूछ लो लें॥

सास-अच्छा (और दूसरी टहलनी से) जा, मुन्शी जी से कह दे कि सिपाही की घरवाली को बुलादें॥

बांदी-मुन्शी जी! हवेली में से कहा है कि सिपाही की घरवाली को बुला दीजिये॥

रामप्रकाश-अच्छा भेजते हैं (और सिपाही से) भाई अपनी घरवाली को हमारी हवेली में पहुंचादो, बहू जी बुलाती हैं॥

सिपाही-(जो आज्ञा, कह, घर जा, अपनी घरवाली से) मुन्शी जी ने ।) महीना हमारा कर दिया और १) इनाम दिया और मकान भी किराये रहने को दे दिया, अब तुम्हें हवेली में बुलाया है॥

जोरू-अच्छा चलो (और हवेली में पहुंच, सब को पालागन करती है)

द्रव्यकुंवर-बीबी! हमने तुम को इस लिये बुलाया है कि तुम इस हवेली में आरहो और जो पसन्द करो तो दोनों मर्द औरत रोटी चौके ही में खा लिया करो, तुम्हारे मालिक तो मुन्शी जी के पास हैं ही, तुम इन बच्चों को खिलाती रहना॥

जोरू-जी मुझे क्या उज़्र है, हम तो आप के ही घर से पलते हैं, कल तड़के ही आऊंगी॥

चन्द्रमुखी-अब सिपाही की घरवाली भी घर में आरही, दोनों मर्द मेहरी चौका में रोटी खा लेते और सिपाहिन बालकों को खिलाया करती कि साल पूरा हुआ और धर्मवतीने हिसाब बनाया और मुन्शीजी को दिखाया॥

हिसाब

महीना	जमा	जोड़ पिछले महीने तक	व्याज	जोड़ कुल
जनवरी	५०)	५०)	०	५०)
फ़रवरी	१४९॥।)	१९९॥।)	।)	२००)
मार्च	१४९)	३४९)	१)	३५०)
एप्रिल	१४८।)	४९८।)	१॥।)	५००)
मे	१४७॥)	६४७॥)	२॥)	६५०)
जून	१४६॥।)	७९६॥।)	३।)	८००)
जूलाई	१४६)	९४६)	४)	९५०)
अगस्त	१४५।)	१०९५।)	४॥।)	११००)
सितम्बर	१४४॥)	१२४४॥)	५॥)	१२५०)
अक्टूबर	१४३॥।)	१३९३॥।)	६।)	१४००)
नौवेम्बर	१४३)	१५४३)	७)	१५५०)
दिसेम्बर	१४२।)	१६९२।)	७॥।)	१७००)

रामप्रकाश—(१७००) का जोड़ देख बड़े खुश हो) यह सब इन्तज़ाम तो ख़ास है, बहू ! तू इस घर में बड़ी भाग्यवती आई है, जब से आई है नौ निध १८ सिद्धि हैं, अब तो लड़कों को अगले महीने से ९०) की जगह १२५) तनख़्वाह होगई ॥

धर्मवती—सास की मारफ़त तो अब हम २००) महीना जमा करेंगी और बहुत थोड़े दिन में सब ख़र्च ब्याज से चलावेंगी, पूरी तलब बैंक में जायगी॥

रामप्रकाश—परमात्मा ऐसा ही करे (और बाहर आते हैं)

चन्द्रमुखी—जाड़ेकीरात,उजालीछिटकी,दौरानीजिठानी खाने से निबटीं।।

पद्मकुंवर—बहन ! तुमने घर का ख़ूब बन्दोबस्त किया और हम को आराम भी बहुत दिया ॥

धर्मवती—यह सब आप की कृपा है, भला मैं क्या कर सकती हूं ॥

पद्मकुंवर—बहन ! जब आमदनी हो, तभी इन्तज़ाम होसकता है ॥

धर्मवती—बीबी जी ! आमदनी का ही इन्तज़ाम होता है, पर इन्तज़ाम से कङ्गाल भी मालदार हो जाता है ।।

पद्मकुंवर—तो हमारा देश कङ्गाल क्यों है ?

धर्मवती—बीबी ! हमारे देश से इन्तज़ाम जाता रहा ॥

पद्मकुंवर—अच्छा तो बतलाओ कि इन्तज़ाम कैसे होसकता है ?

धर्मवती—बीबी ! मैं तुम्हें एक हिसाब सुनाती हूं कि जिस से तुम बड़ी खुश होगी । यह समझ लो कि इन्तज़ाम कैसी अच्छी चीज़ है । अब सुनिये,दुनियां में ३ भांति के मनुष्य हैं। एक धनाढ्य,जिन के कुछ धन की कमी नहीं और आमदनी ख़र्च से अधिक है । दूसरे, बीच के जो थोड़े से इन्तज़ाम से अपनी आयु सुखपूर्वक पूरी कर औलाद को धनाढ्य बना सकते हैं । तीसरें कङ्गाल, कि जिन की तङ्गी से गुजरती है ॥

पद्मकुंवर—हां, यह ठीक है, पर मैं तो इन्तज़ाम पूंछती हूं ॥

धर्मवती—सुनो बीबी ! बड़े आदमियों को तो थोड़े से इन्तज़ाम की ज़रूरत है,जो थोड़ा सा भी प्रबन्ध रक्खें तो सुख से जीवन व्यतीत हो और कुछ भी दुःख न पावें और मरने पर बहुत सी पूंजी कुटुम्ब परिवार को छोड़ें ॥

पद्मकुंवर—वह क्या ?

धर्मवती—बस अपनी आय अपने क़ाबू में रख, हिसाब लगा, अपने हाथ से ही ख़र्च करें, यह नहीं कि ख़र्च नौकरों से करावें, आप ने ज़बान से कह दिया और नौकरों ने ख़र्च कर दिया ॥

पद्मकुंवर—भला, बड़े आदमियों से ऐसा कैसे हो सकता है, उन के तो बहुत जगह ख़र्च होता है, आप कहां कहां फिरें ॥

धर्मवती—ऐसे समय पिछली साल की बचत देख सब ख़र्चों पर बांट दें और हर नौकर को समझा दें कि अन्दाज़े से ज़्यादा व्यय न करे और आप ख़बर रक्खें कि बढ़ती ख़र्च न हो जाय ॥

पद्मकुंवर—भला जोकोई अचानक ख़र्च आजाय तो क्या करें ॥

धर्मवती—सांच तो इसी का नाम है कि हर ख़र्च को सोच लें, जो न सोच सकें तो अपनी आय का दशमांश ऐसे ख़र्च को रक्खें और शेष ख़र्च पर फैलावें तब ऐसा ख़र्च उस रुपये से चल जायगा। बीबी ! जो इन्तज़ाम नहीं जानता वही तो जल्द कङ्गाल हो जाता है। तुम ने सुना होगा कि कई ५००००) या ६००००) रुपया साल की आमदनी के आदमी कङ्गाल हो गये। हां यह ज़रूर है कि मालदार को थोड़ा इन्तज़ाम करना पड़ता है और औरों को बहुत ॥

पद्मकुंवर—अच्छा, अब मध्यम पुरुषों का प्रबन्ध बताओ ॥

धर्मवती—सुनो, मध्यम पुरुष वे कहाते हैं कि जिन की आय ५०) या ४०) रुपया महीना की आमदनी हो, उन का प्रबन्ध यह हो सकता है कि पहले महीने का ख़र्च देखें अर्थात् १०) का नाज ५) की दाल तरकारी ५) का घी और ४) की लकड़ी और ४) का मसाला आदि और ५) की ख़रीज और ७) कपड़े लत्ते में ख़र्च होते हैं, तो १ महीने की सब चीज़ इकट्ठी मंगालें और बड़ी रक्षा से ख़र्च करें, तो ज़रूर है कि ४० दिन को होगा और तीन महीने में १ महीने का रुपया बच जायगा, उस रुपये से हर चीज़ फ़सल में साल भर के ख़र्च को इकट्ठी कर लें, थोड़े दिन में १००) या २०० रुपया जमा का गिरवी गांठा करें, उस में ब्याज लायक़ गहना छूटने से बाक़ी रहजायगा तो अपने पास गहना भी हो जायगा और जिन्स भी घर में होगी ॥

पद्मकुंवर—हां बीबी ! सब बात सोचने से समझ में आजाती हैं ॥

धर्मवती—हां बीबी ! तुमने दूसरे साल का हिसाब नहीं देखा, देखो तो।

पद्मकुंवर—लाओ ॥

हिसाब

महीना	जमा	जोड़	ब्याज	कुल
पहला	२००॥)	१९००॥)	९॥)	१९१०)
दूसरा	२००॥)	२११०॥)	१०॥)	२१२१)
तीसरा	२०४)	२३२५)	११॥=)	२३३६॥=)
चौथा	२१३।=)	२५५०)	१२॥।)	२५६२॥।)
पांचवां	२००)	२७६२॥।)	१३॥।-)	२७७६॥।-)
छटा	२२३।≡)	३०००)	१५)	३०१५)
सातवां	१८५)	३२००)	१६)	३२१६)
आठवां	१८४)	३४००)	१७)	३४१७)
नवां	२१४)	३६२५)	१८=)	३६४३=)
दशवां	२०६॥।=)	३८५०)	१९।)	३८६९।)
ग्यारहवां	२०५॥।)	४०७५)	२०।=)	४०९५।=)
बारहवां	२०४॥=)	४३००)	२१॥)	४३२१॥)

पद्मकुंवर—बीबी ! अब ऐसे कब तक करोगी ॥

धर्मवती-बीबी ! बस अब हम २००) महीना से अधिक जमा न करेंगी, अब बचत के रुपये से घर का सामान दुरुस्त करेंगी, बस थोड़े दिन में देखना कि क्या होता है ॥

फिर वही रामकहानी

चावली-पुरोहितानी जी ! गृहस्थ का तो आप ने भला प्रबन्ध बताया अब कृपा कर पतिव्रतधर्म के लाभ और बता दीजिये ॥

पुरोहितानी-बेटी ! स्त्रियों को सिवाय पतिव्रतधर्म के और कोई धर्म लाभदायक नहीं, पुरुषों का काम तो तप करना, गृहस्थ पालना है । पर स्त्रियों को तो सब बात और सब वस्तु पतिव्रतधर्म से ही मिलती हैं, बिना पतिव्रत धर्म के स्त्री कभी परमसुख नहीं पा सकती और न जगत् में प्र-

तिष्ठा पा सकती है, जो गृहस्थ का धन्दा स्त्री के ज़िम्मे है, वह पतिव्रत धर्म का ही हिस्सा है अर्थात् पति ही की प्रसन्नता के लिये सब काम किये जाते हैं यह तो नियम है कि पतिव्रता कभी रांड नहीं होती और उन का पति भी कुछ दुःख नहीं पाता और उस को बहुत सी सिद्धि हो जाती हैं, किसी का शाप भी नहीं लगता। देख, मैं तुझ को दो कहानी सुनाती हूं जिन से तुझे पतिव्रतधर्म की बड़ाई जान पड़ेगी॥

चावली—बड़ी कृपा होगी॥

एक पतिव्रता की कहानी

पुरोहितानी—एक साधु ने वर्षों तक भारी तप किया। एक दिन उस के जी में आया कि आज तप की जांच करूं। यह विचार ऊपर को दृष्टि की तो एक पक्षी उड़ता देखा, बोला कि 'मर जा, बस वह पक्षी मर कर भूमि पर आ पड़ा, फिर कहा कि 'उड़ जा, बस उड़ गया। साधु ने जान लिया कि तप पूरा होगया और एक बस्ती को चल दिया और एक द्वारे पर पहुंच—

साधु—भीख दे माई॥

स्त्री—लाती हूं॥

पति—पानी लाओ॥

पुरोहितानी—अब उस स्त्री ने भीख रोक, अपने पति को जल दिया और उस की सेवा करने लगी, साधु खड़ा रहा और स्त्री एक पहर में पति-सेवा से निबटी और भीख ले साधु के आगे आई॥

साधु—(क्रोधयुक्त हो, आंख लाल कर, देखता है)

स्त्री—क्यों, मेरी ओर आंख क्यों निकालते हो? मैं कोई चिड़िया तो हूं ही नहीं, जो मर जाऊं और उड़ जाऊं, अपने पति की सेवा से निबट भीख लाई हूं॥

साधु—(भयभीत हो) माता! भीख तो तब लूंगा, जब तू बता देगी कि तैने चिड़िया का हाल कैसे जाना, सच बतादे॥

स्त्री—महाराज! तुम भिक्षा लेकर जाओ, इस बात में क्या लोगे?

साधु—ना माई! यह तो बता ही दे॥

स्त्री—महाराज! आप को अपनी बड़ी तपस्या पर घमण्ड है, पर मुझे तो यह सिद्धि एक रात में मिली है॥

साधु—माता! बस यही बता कि यह सिद्धि कैसे मिली?

स्त्री—एक समय जाड़े की बहार में मेरे स्वामी ने पानी मांगा, मैं एक

दुपट्टा ओढ़े उठी और सामने पानी लाकर खड़ी होगई, उधर मेरे पति की आंख लग गई, अब मेरे पति तो सोते हैं, और मैं इन्तज़ार में खड़ी हूं कि पानी लेते हैं। मुझे बहुत ही सरदी लगी पर उसी दुपट्टे में खड़ी रही, प्रातः मेरे स्वामी की आंख खुली तो मुझे खड़ी देख बोलेः-

पति-क्या तुम जब से ऐसे ही खड़ी हो ॥

मैं-हां महाराज! ऐसे ही खड़ी हूं ॥

पति-मुझे जगाया क्यों नहीं और आप सो क्यों न रहीं ॥

मैं-महाराज! यह बात तो धर्मविरुद्ध थी, जब आपने जल मांगा था तो मैं ऐसा कैसे करती, मुझे तो यही ख़याल रहा कि अब आंख खुली २ ॥

पति-ओ हो, तुम को बड़ी तकलीफ़ हुई ॥

मैं-मुझे तकलीफ़ क्या हुई, मैं इस वक़्त आप के खुश होने से बड़ी खुशहूं

पति-मैं तुझ से बड़ा राज़ी, इतना ही परमात्मा राज़ी हो ॥

मैं-बस महाराज! उसी दिन से मुझे सिद्धि मिली ॥

रामकहानी

पुरोहितानी—बेटी! पतिव्रतधर्म से बड़ी सिद्धि मिलती है ॥

चावली—हां पुरोहितानी जी! दूसरी कहानी सुना दो ॥

दूसरी पतिव्रता की कहानी

पुरोहितानी—एक देश में भारी अकाल पड़ा और सब प्रजा लंघन करने लगी, राजा को बड़ा सोच हुआ और पण्डितों को कोहः-

राजा—महाराज! इस दुर्भिक्ष के दूर करने का उपाय करो ॥

पण्डित—महाराज! हम तो बहुत कुछ विचार रहे हैं, पर कुछ समझ में नहीं आता ॥

राजा—कुछ तो प्रबन्ध होना चाहिये, बिना प्रबन्ध काम न चलेगा ॥

पण्डित-महाराज! अमुक तीर्थ में कोई पतिव्रता स्नान करें तो अवश्य वर्षा हो और धान्य भी बहुत पैदा हों ॥

राजा—तो पतिव्रता ढूंढो ॥

पण्डित—महाराज! सेठ धर्मदास की चारों कन्या पतिव्रता हैं, जो आप धर्मदास से कहें और उन्हें समझादें तो हो सकता है, नहीं तो उन से कहने की किसी की सामर्थ्य नहीं ॥

राजा—अच्छा, हम आप धर्मदास के पास जाते हैं (और चल दिये)

धर्मदास—(राजा को आता देख और खड़ा हो) आइये पृथिवीनाथ ! कैसे २ कृपा की ? सुख से तो रहे ॥

राजा—भला भाई क्या सुख है, इस दुर्भिक्ष ने सारी प्रजा दुःखित कर रक्खी है, इसी शोक में हम को भी नींद नहीं आती ॥

धर्मदास—महाराज ! यथाशक्ति कार्य करने को तयार हूं, जो आज्ञा ॥

राजा—भाई पण्डितों ने बताया है कि कोई पतिव्रता स्त्री अमुक तीर्थ में स्नान करे तो दुर्भिक्ष दूर हो और तुम्हारी चारों कन्या पतिव्रता हैं जो तुम उन में से १ को भी वहां स्नान करा दो तो दुर्भिक्ष दूर हो जाय और मुझे और सारी प्रजा को सुख मिले ॥

धर्मदास—अन्नदाता ! मैं प्रातः ही जाऊंगा, आप इतमीनान रक्खें ॥

पुरोहितानी—अब राजा तो महल को गये और धर्मदास अपनी बड़ी बेटी इला के यहां प्रातः ही गया ॥

इला—(पिता को प्रणाम कर, हाथ पैर धुला, आसन पर बिठाल) पिता जी ! प्रसन्न तो रहे ? प्रसन्न तो आये ?

धर्मदास—हां बेटी ! हम तो प्रसन्न रहे,पर तुम को मालूम है कि आज कल बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ रहा है और सब प्रजा दुःखित है ॥

इला—पिता यह सत्य है, पर इस का प्रबन्ध तो एक मनुष्य की शक्ति से बाहर है ॥

धर्मदास—बेटी ! पण्डितों ने कहा है कि जो कोई पतिव्रता अमुक तीर्थ में स्नान करे तो दुर्भिक्ष दूर हो जाय, इस कारण तुम अपने पति से आज्ञा ले, उस तीर्थ में स्नान करलो ॥

इला—पिता जी ! मेरे पतिव्रतधर्म में खण्डन पड़गया है, मैं बताये देती हूं, वह सुन लीजिये । एक समय मेरे स्वामी घर बैठे थे कि एक भूखा साधु आया और भिक्षा मांगी, मैं भिक्षा देने गई कि अचानक मेरा हाथ उस के हाथ से मिल गया, इस कारण मुझे अपने धर्म में खटका है । आप मेरी छोटी बहन अहल्या से कहें, उस का धर्म पूरा है ॥

धर्मदास—(बहुत अच्छा कह और बिदा हो, दूसरी बेटी के पहुंचताहै)

अहल्या—(पिता को आता देख, प्रसन्न हो, आसन डाल) पिता जी ! प्रसन्न तो रहे, प्रसन्न तो आये ? मार्ग में कष्ट तो नहीं हुआ ?

धर्मदास—हां पुत्री ! सब परमात्मा की कृपा है, पर एक बड़े ज़रूरी कार्य के लिये आया हूं और वह यह है कि तुम को मालूम है कि आज कल बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ रहा है और सारी प्रजा भिरना रही है। पण्डितों ने विचारा है कि कोई पतिव्रता अमुक तीर्थ में स्नान करे तो यह दुर्भिक्ष दूर हो, सो राजा ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है कि तुम अपने पति से आज्ञा ले उस में स्नान करो तो यह दुर्भिक्ष दूर हो ॥

अहल्या—पिता जी ! मुझे अपने धर्म में थोड़ा सा खण्डित जान पड़ता है इस कारण मैं स्नान नहीं कर सकती और आप से क्षमा चाहती हूं और डरती हूं कि जो मेह न वर्षा तो मेरी लोक में निन्दा होगी और लोकनिन्दा बुरी है, इस कारण आप छोटी तारा से कहें, उन के धर्म में कोई दोष नहीं, वह अवश्य इस कार्य को सिर धरेगी ॥

धर्मदास—बेटी ! जो कुछ हर्ज न हो तो मुझे वह दोष बतलादे ॥

अहल्या—पिता जी ! मैं एक दिन एक नदी में स्नान कर रही थी कि मेरी धोती शरीर से हट गई और नङ्गे शरीर से पानी छूगया, चूंकि जल पुरुषरूप माना है, इस लिये मुझे शङ्का हो गई है ॥

धर्मदास—बेटी ! यह तो कुछ दोष नहीं ॥

अहल्या—हां पिता जी ! कुछ दोष तो नहीं, पर मुझे तो शङ्का है और छोटी तारा भी मौजूद है, नहीं तो मैं ही स्नान करती, मैं क्षमा चाहतीहूं। तारा अवश्य आप की आज्ञा का पालन करेगी ॥

धर्मदास—(बहुत अच्छा कह, तीसरी पुत्री तारा के पहुंचता है)

तारा—(पिता जी को आता देख, प्रणाम कर, आसन बिछा) आइये पिता जी ! बड़ी कृपा की, आप प्रसन्न तो रहे ? प्रसन्न तो आये ? (और आसन पर बिठाती है)

धर्मदास—हां बेटी ! परमात्मा की कृपा से मैं तो अच्छा हूं पर दुनियां अकाल के कारण बड़ी दुःखित है और राजा कोभी शोक है, इस लिये मुझे तेरे पास भेजा है और तेरी बड़ी बहनों ने भी तुझे ही बताया है कि तुम पतिव्रता हो, अमुक तीर्थ में स्नान कर लो तो दुर्भिक्ष दूर हो जाय ॥

तारा—पिता जी ! मैं आज्ञा भङ्ग तो नहीं कर सक्ती, पर विचारती हूं तो अपने में एक दोष पाती हूं और डरती हूं कि कहीं धर्म खण्डन तो नहीं होगया, इस कारण आज्ञा पालन में भयभीत हूं ॥

धर्मदास—बेटी ! दोष क्या है ?

तारा—पिता जी ! एक रात पवन पछवा चलती थी, मेरे स्वामी ने कहा कि पवन पुरवा चलती है, मेरे मुख से निकल गया कि नहीं पछवा चलती है, स्वामी सुन चुप होगये, पर मैंने सोचा है कि तैने बुरा किया, स्वामी के वचन झूठे कर दिये और अपने पतिव्रतधर्म में धब्बा लगा लिया ॥

धर्मदास—बेटी यह तो कुछ बात नहीं ॥

तारा—हां पिता जी ! बात तो कुछ नहीं, पर मुझे तो खटका है, आप छोटी रोहिणी के पास जायँ, उस के धर्म में कोई दोष नहीं, जो उस को आज्ञा हो तो मैं चलने को तयार हूं ॥

धर्मदास—(बहुत अच्छा कह, रोहिणी के पास पहुंचा)

रोहिणी—(पिता को आता देख, प्रणाम कर आसन बिछा) आइये पिता जी बड़ी कृपा की, प्रसन्न तो रहे, प्रसन्न तो आये ॥

धर्मदास—हां बेटी ! हम तो अच्छे हैं पर हमारे राजा दुर्भिक्ष के कारण बड़े दुःखी हैं उन से पण्डितों ने कहा है कि जब कोई पतिव्रता अमुक तीर्थ में स्नान करे तो अकाल दूर हो, इस लिये राजा ने मुझे भेजा है कि तुम अपने पति से आज्ञा ले उस तीर्थ में स्नान करो तो दुर्भिक्ष दूर हो ॥

रोहिणी—पिता जी ! जब से आपने यह शरीर स्वामी को दे दिया है, तब से उन्हीं के आधीन है, इस कारण उन की बिना आज्ञा उत्तर नहीं दे सक्ती जो वे आज्ञा दें तो करूंगी ॥

धर्मदास—(अपने जामाता को बुला)पुत्र ! तुम को मालूम है कि आज कल कैसा भारी अकाल पड़ रहा है, सब राजा प्रजा दुःखित हो रहे हैं अब पण्डितों ने राजा से कहा है कि पतिव्रता अमुक तीर्थ में स्नान करे तो दुर्भिक्ष दूर हो, इस कारण आप रोहिणी को उस तीर्थ में स्नान की आज्ञा दें॥

जामाता—अच्छा है जाइये ॥

पुरोहितानी—यह सुन रोहिणी अपने पिता के संग नगर में अपने बाप के घर आई और राजा सुन धर्मदास के घर आः—

राजा—(रोहिणी को प्रणाम कर) ए पुत्री ! इस दुर्भिक्ष के कारण मैं और मेरी प्रजा बड़ी दुःखित हैं और पण्डितों ने कहा है कि जो तुम अमुक तीर्थ में स्नान करो तो दुर्भिक्ष दूर होजाय ॥

रोहिणी—पृथिवीनाथ ! परमात्मा ऐसा ही करे, पर मुंह मांगा वर पाऊं॥

राजा—(मन में) इस राज्य से आगे तो हद है, जो राज्य भी मांगेगी तो दे दूंगा क्योंकि प्रजा को तो सुख मिलेगा (और प्रकट में) अच्छा पुत्री ! जो मांगोगी पाओगी ॥

पुरोहितानी—अब रोहिणी ने उस तीर्थ में स्नान किया और मेह ने झड़ी लगाई, सूखा जङ्गल हरा भरा हो गया ॥

रोहिणी—पृथिवीनाथ ! अब वचन पूरा हो ॥

राजा—पुत्री ! जो मांगो ॥

रोहिणी—पृथिवीनाथ ! एक नया मकान बनवा उस में कुंआ भी बनवा दीजिये और बहुत दिनों के लिये उस में खान पान की सामग्री रखा, द्वार बन्द करा दीजिये मैं उसी में रहूंगी ॥

राजा—पुत्री ! मैं इस में अपनी निन्दा मानता हूं, इस कारण तुम से कहता हूं कि ऐसे विचार को छोड़ और कोई आज्ञा दो ॥

रोहिणी—राजन् ! वचन पूरा होना चाहिये ॥

राजा—जो आज्ञा ॥

पुरोहितानी—ये बातें हो ही रही थीं कि रोहिणी का पति आया और रोहिणी से बोला ॥

पति—प्रिये ! चलिये ॥

रोहिणी—(दौड़, दण्डवत् कर, चरण छू, परिक्रमा दे) स्वामी जी ! आपने लौटने की आज्ञा नहीं दी थी, इस कारण नहीं आई ॥

पति—हां, इसी कारण तो मुझे आना पड़ा, यही तो मैं भूल गया था । अब घर चलो ॥

पुरोहितानी—ए चावली ! ये चारों पतिव्रता थीं, पर थोड़ी २ भूल से भी पतिव्रत में शङ्का करती थीं और यह भी तुम को ज्ञात हुआ कि राजा महाराजा भी पतिव्रताओं को देवी देवता मानते हैं ॥

चावली—माता जी ! आपने मुझे बड़ी अच्छी बातें सुनाईं । मैं कहां तक धन्यवाद दूं ॥

पुरोहितानी—बेटी ! मैं तुझे स्त्रियों के गुण सुनाती हूं, उन्हें जी लगा कर सुन ॥

चावली—हां माता ! मैं सुनने को तयार हूं ॥

स्त्रियों के गुण

१-लज्जावती रहना २-शीलवती ३-क्षमावती ४-दयावती आदि ॥

चावली-माता जी ! इन को विस्तार से कहिये ॥

पुरोहितानी-अपने पराये, भले बुरे से शुद्धचित्त हो वार्त्तालाप करे परन्तु सामने होकर अनुचित बातें न करे और अपने अङ्ग तो क्या अपने वस्त्र आभूषण भी न दिखलावे, अन्य पुरुषों और बड़ों के सम्मुख हो वार्तालाप न करे, जो समयाधीन ऐसा ही अवसर आन पड़े तो किसी बालक या अन्य स्त्री को बीच में डाल बातचीत करावें और जो कोई बालक या स्त्री न मिल सके तो मुख फेर आड़ मे बात चीत करे। सम्मुख हो बे धड़को से बात चीत करना स्त्रियों के लिये दोष माना गया है। तुमने देखा होगा कि जो स्त्री बे धड़क हो बात चीत करती हैं, वह निर्लज्जा कहाती हैं, यही लज्जा है॥

दूसरे-शील-अपने मित्र, बान्धव अन्य और वैरी से भी मिष्ट बोलना शील कहाता है। शील स्त्रियों को तो है ही पर पुरुषों को भी सुखदायी है और पूरा बर्त्ताव इस का यह है कि कोई अपने को कठोर वाक्य भी कहजाय तो चित्त दुःखी न हो और आप तो किसी से कठोर वाक्य कहे ही नहीं और दूसरे को प्रसन्नता से टाले, यह नित्य के बर्त्ताव के लिये बड़ा लाभदायक है। जो तुम से कोई पड़ोसन भी कुछ कठोर वाक्य कहे और तुम चुप हो जाओ या हंसी २ में टाल दो तो वह प्रसन्न होकर चली जायगी या थोड़ी देर में चुप हो जायगी और फिर छोटी २ बातों का गिल्ला न लावेगी और सदा आप को यह ध्यान रखना चाहिये कि किसी को गिल्ला करने का अवसर न मिले। एक कहावत है कि "क्रोध अपने को हानि कारक है और शील वैरी को" अर्थात् क्रोध से दूसरे को लाभ होता है और शीलसे अपनेको।

तीसरे-क्षमा किसी के पीछे या आगे कहे कठोर वाक्यों पर क्रोध न करना, क्षमा कहाती है। देखो, जगत् में स्त्री पुरुष अच्छे जनों को दोष लगाया करते हैं तो अब इस पर विचार कर किस २ से लड़ते फिरोगे अब रहा सामने का कहना, जहां ध्यान दिया और उत्तर दिया, तुरन्त लड़ाई ठन गई। और जहां टाला, बस लड़ाई बन्द, कोई एक बेर कहेगा या दो बेर, आख़िर को तो चुप ही होना पड़ेगा॥

चौथे-दया-दुर्बल, कङ्गाल, रोगी, भूखे और नङ्गे की यथाशक्ति सहायता करना, दया कहाता है और प्रत्येक जीव का धर्म है कि दुखियारों की सहाय करे और इन के सिवाय अपने बड़े अर्थात् माता, पिता, सास, सुसर, जेठ,

जिठानी आदि की आज्ञापालन करे और उन के आज्ञापालन से जी न चुरावे और सदा उन के उपदेशों पर ध्यान रक्खे क्योंकि वे तुम से अधिक जगत् के कर्म जानते हैं और तुम से अधिक ही बुद्धि रखते हैं। जब तुम ध्यान दोगी तो अवश्य उन की बातें लाभदायक पाओगी॥

पांचवें–शौच अर्थात् सदा शुद्ध और पवित्र रहना, शरीर शुद्ध, वस्त्र शुद्ध अर्थात् रोग के दिनों को छोड़, सदैव प्रातः उठ, आवश्यक कार्य से निबट, दांतन कर, मुंह हाथ धो, पहले स्नान कर, सन्ध्या कर और अग्निहोत्र से निवृत्त हो, गायत्री मन्त्र का जाप प्रातः ५०० करना चाहिये और ऐसे ही सायम्। कभी अपना नित्य कर्म न छोड़ना चाहिये और न मैले कुचैले कपड़े पहरने चाहियें, सदा आप पवित्र वस्त्र पवित्र मकान पवित्र वर्तन पवित्र भूषण पवित्र भोजन पवित्र रखने उचित हैं। देखो जब कोई मनुष्य वस्त्राभूषण और स्थानादि से शुद्ध और पवित्र देखता है, तो उस का चित्त प्रसन्न हो जाता है और जब इस के विरुद्ध मैली कुचैली चीज़ देखता है, तब ग्लानि मानता है। इस कारण सदैव पवित्रता रखनी उचित है। प्रत्येक मनुष्य को ५ यज्ञ नित्य करने आवश्यक हैं, कि जिन में पहिली सन्ध्या दूसरा अग्निहोत्र और तीसरा बलिवैश्वदेव चौथी अतिथि सेवा पांचवां पितृतर्पण हैं। इस कारण सब को योग्य है कि अतिथि अर्थात् विद्वान् साधु महात्मा और अपने माता पिता और गुरु आचार्य की अवश्य सेवा करे। स्त्री को पति सेवा से बढ़ कर और कोई तप नहीं है, परन्तु साधुमहात्मा और बड़ों की भी यथाशक्ति सेवा करनी चाहिये॥

छठे–कुलरीति अर्थात् कुलाचार का भी ध्यान रखना चाहिये, जो रीति धर्मविरुद्ध न हों उन को जारी रक्खे और जो धर्मविरुद्ध या पाखण्डयुक्त हों उन को बड़ी सुघराई से दूर करे कि कोई दोष न दे सके। और कई काम स्त्रियों को वर्जित हैं–

प्रथम–परपुरुष चाहे कैसा ही धनाढ्य या रूपवान् हो पर उस में मन न लगावे, अपने पति में ही मन लगावे, जो पति घर न हो तो शृङ्गार भी न करे क्योंकि पति के पीछे शृङ्गार वर्जित है॥

द्वितीय–दूसरे की उत्तम वस्तु देख चित्त में लालच न आने दे और उस की इच्छा न करे। जो कुछ ईश्वर ने अपने को दिया है उसी पर सन्तोष रक्खे और प्रसन्न रहे॥

तृतीय--जब तक बने किसी से ऋण न ले, क्योंकि ऋण से मर्द को भी बड़ा दुःखित होना पड़ता है और अधिक ऋण हो जाने से अपने कार्यों में भी मन कम लगता है ॥

चतुर्थ–सदा सत्यव्रत रक्खे अर्थात् अपनी वृत्ति सच्ची रक्खे, सत्य ही बोले, सत्य ही कहे, सत्य ही करे, दुष्टाचरण वाली स्त्रियों के पास न बैठे, कुचलन और दुष्टा स्त्रियों से सदा बचे, लालचनियों को पास न आने दे और अपने बच्चों की अच्छी रक्षा करे और अच्छी शिक्षा दे, लबार या झूँठे के पास अपने बालकों को न बैठने दे ॥

पञ्चम–गृहस्थ के कार्य बड़ी सुघराई से पूरे करे कि जो सब को प्रिय जान पड़ें। हानिकारक कार्य कभी न करे और हर बात का उत्तर बड़ी सुघराई से दे कि जिस से कुल या जाति की स्त्री अप्रसन्न न हों, सब प्रसन्न रहें और तारीफ़ करें ॥

षष्ठ–कभी अभिमान न करे और न अभिमान के वचन कहे, चाहे कितनी ही अधिक सम्पत्ति हो जाय पर नम्र बनी रहे, कङ्गाल और दुःखी मनुष्यों से कभी कटुवाक्य न कहे। मद बड़ा बुरा है। जब कोई अपनी या अपने कुल की प्रशंसा करे तो अभिमान न करे बरन प्रशंसा सुन नम्रभाव बना ले और समझ ले कि यह नम्रता ही का फल है और परमात्मा को धन्यवाद दे कि आप की कृपा से मुझे यह प्रशंसा मिली है और अपने को सब से छोटी जान आयु पूरी करे ॥

सप्तम–सदा चेतन रहे। कभी किसी के बहकाने या लोभ देने में न फंसजाय और अपना भेद किसी को न दे और न अपने घर का हाल खुलने दे और अपने कुटुम्बियों की किसी से निन्दा न करे, सब की सुने पर करे शोच विचार कर अपने मन की। लोभ में सब धर्म कर्म जाता रहताहै और स्वार्थियों के फंदे में फंस बड़ी हानि उठानी पड़ती है। भेद खुलजाने से सब प्रबन्ध बिगड़ जाता है, घर का भेद खुल जाने से भरम बिगड़ जाता है। सारे नगर में निन्दा हो जाती है। कुटुम्बियों की निन्दा से अच्छे लोगों में अपकीर्ति होती है और कुटुम्बियों को बुरी लगती है और प्रेम घट बैरभाव का पौदा जम जाता है और थोड़े ही दिन में उन से अलग हो दुःख उठाना पड़ता है ॥

अष्टम-सदा नम्रभाव रक्खे, सब से झुके, नम्रता रक्खे, अभिमानादि दोषों को पास न आने दे, औरों की बुराई और अपनी बड़ाई कभी मुख से न निकाले। किसी के कार्य में विघ्न न डाले और किसी की वृद्धि देख कभी डाह न करे। कष्ट में सब को सहायता दे। दुःख में दूर न भागे॥

नवम-जिह्वा वश में रक्खे, चटोरी न होने दे, कभी कोई पदार्थ अकेले न खाय, सारे कुटुम्ब को खिला पीछे से आप भी खाय, मादक वस्तु कभी न खाय, सब इन्द्रियों को वशीभूत रक्खे, नियम से बाहर न जाने दे। मेले तमाशे में भूल कर भी न जाय, नाच तमाशा तो देखे ही नहीं। यह बातें बड़ी बुरी हैं। साधारण मनुष्य की तो गणना ही क्या है, अच्छे २ ऋषि मुनियों ने भी इन के फन्दे में फंस बड़ी भारी हानि उठाई है। मादक वस्तु मदिरा, भङ्ग, अफ़ीम, चर्स, गांझा आदि कहाते हैं। इन में बड़ा दोष तो यह है कि इन के सेवन से बुद्धि तो भ्रष्ट हो ही जाती है और न सुध रहती है कि हम कहां हैं और क्या करते हैं, और न लज्जा रहती है, जो कुछ मुंह में आता है, कहनी अनकहनी बात कह डालते हैं॥

चावली-तो माता जी! परमात्मा ने यह मादक वस्तु क्यों बनाई हैं?

पुरोहितानी-बेटी! रोगनिवारण के लिये। ये रोग में ही सेवन योग्य हैं, आरोग्य में नहीं॥

दसवें—कोई काम धर्मविरुद्ध न करना चाहिये अर्थात् जुवा खेलना चोरी करना, वैर करना, दुःख देना, रोग छिपाना, रोग में ओषधि न खाना, कुपथ्य भोजन करना, किसी को दुःखित देख प्रसन्न होना और प्रसन्न देख डाह करना और किसी का बुरा चाहना, बिना कारण किसी पर क्रुद्ध होना और किसी से झुंझलाना आदि ऐसी बातें भूल से भी न करनी चाहियें। जिस के चलन में इन में से एक भी दोष होता है उस को अवश्य अपने जीवन में दो चार बार लज्जित होना पड़ता है॥

एकादश-जिन कार्यों से कोई अर्थ सिद्ध न हो, वे कभी न करने चाहियें अर्थात् अधर्म के कार्यों में चित्त रखना, अभक्ष्य वस्तु खाना, किसी का धन चुराना, किसी को सताना, परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध टोना टोटका करना, भूत प्रेतादि का मानना; यह सब कार्य नरकप्रद हैं। ऐसे कर्म करने वाली स्त्रियों की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और जब बुद्धि भ्रष्ट होगई तो क्या ठिकाना, जो चाहे सो करे। ये कर्म इस लोक में निन्दा करा

परलोक में सीधा नरक को ले जाते हैं। बेटी! अब तू इन बातों को याद रखिये। भूलने लायक नहीं हैं॥

चावली–माता जी! पञ्चयज्ञ के मन्त्र कृपा करके और बता दीजिये॥

पुरोहितानी–मैं पञ्चयज्ञ सुनाती हूं॥

सब महाशयों की सेवा में निवेदन है कि अपना२ नित्यकर्म यानी पञ्चमहायज्ञ व गायत्री जाप अवश्य ही किया करें। देखिये मनु जी क्या कहते हैं:–

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिः कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

जो द्विज लोग सायंकाल व प्रातःकाल सन्ध्योपासन व गायत्री जाप न करें, उन्हें सज्जन लोग आर्यों से निकाल कर शूद्रवत् समझें।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

१–सन्ध्योपासन। २–तर्पण। ३–अग्निहोत्र। ४–बलिवैश्वदेव। ५–अतिथियज्ञ ये ५ महायज्ञ नित्य ही आर्यलोग अवश्य किया करें॥

प्रथम शौचादि से निवृत्त हो जल से शरीर शुद्ध कर या स्नान कर आसन पर बैठे॥

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

ब्रह्मयज्ञ अर्थात् संध्योपासन–

१–गायत्री मन्त्र से मार्जन। २–गायत्री मन्त्र से शिखाबन्धन। ३–आचमन ३ मन्त्रों से तीन। ४–प्राणायाम ३ अमन्त्रक। ५–आचमन ३ मन्त्रों से तीन। ६–गायत्री से रक्षा। ७–इन्द्रियस्पर्श। ८–इन्द्रियमार्जन। ९–प्राणायाम ३ व्याहृति ७। १०–अघमर्षण। ११–आचमन। १२–मनसा परिक्रमा ६। १३–उपस्थान ४। १४–आचमन ३। १५–गायत्री जाप। १६–समर्पण। १७–आचमन ३।

(१) प्रातः पूर्वाभिमुख और सायं पश्चिमाभिमुख शुद्ध आसन पर बैठ, शुद्ध पात्र में जल सामने रक्खे, लेकिन प्रथम शौचादि से निवृत्त हो, आसन पर बैठना चाहिये। दाहिने हाथ से जल ले, गायत्री पढ़ कर शरीर पर छिड़के॥

(२) शिखा बन्धन-गायत्री मन्त्र पढ़ कर चुटिया में गांठ देवे ॥

(३) आचमन-नीचे लिखे मन्त्रों से तीन आचमन करेः-

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥

इस से पहिला,

ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥

इस से दूसरा,

ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥३॥

इस से तीसरा ॥

(४) प्राणायाम-आचमन के बाद तीन प्राणायाम अमन्त्रक करे। नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके,हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति रोके, पश्चात् धीरे २ भीतर लेके, भीतर रोके, फिर एक साथ वायु को बाहर निकाल के रोके,इस प्रकार ३ प्राणायाम करता हुआ ब्रह्म का ध्यान करे ॥

(५) आचमन नीचे के मन्त्र से ३ करेः-

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ मं० १२ ॥

(६) दाहिने हाथ में जल ले, शरीर के चारों तरफ़ गायत्री पढ़ रक्षा के अर्थ घुमावे ॥

(७) ओं वाक् वाक्- इस से मुख का दहिना बायां ।
ओं प्राणः प्राणः- " नाक का दहिना बायां ।
ओं चक्षुश्चक्षुः— " आंखें दाहिनी बाईं ।
ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम्- " कान का दहिना बायां ।
ओं नाभिः- " नाभि यानी टूंडी ।
ओं हृदयम्—इस से छाती ।
ओं कण्ठः—इस से गला ।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम्— इस से कन्धा दहिना बायां ।
ओं करतलकरपृष्ठे- इस से दहिनी हथेली और बाईं नीचे ।

इन मन्त्रों को पढ़, इन्द्रियों को छूता जावे । फिर बायें हाथ में जल ले, दहिने हाथ के पोरुओं से नीचे लिखे मन्त्रों से अङ्गों पर जल छिड़केः-

(८) इन्द्रिय मार्जन—

ओं भूः पुनातु शिरसि—	इस से	शिर पर।
„ भुवः पुनातु नेत्रयोः—	„	आंखों पर।
„ स्वः पुनातु कण्ठे—	„	गले पर॥
„ महः पुनातु हृदये—	„	छाती पर।
„ जनः पुनातु नाभ्याम्—	„	नाभि पर।
„ तपः पुनातु पादयोः—	„	पैरों पर।
„ सत्यं पुनातु पुनःशिरसि	„	फिर शिर पर।
„ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र—	„	सब शरीर पर छिड़के॥

(९) प्राणायाम—नीचे लिखे मन्त्रों से कम से कम ३, ज्यादे यथाशक्ति प्राणायाम विधि से करे॥

१—ओं भूः। २—ओं भुवः। ३—ओं स्वः। ४—ओं महः। ५—ओं जनः। ६—ओं तपः। ७—ओं सत्यम्॥ तै० प्र० १० अनु० २७॥

(१०) अघमर्षण—दाहिने हाथ में जल ले, नीचे के मन्त्र पढ़ के, पृथिवी पर छोड़ दे॥

ऋतञ्चसत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोअर्णवः॥ १॥ समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः॥ ३॥ ऋ० म० ८ अ० ८ व० ४८

(११) आचमन—शन्नो देवीः० इस मन्त्र से तीन आचमन करे। यहां पर पौराणिक लोग गायत्री मन्त्र से ३ अञ्जलि सूर्य को देते हैं। लेकिन सूर्याञ्जलि वेदोक्त प्रमाण नहीं॥

(१२) मनसा परिक्रमा—नीचे लिखे मन्त्रों से बाहर भीतर चारों तरफ़ ऊपर नीचे परमात्मा को व्यापक जान कर स्तुति करे ६ मन्त्र से॥

प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षितादित्याइषवः । तेभ्योनमो-
ऽधिपतिभ्योनमोरक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो
३ऽस्मान्द्वेष्टियं वयंद्विष्मस्तंवो जम्भेदध्मः॥१॥दक्षिणादिगि-
न्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजीरक्षितापितरइषवः । तेभ्योनमो-
ऽधि० ॥ २ ॥ प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमि-
षवः । तेभ्योनमोधि० ॥ ३ ॥ उदीची दिक् सोमोधिपतिः
स्वजोरक्षिताशनिरिषवः । तेभ्योनमोधि० ॥ ४ ॥ ध्रुवादि-
ग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवोरक्षितावीरुधइषवः । तेभ्योनमो
धि० ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रोरक्षितावर्ष-
मिषवः । तेभ्योनमोऽधि० ॥६॥ अथर्व कां० ३ अ० ६ सू०
२७ । मं० १—६

(१३) उपस्थान—अर्थात् परमात्मा के निकट प्राप्त होने की प्रार्थना नीचे लिखे ५ मन्त्रों से करे ॥

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्तउत्तरम् । देवं देव
त्रासूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥ १ ॥ यजुः अध्याय ३५ । मन्त्र
१४ ॥ ओ३म् उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।दृशे वि-
श्वाय सूर्यम् ॥ २ ॥ यजुः ३३ ॥ मं० ३१ ॥ ओं चित्रं दे-
वानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः । आप्रा द्यावापृ-
थिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ य०
७ । ४२ ॥ ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम श-
रदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदःशतात्॥४॥

य० ३६ । २४। ओं जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ ऋ० १ । ९९ । १ ॥

(१४) आचमन—शन्नोदेवीः—इस मन्त्र से ३ आचमन करे ॥

(१५) गायत्री जाप—प्रातः सायं कम से कम एक हज़ार जाप करे ॥

ओंभूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् य० ॥ ३६ ॥ ३ ॥

अर्थ—

(ओ३म्) परमेश्वर का मुख्य नाम है । अकार उकार मकार से ओ३म् सिद्ध होता है । अकार से विराट्, अग्नि, विश्व । उकार से ईश्वर आदित्य प्राज्ञ । मकार से हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस इत्यादि नामों का ध्यान ओ३म् से होता है (भूः) जो प्राण का भी प्राण (भुवः) जो सब दुःखों से छुड़ाने हारा (स्वः) सुखस्वरूप जिस के ध्यान से सब सुख प्राप्त होते हैं (सवितुः) सब जगत् का पैदा करने वाला (देवस्य) जो सब सुख कामनाओं का देने वाला (वरेण्यम्) स्वीकार व मानने योग्य (भर्गः) शुद्धस्वरूप व पाक साफ़ चेतन (तत्) उसी परमात्मा को हम लोग (धीमहि) धारण करें (यः) जो सविता देव परमात्मा (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे कि असत् कर्मों से छुड़ा कर सद्धर्म मार्गों के सुकर्म करने की हम को चेतना करे । इत्यादि गायत्री जाप अर्थ विचारपूर्वक करे । केवल पाठ जाप फल दायक नहीं ॥

(१६) समर्पण—

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥
य० अ० १६ मं० ४१ ॥

(१७) शन्नोदेवीः० । इस मन्त्र से ३ आचमन कर सन्ध्योपासन समाप्त करे ॥

दूसरा पितृयज्ञ अर्थात् तर्पण

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

जो हर समय अपने वृद्ध पितरों की सेवा करता है, उस की आयु विद्या यश बल ये बढ़ते हैं ॥

अथ ब्रह्मतर्पणम्

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्, ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्, ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्,ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ॥

(विद्वांꣳसोहि देवाः) यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है जो ब्राह्मण विद्वान् धर्मात्मा होते हैं वे देव, जो चारों वेद के ज्ञाता धर्मात्मा हों वे ब्रह्मा, उन की स्त्री ब्रह्माणी देवी, उन के तुल्य पुत्र, उन के तुल्य भृत्य अर्थात् सेवक हों, उन की सेवा करना ब्रह्मतर्पण है ॥

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम् । मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम् ॥

जो मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें वे ऋषि, उन के तुल्य स्त्री पुत्र सेवकों की सेवा करनी चाहिये ॥

अथ पितृतर्पणम्

१–ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम् । २–अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् । ३–बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् । ४–सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् ।५–हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम् । ६–आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम् । ७–सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम् । यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि । पितृभ्यः

स्वधानमः पितॄंस्तर्पयामि । पितामहेभ्यः स्वधानमःपितामहांस्तर्पयामि । मातृभ्यः स्वधा नमः मातॄस्तर्पयामि । पितामह्यै स्वधानमः पितामहीं तर्पयामि । स्वपत्न्यैस्वधानमः स्वपत्नीं तर्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधानमः सम्बन्धिनस्तर्पयामि।सगोत्रेभ्यः स्वधानमः सगोत्रांस्तर्पयामि॥

जो पदार्थविद्या, परमात्मा के जानने वाले वे सोमसद् । अग्नि के जानने वाले अग्निष्वात्ताः । उत्तम विद्या के जानने वाले बर्हिषदः । सोमलतादि ओषधियों के जानने वाले सोमपाः । अहिंसक हों वे हविर्भुजः । उत्तम पदार्थों के रक्षक हों वे आज्यपाः । जो समयोचित धर्म करें वे सुकालिनः। जो दुष्टों को दण्ड देवे वह यम । जो अन्न वस्त्र से रक्षा व उत्पन्न करे वह पिता । जो पिता का पिता वह पितामह । जो गर्भ से रक्षक वह माता । जो पिता की माता हो वह पितामही । अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी तथा कुटुम्ब के वृद्ध पुरुष हों उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से अन्न वस्त्र से सेवा करके तृप्त करना चाहिये । यही श्राद्ध तर्पण कहाता है । ब्रह्मतर्पण में सव्य, ऋषितर्पण में कण्ठ, पितृतर्पण में अपसव्य हो हाथ से जल छोड़ना वेदोक्त कर्म नहीं है ॥

—***—

३–देवयज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र

१ यज्ञशाला २ समिधा ३ यज्ञकुण्ड ४ यज्ञपात्र बाईं ओर ५ यज्ञद्रव्य दाहिनी ओर वेदी के रखना चाहिये । जो समय सन्ध्या का है वही समय अग्निहोत्र का भी प्रातः सायम् का है। यज्ञशाला भी उत्तम बनानी चाहिये । यज्ञ कुण्ड तांबे या और किसी उत्तम धातु का हो या पृथिवी खोद कर वेदी बनावे । ऊपर से नीचे चौथियाई रखना चाहिये । यज्ञ पात्र भी प्रणीता प्रोक्षणी चमसा स्रुव आज्यस्थाली चरुस्थाली बनावे । यज्ञसमिधा-पलाश शमी पीपल बड़ गूलड़ आंब बिल्व चन्दन इत्यादि प्रमाण से छोटी बड़ी माप कर बनवाले । यज्ञद्रव्य पांच प्रकार के हैं –

१–(सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची दोनों ।

२–(पुष्टिकारक) जायफल जावित्री बालछड़ कचूर नागरमोथा लौंग कपूर ॥

३-(मिष्ट) घी खोया फल कन्द गोला पिस्ता बादाम छुहारे मूसली सुफ़ेद किसमिस चिरोंजी अख़रोट चिलगोज़ा शतावर दालचीनी गोखरू मखाने ॥

४-(रोगनाशक) शक्कर शहद सतगिलोय ॥

५-(स्थालीपाक) भात खिचड़ी खीर मोहनभोग लड्डू ॥

अग्निहोत्र विधान

(१) आचमन ३ मन्त्र से ३ (२) अङ्गस्पर्श मन्त्र ७ से ७ अङ्ग (३) अग्न्याधान अग्निदीपन मं० २(४) समिदाधान मं० ५ से समिधा ३ वेदी में छोड़े । मन्त्र १ से आहुति(५)वेदीमार्जन मं०४ (६)आघाराज्यभागाहुतिमं०४ से आ० ४ (७) प्रातः काल मं० ४ से आहुति ४ (८) सायङ्काल मं०४ से आहुति ४ (९) उभयकाल मं० ८ से आ० ४ (१०) आघाराज्यभागाहुति मन्त्र ४ से आ० ४ । (११) व्याहृति आहुति मं० ४ से आ० ४ (१२) ब्रह्मयज्ञ मं० ७ से आ० ४ (१३) पूर्णाहुति मं० १ से १ ॥

(१) आचमन-(अमृतोप०) इत्यादि ३ मन्त्रों से ३ आचमन सन्ध्योपासन नं० ३ के विधान से करे ॥

(२) अङ्गस्पर्श नीचे के मन्त्र से बाएं हाथ में जल लेकर दाहिने के पोरुवों से छिड़के ॥

(ओं वाङ्म आस्येऽस्तु) इस से मुख का दाहिना बायां ॥

(ओं नसो र्मेप्राणोस्तु) इस से नाक का दाहिना बायां ॥

(ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु) इस से आंख दोनों दाहिनी बायीं ॥

(ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु) इस से कान दोनों दाहिना बायां ॥

(ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु) इस से कन्धा दोनों दाहिना बायां ॥

(ओं ऊर्वोर्मेओजोऽस्तु) इस से जंघा दोनों ॥

(ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु) इस से सब अङ्गों पर जल छिड़के ॥

फिर द्विजातियों के यहां से अग्नि ला, घृत या कपूर का दीपक जला, "भूर्भुवःस्वः" कहकर पात्र में धरे ॥

(३) अग्न्याधान-

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा । तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे य० ३ । ५

इस मन्त्र से वेदी के बीच में जलती हुई अग्नि धर छोटे २ काष्ठ लगावे नीचे के मन्त्र से अग्नि तेज करे ॥

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयंच। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥
(य० अ० १५ मं० ५४)

३ लकड़ी ८, ८ अङ्गुल की चन्दन वा आम आदि समिधा ले, नीचे लिखे मन्त्र से एक २ कर ३ समिधा वेदी में चढ़ावे ॥

(४) समिदाधान—ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येनसमेधयस्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे इदं न मम ॥ १ ॥

इस मन्त्र से १ समिधा।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ २ ॥ इदमग्नये इदन्न मम ॥ १ ॥ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ ३ ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्न मम ॥ २ ॥

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा वेदी में चढ़ावे ॥

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा ॥ ४ ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥

इस से तीसरी समिधा को चढ़ावे। यजु० अ० ३ मं० १। २। ३ ॥

(ओम् अयं त इध्म०) इस पहले मन्त्र से ५ आहुति घी की देकर, जल ले, वेदी की तरफ़ नीचे के मन्त्रों से छोड़े ॥

(५) वेदिमार्जन—ओम् अदितेऽनुमन्यस्व=इस से पूर्व। ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व=इस से पश्चिम। ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व=इस से उत्तर ॥

ओं देवसवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतन्नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥ यजु० अ० ३० मं० १ ॥

इस से चारों तरफ़ ॥

(६) आघारावाज्यभागाहुति

१-ओम् अग्नये स्वाहा । इदमग्नये इदं न मम=इस से उत्तर में आहुति। २-ओं सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्न मम=इस से वेदी के दक्षिण में। ये २ आघाराहुति हैं। ३-ओं प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदन्न मम । ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय इदन्न मम । इन दोनों से मध्य में आहुति, ये दोनों आज्यभागाहुति हैं ॥

(७) प्रातःकाल हवन मन्त्र

ओं सूर्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ १ ॥ ओं सूर्यो वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥ ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ३ ॥ ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्योवेतु स्वाहा ॥ ४ ॥

(८) सायंकाल हवनमन्त्र

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा (१) अग्निर्वर्चोज्योतिर्वर्चः स्वाहा (२) अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा (३) सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा (४)

(९) उभयकाल हवनमन्त्र

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय इदन्नमम (१) ओं भुवर्वायवेपानाय स्वाहा । इदंवायवेऽपानाय इदन्नमम (२) ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा इदमादित्यायव्यानाय इदन्न मम (३) ओं भूर्भुवःस्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणाऽपानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः इदन्न मम (४) ओम् आपो ज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा (५) ओम् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा (६) य० ३२।१४। ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव स्वाहा (७) य० ३०। ३। ओम् अग्ने

नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम (८) यजु० ४। ६

(१०) आघारावाज्यभागाहुति नं० ६ से ४ आहुति॥

(११) व्याहृति आहुति—ओं भूरग्नये स्वाहा इदमग्नये इदन्न मम (१) ओं भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम (२) ओं स्वरादित्याय स्वाहा इदमादित्याय इदन्न मम (३) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्नमम (४)

(१२) केवल पूर्णमासी के दिन	केवल अमावस के दिन।
ओम् अग्नये स्वाहा।	ओम् अग्नये स्वाहा।
ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा।	ओम् इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा।
ओं विष्णवे स्वाहा।	ओं विष्णवे स्वाहा।

व्याहृति आहुति दोनों दिन।

(१३) पूर्णाहुति। ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।

अथ बलिवैश्वदेवविधान

ओम् अग्नये स्वाहा। ओं सोमाय स्वाहा। ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा। ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं धन्वन्तरये स्वाहा। ओं कुह्वै स्वाहा। ओमनुमत्यै स्वाहा। ओं प्रजापतये स्वाहा। ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ओं स्विष्टकृते स्वाहा।

जो कुछ रसोई में हो उस में दूध लवणान्न को छोड़ इन दश मन्त्रों से दश आहुति देकर या पत्तल में नीचे लिखे मन्त्रों से बलिदान करे॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः इस से पूर्व तरफ़।

ओं सानुगाय यमाय नमः इस से दक्षिण तरफ़।

ओं सानुगाय वरुणाय नमः इस से पश्चिम तरफ।
ओं सानुगाय सोमाय नमः इस से उत्तर तरफ।
ओं मरुद्भ्यो नमः इस से द्वार।
ओमद्भ्यो नमः इस से वायव्य।
ओं वनस्पतिभ्यो नमः इस से आग्नेय।
ओं श्रियै नमः इस से ईशान
ओं भद्रकाल्यै नमः इस से नैर्ऋत्य

ओं ब्रह्मपतये नमः
ओं वास्तुपतये नमः
ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः } इन से मध्य

ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः
ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः } इन से ऊपर

ओं सर्वात्मभूतये नमः इस से नीचे

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः=इस से दक्षिण, इस प्रकार दिशाज्ञान से भाग धरे। अतिथि आजाय तो उसे दे देय, नहीं तो अग्नि में भस्म कर देवे।

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां क्रमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि॥

कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक, कृमि, इन ६ नामों के ६ भाग पृथिवी में धरे। एक एक भाग इन सब को दे देवे॥

अतिथियज्ञ पांचवां

जो धार्मिक विद्वान् परोपकारी सत्यवादी धर्मात्मा जिन के आने जाने की कोई तिथि न हो उन की अन्नादि से सेवा करनी चाहिये। इसी प्रकार से स्त्री पुरुष नित्य ही पञ्चयज्ञ अवश्य किया करें॥

——:*:——

आज कैसा सुहावना समय है, बादल कैसे उमण्ड २ कर आ रहे हैं और कैसी भीनी २ महक आ रही है, जी उलाप लेता है, सरयू नदी उमण्ड रही है और उस की लहर समुद्र को लजाती हैं, हाथीघोड़े उछल रहे हैं, मोर नाच रहे हैं, कोकिल चारों ओर से स्वरीली बोली बोल रही हैं। चारों ओर

खुशी ही खुशी छा रही है, जिसे देखो मग्न फिरता है, कोई बतलाता भी नहीं कि आज क्या है, हमारी समझ में नहीं आता कि परमात्मा ! यह क्या मामला है। अरे भाई ! पूछो तो यह आज है क्या, बड़ी तलाश से देखा तो एक घर में कुछ स्त्री जमा हैं॥

मैं-(एक लड़की को बुला) बेटी ! बतलाओ तो यह आज कैसा समय है ?

लड़की-पिता जी ! यहां आज श्रीमती सीतामहारानी के स्वयंवर का व्याख्यान है। बहुत सी स्त्रीगण सुन २ कर चली जा रही हैं, जो सुनती हैं वह मग्न हो जाती हैं॥

मैं-बेटी ! हम भी एक कोने में बैठ कर सुना चाहते हैं॥

लड़की-तुम यहां नहीं बैठ सकते क्योंकि यहां स्त्रीसमाज है, पर यहां जो कुछ कार्य होगा वह छाप कर सब जगह बांटा जायगा और एक प्रति आप की सेवा में भी पहूंचेगी, आप इतमिनान रखिये॥

स्वयंवर

सब स्त्री-बहन चन्द्रमुखी ! आज का दिन तो बहुत ही सुहावना है देखो आज तो सिया स्वयंवर सुना दीजिये।।

चन्द्रमुखी-तो सुनो-अवध देश में जोकि आर्यावर्त्त के मध्य में है पहले समय में इक्ष्वाकु वंशी राजा राज्य करते थे, और राजा इक्ष्वाकु की कई पीढ़ी पीछे राजा दशरथ जी हुये कि जिन के एक राम कि जिन को रामचन्द्र भी कहते हैं, दूसरे भरत, तीसरे लक्ष्मण और चौथे शत्रुघ्न पैदा हुये। यह दशरथ बड़े प्रतापी थे, कई बार दैत्यों से लड़े और दानी तो बहुत ही बड़े थे, एक समय विश्वामित्र ऋषि राजा के पास आये, उन्हें आता देख-

राजा-(खड़े हो) आइये ऋषिराज ! बड़ी कृपा की, कहिये, प्रसन्न तो आये, प्रसन्न तो रहे (जल मंगा, पैर धुला, आसन पर बिठलाया)

ऋषि-राजन् ! आप की कृपा से सब कुशल है, परन्तु आज कल हम को असुर बड़ा कष्ट देते हैं और हमारे यज्ञ में भी विघ्न फैलाते हैं॥

राजा-महाराज ! मैं सेना भेजता हूं, वह सब प्रबन्ध कर देगी॥

ऋषि-राजन् ! आप सेना न भेजें। राम, लक्ष्मण दोनों भाइयों को मेरे साथ कर देवें, ये दोनों उन को भगादेंगे॥

राजा-जो आज्ञा (पर मन में विचारता है कि इन बालकों को अकेला कैसे भेजूं पर जो नांह करता हूं तो यह शाप दे देंगे, ख़ैर अब तो

भेजना ही चाहिये। (राम लक्ष्मण से) बेटा! तुम ऋषिराज के साथ वन जाओ (और ऋषि से) क्या महाराज! कुछ सेवक लोग इन के साथ जायंगे॥

ऋषि–नहीं किसी की ज़रूरत नहीं, हम सब प्रबन्ध कर देंगे॥

चन्द्रमुखी–बस कहां तक कहूं, राजा ने दोनों भाई ऋषि जी के संग कर दिये और दोनों ने जा दैत्यों को मार भगाया अब और ऋषि इकट्ठे हुवे॥

ऋषि लोग–राजकुंवर! तुम बड़े योग्य हो, हम तुम्हारा बल पुरुषार्थ कहां तक कहैं, पर जो तुम जनकपुरी देखोगे तो बड़े प्रसन्न होगे, विश्वामित्र जी वहां जाना चाहते हैं जो तुम उन से कहोगे तो साथ लेते जायंगे॥

रामचन्द्र–(विश्वामित्र जी से) महाराज! ऋषि लोगों ने हम से जनकपुरी की बड़ी महिमा कही है, हम जनकपुरी देखा चाहते हैं॥

ऋषि–अच्छा, कल हमारे साथ चलो॥

चन्द्रमुखी–अब राजकुंवर राम लक्ष्मण ऋषि जी के संग वन देखते २ जनकपुरी पहुंचे॥

जनक–(विश्वामित्र जी को आता देख प्रसन्न हो) आइये मुनिराज! आप ने बड़ी कृपा की पर यह तो बतलाइये कि ये दोनों कुमार विष्णुसमान पराक्रमी और अश्विनीकुमार समान रूपधारी आप के साथ कौन हैं? (और बड़ी सेवा की)

ऋषि–राजन्! ये दोनों वीर महाराज दशरथ जी चक्रवर्त्ती के पुत्र हैं। हम इन को यज्ञ की रक्षा के लिये राजा से मांग लाए हैं, इन्होंने सिद्ध आश्रम पर मारीच आदि राक्षसों को बे सवारी और सेना पैदल ही मारा है और आप का धनुष् देखने आये हैं॥

जनक–महाराज! आपने बड़ी कृपा की, जो ऐसे राजपुत्रों के साथ यहां पधारे, अब आराम कीजिये, तड़के प्रबन्ध करूंगा॥

चन्द्रमुखी–अब राजा महल को गये और ये भी सो रहे। प्रातः स्नानादि से निबट–

मन्त्री–(हाथ जोड़) ऋषिराज! श्रीमहाराज आप को दोनों कुमारों सहित देखा चाहते हैं॥

ऋषि–("बहुत अच्छा" कह, साथ २ महल में पहुंचे)

जनक–(खड़े हो) महाराज! हम को आज्ञा दीजिये, हम आप के आज्ञाकारी हैं, आप की जो इच्छा हो उसे कहैं और ये राजकुमार भी अपनी इच्छा प्रकट करें॥

ऋषि-राजन्! ये राजकुमार शिवधनुष देखा चाहते हैं इन को दिखा दीजिये॥

जनक-महाराज! पहले शिवधनुष् यहां होने का कारण सुनिये-राजा निमि की छठी पीढ़ी में राजा देवरात जी हुवे, उन को शिवजीने वैरियों के मारने को यह धनुष् दिया था। दक्ष प्रजापति के समय में यह धनुष् मिला है और तब से यहां है। जिस समय हमने कृषियज्ञ कर हल जोता उस समय हम को पृथिवी में से कन्या मिली। चूंकि हल की लीक को सीता कहते हैं इस लिये हमने उस का नाम सीता रक्खा और यह प्रण कर लिया कि जो देवता या राजा इस को तोड़ेगा वह सीता से विवाह रचेगा। बहुत से राजा इस पर बल कर चुके हैं और किसी से यह नहीं टूटा और हमने सीता भी किसी को नहीं दी। पहले तो १, १ ने बल किया फिर मिल २ कर, पर इसे उठा भी न सके और सब लौट गये। आप को याद होगा कि बहुत से राजोंने जनकपुरी घेरी पर हार कर ही गये। अयि मुनिराज! हम ज़रूर रामचन्द्र को धनुष् दिखावेंगे। जो श्रीराम धनुष् का रोदा भी चढ़ा देंगे तो अपनी अयोनिजा सीता कन्या इन को दे देंगे॥

सोरठा

जनक वचन सुनि कानि, कौशिक मुनि नृपसों कह्यो।
धनुष् दिखाओ आनि, परम रम्य रघुनन्द को॥
सुन नृप सचिव बुलाय, अनुशासन दीन्ह्यों तुरत।
माला चन्दन लाय, दिव्य धनुष् आन्यो तुरत॥

मन्त्री-"जो आज्ञा" कह ५००० योद्धाओं से धनुष् की पेटी खिंचा लाया (और राजा से) राजन्! सब राजों ने इस धनुष् की पूजा की है जो उचित समझिये तो श्रीराम को दिखा दीजिये॥

जनक-(विश्वामित्र जी को हाथ जोड़ और रामचन्द्र जी की ओर देख) ऐ ब्राह्मण! यह धनुष् महादेव जी का है इसलिये इस को शिव की बराबर जान सब निमिवंशी इस की पूजा ही करते रहे हैं। यह तो आप को ज्ञात है कि इस कुल में बड़े बड़े योद्धा हुवे पर किसी ने इस का रोदा भी नहीं चढ़ाया और यह कुल ही नहीं बल्कि देवता, राक्षस, दैत्य, किन्नर और नागों में से भी कोई इसे नहीं चढ़ा सका। फिर मनुष्यों की तो क्या गणना, मनुष्य तो इसे उठा भी नहीं सक्ता। पर इन राजकुमारों को दिखा तो दीजिये, शिवधनुष् है, दर्शन तो करलें॥

विश्वामित्र-ए वत्स रामचन्द्र ! धनुष् को देखो तो ॥

रामचन्द्र-(उठ, पेटी खोल, धनुष् देख) महाराज ! हम ने देख तो लिया अब उठाने और चढ़ाने का फ़िकर करते हैं ॥

राजा और विश्वामित्र-बहुत अच्छा कीजिये ॥

चन्द्रमुखी-यह सुन रामचन्द्र जी ने तमाशा सा कर सब के सामने बीच में से धनुष् पकड़ रोदा चढ़ा दिया और रोदे के चढ़ते ही धनुष् के दो टुकड़े हो गये और बड़े ज़ोर से शब्द हुवा ॥

जनक-(हाथ जोड़ विश्वामित्र जी से) हे भगवन् ! हम ने परम उदार श्री रामचन्द्र जी का बल पौरुष तो देख लिया और हम को उन की वीरता में कोई शङ्का भी नहीं रही । अब हम आशा करते हैं कि हमारी कन्या सीता जल्द महाराज दशरथकुमार श्रीरामचन्द्र को पतिपाय जनकवंश की कीर्ति दुनियां में फैलावेगी । परमात्मा को धन्यवाद है कि मेरा प्रण पूरा हुआ अब प्राणप्यारी परमदुलारी अपनी कन्या श्रीरामचन्द्र को देता हूं (और सीता जी का हाथ पकड़, रामचन्द्र जी को देते हैं) ॥

रामचन्द्र—हम तो अभी ब्रह्मचारी हैं, विना पिता की आज्ञा के कोई वस्तु नहीं ले सकते ॥

जनक-(विश्वामित्र से) अयि ऋषिराज ! जो आप आज्ञा दें तो हमारे मन्त्री लोग रथ पर चढ़ जल्द अयोध्या पुरी को जाय और नम्रता के साथ महाराज दशरथ जी से प्रार्थना करें कि आप के बड़े प्रसन्नतापूर्वक मुनिराज के साथ जनकपुर में हैं और उन्हों ने धनुष् तोड़ा है, आप मिथिला पुरी चलिये और विवाह कर लीजिये ॥

ऋषि-है तो उचित ॥

जनक-ऐ मन्त्री ! तुम अयोध्यापुरी जाओ और नम्रतापूर्वक महाराज दशरथ जी से यहां का वृत्तान्त कह साथ ले आओ ॥

मन्त्री-("जो आज्ञा" कह जाता है और ३ दिन रास्ते में बस दशरथ जी के दर्बार में पहुंच-)

दोहा-पाय जनक आज्ञा मुदित, मन्त्रि दूत चढ़ि यान ।
तीन रात वस मार्ग में, पहुंचे अवधसुथान ॥

जनक नगर निज वास कह, दशरथ दूतन साथ ।
जाय सभा में देव सम, नृप लखि नायो माथ ॥
हाथ जोड़ के कह वचन, दूत नृपति सों जाय ।
मधुर विनय के नृप वचन, बोले अति हर्षाय ॥

मन्त्री-(हाथ जोड़) श्री महाराज ! महाराजा जनक जी ने बड़ी नम्रता के साथ आप की और पुरोहित, मन्त्री और समस्त राज्य की कुशल पूंछी और विश्वामित्र जी की सम्मति से कहा है कि हमने प्रण किया था कि जो शिवधनुष् तोड़ेगा उस को सीता देंगे सो अब तक किसी ने धनुष् न तोड़ा पर अब भरी सभा में उसे आप के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार रामचन्द्र जी ने तोड़ डाला । इस लिये हम अपनी कन्या सीता उन को दिया चाहते हैं,परन्तु वे विना आप की आज्ञा के स्वीकार नहीं करते। अब आप वसिष्ठादि पुरोहितों को साथ लें अपने अमीर उमरावों सहित जनक पुर आय अपने पुत्रों को देखिये और हमारा प्रण पूरा कीजिये और अपने दोनों पुत्रों का विवाह कर लीजिये । दूसरी कन्या उर्मिला हमारे है, राजन् ! ये सब बातें जनक जी ने विश्वामित्र जी व सतानन्द जी की सलाह से कही हैं ॥

दशरथ-(मन्त्री पुरोहितों से-) भाइयो ! कौशल्या के सुखदाता राम चन्द्र अपने लक्ष्मण भाई सहित विश्वामित्र जी के साथ जनकपुर में हैं और राजा जनक जी ने सब तरह से रामचन्द्र जी की परीक्षा लेली है, वे अपनी कन्या उन्हें दिया चाहते हैं, जो आप लोग यह नाता ठीक समझते हैं तो जनकपुर को तयार हों ॥

मन्त्री आदि-श्री महाराज ! नाता तो बहुत अच्छा है, आप को लहना फागना हो, हम को तो दुनियां में इस से अच्छा नाता प्राप्त नहीं होता, आप हुक्म दें, हम तो तयार हैं ॥

राजा-अच्छा, प्रातः कूंच हो और जल्द जनकपुर पहुंचें और ख़ज़ाञ्ची को हुक्म दो कि बहुत सा ख़ज़ाना ले आगे चले । चतुरङ्गिणी सेना संग जावे और रथ व गाड़ी छकड़े भी चलें । वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि,कश्यप, मार्कण्डेय, कात्यायनादि ब्राह्मण इच्छानुसार सवारियों पर चढ़ कर चलें और एक रथ हम को भी मिले, देर न हो ॥

चन्द्रमुखी-अब बारात चली और ३ दिन रास्ते में ठहर चौथे दिन जनकपुर पहुंची और राजा जनक अगवानी लेकर आये ॥

जनक-(बूढ़े दशरथ जी को देख, प्रसन्न चित्त) कहिये नरश्रेष्ठ ! प्रसन्न तो आये ? रास्ते में तकलीफ़ तो नहीं हुई? बड़े भाग्य की बात है कि आप यहां पधारे, आप के पुत्रों ने जो वीरता की है, आप उस का फल उठावें और यह भी बड़े भाग्य की बात है कि वसिष्ठ जी भी सब ऋषियों के साथ यहां सुशोभित हैं, अब हमारा कुल रघुवंशियों के नाते से पवित्र होगा। और कल आप विवाह करलें ।।

दशरथ-हमने सुन रक्खा है कि कन्या और गौ आदि का दान दाता के आधीन है, जब दाता देता है तब ही लिया जाता है, इस लिये जैसा आप कहेंगे वैसा ही हम करेंगे क्योंकि आप दाता ठहरे ॥

जनक-(मन में) ओहो ! इन के पुत्र ने तो कन्या अपने बल पौरुष से ली है, पर ये तो ऐसे नम्र हैं, कि कुछ भी अभिमान नहीं, बड़े पूरे पात्र हैं॥

चन्द्रमुखी-फिर ऋषि मुनि लोग आपस में मिल प्रसन्न हुवे और आराम से शयन किया। राजा ने राम लक्ष्मण को छाती से लिपटाय शिर सूंघा, सब ने जनक जी से भोजन पाया और जनक जी ने अपने कुलाचार दोनों कन्याओं से कराये और सो रहे और सवेरे उठ, सन्ध्या वन्दन कर और अपने पुरोहित शतानन्द जी से:-

जनक-महाराज ! भाई कुशध्वज को जो सांकश्या नगरी में इक्षुमती नदी के किनारे रहते हैं, हम देखा चाहते हैं। वे तो अपनी पुरी में बसे हमारे यज्ञ की सदा रक्षा करते रहते हैं इस कारण हम चाहते हैं कि वे भी यह विवाहोत्सव देखें ॥

शतानन्द-बहुत अच्छा, दूत भेजता हूं (और घुड़सवार दूत भेज दिये)

चन्द्रमुखी-दूतों ने वन्दना कर जनक जी का सन्देशा दिया और राजा कुशध्वज जनकपुरी में आये और शतानन्द जी और जनक जी को प्रणाम कर आसन पर बैठे ॥

जनक-मन्त्री ! दशरथजीके पास जाकर कहो,अपने पुत्रोंसमेत कृपा करें॥

मन्त्री-(जो आज्ञा कह और महाराज दशरथ जी के सामने जा, हाथ जोड़) अयोध्यानाथ ! श्रीमान् जनक जी आप को आप के पुत्रों सहित देखा चाहते हैं ॥

चन्द्रमुखी--तब राजादशरथ अपने पुत्रों और बान्धवों और मन्त्री पुरोहितों समेत जनक जी के महल में पहुंचे ॥

दशरथ–राजन् ! आप जानते हैं कि इक्ष्वाकु वंश के कुलदेव वसिष्ठ जी हैं और सब काम इन की आज्ञानुसार होते हैं। ये ही सब कार्य ऋषियों की सलाह से बतलावेंगे, वैसे ही आप को कार्य करना चाहिये ॥

वसिष्ठ जी–(राजा जनक और शतानन्द जी से) सुनिये ॥

आदि ब्रह्मा जी––ब्रह्मा जी के मरीचि–मरीचि के कश्यप–कश्यप के सूर्य–सूर्य के मनु, ये सब से पहले राजा हुवे। वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु इन्हों ने अयोध्या बसाई ॥

इक्ष्वाकु के कुक्षि
कुक्षि के विकुक्षि
विकुक्षि के बाण
बाण के अनरण्य
अनरण्य के पृथु
पृथु के त्रिशङ्कु
त्रिशङ्कु के धुन्धुमार
धुन्धुमार के महारथी यौवनाश्व
यौवनाश्वके मान्धाता,ये चक्रवर्ती हुवे।
मान्धाता के सुसिन्धु
सुसिन्धु के ध्रुवसिन्धु
ध्रुवसिन्धु के भरत। इन के नाम से भरतखण्ड मशहूर हुआ ॥
भरत के असित
असित के सगर
सगर के अंशुमान्
अंशुमान् के दिलीप
दिलीप के भगीरथ, इन्हों ने गङ्गा निकाली
भगीरथ के ककुत्स्थ
ककुत्स्थ के रघु, इन्हों के नाम से रघुवंश है।

रघु के कल्माषपाद
कल्माषपाद के संघन
संघन के सुदर्शन
सुदर्शन के अग्निवर्ण
अग्निवर्ण के शीघ्रग
शीघ्रग के मरु
मरु के प्रशुश्रर्क
प्रशुश्रर्क के अम्बरीष
अम्बरीष के नहुष
नहुष के ययाति
ययाति के नाभाग
नाभाग के अज
अज के ये दशरथ जी। इन दशरथ जी के ही राम, लक्ष्मण ये पुत्र हैं ॥

जनक–(हाथ जोड़) हमारी भी वंशावली सुनिये। सब से पहले राजा इस कुल में निमि हुवे ॥

निमि के मिथि
मिथि के जनक। इन्हीं से अब तक सब जनक कहलाते हैं ॥
जनक के उदावसु
उदावसु के नन्दवर्धन
नन्दवर्धन के सुकेतु

सुकेतु के देवरात	कीर्तिरथ के देवमीढ
देवरात के विरहवर्त	देवमीढ के विबुध
विरहवर्त के महावीर	विबुध के महीध्रक
महावीर के सुधृतिमान्	महीध्रक के कीर्तिरात
सुधृतिमान् के धृष्टकेतु	कीर्तिरात के महारोमा
धृष्टकेतु के हर्यश्व	महारोमा के स्वर्णरोमा
हर्यश्व के मरु	स्वर्णरोमा के ह्रस्वरोमा
मरु के प्रीतीधक	इन ह्रस्वरोमा के हम दो भाई हैं
प्रीतीधक के कीर्तिरथ	१ मैं सीरध्वज दूसरे ये कुशध्वज ॥

हमारे पिता हम को राज्य दे, वन को चले गये और वहां से स्वर्गवास किया, जब से हम दोनों भाई राज्य करते हैं। एक समय राजा सुधन्वा हमारे ऊपर सांतकश्यानगरी में चढ़ आया, उसे हमने मार डाला, जब से कुशध्वज जी वहां और मैं यहां राजा हैं। सो हम दोनों भाई आप को दो वधू देते हैं इन को स्वीकार कीजिये, इन में से सीता तो रामचन्द्र के लिये और उर्मिला लक्ष्मण के लिये ॥

विश्वामित्र—(वसिष्ठ जी से मशवरा कर) राजन्! इक्ष्वाकुवंश और विदेह वंश की कीर्त्ति तो जानी गई, सत्य तो यह है कि आज इन दोनों कुलों के समान भूमण्डल पर और कुल नहीं, और रामलक्ष्मण और सीता व उर्मिला भी समान और योग्य हैं, इन में कोई अन्तर नहीं। परन्तु हम एक बात कहते हैं कि राजा कुशध्वज की दोनों कन्या भरत व शत्रुघ्न को और दे दीजिये जिस से विदेह वंश की चारों कन्या इक्ष्वाकुवंश को सुशोभित करें ॥

जनक—(हाथ जोड़ ऋषियों से) हम अपने कुल को बड़ा भाग्यशाली जानते हैं कि जिस के लिये मुनियों ने नाता सोचा। अच्छा वे दोनों कन्या भी भरत व शत्रुघ्न की स्त्री हों और चारों राजकुमार चारों कन्याओं का विवाह एक ही रात में कर लें, कल उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में विवाह हो जाना चाहिये। और आपने बड़ी कृपा की, इस लिये हमारा और दशरथ जी व कुशध्वज का राज्य एक ही समझें और जहां चाहें आनन्द से रहें। जैसी जनकपुरी दशरथ जी की है, वैसे ही अयोध्यापुरी हमारी ॥

दशरथ—राजन् ! आप दोनों भाई सर्वगुणसम्पन्न हैं । हम आप के गुण नहीं कह सकते । अब आपभी आराम करें और हम भी नान्दी मुख श्राद्ध करेंगे॥

चन्द्रमुखी—इस से पहले की बात है कि राजा दशरथ जी ने अपने बेटों की ढाढ़ी बनवाई थी, उस की ख़बर सुन केकय देश के राजकुमार युधाजित् जी आये और राजा को अयोध्या में न पा,जनकपुर आ राजा से मिले।

युधाजित्—राजन् ! हमारे पिता जी ने आप की कुशल पूंछी और अपनी कुशल कही है । वे भरत जी को देखा चाहते हैं इस लिये हम को भेजा है, जब आप हम को अयोध्या में न मिले तो हम यहां चले आये ॥

दशरथ राजा बड़े प्रेम से मिले और कुशल पूंछ, रात को सो रहे । प्रातःस्नान कर सन्ध्या वन्दन व अग्निहोत्रादि से निबट राजा जनक जी के स्थान को चले और वसिष्ठ जी को आगे भेजा ॥

वसिष्ठ—(राजा जनक से) राजन् ! दशरथ जी तो सब मङ्गलाचार करचुके अब दाता की इच्छा करते हैं क्योंकि जब दाता और याचक दोनों तयार हों तब ही अर्थ सिद्ध होता है, इस कारण विवाह कर धर्म लीजिये ॥

जनक—महाराज ! दशरथ जी को रोकने को हमारा कौनसा पहरा है किस की आज्ञा चाहते हैं, अपने गृह में चले क्यों नहीं आते, यह राज्य व मन्दिर तो उन्हीं का है,हमारी कन्या तो मङ्गलाचार किये बैठी हैं,हम तो आप उन की बाट देखते हैं कि कब आवें और कब विवाह हो,अब जल्द विवाह करलें॥

दशरथ—यहि सुन राजमन्दिर में आगये और चारों राजकुमार वेदी पर पहुंचा दिये ॥

जनक—अयि वसिष्ठ जी ! आप सब ऋषियों की सम्मति से विवाह कराइये (वशिष्ठ, विश्वामित्र, शतानन्द जी वेदी में अग्नि स्थापन करा और यज्ञ की कार्यवाही का आरम्भ कराते हैं)

जनक—(सीता जी का हाथ अपने हाथ में ले) अयि राम ! यह हमारी कन्या आप की धर्मचारिणी हो। इस को अच्छी तरह देख इस का हाथ अपने हाथ में लीजिये (और जल व चावल समेत सीता जी का हाथ रामचन्द्र जी के हाथ पर रख दिया)

ऋषिलोग—साधु, साधु ॥

जनक जी—(प्रसन्नचित्त) लक्ष्मण ! तुम भी आओ और हमारी कन्या उर्मिला को स्वीकार करो(और भरत से)अय रघुनन्दन ! आप मांडवी का हाथ

अपने हाथ में लें और हे शत्रुसूदन ! तुम श्रुतकीर्ति कन्या को स्वीकार करो परमात्मा का कोटानुकोट धन्यवाद है कि जैसे तुम चारों भाई सर्वगुणसम्पन्न हो वैसी ही तुम को पत्नी भी मिली हैं ॥

चन्द्रमुखी—अब चारों कुमारों ने जनक जी व दशरथ जी और ऋषियों से आज्ञा ले अग्नि और ऋषि लोगों की परिक्रमा दी और वैदिक रीति से विवाह हुवा । विश्वामित्र जी तो बन को चल दिये और बारात भी बिदा हुई और जनक जी ने बहुत सा दहेज़ दिया और रास्ते में ठहरती बारात अयोध्या पहुंची और पुरवासी रास्ते में आकर मिले । अब राजा मन्दिर में पहुंचे और रानियों ने बहुवों को रथ से उतार गुरुपत्नियों को वन्दना कराई (थोड़े दिन पीछे —

दशरथ—(भरत से) पुत्र ये केकय देश के राजकुमार तुम्हारे मामा तुम्हारे ले जाने को बहुत दिन से यहां ठहरे हैं । तुम को इन के साथ जाना चाहिये ॥

भरत-"जो आज्ञा"कह और शत्रुघ्न को साथ ले केकयदेश को चलदिये॥

चन्द्रमुखी-एक दिन राजा दशरथ जी ने विचारा कि अब हम तो बहुत बूढ़े होगये इसलिये रामचन्द्र का राजतिलक कर तपस्या करें तो अच्छा हो और मन्त्रियों से सलाह ली उन्हों ने भी सलाह दी,बस फिर बड़ी जल्दी से राजतिलक की तयारी करादी,यहां तक कि भरत को भी ख़बर नहीं दी॥

दशरथ—(सब राजा व प्रजा को जोड़)-अयि राजा व प्रजा लोगो ! आप को ज्ञात है कि हमारा राज्य कैसा उत्तम है और हमारे पुरुषाओं ने इसे पुत्रवत् पाला है और हमने अपनी सामर्थ्य अनुसार इस की अच्छी पालना की कि हम बूढ़े हो गये । अब हमारी इच्छा है कि तप करें और राज्य राम को सौंपें, जो आप को यह स्वीकार हो तो स्वीकार करें, नहीं तो बेधड़क कहदो, हम लाभदायक बात को मानने को तयार हैं ॥

राजा व प्रजा—(बड़ी मग्नता से) महाराज ! आप का विचार बहुत ठीक है, आप अवश्य श्री रामचन्द्र को राजा बनावें ॥

दशरथ-राजन् ! आप क्रुद्ध न हों, भला यह तो बताओ कि तुम हमारे होते रामचन्द्र जी का राजा बनाना क्यों चाहते हो ॥

राजा व प्रजा—श्रीमन् ! आप ने तो धर्म से ही प्रजापालन किया है, पर रामचन्द्र जी में बहुत से गुण हैं, उन में से हम थोड़े सुनाते हैं, सुनिये-
१ राम बल पुरुषार्थ में इन्द्रतुल्य हैं ।
२ पहले इक्ष्वाकुवंशियों से कम नहीं ॥
३ सत्पुरुष हैं, धर्मात्मा हैं, प्रजा के सुख देने में चन्द्रसमान हैं, शान्ति में पृथिवी समान, बुद्धि में बृहस्पति समान हैं, जितेन्द्रिय हैं, धीर हैं, प्रियवादी हैं, सत्यवादी हैं और अनेकगुणसम्पन्न हैं । इस कारण हम उन को पसन्द करते हैं और हम ही नहीं, राज्य भर के स्त्री पुरुष बूढ़े बालक सब रामचन्द्र जी के राजा होने से प्रसन्न हैं ॥

दशरथ—(बड़े प्रेम से) भाइयो ! हम तुम लोगों से बड़े प्रसन्न हैं, अब जल्द राजतिलक की तयारी हो ।।

चन्द्रमुखी—आज नगर की दशा देखने योग्य है, हर जगह यज्ञ हो रहे हैं, बाजे बज रहे हैं, घर २ आनन्द मङ्गल आ रहे हैं । योद्धा लोग अपने २ कर्त्तव्य दिखाने को तयार हैं, हर नगर वासी अपने २ दुकान और मकानों को सजा रहे हैं ॥

दशरथ—(रामचन्द्र जी को बुलाय, छाती से लिपटाय, शिर सूंघ) तुम्हारा कल राजतिलक होगा, तुम और तुम्हारी पत्नी सीता दोनों उपवास करो। हम से रानी केकयी के बाप ने इक़रार करा लिया था कि केकयी का पुत्र राज्य पावेगा, इस कारण हम किसी को ख़बर नहीं करते, तुम कल राजतिलक करालो । यह तो हम जानते हैं कि भरत धर्मात्मा हैं, वे तुम से झगड़ा न करेंगे पर आदमी की मति का क्या ठिकाना, जब राजतिलक हो जायगा तब चुप ही होजावेंगे ॥

रामचन्द्र—" जो आज्ञा " कह माता कौशल्या जी के महल में आये, देखा कि सीता जी भी वहीं हैं और माता रेशमी कपड़े पहने मौन व्रत कर रहीं हैं। अब हंस कर प्रणाम किया और कहा कि माता जी ! हम को पिता जी ने प्रजापालन की आज्ञा दी है। कल हमारा राजतिलक होगा, आप की पतोहू को चाहिये कि आज रात हमारे साथ उपवास करे क्योंकि ऋषियों की सम्मति से पिता जी ने यह आज्ञा दी है और जो २ मङ्गलाचरण हों वे हम से जनकनन्दिनी के संग कराइये ॥

कौशल्या जी-(घबराई सी) अयि वत्स! अयि राम! बहुत दिन जियो, हमारे और सुमित्रा के बान्धवों को अपने राज्य से धनाढ्य करो, बड़े आनन्द का समय है, तुम अच्छे नक्षत्र में जन्मे कि राजा को प्रसन्न करलिया ॥

चन्द्रमुखी-अब रामचन्द्र जी यज्ञादिक कर कराय सो रहे और रात्री के चौथे पहर में उठ, स्नान व सन्ध्यादि कर्म कर, रेशमी कपड़े पहन राजतिलक के लिये तयार हुये। जी में मग्न हो रहे हैं कि आज राजतिलक कराय सत्य से प्रजा पालन करेंगे और अपना जीवन भी सुख से बितावेंगे और जनककुमारी भी हमारे साथ अपनी बहनों में महाराणी कहला, आनन्द से रहेंगी। वहां जनकनन्दनी भी मग्न हैं कि आज हम महाराणी कहला, देश में कीर्ति पावेंगी। माता कौशल्या भी परमात्मा को धन्यवाद दे रही हैं कि आज हमारा पुत्र आप की कृपा से सर्व भूमि का राजा होगा। लक्ष्मण अलग ही मग्न होरहे हैं कि बड़े भाई की सेवा में सुख से आयु पूरी करेंगे। पर यह कोई नहीं जानता कि इन आशाओं के बदले रोना पड़ेगा, दिन निकलते ही सुख के बदले दुःख का सामना होगा, राजतिलक की जगह पृथिवी पर सोना होगा, रेशमी वस्त्रों के बदले छाल पहरने को मिलेगी, सेवकों के बदले निर्जन वन में पंखेरुओं से काम पड़ेगा। इस समय मग्न हो रहे हैं, थोड़ी देर में रोते होंगे, सब की बुरी दशा होगी, राजा दशरथ तो मूर्छित होंगे और कौशल्या जी तो क्या सब माता शोक में अचेत पृथिवी पर पड़ी होंगी, सीता जी को वस्त्राभूषणों के बदले चीरवल्कल पहरने होंगे। हा! बड़े शोक का समय होगा कि राजतिलक के बदले योगियों का वेष बनाना पड़ेगा और सवारियों पर चढ़ने के बदले पैदल २ भूमि पर चलना होगा और सीता महाराणी को कांटों पर चलता देख वीर पुरुष की आंख आंसू से भरी होंगी, प्यारी! दुनिया बड़ी कष्ट की जगह है, यहां की ख़ुशी पर फूलना न चाहिये। अब थोड़ी देर में रामचन्द्र की दशा देखना ॥

रानी केकयी का महल

अहा! हम क्या कर रहे हैं? यहां तो राणी केकयी का महल है, यहां तो रानी और मन्थरा दासी बातें कर रही हैं ॥

मन्थरा-(सोती रानी को जगा) ए मूढ़! उठ, कैसे सुख नींद सोती है, तेरे पर तो शोक का पहाड़ टूटा, तू अपनी शोचनीय दशा नहीं जानती, तू तो अपने रूप के घमण्ड में बैठी है, पर अब तेरी सब आबरू चलबसी है ॥

केकयी—(कांपती हुई) है है मन्थरा क्या है ॥

मन्थरा—रानी ! अब तुम्हारे हिस्से में दरिद्र आया, राजा तुम्हारे सौतेले बेटे को राजा बनाते हैं और मुझे भारी भय है और दुःख में जली जाती हूं पर तुम्हारे भले की कहती हूं। अयि रानी ! तुम्हारे थोड़े दुःख मे भी मुझे बहुत दुःख होता है और तुम्हारी उन्नति में अपनी उन्नति मानती हूं तुम आप जानती हो कि आप महाराज केकयराज की बेटी और महाराजा दशरथ जी की पटरानी हैं और राजनीति भी जानती हैं। राजा दशरथ कहने ही के धर्मात्मा हैं और तुम से मीठी २ बातें करते हैं और तुम उन की अपने से प्रीति मान उन के धोखे में पड़ी हो, उन का छल नहीं जानतीं राजा बड़ी दूर हैं, राजा जो तुम से झूंठी मीठी बात बनाते हैं,वेही आज तुम्हें दुःखदायी होंगी, क्योंकि आज राजा रामचन्द्र को राज्य देते हैं और कौशल्या ही को पटरानी मानते हैं, देखो राजा की चाल कि भरत को तो ननसाल भेज दिया और कल गद्दी रामचन्द्र को दिये देते हैं। यह राजा पति नहीं वैरी हैं जैसे कोई सपेरा सांप पाले और सांप उसे काट खाय, वही दशा राजा ने की कि तुम्हारे सौत के बेटे को राज्य दिया। क्या राजा ने प्रातः रामचन्द्र को राजसिंहासन पर बिठाने का प्रबन्ध नहीं किया और तुम को और तुम्हारे बच्चे को मारने का काम नहीं किया?क्या इस में कोई शंका है? अब जो तुम्हारी समझ में आवे सो करो, पर हम को और अपने पुत्र को उन के चुंगल से बचाओ॥

केकयी—(हंस कर) क्या सच मुच रामचन्द्र का राजतिलक होता है और ले, हम तुझे यह गहना इनाम देते हैं (और गहना देती है)॥

दोहा—रामचन्द्र और भरत में, तनक न लखत विशेष।
तासू नृप ही कर मुदित,दीन्हों राज अशेष॥

सोरठा

मोह न प्रिय कछु और कह्यो वचन तुम जौन।
पर पुन अब कुछ और कह अंग जो भावे तौन॥

मन्थरा—(गहना धरती पर फेंक, क्रोध से) ए मूर्ख, यह आनन्दका समय है? अरे ! तू अपने को शोकसागर में डूबता नहीं जानती, अरी ! यह आनन्द का समय नहीं,यह तो बड़े शोक का समय है और तुम जो शोक में भी हंसती हो तो मैं सोचती हूं कि तुम्हारी कौनसी बुद्धि है। ए रानी ! सौत के पुत्र

की वृद्धि तो अपने को मृत्युतुल्य होती है और तू उस पर प्रसन्नता भी प्रकट करती है। भरत के पास तो थोड़ी सी जागीर है। कुछ बहुत धन भी नहीं पर रामचन्द्र को जो खटका है वह भरत ही का तो है। मैं तो यही सोचती हूं कि जब राम भरत से भयभीत हैं तो भरत को भी उन से डरना चाहिये। किसी ने कहा है कि जो आप से डरे उस से आप को भी डरना चाहिये। जो कहो कि लक्ष्मण और शत्रुघ्न से डर क्यों नहीं तो वे दोनों तो आधीन हैं, उन को राज्य में अधिकार ही क्या है। राज्य का झगड़ा तो भरत व राम के बीच है और जन्मावस्था से भी तो राज्य राम या भरत का है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न का क्या है। प्यारी ! हम तो रामचन्द्र नीतिज्ञ से बहुत डरती हैं क्यों कि हम जानती हैं कि राम राज्य पाते ही भरत को देश निकाला अवश्य देंगे। भरत तो भोले भाले हैं,वे छल छिद्र क्या जानें। हम तो कौशल्या को सुभगा जानती हैं कि जिस के पुत्र का राजतिलक पुष्यनक्षत्र में होगा। अब कौश-ल्या के आगे तुम हाथ जोड़े खड़ी रहोगी क्योंकि जिस का पुत्र राजा होगा उसी की प्रसन्नता रहेगी और तुम उस की सब सौत मारी जाओगी और हम को भी कौशल्या जी की दासी बनना पड़ेगा और भरत रामचन्द्र के दास रहेंगे और तुम्हारी पतोहू सीता की दासी बनेगी ॥

केकयी—ए मन्थरा ! रामचन्द्र ने बड़े धर्मात्मागुरुओं से शिक्षा पाई है वे बड़े धर्मात्मा सत्यवादी सत्यकर्त्ता और शुद्ध और पवित्र हैं और राजा के बड़े पुत्र हैं।वेही राज्य के योग्य हैं।परमात्मा उन को प्रसन्न रक्खे। वे अपने बाप की नीति अनुसार अपने भाई बन्धु और मन्त्री आदि की अच्छी पा-लना करेंगे। ए मन्थरा ! ऐसे सुपात्र का राजतिलक सुन तू क्यों जली जाती है? रामचन्द्र ने तेरा क्या बिगाड़ा है ? रहा यह कि भरत को राज्य कब मिलेगा सो राम से पीछे भरत ही तो राजा होंगे,जल्दी क्या है, भला इस भारी यज्ञ में जहां कि चारों ओर आनन्द मङ्गल हो रहे हैं तू क्यों विघ्न फैलाती है? ए मन्थरा ! हम को तो जैसे भरत वैसे राम,वरन भरत से भी राम अधिक प्यारे हैं। वे तो हमारी कौशल्या से अधिक सेवा करते हैं और राम और भरत के राज्य में कोई अन्तर भी नहीं। राम तो अपने भाइयों को अपने तुल्य जानते हैं ॥

मन्थरा—(गर्म सांस ले) केकयी ! तुम तो मूर्ख हो,भला बुरा समझतीही नहीं, अपने आप अपने को शोकसागर में डालती हो। भला रामचन्द्र के पीछे भरत कैसे राजा होंगे ? यह कैसे सम्भव है। भला राज्य बेटे को मिलेगा या

भाई को? अयि केकयी! भरत तो अब राजा के भाई बेटा कहावेंगे। राजा न होंगे। जो कहो कि दोनों साथ २ राज्य करें तो यह भी सम्भव नहीं क्योंकि दो राजा नहीं हो सकते और दो राजों से राज्य में अन्याय ही होता है। इसी लिये राजा लोग सब फ़ौज ख़ज़ाना बड़े बेटे को देते हैं और उसी को राजा बनाते हैं। अब जब राम राजा हो गये तो भरत का राज्य में क्या सम्बन्ध रहा, वे बिचारे तो साधारण जन रहे। हमतो तुम्हें समझाने आये हैं सो तुम मानती ही नहीं। शोक! हा! जो तुम समझतीं तो सौत के पुत्र की राजगद्दी की ख़बर पर हम को गहना देतीं? बड़ी भूल की बात है। हां राम तो जब निकालते तब निकालते पर तुम ने तो अभी ननसाल भेजदिया। हा शोक! मातृत्व कहां गया! तुम से तो कङ्गाली मनुष्य अच्छे होते हैं कि पाले हुवे कंटीले पेड़ को भी नहीं काटते, पर अन्धे के आगे रो कर अपनी आंख खोना है, हमारी सम्मति में तो रामचन्द्र को बनवास मिले और भरत को राज्य, तब ठीक हो, तुम्हारी दृष्टि में भरत बालक हैं, पर रामचन्द्र को तो बलिष्ठ वैरी दीखते हैं। अरे जब राम राजा होंगे तो भरत उन के आधीन कैसे जीवेंगे, भला सोचो तो तुमने अपने अभिमान में कौशल्या को कैसे २ कष्ट दिये हैं, क्या रामचन्द्र के राजा होने पर वे बदला न लेंगी?

केकयी—(क्रुद्ध हो गर्म सांस ले) अच्छा अभी राम को वन और भरतको गद्दी दिलाऊंगी, पर यहतो बता कि मैं क्या करूं, राजतिलक में तो रातहां रही है॥

मन्थरा—ए केकयी! किसी ने कहा है कि जिस के भीतर रात उस की क्या बात। तुझे याद नहीं कि जब राजा इन्द्र जी की सहायता के लिये शम्बरासुर से लड़ने गये थे और घायल हो मूर्छित हुवे थे और रथवान् भी मारा गया था तब तुम्हीं तो राजा को बचा लाई थीं, और तुमने ही तो राजा के प्राण बचाये थे, यह लड़ाई जाड़े में हुई थी। उस समय राजा ने तुम्हें दो वर दिये थे और कहा था कि जो चाहे सो मांगो, पर तुमने कहा था कि अब आवश्यकता नहीं फिर कभी ये वर लूंगी। हम से तो तुमने लौटते समय कहा था, हमने तो तुम्हारे हित के लिये याद रक्खा है। अब एक वर से तो भरत को राजगद्दी दूसरे से रामचन्द्र को १४ वर्ष का बनबास मांगो। १४ वर्ष में सब प्रजा भरत के वश में आजायगी, और फिर कोई खटका न रहेगा। अब तुम मैले कपड़े पहन, कोप भवन में भूमि पर पड़ रहो। जब

राजा रात को महल में आवें तब उन से बात न करना, रोती ही रहना। इस में तो शङ्का ही नहीं कि राजा को तुम से बड़ा प्रेम है, वे तुम्हारी प्रसन्नता के लिये आग में भी कूदने को तयार हो जाते हैं। राजा तुम से कुछ कहेंगे ही नहीं, प्रसन्न ही करेंगे, और वर तो टाल ही नहीं सकते, पर याद रक्खो कि राजा मणि आदि का लोभ देंगे पर लोभ में न आजाना, यह दोनों वर पूरे कराना। देवासुर संग्राम की याद दिलाना, पर अपना अर्थ न खोना। जब धरनी से उठने को ज़िद्द करें तो सौगन्द ले लेना और झट कह देना कि एक वर से भरत को राज, और दूसरे से रामचन्द्र को १४ वर्ष का वनवास दीजिये। ऐसे सब काम ठीक हो जायगा। देखो चौदह वर्ष में राम वन से लौट आ ही नहीं सकते और जो आ भी गये, तो करेंगे क्या? प्रजा तो सब भरत के आधीन हो ही जायगी, फिर रामचन्द्र को राजा कौन करेगा और भरत ही राजा रहेंगे, यही समय है, फिर लड़के कुछ न हो सकेगा, भूलना मत ॥

केकयी–अयि मन्थरा! हम ने अब तक तुझे नहीं जाना कि तू ऐसी हितैषी और बोलने वाली है, पर अब जाना कि तुझ से चतुर कोई टहलनी दुनियां में नहीं मिल सकती। दुनिया में सब कुबड़ी मूर्ख होती हैं, पर तुझ में तो मूर्खता का कोई भी चिह्न नहीं। जैसे कमल का पत्ता पवन लगने से झुक जाता है, पर बुरा मालूम नहीं होता, वही दशा तेरी है, शम्बरासुर की स्त्री के सी तेरी चाल है। जो भरत को राज्य और रामचन्द्र को वनवास मिल गया तो मैं तुझे सोने की माला पहनाऊंगी, जो तेरी कुबड़ी छाती पर बड़ी प्यारी जान पड़ेगी, और तेरे माथे को जड़ाऊ तिलक भी बनवाऊंगी और रेशमी कपड़े पहनाऊंगी ॥

मन्थरा–रानी! पानी से पहिले पाड़ बन्धती है, अब जल्द उठ और राजा को बहकाने का फ़िकर कर। राजतिलक हो जाने पर कोई बात न बन पड़ेगी ॥

केकयी—(सब गहना कपड़ा उतार, मैले कपड़े पहन, कोप भवन में भूमि पर लेट) ले मन्थरा! अब मैं यहां से तब ही उठूंगी, जब रामचन्द्र वन जा लें, और भरत को राज्य मिल ले, नहीं तो यहीं प्राण त्याग दूंगी, जब राजा महल में आवें तो तू कह देना, मैं मुंह से न बोलूंगी ॥

चन्द्रमुखी-अब राजा दशरथ राजतिलक का प्रबन्ध कर, चित्रशाली को चल दिये और रास्ते में सोचा कि सब रानियों से भी तो कहते चलें। पहले केकयी के महल में आये। देखा सब बांदी एकत्रित हैं, रानी नहीं॥

चावली—चची! इस कथा में तो कई शङ्का हैं, जो आज्ञा दो तो पूछूं

चन्द्रमुखी—अच्छा, कथा बन्द करती हूं, जिस को जो शङ्का हो पूछलो॥

चावली-चची! राजा ने अपने पुत्र अकेले क्यों ऋषि के साथ कर दिये? राजा को तो वे बड़े प्यारे थे॥

चन्द्रमुखी—नहीं बेटी! प्यारे तो बहुत थे, क्योंकि बुढ़ापे में जन्मे थे और ऋषियों ने ही तो यज्ञ कर पैदा किये थे, इस कारण ऋषि की आज्ञा भङ्ग नहीं कर सकते थे। दूसरे पुराने समय में बच्चों को गुरुकुल में भेजते थे। यह समझ कर भी राजा ने भेजा था कि विश्वामित्र जी से युद्धविद्या सीख आवेंगे। बेटा! विद्या तो सेवा ही से आती है, निरे रुपया से नहीं आती॥

चावली-तुम्हारे कथन से तो बेटी का बाप बड़ा और बेटे का बाप छोटा जान पड़ता है और आज कल तो बेटे वाले को बड़ा और बेटी वाले को छोटा मानते हैं॥

चन्द्रमुखी-बेटी! आज कल की तो सब बात उलटी हैं, देखो दाता सदा बड़ा और याचक अर्थात् मंगता छोटे होते हैं॥

चावली-चची! राजा ने केकयराज से ऐसा वचन क्योंकर लिया था और वचन पूरा क्यों नहीं किया॥

चन्द्रमुखी-बेटी! अधर्मात्मा राजा कई २ रानी रखते हैं, उन में एक पटरानी कहाती हैं और पटरानी का ही पुत्र गद्दी पाता है और राजा दशरथ का तो स्वभाव पड़ गया था कि जहां किसी स्त्री पर रीझे और रानी बनाई। ऐसे ही केकयराजा की कन्या सुनी कि बड़ी रूपवती है, बस उनसे विवाह के लिये कहला भेजा। केकय राजा ने उत्तर दिया कि जब कौशल्या पटरानी हैं तो उन्हीं का पुत्र गद्दी पावेगा। मैं अपनी कन्या कैसे ब्याहूं। राजा ने प्रण किया कि हम आप के धेवते को गद्दी देंगे। यह बात केकय को मालूम न थी पर इस कुल में तो यह रीति थी कि बड़ा बेटा राज्य पावे और रामचन्द्र सब में विद्वान् और बुद्धिमान् भी थे। इस कारण उन को गद्दी का प्रबन्ध किया था॥

चावली-तो क्या यह रीति और राजों में भी है? जो तुम्हें किसी और की कहानी ज्ञात हो तो सुना दीजिये॥

चन्द्रमुखी-हां याद है, सुनो। हस्तिनापुर में शन्तनु नाम राजा था, उस के गाङ्गेय नाम पुत्र था। राजा बूढ़े हुये और कुंवर को गद्दी देने का मनोरथ किया,इसी सोच विचार में १ दिन वन को गये और वहां १ मल्लाह की कन्या मत्स्योदरी नाम जो बड़ी रूपवती थी, देखी और उस पर रीझगये पर धर्मात्मा थे, मुंहसे न कह सके और महल में आ, मन्त्री से कहा कि हमारी इच्छा मत्स्योदरी से विवाह की है पर गाङ्गेय जवान हो गया है। क्या करें॥

मन्त्री—महाराज ! मुझे जो आज्ञा हो सो करूं ॥

राजा—अच्छा कुंवर की सलाह लो लो ॥

मन्त्री—("जोआज्ञा"कह और गाङ्गेय के पास जा) अन्नदाता ! श्रीमहाराज की इच्छा मत्स्योदरी से विवाह की है पर तुम्हारी सम्मति विना रुकते हैं ॥

कुंवर-मैं सोच विचार कर उत्तर दूंगा (और मल्लाह के पास जा) आप इन्हें हमारी माता बनाने को देदें ॥

मल्लाह-अन्नदाता ! हम तो तुम्हारी प्रजा हैं, भला ऐसी रूपवती, कैसे बांदी बनाने को दे दूं ॥

कुंवर—नहीं जी,हम इन्हें अपने पिता की रानी बनावेंगे,बांदी नहीं।

मल्लाह—महाराज ! रानी तो यह जब हो कि जब इस का पुत्र राज्य पावे, जब आप टीकेत कुंवर मौजूद हैं तो इस के पुत्र को गद्दी कौन देगा॥

कुंवर—अच्छा हम शपथ करते हैं कि हम राज्य न लेंगे, इन्हीं के पुत्र को राजा करेंगे ।।

मल्लाह—अच्छा महाराज ! आप तो राज्य न लेंगे पर आपकी औलाद कब मानेगी ॥

कुंवर—हम अवस्थाभर ब्रह्मचर्य रक्खेंगे, विवाह ही न करेंगे। फिर पुत्र पैदा ही न होगा ॥

चन्द्रमुखी—बेटी ! जब मत्स्योदरी का विवाह राजा से हो गया और गाङ्गेय ने गद्दी छोड़दी और मत्स्योदरी के पुत्र को राज्य मिला ॥

चावली—अब सब से पूछलो, जिस को शङ्का हो निवृत्त करे ॥

सब—हमें कोई शङ्का नहीं,कथा तो अब कल होगी (औरसब जातीहैं)

दूसरा दिन

चन्द्रमुखी—जब राजा ने कैकयी को सेज पर न देखा तो बांदियों से पूछ कोप भवन में पहुंचे, देखा कि कैकयी धरती में पड़ी है ॥

राजा—रानी ! तुम आज क्रुद्ध क्यों हो ? किसी ने तुम्हारा उपहास किया कि जिस से हमें दुःखित करने को भूमि पर सोती हो, क्या कोई रोग होगया ? वैद्य को बुलावें ? किसीको दण्ड देना हो तो कहो ? यह रो २ कर मुख क्यों सुखाती हो ॥

केकयी—(कठिनाई से) राजन् ! हमारा किसी ने अपमान नहीं किया और न हम को कोई रोग है, हमारा तो और ही मनोरथ है जो आप करना चाहते हैं तो वचन दीजिये, तब बताऊं ॥

राजा—(मुसकराते, रानी को झाड़ते पोंछते) तुम को ज्ञात है कि सिवाय परमदुलारे रामचन्द्र के और कोई हम को तुम से प्यारा नहीं, हम उन्हींकी शपथ करते हैं कि तुम्हारी इच्छा पूरी करेंगे। रानी ! जिन रामचन्द्र के बिना हम एक मुहूर्त्त नहीं जी सकते, अब उन्हीं की शपथ कर चुके, अब तुम अपनी इच्छा प्रकट करो, हम अवश्य पूरी करेंगे। सिवाय राम के जो तुम कहो कि सब राज्य और तीनों बेटे देदो तो हम देने को तयार हैं ॥

केकयी—राजन् ! आप सत्यवादी हैं, कभी झूठ नहीं बोलते और आप हम को वर भी दे चुके हैं। पिछली बात विचारिये, आपने हम को दो वर दिये थे, उन्हें याद कीजिये और आज पूरे करदीजिये। हम कोई नया वर नहीं मांगते, जो आप हमारे वर पूरे न करेंगे तो यहीं प्राणान्त होगा। सुनिये, पहले वर से भरत को राज्य और दूसरे से रामचन्द्र को १४ वर्ष का वनवास और वह १४ वर्ष भर राम मृगचर्म पहन, दण्डकारण्य में तपस्या करैं और तुरन्त वन को चले जायं ॥

चन्द्रमुखी—राजा यह सुनते ही थरथराने लगे और शोचा कि हमने स्वप्न तो नहीं देखा, या नशा तो नहीं खाया और मूर्छित होगये और जब मूर्छा जगी तो लम्बे सांस लेने लगे और रातभर शोकातुर रहे ॥

राजा—ए मूर्खे ! ए कुलनाशिनी ! रामचन्द्र ने तेरा क्या बिगाड़ा है और हमने कौन पाप किया कि जो तू ऐसा चाहती है। अरे ! रामचन्द्र तो तुझे अपनी माता से अधिक मानते हैं, तू उन के कष्ट देने को कैसे उद्यत हुई ? हम तो तुझे राजकन्या जान लाये थे, तूतो नागनी निकली। जो अपने पालक को काटती है। भला रामभद्र उन का राजा होना चाहता है तो क्या दोष लगाकर अयोध्या से निकालें। अरे! जो तू कहे तो सुमित्रादि रानियों, अपने प्राण और राज्य को छोड़ दें, पर पितृभक्त राम को तो न छोड़ेंगे। अरे ! राम को

देख कर तो हम बड़े आनन्दित होते हैं, उन के वियोग में हम अवश्यमेव प्राण छोड़ देंगे। चाहे सूर्य विना लोक बने रहें और विना पानी के अन्न भी पैदा हो जाय पर हम विना राम नहीं जी सकते, इस कारण ए पापिनी! यह हठ छोड़ राम को वन न भेज, ले हम तेरे पग अपने शीश से छूते हैं। अरे! हम पर कृपा कर, तू भरत के प्रेम से उसे राजा बनादे पर राम को वन न भेज। हम को भरत के राजा होने से कुछ दुःख न होगा पर राम के न होने से मर ही जायंगे। अरे! रामचन्द्र को अपनी सेवा में रहने दे। अरे! तू तो कहा करती थी कि मुझे राम भरत से प्यारा है। अरे! अब तुझे उस का १४ वर्ष का बनवास कैसे प्यारा लगता है। कुछ भेद तो बतला कि तुझे यह हो क्या गया कि कुलनाशने का काम करती है। देख, रामचन्द्र तेरी इज़्ज़त भरत से अधिक करते हैं। तू उन के न होने से कैसे प्रसन्न होगी? देख भरत राम के तुल्य तेरी सेवा न करेंगे। हे केकयि! मैं राम के वन जाने से जल्द मर जाऊंगा। मैं बड़ी नम्रता से कहता हूं। उन्हें वन न भेज और मुझे न मार॥

केकयी–(कांपती और उदास) राजन्! वरदान दे अब क्यों पछताते हो अरे! दुनियां में धर्मात्मा बनोगे? भला जब सब राजा एकत्रित होंगे और वरदान का तुम से उत्तर मांगेंगे तौ क्या उत्तर दोगे? यही कहोगे कि जिस केकयी ने हम को देवासुर संग्राम में बचाया था, उस का वरदान हम ने झूठा कर दिया। वाह २ वाह! तुम तौ पापी कहे ही जाओगे पर अपने पुरुषों के नाम पर भी धब्बा लगाओगे। तुम क्यों हमारा वर नहीं देते, आप के पुरुषों ने तौ कबूतर बचा अपना मांस बाज़ को दिया और अपनी आंखें अन्धे को देदीं। तनक अपने कुल की ओर तो विचारो और वचन पूरे करो। ए पापी राजा! जो तुम रामचन्द्र ही को राजा बना कौशल्या ही की कीर्त्ति जगत् में फैलाया चाहो तो यह न होगा। हमने जो विचारा है कि भरत को राज्य और रामचन्द्र को वनवास मिले, यह होगा और जो तुम धींगा धींगी रामचन्द्र को राज्य दे ही दोगे तौ हम विष खालेंगी और जो हमने रामचन्द्र के राज्य में तुम्हें एक दिन भी कौशल्या का हाथ पकड़े देखा तौ मरने में क्या कमी रही, फिर मृत्यु से क्यों डरें। राजन्! हम भरत की शपथ कर कहती हैं कि विना रामचन्द्र के वनवास के हम त्रिलोकी के राज्य से भी प्रसन्न न होंगी॥

राजा–(भरत की सौगन्द सुन, मूर्छित हो गये और मूर्छा जागने पर) अरे दुष्टा! तू जो भरत को राज्य चाहती है, यह असम्भव है क्योंकि भरत तौ धर्मात्मा हैं वे तौ राज्य करेंगे ही नहीं। अरे वे बड़े भाई के होते राज्य कैसे लेंगे। भला जब हम रामचन्द्र से कहेंगे कि तुम वन जाओ तौ वे सुस्त हो जावेंगे, फिर हम उन का मुख कैसे देख सकेंगे। भला ये राजा लोग जो यहां आये हैं, वे हमें क्या न कहेंगे कि दशरथ ने बुढ़ापे में भी स्त्रीवशीभूत हो सुपात्र पुत्र को वनवास दिया, भला जब कोई हम से पूंछेगा कि राम कहां हैं तौ हम क्या उत्तर देंगे? जो हम रामचन्द्र को वन भेजेंगे तौ कौशल्या हम से क्या कहेगी। अरे! कौशल्या तो समय २ पर सेवा को टहलनी की नाई विहार में सहेली समान धर्म में स्त्री तुल्य और मीठे भोजन कराने में मातृसमान हमारे पास पहुंचती थीं और सदैव प्यारी बातें करती रहीं और सदा हमारा कल्याण हीं चाहती रहीं और उन का पुत्र भी हम को सब से प्यारा रहा, जो कभी कठोर बोलना ही नहीं जानता, पर हमने तेरे सामने कभी उस की इज्जत नहीं की। अरे! हमारा कर्त्तव्य आज हम को बिना आग जलाता है और देख रामचन्द्र के वन भेजने से सुमित्रा भी तौ हमारा विश्वास न करेंगी और जान लेंगी कि जब राम से पूत को वनवास दिया तौ हमारे पुत्रों का क्या ठिकाना? हा! श्री जनकनन्दिनी जब रामचन्द्र का वनवास और हमारा मरना सुनेंगी तौ उन की क्या दशा होगी? वह तौ रो २ कर ही जीवन पूरा करेंगी और भला हम राम का वनगमन और मैथिली का रुदन सुन जीते रहेंगे? हा! हम अनारी कहावेंगे। अयि केकयी! जो भरत रामचन्द्र के वनवास पर राज्य स्वीकार करे तो वह हमारी प्रेतक्रिया न करे। अरे! जब राम वन जायेंगे तौ हम मरजायंगे, तब तू रांड हो, भरत के साथ राज्य करना, तुझे धिक्कार है, चाहे कुछ ही क्यों न हो हम तौ तेरा मन्तव्य पूरा न करेंगे और ले हम तेरे चरणों पर गिरते हैं (और पैरों पर गिर पड़े) ॥

केकयी–राजन्! तुम तौ कहते थे कि हम सत्यवादी हैं, अपने वचन से न फिरेंगे, अब वचन क्यों पूरा नहीं करते ॥

चन्द्रमुखी–यहां तक कि राजा ने रात भर समझाया, पर केकयी न मानी और उषा काल हुआ ॥

सुमन्त—(महल में पहुंच, राजा की दशा देख, स्तुति करने और कहने लगे कि) हे महाराज! जैसे सूर्य उदय हो समुद्र में स्नान करने वालों को

आनन्दित करता है वैसे ही आप हम को आनन्दित कीजिये और जैसे मातुल इन्द्र को जगाते हैं वैसे हम भी आप को जगाते हैं। श्री महाराज! उठिये और सूर्यसमान विराजिये। ए महाराज! आज्ञानुसार सब वस्तु एकत्र हैं,आप समस्त पुरवासी महाजनों के साथ रामचन्द्र जी का राजतिलक कराइये। भगवान् वसिष्ठ सब ब्राह्मणों सहित तैयार खड़े हैं,जैसे बिना चरवाहे के ढोर और बे सेनापति की सेना और बे चन्द्रमा की रात और बे साण्ड की गाय होती हैं, वही दशा बिना राजा के राज्य की होती है॥

राजा—सुमन्त! क्यों ऐसे वचनों से हमारे घाव पर नोन बुरकते हो? (और मूर्छित होगए)

कैकयी—ए सुमन्त! आज राजा रात भर रामचन्द्र के राजतिलक के आनन्द में जागते रहे हैं,अब ऊंघ रहे हैं तुम रामचन्द्र को यहां जल्द ले आओ॥

सुमन्त—रानी! हम राजा की आज्ञा बिना कैसे जायं?

राजा—सुमन्त! जाओ, राम को लाओ, हम देखा चाहते हैं॥

सुमन्त—"जो आज्ञा"कह चल दिये और विचारने लगे कि क्या कारण जो केकयी ने रामचन्द्र को बुलाया, शायद कुछ और अधिक प्रबन्ध करें(और रामचन्द्र जी के पास पहुंच) महाराज! आप को केकयी सहित राजा जी देखना चाहते हैं॥

रामचन्द्र—(बहुत अच्छा, कह और रथ पर चढ़, महल में पहुंच,पहले पिता के चरणों में प्रणाम कर पीछे माता केकयी को बन्दना की)

दशरथ—(गद्गद वाणी से) राम! (कह मूर्छित होगये)

रामचन्द्र—(यह दशा देख विस्मित हो, वारंवार राजा को देखते हैं कि राजा गर्म सांस ले रहे हैं, चेहरा उतरा, सारा शरीर कांप रहा है। अब बड़े सोच में हैं कि क्या कारण है) (केकयी से) माता! हमने तो अपनी जान में कोई अपराध नहीं किया और जो कुछ भूल चूक से हो गया हो कि जिस से पिता जी कुपित होगये हों उसे क्षमा कर दीजिये और हमें बतला दीजिये। आज तक तो कभी पिता जी कुपित हुवे ही नहीं पर आज तो मुख से भी नहीं बोलते। यह तो ठीक है कि मनुष्य सदा प्रसन्न नहीं रहता पर पिता जी का दुःख तो हम नहीं देख सकते। आज क्या कारण है क्या कोई दोष परम प्यारे भरत या शत्रुघ्न में या हमारी माताओं में तो नहीं सुना, आप को तो ज्ञात होगा,क्या कारण है,शीघ्र बतलाइये? राजा के

क्रोध से तो हम मुहूर्त भर भी जीना नहीं चाहते,क्योंकि जिन माता पिता से जन्म हो उन की आज्ञा पालन ही मनुष्य का धर्म है। भला आपने तो कोई बात अनुचित नहीं कही ? कृपा कर कारण बता दीजिये ॥

केकयी—(ढिठाई से)ए राम ! राजा कुपित नहीं और न कोई कष्ट है,इन के मन में कुछ बात आई है पर तुम्हारे भय से नहीं कहते क्योंकि तुम इन को बहुत प्यारे हो। हमने राजा से जो सुना है वह कहते हैं। इन तुम्हारे पिता जी ने हम को पहले समय में वरदान दिया था, पर उस के पूरा करने में प्राकृत मनुष्य की नाईं शोच विचार करते हैं। देखो राजा ने अपनी खुशी के साथ हम से प्रण किया था पर तुम्हारे कारण पूरा नहीं करते। हे रामचन्द्र ! मनुष्य को अपना वचन अवश्य पूरा करना चाहिये, जगत् में एक सत्य ही बड़ी उत्तम वस्तु है, जो तुम स्वीकार कर लो कि उचित या अनुचित कैसी ही हो, हम राजाज्ञा पालन करेंगे, तौ हम बता दें, नहीं तौ पूंछने से क्या लाभ ॥

रामचन्द्र—(लज्जित हो) अयि देवि ! ऐसे धिक्कार के वचन तुम हम से कहने योग्य नहीं हो। हम राजाज्ञा से जलती अग्नि में भी कूदने को तयार हैं। हम तौ हलाहल पी सकते और समुद्र में डूब सकते हैं। चाहे जो कुछ हो, राजा बेधड़क हो हम से कहें, हम अवश्य करेंगे, क्योंकि हम अपने वचन अवश्य पूरे करते हैं ॥

दोहा

रघुकुल मांह रीति चलि आई।
प्राण जायं पर प्रण ना जाई ॥

केकयी–राम ! बड़ी पुरानी बात है कि एक समय देवासुरसंग्राम हुआ था और उस में तुम्हारे पिता जी घायल हुये, तब हमने रक्षा की। जिस पर तुम्हारे पिताजी ने हम को दो वर दिये, उन में से एक से तो हमने भरत के लिये राजतिलक मांगा है और दूसरे से तुम्हारे लिये १४ वर्ष तक दण्डकारण्य में वसना और अभी चला जाना–सो ए पुत्र ! जो तुम अपने पिता को सत्यवादी मानते हो तौ अपने पिता के वचन पूरे करने को १४ वर्ष तक वन में वसो और राजतिलक की सामग्री से भरत का राजतिलक होगा और तुम राज्य की आशा छोड़ १४ वर्ष तक जटा रखाय, चीर वल्कल पहन,

तपस्वियों का वेष बनाय, वनवास करो और भरत अयोध्या का राज्य करें। ऐसे कठोर वाक्य तुम्हारे पिताजी अपने मुख से कहा नहीं चाहते और तुम को देख भी नहीं सके। ए रघुनन्दन! यह राजा के वचन पूरे कर उन्हें वचन के ऋण से मोक्ष दिलाओ॥

रामचन्द्र—(बड़ी प्रसन्नता से) बहुत अच्छा, भरत राजा हों। हम जटा रखाय चीरवल्कल पहन, पिता के वचन पूरे करने को वन जाते हैं पर यह बात पूंछा चाहते हैं कि जब पिता जी हमारे स्वभाव को जानते हैं कि हम आज्ञाकारी हैं तो साधारणता से आज्ञा क्यों नहीं दी। ए देवी! तुम भय न करो, सत्य जानो कि हम तुम से कहते हैं, हम अवश्य चीर पहन वन को जायंगे। भला परम देव पिता जी की प्रसन्नता न करेंगे? हां हम को एक शोक है कि पिता जी ने हम से क्यों न कहा कि हम भरत को राजा करेंगे। हम तो भरत के राजा होने से बड़े प्रसन्न थे और जो भरत ही कहते तो हम राज्य पाट छोड़ देते और अब भी कहें तो उज़र नहीं, पर तुमने इस छोटीसी बात के लिये क्यों इतना बखेड़ा किया। देवी! माता पिता की आज्ञा पालन से अधिक जगत् में और कोई बड़ा काम है? अब आप पिता जी को समझादें कि सोच न करें, घुड़सवार दूत भरत जी के लेने को नन्साल भेजें और हम अभी वन जाते हैं, कुछ देर नहीं॥

केकयी-(रामचन्द्र का वनगमन का मनोरथ जान प्रसन्न चित्त) अच्छा अभी दूत जाता है, भरत को तुरन्त लावेगा और तुम जो वनगमन का प्रण कर चुके हो सो जल्दी करो और यहां से जल्द जाओ। राजा इसी लिये लज्जित हैं कि तुम जाने में देर करते हो और कोई कारण नहीं, जब तक तुम नगर से निकल न जाओगे तब तक राजा न स्नान करेंगे न भोजन॥

दशरथ–धिक्कार है मुझे और शोक की बात है(और मूर्छित हो लम्बे सांस लेने लगे और रामचन्द्रजी ने संभाला कि केकयीने और कठोर वचन कह दिये)॥

रामचन्द्र—देवी! हम लालची नहीं हैं, हम यहां रहना नहीं चाहते, तुम अब हम को तपस्वी समझो कि जो सदैव धर्म में उद्यत रहते हैं (और राजा से) ए धर्मात्मा! कुछ और आज्ञा दीजिये, यह तो कोई कठिन कार्य नहीं, जो किसी कठिन कार्य में प्राण भी जायं तो आप की प्रसन्नता के लिये हम वह भी करने को तत्पर हैं। जगत् में पिता की आज्ञापालन से अधिक और कोई धर्म नहीं। यद्यपि आपने अपने मुख से नहीं कहा पर हम तो माता

केकयी के ही वचनों से १४ वर्ष तक वन में वसेंगे, क्योंकि जैसी माता की आज्ञा वैसी पिता की आज्ञा। (फिर केकयी से) माता! शोक है कि तुम हमारे गुण नहीं जानतीं, हम तो तुम को माता पिता दोनों से अधिक जानते हैं, तुमने पिता जी को इतना कष्ट क्यों दिया, आप ही क्यों न कह दिया, क्या हम तुम्हारा कहा न करते? अब हम माता कौशल्या से आज्ञा लेलें और सीताजी को समझालें, बस इतनी देर है, नहीं तो तयार बैठे हैं पर इतना प्रबन्ध करना कि भरत राज्य करलें पिता जी की सेवा पूरी २ करें, क्योंकि पिता की सेवा परम धर्म है॥

(राजा—ये वचन सुन धाड़े मार २ रोने लगे)॥

रामचन्द्र—पिता माता को प्रणाम कर दोनों की परिक्रमा दे बाहर चले आये और अपने मित्रों के साथ महल को चल दिये। पीछे २ लक्ष्मण भी उदास चले जाते हैं और रास्ते में अभिषेक की सामग्री की परिक्रमा दी और बड़े प्रसन्नचित्त सब से आज्ञा मांगते जाते हैं, यह कोई नहीं जानता कि रामचन्द्र वन जाने की आज्ञा चाहते हैं। सब राजतिलक की आज्ञा देते हैं। अब कौशल्याजी के पास पहुंचे, देखा कि माता होम कर रही हैं, जाकर खड़े हुये॥

कौशल्या—(रामचन्द्र को छाती से लिपटाय, सिर सूंघ) ए पुत्र! चिरजीयो। आज अपने पिता जी को देखो वे आज तुम्हें राज्य देंगे। लो कुछ भोजन करलो॥

रामचन्द्र—(बड़ी नम्रता से हाथ जोड़) माता! आप को ज्ञात नहीं, एक बड़ी भयानक बात हुई कि जिस से आप, लक्ष्मण और सीता को बड़ा शोक होगा और वह यह है कि हम दण्डकारण्य को जायंगे, अब हमारा इस आसन पर बैठने का समय नहीं रहा, हम तो अब कुशासन पर बैठेंगे, महाराज राज्य तो भरत को देते हैं और हम को तपस्वियों का वेष बनाय वनवास की आज्ञा है। सो ए माता! अब हम यहां भोजन न करेंगे, अब तो कन्द, मूल, फल खाय खाय १४ वर्ष वन में वितावेंगे॥

कौशल्या—(वन में वृक्ष गिरने की नांई मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ीं, जब मूर्छा जागी तब)ए राम! तुम हमको ऐसा कष्ट देनेको जन्मे। अरे! जो तुम उत्पन्न ही न होते और हम निःपुत्र रहतीं तो ही भला था। अरे! बांझ स्त्री को पुत्र न होने का ही शोक तो होता है और तो शोक नहीं होता। ए राम! हमने तो केकयी की प्रसन्नता के लिये क्योंकि वे राजा को बड़ी प्यारी थीं, सुहागनों के से सुख भी नहीं पाये और हम तो यह जान कि पुत्र का सुख

भोगेंगी, जीती रहीं, नहीं तो तुम्हारे जन्म से पहले ही मर चुकीं होतीं और हमने तो पटरानी होने पर भी छोटी सौकोंके कठोर २ वचन सुने कि जिस से दुःख ही पाती रहीं। अरे! हमने तौ सौकिया डाह भी सहा, ऐसा कौन सहेगा। अरे! हम तो तुम्हारे होने से भी दुःख ही पाती रहीं! तुम ने तो अपनी आंख से देखा है। प्यारे! हम तुम्हारे वन जाने पर कैसे जीवेंगी। भला हमारे मरने में कोई सन्देह है? तुमने नहीं देखा कि जब कोई हम से मिलने आता है तौ केकयी उस से कुवाक्य कहती है कि वह फिर हम से मिलने नहीं आता। तुम्हारे यज्ञोपवीत को १७ और जन्मको २५ वर्ष वीते, तब से हम आशा कर रहीं हैं कि राम राजा होंगे और हम उन का सुख भोगेंगी, सो तुम तो वन जाते हो, अब हम को फिर केकयीके कठोर वचन सुनने पड़ेंगे। अब तक तौ तुम्हें देख २ प्रसन्न होलिया करती थीं और हमारे शरीर में बल भी था कि सौकों के कठोर वाक्य सह लेती थीं, पर अब तुम्हारे वन जानेसे निर्बल हो, कठोर वचन सुन मरही जायंगी। प्यारे! तुम्हारे दर्शन विना मैं कैसे जीऊंगी। हा! हमने तुम्हारे लिये क्यों उपवास किये। अरे! तुम तो वन जाते हो, हमने तुम्हारे पालन का क्या सुख पाया? तुम्हारे विछड़ने से हमारी छाती क्यों नहीं फटजाती। हम अपनी छाती पत्थर की मानती हैं। अरे! क्या हम को यमपुर में भी ठौर नहीं है। अरे! जैसे सिंह हिरनी को मारडालता है, वैसे ही यमराज हम को मारडाले तौ अच्छा हो, हम को यह कष्ट तो सहन न करना पड़े। हा! धरती भी नहीं फटती, जो हम उस में समाजायं। जब ऐसे कष्टमें भी शरीर पात नहीं होता तो हम कह सकते हैं कि मृत्यु भी समय से पहले नहीं आती। जो कष्टमें मृत्यु आती तौ इससे अधिक और क्या कष्ट होगा और बड़ा शोक तो यह है कि हमारे सब दान पुण्य अकारत गये, जो हमने तुम्हारे लिये किये थे। जैसे ऊषरमें बोनेसे बीज नहीं बनता, वैसे ही तुम्हारे उत्पन्न करने से हमारी दशा हुई। ए रघुनन्दन! जब हमें मौत भी नहीं आती तो यहां रह क्या करूंगी, मैं तो तुम्हारे पीछे २ वन चलूंगी। अरे! जैसे गाय बच्चेके पीछे २ जङ्गल को चली जाती है, वैसे ही मैं तुम्हारे पीछे चलूंगी॥

लक्ष्मण—ए माता! केकयी के कहने से हमें श्रीरामचन्द्र का वनजाना उचित ज्ञात नहीं होता। जो कहो कि वे तो राजा के वचन हैं, तो राजा का भी क्या ठिकाना, बुढ़ापेमें उनकी बुद्धि तो ठीक रही नहीं, वे तो बुढ़ापे

में ऐसे कामवश हुवे हैं कि कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। जब वे स्त्रीके आधीन हैं तो जो कुछ न करें सो थोड़ा। वनवास तो क्या वे जो चाहें सो कह बैठें। जो कहो कि रामचन्द्र में कोई दोष है कि जिससे निकालते हैं, सो ज्ञात नहीं होता। प्रत्यक्षमें तो क्या अप्रत्यक्ष में भी कोई वैरीसे वैरी भी रामचन्द्र को दोषी नहीं बताता। माता! देवसमान सरलस्वभाव विद्वान् वैरियोंपर क्षमा शील पुत्रको कोई घरसे निकालता है? इससे भलीभांति प्रकट है कि राजाकी मति चलायमान होगई है, नहीं तो ऐसा न करते। स्त्रीवशी वृद्ध का बाल्य स्वभाव माना जाता है, तो उस के वचनों का क्या ठिकाना। (रामचन्द्र से) भाई! जब तक कोई इस बात को न जाने, तब तक हमारे साथ राज्य को अपने आधीन करलीजिये, यह विचार न कीजिये कि अब राज्य कैसे मिलेगा। हम तो धनुष् लिये तुम्हारी रक्षा को मौजूद हैं, तो तुम को कौन रोक सकता है। निःसन्देह यह बात मान लीजिये कि एक दो मनुष्यों की तो गणना ही क्या है, जो सारी अयोध्या भी विरोध करे तो मैं सब को मारडालूंगा और जो भरत के मामा आदि वैर करें तो उन के मारने को भी तयार हूं। अब आप शान्ति छोड़दें, क्योंकि राजकाज में शान्ति दुःखदायी होती है और हां, जो पिता जी भी केकयी की सम्मति से बखेड़ा करें तो वे भी या तो क़ैद करदिये जायं या जेलखाने भेज दिये जायं। ऐसे समय पर धर्मशास्त्र की भी यही आज्ञा है कि राजाको चाहिये कि जब कोई नियमानुसार कार्य न करे या कुकर्म करे या कामवशी हो अनुचित कर्म करने लगे, तो चाहे गुरु ही क्यों न हो, उसे बिना दण्ड दिये न छोड़े। राजा ने किस बल वीर्य पर राज्य केकयी को देना चाहा है? पहले तो तुम पटरानी के पुत्र, दूसरे सब भाइयों में बडे, राज्य तो आप ही का है, फिर दूसरे की वस्तु देनेवाले पिता जी कौन हैं? अब हमारे सामने पिता जी का बल पौरुष नहीं कि भरत को राज्य दे दें॥ (फ़िर माता से) देवी! हम सत्य कहते हैं कि हम भाई रामचन्द्र के दास हैं, हम अपने धनुष् और आज तक के दान और इष्ट और आप की शपथ करते हैं कि जलती अग्नि या वन में रामचन्द्र पैठेंगे तो हम भी साथ ही बैठ जायंगे। जैसे सूर्य के उदय से अन्धेरा दूर हो जाता है वैसे ही हम तुम्हारा शोक दूर करेंगे। ए भाई! हमारा कर्त्तव्य देखो, यह केकयी के वशी कुछ का कुछ करने वाले पिता जी को अब अवश्य मार डालेंगे॥

कौशल्या जी-(रोतीर) ए पुत्र ! तुम से जो लक्ष्मण ने कहा, वह तुम ने सुना ? अब तुम समझ लो और उचित कार्य करो। जो कहो कि पिता के वचन कैसे न मानें, सो ये तो पिता के वचन नहीं, ये तो हमारी सौत के वचन हैं और सो भी नियमविरुद्ध, क्योंकि छोटे को राज्य अधर्म है। फिर हम शोक में डूबी और दुःख में जलती को छोड़, अधर्म वाक्य पूरे करने जाते हो। ए धर्मात्मा ! जो तुम सौतेली माता के वचन पूरा किया चाहते हो तो उस के वचनों से राज्य छोड़ दो और हमारे वचनों से वन न जाओ, यहीं रह हमारी सेवा करो। इस में तो अधर्म न होगा क्योंकि शास्त्र की आज्ञा है कि जो पुत्र घर में बस नियम से माता की सेवा करता है, वह बड़ी तपस्या का फल पाता है। जैसी माता वैसे ही पिता। बस हम तुम्हें बनवास की आज्ञा नहीं देते और जो कहो कि अब तो १४ वर्ष पूरे ही करदें तो हम तुम्हारे वियोग में यहां जीना नहीं चाहतीं और हम को यहां सुख भी न मिलेगा, इस लिये हम को भी संग लेते चलो। तुम्हारे संग में कन्द मूल तो क्या हमें घास खाकर भी रहना स्वीकार है और जो तुम हम को यहीं छोड़ वन चले जाओगे और हमारे प्राण भी न निकले तो हम उपवासकर कर मर जायंगी, भोजन नहीं करेंगी और हमारे ऐसे मरने से तुम्हें नरक मिलेगा। जैसे कि समुद्र ने माता की आज्ञा न मान पिप्पलाद जी के शाप से ब्रह्महत्या का पाप पाया॥

रामचन्द्र-माता ! पिता की आज्ञा भङ्ग करने का बल हमारे में नहीं है, इसी लिये आप के चरणों में शिर रख आप की प्रसन्नता से वनगमन चाहते हैं। देखो कण्व जी ब्रह्मचारी पित्राज्ञापालक थे। उन्हों ने पिता की आज्ञा से गोवध कर डाला पर हत्या न हुई और देखो हमारे ही कुल में राजा सगर के पुत्र घोड़ा ढूंडते, भूमि खोदते फिरे और आत्मघात किया। इन बातों से पिता की आज्ञापालन धर्म जाना जाता है, चाहे प्राण जायं। देखो परशुराम ने पिता की आज्ञा से ही तो अपनी माता रेणुका का शिर काटा, हम तो तुम्हें मारते नहीं, केवल कुछ शोक होगा और कहां तक गिनाऊं बहुतों ने पिता की आज्ञा पूरी की है, वे कुछ ऐसे वैसे नहीं थे, देवतातुल्य थे। अयि माता ! प्राचीनों का मत है कि चाहे माता की आज्ञा भङ्ग हो पर पिता की आज्ञा भङ्ग न हो, सो हम कुछ नई बात नहीं करते, केवल बड़ों की चालपर चलते हैं। हमने तो पिता की आज्ञा के पालन से धर्म जाता नहीं सुना। और ऐ

लक्ष्मण ! यह हम भली भांति जानते हैं कि तुम को हम से अधिक प्रीति है और तुम में बल पौरुष भी अधिक है और युद्ध विद्या भी जानते हो और जैसे तुम कहते हो, कर भी सकते हो और माता तो पूरा धर्मशास्त्र नहीं जानतीं, पर तुम सब धर्माधर्म जान, ऐसा कहते हो। भाई ! सब चीजोंमें केवल धर्म ही उत्तम वस्तु है और धर्म में ही सत्य है, और फिर पिता की आज्ञा पालना देखो जो मनुष्य पिता माता या ब्राह्मण से कोई वचन पूरा करने को कहे तो फिर उचित नहीं कि पूरा न करे। जो तुम कहो कि ये तो केकयी के वचन हैं, सो केकयी ने भी पिता की आज्ञा से कहे हैं, इस कारण पिता के ही तो वचन हैं, तो भला हम इस से कैसे फिर सकते हैं, इस कारण तुम्हारा पितृवध का कथन उचित नहीं, इस विचार को छोड़िये। यह बड़ी मूर्खता और दुष्टता का कर्म है। इसे कोई मूर्ख क्षत्रिय कर डालता है, हमारे तुम्हारे करने योग्य नहीं,क्योंकि हम तुम ने तो धर्म की रक्षा को जन्म लिया है,धर्म ही को स्वीकार करो। क्रोध छोड़ो और हमारी सम्मत्यनुसार पित्राऽऽज्ञापालन स्वीकार करो (फिर दो कर जोड़, शिर झुकाय, माता के चरणों पर रख) देवी ! हमें वनगमन की आज्ञा दीजिये, रोक टोक न कीजिये, तुम्हें हमारी शपथ है कि हमारे गमन के लिये मङ्गलाचार और स्वस्तिवाचनादि कर्म कीजिये। १४ वर्ष होने पर हम फिर अयोध्या आवेंगे। माता ! इस शोक को हृदय में रक्खो, प्रकट न करो, हम पित्राऽऽज्ञापालन कर अवश्य अयोध्या आवेंगे। तुम को, हम को, जानकी, लक्ष्मण, सुमित्रा जी को उचित है कि महाराज के वचन मानें, यही सनातन धर्म है। अब राजतिलक का विचार छोड़, हमारी वनगमन की सम्मत्यनुसार अपनी मति कीजिये॥

कौशल्या—पुत्र ! धर्म से या प्रीति से तुम्हें जैसे पिता हैं वैसी ही मैं। मुझ में और पिता में कुछ भेद नहीं। हम तुम से,कुछ पिता से कम प्रेम नहीं रखतीं, भला फिर हम को शोकातुर छोड़, हमारी आज्ञा विना कैसे वन जाना चाहते हो और तुम जो हमें अपने पिता की आज्ञापालन बताते हो, सो ए प्यारे ! विना तुम्हारे जीवन से क्या ? लौकिक बान्धवों से क्या पति से क्या और क्या कहैं मोक्ष से भी क्या? हम को तो तुम्हारे मुहूर्त्त भर पास रहने से सब सुख प्राप्त हैं॥ (और मूर्छित हो गईं)

रामचन्द्र—(माता को मूर्छित और लक्ष्मण को उदास देख) लक्ष्मण! हम तुम्हारा प्रेम और विद्वत्ता जानते हैं, तुम हमारा मनोरथ नहीं जानते

और माता की मति में आ, हमें कष्ट देते हो, तुम को यह उचित नहीं। ए प्यारे! अर्थ और काम लोक में धर्म के ही तो फल हैं, श्रीचलो, हमने भी तो धर्म ही लिया है और धर्म से ही तो अर्थ और काम प्राप्त होंगे, जैसे कि पतिव्रता स्त्री के पुत्र उत्पन्न होने से धर्म, अर्थ और काम सिद्ध होते हैं। जिस में ये धर्म अर्थ और काम न हों वह कार्य न करना चाहिये। सब प्रजा अर्थी के विरुद्ध हो जाती है और निष्फल कर्म बुरा माना गया है, इस कारण धर्म ही करना उचित है। इसी से अर्थ और काम भी सिद्ध हो जायंगे और हानि भी न होगी। देखो शास्त्राज्ञा है कि जगत् में गुरु, राजा, पिता और बूढ़े की आज्ञा का पालन करना चाहिये। सो पिता जी में तो चारों रूप घटते हैं, भला फिर क्यों इन का आज्ञापालन न किया जाय? वे चाहे क्रोध से आज्ञा दें या धोखा खा, जो जो हम मूर्ख होते और अपने धर्म का विचार न करते तो क्रुद्ध हो, आज्ञाभङ्ग कर देते। हम तो अपने में पित्राज्ञाभङ्ग करने की शक्ति नहीं देखते। देखो वे हमारे और तुम्हारे दोनों के गुरु हैं और माताजी के पति, इस लिये इन को तो उन के पास ही रहना उचित है क्योंकि धर्मराज के जीते और राजकाज करते ये विधवा स्त्री की नाईं हमारे साथ बन में कैसे चलेंगी (और माता से कर जोड़) ए माता! अब तो हमें वन जाने की आज्ञा दे ही दीजिये और यात्रा के लिये मङ्गल कार्य कीजिये कि जिस से १४ वर्ष वनवास कर सुखपूर्वक लौट आवें, जैसे कि सत्य ही के सहारे राजा ययाति ने अपना गया राज्य पाया। इस राज्य के लोभ में ऐसा बड़ा आज्ञापालन का फल नहीं छोड़ेंगे। संसार में जीवन थोड़ा है। इस से धर्म से ही राज्य क्यों न लें और ए लक्ष्मण प्यारे! कैकयी पर क्रोध न करो, हमारे राज्य न मिलने का शोक तजो, धैर्य धारण करो, वनवास मिलने का शोक न करो, प्रसन्नतापूर्वक ही यह जान कि अवश्य वनवास करना होगा, वनवास का प्रबन्ध करो और कैकयी के हित को स्वीकार करो क्योंकि हम उन का कष्ट मुहूर्त भर का भी देखा नहीं चाहते और कैकयी के ही नहीं हम तो सब माताओं और पिताजी के वचन से विरोध नहीं चाहते। हम भूल से भी विरोध नहीं चाहते। इस कारण हम को वही प्रबन्ध करना चाहिये कि जिस से सत्यवादी पिता जी को परलोक का भय न रहे। सम्भव है कि पिता जी विचार रहे होंगे कि रामचन्द्र वन जायेंगे या नहीं हम उन का वचन अवश्य सत्य करेंगे, अब इस कारण भी हम को राज्य

छोड़, इसी समय बन जाना चाहिये कि जिस से केकयी निर्भय हो भरत को राजगद्दी दिलावे, क्योंकि जब हम चीर वल्कल पहन बन जायंगे, तब ही तो केकयी प्रसन्न होगी और ईश्वर परमात्मा ने मन्थरा से केकयी को यह सलाह दिलाई है, उस को भी हम अप्रसन्न नहीं किया चाहते। भाई! हम तुरन्त बन को जायंगे। केकयी का क्या दोष है, राज्य मिलना न मिलना अपने भाग्य की बात है। देखो केकयी सदैव हम से प्रसन्न रहती थी और हम को प्यार भी करती थी। हम को दुःखी नहीं देख सकती थी। जो भाग्य की बात न होती तो इस समय हमें दुःख देने को क्यों हठ करती, तुम तो जानते हो कि हम को सब माता समान हैं। हम इन में कोई भेद नहीं जानते सो क्या यह भाग्य की बात नहीं है? हम तो वनगमन और तिलक। होने के वचनों को दैववचन मानते हैं, नहीं तो केकयी हमारे दुःख भोगने का प्रबन्ध न करती। देखो अवश्य होने वाले का नाम भाग्य है, सो प्रकट है। कौन कहता था कि हम को राज्य छोड़ वनवास मिलेगा और केकयी की मति ऐसी हो जायगी। देखो सुख, दुःख, भय, क्रोध, वृद्धि, हानि, लाभ, जन्म, मृत्यु; ये जो कुछ हैं सब परमात्मा के किये हैं। देखो ऋषि लोग कठिन तप करते हैं पर अकस्मात् काम क्रोधादि के उत्पन्न होने से योगभ्रष्ट होजाते हैं और देखो वे विचारा काम अकस्मात् हो जाता है और विचारा नहीं होता, तो क्या यह दैवी बात नहीं है? हम तो यही विचार शोकातुर नहीं होते, तुम भी ऐसाही विचार अब हम से राजगद्दी की हठ न करो और हमें कष्ट न दो। ए लक्ष्मण! ये जो जल के बहुत से घड़े दूर२ के नदी समुद्रों से राज्यतिलक के लिये आये हैं, इन से हम वनगमन का स्नान करेंगे। नहीं २ भूले, हम को इन से क्या प्रयोजन, हम तो अपने हाथ से जल ला स्नान करेंगे। लक्ष्मण! राज्य का शोक छोड़ो। देखो जो राज्य मिलता 'तो प्रजा पालन करते। अब वनवास में ऋषि लोगों की रक्षा करेंगे। हम को तो दोनों कार्य तुल्य हैं और हां, राज्य से तो वनवास अच्छा है, एक तो पिता की आज्ञापालन, द्वितीय प्रजापालन के विचार से बचे, तृतीय तप करने से चित्त शुद्ध होगा, चौथे वनवासियों की रक्षा करेंगे॥

चन्द्रमुखी—श्रीमान् रामचन्द्र की ऐसी दृढ़ता देख लक्ष्मण कुछ प्रसन्न हुवे। वनवास के शोक से पूरी प्रसन्नता तो न हुई पर वह शोक न रहा। थोड़ी देर में फिर क्रोध बढ़ा और नीचे को सीस नवाये गर्म सांस लेने लगे और मुख क्रोधित सिंह का सा होगया॥

लक्ष्मण—(सीस हलाते, टेढ़ी दृष्टि से) भाई! आपने जो पिता की

आज्ञा का उल्लङ्घन अधर्म समझा है और इस में अपकीर्ति जानते हैं यह आप का विचार ठीक नहीं। विचारिये कि जो आप का विचार ठीक होता तो आपसे वीर कायरों की नाईं भाग्य पर भरोसा करते ? भाग्य पर भरोसा करना तो अपाहज और कायरों का काम है न कि आपसे वीरों का। देखो छलिया और स्वार्थी अपनी इच्छा सिद्धि के किये झूंटा मूंटा धर्म बनालेते हैं। आपने अभी तक नहीं जाना कि अपनी अर्थ सिद्धि के लिये आप को विना कारण वनवास दिया जाता है, क्या यह कोई धर्म की बात है ? नहीं नहीं कोई नहीं। जो वरदान का कथन सत्य होता तो पहले से ही भरत को राज्य और आप को वनवास नियत होता और दुनिया कहती कि राजा क्या करें, केकयी ने वर ले लिया था। ये तो सब बनावटी बात, तुम्हारे राज्यतिलक रोकने को बनाई है सो ठीक नहीं और अन्याय है। हम ऐसी अन्याय की वात नहीं मानते, क्षमा कीजिये। आप जिन पिता जीके वचनों से राज्य करने को उद्यत थे और अब वन जाते हैं और इसीको धर्म जानते हैं, ऐसे धर्म को हम दूर से ही प्रणाम करते हैं। यह तो धोका ही धोकाहै, धर्म नहीं, आप क्यों छोटे मनुष्यों की नाईं केकयी के वश्य पिता जी के विरुद्ध वचन पूरे करने को उद्यत हैं और जो आप इस बात को नहीं मानते कि चाल से हमारा राजतिलक रोका गया है और इस अधर्म को धर्म ही मानते हैं तो हम को बड़ा शोक होता है कि जब ऐसे धर्मात्मा अधर्म को धर्म मानते हैं तो धर्म की अवश्य निन्दा होती है न कि स्तुति। ऐसे धर्म पर प्रजा हंसती है। आप के सिवाय भला और कोई पिता रूपी शत्रु के बे बिचारे कामवश वचनों को धर्म मानेगा ? और जो आप के कथनानुसार माता पिता के वचन दैव के ही वचन हैं, तो हम को ऐसे दैव पर भी विश्वास नहीं क्योंकि कायर ही तो दैव पर भरोसा करते हैं। भला कहीं शूरवीर भी भाग्य पर भरोसा करते हैं ? जो शूरवीर अपने पुरुषार्थ से दैव से बल करने को उद्यत रहता है, भाग्य उस का कुछ भी नहीं कर सकता और जो आप कहते हैं कि भाग्य को कोई नहीं टाल सकता तो आज हम भाग्य और पौरुष का बल दिखावेंगे तब आप को ज्ञात हो जायगा कि दैव में बड़ा बल है या पौरुष में। ए राम ! जिन मनुष्यों ने दैव का हटाया आप का राज्यतिलक देखा है वे ही आज हमारे बल से उस हटाये दैव को देखेंगे, जैसे मस्त हाथी अंकुश लगने से झुक जाता है वैसे ही हम अपने बल से

दैव को झुका देंगे। इन्द्र, वरुण, कुवेर, यम, अग्नि, सूर्यादि लोकपाल भी आप के राज्यतिलक को नहीं रोक सकते फिर जिन मनुष्यों ने सम्मति कर १४ वर्ष का वनवास आप के लिये ठैराया है, वे ही आप के बदले १४ वर्ष वन में वसेंगे। हम दशरथ और केकयी की सब आशा मेंट देंगे जो उन्होंने तुम्हारे राजतिलक रोकने और भरत के राजा बनाने में कर रक्खी हैं। जैसा हम को वैरियों से कष्ट हुआ है वैसा ही आज दैव को हम से दुःख पहुंचेगा इस राज्य को भला आप के सिवाय और कोई कर सकता है? अभी तो कई सहस्र वर्ष तक राज्य आप ही करेंगे और जब बुढ़ापे के कारण आप राज्य छोड़ वन चले जायेंगे तब आप का पुत्र राजा होगा, न कि भरत या भरत का पुत्र। भाई बुढ़ापे में राजा वन को जाते हैं न कि तरुणाई में। जो आप राजा को नाशवान् और राज्य को भी नाशवान् जान त्यागते हो तो जैसे नदियों का बेला नदियों की रक्षा करता है वैसे ही हम आप के राज्य की रक्षा करेंगे, जो ऐसा न करें तो आप हम को वीर न मानें, इस कारण आप को उचित है कि राजतिलक कराय राज्य कीजिये। हम अकेले ही अपने बल से पृथिवी भर के राजों को हरा सक्ते हैं फिर भरत और दशरथ जी कौन गिनती में हैं, देखो यह बांह हमारा गहना नहीं हैं, लड़ने को हैं, यह धनुष् केवल शृङ्गार ही नहीं है, वैरियों के झिझकाने को है,यह तीर रखने को नहीं हैं, वैरियों का कलेजा छेदने को हैं। देखो यह खड्ग बान्धने ही को नहीं, वैरियों का शिर काटने को है, तो भला कोई हमारा वैरी बन कर जीता रहे? नहीं नहीं, कभी नहीं जी सकता। हमारे खड्ग का काट इन्द्र भी नही सह सकते! जब वैरियों के हाथी घोड़े संग्राम में हमारे खड्ग से कट २ कर गिरेंगे तब समरभूमि उजाड़ बियावान दीखेगी। आज हमारे खड्ग से वैरियों के शरीर लोहू टपकते भूमि पर गिरते दीखेंगे। जब समरभूमि में हम धनुष् टङ्कोरने खड़े होंगे तो भला कोई है कि अपने को शूर कहेगा? नहीं नहीं हमारी क्रोध की दशा में कोई भी हमारे सामने न आयेगा। यह न समझिये कि हम कह ही रहे हैं कर नहीं सकते। नहीं २ हम अकेले ही वैरियों की सेना को मार डालेंगे। आप को आज हमारे शस्त्रों की परीक्षा राजा के राज्य मिटाने और आप को राजा बनाने में भलीभांति हो जायगी॥

कौशल्या—(यह विचार कि राम अवश्य वन जायंगे, आंसू रोक) ए राम! अभी तक तुमने कष्ट नहीं उठाया, सुख ही सुख भोगा है और सदैव अपने प्रियवचनों से सब को मोहित किया है। तुम चक्रवर्ती राजा के लाडले

पुत्र हो। तुम कैसे मुनिवेष बनाय वन में बसोगे ? तुम तौ सदा मीठे रसीले भोजन पाते रहे हो, कैसे कन्द मूल फल भोजन करोगे ? तुम्हारे वनवासको कौन सत्य मानेगा और जब सारी प्रजा में यह बात प्रकट हो जायगी तौ कौन सा पुत्र अपने माता पिता से न डरेगा कि जब रामचन्द्र से धर्मात्मा पुत्र अनपराध माता पिता ने वन को निकाल दिये तौ हमारा क्या ठिकाना और बालकों को माता पिता का विश्वास भी न रहेगा। क्या यह अविश्वास जगत् में हानि न पहुंचावेगा, नहीं२ अवश्य हानिकारी होगा। ए राम! हम तौ जगत् में भाग्य को बड़ा बली मानते हैं, उसी की प्रेरणा से तुम भी वनमें बसोगे। ए राम! तुम्हारे वन जाने पर हमारे श्वास का पवन और विलाप का इन्धन और शोक की अग्नि और आंसुवों की आहुतियां एकत्र हो अवश्य हमारे शरीर को भस्म करेंगी। ए वत्स! हम तुम्हारे पीछे२ वन को चलेंगी। देखो बछड़े के जङ्गल को जाने पर गाय आप ही पीछे २ चली जाती है॥

रामचन्द्र—माता जी! हमारे वनगमन पर पिता जी अवश्य शोकातुर होंगे, भला उन्हें कौन शान्ति देगा? जो तुम यहां होगी तो उन्हें समझा तौ लोगी। द्वितीय स्त्री को पतित्याग के तुल्य और कोई पाप व अपकीर्त्ति नहीं, इस का क्या प्रबन्ध करोगी? हमारी सम्मति में तौ आप यहीं रहें और जीवन भर पिता जी की सेवा करें, यही सनातनधर्म है और इसी में कीर्त्ति हो सक्ती है, न कि हमारे सङ्ग चलना और वनवास करना॥

कौशल्या—सत्य है! हम को तौ पतिसेवा ही करनी चाहिये (और मौन हो गई)॥

रामचन्द्र—(हौले से) माता! हम तुम को तो राजाज्ञापालन ही धर्म है। विचारिये कि प्रथम तौ राजा बूढ़े, द्वितीय पालक, तृतीय गुरु, चतुर्थ बड़े, पञ्चम शिरोमणि, छटे स्वतन्त्र, उन के अधिकार जान हम तुम को तो उन की आज्ञा ही पूरी करनी योग्य है। पहले हम पित्राज्ञा पूरी कर पीछे आप की आज्ञा का पालन करेंगे॥

कौशल्या—(गद्गद वाणी से) ए राम! पित्राज्ञा से जो वनगमन ही की इच्छा है तौ हमें भी सङ्ग ले चलो, हम यहां सौकों में नहीं रह सकतीं॥

रामचन्द्र—ए माता! स्त्री का जीवन भर देवता और स्वामी पति ही है और पुत्र का स्वामी पिता। देखो जब तुम या मैं कोई कार्य उन के विरुद्ध करें या करना चाहें तौ वे दण्ड दे सकते हैं और हम अनाथ भी तौ नहीं कि

स्वतन्त्रता से जो चाहें सो करें. नहीं हम सनाथ हैं, इस लिये हम को उन की आज्ञा से ही कार्य करने उचित हैं। माता! कैकयी तुम्हें कोई कष्ट न देसकेगी क्योंकि भरत धर्मात्मा हैं और सब से प्रेम रखते हैं, वे सदैव तुम्हारी आज्ञा का पालन करेंगे। अब तुम को ऐसा कार्य करना उचित है कि हमारे वियोग में पिता जी शोकातुर न हों। यह संसार बुरी जगह है। हमारे वन गमन पर जब कोई राजा से कठोर शब्द कहदेगा तौ वे अवश्य शरीर त्याग देंगे क्योंकि वे वृद्धपन से निर्बल तौ हैं ही हैं इस लिये मन से उनकी सेवा करो। तुम को तौ स्मरण है कि स्त्री चाहे कैसी ही उत्तम हो, कोई पाप न करती हो और उत्तम उपदेश और नियम दान भी करती हो, परन्तु पतिसेवा न करने से अवश्य नरक पाती है और जो स्त्री तन, मन, धन, और प्राण से पतिसेवा करती है और दूसरे की पतिसमान ख़ातिर नहीं करती और न पूजा पाठ करती और व्रत, नियम, दान भी नहीं करती, वह अवश्य स्वर्ग पाती है, इस लिये कल्याण और परलोक सुख चाहनेवाली स्त्री को योग्य है कि कपट छोड़, सत्य से पतिसेवा करे। देखिये वेदों में भी ऐसा ही स्त्री धर्म बतलाया है और लोक भी इसे ही धर्म मानता है। हम यह नहीं कहते कि तुम सन्ध्या अग्निहोत्रादि पञ्चयज्ञ न करो, नहीं २ अपने २ समय पर सन्ध्या, अग्निहोत्र, बलिवैश्व, अतिथिपूजन, देवताओं का सत्कार, ब्रह्म-भोज, हमारे कल्याण के निमित्त कराया करना और जब तक हम लौट कर आवें, नियम से पिता जी की सेवा करती रहना। हमारे वन से लौट आने पर तुम्हारे सब मनोरथ पूरे होजायंगे॥

कौशल्या—(बड़ी उदास) पुत्र! तुमने पित्राज्ञापालन के लिये वनवास का विचार किया है, उसे हम नहीं हटा सकते क्योंकि समय बड़ा बली है, यह अपने प्यारों का मेल वियोग किया ही करता है, ख़ैर तुम वन जाओ, परमात्मा तुम्हें प्रसन्न रक्खे। जब लौट कर आओगे तब ही हमारी कामना पूरी होंगी और तब ही हम सुख पावेंगे। ए पुत्र! भाग्य की चाल बड़ी प्रबल है, यह किसी को ज्ञात नहीं होती। देखो हमें लाचार कर वनाज्ञा दिलाती है। अच्छा, अब वनगमन कीजिये और सुखपूर्वक लौट हमें प्रसन्न कीजिये। ईश्वर करे कि वन से लौटने का समय तुरन्त आजाय कि चीर बल्कल पहने तुम्हें वन से लौटा देखूं (और आचमन कर यात्रा का मङ्गल करने लगीं और कहा कि) ए राम! जब तुम रोका ही नहीं मानते और तुम को पिता की

आज्ञा ही पालनी स्वीकार है तो अब जाइये, ईश्वर करे कि जल्द लौटो। पुत्र! तुम सज्जनों की रीति पर चलते रहो। जिस धर्म का पालन तुम दृढ़ता से कर रहे हो वह तुम्हारी रक्षा करे और जो जो अस्त्र शस्त्र तुम को विश्वामित्र जी ने दिये हैं,वे सदैव तुम्हारी रक्षा करें। छः ऋतु, १२ मास, रात, दिन, घड़ी, पहर तुम को प्रसन्न रक्खें। ए पुत्र! श्रुति स्मृति में कहा धर्म तुम को सुख से रक्खे। पहाड़, समुद्र, आकाश, भूमि, पवनादि सब चराचर तुम्हारे रक्षक रहें और तुम को सुख देते रहें। तुम मुनिवेष बनाय घोर वन में विचरते को विद्या और बल, सुख दें। राक्षस,दैत्यादि कुकर्मी मांसाहारी जीवों का भय न हो। वानर, बीछू, डांस, सांप, कीड़ा, मकौड़ादि तुम्हें दुःख न दें। मस्तहाथी, सिंह, भेड़िया, रीछ और कठकने पशु और जङ्गली जीव तुम्हें कष्ट न दें। और कोई दुष्ट जीव तुम्हें न मारें और जो २ शास्त्र तुमने पढ़े हैं, वे तुम्हारे सहायक हों और यह यात्रा सुखपूर्वक पूरी हो और तुम सब से जीतो और परमपिता परमात्मा की उपासना करके नित्यकर्म और पञ्चयज्ञ करते रहो। तुम सदा प्रसन्न रहो (और मूल की ओषधि जिस का यह गुण था कि तीरादि अस्त्र शरीर में लगते ही लौट कर बाहर निकल आवें, रामचन्द्र जी के हाथ में बान्ध दी और मन्त्र पढ़ २ आशीर्वाद दे,छाती से लिपटाय,शिर सूंघ)अच्छा जाओ पुत्र! सुख से लौटो। अब हम जिस दिन तुम को आनन्दपूर्वक लौटा देखेंगी, जब ही आनन्द होगा॥

चन्द्रमुखी—अब रामचन्द्र जी ने माता के चरण छू, परिक्रमा दे, बड़ी नम्रता से प्रणाम किया और महल से निकल सीता जी के महल को चल दिये। अब सोचते जाते हैं कि सीता जी से कैसे कहें कि पिता जी ने हमें वनवास दिया है। इसी फ़िकर में चहरे की लाली जाती रही, श्वेत पड़ गया। वहां श्रीमती सीता इस आशा में बैठी हैं कि अब श्रीमान् रामचन्द्र जी राजतिलक कराये आते होंगे। सब पूजा पाठ से निवृत्त हो, उत्तम वस्त्राभूषण पहने सहेलियों के बीच रामचन्द्र को बधावा देने को बैठी आशा कर रही हैं कि आज हम महारानी कहलावेंगी। अचानक रामचन्द्र जी को देखा कि नीचा शिर किये अकेले आ रहे हैं॥

जानकी—(भौंचकती सी) ए महाराज! यह तो प्रसन्नता का समय है, यह

शोक कैसा ? आज तो पुष्यनक्षत्र में आप का राज्यतिलक था, क्या वह नहीं हुआ? आप उदास क्यों हैं ? १०० कमानियों का श्वेत छत्र आप के शिर पर क्यों नहीं और दो श्वेत चंवर भी आप के सिर पर नहीं ढुलते ? और हां वेद मन्त्र पढ़ २ ब्राह्मण आप के ऊपर अक्षत क्यों नहीं छोड़ते ? और मन्त्री सभासद् पुरवासी आप के आगे २ क्यों नहीं चलते और गहने पहने ४ घोड़े पवन समान आप के आगे क्यों नहीं चलते, और पहाड़ सा काला हाथी भी आप के आगे नहीं और सुनहरी चौकी लिये सेवक भी नहीं आया । यह क्या बात है? आज तो आप के राजतिलक का समय था । क्या वह नहीं हुआ? आप का मुख तो श्वेत होगया । लालामी नाम को नहीं रही है ? महाराज ! यह क्या होगया ? मेरा तो कलेजा उछल रहा है, सत्य बताइये यह हो क्या गया?

रामचन्द्र—प्रिया जी ! परमपूज्य पिता जी हम को वन जाने का हुक्म देते हैं ! ए महाकुलीन ! कुलीनकुल में जन्मी धर्मवेत्ता सदा धर्मचारिणी जानकी ! हमारे वनवास का कारण भी सुनिये । परमधर्मात्मा सत्यवादी हमारे पिता जी ने आगे कभी हमारी माता केकयी को दो वरदान दिये थे, सो जब हमें राज्य देने लगे तो केकयी ने धर्म से अपने दोनों वर मांगे, इन में से एक से तो हम को १४ वर्ष के लिये वनवास और दूसरे से भरत जी को राजगद्दी दी है । अब हम वनगमन की त्यारी कर चुके, बस तुम्हें देखने को आये हैं । प्यारी ! जब कभी भरत तुम्हारे प्रणाम को आया करें तो उन के आगे हमारी तारीफ़ न करना क्योंकि जो धन धान्य और कीर्त्ति और राज्यादि पाये होते हैं वे औरों की कीर्त्ति नहीं सह सकते और भरत के आगे हमारी वीरता भी न सराहना और यह भी आशा न रखना कि भरत हमारी अधिक शुश्रूषा वा सत्कार करें । जैसे कि साधारण मनुष्य होते हैं वैसे ही तुम भी रहना । अधिक सत्कार तो राजा की रानी का ही होता है । बस जैसे होसके भरत को प्रसन्न रखना क्योंकि राजा ने उन्हें ही राज्य दिया है, अब वही राजा रहेंगे । राजा की सेवा अवश्य करनी चाहिये और हम भी पिता की आज्ञापालन में वन जाते हैं । तुम हमारे में ध्यान लगाये यहीं रहना । जब से हम जायं तब से ही तुम यहां व्रतउपवास नियम करती रहना । हम वन में मुनिवेष रक्खेंगे इस लिये तुम को शृङ्गार न करना चाहिये । प्रातः उठ स्नान कर नियमानुसार पञ्चयज्ञ कर हमारे पिता जी की वन्दना कर फिर माता जी

की सेवा करना। देखो वे बूढ़े तो हैं ही हैं और हमारे वनगमन के शोक से दुर्बल भी अवश्य हो जायंगे उन की सेवामें अन्तर न हो और सब माताओं को भी वन्दना करना क्योंकि हम को सब माता समान हैं और शत्रुघ्न को पुत्रवत् समझना और ध्यान रखना कि वे दोनों हम को प्राणों से भी प्यारे हैं। भरत से वैर भाव न रखना क्योंकि वे कुल के भी राजा हैं, उन की अच्छी सेवा करना। देखो राजा लोग सेवा से प्रसन्न और असेवा से अप्रसन्न होजाते हैं॥

जानकी—(कुछ दुःखित कुछ क्रोधित) ए वीरपुरुष! तुम दीन मनुष्यों की नाईं नम्रता के वचन क्यों कहते हो। तुम्हारे इन वचनों पर हमें हंसी आती है क्योंकि शास्त्राज्ञानुसार ऐसे दीन वचन आप से राजकुमारों के कहने योग्य नहीं, ऐसे वचनों से दीनता और दुर्बलता प्रकट होती है कहना तो अलग, ये वचन तो सुन्ने योग्य भी नहीं। स्वामी! पिता, माता, भाई बहन बेटा, पोते ये सब अपने २ भाग्य के भरोसे रहते हैं और अपना पुण्य भोगते हैं। पर स्त्री अर्धशरीरी होने के कारण अपने पति का कर्त्तव्य भोगती है। इस लिये हमें भी वनगमन की आज्ञा दीजिये कि सङ्ग चलें क्योंकि स्त्री की गति का कारण एक पति ही है। चाहे जगत् में हो या परलोक में। माता, पिता, पुत्र आप और सहेली से गति नहीं हो सकती, जो आप वन जाते हैं तो हम भी आप के आगे २ घास फूस और कांटों पर चलेंगी। यह न मानिये कि हम आप की आज्ञा का उलङ्घन करते हैं। आप हम को सङ्ग लेते चलिये। हमने तो कोई पाप नहीं किया फिर आप हम को क्यों त्यागते हैं? अब रहा यह विचार कि हमने यहां सुख पाया है और उत्तम २ भोजन किये हैं फिर कन्द मूल फल खाय कैसे निर्वाह करेंगी, सो यह कोई बात नहीं। विचारिये कि रेतले देशों में जहां पानी का काल होता है, वहां एक बेर का बचा पानी दूसरी बेर पीते हैं, जो शास्त्र और वैद्यक के विरुद्ध है, ऐसे ही जब नाज मिलेगा ही नहीं, तो कन्द मूल ही वन में खाना पड़ेगा। जहां तक मैं जानती हूं बड़े २ महलों में रहने और अच्छी २ सवारियों में चढ़ने से अच्छा वेदशास्त्रों की आज्ञानुसार स्त्रीधर्म पतिसेवा है। ए आर्यपुत्र! हमारे माता पिता ने भी हमें यही सिखलाया है कि सदैव सत्य से पतिसेवा करना, इन सब कारणों से आप हमारे मनोरथ पर तर्क न करें, हम प्रसन्नतापूर्वक निर्जन वन में जहां अनेक मृग, भेड़िये, सिंह आदि निर्भय फिरते हैं, आप के साथ साथ चलेंगी। आप के साथ त्रिलोकी के सुख की

इच्छा न करूंगी, केवल आप की सेवा का ध्यान रक्खूंगी । माता पिता के गृहसमान सुख मानूंगी और सत्य से सेवा करूंगी और आप के बताये नियमानुसार ब्रह्मचर्य करूंगी और वन में नई २ सुगन्धित वस्तु देख २ प्रसन्न रहूंगी । आप वनवास में भी तौ सहस्त्रों की पालना कर सकते हैं, क्या मुझ अकेली की पालना न कर सकेंगे ? अब तौ हम वनगमन को तत्पर हैं. विना जाये न मानेंगी । क्योंकि शास्त्रोक्त पति के सङ्ग ही स्त्री का रहना उचित है। हम अभी २ आप के सङ्ग चलती हैं । यह सन्देह न कीजिये कि वनफल हम कैसे खायेंगी, हम आप को कोई दुःख न देंगी । आप के आगे २ तो चलेंगी, और आप के भोजन के पश्चात् बचे कुचे फल, मूल खा लिया करेंगी । प्राणनाथ ! आप से बुद्धिमान् स्वामी के साथ निर्भय नदी पर्वत और छोटे बड़े ताल सब कहीं के देखा चाहती हैं । फिर हंस, कोकिला से भरे कमल के पेड़ आप शूरवीर के साथ देखने की इच्छा रखती हैं, वहीं पर जो नदी ताल मिलेंगे उन के जल से आप का तिलक करूंगी और अनेक प्रसन्नता नई २ वस्तुओं के देखने से पाऊंगी । इसी प्रकार १४ वर्ष तो क्या सैकड़ों वर्ष तक आप के साथ वनवास में कोई हानि नहीं देखती । प्राणप्यारे! विना तुम्हारे तो हम स्वर्ग का भी सुख नहीं मानतीं और न उस को स्वीकार कर सकती हैं॥

रामचन्द्र-(वन न लेजाने के विचार से)प्रिया जी ! तुम कुलीन हो और सदा धर्म ही के काम करती हो,तुमको मनमानी बात करनी योग्य नहीं। यहीं बस, सदा धर्म करो और हमारी आज्ञा पालो,जैसा हम कहते हैं वैसा करो। देखो वन में बड़े दुःख होते हैं, उन में से कुछ थोड़े से सुनाते हैं–अधिक से अधिक कष्ट पाने के स्थान का नाम वन है । वहां सदा कष्ट ही कष्ट रहता है, सुख का चिन्ह भी नहीं मिलता । पहाड़ों से कहीं २ नदी निकली हैं, जिन के पार जाना बड़ा दुर्लभ है और पर्वतोंमें सिंह ढूंका करते हैं कि जिन के शब्द से भय होता है और विषैले जीव तो बेधड़क वन में घूमा करते हैं। मनुष्य देखने को नहीं मिलते । मनुष्य को देख, फाड़खाने को दौड़ा करते हैं। नदियों में बड़े २ घड़ियाल मगर सूस आदि कटकने जीव रहते हैं जो मनुष्य को जीते ही निगल जाते हैं और उन में बड़ी बझन होती है कि जिस में जीव फंस जाते हैं । मस्त हाथी चींखा करते हैं और वन के सब रास्ते बेल और कांटों से घिरे रहते हैं, वनमुर्गी बोला करती हैं । कहीं कहीं दूर तक पानी नहीं मिलता । टूटे सूखे पत्ते जहां तहां पड़े होते हैं, उन्हीं पर सोना

पड़ता है और कहीं २ पत्ते भी नहीं मिलते, खाली भूमि पर सो रहना होता है। दिन के पैदल चले, थके थकाये रात्रि में ऊंची नीची भूमि का ध्यानभी नहीं रहता, जैसे होसके सो ही रहते हैं और वृक्षों से गिरे फल थोड़े बहुत खाने को मिलते हैं, रात दिन उन्हीं पर निर्वाह करना पड़ता है और सदा वे भी नहीं मिलते, कभी २ उपवास भी करना पड़ता है। जटा भी रखानी पड़ती हैं और वृक्षों की छाल पहरने को मिलती है और आये गयों की सेवा भी करनी पड़ती है और ३ काल प्रातः दोपहर और सायं सब ऋतु में स्नान करना पड़ता है और हां अपने ही हाथ से पूजा के लिये फूल पत्ते लाने होंगे, कोई दास दासी तो काम काज को होंगे ही नहीं। जो मिल जायगा उसी पर संतोष करना पड़ेगा, वनवासियों को कभी पेट भर भोजन तो मिलता ही नहीं और पवन भी तो तेज़ चला करती है। अंधेरी रातबड़ी भयानक होती है। प्राणप्यारी! वन में बहुत से कंटीले वृक्ष होते हैं जिन के छूने से ही हाथ फट जाते हैं। वनवासियों को नित्य नये दुःख, शोक और भय लगे रहते हैं, वहां तो क्रोध और लोभ भी छोड़ना पड़ता है, केवल तपस्या में ही मन लगाना पड़ता है॥

चौपाई

तासों वन जाओ न प्रिय जानकि।
वन गति कबहुं न तिहार मान कि॥
बहुत भांति हम लखा विचारी।
वन तुम योग न जनक कुमारी॥

दोहा

जनकसुता वनगमनकी, मत न दीन्ह रघुनाथ।
ना सोचें कछु कीन्ह मन, बोलीं जोड़े हाथ॥

जानकी जी-(गद्गदवाणी से) प्राणनाथ! वनवास के जितने कष्ट आपने सुनाये, हम उन्हें अपने प्रेम से सुख ही जानती हैं। हमारे विचार में तो मृग, सिंह, व्याघ्र, हाथी, चीता और अठपाये जीव, गाय, नील गायादि वनैले जीव, कोई भी आप के समीप नहीं ठहर सके, क्या वे न जानेंगे कि आप तो काल के भी काल हैं। वे अवश्य आप से डर भाग जावेंगे। प्राणनाथ!

हम तो तुम्हारे सङ्ग ही चलेंगी, क्योंकि हमारे पिता जी ने इस वचन से कि हमारी कन्या सीता आप के पीछे परछाईं की नाईं रहेगी, आप को दी है। भला सम्भव है कि हम पित्राज्ञा का उल्लङ्घन करें ? हम तो बिना तुम्हारे यहां न रहेंगी। ए प्राणप्यारे ! आप के वियोग में हम अवश्य प्राण त्याग देंगी, तो फिर यहां रहना कैसे ? ए राघव ! आप ने जो आज्ञा दी कि भरत की सेवा करना, सो क्या हम पतिव्रता नहीं हैं जो आप के वियोग में जीवें और जब जीवेंगी ही नहीं तो भरत की सेवा कौन करेगा ? अब मेरा यही विचार होता है कि आप भयभीत हैं कि हम वन के कष्ट कैसे सहेंगी, सो कोई संदेह न कीजिये। हमने पहले ही पिता जी के घर सुन लिया था कि हम को वन में बसना पड़ेगा और अब यह बात होने ही वाली और अटल है तो फिर संदेह ही क्या है। श्रीमन् ! यह बात हमको सामुद्रिकज्ञाता ब्राह्मणों ने भी बताई थी, जब से हम प्रसन्नतापूर्वक चाहती थीं कि कब वनवास होगा, सो वह काङ्क्षा अब पूर्ण होगी। यह तो आप जानते ही हैं कि ब्राह्मणवाक्य असत्य नहीं होते और ब्राह्मणों ने पहले वनवास नियत कर दिया है तो हम को उन के वचन पूरे करने को अवश्य वन जाना चाहिये। परमात्मा अब ब्राह्मणवाक्य पूरे करे। नाथ ! अब तो आज्ञा देही दीजिये, कुछ सोच विचार न कीजिये। यह तो हम को ज्ञात है कि वनवास में असंख्य कष्ट होते हैं, पर साधारण मनुष्य को, न कि हम तुम सों को। हां सामुद्रिक ब्राह्मणों ने तो यह बात कही ही थी। एक दिन की और सुनिये कि एक बूढ़ी तपस्विनी ब्राह्मणी जो हमारी माता से मिलने आई थी उस ने मुझ से मेरी माता के आगे कहा था कि सीता ! तुम वन में बसोगी, सो हमने कई बेर आप से पूछा था कि वन को कब चलोगे, सो वह हमारी इच्छा अब पूरी होती है। बस हमें संग ही ले चलिये। बड़े प्रेम से हम वनवास को तयार हैं और वन में मुनिपत्नियों की नाईं आप की सेवा करने की इच्छा है। ए स्वामिन् ! इसी सेवा में हम आप के पीछे २ चल, समस्त पापों से छूटा चाहती हैं। हम को इस पर पूरा विश्वास है। हम जानतीं हैं कि आप ही हमारे देवता हैं, आप ही की सेवा से हम को सर्व सुख मिल सकता है। सो जगत् में ही नहीं परलोक में भी हम आप के संग रहेंगी और हम ने ब्राह्मणों के मुख से वेद में सुना है कि माता पिता, कुशा और जल हाथ में ले जिस को अपनी कन्या दान देते हैं, उसी की इस जन्म और पर जन्म में वह कन्या,

स्त्री होती है, तो आर्य धर्मात्मा मुझ अपनी धर्मचारिणी को क्यों संग नहीं ले चलते। हम पतिव्रता आप की टहलनी नखखनाथ दुःख सुख में समानधर्म आप के ही सुख में सुख और दुःख में दुःख मानने वाली हैं। हम को अवश्य संग लेते चलिये। जो आप हम को संग न ले जायंगे तो हम विष खालेंगी, या आग में जल मरेंगी या पानी में डूब मरेंगी॥

रामचन्द्र—तुम को हम वन को तो न ले जायंगे। देखो जङ्गल में स्त्रियों का जाना अनुचित है, इस में तो हमारी और राजा की अपकीर्ति होगी॥

सीता जी—(क्रोधित) प्राणनाथ! आप क्यों दीन मनुष्यों की बात कहते हैं, जो आप मुझे वन न ले चलें तो संसार झूठा होजायगा और आप की बड़ी निन्दा होगी। लोग लुगाई कहेंगे कि कैसे सूर्य वंशी हैं, इन में तो कुछ बल पौरुष नहीं, डरपोक हैं, जो बल होता और भय नहीं होता तो सीता को वन क्यों न ले जाते। भला हम यह वचन कैसे सहेंगी? आप क्या सोचते हैं? उदास क्यों हैं? यह भय आप को कहां से आया कि अपने मन, वचन, और कर्म से आधीन स्त्री को छोड़ते हैं। प्राण प्यारे! हम तो सत्यवान् की स्त्री की नाईं पतिव्रता और आप की दासी हैं। स्वामी! हम तो तुम्हारे संग ही चलेंगी। हम ऐसी स्त्री नहीं हैं कि अच्छा मर्द देख उस के साथ चल दें। हम तो आप के सिवाय परपुरुष का मुख भी देखा नहीं चाहतीं। देखा विवाह से अब तक हम सेवायोग्य आप की सेवा करती हैं। सुनिये-क्या अधमगति मनुष्यों की नाईं, जो अपनी स्त्री पर पुरुषों के पास भेज देते हैं, आप हमें भरत को सौंपते हैं, तो आप भी यहां रह, भरत की सेवा क्यों नहीं करते? बिना आप के, हम यहां रह, कैसे भरत की सेवा करेंगी। प्राणनाथ! अकेले वन न जाइये, हम को त्रिकाल आप के साथ रहना उचित है, चाहे तपस्या हो या वन वा स्वर्गवास। हम को आप के पीछे चलने में कोई दुःख न होगा। वरन बड़े सुख की शय्या पर शयन का सा आनन्द मिलेगा। वन में कुशा और घास पात का बिछौना, रेशमी और पशमीने के बिछौने का सुख देगा। रास्ते की धूल जो उड़ २ कर शरीर पर पड़ेगी, वह चन्दन के तुल्य रूप और सुख देगी। स्वामी! वन की हरी २ दूब पर सोना अनेक रंगीले और नर्म २ बिछौनों से अधिक आनन्द देगा। आप जो फल मूल अपने हाथों से ला, हमें देंगे, वह हम को अमृततुल्य सुखदायी होंगे। अजी! वहां तो ऋतु ऋतु के फल फूल खाने और सूंघने को मिलेंगे। न हम मा को याद करेंगे, न बाप और न घर को। हमारे होने से आप को कोई दुःख न होगा और न

शोच और यह तौ कभी कहोगे ही नहीं कि तुम्हारी पालना कैसे करें। फिर बताइये कि आप का सङ्ग क्या स्वर्गवास नहीं है? और वियोग क्या नरक से कम है? हम तौ सङ्ग चलेंगी, नहीं तौ मरना ही अच्छा है क्योंकि जब वियोग में मरण होगा ही तौ आप के आगे ही क्यों न मर जायं। विचारिये कि जब वियोग में मुहूर्त भर जीने की आशा नहीं तौ १४ वर्ष का क्या ठिकाना (और रोने लगीं और विषैले तीर लगी हथिनी की नाईं तड़फने लगीं। श्वेत २ आंसू आंखों से गिरते कैसे भले दीखते थे कि जैसे कमल से पानी। सीता का मुख चन्द्रसमान था, पर शोक में बेपानी के कमल की नाईं सूख गया। जब रामचन्द्र जी ने देखा कि सीता तौ मूर्छित हो २ जाती हैं और संभाले नहीं संभलती, अब थोड़ी देर में ये प्राण देदेगी तौ दोनों हाथों से उठा, छाती से लगा)

रामचन्द्र—ए देवी! तुम्हारे वियोग में स्वर्गवास भी नहीं चाहते और तुमने जो भय कहा कि किस का भय है जो हमको नहीं ले चलते। सो हम को तौ ब्रह्मा जी के समान किसी का भय नहीं। प्यारी! तुम्हारी तरुणता के दुःख से हम को तुम्हारा वनवास स्वीकार न था और यहां छोड़ने से तुम्हें छोड़ने का मनोरथ न था. तुम जानती हो कि ज्ञानी पुरुष कहीं प्रीति छोड़ सकते हैं? वैसे ही हम तुम को भी नहीं छोड़ सकते और सब जगह तुम्हारी रक्षा भी कर सकते हैं। अच्छा चलिये, जो तुम्हारी इच्छा। पहले राजा लोग भी तौ वानप्रस्थ में अपनी स्त्री वन को ले जाते थे,इसी प्रकार हम भी तौ तप करने ही को वन जाते हैं। तुम्हारे सङ्ग चलने में हमारी कोई हानि नहीं। परछाईं की नाईं पीछे २ रहिये। ए जनककुमारी! हम अपनी प्रसन्नता से तौ वन को जाते ही नहीं, पिता जी का सत्यवचन हम को वन लिये जाता है,क्योंकि पुत्र का यही धर्म है कि पिता माता की आज्ञापालन करे। इसी कारण हम भी पिता माता की आज्ञा नहीं टाल सकते। तुम जो कहती हो कि ईश्वर पर विश्वास किये यहीं रहो, सो यह नहीं हो सकता। देखिये ईश्वर को नहीं देखा तब भी उस की आज्ञापालन करते हैं। केवल विश्वास किये बैठे रहना ठीक नहीं तौ माता पिता गुरु कि जो सामने हैं,उन की आज्ञापालन ही मनुष्यों का धर्म है। इसी से धर्म, अर्थ, काम मिल सकते हैं। जहां इन तीनों की सेवा की गई, त्रिलोकी की सेवा हो गई, इसी लिये माता पिता गुरु, इन तीनों की आज्ञापालन के तुल्य जगत् में कोई तप नहीं। परलोक के लिये जैसी माता पिता की सेवा मानी गई है वैसी दान स्नान और दक्षिणा समेत यज्ञ भी नहीं

जो अपने माता पिता की सेवा करता है वह अनेकानेक द्रव्य, विद्या, औलाद और स्वर्ग तक सहज में पाता है। जैसे सहज में माता पिता का भक्त देवलोक पाता है, ऐसे और धर्म करने वाला नहीं पाता, इसी लिये हम को भी चाहिये कि सत्यधर्म पर चल, पिता जी महाराज की आज्ञानुसार कार्य करें. क्योंकि यही सनातन धर्म है। अब हम तुम्हारे वन लेजाने को तयार हैं, अब तुम विश्वास करो कि अपने स्वामी के सङ्ग वन में वसोगी। बस हमारी आज्ञा है कि हमारे सङ्ग वनगमन कर, हमारी नाईं वन में कार्य करती रहो॥

चौपाई

मम कुल निजकुल सदृश विचारा, प्रिया तोर शोभन उजियारा॥
जो पतिसंग रहत मन भावा, या सम शोभा नहिं कुछ गावा॥
सुमुखि करो वनगमन तयारी, जो जो उचित होयं शुभकारी।
तुम विन अब मोह भावत नाहीं, स्वर्गहु के सुख सो कम काहीं॥
द्विजन रत्न दीजै बहु आजू, देहु भिक्षुकन भोजन साजू॥
बन्दी मागध सूतन काहीं, धन दे चलो विलम्ब कछु नाहीं॥
भूषण जो बहुमूल्य तिहारे, औरहुं वसन जहां लग सारे॥
क्रीडा हेतु सुभग कछु जोऊ, होयं पदारथ दीजिये सोऊ॥
मम और निज सस्नेह पदारथ, वसनयहां भूषण मुख आरथ॥
प्रथम द्विजन दीजिये बहु दाना, पुण्य सुमरते किह मन माना॥
जान गमन वाञ्छित पतिसाथा, मुदित भईं जानकी सनाथा॥
भूषण वसन रत्न मणि नाना, देन लगीं सब कह कर नामा॥
अतिप्रसन्न परिपूर्ण मनोरथ, सुनि पतिवचन कहें सब सूरथ॥

लक्ष्मण—(कष्ट न सह, रामचन्द्र जी के चरणों पर शिर रख) भाई! आपने जो वनगमन की सम्मति की है तो हम भी आप के पीछे २ धनुष वाण लिये चला चाहते हैं। चारों ओर विषैले जीवों से भरे वन में हमें साथ लिये घूमिये क्योंकि अयोध्या तो क्या विना आप के देवलोक, स्वर्ग-लोक और लोक चाहै कितने ही सुख का स्थान हो, हमें स्वीकार नहीं॥

चन्द्रमुखी—रामचन्द्र जी ने भी बहुत समझाया बुझाया कि वन न चलें पर लक्ष्मण जी ने न माना और बोले-

लक्ष्मण—भाई! आपने पहले ही हम को भी वनगमन की आज्ञा दी है, अब क्यों रोकते हो। हम अपने रोके जानने का कारण जाना चाहते हैं। कृपाकर बताइये॥

रामचन्द्र—ए वीर! ए प्राणसमानप्रिय! सच्चे हितैषी और मित्र तो तुम ही हो, इस में शङ्का नहीं पर जब तुम भी हमारे सङ्ग चलोगे तो माता कौशल्या और धर्मात्मा सुमित्रा की सेवा कौन करेगा? जो कहो कि पिता जी रक्षा कर लेंगे, सो उन का तो ढंग ही निराला है वे तो कामी हैं, वे तो अपनी इच्छा पूरी करने वाले की रक्षा करेंगे, जैसे कि पृथिवी से भाफ उठ बादल बन, फिर पृथिवी पर हो वर्षती है, वैसे ही केकयी उन की मति बदल देगी। वे तो केकयी के वशी ठहरे, जब केकयी राज्य पावेगी तो दुखियारी कौशल्या और सुमित्रा के सङ्ग बुराई के सिवाय कभी भलाई करेगी? जो कहो कि भरत पालना करेंगे, तो वे भी तो केकयी की आज्ञापालन में रहेंगे। इन की पालना को तो ध्यान भी न देंगे, क्योंकि जब वे राजा हो जायंगे तो केकयी का ही सत्कार करेंगे, इन बेचारियों को कौन पूछेगा? इस कारण तुम यहीं रह, इन माताओं की पालना, चाहे राजा की सहायता से या अपने बल पौरुष से, करो। इस में हमारा तुम्हारा प्रेम भी बढ़ेगा और माताओं की सेवा से फल भी अधिक मिलेगा। तुम तो ज्ञानी हो, सब कुछ जानते हो। लक्ष्मण प्यारे! यह कार्य अवश्य करो देखो हमारे तुम्हारे वनगमन से माताओं को सुख मिलना कठिन है और तुम्हारे रहने से निःशङ्क सुख मिलेगा॥

लक्ष्मण—ए वीर! आप के प्रताप से माताओं की सेवा तो भरत अवश्य करेंगे क्या वे न विचारेंगे? कि जो महाराज रामचन्द्र की माता की सेवा न करेंगे तो पाप के भागी होंगे और जब राज्य पा, केकयी के कहे से क्रूर स्वभाव हो, माता जी की सेवा और रक्षा न करेंगे तो विचार लीजिये कि अभिमान में घिरेंगे और जब अभिमानी हो जायंगे तो हमारे हाथ से मारे जायंगे और जब केकयी कहां बचेगी, वह भी तो मारी जायगी और कौशल्या जी तो हम से हज़ारों की पालना कर सकती हैं, उन की सहायता से तो अब भी हज़ारों ब्राह्मण पारितोषिक पा रहे हैं, और हमारी माता के पालन को तो मानो कौशल्या जी हैं ही हैं, उन को हम से रक्षकों की क्या आवश्यकता है। अब आप हमें अपना सेवक बना, अपने संग लेते चलिये।

हमारे संग ले चलने में आप की कोई हानि न होगी क्योंकि माताओं की रक्षा का प्रबन्ध तौ हम बता चुके,इस यात्रा में हम आप की सेवा कर पुण्य के भागी बनें। हम आप के लिये फल फूल लाया करेंगे। और हां आप को तौ हम बड़ा सुख देंगे कि बनेले जीवों से रक्षा के लिये धनुष् साधे फल फूलों के लिये एक पिटारी हाथ में लिये संग रहेंगे और आगे२ रास्ता बताते चलेंगे और तपस्वियों की नाईं नित्य फल मूल लाया करेंगे। आप पहाड़ों की चोटी और कन्दराओं में श्री जनकनन्दनी के संग सुख से रहियेगा, हम हर समय अर्थात् सोते जागते आप की रक्षा करेंगे॥

रामचन्द्र—(प्रसन्न हो) अच्छा तुम्हारी इच्छा, पर सब बान्धवों से तौ आज्ञा ले लो, जब हमारे संग चलो,पर एक काम तौ करो कि जनक जी नें दहेज में जो वरुण जी के दो धनुष् दिये हैं वे और दोनों अबेध कवच और दोनों तरकश कि जिन में से तीर ही कम नहीं होते और दोनों सुनहरी हत्ते के खड्ग जो गुरु जी के घर धरे हैं, जल्द ले आओ॥

लक्ष्मण—(जो आज्ञा, कह और जा और हथियार ले लौट कर आ अस्त्र शस्त्र सब रामचन्द्र जी के आगे रख दिये)॥

रामचन्द्र जी—(अस्त्र शस्त्र देख) लक्ष्मण! अच्छे समय आगये, हमारी अब यह इच्छा है कि हमारा सब धन ब्राह्मणों को दे दिया जाय जो आप की सम्मति है तौ गुरु वसिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ जी को ले आओ, उन की पूजा कर वन चलें॥

लक्ष्मण—(जो आज्ञा, कह, सुयज्ञ जी के मन्दिर में पहुंचे। देखा कि स्नान से निबट अग्निहोत्र के कुण्ड पर पूजा कर रहे हैं, उन से) चलिये मित्र! आप को श्री रामचन्द्र जी बुलाते हैं और देखिये कैसा कठिन कार्य कर रहे हैं॥

चन्द्रमुखी–सुयज्ञ, पञ्चयज्ञ से निबट राममन्दिर में पहुंचे। सीता रामचन्द्र जी देखते ही हाथ जोड़ खड़े होगये और जड़ाऊ कुण्डल, जञ्जीर मोहन-माला, कण्ठा, कङ्कण, जो आप पहने थे, सब सुयज्ञ जी को पहना दिये और रत्नादि भी दिये॥

सीता जी—महाराज! आपनें अपने सखा को तौ वस्त्राभूषण दे दिये, अब हमारी सखी को भी तौ बुलाओ, हम भी तौ उनको वस्त्राभूषण भेंट करें॥

रामचन्द्र जी—ए मित्र! सीता जी वस्त्राभूषण तुम्हारी स्त्री को दिया चाहती हैं सो आप उन के लिये लेते जाइये और भोंटा, कङ्गन, पटरी, चौलरी, चम्पाकली आदि आभूषण तुम्हारी स्त्री को देने की इच्छा रखती

हैं और रत्नजटित सुनहरी पायेपट्टियों का पलङ्ग और अमूल्य बिछौने तुम्हें दिया चाहते हैं और हम अपना शत्रुञ्जय हाथी आप को देते हैं,इस में किसी का हक्क तो है ही नहीं, यह तो हम को हमारे मामा ने दिया है ॥

चन्द्रमुखी—अब सुयज्ञ जी ने सब वस्तु ले, तीनों को आशीर्वाद दिया—

रामचन्द्र जी—लक्ष्मण प्यारे ! अब इन की पूजा तो हो ली, अब अगस्त्य जी और विश्वामित्र जी के भी पुत्रों को बुलाओ और उन की भी पूजा करो। भाई ! आज ब्राह्मणों की ऐसी पूजा हो,जैसी वर्षा अनाज की करती है। सोने से सींग और चांदी से खुर मंढी, सुनेहरी, रेशमीं, मोती लगी, झूल पड़ी सहस्त्रों गौ दान दीजिये। और पश्चात् धन, वस्त्र, इतने दिये जायं कि १४ वर्ष तक आवश्यकता न हो और जो वेदपाठी ब्राह्मण माता को नित्य यज्ञ कराते हैं और आशीर्वाद देते हैं, उन को भी आयु भर के लिये माल दे दीजिये। और चित्र रथवान् को भी धनाढ्य बना दीजिये। बाक़ी सब ब्राह्मण ब्रह्मचारी, वेदपाठियों को मुंह मांगा धन दीजिये। और बाक़ी माता जी से पूछलो, जिस जिस को वे कहें, ख़ूब दान दो। और भाई ! आज दान का समय है, आज हम राजपाट छोड़ मुनिवेष बनाते हैं। फिर ऐसा समय न मिलेगा, आज ही तो हम सब धन दौलत में लात मार दण्ड-कारण्य को चलते हैं ॥

लक्ष्मण—(बहुत अच्छा कह और आज्ञा पूरी कर) महाराज ! सब आज्ञा पूर्ण हो गई ॥

रामचन्द्र—(बहुत धन दे, नौकरों से) जब तक हम लौट कर न आवें हमारे और लक्ष्मण के महल की रक्षा करना। जैसे तुम अब रहते हो वैसे ही रहना। कभी कोई महल खाली न रहे और सब वस्तुवों की रक्षा करना ॥

नौकर चाकर—(उदास हो रामचन्द्र जी का मुख ताकने लगे) ॥

चन्द्रमुखी—और कोशाध्यक्ष को बुला, बहुत सा धन ले दोनों भ्राताओं ने कङ्गालों को धनाढ्य बना दिया, जिस के पास वस्त्र न थे वह चमकीले वस्त्र पहने फिरता है ॥

त्रिजट ब्राह्मण की कथा—

अयोध्या में रूपवान् श्वेत वर्ण शान्तस्वभाव संतोषी बूढा एक त्रिजट ब्राह्मण था जो कभी किसी से दान न लेता और वन से कन्द मूल फल ला ला अपनी स्त्री और बालकों की पालना करता और उस की स्त्री भी पति-व्रता थी, वह बोली—

स्त्री–स्वामी ! आज रामचन्द्र जी वन जाते हैं और अयोध्यावासियों को मन माना धन दे रहे हैं, जो आप उचित जानें तो कुछ धन ले आवें । जिस से बालकों का निर्वाह सुख से होने लगे ॥

त्रिजट–(कुछ विचार) अच्छा जाते हैं (और १ फटी चादर ले चल दिया उस का चलने में भी बडा तेज जान पड़ता था । भृगु वा अङ्गिरा का सा रूप दीखता था, यहां तक कि पांचवें फाटकपर बेरोक टोक पहुंच) राम! मैं कङ्गाल हूं और बालक भी बहुत हैं, वन के कन्द मूल से निर्वाह करता हूं ये बालक भी सङ्ग हैं,इन की दशा देख लीजिये और आज तक मैंने दान भी नहीं लिया॥

रामचन्द्र-(हंसी में) महाराज ! हमारे सैंकड़ों गौ खड़ी हैं,आप यहीं खड़े हो,लाठी फेकें,जहां आप की लाठी पहुंचेगी वहीं तककी सब गौ हम तुम्हें दे देंगे॥

त्रिजट—जो आज्ञा कह, पूरे बल से लाठी घुमा कर फेंकी, जो सरयू के तीर पहुंची ॥

रामचन्द्र-(हंसते हुये) सरयू तीर तक की सब गौ इस के घर पहुंचा दीजिये (और त्रिजट से) महाराज ! हमने आप से ठठ्‌ठा किया था, गौ तौ आपके घर जाती ही हैं, आप क्रुद्ध न हों और जो और इच्छा हो उसे प्रकट करें । इस समय हम अवश्य पूर्ण करेंगे,मेरे पास जितना धन है वह आपलोगों के देने को है, भूमि में गाढ़ने को नहीं । मैं ब्राह्मणों को धन देने में बड़ा मग्न हूं॥

त्रिजट-श्रीमान् ! मैंने तौ आज तक याचना नहीं की और न याचना किया चाहता हूं और आप को धन्यवाद देता हूं कि आप ने मुझे दान न दिया । आप बडे प्रतापी हैं, चिरजीयें ॥

रामचन्द्र-महाराज ! आप १ सहस्त्र गौ और स्वीकार करें ।।

त्रिजट-राजन् ! जो आज्ञा, हम तौ आप ही की रक्षा में रहते हैं, परमात्मा आप को प्रसन्न रक्खे, अब मैं जाता हूं । (और जाता है)

चन्द्रमुखी-अब रामचन्द्र, सीता, लक्ष्मण धनधान्य पुण्य कर पिता दशरथ जी से आज्ञा लेने चलदिये । सब आवश्यकीय अस्त्र, शस्त्र साथ उन पर सुगन्धित चन्दन लगा है । सारे नगर में रामचन्द्र के वनवास की चर्चा फैलगई और सब पुरवासी घरों से निकल २ देखने को एकत्र थे और शोक भरी दृष्टि से राजकुमार को देखते थे । मार्गों में इतनी भीड़ हो गई थी कि दुर्बल मनुष्य का निकलना कठिन था, हर कोई चर्चा करता था और सारे पुरवासी शोकातुर थे, कि रामचन्द्र जी राजभवन पर पहुंचे और देखा कि सुमन्त द्वार पर खड़े हैं ॥

रामचन्द्र-ए सुमन्त ! हमारी ख़बर तो कर दीजिये ॥

सुमन्त—(जो आज्ञा,कह राजा के पास पहुंचे। देखा कि राजा भूमि पर पड़े लंबे श्वास लेरहे और कटकर में बन्धे सिंह और राख में दबी आंच की नाईं बे क़ाबू हा रहे हैं। चेहरे पर मुर्दनी छाई है,लाली नाम को नहीं। आह २ करते हैं कभी २ ए राम ! २ कह देते हैं। हाथ जोड़) महाराज आप की कीर्त्ति बढ़ती रहे और लाख वर्ष तक शिर पर छत्र बना रहे। आप के पुत्र रामचन्द्र सब दान पुण्य कर सीता और लक्ष्मण सहित आप के दर्शनार्थ द्वार पर खड़े हैं। वे अपने इष्ट मित्रों से तो विदा हो चुके अब आप के चरण छूने का अभिलाष रखते हैं और तुरन्त वन जाया चाहते हैं,अब तो आप उन्हें देख लें॥

दशरथ—(हा हा करते) अच्छा सुमन्त ! सब रानियों को भी ख़बर कर दो, हमारे आगे रामचन्द्र को वन जाता देख लें॥

सुमन्त—(जो आज्ञा, कह सारे रणवासों में कह आये। अब सब रानी एकत्र हो कोपभवन में पहुंचीं)

चन्द्रमुखी—इन तीनों पटरानियों के सिवाय दशरथ जी के साढ़े तीन सौ रानी और थीं,सब कौशल्या जी के पीछे आईं और राजा ने सब को देखा।

राजा—(गद्गद वाणी से) सुमन्त ! अब प्राण प्यारे राम (और रोने लगे हिड़की बन्ध गई)

सुमन्त—चलिये राजकुमार (और रोने लगे हिड़की आने लगीं)

रामचन्द्र, सीता और लक्ष्मण सहित राजा के सम्मुख पहुंचे, देखते ही राजा हाथ फैलाय इन की ओर चले कि शोक ने दबा लिया और मूर्छित हो गिर पड़े। जब दोनों भाइयों ने यह दशा देखी तो धैर्य धारण कर मूर्छित पिता के पास पहुंचे और सब रानी, हा राम २ कह २ मूर्छित हो, पृथिवी पर गिर पड़ीं। उस समय क्या स्त्री क्या पुरुष कोई भी सावधान न था। अब किस से कहें कि राजा को उठावे। लाचार इन्हीं तीनों ने मिल राजा को पलङ्ग पर डाला। अब कोई ओषधि नहीं जो राजा को सुंघा मूर्छा से जगावें और पंखा कहां जो हवा करें, जल कहां जो मुख पर छिड़कें, बड़ा शोक का समय था। प्यारी ! यह जगत् भी भला रङ्गीला है,देखो ऐसा राजा, सेना परिवार सब मौजूद, पर राजा को पंखा और पानी तक नहीं मिलता, सुपात्र पुत्र खड़े हैं,पर सहाय नहीं कर सकते ३५३ रानी हैं पर कोई भी चूं नहीं करती। मन्त्री पुरोहित हैं पर सब मूर्छित। ईश्वर याद आता है कि क्या था और क्या होगया। सुन्न होरहा है। महल में अनगिनत मनुष्य हैं

पर कोई चूं नहीं करता, बेटे, बहू हैरान कि क्या करें। लाचार इन्हीं तीनों ने अपने कपड़ों से हवा करी और १ महूर्त्त में मूर्छा जागी॥

रामचन्द्र—(कर जोड़े) आप सब के स्वामी हैं। इस कारण हमें वनगमन की आज्ञा दीजिये और प्रसन्नतापूर्वक देख लीजिये, फिर आप हम को १४ वर्ष तक न देख पावेंगे। पिता जी! लक्ष्मण और सीता भी हमारे सङ्ग वन जाते हैं, हमने इन को बहुत समझाया पर मानते ही नहीं, लाचार हो इन को भी अपने साथ लिये जाते हैं। अब दो कर जोड़ प्रार्थना है कि इन दोनों को भी प्रसन्नता से हमारे साथ जाने की आज्ञा दे दीजिये। जैसे तपस्या के लिये सनकादि को ब्रह्मा जी ने आज्ञा दी थी, ऐसे ही हम को आज्ञा दीजिये (और उत्तर का इन्तिज़ार किया)

दशरथ—ए मेरे प्यारे राम! हमने केकयी के प्रेम में केकयी को वरदान दिया था। अब तो उस के पूरा करने को हमारी इच्छा नहीं है, पर नाह भी नहीं कर सकते,तुम अब हमारा कहा मानो, हम को कारागार में डार,निर्भय अयोध्या का राज्य करो। इस में कोई हम को वर पूरे न करने का दोष भी न देगा और तुम्हारे वियोग का दुःख भी न उठावेंगे॥

रामचन्द्र—(बड़ी सावधानी से) महाराज! आप की आयु सहस्र वर्ष की हो और आप इस से अधिक जीवें, त्रिलोकी में राज्य रहे। यह १४ वर्ष का वनवास और राज्यत्याग तो बात ही क्या है जो और कोई कठिन बात हो तो भी तो हम तुम को थोड़ासा भी दोष छल से या जान कर देना नहीं चाहते। झूठ करने या कहने से तो अवश्य नरक मिलता है, इसी भय से हम अवश्य १४ वर्ष तक प्रसन्नतापूर्वक वन में बसेंगे और आप के सत्य वचन पूरे करेंगे, बात ही क्या है, १४ ही वर्ष तो हैं, इन को जल्द पूरा कर फिर आप की सेवा करेंगे॥

केकयी—राजन्! अभी २ रामचन्द्र को वन भेजो, देर न करो, क्या आप को वचन का ध्यान नहीं रहा? ऐसा कार्य कर क्या जगत् में अमर रहोगे? क्या सदा जीओगे? भला सत्पुरुषों में कैसे मुख दिखलाओगे? अच्छा दुनियां को छोडो, परलोक में परमात्मा के आगे कौन मुंह से जाओगे? क्या यही कहोगे कि हमने धोखा कर रामचन्द्र को वनवास से रोका। शोक आप की समझ पर और आप के विचार पर॥

राजा-(गद्गद वाणी से) ए तात ! अपने परलोक के सुख और जगत् की कीर्त्ति के लिये वन जाओ, परमात्मा तुम्हें प्रसन्न रक्खे, कहीं भी भय न हो, तुम्हारा कल्याण ही कल्याण हो । परमेश्वर करे कि सुखपूर्वक लौटो । हम ने भलीभांति जान लिया कि तुम सच्चे धर्मात्मा हो । तुम्हारी मति कोई भी कैसे ही नहीं बदल सकता, पर पुत्र ! आज की रात तौ यहां रह जाओ । भला एक दिन तौ हम तुम को और देखलें और आज तो तुम्हारे सङ्ग भोजन करलें । बेटा ! १४ वर्ष किस ने देखे हैं । ए पुत्र ! हमारी और अपनी माता की प्रसन्नता के लिये तो यहीं बसो, भोर ही मुह अन्धेरे उठ जाना । ए पुत्र ! तुम बड़ा कठिन कार्य करते हो, आज तक ऐसा काम किसी ने नहीं किया और न करने की आशा है । तुम तो हमारे कल्याण के लिये प्यारे माता पिता को छोड़ वन जाते हो । ए पुत्र ! हम अपने सत्य की शपथ करते हैं कि तुम्हारा वनगमन हमें स्वीकार नहीं, पर क्या करें, जैसे राख में दबी आग पर पड़ने से पांव जल ही जाता है वैसी ही दशा हमारी है । हम तो अपनी स्त्री के जाल में फंस गये और उस ने मनोरथ पूरा किया। इस कुलनाशिनी केकयी ने बहकाया या कलेजे में तीर मारा, पर तुम बड़े सपूत हो कि इस भाग्यहीन रूपधारी का जाल भी काटा चाहते अर्थात् धोखे में लिये वचन भी पूरे करने को तत्पर हो । ए पुत्र ! तुम थोड़ा भी हमें झूठा बनाना नहीं चाहते यह आश्चर्य की बात नहीं, तुम सर्वगुणसम्पन्न हो और हमारे ज्येष्ठ पुत्र हो॥

रामचन्द्र-(मन में, हमने तो केकयी से तुरन्त वनगमन का प्रण किया था और पिता जी प्रेम से रोकते हैं. अब क्या करें, प्रकट में) पिता जी ! हम को जगत् में जो कीर्त्ति मिलेगी, वह कल जाने में नहीं । भला प्रजा कहेगी कि प्रसन्नतापूर्वक गये ? यही कहेंगे कि पछता २ कर घर से निकले । इस लिये क्षमा कीजिये और न रोकिये । पिता जी ! यह राज्य तौ प्रजा सहित हम ने आप से पाय त्याग दिया । अब आप कृपा कर इसे भरत को दे दीजिये और हमें इस में न फांसिये और माता केकयी के हमारे वन भेजने और भरत को राज्य देने के वर पूरे कीजिये और हमारी वनगमन की तयारी न रोकिये । आप कुछ विचार न कर भरत को बुला सब राज्य कोषसमेत दे दीजिये । भरत तो प्यारा भाई है, जो अन्य पुरुष को भी राज्य देते तौ हमें इनकार न था । पिता जी ! अब आप अपने वचन पूरे करें । आप के माता केकयी से हारे वचन पूरे करने को प्रसन्नतापूर्वक १४ वर्ष तक तपस्वियों का वेष

बनाय मुनियों के साथ वन में बसेंगे । हम जैसा आप का वचन पूरा करना उत्तम जानते हैं वैसा अपने सुख के लिये राज्य को अच्छा नहीं जानते। आप इस समय अपना शोक छोड़ आंसू रोकिये और विचारिये कि समुद्र इतना बड़ा होने पर भी अपनी पाल नहीं छोड़ता। अब हम को न राज्य की कांक्षा है न सुख की और न प्राण की और न सीता की और न सब मनुष्यों की और न स्वर्ग की, केवल आप के वचनपालन की ही इच्छा है। हम तौ लेशमात्र भी आप का झूंठ का धब्बा लगाना नहीं चाहते । रात्रि भर तौ बहुत है, हमारी तौ यहां अब पल भर भी ठहरने की इच्छा नहीं, अब आप हमारे वियोग का शोक हृदय में रखिये और तुरन्त जाने की आज्ञा दीजिये अब हम अपने वचनानुसार यहां नहीं रह सकते । माता केकयी ने हम से कहा था कि राघव वन जाओ, तब हमने उत्तर दिया कि जाते हैं। सो पिता जी ! हम वे वचन भी सत्य ही किया चाहते हैं । आप अब प्रेम के आंसू रोकिये, हम आप की कृपा से सुखपूर्वक वनवास करेंगे, शोक की कौन बात है ? ए तात ! पिता सब देवतों का देवता है । हम इसी विचार से पिता जी के सब वचन पूरे करेंगे और १४ वर्ष बीतने पर आप को यहीं देखेंगे, आप हमारे वियोग का शोक छोड़ दीजिये, आप तौ इन सब रोतों को समझाते पर आप तौ आप ही रो रहे हैं, इन को कौन शान्ति दे। पिता जी ! यह राज्य तो हमने प्रसन्नता से छोड़ा है । अब बेखटके भरत को दे दीजिये। हम आप की आज्ञा सर माथे रख अभी २ वनवास करने जाते हैं । अब इस राज्य की रक्षा भरत करें और आप का केकयी को दिया वर सत्य हो ॥

छन्द

महिपाल जिमि तो वचन पालन लगत मोह सुहावनो ।
तिमि लगत नहीं मन मोर प्रिय सखा कर पावनो ॥
मम हेतु त्यागो दुःख महीपति हमें दुःख वन में नहीं।
तो कृपा तहां आनन्द रह ही यह वचन मनसों कहीं॥

सुमन्त (मूर्छा से जाग, सर पीट, हाथ मींड, दान्त चबाय, क्रोध से आंख लाल कर, कठोरता से) ए दुष्टा केकयी ! जब तुमने सब वन व नगरों के स्वामी अपने पति दशरथ जी को त्याग दिया तो कौनसा कुकर्म करने को

रहगया ? अब तुम जो कुछ न करो सो थोड़ा और हम तो तुम को पति-मारिणी और कुलनाशिनी कहेंगे । अरे दुष्टा ! तैंने पर्वत से धीर राजा को चलायमान कर दिया और दशरथ से वरदाता को तैंने लज्जित किया । अरे दुष्टा ! स्त्रियों को पति की इच्छानुसार कर्म करना चाहिये, पर तैंने छोटे पुत्र को राज्य दिला राजा को सारे जगत् में निन्दित किया । अरे इक्ष्वाकु-वंश में तो तो सदैव से यह रीति चली आई थी कि राज्य बड़े बेटे को मिले सो तैंने तो राजा के जीते ही बड़े से राज्य छीन छोटे को दिला अनर्थ किया । इस अधर्म का फल जानती है ? इस का फल नरक है। अच्छा तुम्हारे पुत्र भरत राजा हों और राज्य करें। हम तो रामचन्द्र ही के पास बसेंगे । सो हम एकले ही नहीं, सारे ब्राह्मण रामचन्द्र जी के पास चले जायंगे, तुम्हारे राज्य में कोई न बसेगा। देखो जहां नियम विरुद्ध कुल की रीति को तोड़ छोटे बेटे को राज्य दिलाया, क्या वहां यह थोड़ा अनर्थ हुआ है? ख़ैर जो कुछ हुआ सो हुआ, जाने दो, अभी कुछ नहीं बिगड़ा, रामचन्द्र को वन गमन से रोको । अरे हम को तुम्हारे अनर्थ से आश्चर्य है कि पृथिवी क्यों नहीं फट जाती और बड़ा शोक है कि वसिष्ठादि ब्राह्मणों के वचन तुम्हारा नाश क्यों नहीं करते और राजा को क्या कहें उन्होंने तो आम काट, नीम लगाया । चाहे उसे दूध और शहद से सींचें उस से कभी मीठा फल नहीं ले सक्ते और तुम्हें क्या दोष दें, तुम तो होनहार माता की पुत्री हो, उन्होंने तो तुम से बढ़ चढ़ कर काम किया था । क्या तुम्हें याद नहीं । हम से तो हमारे बड़ों ने कहा था सो याद है, भूले नहीं, इस समय हम सब को सुनावेंगे । सुनो श्रोताओ ! इन की माता का करतब तो सुनलो कि ये कौनसी माता की पुत्री हैं । किसी ने सत्य कहा है ॥ मां पर पुत्रि पिता पर घोड़ा । बहुत नहीं तो थोड़ा थोड़ा ॥

केकयी की माता का वृत्तान्त

केकयराज को तो आप जानते ही हैं। ये केकय कुल में कयानदेश के राजा हैं, इन का प्रबन्ध बड़ा उत्तम है, ये साधु सन्तों से बहुत मिलते थे । समय की बात है कि एक तपस्वी ने इन्हें पक्षियों की बोली पहचानना सिखा कर कह दिया कि तुम किसी को बतलाना मत और जो बतलाओगे तो तुरन्त मरजाओगे । सो एक समय राजा रानी रनवास में थे कि एक पक्षी बोला और राजा हंस पड़े ॥

रानी—राजन् ! आप क्यों हंसे ?

राजा—मैं कारण नहीं बता सकता ॥

रानी—क्यों, क्या कारण, तुम मुझ पर हंसे हो ?

राजा—नहीं तुम पर नहीं हंसा और कारण बताने में मृत्यु का भय है ॥

रानी—वह ऐसी क्या बात है कि जिस के कथन में मृत्यु का भय है ?

राजा—मैं पक्षी की बोली पर हंसा हूं और वह तुम्हें नहीं बता सक्ता॥

रानी—राजन् ! मुझे ज़रूर बतला दो ॥

राजा—मैं तुम से कह चुका कि उस के बताने में मृत्यु का भय है ॥

रानी—भला कहां से आपने बोली जानना सीखा ?

राजा—एक तपस्वी ने बताया ॥

रानी—तो क्या वह मर गया ?

राजा—नहीं वह तो जीता है ॥

रानी—तो जब बताने वाला जीता है तो तुम कैसे मरजाओगे ?

राजा—वह तपस्वी है, वह नहीं मर सकता ॥

रानी—मुझे तो बता ही दो, बे पूंछे न मानूंगी ॥

राजा—तो मैं मरजाऊंगा और तुम रांड होजाओगी ।

रानी—चाहे तुम मरो या जीवो और मैं रांड हूं या सुहागन रहूं, पर तुम्हें बताना ज़रूर पड़ेगा, राजा ने रानी को बहुत समझाया पर न मानी और ज़िद्द करती २ तुम्हारी नाई कोपभवन में जा बैठी और राजा भी लाचार हो तपस्वी के पास पहुंचे और दूर से ही कर जोड़ प्रणाम किया ॥

तपस्वी-आइये राजन् ! प्रसन्न तो रहे, प्रसन्न तो आये, आज कैसे उदास हो?

राजा—मुनिराज ! आज मेरी रानी पक्षियों की बोली पूछने को हठ कर रही है, समझाने से नहीं मानती, कोपभवन में पड़ी है ॥

तपस्वी—हमारे वचन तो असत्य हो नहीं सकते जो बताओगे तो तुरन्त मरजाओगे, तुम्हें उसे समझाना था कि बताने में मृत्यु का भय है ॥

राजा-महाराज ! मैंने कह दिया पर उस ने कहा कि तुम मरो या जीवो पर मुझे बतादो ॥

तपस्वी-राजन् ! ऐसी दुष्टा को दण्ड दो या तुम राज्य छोड़ कहीं चले जाओ या उसे गृह से निकाल दो पर उस का कहा न करो, भला जब प्राण ही न रहेंगे तो स्त्री किस काम आवेगी ।

राजा-(जो आज्ञा, कह रणवास में आया और रानी से कह दिया कि जो चाहो सो करो, पर मैं तुम्हें न बताऊंगा)

रानी–तौ ज्ञात हुआ कि तुम को मुझ से प्रीति नहीं, इस कारण मैं तुम्हारे पास रहा नहीं चाहती ॥

राजा–तुम्हारी इच्छा, रहो या न रहो पर मैं नहीं बताऊंगा ॥

ए केकयी ! इसी पर तुम्हारी माता ने राजा को छोड़ दिया और अपने पिता के घर चल दी । अब देखो कि तुम्हारे पिता आनन्द से राज्य कर रहे हैं । राजा अपनी बुद्धिमानी से बचे परन्तु तुम्हारी माता ने तौ कोई कर्म नहीं उठा रक्खा । वही काम इस समय तुम ने किया बल्कि उन से बढ़ चढ़ कर कि राजा तुम्हें नहीं छोड़ सके और तुम अवश्य राजा के प्राण लोगी ! तुम तौ राजा को मूर्खता सिखाती हो जिस से जगत् में पापिनी कहाओगी और तुम्हारा नाम बड़ी तुच्छता से लिया जायगा और तुम्हारे नाम पर अपनी बेटी का नाम केकयी कोई न रक्खेगा । यह तौ प्रसिद्ध है कि पुत्र पिता के गुणों पर और पुत्री माता के गुणों पर होती है, सो हमने तौ तुम्हारी माता का स्वभाव तुम में देख लिया । अब भी कृपा करो जो हो गया सो हो गया, पर अब भी पति की आज्ञा मानो और हम लोगों पर कृपा करो । योग्य और कीर्त्तिमान् राजा को हलकान न करो और इस लोकपाल राजा को पापाचरण न सिखाओ कि बड़े बेटे को वनवास और छोटे को राज्य दें और यह भी विचार होता है कि तुमने परीक्षा या हंसी से कहा है, सच मुच नहीं कहा, राजा इसे न मानेंगे, यही अच्छा है कि सत्यवादी सत्यकर्मी राजयोग्य श्री रामचन्द्र के राजतिलक की राजा को सम्मति दीजिये । देखो, रामचन्द्र बड़े पुत्र सर्वगुणसम्पन्न हैं, जो वे राज्य छोड़ वन गये तौ जगत् में बड़ी अपकीर्त्ति होगी ॥

चौपाई

राम राज निज पालें नीके। वन जुड़ वसो नगर तुम ठीके॥
राम समान अवधपुर माहीं। तों सत्कार और कोऊ नाहीं ॥
जब रघुनाथ राज पद पावें। तब दशरथ नृप वन को जावें॥
यह इक्ष्वाकु नृपति कुलवाना। रहें अन्त में वन मन माना॥

केकयी—ए सुमन्त ! जो मुझे ब्रह्मा भी समझावें तो न मानूंगी, न मानूंगी । राज्य तौ भरत को मिल ही गया है। पर अभी २ रामचन्द्र को १४ वर्ष के लिये वन भेज, पानी पीऊंगी ॥

दशरथ-(क्रोधित आंखों में आंसू भरे) ए सुमन्त ! यह दुष्टा न मानेगी न मानेगी। अब तुम रामचन्द्र के सङ्ग जाने को चतुरङ्गिणी सेना तैयार करो बनिये लोग भी अपनी २ दुकान रामचन्द्र के साथ ले जायं, रामचन्द्र के नौकर चाकर और सखाओं को बहुत सा धन दे समझा दो कि आंसू रोकें और सब पुरवासी रामचन्द्र के पीछे २ वन को चले जायं और उन का रास्ता जानने वाले साथ कर दिये जायं कि जिस से रामचन्द्र सब के सङ्ग हाथी सिंह मारते फूलों का रस पीते, वन में राज्य का शोक न करें और हमारा सब सामान जो अयोध्या में है, वह रामचन्द्र के सङ्ग वन में भेज दिया जाय कि जिस से वे यज्ञ कर बहुत दान दें, ऋषियों के सङ्ग वन में वसें, अब तो भरत अयोध्या में राज्य करें पर जब राम वन से लौटें तो तुरन्त राज्य रामचन्द्र को दे दें और अब तो रामचन्द्र के वनगमन की तयारी करो ॥

केकयी—(भयभीत हुई, मुख शुष्क, बोल बन्द) राजन् ! जब सब धन दौलत और सेना रामचन्द्र के सङ्ग वन को चली जायगी तो राज्य में रहेगा क्या ? और ऐसे राज्य को भरत लेकर क्या करेगा ? भला राज्य तो शहद निकले छत्ते की नाईं हो जायगा ॥

दशरथ—अरे दुष्टा ! राम के वन जाने और भरत के राज पाने को तैने कहा, सो हमने स्वीकार किया, अब तू चलते बैल के क्यों आर लगाती है और घाव पर नोन बुरकती है, क्या हम को रामचन्द्र से वैर हो गया है? जो तुझे ऐसा ही करना था तो पहले क्यों न कहा कि रामचन्द्र सेना और कोष सहित राज्य छोड़ वन जावें, हमने तो राज्य छोड़ वन जाने को कहा है अब इस के विरुद्ध न होगा ॥

केकयी—(बड़े क्रोध से) क्या यह नई बात है ? तुम्हारे कुल में नहीं हुआ कि बडा वनवास करे और छोटा राज्य पावे, क्या इस कुल में सब से पहले रामचन्द्र ही वनवास को जाते हैं और भरत राज्य पाते हैं,जब पहले हो चुका तो मुझे कहने की क्या आवश्यकता थी। विचारो, राजा सगरने भी तो बडे असमञ्जस को वनवास और छोटे अंशुमान् को राज्य दिया था, उसी तरह राम भी वन जायं। इस में विचार ही क्या है ॥

राजा—अरे दुष्टा ! तुझे धिक्कार है, जो ऐसा कहती है। सब मनुष्य लज्जित होते हैं, पर तू लज्जित नहीं होती ॥

केकयी—नहीं नहीं,ज़ियादह कहने की आवश्यकता नहीं। रामचन्द्र को तुरन्त विना धन माल वन जाना होगा और भरत भरा पूरा राज्य पावेगा॥

सिद्धार्थ मन्त्री—ए केकयी ! तैंने जो असमञ्जस का नाम लिया,सो असमञ्जस के सब आचरण बुरे थे वह तो अयोध्यावासियों के बच्चे गरम रेत में फेंक कर उन के तड़फने का तमाशा देखा करता था और सारे पुरवासी उस से दुःखित थे इस लिये उसे राजा ने निकाला था । बता रामचन्द्र में कौन दोष हैं और उन से कौन दुःखी है ? भला रामचन्द्र असमञ्जस से कुकर्मी हैं? एक दोष तो रामचन्द्र में बतादे और कोई भलाई असमञ्जस की।अरे दुष्टा ! कौनसे दोष से रामचन्द्र को वनवास देती है ? हम तो श्रीराम में कोई दोष नहीं देखते, सम्भव है कि हम को रामचन्द्र का दोष प्रकट न हुआ हो तौ तू ही बता कि किस कारण वनवास होता है । सोचो,अनुचित कर्म करने से सारे बल, सम्पत्ति और पिछली कीर्त्ति नष्ट होजाती है । इस कारण उचित है कि अपना स्वार्थ छोड़ो और जानलो कि भरत भी तुम्हारे इस कार्य से प्रसन्न न होंगे और प्रसन्नता तो दूर, राज्य को स्वीकार ही न करेंगे । जगत् में कीर्त्ति बढ़ालोगी और कुछ होना हुवाना तो है नहीं ॥

रामचन्द्र—(राजा को दुःखित देख हाथ जोड़े)राजन् ! हम तौ सब सुख छोड़,वन में बस,कन्द मूल फलादि भोजन करेंगे । हमारे सङ्ग धन और सेना की क्या आवश्यकता है । किसी ने कहा है कि जिस ने हाथी देडाला और गद्दी वा रस्सी का लालच करे तो मूर्ख कहाता है, ऐसे ही सेना लेजाने से हम को क्या लाभ, हमारे लिये तो अब मुनियों के से चीरवल्कल चाहियें, वे मंगाय दीजिये और ऐसे हों कि १४ वर्ष काम दे सकें, बीच में टूट फाट न जायं और कन्द मूल खोदने को एक गेंती या कुदार और रखने को १ पिटारी चाहिये सो आज्ञा दीजिये कि माता अपनी दासियों से मंगाय दें और तुरन्त वन चले जायं और आप का शोक दूर हो ॥

केकयी—(बड़ी प्रसन्नता से उठ, वनवास योग्य चीरवल्कल ला) लो पुत्रो ! जल्द पहन वन जाओ ॥

चन्द्रमुखी—अब रामचन्द्र और लक्ष्मण ने प्रसन्नतापूर्वक चीरवल्कल पहने और सीता मृगी के जाल से डरने की नाई उन कुशा और उन के वस्त्रों से कांप उठीं ॥

सीता—(मलिनमुख) महाराज ! मुझे पहरना तो बताय दीजिये,ये कैसे पहरे जाते हैं और वनवासी इन्हें कैसे पहरते हैं, मैं इन का पहरना नहीं जानती क्योंकि मैंने कभी पहरे ही नहीं ॥

चन्द्रमुखी—बहनो ! राजकुमारी जनकदुलारी विचारी क्या जाने कि इन्हें कैसे पहरते हैं, पहरना तो अलग, इन्हों ने तो देखे ही आज हैं। हा ! परमात्मा की माया कैसी विलक्षण है और यह समय उस की जांचका है कि जनकदुलारी का लाड़ प्यार में पालन पोषण हुआ और जन्म से सुख ही सुख पाया और सैंकड़ों सहेली और बांदी मौजूद, उत्तम उत्तम वस्त्रा भूषण पास, मकान स्वर्ग से भी अधिक रमणीय और सुगन्धित शरीर पर बारीक कपड़े पहने, कड़े कपड़े और कुशा को छूने का तो अवसर ही नहीं मिला और बे बिछौने भूमि पर चलना तक नहीं पड़ा और सदा मख़मल आदि के बिछोनों पर फिरा कीं और हां कभी वस्त्र भी हाथ से नहीं पहने, टहलनियों ने ही पहनाये और सदा माता पिता और सास ससुर की आंख का तारा ही रहीं और कभी गरम हवा तक नहीं लगी। शोक के वचन कानों से भी नहीं सुने, मग्न ही मग्न फिरा कीं और आज अनाथा की नाईं नंगे पांव भूमि पर खड़ी सुखके बदले में रो रहीं और शूरवीर पति को मुनिवेष में देख रहीं हैं, कोई सेवक पास नहीं, कपड़ा पिन्हाने वाली टहलनी का पता नहीं और उत्तम वस्त्रों की जगह कुशावस्त्र पहरने को आगे धरे हैं, सासू सुसर पति हैं, पर सब सुख के बदले दुःख देने को तयार, जिधर दृष्टि जाती है, रोना ही सुनाई देता है। महलों में रहने के बदले निर्जन वन में वसने की आशा लगी है।उत्तम भोजनोंके बदले वन फल खाने का प्रबन्ध हो रहा है। हा ! कैसे कष्ट का समय है और इस जनकदुलारी के मन में कैसा शोक भरा है कि सुनने वालों की छाती फटी जाती है। सारी आशा धूल में मिलती दिखाई देती हैं,बहनो ! इस विचार से जगत् का भरोसा न कर परमात्मा से डोर लगाओ, उस के भय से डरो, विपत्ति सामने खड़ी समझो। अब चीर का एक सिरा तो जानकी जी के हाथ में और दूसरा गले में। खड़ी शोचती हैं कि कैसे पहनूं। हा ! यह भोली सी बात (महाराज ! इस को कैसे पहरते हैं) दिल पर कैसी चोट देती है, कलेजा फटा जाता है, विचारिये तो इस समय राजा दशरथ और रानी कौशल्या के दिल की क्या दशा होगी॥ अब रामचन्द्र जी ने अपने हाथ से रेशमी साढ़ी पर चीर पहना दिया। बहनो ! कैसा वीर पति अपनी परमप्रिया ! रानी को अपने हाथ से जोगिया वस्त्र पहना रहा है, भला इस दुनियां पर अभिमान तो क्या विश्वास भी करना और आपे से बाहर हो जाना पूरी मूर्खता नहीं तो कुछ और है? जब

रानियों ने रामचन्द्र जी को चीर पिन्हाते देखा तो हा ! राम २ कह ऊर्ध्व स्वर से रोने लगीं ॥

सब रानी—ए वत्स राम ! यह राजकुमारी श्री जानकी चीरवल्कल पिन्हाने के योग्य नहीं और न वन जाने योग्य है । ए पुत्र ! ऐसा न करो । इसे चीरवल्कल न पिन्हाओ । इसे हमारे पास ही रहने दो, जब तक तुम वन से लौटो इन्हें यहीं रहने दो. हम इन को ही देख २ दिन पूरे करेंगे । ए वत्स ! तुम लक्ष्मण को साथ लेजाओ, जनककुमारी वन जाने योग्य नहीं । इसे वन न ले जाओ, इतना हमारा कहा तो मान जाओ, हम तुम्हें नहीं रोकतीं कि वन न जाओ । ए पुत्र ! तुम तो धर्म में चूर हो और तुम को ही आज्ञा भी हुई है. यह तो हम जानते हैं कि तुम तो यहां नहीं रह सकते पर इस प्राणप्यारी जनकदुलारी को तो हमें देते जाओ, इन्हें तो राजा ने वनगमन के लिये नहीं कहा, इन्हें वन न ले जाओ ॥

वसिष्ठ—(रामचन्द्र को चीर पिन्हाने से रोक केकयी से) ए ! मर्यादाभङ्ग करने वाली दुष्टबुद्धि कुलनाशिनी केकयी ! तू राजा को धोखे में डाल बड़ी नीतिज्ञ बनना चाहती है और मूर्खता पर ध्यान नहीं देती, जब तक कोई न बोले, मन माना कार्य किये जाती है । ए निर्लज्जा ! अब तेरी बड़ाई गई, सुन सीता वन को न जायगी जब तक राम वन से लौटें तब तक राज्य करेगी । भरत राजा न होगा, विचार कि जब गृहस्थ स्त्रियां अर्धाङ्ग होने से पति की अङ्ग जानी जाती हैं । ऐसे ही सीता भी तो रामचन्द्र का अङ्ग है. वह अवश्य प्रजापालन करेगी और जो तेरी मूर्खता और हठ से यहां न रही और रामचन्द्र के सङ्ग वन को चली गई तो हम उस के सङ्ग वन को चले जायंगे । और हम हो क्या, सारी अयोध्या उन के पीछे २ जायगी, यहां कोई न रहेगा और सब पहरेदार नौकर चाकर और पेशे वाले सब उन के पीछे २ प्रसन्नतापूर्वक वन को चले जायंगे । अरे औरों की तो क्या गणना जिस भरत के लिये तू ऐसा करती है वे भी तो शत्रुघ्न के सङ्ग रामचन्द्र की नाईं चीरवल्कल पहन अपने बड़े भ्राता रामचन्द्र के पीछे २ वन को चले जायंगे, तब तू इस खाली अयोध्या की रक्षा करना और खुडरों से शिर मारती रहना । अयोध्या में कोई मनुष्य तो रहेगा ही नहीं, सारा राज्य वन को जायगा, तब तू प्रजापालन करना । ए मूढ़ ! समझ जहां रामचन्द्र न रहेंगे वहां राज्य ही न रहेगा, वन में जहां रामचन्द्र बसेंगे वहीं राज्य भी बसेगा । जो सब मुख भरत दशरथ

जी के वीर्य से पैदा हुये हैं तौ वे भी रामचन्द्र जी की आज्ञा विना रामचन्द्र के दिये राज्य की रक्षा न करेंगे। चाहे तू पृथ्वी छोड़ आकाश को चली जाना पर भरत तेरा कहा तो करेंगे ही नहीं क्योंकि भरत जानते हैं कि इस कुल में तो राज्य बड़े बेटे को मिलता है छोटे को नहीं मिलता। फिर वे सनातन रीति के विरुद्ध कैसे राज्य कर सकेंगे। फल यह है कि तुमने जो अपनी मति में बेटे को राज्य मातृप्रेम से उचित समझा है यह कार्य भरत की मति के विरुद्ध होगा। समझ लो, दुनियां में सिवाय तुम्हारे कोई नहीं जो रामचन्द्र के पीछे २ वन को न चला जाय। मूर्खे! मनुष्यों की कौन कहे पशु पक्षी भी तो रामचन्द्र जी के पीछे २ वन को चले जायंगे और जीवधारियों की क्या, वृक्षों को देखना वे भी रामचन्द्र जी के सङ्ग चलने को झुकेंगे, जिस से जान पड़ेगा कि पीछे चलने की इच्छा करते हैं यह सब तू थोड़ी ही देर में देखेगी॥

चन्द्रमुखी—बहनो! जिस समय अनाथों की नांई जानकी जी ने चीर वल्कल पहने उसी समय सब स्त्री पुरुष जानकी जी को विधवा स्त्रियों की भान्ति वस्त्र धारण किये देख कोलाहल करने लगे और बोले कि राजा को धिक्कार है जो स्त्री के कहे से ऐसे वीर पुत्र को वन भेजते हैं और शोक यह है कि जनककुमारी पतोहू तो रामचन्द्र के जीते इस दशा से वन जाती है। इस हाहाकार से राजा बड़े शोकातुर हुये और जान लिया कि अब हम न जीवेंगे, क्योंकि अब न धर्म रहा न प्रतिष्ठा और जब धर्म और प्रतिष्ठा ही नहीं रही तो जीवन कैसा॥

राजा—(बल से सांस ले) ए केकयी! कुशावस्त्र पहन सीता वन जाने योग्य नहीं, एक राजकुमारी, द्वितीय बालावस्था, यह तो सदैव सुख से महलों में रहने योग्य है, वन जाने योग्य नहीं। हमारे गुरु जी सत्य कहते हैं कि सीता विचारी ने तो किसी की हानि नहीं की और दुष्टा! यह जनक की पुत्री दशरथ की पतोहू तपस्वीवेष में कुशावस्त्र पहन, सब के आगे खड़ी है। तुझे दया नहीं आती। बेटी सीता! तू चीर वल्कल फेंक दे, हमने यह वर नहीं दिया कि सीता ऐसी दशा से वन जायगी, जो तुम को रामचन्द्र के सङ्ग वन जाना है तो अपने वस्त्राभूषण पहन घर से वन जाओ, अब हम को पूर्ण विश्वास है कि मृत्यु हमारे निकट ही खड़ी है, अरे दुष्टा! हमने तेरे कहने से ऐसा वचन किया। अरे! तू तो इसे और चमकाती और मूर्खता नहीं छोड़ती। अरे! तैने यह कुकर्म किया कि सीता को भी चीरवल्कल लादिये, ये तेरा कुकर्म हमें अवश्य दहेगा और तेरे रांड होने में संदेह नहीं। अरे

दुष्टा ! तैने तो बांस के पुष्प का सा काम किया कि जो बांस से उत्पन्न हो बांस ही को सुखा देता है और पापिनि ! सम्भव है कि रामचन्द्र ने कोई बात तेरे विरुद्ध की हो पर इस परमसुन्दरी सीता प्यारी ने तो कभी तेरा अनादर नहीं किया । ए पापिनि ! तू तो रामचन्द्र के ही वन गमन से करोड़ों वर्ष नरक भोगेगी पर इस सीता प्यारी को वन भेज क्यों अधिक पाप कमाती है । बता तो तेरी क्या दशा होगी ? अरे दुष्टा ! हमने तो रामचन्द्र को राज्यतिलक की नांह के लिये बुलाया और तैने वनगमन को कह दिया, हमने मान लिया कि अच्छा रामचन्द्र वनवास करेंगे । अरे ! यह सीता वनवास कैसा ? सीता का वनवास तो हमारे ध्यान में भी न था । जो तू सीता को चीरवल्कल देती है तो अवश्य नरकवास करेगी (और मूर्छित हो, भूमि पर गिर पड़े, थोड़ी देर में मूर्छा जागी और रामचन्द्र को तपस्विवेष में देख मूर्छित होगये)

रामचन्द्र—(मूर्छित राजा से) राजन् ! अब हम को देर होती है, देखिये धर्मात्मा धीरबुद्धि हमारी माता कौशल्या आप से कुछ भी गिला नहीं करतीं फिर आप उदास और शोकातुर क्यों होते हैं, आप हमारी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये कि हमारे वन जाने पर इन दुःखियारी की शुश्रूषा रखना, इन पर तो यह कष्ट पहला ही है । इस लिये सहन कठिन होगा ॥

चौपाई

जासू पुत्रशोक नहीं पावे । मानत रहो सदा मन भावे ॥
हमें शोचती दिन और राती । जीवे करो मान तेहि भांती ॥
पुत्रदर्श विन जिमि ममभाता । मम वनगमन शोचकृशगाता ॥
प्राणत्याग यमपुर न सिधारे । तुम मानो हम यह वर पावे ॥

दशरथ—(मूर्छा से जाग) हम जानते हैं कि पहले जन्म में हमने बहुत सी गौओं के बच्चे उन से अलग किये थे । या बहुत से जीव मारे हैं, इस से हम को यह शोक हुआ है, हम को मृत्यु भी नहीं आती और न इस केकयी के अन्याय से प्राण निकलते हैं । हा ! हम रेशम के वस्त्र पहरने वाले अपने पुत्र को ऊन और कुशा वस्त्र पहने अपने आगे खड़े देखते हैं । हा ! इस दुष्टा केकयी की स्वार्थसिद्धि के लिये ये दुःख पा रहे हैं (और कफ़ की वृद्धि से गला बन्द होगया । और १ वार "राम" कह फिर न बोले मूर्छित होगये । २ घड़ी में मूर्छा जागी, गद्गद वाणी से) ए सुमन्त ! अमूल्य घोड़ों का उत्तम रथ लाओ और उस

पर रामचन्द्रादि को चढ़ा हमारे राज्य के बाहर तक पहुंचा आओ। देखो शास्त्र का लेख है कि पुत्र को माता पिता की आज्ञा पालन करना चाहिये सो आज रामचन्द्र ने अपनी विद्वत्ता, वीरता से उसे पूरा कर दिखाया। अब ये महात्मा उसी आज्ञा से वन जाते हैं॥

सुमन्त—(जो आज्ञा, कह रथ ला) राजकुमार! रथ त्यार है,सवार हूजिये (और दशरथ जी ने रत्नजटित वस्त्राभूषण १४ वर्ष के लायक़ मंगाये और सीता जी को देदिये)

कौशल्या—(जानकी जी को छाती से लिपटाय शिर सूंघ) ए बेटी ! जो स्त्री विपत्तिकाल में अपने पति की सेवा नहीं करती वह चाहे कैसी ही प्यारी हो पर पतिव्रता नहीं कहलाती। यह चलन व्यभिचारिणियों का है कि पहले तो पति से अनेक सुख पाती हैं पर जब पति कङ्गाल होजाता है तो उस की झूंठी अपकीर्ति और निन्दा करती फिरती हैं और कोई २ पति को छोड़ भी देती हैं। जगत् में बहुत स्त्री झूंठ बोला करती हैं और झूंठ के सिवाय और भी खोट उन में होते हैं,वे जितने कर्म करती हैं सब पाप के ही करती हैं। उन का चरित्र बड़ी कठिनता से जाना जाता है। ऐसी स्त्री तुरन्त पति और घर से जी खैंच लेती हैं कि मानो कोई सम्बन्ध ही न था। खोटी और कुकर्मी स्त्रियों का यह स्वभाव होता है उन के विचार को न उत्तम कुल रोक सक्ता है, न विद्या न कपड़ा न गहना और कठिनाई यह होजाती है कि उन के पापकर्म देख कर भी तो उन्हें छोड़ नहीं सक्ते,उन का दोष तो छूटता नहीं। अधिक संख्या स्त्रियों की मूर्ख होती है, उन का स्वभाव उपदेश से भी नहीं बदलता और पतिव्रता सदैव सत्य ही बोलतीं और सत्य ही करतीं। वेद शास्त्र को मानतीं और उन्हीं की आज्ञा का पालन करती हैं। अब रामचन्द्र वन जाते हैं, सो तुम ध्यान रखना कि चाहे धनाढ्य रहें या निर्धन,कंगाल रहें या सम्पत्तिमान्, तुम्हारी रक्षा कर सकें या नहीं, तुम उन की सेवा ही करना, कभी उन्हें लज्जित न करना॥

जानकी-(कर जोड़े) माता जी ! आपने जो उपदेश दिया इसे हम पूरा करेंगी। थोड़ा भी अन्तर न होगा, हम सब जानती हैं, हम ने महात्माओं और अपने मातापिताओं से सुना है, आप हम को साधारण स्त्री न जानें हम धर्म से बाहर न चलेंगी। जैसे उजाली चन्द्रमा को छोड़ कहीं नहीं जा सक्ती और जैसे विना तार बीणा नहीं बज सक्ती और विना बैल या घोड़ों के रथ नहीं चल सक्ता, वैसे ही विना पति के स्त्री भी कुछ सुख नहीं पा सक्ती। जो स्त्री के पुत्र भी आज्ञाकारी हों तो भी विना पति के स्त्री को

सुख नहीं मिल सक्ता। मैं जानती हूं कि पिता भ्राता पुत्र केवल खान पान का ही सुख दे सक्ते हैं,परन्तु पति इस लोक और परलोक के अनगिनत सुख दे सक्ता है. ऐसी मूर्खा कौन स्त्री होगी जो पतिसेवा न करे। हम तौ यह बात दृढ़ता से जानती और मानती हैं कि हमारे तौ पति ही परम पूजनीय देव हैं क्योंकि माता और सास और बहुत से महात्माओं से हमने सुना है। आप हम को साधारण स्त्री न जाने ॥

रामचन्द्र—(कर जोड़) ए माता! कभी दुःखित होकर भी हमारे पिता जी से कुछ न कहना। यह वनवास तो जल्द पूर्ण हो जायगा। १४ वर्ष १४ घड़ी की नाईं सोते २ बीत जायेंगे। फिर हम और लक्ष्मण और सीता आप की सेवा करेंगे (और सब रानियों से) माताओ! एक स्थान पर रहने या भूल चूक से जो कोई अनुचित शब्द हमारे मुख से निकल गया हो तौ आप क्षमा करें (और पुरवासियों से) भाइयो! जो हम से तुम को कोई कष्ट पहुंचा हो तौ क्षमा करना ॥

चन्द्रमुखी—रामचन्द्र के ऐसे वचन सुन, सब मनुष्य स्त्री रुदन करने लगे और रामचन्द्र लक्ष्मण और सीता जी ने शोकातुर राजा की परिक्रमा की ॥

रामचन्द्र—पिता जी! हमें सीता और लक्ष्मण सहित वनगमन की आज्ञा दीजिये (और माता कौशल्या और सुमित्रा को प्रणाम कर) हमें वनगमन की आज्ञा दीजिये ॥

सुमित्रा—(लक्ष्मण को छाती से लपटाय, सर सूंघ) ए पुत्र! मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें वनगमन की आज्ञा देती हूं क्योंकि जानती हूं कि तुम अपने भ्राता रामचन्द्र को बहुत प्यारे हो। यह वचन याद रक्खो कि रामचन्द्र की सेवा में अन्तर न पड़े, चाहे राम राजगद्दी पर हों चाहे कुशासन पर परन्तु तुम को रामचन्द्र के त्याग में सुख नहीं, यह सदा की रीति है कि छोटा भ्राता बड़े भ्राता का दास होता है और तुम्हारे कुल की तौ रीति है कि याचकों को दान दे और सदा यज्ञ करता रहे और संग्राम में वैरियों को मार अपना शरीर भी समर भूमि में छोड़ दे। ए पुत्र! हम बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा देते हैं कि रामचन्द्र के सङ्ग वन जाओ ॥

चौपाई

दशरथ सम रामहिं वनमानो। मम सम जनकसुता को जानो॥
अवध सरिस वन जानो ताता। रहियो कुशल जात बल माता॥

सुमन्त-(हाथ जोड़ नम्रता से) ए जगत् विख्यात राजकुमार ! अब रथ पर चढ़िये देर न कीजिये । जहां आप आज्ञा दें वहां हम आप को पहुंचा दें। इस समय से १४ वर्ष तक आप को वन में बसना पड़ेगा क्योंकि कैकयी कह चुकी और राजा की भी इच्छा है ॥

चन्द्रमुखी-बस बहनो ! पहले जानकी जी रथ पर चढ़ीं और पीछे राम लक्ष्मण अपने शस्त्र अस्त्रादि रख, सवार होगये और कहा कि हम सावधानी से बैठ गये, तब सुमन्त ने घोड़े तेज किये । उस समय सारे नगर में सुन्सान था । जिसे देखो मूर्छित, घोड़े हाथी चीख रहे थे और जो सावधान था रो रहा था, प्रलय का समय था । जब नगर वासियों की मूर्छा जागी तब रथ के पीछे दौड़े और कुछ आगे कुछ पीछे कुछ बराबर होगये और रथ रोक लिया ॥

पुरवासी-ऐ सुमन्त ! या तो रथ रोक लो, नहीं खड़ा करलो कि जिस से हम अच्छी तरह रामचन्द्र जी को देखलें फिर तो दर्शन असम्भव हो जायेंगे। हम कौशल्या जी की छाती धातु को जानते हैं जो ऐसे वीर पुत्र के बिछड़ते नहीं फटी । भाई ! जानकी बड़ी भाग्यवती है कि रामचन्द्र जी के सङ्ग वन जाती है सङ्ग नहीं छोड़ती । लक्ष्मण ! धन्य है तुम को और भाई तुम्हारी जील ही जीत है कि देवरूप भ्राता के सङ्ग वन जा रहे हो । सब ने इस कारण कि यात्रा के समय रोना वर्जित है, आंसू रोकने चाहे पर न रुके और रोने लगे ॥

चन्द्रमुखी-उधर राजा रानियों सहित रोते हुये प्यारे बेटे के देखने को महल से निकले । ऐसा ज्ञात होता था कि बहुत से जङ्गली हाथी बन्धे चीख रहे हैं, राजा का चेहरा उतरा हुआ था ॥

रामचन्द्र—सुमन्त ! रथ तेज़ चलाओ ॥

पुरवासी—सुमन्त ! रथ खड़ा करो या हौले हांको ॥

सुमन्त —हा परमात्मन् ! रोके बनती है न चलते, क्या करूं ॥

चन्द्रमुखी—अयोध्यावासी इतने रोये कि भूमिपर छिड़काव सा हो गया था, उस समय सारी अयोध्या में रोने और हाय २ के सिवाय और कोई शब्द सुनाई न देता था ॥

अयोध्या सब रोवे राजा वनोबास को जाय,अयोध्या सब रोवे राजा वनोवास को० ॥ बूढ़े रोवें बालक रोवें रोवे सब संसार, ढालीबन्द सिपाही रोवें रोवें तुरङ्गसवार अयोध्यासब० ॥ घोड़ा रोवे हाथी रोवे रोवे राजा राव, खड़ी

खड़ी वा की माता रोवे, रोवें सभी उमराव। अयोध्या सब०॥ बनिया रोवे बाटू रोवें रोवें सब नर नार, चारों ओर सिपाही रोवें रोवें पहरेदार। अयोध्या सब रोवे० ॥

राजा भी ऐसे शोकातुर शब्द सुन दुःखित हो कटे वृक्ष की नाईं मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े, उधर रानियों ने ऊर्ध्वस्वर से रोना आरम्भ किया और उधर पुरवासियों ने हा राम ! हा सीता ! कहना आरम्भ किया, यहां तक कि रणवास तक रुदन मचा था, सिवाय रोने चिल्लाने के और कोई शब्द सुनाई न देता था ॥

रामचन्द्र—(पीछे को दृष्टि की तो देखा कि सब पुरवासी स्त्री मर्द बूढ़े बच्चे पीछे चले आते हैं और एक ओर राजा दशरथ माता कौशल्या और सब रानियों सहित गिरते पड़ते आ रहे हैं। ऐसा देख) हे सुमन्त ! रथ तेज़ चलाओ कि जिस से ये लोग हमारे पास न आ जायं ॥

चन्द्रमुखी—जैसे मस्त हाथी अंकुश नहीं सहार सकता, वैसे ही राम-चन्द्र भी दुःख न सह सके। आंख उठ गईं तो देखा कि माता हा राम ! हा सीता ! हा लक्ष्मण ! कह २ बछड़े के पीछे गाय की नांई दौड़ी चली आती हैं, अब रामचन्द्र पीछे को मुंह फेर २ देख रहे हैं ॥

राजा—सुमन्त ! रथ खड़ा करो, हम एक बेर तो प्यारे रामचन्द्र को और देख लें ॥

रामचन्द्र—सुमन्त ! रथ को बेग चलाओ कि इस कष्ट से तो छुटकारा हो।

सुमन्त—महाराज ! क्या करूं, इस समय कुछ करते धरते नहीं बनती ।।

रामचन्द्र—सुमन्त ! सोच न करो, राजा पूछें कि हमारे कहने से रथ खड़ा क्यों नहीं किया तो उत्तर देना कि महाराज ! रथ के शब्द में आप का शब्द सुनाई नहीं दिया, देखो जो राजा रानी निकट आगये तो फिर रोवा पीटी मचेगी जो पाप का मूल है ॥

सुमन्त—(जो आज्ञा कह रथ तेज़ कर दिया)

चन्द्रमुखी—बहनो ! जैसे ही इस पुरुष सिंह रामचन्द्र ने दशरथ को प्रणाम कर सवार हो, रथ हंकाया कि नगर की स्त्रियां विलाप कर २ कहने लगीं कि जो राम हम अनाथों के नाथ थे और सब के प्यारे आचरण करते थे, वे आज कहां जाते हैं। अरे वे तो कभी क्रुद्ध ही न होते थे और दूसरे के

कठोर वचनों पर क्रुद्ध न होते थे। सम्भव है कि उन से कोई क्रुद्ध हुआ हो पर उस को भी तो उन्हों ने प्रसन्न ही कर दिया। अरे जो राम दुःख सुख में समानवृत्ति हम को कौशल्या समान जानते थे वे आज कहां जाते हैं। हा! केकयी के कहने से राजा ने उन्हें वनवास दिया। अरे वे तो जगत् की रक्षा करते थे। शोक! सब के पालक दाता धर्मात्मा पुत्र को राजा ने वनवास दिया। जान पड़ता है कि राजा की बुद्धि शुद्ध नहीं रही। अवश्य पागल हो गये, नहीं तो ऐसा क्यों करते। ऐसे वचन सुन सुन राजा बड़े दुःखित थे, वर्षा ऋतु न थी पर अग्निकुण्ड की अग्नि आहुति नहीं लेती थी, ठण्डी हुई जाती थी और ऐसा बादल हो आया कि चारों ओर अन्धेरा छा गया, सायंकाल प्रतीत होने लगा। हाथियों ने भूल डाल दी, गायों ने बच्चे छोड़ दिये, पवन कठोर बहने लगा, अयोध्या हिलने लगी, ज्ञात होता था कि अब अयोध्या लौट जायगी॥

चौपाई

मात पिता हित सुत नहीं करहीं, सुतहित मात पिता परिहरहीं॥
पति नारिन नारी पतकाहीं, चहत नहीं मन में पछिताहीं॥
भ्रातहिं भ्राता चहत न नीके, सकल काम तज सब जन ठीके॥
रामहिं सोचें दिन और राती, अन्य न काहू बात सुहाती॥
राम सखा जो रह हैं प्यारे, सकल मूढ़ इमि भये दुखारे॥
सकल भार पीडित बहु भांती। नींद न आवे दिन अरु राती॥
राम विना नहिं अवध सुहावन। लागत काहू बहुत भयावनि॥
सकल मही अरु अवध राम संग। चलन हेतु कांपत हो डगमग॥

जब तक रामचन्द्र के रथ की धूल दीखती रही तब तक राजा रथ की ओर टकटकी बांधे देखते रहे और जब रथ दीखना बन्द हो गया तो अपनी ओर ध्यान किया। देखा कि केकयी हाथ पकड़े खड़ी है॥

राजा—(हाथ झटक) हट, ए पापिन! तू अब हम को न छू, तू अब हमारी स्त्री नहीं और न हमारा तेरा कोई सम्बन्ध है, तेरे दास दासियों से भी हमें कोई मतलब नहीं, आज हमने भलीभान्ति जान लिया कि तू स्वार्थ में रत है, अपने स्वार्थ के लिये हमारी हानि नहीं देखती और न तुझ को हम से प्रीति है। इस कारण हम तुझे छोड़े देते हैं। हमने जो विवाहसमय

तेरे सङ्ग अग्नि की परिक्रमा की उस को भी इस जगत् में छोड़ते हैं, परलोक में देखा जायगा क्योंकि अब हम जीवेंगे तो हैं ही नहीं और जब प्राण नहीं तो स्त्री किस काम की और जो राम के बनगमन से भरत प्रसन्न हों या बन बास देने में उन की सम्मति हो तो हमारा उन से भी कोई सम्बन्ध नहीं (और भूमि में गिर पड़े, राजा का दूसरा हाथ कौशल्या जी के हाथ से भी छूट गया और ब्राह्मण की हत्या करने वाले की नाईं राजा रामचन्द्र का ध्यान कर पछताने लगे, अब राजा की बुरी दशा है कि चलते हैं और रथ की लीक देख भूमि पर गिर पड़ते हैं, मुख श्वेत हो गया, लाली जाती रही, जो घोड़े मेरे प्यारे राम को बन ले गये उन के पांव का चिह्न बना है पर राम नहीं दीखते, हा ! जो राम नर्म २ बिछौने पर तकिया लगा सोते थे वे आज किसी वृक्ष के नीचे भूमि में लकड़ी या पत्थर सीस के नीचे लगा सोवेंगे और दल दल में फंसे हाथी की नाईं बिना सेवकों के धूल लगे शरीर से सोकर उठेंगे । हा ! जिन रामचन्द्र को नगर के स्त्री पुरुष न देख सकते थे वे आज अनाथों की नाईं रास्ता चलते होंगे और बनवासी जीव उन्हें देखेंगे। हाय! महल दुमहला में बसने वाली जानकी कांटों पर चलती होंगी और बनेले पशुओं के शब्द से डरती होंगी) । ए दुष्टा केकयी ! अब तू सकाम हो ॥

रामचन्द्र जी का हाल—

चन्द्रमुखी—बहनो ! दशरथ जी तो लौट भी आये, पर पुरवासी सङ्ग चले ही गये ॥

मन्त्री व पुरवासी—ए प्यारे राम!बन न जाओ, अयोध्या को लौट चलो ॥

रामचन्द्र—भाई ! अब हम पित्राज्ञा पालेंगे, बन में रहेंगे, घर न लौटेंगे, पर तुम लोग जैसे हम से प्रीति रखते हो वैसे ही भरत से रखना, वे धर्मात्मा हैं, तुम से बड़ी प्रीति रक्खेंगे, भरत बालक हैं पर बुद्धिमानी में बूढ़े हैं और चालचलन भी अच्छा है । वे अवश्य तुम्हारी अच्छी पालना करेंगे । हमने भी उन्हें अच्छी २ बात सिखाई हैं, हमारे पीछे वे ही राजा होंगे, इस लिये तुम लोग उन की मन से सेवा करना और आज्ञा पालना और ध्यान रखना कि हमारे बनवास में पिता जी को दुःख न हो, इसी से हम प्रसन्न होंगे ॥

चन्द्रमुखी–बहनो ! रामचन्द्र जी तो ऐसे समझा रहे थे और पुरवासी यह समझते थे कि ये ही राजा होंगे और हमारे सङ्ग लौट चलेंगे । इस लिये वे लौटने को कहे जाते थे, क्योंकि ये रामचन्द्र जी को राजा बनाना चाहते थे, जब रामचन्द्रजी ने कहा कि हम राजा नहीं होंगे,भरत राजा होंगे,तो रोने लगे ॥

सब ब्राह्मण—(हाथ उठाये) घोड़ो ! आगे न जाओ, पीछे लौट आओ हमारे वचन मानो, राजा दशरथ को प्रसन्न करो और १४ वर्ष तक अयोध्या में फिरा करो, रामचन्द्र को वन न ले जाओ ॥

चन्द्रमुखी -बहनो ! ब्राह्मणों को ऐसा दुःखी देख, रामचन्द्र, लक्ष्मण, जानकी,रथ से उतर पड़े और पैदल चलने लगे और समझ लिया कि हौले २ पैदल चलने में ये अपनी प्रतिष्ठा भी समझेंगे और चुपचाप चले भी चलेंगे कोलाहल और शोक भी न करेंगे। जो रामचन्द्र चाहते तो रथ तेज़ लेजाते और ये सब देखते ही रह जाते, पर रामचन्द्र को इन से प्रीति बहुत थी । इस कारण हौले २ चलते थे ॥

जब ब्राह्मणों ने रामचन्द्र को पैदल २ चलते देखा तो बड़े प्रेम से बोले। हे देव ! हम सब लोग तुम्हारे सङ्ग आये हैं और यज्ञ की सब सामग्री सङ्ग है। वाजपेय यज्ञ के पात्र भी सङ्ग लाये हैं। और महावट के बादलों की नाईं हम तुम्हारे सङ्ग चलते हैं। आप को जब वन में धूप लगेगी तब हम इस चीर से तुम्हारी रक्षा करेंगे, कुछ शोक नहीं, हमारी वेद मन्त्रों से शुद्ध करी बुद्धि हम को आप के साथ चलने का उपदेश करती है। इस लिये हमें साथ ही ले चलिये। जो आप कहें कि तुम्हारे घरों की रक्षा कौन करेगा, सो वेदविद्या रक्षा करेगी। हम को किसी से सलाह करने की आवश्यकता नहीं, हम तुम्हारे सङ्ग चलने को तयार हैं क्योंकि तुम से धर्मात्मा को छोड़ यहां क्या करेंगे और उत्तम तो यह है कि अयोध्या को लौट चलो। देखो कैसे बूढ़े बूढ़े आदमी गिरते पड़ते तुम्हारे सङ्ग आरहे हैं। ए प्यारे ! तुम्हारे अयोध्या चलने से ही इन की यज्ञ पूरी होंगी। हम बुढ़ापे के कारण आप के सङ्ग नहीं दौड़ सकते सो कृपा कर लौट चलिये,या सङ्ग लेते चलिये। जैसे आंधी से वृक्ष कांपते हैं वैसे ही आप के वनगमन से हम कांपते हैं। देखिये हम तो मनुष्य हैं,पखेरू भी तो आप के शोक में उदास बैठे हैं। कुछ भी खानपान का प्रबन्ध नहीं करते। फिर ऐसे ही बात चीत करते तमसा नदी पर पहुंचे ॥

रामचन्द्र—ए लक्ष्मण ! आज वनवास की पहली रात है,आज से १४ वर्ष तक वन में वसना पड़ेगा, अब वनफलों पर गुज़ारा करना पड़ेगा अन्नादि के दर्शन भी न होंगे, देखो पखेरू अपने घोंसलों को चले आते हैं और पशु अपने २ स्थान को,पर बड़ा भयानक ज्ञात होता है,ऐसा जान पड़ता है कि वन रोने को तैयार बैठा है। आज सब अयोध्यावासी हम को यहां आया

जानते होंगे और हम तुम को शोचते होंगे, जैसा कि हम तुम अपने माता पिता को शोचते हैं कि रोते २ अन्धे न होजायं। यह भी हम जानते हैं कि भरत उन की भली भांति सेवा करेंगे पर जी घबराता है, भरत के चलन से तो हम को माता पिता का कोई शोक नहीं है। ए लक्ष्मण! तुमने अच्छा किया कि हमारे सङ्ग चले आये, नहीं तो सीता जी की रक्षा के लिये कोई रक्षक ढूंढना पड़ता। अब तुम सब भांति रक्षा करते रहोगे। यहां फलादिक तो हैं पर आज की रात तो जल पीकर ही काटैं और ए सुमन्त! तुम घोड़ों का अच्छा प्रबन्ध रखना, किसी भांति उन की सेवा में कमी न होने पावे॥

सुमन्त–जो आज्ञा कह सायं से पहले ही घोड़ों को स्थान पर लगवा, उत्तम दाना चारा दिया और रामचन्द्र जी के बिछौने का भी प्रबन्ध कर दिया॥

चन्द्रमुखी—सब ने सन्ध्या की। अब सुमन्त की बनाई शय्या पर रामचन्द्र और सीता जी तो सोगये और लक्ष्मण और सुमन्त आपस में बात चीत करने लगे और बातें करते २ भोर होगई, रामचन्द्र जी उषाकाल में उठे। देखा कि सब अयोध्यावासी अचेत पड़े हैं॥

रामचन्द्र—लक्ष्मण! इन अयोध्यावासियों को देखो कि हमारे प्रेम में घर बार छोड़, सङ्ग चले आये हैं और अयोध्या से कोई प्रेम नहीं रक्खा और शोक और यात्रा से ऐसे थक गये हैं कि पेड़ों के नीचे बे बिछौना अचेत सो रहे हैं और अब तक नहीं जागे और हमारे लौटाने को ये बड़ी हठ कर रहे हैं, अवश्य हमारे न लौटने से प्राण त्याग देंगे और हम को वन न जाने देंगे, इस कारण इन के जागने से पहले रथ पर चढ़ हम तुम यहां से चलदें, यहां तो खादर है, रास्ता तो है ही नहीं। कुछ दूर तक तो हमारा पता ही न लगेगा और जब पता ही न लगेगा तो लाचार अयोध्या को चले जायंगे॥

लक्ष्मण—जो आज्ञा, पर इन को साथ ही न ले चलिये?

रामचन्द्र—भाई! क्षत्रिय का धर्म नहीं कि अपने सुख के लिये किसी को कष्ट दे। इस कारण हम इन को कष्ट देना उचित नहीं जानते और चुप चुपाते चल देना योग्य जानते हैं॥

लक्ष्मण—जो उचित, मेरी भी सम्मति है कि जल्द सवार हूजिये॥

रामचन्द्र—सुमन्त! रथ जोतो कि हम तुरन्त चल दें॥

सुमन्त—(रथजोड़) महाराज! रथ तयार है, आप जल्द सवार हों॥

चन्द्रमुखी—अब रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता; रथ में बैठ, तमसा नदी उतर गये, थोड़ी दूर पर अच्छा रास्ता मिला, इस लिये जल्द दूर निकल गये।

प्रातः हुआ स्नान सन्ध्यादि नित्यकर्मों से निवृत्त हो फिर सवार हो चल दिये, रास्ते में ग्राम, वन, फल, फूल देखते और ग्रामवासियों की राजा दशरथ को धिक्कार सुनते चले जाते थे। बहनो ! फिर रामचन्द्र वेद श्रुति नदी उतरे, फिर गोमती फिर सिई कि जिस के तीर हंस और मोर बोल रहे थे॥

रामचन्द्र—ए सीता ! देखो यह वह भूमि है कि जो मनु महाराज ने इक्ष्वाकु जी को राजधानी बनाने के लिये दी थी और यहीं पर इक्ष्वाकु जी की राजधानी थी, इस में कैसी रमणीय भूमि है (और सुमन्त से) ए सूत ! हम नहीं कह सकते कि अब कब सरयू के पुष्पित वन में शिकार खेलेंगे। हम को सरयूतीर शिकार खेलना बड़ा प्यारा लगता है (और बड़े प्रेम की बातें कीं और अयोध्यापुरी की ओर हाथ जोड़) ए पुरी ! हम तुम से और पुरवासियों और राजा से प्रार्थना करते हैं कि पिता जी के वचन पूर्ण कर फिर तुम्हें और माता पिता और पुरवासियों को देखें (और राज्यवासियों से जो रास्ते में एकत्र हो गये थे) आप लोगों ने हम पर बड़ी कृपा की। अब आप लोग जायें और अपना २ कार्य करें, हमारे साथ न चलें, वन में तुम्हें कष्ट होगा। इस लिये हम पर कृपा कर जायें॥

चन्द्रमुखी–बहनो ! अब महाराज कुमार कोशलपुर की सीमा से भी निकल अपने पिता के आधीन राजाओं की सीमा से बाहर गङ्गा तीर पहुंचे। वहां बहुत साधु ऋषि मुनि गङ्गाजल पीते और तप करते देखे। गङ्गाजल निर्मल था, सिवार का चिन्ह भी नहीं और महाजनों की बड़ी २ धर्मशाला बनी थीं। स्त्रीवर्ण निर्भय स्नान कर रहीं थीं, यहां तक शृङ्गवेरपुर में पहुंचे।

रामचन्द्र–सुमन्त ! आज रात्रि को तो यहीं गङ्गातीर पर विश्राम करेंगे। देखो गङ्गा तट पर यह इङ्गुदी का वृक्ष कैसा प्यारा दीखता है॥

सुमन्त—(जो आज्ञा कह रथ उसी वृक्ष के नीचे ले आये)

चन्द्रमुखी–रामचन्द्र लक्ष्मण सीता रथ से उतरे ही थे कि निषादों का राजा गुह जो उस भूमि का राजा और दशरथ जी के आधीन था, हाथ जोड़े आता दीख पड़ा और नौकर चाकर भी सङ्ग २ आते दीखे। रामचन्द्र और लक्ष्मण आगे बढ़ और लपटाय गुह से मिले॥

गुह–(बड़ी नम्रता से) ए राम ! जैसी अयोध्या आप की पुरी है, वैसी ही यह नगरी। अब मुझे जो आज्ञा हो उसे पूरी करूं (और जल मंगा हाथ पैर धुलाये और प्रसन्नता पूंछ) महाराज ! यह राज्य तो आप का ही है। हम आप के दास और आप हमारे शिरोमणि हैं। जिस वस्तु की आज्ञा हो,

लावें । सोने के लिये उत्तम २ पलङ्ग और खान पान की सामग्री और घोड़ों को रातब दाना तौ मेरे आदमी लाते ही हैं ॥

रामचन्द्र-हम आप के आने और प्रेम से बड़े प्रसन्न हुवे और आप ने हमारी पूजा भी भलीभान्ति की । ए गुह ! बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हम आप को सपरिवार प्रसन्न देखते हैं । भला तुम्हारे नौकर, चाकर, भाई बान्धव तौ सब प्रसन्न हैं ? और बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हमारे बे कहे ही आप ने सब सामग्री एकत्र करदी, इसे हमने भलीभान्ति देख लिया पर शोक है कि हम इसे स्वीकार नहीं कर सकते क्योंकि आप देख रहे हैं कि हम कुशावस्त्र और मृगछाला पहन रहे हैं और केवल फल फूल खाते हैं । अब आप तपस्वियों की नाईं हम को समझें । अब तौ हमने मुनिवेष बना लिया, आप क्रुद्ध न हों, लाचारी है । हां, ये घोड़े राज्य के हैं, इन को दाना रातिब चाहिये, हम इसे ही लेकर प्रसन्न होंगे क्योंकि ये घोड़े पिता जी को बड़े प्यारे हैं, इन को दाना रातिब मिल जाय तौ हमने सब पा लिया ।।

गुह-मन्त्री ! घास दाना तो आगया । अब घोड़ों के लिये मिश्री मिला सत्तू और खीर मिला महेला और लाओ ।।

मन्त्री-(जो आज्ञा कह सब चीज़ ले आया)

चन्द्रमुखी-बस बहनो ! रामचन्द्र जी ने कपड़े उतारे और लक्ष्मण के जी लाये जल से हाथ पैर धो, सायं सन्ध्या की और उसी जल में से थोड़ा सा पिया और भूमि पर लेट गये । फिर लक्ष्मण जी ने हाथ पैर धोये, पीछे सीता जी ने । अब रामचन्द्र और जानकी जी तो सो गये और थोड़ी दूरपर लक्ष्मण वाण चढ़ाये वीरासन लगाय रात्रि भर जागते रहे । गुह और सुमन्त पास बैठ गये ॥

गुह-ए राजकुमार लक्ष्मण जी ! रामचन्द्र जी तौ सो गये पर तुम्हारे और सुमन्त के लिये पलङ्ग मौजूद है । आप आराम करें, कष्ट भोगने को हम दास मौजूद हैं, आप तौ सुख भोगने योग्य हैं । रही रामचन्द्र जी और सीता जी की रक्षा, सो उस के लिये हम रात्रि भर जागेंगे । हम आप की शपथ करते हैं कि जगत् में रामचन्द्र जी से अधिक प्यारा हम को कोई नहीं। इसे सत्य मान लीजिये, हम उन्हीं की कृपा से अनेक सुखों की आशा रखते हैं, इसी कारण अपने प्यारे सखा श्रीराम के लिये अपने जाति बान्धवों सहित पहरा देंगे ।।

लक्ष्मण-ए धर्मात्मा ! आप के होते और आप की रक्षा से हमें किसी भान्ति भय नहीं, पर विचारिये तो सही कि जब श्रीराम और सीता तौ

भूमि पर सोते हैं तो भला हम कैसे पलङ्ग पर सो सकते हैं और जब उन्हों ने जल ही पिया है तो हम कैसे भोजन कर सकते हैं और देखिये पुरुषसिंह रामचन्द्र तो सीता सहित घास पर सो रहे हैं, फिर हम कैसे आराम से सो सकते हैं, इन्हीं रामचन्द्र के आज वन आने पर राजा न जीवेंगे और पृथिवी रांड़ होगी। ए गुह ! जब राम चले थे तब सब स्त्री हा राम २ कह मूर्छित होगईं थीं, वे अब तक मूर्छित होंगी और राममन्दिर तो सुनसान होगा। जो कौशल्या जी और हमारी माता और राजा जीते हों तो उन की दृढ़ता सराहनीय है। सम्भव है कि हमारी माता शत्रुघ्न के मिलने की आशा में जीती रहें, पर कौशल्या जी तो आज पुत्रवियोग में मर चुकी होंगीं और सब पुरवासी रामचन्द्र जी के वियोग में तित्तर बित्तर होजायंगे और बिना रामचन्द्र के देखे राजा दशरथ भी तो न जीवेंगे, उस समय तो हमारे और राजा के शोक में माता कौशल्या और हमारी माता अवश्य मरजायंगी। जो आप कहें कि जब हम विश्वामित्र के सङ्ग गये थे तब क्यों न मरे, तो वह और बात थी। जब तो हमारे विद्याध्ययन का समय था और इस समय राज्यतिलक की त्यारी थी और सब राजा एकत्र करलिये थे और राज्यतिलक की सब सामग्री एकत्र होगई थी और उसके विरुद्ध वनवास दिया गया। अब कुछ प्रेम और कुछ निन्दा से दुःख पा अवश्य मरजायंगे। जो मनुष्य वहां होंगे वे बड़े भाग्यशाली होंगे कि राजा की प्रेतक्रिया तो करेंगे। ए गुह ! पुत्रों में से तो वहां आज कल कोई है ही नहीं, परमात्मा करे कि राजा जीते रहें और राज्य करते रहें तो हम भी जल्द वनवास पूरा कर भरी पुरी अयोध्या और राजा दशरथ को पावें। बड़े ही आनन्द का समय हो कि सत्यवादी पिता जी का वचन पूरा कर उन के आगे ही अयोध्या में पहुंचें। ऐसे ही बातें करते २ रात बीतगई, उषाकाल में रामचन्द्र जी जागे॥

रामचन्द्र—ए तात ! अब रात गई सूर्य उदय होने वाला है, यह श्याम वर्ण काक बोल रहा है। वन के पक्षियों का शब्द सुनाई देता है, अब हम लोगों को जल्द गङ्गा पार जाना चाहिये॥

लक्ष्मण—('जो आज्ञा' कह गुह और सुमन्त से) महाराज गङ्गा जी के पार जाना चाहते हैं॥

गुह—मन्त्री ! उत्तम रंगीली नाव जल्द घाट पर पहुंचाओ॥

मन्त्री—(" जो आज्ञा, कह " जा और लौट कर आ ख़बर दी कि) नाव तयार है॥

गुह—(कर जोड़) महाराज ! नाव घाट पर आगई अब जो और आज्ञा हो॥

रामचन्द्र—अच्छा मल्लाहों से कहो कि सब बांस डांड़े नाव पर रक्खें और हम लक्ष्मण और सीतासहित धनुषादि अस्त्र शस्त्र लगा चलते हैं (और घाट को चलदिये)

सुमन्त—(हाथ जोड़) महाराज हम को क्या आज्ञा है ?

रामचन्द्र—(सुमन्त की बांह पकड़) अब आप जाइये । बस यहीं तक आप के आने की आवश्यकता थी । अब हम यहां से पैदल २ चले जायंगे॥

सुमन्त—(दुःखित हो) ए राम ! जैसे आपने पलभर में राज्य छोड़ वन-वास स्वीकार किया, ऐसा कोई नहीं कर सक्ता । जो आप दोनों भाई वन आने में कुछ भय या शोक करते और वन को न आते तो हम ब्रह्मविद्या में फल न जानते । आप तो योग्य थे पर आपने वह कर्त्तव्य किया जो सब मनुष्यों को करना चाहिये । सब मनुष्यों को योग्य है कि चाहे कैसा ही कष्ट हो पर अपने बड़ों की आज्ञा पालन करे । ए राघव ! आप श्री जानकी और लक्ष्मण के सङ्ग वन में वस तीनों लोकों को जीतेंगे क्योंकि आप सा धर्मात्मा आज त्रिलोकी में नहीं । आप की तो सब भान्ति जय ही जय होगी पर हम लोग उस पापिनी केकयी के फन्दे में फंसे बड़ा दुःख उठावेंगे (और रोने लगे) ॥

रामचन्द्र—(बड़े प्रेम से) ए सुमन्त ! इक्ष्वाकुवंशियों में आप के समान हम और को अपना मित्र नहीं जानते इस कारण आप को वह कार्य करना चाहिये कि जिस में पिता जी हमारा शोक न करें । देखो राजा दशरथ प्रथम तो बहुत बूढ़े दूसरे हमारा वियोग तीसरे राज काज । इस लिये हम कहते हैं, नहीं तो न कहते । अब आपको योग्य है कि केकयी की प्रसन्नता के लिये जो बात राजा कहैं उसे बे समझे सोचे करदेना कि जिस से उन को दुःख न हो । राजा लोग राज्यरक्षा इसी लिये करते हैं कि जिस से उन को किसी कार्य में निराशता न हो । ए मित्र ! जिस बात से पिता जी प्रसन्न रहें वही करना । उन के दुःखदायी कार्य न करना और पिता जी से हमारा हाथ जोड़ प्रणाम कह, कह देना कि वनगमन में हम को और लक्ष्मण को कोई कष्ट नहीं, आप विश्वास रक्खें, सोच न करें, कोई बात नहीं । १४ वर्ष तो जल्द बीत जायंगे और आप हम तीनों को देखेंगे । और सब माताओं से हमारी लक्ष्मण और जानकी की ओर से यही बात समझा देना कि हम को दुःख

नहीं। और हां, महाराज से यह भी कहदेना कि भरत को कल्द बुलाय गद्दी सौंप दें जिस से आप को सुख मिले। जिस समय आप भरत को गोदमें बिठाय गद्दी देंगे उसी समय आप का शोक भी घट जायगा। और भरत जी से भी कह देना कि राजा की आज्ञानुसार कार्य करें और सब माताओं की समान प्रतिष्ठा रक्खें और कहना कि भरत! गद्दी पाकर ऐसा प्रजा पालन करना कि जिस से इस लोक और परलोक में सुख मिले॥

सुमन्त—महाराज! यथाशक्ति हम सब बातें कहदेंगे, पर प्रेम या भूल से जो न कही जाय तो क्षमा करना, आप राजा हैं। ए तात! भला तुम्हारे बिना हम अयोध्या कैसे जायें और तुम्हारे वियोग में तो सारी अयोध्या शोकातुर होगी। जब हम रथ लाये थे उस समय आप को लोगों ने रथ में देखा था, अब ख़ाली रथ देख वे कैसे जियेंगे। जैसे समर भूमि में बिना सरदार फ़ौज भाग निकलती है वैसे ही आप को न पाय सब अयोध्यावासी घबरा जावेंगे आप इस समय भी दूर हैं, पर सब को आशा लगी है और जब रथ ख़ाली दीखेगा तब कोई अयोध्यावासी अन्न जल न करेगा। यह बनावट की बात नहीं है। ए राम आपने देखा है कि आप के बनवास से प्रजा कैसी दुखारी थी और आप के आने पर कैसा कोलाहल किया था। अब ख़ाली रथ देख सौ गुना कोलाहल करेंगे। क्या हम तुम्हारी माता से कह सकेंगे कि रामचन्द्र को सुनसान बन में छोड़ आये, क्षमा करो, हम से यह शब्द न कहे जायेंगे, हमारी तो क्या गणना यही घोड़े जो आप को लाये हैं ख़ाली रथ न खींच सकेंगे। इस लिये हम को भी साथ चलने की आज्ञा दीजिये। रथ घोड़े तो गुह जी पहुंचा ही देंगे। जो आप हम को सङ्ग चलने की आज्ञा न देंगे तो हम रथ सहित जल मरेंगे। देखो जब बन में कोई बात आप के विरुद्ध होगी तो हम रोकेंगे इस कारण हम को सङ्ग ही ले चलिये। आप की कृपा से हम ने रथ हांकने का आनन्द उठाया और अब आप ही की कृपा से बनवास का आनन्द उड़ायेंगे। अब आप प्रसन्नता से अपने निकट रहने की आज्ञा दे दीजिये। ए वीर! ये घोड़े भी जब बन में आप की सेवा करेंगे तो अतुल सुख पावेंगे। हम बन में आप की सब सेवा करेंगे, अयोध्या तो वस्तु ही क्या है, हम आपके लिये देवलोक भी छोड़ देंगे। ए तात! जैसे व्यभिचारी पुरुष इन्द्रपुरी को नहीं जा सकता वैसे ही हम भी बिना आप के

अयोध्या नहीं जा सकते। हमारा मनोरथ है कि १४ वर्ष बीतने पर हमी रथ में चढ़ाय आप को अयोध्या ले चलें, आप के सङ्ग १४ वर्ष १ पल समान और वियोग में सैकड़ों वर्ष की नांई बीतेंगे। हम तो आप को त्यागने योग्य नहीं॥

रामचन्द्र—ए भक्त! हम तुम्हारी भक्ति जानते हैं इसी लिये तुम्हें लौटाते हैं। सुनिये जिस समय आप रथ ले अयोध्या पहुंचेंगे, तब हमारी छोटी माता केकयी जान लेंगी कि रामचन्द्र ठीक२ बन गये और जब ही वह विश्वास कर राजा को सत्यवादी जानेंगी। हमारा यह पहला प्रण बन के सङ्ग हुआ है। हां तब ही तो छोटी माता निर्भय भरत का राज्य देखेंगी। ए सुमन्त! हमारी और राजा की प्रसन्नता के लिये अयोध्या जाओ और हमारी सब बात कह देना (और गुह से) ए निषादराज! हम इस बन में बसा नहीं चाहते क्योंकि इस में सब अपने ही मनुष्य बसते हैं। यहां से अलग पर्णकुटी बनाय तपस्वियों की नांई रहा चाहते हैं। इस का प्रबन्ध कर दीजिये और हम तपस्वी का वेष बनाय जटा रखाय बन जायंगे और हां थोड़ा बट का दूध तो हम को मंगा दीजिये, हम जटा बनावेंगे॥

गुह—जो आज्ञा कह, जल्द बट का दूध लाया और दूध से रामचन्द्र जी ने अपनी और लक्ष्मण की जटा बनाई॥

चन्द्रमुखी—बहनो! वह समय देखने योग्य था कि जिस समय महाराज कुमार पुरुषसिंह कुलीन शूरवीर रामचन्द्र जटा रखाय तपस्वी बना उस समय दोनों भ्राता अश्विनीकुमार तुल्य रूपवान् दीखते और सिर पर जटा बड़ी प्यारी जान पड़ती थीं और क्यों न जान पड़तीं प्रथम तो राजकुमार द्वितीय रूपवान् तृतीय तरुणायु, काली २ लटा कमर पर भौंरों की पांति की नांई जान पड़तीं थीं॥

रामचन्द्र—राजन्! सेना, कोश, गढ़, देश की अच्छी रक्षा करना क्योंकि राज्य की रक्षा बड़ी बुद्धिमानी से होती है और हम तो अब गङ्गा पार जाते हैं (और घाट पर पहुंचे, नाव तैयार मिली)॥

गुह—(अपने नौकरों से) सुख पूर्वक सवार करा, पार पहुंचाओ॥

रामचन्द्र—(गुह से विदा हो, मल्लाहों से) अब जल्द पार चलो॥

मल्लाह—(जो आज्ञा कह नाव खोल दी)

चन्द्रमुखी—अब नाव बीच धार में पहुंची और सीता जी ने हाथ जोड़ कहा कि ए गङ्गे! महाराज कुमार श्री रामचन्द्र जी जिस समय पिता जी के

वचन पूरे कर १४ वर्ष पीछे लौटेंगे तब हम तुम्हारे तीर बसने वाले ब्राह्मणों को हज़ारों गोदान करेंगी और वस्त्र भोजन भी देंगी और तुम्हारे तीर के स्थानों की मरम्मत करावेंगी (कि नाव दक्षिण तट पर पहुंची और ये नाव से उतरे और मल्लाह विदा किये)

रामचन्द्र–लक्ष्मण ! चाहे कोई मनुष्य पास हो या न हो, पर सीता जी की रक्षा भलीभांति करना क्योंकि पुरुषों को योग्य है कि स्त्री, बच्चों की रक्षा पालना करें इस लिये आगे २ आप चलें और बीच में सीता और पीछे हम। यह बात तो सत्य है कि तुम को हमारी और हम को तुम्हारी रक्षा की आवश्यकता नहीं पर दोनों को सीता जी की रक्षा अवश्य करनी चाहिये। अब तक सीता को किसी कठिन कार्य से पाला नहीं पड़ा, पर आज से वे बनवास का दुःख देखेंगी पर ऐसा प्रबन्ध करो कि उन को दुःख न हो।

लक्ष्मण–('जो आज्ञा' कह आगे हो लिये और चलते २ सायंकाल हो गया और सब ने सन्ध्या की और बैठे)

रामचन्द्र–भाई ! आज परदेश की पहिली रात है, उचित है कि यहीं बसो। प्यारे ! तुम अयोध्यात्याग का विचार न करना और शोक भी न करना, आज ही नहीं आज से १४ वर्ष तक ऐसे ही अकेले बन में बसना पड़ेगा। अब हम तुम को रात्रि भर जागना और सीता जी की रक्षा करना योग्य है। अब आप ही यथाशक्ति अपने हाथ से घास पत्ते ला भूमि पर बिछाय रात काटनी होगी और ए लक्ष्मण ! हम को दृढ़ विश्वास है कि हमारे तुम्हारे वियोग में राजा अवश्य मूर्छित होंगे। कैकयी की इच्छा पूर्ण हो गई पर उसे शान्ति नहीं हुई होगी। अब हम को एक संदेह है कि भरत के आने पर राज्य के लोभ की वशीभूत वह राजा को तो न मरवा डाले क्योंकि प्रथम तो राजा बूढ़े, दूसरे कोई रक्षक नहीं, तीसरे हम तुम यहां। ऐसे समय कैकयी के फन्दे में फंसे पिता जी क्या करेंगे, हमारी समझ में तो महाराज अर्थ और धर्म से काम को बड़ा मान जैसे बने काम चलावें, ऐसा कार्य तो कोई मूर्ख भी न करेगा कि स्त्री के कहने से अपने आज्ञाकारी पुत्र को अलग करदे। अब कैकयी सुत भरत अपनी पत्नी सङ्ग सुख से रहेंगे। क्योंकि अब वे अकेले निर्भय अयोध्या के राजा हो गये पर अच्छा हुआ कि भरत के राजा होने से प्रजा तो सुख पावेगी क्योंकि राजा की दशा तो शोचनीय है और हम बन में चले आये। भाई ! जो कोई अर्थ और धर्म छोड़ कामवश होगा वह ऐसा ही करेगा जैसा हमारे पिता जी ने किया। ए सौम्य ! हम

तो यह भी जानते हैं कि केकयी राजा के प्राण लेने और हम को बन देने और भरत के राज्य दिलाने को इस घर में आई है और ये भी विचारते हैं कि केकयी अपने मनोरथ की सिद्धि से अभिमान कर माता कौशल्या और सुमित्रा को अवश्य दुःख देगी। हा! हमारे ही कारण माता दुःख पाती होंगी। ए लक्ष्मण! उचित जान पड़ता है कि तुम प्रातः अयोध्या को चले जाओ, हम अकेले ही सीता जी के सङ्ग बन में रहेंगे, तुम अयोध्या पहुंच उन अनाथ माताओं के नाथ बनो। ए लक्ष्मण! केकयी तुच्छबुद्धि है, सम्भव है कि बैर-भाव से हमारी तुम्हारी माताओं को विष दे दे, इस कारण तुम्हारा जाना आवश्यक समझते हैं। हम दृढ़ता से कहते हैं कि पहिले जन्म में हमारी माता ने अवश्य औरों के बच्चे उन की माताओं से अलग किये हैं कि जिस का बदला उन को मिला है और हम को भी धिक्कार है कि जिस माता ने हम को बड़े दुःखों से पाला और बड़े दुःखों से बड़ा किया और सुख पाने के समय हमने उसे छोड़ दिया। हम जानते हैं कि कोई माता ऐसा बच्चा न पैदा करेगी, जैसे हम हुये, देखिये तो हमने कैसा अपनी माता को दुःख दिया।

कुण्डली

मानत हैं हम सार का पालत जननी केर। हमसों
अधिक प्रियकारिणी कहत वचन ये हेर। कहत वचन ये
हेर टेर सुनियत है जासू। है शुक काटो चरण कौशल्या
रिपु के आसू। ये प्रिय वचन बनाय सुनावत और हित
जानत। धन्य सार का लखन मात के जो गुण मानत॥

ए लक्ष्मण! हमने अपनी कर्महीन माता की कुछ भी सेवा न की, इस से तो बांझ ही रह जाती तो अच्छा था, हमारे वियोग का शोक तो न उठाती। हा! हमारी माता अवश्य कर्महीन है, जो हमारे वियोग के शोक में सो रही है। जो कहो कि ऐसा विचार था तो अयोध्या क्यों छोड़ी, क्या किसी से भयभीत होगये थे, सो यह बात नहीं, हम तो अकेले ही अयोध्या जीत सक्ते थे, पर धर्म और परलोक के भय से राज्य नहीं लिया (और रोने लगे)

लक्ष्मण–ए वीर! यह तो माननीय बात है कि आप के अयोध्या छोड़ने से राजा की प्रतिष्ठा में बल आगया, पर आप का भी यह कर्तव्य नहीं कि ऐसा विचार करें, ऐसे वचनों से हम को और सीता जी को दुःख होता है॥

चौपाई

नहि सीतानहि हमरघुनाथा। तुम विन जियतरहैं नितसाथा॥
जिमिजलबाहर जियतनमीना। तिमिजानियेकृपालप्रवीना॥
तात शत्रुसूदन और मातहि। देखा चहत न तुम विननाथहि॥
और कहूं कहा स्वर्ग हि केरी। तुम विन वाञ्छा करत न हेरी॥
ये सुन लखनवचन रघुनाथा। गये शयनहित जानकि साथा॥
वट तरु लखन सेज तृण केरी। रची तहां सोये नहिं देरी॥
सुन गुण सहितलखन की वानी। रघुनन्दन सुख प्रदान मानी॥
जब तक कानन वसे कृपाला। तबतक इमिनहि भये बिहाला॥

चन्द्रमुखी—बहनो! इसी बात चीत में रात बीती, प्रातः हुआ, भोर ही वहां से आगे चले, रास्ते में बहुत बन मिले, पर वे सीधे पूर्व को मुख किये गङ्गा यमुना के संगम को चलदिये। रास्ते में अनेक प्रकार की भूमि देखी जो पहले न देखी थी और अनेक प्रकार के फल फूल देखे कि चलते २ थोड़ा दिन रहगया॥

रामचन्द्र—लक्ष्मण! यह प्रयाग तीर्थ है क्योंकि इस के चारों ओर सुगन्धित धुवां ज्ञात होता है। हमारी जान में तो यहीं भरद्वाज जी का स्थान है, देखो धुवां आग का फरेरा दिखाई देता है। गङ्गा यमुना का यहीं सङ्गम है। देखो नदियों के जल मिलने का शब्द सुनाई देता है और वनवासियों ने अपने सुख के लिये लकड़ी एकत्र कर रक्खी हैं और महात्माओं के आश्रम के वृक्ष भी कटे दिखाई देते हैं॥

चन्द्रमुखी—दोनों भ्राता ऐसी बातें करते २ सायंकाल को भरद्वाज मुनि के आश्रम पर प्रयाग में पहुंचे और मुनिराज के दर्शनों की इच्छा से सीता जी को आगे कर होले २ आग को चले और देखा कि मुनिराज अपने चेलों के संग यज्ञ कर रहे हैं और अग्नि में आहुति छोड़ रहे हैं॥

रामचन्द्र—ए मुनिराज! हम दोनों दशरथ के पुत्र हैं और राम, लक्ष्मण हमारा नाम है और ये जनकनन्दनी हमारी स्त्री है। जब हम वन को चले तो यह भी पीछे २ चले आये हमारे पिता जी ने वनवास की आज्ञा तो हम

को ही दी थी, पर ये भी संग हो लिये । इस लिये, सब को ही पित्राज्ञा समझिये । हम आप के वन में आये हैं और मुनियों की नांई फल मूल खाते हैं॥

मुनिराज—ए राम ! कुशलपूर्वक तो आये ? (और हाथ पांव धोने को जल दे आसन दिया और पीछे रसीले फल फूल और अन्नादि भोजनों को मंगा, बसने को स्थान दे, पूजा कर) ए राम ! हमने जब से बाल्मीकि जी के मुख से तुम्हारा वृत्तान्त सुना है तब से बाट देख रहे थे और आया ही जानते थे, अच्छा हुआ कि आप आगये । यह भूमि बड़ी रम्य है कुछ दिन यहां बसिये ॥

रामचन्द्र—भगवन् ! यहां से अयोध्या निकट है । वहां के वासी और सिवाने के राज्यों के बासी हमारा यहां वास सुन बड़ी भीड़ लगावेंगे । और जानकी जी के देखने को स्त्री भी आवेंगी, उन के आने जाने में आप को दुःख होगा और हमें भी शोक रहेगा । इस कारण हम अपना यहां बसना उचित नहीं जानते । वैसे यह स्थान तो बड़ा रमणीय है और आप से महात्मा की सेवा । इस से अधिक और क्या लाभ हो सकता है । ए भगवन् ! हमारे लिये तो कोई एकान्त स्थान नियत कर दीजिये कि जहां जानकी जी सुख पूर्वक रह समय बितावें ॥

भरद्वाज—ए तात ! यहां से १० कोस पर १ पर्वत है वह निस्संदेह तुम्हारे बसने योग्य है । उस में बड़े २ ऋषिलोग तपस्या करते हैं और रमणीक भी है । उस पर बड़ी और छोटी पूंछ के बन्दर रहते हैं और चित्रकूट नाम है । गन्धमादन के समान है, वहां तुम को सब प्रकार का सुख भी मिलेगा । उस में बड़ा लाभ यह है कि चाहे कितने ही दिन मनुष्य वहां रहे, उस के कंगूरे, देखा करे मन लगा रहे, प्रीति (मोह) तो निकट भी नहीं आती वहां से बहुत ऋषि तप करके स्वर्ग चले गये हमारी सम्मति में तो वहां का वास अधिक लाभदायक होगा और जो वन में रहने की इच्छा है तो हमारे संग यहीं रहिये ॥

चन्द्रमुखी—भरद्वाज जी ने तीनों अतिथियों की अच्छी पूजा की और बात चीत करते रात बीत गई, प्रातः—

रामचन्द्र—यह रात तो आप के आश्रम पर आनन्द से कटी अब आपने जो स्थान बताया है, वहां जाने की आज्ञा दीजिये ॥

भरद्वाज—बहुत अच्छा, फल मूलादि भरे उस चित्रकूट पर जाकर बसो, वहां का वास आप को प्रिय होगा और वहां छोटा बड़ा शिकार भी है । अनेक प्रकार के वृक्ष भी हैं और वहीं किन्नर गन्धर्व और देवता भी बसते हैं ॥

कोकिला आदि पक्षी भी बोला करते हैं। हाथियों के झुण्ड घूमा करते हैं। आप जानते हैं कि चित्रकूट एक नामी पर्वत है ॥

चन्द्रमुखी—भरद्वाज को प्रणाम कर रामचन्द्र लक्ष्मण और सीतासहित चलने को तयार हुवे ॥

भरद्वाज—(स्वस्तिवाचन और मङ्गलाचरण पढ़) ए राम! संगम से पश्चिम को मुख कर यमुनाके किनारे २ जाइये और रास्ते के सब तीर्थ देखते जाइये और घरनाई बना यमुना उतर लीजिये। यमुना पार एक वट का बड़ा भारी वृक्ष है और उस के और पास बहुत वृक्ष हैं जिन में कुछ २ स्याही दीखती है। उस के नीचे बहुत से सिद्ध तपस्या करते हैं। उस के ही सामने उतरना। चाहे रात्रि को वहां बसना, चाहे आगे चले जाना। वहां से १ कोस आगे नीले वृक्षों का वन मिलेगा उस में ढाक और बांस बहुत हैं। वहीं होकर चित्रकूट का रास्ता है। हम कई बार गये हैं। बड़ा ही रमणीक रास्ता है। कोई दुःख रास्ते में नहीं होता। कहां तक उस की शोभा कहूं। और वनों में तो कभी कभी आग भी लगजाती है, पर उस में तो कभी आग भी नहीं लगती। ए राम! अब तो आप चले ही जायंगे ॥

रामचन्द्र—हां महाराज! चले जायँगे ॥

भरद्वाज—(आशीर्वाद दे, लौट आये)

रामचन्द्र—ए लक्ष्मण! ये मुनिराज बड़े धर्मात्मा हैं। देखो इन्होंने हम पर बड़ी कृपा की ॥

चन्द्रमुखी—अब दोनों भाई जानकी जी को आगे किये यमुना तीर पहुंचे। देखा कि यमुना बड़ी गहराई और वेग से बह रही है, पर नाव नहीं। अब पार जाने का विचार करने लगे। और मुनिराज की शिक्षानुसार सूखे बांस एकत्र कर घरनाई बनाई और वृक्षों की सूखी लकड़ी लगा, हरी गांडर की जड़ कूट २ कर छिद्रों में भरदी और लक्ष्मण जी ने मुलायम २ टहनियों से जानकी जी के लिये बैठक बनादी और जानकी जी को चढ़ा, उन के पास अस्त्र शस्त्रादि रखदिये और बांस और डांड भी रखदिये और पीछे से दोनों भाई चढ़े और नाव चलाई। जब मझधार में पहुंचे, तब सीता जी ने परमात्मा को याद किया कि ए देव! जो प्रसन्नतापूर्वक हमारे पति और देवर अपने पिता जी का वचन पूरा कर लौटेंगे और हमारा पतिव्रतधर्म निभ

जायगा तो हम यमुना तीर १ सहस्त्र गौवें दान करेंगी। यह कार्य रामचन्द्र जी के अयोध्या में राजा होने पर होगा, कि दक्षिण तट पर पहुंचे और तीनों उतर, नाव वहीं छोड़, वन को चलदिये और रास्ते में वही वटवृक्ष दीखा॥

रामचन्द्र—ए लक्ष्मण! तुम सीता को साथ ले, आगे २ चलो। हम धनुष बाण आदि शस्त्र लगाये पीछे २ आते हैं और जो २ फल फूल जनककिशोरी चाहे कि जिन में इन का जी रमें, वे वे इन्हें ले लेने देना (और आगे को चलदिये और फिर संग होगये)

चन्द्रमुखी—जिस नये वृक्ष वा बेल को सीता देखतीं, उसे ही पूंछतीं और जो फल फूल चाहतीं, लक्ष्मण तुरन्त ला देते। सीता जी ने स्नान की इच्छा प्रकट की, लक्ष्मण जी एक अच्छे घाट पर लेगये, वहां स्नान किया और रात्रि को वहीं बसे और प्रातः जागे॥

रामचन्द्र—लक्ष्मण प्यारे! सुनो, बनैले पक्षी कैसी सुरीली बोली बोल रहे हैं। अब चलने का समय आया, उठिये अब यहां से चलें॥

लक्ष्मण—(जो आज्ञा, कह, खड़े होगये और सब स्नानादि से निवृत्त हो, चित्रकूट को चलदिये)

रामचन्द्र—ए वैदेहि! देखो चारों ओर बसन्त ऋतु में ढाक कैसे फूल रहे हैं और कैसे प्रिय दीखते हैं, जैसे कि फूलमाला पहने हों और हां बेल और बेरी भी तो फूलों से लद रहे हैं। पर यहां हाथी आते हैं, यहां से जल्द निकल चलो। ए लक्ष्मण! देखो तो एक २ वृक्ष में ४, ४-८, ८ मोहार लगी हैं, जिन में अगणित मक्खी लिपट रही हैं, देखो कोकिला कैसी बोल रही और मोर कैसे नाच रहे हैं। और देखो वह हाथियों की दांग कैसी फिर रही है और ये फूल कैसे फूल रहे हैं और देखो यह चित्रकूट दीख रहा है। अब हम तुम उस रमणीय और एकसार भूमि पर कुछ दिन बसेंगे (और थोड़ी देर में पहुंच) ए सौम्य! देखो यह पर्वत कैसा रमणीय भास होता है और नानाप्रकार के फल मूल भी हैं। हम जानते हैं कि यहां हमारा निर्वाह भली भांति होगा। ए तात! यहां मुनि लोग भी बहुत बसते हैं, इस कारण यह बसने योग्य है। अब हम यहीं बसेंगे॥

चन्द्रमुखी—बहनो! यह कहते ही जाते थे कि वाल्मीकि जी का आश्रम दिखाई दिया। बस तीनों ने वाल्मीकि जी को प्रणाम किया और वाल्मीकि जी ने बड़ी प्रसन्नता से पूजा की। एक दिन—

रामचन्द्र—लक्ष्मण प्यारे ! यहां तो हमारा मन भला रमता है । एक कुटी बनालो तो बस ही रहें ॥

लक्ष्मण—(जो आज्ञा कह, वन से दृढ़ लकड़ी ला, बड़ी प्रिय कुटी बना दी और उस में गये) ॥

रामचन्द्र-ए लक्ष्मण ! एक मृग लाओ और कुटी के द्वार पर बांधो । वास्तुपूजा तो करलें । क्योंकि अधिक आयु की इच्छावालों को अवश्य वास्तु-पूजा करनी योग्य है । पर सूर्य अस्त से पहले यह कार्य हो जाय ॥

लक्ष्मण-(मृग ला) महाराज ! मृग तो आगया ॥

रामचन्द्र-भाई ! इस के खाने योग्य फल भी तो लाओ और आग में सेक २ इसे खिलाओ और उन्हीं फलों से हम अग्निहोत्र करेंगे ॥

लक्ष्मण-(तुरन्त फल आग में सेक) ए देव ! मृग के खाने योग्य तो फल तयार होगये, अब आप पूजा करें ।।

चन्द्रमुखी-बस रामचन्द्र ने स्नान कर सन्ध्या और अग्निहोत्र के पश्चात् वास्तुपूजा की और आहुति दे, पूजन पूरा किया और कुटी में घुसे और बचे फलों से बलिवैश्व और रुद्रबलि और विष्णुबलि यज्ञ किये और फिर नदी में स्नान कर और कुटी में वेदी बना, अलग २ सोने को चबूतरे बना दिये और सुखपूर्वक रहने लगे ॥

——*——

भरत जी का वृत्तान्त—

चन्द्रमुखी—केकय देश में एक रात भरत ने स्वप्न देखा कि राजा दशरथ मैले वस्त्र पहने, बाल खुले, पहाड़ की चोटी से गोबर के कुण्ड में गिरे हैं और तैरते फिरते, तेल पी रहे, मग्न हो रहे हैं और तिल मिले चावल खा रहे हैं । फिर शिर कट गया, पर रुण्ड से तेल में चूषक लगा रहे हैं । समुद्र सूख गये, चन्द्रमा भूमि पर गिर पड़ा, जगत् में अंधेरा हो गया, हाथियों के दान्त छिन्न भिन्न हो गये, भूमि जगह जगह फट गई, वृक्ष सूख गये । फिर राजा को देखा कि लोहू की नदी में जारहे हैं और कई स्त्री मैले और काले वस्त्र पहने उन्हें मार रही हैं । दूसरी ओर देखा कि राजा लाल वस्त्र पहने गधों के रथ में दक्षिण दिशा को जारहे हैं और एक राक्षसी उन्हें पकड़े ले जा रही है और चारों भ्राता भयभीत खड़े हैं, पर चूं नहीं करते; कि आंख गुल गई । जी घबराने लगा, बड़ा भय जान पड़ता था, सोचते थे कि परमात्मा ! क्या

कारण है, पर समझ में न आता था। जब प्रातः हुआ, बेचैनी बढ़ गई, मुख सूख गया और मुख से आह निकलने लगी॥

सखा–भरत! आज तुम्हारी क्या दशा है? हम को तुम्हारी ऐसी दशा देख शोक होता है। बताओ तो क्या बात है? क्या कोई वैद्य बुलावें?

भरत–मित्र! हमने बड़ा भयानक स्वप्न देखा है, जिस से हम बड़े शोकातुर हैं। हम को तो यह फल दिखाई देता है कि हम या राजा वा राम वा लक्ष्मण में से जल्द किसी की मृत्यु होगी। इस कारण दुःख से हमारा गला सूखा जाता है, जी घबराता है, चारों ओर भय ही भय दिखाई देता है और वाणी भी मन्द होती जाती है॥

चन्द्रमुखी–भरत जी बातें कर ही रहे थे कि अचानक अयोध्या के दूत केकयराज से मिल, भरत जी के पास आये और बोले–

दूत–राजकुमार! आप के पुरोहित वसिष्ठ जी और मन्त्रीजनों ने आप की प्रसन्नता पूछ और तुरन्त बुलाया है। बड़ा आवश्यक कार्य है, देर में विघ्न होना सम्भव है और ये अमूल्य वस्तु भेजी हैं, जो तुम्हारे नाना मामा के लिये हैं॥

भरत–(तुरन्त सब सामग्री भेज) भला हमारे पिता जी तो प्रसन्न हैं और महात्मा राम लक्ष्मण और बड़ी माता कौशल्या तो आरोग्य हैं और माता सुमित्रा तो कुशल हैं और सदा की स्वार्थिनी क्रोधमूर्त्ति नाक भौं चढ़ाने वाली और अपने को पण्डिता मानने वाली, हमारी माता केकयी तो अच्छी हैं। और चलते समय क्या कहा है॥

दूत–(हाथ जोड़, नम्रता से) राजकुमार! सब प्रसन्न हैं और आपको वेग बुलाया है, अब आप जल्द रथ मंगावें, देर न करें। बड़ा आवश्यक कार्य है॥

भरत–अच्छा हम नाना जी से आज्ञा लेलें (और जल्द नाना के पास पहुंच) राजन्! दूत बुलाने आये हैं। आप आज्ञा दें तो हम पिता जी के दर्शन करें, आप जब फिर याद करेंगे तब ही चले आवेंगे॥

केकयराज–(सर सूंघ, छाती से लिपटाय) अच्छा जाओ, हमने जाना कि अब केकयी पुत्रवती कहलायगी। अच्छा अपने माता पिता से हमारी कुशल कहना और अपने मन्त्री पुरोहित ब्राह्मण और धुरन्धर अपने बड़े भाई

रामचन्द्र और छोटे लक्ष्मण से भी कुशल कह देना (और विदा किया) ॥

चन्द्रमुखी—विदा के समय राजा ने बहुत सामान दिया कि सब सड़क पर लगाया गया और फिर भरत नानी मामी से विदा हो,अपने मामा युधाजित से विदा हुये और दहेज़ के लिये आज्ञा दी कि पीछे २ लाओ । अब भरत राजमहल से निकल, पूर्व दिशा को चले और सुदामा नदी उतरे,फिर हलावनी, फिर दूरपारा,फिर सतलज । अर्थात् सातवें दिन अयोध्या दिखाई दी॥

भरत—ए सारथि ! आज तो यह मनोहर अयोध्या उजड़ी सी दीखती है, क्या इस में कोई उत्सव नहीं होता ? इस में से तो सदा कोलाहल सुनाई देता था, आज नहीं सुनाई देता । आज तो सुनसान है, कोई मनुष्य भी चलता फिरता नहीं दीखता । सड़क भी विना झाड़ी बुहारी पड़ी हैं और वृक्ष भी रोते से दीखते हैं । अरे अब तो निकट आगये,पर शब्द सुनाई नहीं देता। अरे नगरी में से तो सुगन्धित पवन आया करता था, आज क्यों नहीं आता। अरे आज तो बाजों का शब्द भी सुनाई नहीं देता, बाजे क्यों बन्द हैं? अरे आज तो सब शोक का सा सामान ज्ञात होता है, बताओ तो क्या बात है कि राग सुनाई दिया ॥

राग

रघुवर की सुधि आई आज मोह ठाकुर की । राम विना मेरी सूनी अयोध्या, लक्ष्मण विन ठकुराई । सीता विन मेरी सूनी रसोई, वे भी संग गईं जी ॥ रघुवर की सुधि० ॥ दशरथ विन मेरी सूनी गद्दी, सूनो ही राज्य पड़ो जी । हाय शोक भारी मोह यह है, वे भी स्वर्ग गये जी ॥ रघुवर की सुधि आई० ॥

(सुनते ही कलेजा धड़कने लगा, बे चैन हो)

भरत—ए सारथि ! बता तो क्या भेद है ?

रथवान्—कुछ उत्तर नहीं देता ॥

भरत—ए सारथि ! हमारे बुलाने में जो जल्दी हुई, इस में शोक की बात अवश्य है । अरे राजा की मृत्यु के सब चिन्ह दिखाई देते हैं, सब प्रजा के मुख उदास हैं । कोई मग्न नहीं दीखता ॥

चन्द्रमुखी—अब भरत राजमहल में पहुंचे,देखा कि राजा स्थान पर नहीं (बड़े सन्देह में) परमात्मा ! क्या बात है,राजा भी नहीं । चलें केकयी के महल में होंगे । बहनो ! इस साधु को क्या ख़बर कि केकयी की करतूत से राम, लक्ष्मण, सीता वन चले गये, राजा देवलोक पहुंचे । यह विचारा तो सीधा सच्चा वही अयोध्या और वही राज्य जानता है । शोक कि महल के भीतर आगया पर किसी ने समाचार नहीं सुनाया, सोच में है, कि तमाशा है । मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा। जगत् की चालों से ख़बर नहीं । अब थोड़ी ही देर है कि धाड़ें मार २ रोवेगा। रानी केकयी के महल में पहुंचा। केकयी भरत को देख,सुनहरी आसन छोड़ खड़ी होगई और भरत ने बन्दना की, केकयी ने छाती से लिपटाय सर सूंघा ॥

केकयी—ए भरत ! मेरे बाप भाई प्रसन्न तो हैं ? आज तुम को अपने नाना के घर से चले कै रात बीतीं ? जल्दी आये, रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ ॥

भरत—माता! आप के पिता जी को छोड़े हमें सातवीं रात है। तुम्हारे बाप भाई सब प्रसन्न हैं। हम को बहुत दान दिया है,दूतों की जल्दी से सब रास्ते में छोड़ आये हैं । पीछे आता है। हां यह तो बताइये कि हम ऐसी जल्दी क्यों बुलाये गये । कोई इक्ष्वाकुवंशी नहीं दीखता, पिता जी कहां हैं पहले उन्हें प्रणाम तो कर लें, माता कौशल्या के महल में तो नहीं हैं ?

केकयी—पुत्र ! तुम्हारे पिताजी तो वहां गये, जहां सब को जाना है।

भरत—(हाय ! हम मारे गये कह, मूर्छित होगये) ॥

चन्द्रमुखी—भरत बड़े वीर थे, पर यह शोक न सह सके और रोते २ हिचकी बन्ध गई ॥

केकयी—(भरत को पुचकार) राजन् ! उठो, भला तुम से पण्डित भी ऐसा शोक करते हैं ॥

भरत—हमारे पास पिता जी ने समाचार भेजा था कि हम रामचन्द्र को गद्दी देते हैं, आप नित्य यज्ञ किया करेंगे । यह सुन हम बड़े प्रसन्न हुये थे कि बहुत अच्छा हो, जो रामचन्द्र राजा होंगे । पर यहां तो राजा ही न रहे । हम को बड़ा शोक है । हमारी छाती फटी जाती है। हां यह तो बताइये कि पिता जी को क्या रोग हुआ, जो ऐसा जल्द शरीर छोड़ दिया कि हम को ख़बर तक न हुई । श्री रामचन्द्र बड़े भाग्यशाली हैं कि उन्होंने अन्त

समय पिता जी की सेवा तौ करली। हा! पिता जी को सुध भी नहीं कि हम माता जी के घर आये हैं। नहीं तौ हमारा शिर अवश्य सूंघते। हा पिता जी का सुखदाता हाथ कहां है, जो हमारे शरीर पर फिरे। हां यह तौ बताओ कि हमारे शिरोमणि महाराज रामचन्द्र जी कहां हैं? उन को तौ हमारे आने की ख़बर पहुंचा दो। हम कुलरीति से जानते हैं कि बड़ा भाई पिता समान होता है इस लिये उन के तो चरण ले लेवें। वे अब हमारे स्वामी हैं। भला यह तौ बताओ कि अन्त समय पिता जी ने रामचन्द्र जी से हमारे लिये क्या कहा था॥

केकयी—(मुस्कराती हुई) ए पुत्र! रामचन्द्र तौ सीता और लक्ष्मण सहित पहले ही चीरवल्कल पहन वन को चले गये थे॥

भरत—हैं रामचन्द्र जी ने तौ किसी ब्राह्मण का धन नहीं छीना, न किसी को मारा, न परस्त्रीगमन किया; फिर वन क्यों भेजे गये॥

केकयी—हां कोई पाप तौ रामचन्द्र ने नहीं किया। मैंने उन का राज्य तिलक सुन, राजा से तुम्हारे लिये राज्य और उन को १४ वर्ष का वनवास मांग लिया। सो ए पुत्र! राजा तुम्हें राज्य दे गये हैं, सो तुम शोक छोड़, निर्भय राज्य करो॥

भरत—भला विना रामचन्द्र के हम को राज्य से क्या लाभ। अरे दुष्टा! तैने हमें घायल करदिया और अब घाव पर नमक छिड़कती है। अरे उधर तू ने राजा को मारा इधर रामचन्द्र को तपस्वी बना, वन भेज दिया। अरे तू तो इस कुल के नाश का कारण हुई। पिता जी तुझ अग्नि को पा, जल कर स्वर्ग चले गये। ए पापिनि! तूने तो हमारा बाप मार डाला और बाप को ही नहीं मारा, सारे कुल का नाश करदिया और सच मुच राजा रामचन्द्र के शोक में तेरी ही कृपा से तौ मरे और आप नहीं मरे, तूने ही मार डाला। वे हमारे पिता जी तो धर्मात्मा थे। वे साधु, स्त्रीचरित्र क्या जाने, जो कहो कि हमने क्यों मारा, अपने प्यारे पुत्र के शोक में मरे, तौ यह बता कि रामचन्द्र को किसने वन को निकाला। यह सब तुम्हारा ही तौ किया कराया है। जो तुम रामचन्द्र को वनवास न दिलातीं तो राजा क्यों स्वर्ग जाते। ए दुष्टा! कौशल्या और सुमित्रा पुत्र शोक में जीती रहैं, आश्चर्य है। जो तुम रामचन्द्र को दोष लगाओ तौ झूंठे, वे महात्मा तौ गुरुसेवा भलीभांति जानते थे और अपनी माता से अधिक तुझ से प्रेम रखते थे और हमारी

बड़ी माता भी तुझे धर्म से अपनी छोटी बहन मानती थी, उन्हीं के पुत्र को तैंने चीरवल्कल पहनाय, बन भेजा तौ फिर क्यों नहीं सोचती। ए पापिनि! तैंने शूरवीर रामचन्द्र को चीरवल्कल पहनाय वन भेजा है तौ क्या मैं इस का कारण नहीं जानता? मैं जानता हूं कि तू बड़ी लालचनी है। इसी कारण तैंने रामचन्द्र जी का विचार न किया, केवल राज्य के लोभ में अन्याय करडाला। ए दुष्टा! हम उस पुरुषसिंह रामचन्द्र के विना कैसे इस राज्य का बोझ उठा सकते हैं। जैसे कि गाड़ी की धुरी बैल का बोझ छोटा सा नाटिया नहीं उठा सकता, वैसे हम भी यह बोझ नहीं उठा सकते। सुन हम तुझ पुत्र की दुःखदाता का मनोरथ पूरा न करेंगे और तेरा यह विचार कि मेरा पुत्र राजा हो और मैं सौकों पर राज्य करूं, पूरा न होगा। जो रामचन्द्र को तुझ से प्रेम न होता और अपनी माता से अधिक तेरी प्रतिष्ठा न करते होते तौ आज हम तुम को छोड़देते। ए पापिन! तेरी ऐसी बुद्धि कैसे हो गई कि जिस से तेरी साधु लोगों में निन्दा हुई। तूने हमारी प्राचीन रीति में धब्बा लगाया। अरे दुष्टा! इस कुल में तौ यह रीति सदा से चली आई थी कि बड़ा भाई राजा होता था और छोटे उस की सेवा करते थे। हम नहीं जानते कि तूने कौनसी राज्यनीति पढ़ी है कि जो राज्यकर्म नहीं जानती। कुछ समझ में नहीं आता कि जब राजों में यह रीति प्रचलित है और हमारे कुल में तो अवश्य कि बड़ा भाई राजा हो। अरे दुष्टा! तेरे कर्त्तव्य से ही तौ सारे जगत् की रीति बदलगई कि बड़े को राज्य न मिला। अरे हम तो तेरे माता पिता का दोष नहीं बता सकते, रामचन्द्र का कुल तो बहुत ही उत्तम है। पर तुझे लोभ कहां से मिला कि जिस से तेरी बड़ी निन्दा हुई और सदा होगी। ए पापन! हम तेरा मनोरथ तो पूरा न करेंगे। यह दृढ़ है कि तैंने हमारे मृत्यु की सामग्री एकत्र करी है। ख़ैर जो कुछ किया सो भला किया। पर अब तुझे दुःख देने को हम वन जा और रामचन्द्र जी को ला, तेरे आगे ही राजा बनावेंगे। उस वक़्त हम देखेंगे कि तू क्या करती है। देख, हम रामचन्द्र जी के दास बन, तेरे आगे ही उन की सेवा करेंगे (और रोते २ हिचकी बंधगई और फिर आंसू रोक क्रुद्ध हो) ए निर्लज्जा! तूने हमको भी राज्य से खोया और आप भी दूषित हुई। तू तो अब धर्मसे छोड़ दी गई और हम तो सत्यवादी हैं। हमें तो कोई कुछ कहेहीगा नहीं, पर तू तो अवश्य रोवेगी। भला धर्मात्मा दशरथ जी और रामचन्द्र जी ने तेरा क्या

बिगाड़ा था कि जो तूने रामचन्द्र जी को वनवास दे, राजा को मारडाला। ए केकयी ! इस कुलनाशने से तुझे गर्भपात का पाप लगा। तू अवश्य नरक जायगी। तुझे कैसे भी हमारे पिता जी के संग स्वर्ग न मिलेगा, क्योंकि तैने सारे जगत् के प्यारे रामचन्द्र को वनवास दिया और हम को भयभीत किया। हा ! तेरे ही कारण राजा की मृत्यु हुई, रामचन्द्र वन गये और हमारी भी निन्दा हुई। देख, प्रजा कहेगी कि इन्हीं की माता ने रामचन्द्र को वनवास दिया और राजा को मारडाला। तू तो देखने में माता है, पर पूरी बैरी, जो तैने राज्य की इच्छा की। ए पतिघातक ! बस अब हम से राज्य का नाम न लेना। हा ! हमारी माता कौशल्या व सुमित्रादि तेरे ही कर्त्तव्य से विपत्ति में पड़ीं और विधवा कहाईं। हमने जान लिया कि तू केकय राजा की कन्या नहीं, केवल हमारा कुलनाशने को उन के गृह में राक्षसी जन्मी है। इसी कारण तूने राक्षसी कर्म किया। अरे ! तूने हम को विना बाप भाई का कर डाला और जगत् में अपकीर्त्ति दिलाई और धर्मात्मा बड़ी माता को भी निपूती कर दिया। हम नहीं जानते कि अब तुझे कहां जगह मिलेगी। तू अवश्य नरक वास करेगी। ए अभिमानिनि ! क्या तू नहीं जानती कि परमप्यारे बड़े भाई रामचन्द्र हमारे पिता समान और बड़ी माता के प्राण थे। तुमने जो कौशल्या जी को दुःख दिया, उस के बदले में अवश्य नरक भोगोगी। अब तत्पर रहो कि हम तो धर्म पूरा करने वाला कार्य करेंगे और वह यह है कि महाराज रामचन्द्र जी को वन से बुलाय, राज्यसिंहासन पर बिठावेंगे और आप मुनि वेष बनाय, वन बसेंगे, पर तेरा मनोरथ पूरा न करेंगे। देख, रामचन्द्र के वियोग में दुःखित प्रजा को आंख भरे अपनी ओर निहारते देखेंगे, भला तब हम से राज्य कैसे हो सकेगा (और मूर्छित हो गये थोड़ी देर में देखा कि केकयी रो रही है और मन्त्री लोग चारों ओर बैठे हैं, बस खड़े हो और केकयी को धमका) भाइयो ! हम तो न राज्य की इच्छा रखते हैं और न इस दुष्टा माता की सम्मति चाहते हैं और न राज्यतिलक चाहते हैं। भाइयो ! हम तो शत्रुघ्न सहित केकय देश में थे। हम को तो न वनवास का समाचार ज्ञात हुवा और न राजा के परलोकगमन का ॥

कौशल्या जी का महल—

कौशल्या—ए सुमित्रा ! आज तो उस क्रूरी केकयी के पुत्र भरत का शब्द

सुनाई देता है। हमने बहुत दिनों से उन्हें नहीं देखा, अब देखना चाहती हैं (और दुर्बल, उदास कांपती हालती कौशल्या भरत के देखने को चलीं और उधर भरत भी शत्रुघ्न को साथ ले कौशल्या जी के दर्शनार्थ चल दिये। बीच में भेंट हुई, दोनों भाई बड़े प्रेम से प्रणाम कर माता जी से लिपट गये और माता ने प्रेम से गले लिपटाया और रोने लगीं कि मूर्छित होगईं और गिर पड़ीं, थोड़ी देर में मूर्छा जागी तो भरत से) ए पुत्र! केकयी ने बड़ी कठिनाई से यह राज्य तुम्हारे लिये पाया है और तुम भी प्रसन्न होगे, सो अब यह राज्य निर्भय आप को मिल गया। बेटा! सुख से भोगो,पर हम नहीं जानतीं कि हमारे पुत्र को चीरवल्कल पहनाय वन भेजने में क्या लाभ देखा। जो उसे राज्य की इच्छा थी तौ राम वैसे ही छोड़ देते। नहीं जान पड़ा कि १४ वर्ष का वनवास क्यों दिया? अब हमारी यह इच्छा है कि केकयी हमारे पुत्र के पास हम को भी पहुंचा दे तो अच्छा हो और जो केकयी न भेजे तौ तुम ही आज्ञा दो कि प्यारे रघुनन्दन के पास सुमित्रा जी के सङ्ग हम आप ही चलीं जायें। नहीं तुम ही कृपा कर पहुंचाय दो और भरा पूरा राज्य लो॥

चन्द्रमुखी–यह बातें सुन,भरत को बड़ा शोक हुवा और कौशल्या जी के चरणों पर गिर, रोने लगे। कुछ कहा चाहते थे कि मूर्छा आगई, थोड़ी देर में जब मूर्छा जागी तौ–

भरत-(हाथ जोड़े, रोते कांपते) ए आर्ये! हमारा प्रेम जो रामचन्द्र जी से है, वह आप को ज्ञात ही है कि वे हम को कितने प्यारे हैं और हमको इन बातों का कुछ भी हाल मालूम नहीं, इस कारण दोषी भी नहीं। आप हम को दोष न दें। ए माता! जिस की सम्मति से रामचन्द्र जी वन गये हों, उस को सारे शास्त्र पढ़ने पर भी कोई विद्या न आवे और नीच चर्मकारादि का सेवक बने और सोती गाय को पांव से मारने या बड़ा कार्य कर देने पर नौकर को नौकरी न देने या प्रजा को अनपराध मारने और प्रजा से छठा अंश लेने पर रक्षा न करने और ब्राह्मणों को यज्ञ की दक्षिणा न देने और बलवान् सेना के होते समरभूमि से भागने और शास्त्र के उत्तम उत्तम मनोरथ भुलाने से जो पाप होता है, वह हो। और वह दुष्ट पापी रामचन्द्र जी ही को गद्दी पर न देखे और उस को वह पाप हो जो विना यज्ञ किये खीर खाने या गुरु के लज्जित करने और माता पिता आदि बड़ों

की ओर ढिठाई से देखने से होता है और मित्रों के सङ्ग बैर और विश्वासघात और वचन पूरा न करने और गुण न मानने और उत्तम मनुष्यों के छोड़ने और निर्लज्जता और जगत् भर के बैर से होता है और वह पाप हो, जो स्त्री पुत्र सेवक आदि के बीच आप अकेले मिष्ट स्वादिष्ट भोजन खाने से होता है। उस के उत्तम सगुण स्त्री पुत्र न हों और आप भरी ज्वानी में अकाल मरे। और वह पाप हो, जो स्त्री और बालक के मारने और अनपराध नौकर के छोड़ देने और लाह मदिरा और मांसादि बेच उस के धन से कुटुम्ब की पालना करने से होता है और वह संग्राम से भागे और वैरियों के हाथ में फंसे और मुर्दे की खोपड़ी लिये जगत् में भीख मांगे और सदा मदिरा पान करे और परस्त्रियों में रत रहे और जुआ खेले और सदा लज्जित रहे। उस का मन कभी यज्ञ में न लगे, सदा अधर्म ही किया करे और सदा कुपात्रों को दान दे कि जिस से नरक मिलता है। और उस का सहस्रों का धन चोरी जाय और प्रातः सायं सन्ध्या न करने का पाप हो और अग्नि लगाने और गुरु की स्त्री से विषय करने का पाप हो और मित्रघाती हो और वह देवता पितृ और माता पिता की सेवा न कर सके और अच्छे पुरुषों के काम कीर्त्ति और स्तुति से भ्रष्ट हो जाय और शूरवीर हो कर भी माता पिता की सेवा न कर सके। कुकर्मी हो जाय और बहुत से नौकर चाकरों के होते अनेक कष्ट पावे और ज्वरादि रोगों में फंसा रहे। सदा दुःख पाया करे और किसी की आशा पूरी न कर सके और सदा राजा से डरता बन में दुबकता फिरे और अपनी ऋतुमति स्त्री को ऋतुदान न दे सके और अपने बालकों की पालना न करने वाले ब्राह्मण का पाप लगे और वह यज्ञ बिगाड़े और छोटे बच्चे वाली गाय दुहे, अपनी विवाहित स्त्री छोड़ बिना विवाहित रख ले और सब धर्म कर्म जाते रहें और वह पाप लगे, जो पीने का जल बिगाड़ने और विष देने और पियासे को जल न पिलाने वाले और वादी प्रतिवादी में से किसी एक का सङ्ग देने से होता है॥ (ऐसी शपथ करते करते मूर्छित हो गये)

कौशल्या—ए पुत्र! ऐसी सौगन्दों से तुम हमारा मन रोकते हो और तुम को दुःखित देख, हमें भी दुःख होता है। ए पुत्र! तुम सच्चे धर्मात्मा हो।

तुमने अपना धर्म नहीं छोड़ा, इस कारण तुम को देवलोक मिले (और छाती से लिपटाय रोने लगीं)

वसिष्ठ—ए भरत ! अब राजा की प्रेतक्रिया तो कर लो ॥

कौशल्या—हां पुत्र ! प्रथम प्रेतक्रिया कर लो, पीछे और कार्य करना ॥

भरत—(जो आज्ञा, कह, वैदिकरीति से राजा की प्रेतक्रिया की । और कर्म से निवृत्त हुये)

एक दिन–

पुरवासी—ए भरत! राजा ने तो स्वर्गवास किया और रामचन्द्र जी ने वनवास लिया । राज्य सूना है, आप राज्यतिलक कराय, राज्य लें ॥

भरत—भाई ! राज्यतो रामचन्द्र जी का है, हम कैसे राजा हो सकते हैं ॥

पुरवासी—राजन् ! रामचन्द्र जी तो तुम्हारे लिये राज्य छोड़,वन को चले गये । ऐसी दशा में आप को राज्य करना अनुचित नहीं और हमारी क्या, यह गुरु, पुरोहित, मन्त्री सब तिलक की सामग्री एकत्र किये हैं । अब आप अपने बड़ों का राज्य पालें ॥

भरत—भाई ! इस कुल में तो बड़ा ही राजा होता रहा है,सो रामचन्द्र जी के होते हम से ऐसा क्यों कहते हो । सुनो, राम ही अयोध्या के राजा बनेंगे और हम उन के बदले १४ वर्ष वनवास करेंगे । अब हम बड़ी सेना सहित चल रामचन्द्र जी को लौटा लावें । भाई! हम इस दुष्टा माता केकयी का मनोरथ पूरा न करेंगे, परन्तु इस के मनोरथ विरुद्ध श्री रामचन्द्र राजा होंगे और हम वनवास करेंगे । अभी २ बेलदार भेजो कि मार्ग शुद्ध करदें और बीच २ में हाट लग जावें कि जिस से किसी को कोई कष्ट न हो ॥

सब—धन्य है, भरत ! जो तुम ऐसा कठिन कार्य कर, कीर्ति लेते हो । तुम जो बड़े भाई का राजा बनाना स्वीकार करते हो, इस लिये स्वर्गभागी हो, स्वर्गवास करोगे ॥

वशिष्ठ—ए भरत ! राजा और रामचन्द्र के राज्य का प्रबन्ध करो, यह सब सेना और प्रजा तुम्हारे आधीन है ॥

भरत—गुरु जी ! शोक है आप की सम्मति पर, भला यह कैसे सम्भव है कि हम रामचन्द्र जी का राज्य लेलें । क्या हम दशरथसुत नहीं हैं, जो ऐसा अनुचित कर्म करें । आप को ऐसे वचन न कहने चाहियें,सदा धर्म ही

के वचन बोलने उचित हैं। क्या हमारे राज्य लेने से इक्ष्वाकुवंश की अपकीर्ति न होगी और हम नरक न भोगेंगे,नहीं २ अवश्य अपकीर्त्ति होगी और हम नरक भोगेंगे।हम ऐसा कर्म नहीं कर सकते और वन में बैठे महाराज रामचन्द्र जी को यहीं से नमस्कार करते हैं (और कर जोड़ नमस्कार किया) देखो रामचन्द्र जी सब के समझाने से चले ही आवेंगे। नहीं तो हम उन के सङ्ग अवश्य वन चले जायेंगे (मुख फेर) ए सुमन्त ! वनगमन की तयारी करो॥

सुमन्त—(जो आज्ञा, कह, तयारी करते हैं)

चन्द्रमुखी--अब भरत जी वन को चले और बहुत सी प्रजा भी सङ्ग हो ली॥

चित्रकूट

चन्द्रमुखी—बहनो ! रामचन्द्र जी पर्णकुटी बना चित्रकूट पर रहने लगे और नित्य सीता जी और लक्ष्मण जी के सङ्ग पर्वतों को देखते और नाना प्रकार के फल मूल वृक्ष नदी पर्वत के शिखर सीता जी और लक्ष्मण जी को दिखाते। यहां इन का मन ऐसा रमा कि अयोध्या याद न आती थी। एक दिन तीनों पर्वत की शिला देख रहे थे कि अनेक जीव भयभीत भागते दीख पड़े॥

रामचन्द्र—लक्ष्मण ! यह बड़ा कोलाहल कहां हो रहा है ? ये हाथी भैंसे मृगादि सिंहों से भयभीत हो तो नहीं भागे ? या कोई राजकुमार तो शिकार खेलने नहीं आया। या किसी पशु ने तो इन्हें नहीं सताया॥

लक्ष्मण—(बड़े ऊंचे शाखू के वृक्ष पर चढ़, पहले तो पूर्व दिशा देखी फिर उत्तर। उत्तर दिशा में बड़ीभारी सेना बहुत हाथी घोड़े ऊंटादि सहित दिखाई दी और बोले) महाराज ! उत्तर दिशा में एक बड़ी भारी सेना दीखती है। अब आप सीता जी को किसी गुफा में बिठाल, अपने कवच आदि पहन, इस सेना को नष्ट करें॥

रामचन्द्र—लक्ष्मण ! यह तो देखो किस की सेना है॥

लक्ष्मण-(बड़े क्रोध से) महाराज ! है किस की,वे ही केकयी पुत्र भरत हम दोनों के मारने को आते हैं और उन्हीं की सेना है। देखिये ये हाथी घोड़े कैसे वेग से चले आते हैं। अब हम को शस्त्र बांध युद्ध को उद्यत होना चाहिये। आज हम भरत को संग्राम में देखेंगे। जिन के कारण आपने हमने और सीता जी ने राज्य छोड़ा और यह कष्ट उठाया। ए वीर ! ये वे ही तो भरत आते

हैं। अब हम इन को मार डालेंगे। इन के मारने में कुछ पाप तो है ही नहीं क्योंकि जो पहले दुःख दे, उस का मारना कुछ बुरा नहीं और भरत तो हम को दुःखित कर ही चुके। बस भरत के मारे जाने पर आप निर्भय राज्य करें। निस्सन्देह राज्य के लाभ में कैकयी आज अपने पुत्र भरत को हमारे हाथ से मरा देखेगी और पीछे से उस के बाप भाई भी मारे जायेंगे और आप भी मारी जायगी। आज पृथिवी बड़े भार से हलकी होगी और हमारा भी सब क्रोध उतर जायगा। आज हमारे तीरों के वेग और शस्त्रों की काट से आप सारी सेना कटी देखेंगे। आज चील काक श्वान गीदड़ भी पेट भर भोजन पावेंगे॥

रामचन्द्र—भाई! यहां तीर तलवार का क्या काम। यहां तो महाबलवान् भरत आप ही आरहे हैं। हम तो पिता जी से १४ वर्ष के वनवास का वचन कर चुके। अब भला भरत को मार यह अपकीर्ति शिर धरेंगे और ऐसी निन्दा से राज्य ले क्या करेंगे। ए लक्ष्मण! जो वस्तु अपने भाई बान्धवों के नाश से प्राप्त हो हम उसे स्वीकार नहीं करते। ए लक्ष्मण! हम तुम भ्राताओं के लाभ के लिये ही राज्य भी चाहते हैं (और खड्ग छू) हम तुम्हारी हानि से अपना लाभ नहीं चाहते नहीं तो आप से वीर के होते हम को समुद्र और तक राज्य मिलना कठिन नहीं। पर अधर्म से तो हम इन्द्रपुरी भी नहीं चाहते। हम को जो सुख तुम्हारे और भरत शत्रुघ्न के बिना हो, उस को अग्नि जला दे। हमारी समझ में तो जब भरत ननहसाल से आये होंगे, तब उन को हमारा तुम्हारा और सीता जी का वनवास ज्ञात हुआ होगा। वे धर्मात्मा तो हैं ही, अपनी कुल रीति याद कर माता को बुरा भला कह, पिता जी से आज्ञा ले, हम से मिलने और राज्य लौटाने आये हैं। ऐसा विचार कभी न करो कि वे हमें दुःख देने आये हैं। वे तो हमारी हानि की कभी इच्छा न करेंगे। क्या कभी तुम्हें और भरत को नाचाकी होगई थी, जो ऐसा भय करते हो। प्यारे! अब तुम भरत जी से अनुचित बात न कहना। जो कोई अनुचित बात भरत जी से कही तो हम से कही समझना। समझ लो कि विपत्ति के समय में बेटा बाप को और भाई भाई को अनुचित शब्द नहीं कह सकता। जो राज्य के लोभ से भरत को ऐसा समझते हो तो जब भरत हम से मिलेंगे, हम उन से कह देंगे कि तुम राज्य लक्ष्मण को दे दो। याद रक्खो, जिस समय हमने भरत से कहा, तुरन्त ही राज्य दे देंगे॥

लक्ष्मण—(लज्जित हो) महाराज ! क्षमा कीजिये। अब हम भरत जी को दशरथ जी समान समझेंगे ॥

रामचन्द्र—हम को भली भांति दृढ़ है कि भरत हम से मिलने ही आते हैं और समझा बुझा घर ले जाने को। देखो भरत शत्रुघ्न वेगवान् घोड़ों पर कुटुम्बी मनुष्यों के सङ्ग कैसे वेग से आरहे हैं और देखो पिता जी का शत्रुञ्जय हाथी भी आगे २ आ रहा है। पर पिता जी का सुनहरी छत्र नहीं। इस से शोच होता है कि क्या कारण। अब वृक्ष से नीचे उतर आओ ॥

चन्द्रमुखी—यह सुन लक्ष्मण वृक्ष से उतरे और कर जोड़े आगे खड़े हो गये। उधर भरत जी ने यह विचारा कि पर्वतवासियों को कोई कष्ट न हो, पहाड़ के नीचे सेना को विश्राम की आज्ञा दी और ६ कोश लम्बी सेना ठहरी और भरत जी ने विना सवारी पैदल रामचन्द्र जी से मिलने का मनोरथ किया ॥

भरत—प्यारे शत्रुघ्न ! तुम बहुत से निषादों सहित रामचन्द्र जी को इस वन में ढूंढो, और हम भी गुरुमन्त्रियों सहित आप भी पांव पांव चल रामचन्द्र जी को ढूंढते हैं। अब हम को विना रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीता के देखे चैन नहीं। अब हम जब तक रामचन्द्र जी के दर्शन न कर लें, हम को चैन न होगा और जब तक रामचन्द्र जी का राज्यतिलक न करलें, संतोष न होगा। भाई ! लक्ष्मण बड़े भाग्यवान् हैं कि नित्य रामचन्द्र जी के दर्शन करते और सीता जी बड़ी भाग्यवती हैं कि रामचन्द्र जी के सङ्ग ही सङ्ग रहती हैं और भाई ! यह चित्रकूट पर्वत भी बड़ा भाग्यशाली है कि जिस पर रामचन्द्र जी वसते हैं ॥

चन्द्रमुखी—भरत जी ने एक साखू के वृक्ष पर चढ़ कर देखा तो रामचन्द्र जी की कुटी और अग्निहोत्र का धुवां दिखाई दिया। बस देखते ही मग्न हो गये और वशिष्ठ जी से कहा कि तुम सब माताओं को साथ लेकर आओ। हम शत्रुघ्न और सुमन्त जी को सङ्ग ले जल्दी २ चलते हैं और चलते २ कुटी पर पहुंचे। देखा कि रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण सहित मृगछाला और चीरवल्कल पहने बैठे हैं। बस देखते ही शोकातुर हो रोने लगे और बोले–हा! जिन रामचन्द्र जी की यज्ञों से धर्म की राशि इकट्ठी हो गई थी, वे राम आज शरीर को कष्ट देदे, धर्म ढूंढ रहे हैं। हा ! जिन रामचन्द्र जी के शरीर में सुगन्धित चन्दन लगाये जाते थे, आज उन के शरीर में धूल लग रही है। हा ! बड़े भाई कैसे सहारते होंगे। हा ! जिस मेरे कारण बड़े भाई को कष्ट होता है, उस मेरे जीवन को धिक्कार है कि जिस की जगत् में निन्दा

हुई। ऐसे कहते कहते भरत जी ने रामचन्द्र जी के पांव छूने को हाथ बढ़ाया, पर हाथ न पहुंचा और शोक से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े। यह तो मुख से निकला कि (आर्य भी ऐसा दीन हो) और कुछ न बोल सके और शत्रुघ्न ने रामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम किया और रामचन्द्र जी दोनों को छाती से लिपटाय रोने लगे और रामचन्द्र, लक्ष्मण, सुमन्त और गुह से भी छाती से लगा कर मिले॥

चन्द्रमुखी—बहनो! भरत को इतना शोक हुआ था कि चहरा ही बदल गया था। पहले तो रामचन्द्र जी ने पहचाना भी नहीं, सब से मिले पर जब ध्यान से देखा तो ज्ञात हुआ कि ये तो भरत मूर्छित पड़े हैं। तुरन्त छाती से लगाय, शिर सूंघ, गोद में बिठा लिया और बोले—

रामचन्द्र—ए प्यारे! तुम्हारे पिता जी कहां गये, जो तुम वन को आये। हम जानते हैं कि उन्होंने शरीर त्याग दिया। नहीं तौ वन को न आते। ए तात! तुम तो बहुत दिनों से नन्हसाल गये थे, हमने बहुत दिनों में मिलने और दुर्बल हो जाने के कारण नहीं पहचाना। भला इस निर्जन वन में तुम कैसे आये। कहीं राजा स्वर्ग तो नहीं चले गये? हम जानते हैं कि अवश्य स्वर्ग चले गये। कहो उन के पीछे तुम बच्चे ही राज्य के स्वामी रहे, राज्य भ्रष्ट तो नहीं हुआ? जो पिता जीते हैं तो तुम उन की सेवा भली भांति करते हो? भला राजा प्रसन्न तो हैं? राजसूय यज्ञ का प्रबन्ध तो नहीं किया? भला गुरुवशिष्ठ की सेवा तो करते हो? भला कौशल्या और केकयी प्रसन्न तो हैं और सुमित्रा जी तौ राज़ी हैं? भला वशिष्ठ जी के पुत्र की तो प्रतिष्ठा करते हो? भला वेद-पाठी पुरोहित अग्निहोत्र के समय पर याद दिलाने को तुमने नियत-कर लिया है? ए तात! तुम देवता, मित्र, मन्त्री, दिवान, नौकर, चाकर, गुरु, बूढ़े, वैद्य ब्राह्मणों को पिता समान मानते हो? ए तात! वाणविद्या और सब शास्त्रों के वेत्ता सुधन्वा उपाध्याय को प्रसन्न रखते हो? ए तात! अपने समान शूरवीर वेद शास्त्र पढ़े, जितेन्द्रिय, कुलीन, मन की बात जानने वाले मनोहर मन्त्री तुमने नियत कर लिये हैं? ए भरत! राजों को मन्त्री से ही जय होता है सो गुरु से सीखे चारों वेदों के मन्त्रियों से मन्त्र अर्थात् मशवरा अलग बैठ किया करते हो? भला सन्ध्या के समय कभी सो तो नहीं जाते? भला पहर भर रात्रि से उठ अपने कार्यों का प्रबन्ध विचारते हो? भला एक एक मनुष्य के सङ्ग विचार करते हो? सब के साथ एक सङ्ग तो विचार नहीं करते कि जिस से तुम्हारे सब विचार खुल जायें। भला अपना कर्त्तव्य पहले से विचार लेते हो कि जिस से वह सहज

में पूरा होजाय और ऐसे कार्यों में जल्दी करते हो, देर तो नहीं लगाते ? भला तुम्हारे मनोरथ को समय से पहिले तुम्हारे आधीन राजा तो नहीं जान लेते? भला तुम्हारे विना कहे तुम्हारे मनोरथ को तुम्हारे आचरणों से तो कोई नहीं जान लेता ? भला तुम और तुम्हारे मन्त्री औरों का मनोरथ जान लेते हो ? भला बहुत से मूर्खों को छोड़ १ विद्वान् की प्रतिष्ठा करते हो, क्योंकि समय पर एक पण्डित ही काम आता है । बहुत से मूर्खों से राजा का कोई काम सिद्ध नहीं होता । भला तुम बड़े काम में बड़ाही कर्मचारी नियत करते हो क्योंकि राजा को योग्य है कि बड़े कार्य में बड़ा और मध्यम में मध्यम और घटिया में घटिया कर्मचारी नियत करे । भला बाप दादा के आगे के वृद्ध ग्राहक मन्त्रियों को बड़े २ काम दे रक्खे हैं ? भला थोड़े अपराध में बड़ा दण्ड तो नहीं देते कि जिस से प्रजा और मन्त्री लोग निराश न हो जायें और कैकयी का ही पुत्र कहैं भला यज्ञकर्त्ता ऋषि लोग तुम्हें व्यभिचारी तो नहीं जानते ? भला तुम्हारे कोई ऐसा वैद्य तो नहीं कि चाहे जब आराम करदे और चाहें जब रोग बढ़ा दे और प्रजा सेना को बहका देने वाला या मिलाये रखने वाला मन्त्री तो नहीं है ? देखो ऐसे वैद्य और मन्त्री रखने से राजा मारा जाता है । भला तुमने शूरवीर बुद्धिमान् पवित्र कुलीन उन्नति चाहने वाला सेनापति नियत कर लिया है ? भला लड़ाई जीते योद्धाओं की शुश्रूषा करते हो ? भला सेना को मासिक नौकरी और नित्य भोजन देते हो ? भला राजा के भाई बेटे तुम को बड़ा मानते हैं और तुम्हारी सहायता के लिये प्राण देने को तयार रहते हैं ? भला राजनीति जानने वाला और ज्यों का त्यों ख़बर पहुंचाने वाला और सत्य असत्य कार्यों का जानने वाला और अपने मन से योग्य उत्तरदाता कोई दूत नियत कर लिया है ? भला नीतिशास्त्रानुसार १ पुरोहित, २ मन्त्री, ३ सेनापति, ४ द्वारपाल, ५ महलदार, ६ जेलर ७ कोषाध्यक्ष, ८ जज ९ कारबारी, १० व्यवस्थापक, ११ व्यापारका प्रबन्धकर्त्ता १२ सेना की नौकरी बांटने वाला, १३ ठेके वालों का रक्षक, १४ कोतवालों का द्रष्टा, १५ घाटों का रक्षक, १६ मजिस्ट्रेट, १७ वन समुद्र का रक्षक १८ मन्त्री, ये सब चतुर चतुर १८ मन्त्री तुमने नियत कर लिये हैं और इन में प्रत्येक कार्य के लिये उन के ३ । ३ दास रखते हो और दूतों द्वारा सुध लेते रहते हो कि वे अपने २ कार्य कर रहे हैं । भला अपने हानिदायी वैरियों को देश से निकाल दिया है और जो बड़े दुर्बल और दुखित हो लौट कर आये हैं तो वे जांचे वसने तो नहीं दिया । ऐसे मनुष्यों को कभी न वसाना

चाहिये क्योंकि वे अपना पुराना वैर नहीं छोड़ते। भला नैयायिक और वाममार्गियों की तौ प्रतिष्ठा नहीं करते ? भला अयोध्यापुरी की तौ अच्छी रक्षा करते हो ? भला कोशलदेश तौ अच्छा वसता है। भला किसान गोपाल और सौदागर लोग तौ सब सुखपूर्वक हैं और अपना २ कार्य दृढ़ता से कर रहे हैं ? भला प्रजा की रक्षा तौ चोर डाकुवों से करते हो ? भला अपनी स्त्री को समझाते रहते हो और उन की रक्षा भी करते हो ? उन की बातों पर तौ विश्वास नहीं करते ? इत्यादि। और अच्छे २ भोजन आप अकेले ही तो नहीं कर लेते ? अपने बान्धवों को भी खिलाते हो या नहीं ? ॥

भरत—महाराज ! हम को राजधर्म क्या करेगा। हमारे तो कुलरीति है कि बड़े भाई के होते छोटा राजा नहीं होता, इस लिये आप हमारे साथ अयोध्या चलें और कुल की उन्नति के लिये राज्यतिलक कराय, राजा बनें। क्योंकि जिन राजा को मनुष्य मानते थे वे तौ देवता हो गये और हम तौ केकय देश में रहे और आप वन में। वहां राजा पीछे ही स्वर्ग चले गये और तुम्हारे वनगमन के शोक में शरीर छोड़ा। अब उठिये और लक्ष्मण और सीता सहित उजड़ी अयोध्या वसाइये ॥

रामचन्द्र—(हा ! कह और दोनों हाथ माथे पर रख, मूर्छित हो गये। तीनों भाइयों ने नदी से जल ले, मुख पर छिड़का, मूर्छा जागी, बोले-) ए भरत ! अब तौ पिता जी स्वर्ग चले गये, अब हम अयोध्या जा, क्या करेंगे। भला विना दशरथ जी के अयोध्या की रक्षा कौन कर सकता है और अब उन महात्मा का कौन सा कार्य हम से हो सकता है। हा ! वे तौ हमारे शोक में मरे और हम ने उन का प्रेत कर्म भी न किया। ए भरत ! तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हो गये कि तुम ने शत्रुघ्न के सङ्ग राजा की क्रिया तौ करली। अभी तो क्या है, वनवास पूरा होने पर भी हम अयोध्या जाना नहीं चाहते क्योंकि जो हम वनवास पूरा कर अयोध्या जायेंगे तौ विना पिता जी के हम को कौन सिखावेगा और जिन बातों से हमारे कानों को सुख होता था, उन्हें कौन सुनावेगा। ए सीता ! तुम विना श्वशुर की होगईं और ए लक्ष्मण! तुम विना पिता के रहगये (और विलाप करने लगे) ॥

चन्द्रमुखी—इतने में सब मनुष्य और वशिष्ठ जी माताओं सहित कुटी पर पहुंच गये। रामचन्द्र जी सब से मिले और माताओं के चरणों में गिरे और लक्ष्मण जी ने भी पग छू, वन्दना की और सीता जी भी सासुओं के चरण छू, रोने लगीं और रानियों ने छाती से लिपटा, शिर सूंघा ॥

कौशल्या—हा जनककुमारी ! दशरथ जी चक्रवर्त्ती की पतोहू श्रीरामचन्द्र की पत्नी ने इस वन में कैसा दुःख पाया होगा। ऐ है ! धूप से जले कमल और धूल लगे सोने और बादल से घिरे चन्द्र के तुल्य तुम्हारा मुख देख २ दुःख के ईन्धन और शोक की अग्नि से हमारा जी जला जाता है ॥

चन्द्रमुखी—अब रामचन्द्र जी ने स्नान कर वशिष्ठ जी के पग छुये, और सब मनुष्य बैठे और भरत भी तपस्वी का वेष बनाय, हाथ जोड़, आगे बैठे हैं और सब तक रहे हैं कि क्या बात चीत होती है ॥

रामचन्द्र—ए भरत ! जिस कारण तुम चीरवल्कल पहन, यहां आये हो, हम वह सुना चाहते हैं और राज्य छोड़ने और मृगछाला पहरने का भी कारण कहो ॥

भरत—(चुप, कुछ नहीं बोलते)

रामचन्द्र—(हाथ पकड़) क्यों नहीं बोलते, बोलो तो ?

भरत—(कर जोड़) ए आर्य ! पिता जी हमारी माता के बहकाने से आप को वनवास दे, पुत्र शोक न सहार, अयोध्या छोड़, आप तो स्वर्ग चले गये और केकयी ने जो कुछ किया वह हमारी स्त्री माण्डवी के कहने से किया। पर फिर भी बड़ा भारी पाप केकयी ने किया कि जिससे उन की सब प्रतिष्ठा भङ्ग होगई और राज्य के बदले रंडापा पाया। वे भी इस शोक में दुर्बल होगई हैं। हां नरकवास का फल और मिला। अब जो होगया, सो होगया। मुझ दास की ओर दृष्टि कर राज्यतिलक कराय, इन्द्रसमान सिंहासन पर विराजिये और इन माता और प्रजाजनों का रंडापा दूर कीजिये। आप अवस्था गुण और बड़ाई से इस योग्य हैं, इस लिये अपने योग्य कार्य्य ले सब का मनोरथ सिद्ध कीजिये। जिस से आपसा पति पाय सारी पृथिवी सौभाग्यवती हो जाय। मैं आप के चरणों पर सीस रखता हूं (और पांव पर सीस रखते हैं) ए सिंह श्रीराम ! बहुत दिनों से रहे पिता जी के इन मन्त्री पुरोहितों का वचन स्वीकार कीजिये ॥

रामचन्द्र—(भरत को छाती से लिपटाय) ए भरत ! हम जानते हैं कि तुमसे धर्मात्मा राज्य के लिये पाप नहीं करते, इस कारण हम तुम्हें लेशमात्र भी दोष नहीं दे सकते। तुम अपनी लड़काई से माता को दोष न दो। प्यारे ! गुरु और शास्त्र की यही आज्ञा है कि हर मनुष्य अपने से छोटे को मनमानी आज्ञा दे। बस जब बड़ों को छोटों पर मनमानी आज्ञा पलवाने का अधिकार है और हम और तुम राजा के आज्ञाकारी ठहरे, तो जो

आज्ञा राजा जी ने दी, चाहे वह राज्य हो चाहे वनवास। ए धर्मात्मा! जब तक हमारा पिता जी में ध्यान है, तब तक माता में भी है। जैसा पिता वैसी माता। इन में भेद ही क्या है। जब हमारे पिता और माता केकयी जी ने एक मत हो, वनवास को कहा तो भला हम उस के विरुद्ध कैसे कर सकते हैं। उचित तो यही है कि तुम प्रतिष्ठा से अयोध्या का राज्य करो और हम चीरवल्कल पहन वन में वसें। इन सब के आगे महाराज दशरथ जी ने हम को और तुम को बंट बांट स्वर्गवास किया। बस जो लोकगुरु पिता जी कह गये हैं, वही बात मानने योग्य है। तुम को राज्य दिया, राज्य भोगो, और हम को १४ वर्ष का दण्डकारण्य का वास, उसे हम पूरा करें॥

भरत—ए राम! आपने हमारी माता की इच्छा पूर्ण की और हमको राज्य दिया, पर अब वही राज्य हम तुम को देते हैं। निर्भय राज्य कीजिये। जैसे नदी की बाढ़ से पुल टूट जाने पर पानी नहीं रुकता, वैसे ही हम से राज्य भी नहीं हो सकता। ए राम! जैसे अच्छे घोड़े की चाल गधा नहीं चल सकता और गरुड़ के वेग को और पक्षी नहीं पहुंच सकता, ऐसे ही आप की बुद्धिमत्ता और वीरता को हम नहीं पहुंच सकते। ए राम! जिस राजा की सब प्रजा सेवा करे और वह अपनी बुद्धिमत्ता से कार्य करे, उसी का जन्म सुफल है और जो राजा औरों के आधीन रह जीवन व्यतीत करे उस का कुछ जीवन नहीं। जब हम छोटों की आप सहायता और रक्षा नहीं कर सकते, तो बताइये आप का बड़ा होना हमारे किस काम का। ए महाराज! ऐसा कीजिये, जिस में हम लोग आप को राज्यसिंहासन पर तपता देखें॥

पुरवासी—वाह! भरत जी वाह! ख़ूब कहा॥

रामचन्द्र—ए भरत! यह जीव स्वतन्त्र नहीं और अपनी इच्छा पूरी करने की शक्ति नहीं रखता। इस को परलोक से इस लोक में और इस लोक से परलोक में काल खींचे २ फिरता है। जितनी चीज़ एकत्र की जातीं और नष्ट नहीं होतीं, तभी तक चीज़ मानी जाती हैं और ऊपर से जब तक नीचे नहीं गिरतीं, तब तक ऊंची मानी जाती हैं। इसी तरह जब तक मरना नहीं होता तब तक जीना माना जाता है और जैसे पक्के फलों को गिरने के सिवाय और कोई भय नहीं, वैसे ही जन्म लिये मनुष्यों को मरने के सिवाय और क्या भय है। जैसे पुराना घर थूनादि लगाने से भी गिर ही पड़ता है, वैसे ही बुढ़ापा आने पर मनुष्य मर ही जाता है। जो रात बीत जाती है

वह फिर नहीं आती और नदी का जल भी समुद्र में जा फिर लौट कर नहीं आता। ऐसे ही दिन रात बीतने पर मनुष्य की आयु घटती जाती है। ऐसे ही आप लोग समझें। हम को क्या शोक है। देखो नई अवस्था में सब काम हो सकते हैं और जब बुढ़ापा आजायगा, खाल लटक जायगी, बाल पक जायंगे, तब मनुष्य क्या करेगा। सब मनुष्य सूर्य निकलने से प्रसन्न होते हैं,पर नहीं समझते कि इस के निकलने छिपने ही से हमारी आयु घटती जाती है और नई २ ऋतु देख २ प्रसन्न होते हैं, पर मृत्यु पर ध्यान नहीं देते। देखो समुद्र में दो लकड़ी एक सङ्ग डाली जायँ तो कुछ काल तक तो सङ्ग २ रहेंगी, पर थोड़े ही समय में अलग २ हो जायंगी। ऐसे ही जगत् में स्त्री पुत्र भाई धन पशु हैं। जो कहीं के कहीं चले जायंगे और एकत्र होना असम्भव होगा। जगत् में जो कुछ दुःख वा सुख होता है उस को कोई नहीं मिटा सकता क्योंकि उस के मिटाने की शक्ति ही नहीं और जो मिटाने की कोशिश करता है,उस की दशा शोचनीय है। जैसे कुछ वनियों की मण्डली जाती हो और कोई गली में बैठा पुरुष कहे कि आप लोगों के पीछे २ हम भी आवेंगे। इसी भांति बड़ों के रास्ते से चला जाना, कोई शोच की बात नहीं। एक दिन तो जाना ही पड़ेगा,न जाने का प्रबन्ध करना मूर्खता है। जैसे नदी का जल लौट कर नहीं आता,वैसे ही मनुष्य अपनी पूर्वदशा को नहीं पाता। इस लिये राजा को योग्य है कि सदा आप भी प्रसन्न रहे और प्रजा को भी प्रसन्न रक्खे। धर्मात्मा पिता जी का अब शोक नहीं करना चाहिये। उन्होंने तो बहुत यज्ञ किये। उन की तो स्वर्ग में भी प्रतिष्ठा होगी। बस हम तुम से विद्वान् वेद शास्त्र पढ़े पढ़ाये मनुष्यों को पिता जी का शोक नहीं करना चाहिये और जब शोक नहीं तो यह रोना कैसा ? शोक विलाप रोदन बुद्धिमान् मनुष्यों का कर्म नहीं। इस लिये शोक छोड़, दृढ़ता से जा, अयोध्या में वसो, क्योंकि पिता जी ने तुम को वहीं वसने की आज्ञा दी है,उस के विरुद्ध न करो और हमारे लिये जो आज्ञा दी है, उसे हम पूरी करें अर्थात् वन में वसें। देवलोक चाहने वाले को चाहिये कि अपने से बड़े माता पिता और गुरु लोगों की आज्ञा का पालन करे। ऐसा ही हम तुम को भी कर्त्तव्य है, इसी लिये तुम भी उन की आज्ञानुसार अयोध्या का राज्य करो॥

भरत—ए रामचन्द्र ! जैसे आप हैं, वैसा जगत् में कौन हो सकता है। आप को न तो दुःख कष्ट दे सकता है और न आनन्द सुख। आप की बुद्धि में तो मरना जीना, होना न होना समान है। फिर शोच विचार कैसा ? राजा !

आप की समान बुद्धि कुछ शोक हर्ष न माने। आप तो देवता समान सच्चे बलवान् महात्मा बुद्धिमान् विद्वान् हैं और आप को सारे जगत् का प्रबन्ध करने और सुख दुःख समझने की शक्ति है। आप को बड़ी२ विपत्ति भी नहीं सता सकती। देखिये हमारे नन्हसाल में रहते समय हमारी माता ने पाप कर्म कर आप को वनवास दिलाया है, उसे भुला, हमारे पर कृपा कीजिये। शास्त्र में स्त्रीवध वर्जित है, इस लिये हम उस मूढ़ा मन्दमति केकयी को नहीं मारते और यह भी समझते हैं कि पुत्र हो और जान बूझ कैसे अधर्म करें। श्रीमान् राजा साहब पिता गुरु और देवरूप थे और अब देवलोक भी होगये इस लिये हम उन की निन्दा न करेंगे। नहीं तो आप कह सकते हैं, भला कौनसा धर्मात्मा इस भांति स्त्री के कहने से पापकर्म करेगा। यह कहावत तो प्रसिद्ध है कि मरते समय मनुष्य में ममता बढ़ जाती है, पर राजा साहब के कर्त्तव्य से भली भांति प्रकट है। जो मोहित न होते तो कभी ऐसा न करते। आप उन के दोष को क्षमा कीजिये और ध्यान न दीजिये और जो पुत्र पिता के अवगुणों पर ध्यान नहीं देता और टेढ़ी मेढ़ी बात सीधी कर लेता है, वह ही पुत्र कहलाता है। पिता जी ने जो निन्दित कर्म किया है, वह आप को प्रकट नहीं करना चाहिये। छिपाना चाहिये। सिवाय इस के हम आप के आगे अवस्था विद्या और बुद्धि में छोटे हैं और आप भी मौजूद हैं। भला बताइये तो सही कि हम कैसे राज्य कर सकते हैं। प्रथम तो हम को विद्या बुद्धि नहीं, द्वितीय बालक। तृतीय आप अयोध्या में नहीं, जो कुछ पूछ भी लिया करते। फिर बताइये कि हम राज्य कैसे कर सकते हैं। कृपा कर आप ही राज्य कीजिये। सारी अयोध्या मन्त्री पुरोहित सहित यहां है, यहीं राज्यतिलक कराय, हमारे संग अयोध्या चलिये और आनन्द से राज्य कीजिये। देखिये आप के राज्यतिलक से सारी अयोध्या की प्रजा प्रसन्न होगी और वैरियों को दुःख होगा। माता केकयी की निन्दा रुकेगी और राजा भी दोष से बचेंगे। अब हम आप के पगों पर सीस धर प्रार्थना करते हैं, इसे स्वीकार करिये। जो आप हमारा कहा न मानेंगे और बन चल ही देंगे तो हम भी आप के पीछे२ बन चले जायेंगे॥

रामचन्द्र—भरत! तुम सत्य कहते हो, पर तुम भी तो राजकुमार हो, हमारे पिता जी ने तुम्हारी माताके विवाहसमय तुम्हारे नानासे प्रण किया था कि जो पुत्र तुम्हारी कन्या से होगा, उसी को राज्य देंगे और इसमे

सिवाय देवासुर सङ्ग्राम में राजा ने केकयी को वरदान दिया था। देखो, हमारे राज्य करने से पिताजी के कितने वचन असत्य होंगे। जो तुम राज्य न करोगे तो पिता जी के वचन झूंटे करोगे, और पुत् अर्थात् नरक से पुत्र पिता को तिराता है, इसी से पुत्र नाम है और असत्य का फल नरक है। इस लिये हम तुम को चाहिये कि पिता जी को स्वर्ग दिलावें। इस बात को विचार तुम अयोध्या की रक्षा करो। शत्रुघ्न तुम्हारे संग हैं और हम यहां से जल्द दण्डकारण्य को जायेंगे॥

जाबालि–ए राम! प्राणी अकेला ही उत्पन्न होता और अकेला ही चला जाता है जब आपस का व्यवहार ही नहीं तो सब सम्बन्ध निरर्थक ठहरे और माता पिता का व्यवहार कहां रहा। अब इस को भी विचार राज्य स्वीकार कीजिये। पिता पुत्र का सम्बन्ध एक व्यवहार है। जहां राजा को जाना था, वे तो चले गये, अब क़ौल क़रार कैसा?॥

रामचन्द्र—ए मुनिराज! आपने जो हमारे प्रेम से ये वचन कहे सो ठीक नहीं। वेदविरुद्ध काम करना मनुष्यधर्म नहीं और वेदविरुद्ध कर्म करने वाला सज्जनों की मण्डली से निकाल दिया जाता है। शोक है कि आप मुनि होकर ऐसा कहें। जो हमही ऐसा अनर्थ करें तो मर्यादा कौन मानेगा। देखिये हम राजा हैं। हम को मर्यादाविरुद्ध वचन या कार्य कभी न करना चाहिये और आप को ऐसे नास्तिकता के वचन कभी न कहने चाहियें॥

वशिष्ठजी–ए राम! तुम को जाबालि जी से ऐसे वचन न कहने चाहियें। ये ऋषि हैं और लोक की चाल जानते हैं। इन्हों ने जो कुछ कहा वह तुम्हारे लौटने को कहा। ए राम! जब पुरुष का जन्म हुआ तो उसके माता पिता आचार्य ३ गुरु होते हैं। उन में से माता पिता तो जन्म और पालन करते और आचार्य विद्या देता है। हम तुम्हारे पिता के आचार्य हैं, इस लिये तुम्हारे भी हैं हम जानते हैं कि तुम हमारे वचनों का उल्लङ्घन न करोगे। देखो ये तुम्हारी प्रजा और भाई बन्धु और बूढ़ी माता हैं, तुम को इन का अनादर न करना चाहिये और महात्मा भरत की भी प्रार्थना समझ कर, स्वीकार करनी चाहिये॥

रामचन्द्र—माता पिता की पालना का बदला तो पुत्र दे ही नहीं सकता क्योंकि वे अपने सामर्थ्य भर जैसे बन सके पुत्र को अच्छा खाना कपड़ा देते हैं छोटे को सुलाते, करवट लिवाते, सदा तेल उबटना लगाते और मीठे

वचनों से दुलारते और जीने और बढ़ने के अनेक प्रबन्ध करते हैं। ऐसा ही हमारे पिता जी ने किया। भला हम उन की आज्ञा टाल सके हैं ?

भरत-ए सुमन्त! यहां भूमि पर कुशा बिछाओ। जब तक बड़े भाई हम से प्रसन्न न होंगे, तब तक हम यहीं निराहार बैठेंगे और जब तक अयोध्या को न लौटेंगे, इसी शाला के निकट बैठे रहेंगे॥

सुमन्त-(रामचन्द्र जी की ओर देख रहे हैं, कुछ नहीं करते, भरत आप कुशा बिछा बैठ गये)

रामचन्द्र-ए लाल! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो हम पर धन्ना देते हो। यह धन्ना देने का अधिकार तो ब्राह्मणों को है,क्षत्रियों को नहीं कि किसी पर उपवास कर धन्ना दें। ऐसा अनुचित कर्म करने से तुम को पाप होगा। इस कठिन व्रत को छोड़ उठो और अयोध्या जाओ॥

भरत—भाई पुरवासी! तुम महाराज को क्यों नहीं समझाते॥

पुरवासी-श्रीमान्!हम अच्छा कहने की शक्ति नहीं रखते और रामचन्द्र जी के न लौटनेका कारण पिताकी आज्ञाका पालन है।उसे नहीं टाल सकते॥

रामचन्द्र—भाई! इन पुरवासियों के वचन सुनो, देखो कैसे विचार से कहते हैं। हमारे और इन के वचन विचार, उठो। नियम विरुद्ध धन्ना देने का प्रायश्चित्त करने को हमारा शरीर छुओ। हम तुम्हारे बड़े हैं॥

भरत—(उठ और रामचन्द्र जी के पग छू) ए प्रजा मन्त्री नौकर चाकरो! सुनो। अब न तो हम रामचन्द्र जी को लौटारते और न राज्य चाहते हैं। पर हम भी १४ वर्ष तक वन में वसेंगे॥

रामचन्द्र—(चकित, सब पुरवासियों की ओर देख) भाई! अपने जीवन में पिता जी ने कुछ वस्तु बेचीं या किसी को सौंपीं या मोल लीं या अपने घर जमा रक्खीं तो हम और भरत को चाहिये कि उन को मानें। देखो माता केकयी ने हम को वनवास के योग्य समझ, वनवास दिलाया और पिता जी ने भी वनवास के योग्य समझ स्वीकार कर लिया। इसी कारण हम को वन जाना चाहिये और इसी कारण भरत को वन भेजा नहीं चाहते। हां,राज्य करने को अयोध्या भेजते हैं, क्योंकि सभी भान्ति जानते हैं कि ये धीरबुद्धि और शान्तस्वभाव हैं। इन सत्यकर्मी ने सब लाभदायक बात सीख ली हैं। इस कारण ये राज्ययोग्य हैं, न कि वनवास के योग्य। वनवास के दिन कुछ ब्रह्मा के दिन तो हैं ही नहीं,केवल १४ ही वर्ष तो हैं। इनके पूरा करने पर हम अपने भाई के संग योग्य और कीर्तिमान् राजा बनेंगे। भाइयो! माता

केकयी ने राजा से वर मांगा कि राम को १४ वर्ष का वनवास और भरत को १४ वर्ष के लिये राज्य मिले। इस लिये हमतो राजा को ऋण से छुड़ाने को वन में आये, अब तुम लोग भरत से राज्य करा, पिता जी को वचन पलटने के दोष से छुड़ा दो, नहीं तो वे आधे बन्धे रह जायेंगे ॥

ऋषिलोग—(धर्मयुक्त वार्त्ता सुन, भरत जी से) ए महाकुलीन! शूरवीर! जो अपने पिता का आनन्द चाहते हो तो रामचन्द्र जी का कहा करो, क्योंकि हम लोग इन धर्मात्मा को बाप के ऋण से उऋण समझते हैं क्योंकि केकयी के वचन पूरे कर राजा स्वर्ग गये ॥

रामचन्द्र—भरत जी! इन ऋषियों के वचन सुनो ॥

भरत—(गद्गद्‌वाणी हो, हाथ जोड़) ए राम! कुलरीति से आप ही राज्ययोग्य हैं और माताओं की प्रार्थना सुन राज्य स्वीकार कीजिये और जो आप मुझे राज्ययोग्य समझें तो मैं अकेला इतने बड़े राज्य की रक्षा कैसे कर सकता हूं और न मुझ से इन देशवासी और पुरवासियों की पालना नियम पूर्वक हो सकती है और ये सब ज्ञाति बांधव भाई बेटे सेना नौकर मित्र आप की बाट देख रहे हैं। जैसे किसान मेंह की बाट देखते हैं। ए राम! यही स्वीकार है तो आप अयोध्या चल, हमें गद्दी पर बिठाल, हम से ही राज्य कराइये क्योंकि आप तो जगत् का राज्य कर सकते हैं और औरों से भी करा सकते हैं। इस समय तो आप अयोध्या को चले ही चलिये। चाहे फिर वहां से वन को लौट आना (और पगों पर शिर रखदिया)

रामचन्द्र—(भरत को गोदी में बिठाल) ए तात! तुम को नम्रता और विनय आगई है,तुम तो उसी से सब जगत् की पूरी रक्षा कर सकते हो। कुछ बड़ी बात नहीं है। नौकर चाकर मित्र विद्वान् मन्त्री पुरोहितों की सम्मति से कठिन से कठिन कार्य कर सकोगे ॥

भरत—ए आर्य! जाने दीजिये, आप इन खड़ावों पर पांव रखदीजिये, बस पांव रखते ही इन खड़ावों में इतना बल होजायगा कि ये ही राज-कार्य कर सकेंगी ॥

रामचन्द्र—(खड़ावों पर पांव रख) यह लीजिये ॥

भरत—(खड़ावों को प्रणाम कर) ए राम! हम १४ वर्ष तक जटा रखाय, चीर पहन, नगर से बाहर रह, तुम्हारी इन खड़ावों से राज्य करावेंगे। पर जो १४ वर्ष पूरे होने पर आप को न देखेंगे तो आग जला, उस में पैठ जायेंगे ॥

रामचन्द्र—बहुत अच्छा, हम १४ वर्ष पूरे होते ही तुरन्त तुम्हारे पास पहुंचेंगे (और भरत और शत्रुघ्न को छाती से लिपटा) ए शत्रुघ्न! माता केकयी की रक्षा करना, कभी क्रुद्ध न होना। हम तुम को अपनी और सीता की शपथ देते हैं (और बिदा किया)

चन्द्रमुखी—भरत जी खड़ांव ले, रामचन्द्र जी को प्रणाम कर शत्रुञ्जय हाथी पर रख, शत्रुघ्न के संग रथ में बैठ, चल दिये और फिर खड़ांव हाथी से उतार शिर पर रखलीं और सब लोग अयोध्या को चले गये और रामचन्द्र जी को सब ऋषि भयभीत जान पड़े॥

रामचन्द्र—(हाथ जोड़,वाल्मीकि जी से) भगवन्! हम नहीं जानते कि हमारे में क्या दोष है, पर हम तो कोई दोष लक्ष्मण और सीता में भी नहीं देखते और हम तीनों आप लोगों की सेवा करते हैं। फिर ऋषि लोग भयभीत क्यों हैं॥

वाल्मीकि जी—भला धर्मवती जानकी ऋषियों का कैसे बुरा चाह सकती हैं। ये तो किसी का कभी बुरा नहीं चाहतीं और मुनि लोगों के भयभीत होने का कारण यह है कि ये लोग राक्षसों के अन्याय से डरते हैं और उन की धींगाधींगी नहीं सह सकते। सुनिये,यहां रावण का छोटा भाई खर नाम राक्षस रहता है, वह जनस्थानवासी तपस्वियों को कष्ट देता है और बड़ा ही दुष्ट है। काशीपुरी भी उस ने जीत ली है, वह बड़ा निर्लज्ज है। वह मनुष्यों को खाता है और बड़ा ही अभिमानी है। आप का यहां का वास सहन न कर और मुनियों को अपने आधीन जान दुःख देता है। ए तात! जब से तुम यहां आये हो, तब से राक्षस तपस्वियों को अधिक कष्ट देते हैं और अनेकरूपों से मुनियों को डरा २ मार डालते हैं और खर तो मुनिवेष बनाय मुनियों के संग घूमता है और अवसर पाकर मार डालता है। और यज्ञ के समय तो राक्षस यज्ञ के पात्र फेंक देते और आग में जल डाल देते हैं और पानी के कलश फोड़ देते हैं। इस कारण ऋषि लोग इस स्थान को छोड़ अन्य स्थान पर जाने के लिये हम से कहते हैं और हम भी इस आश्रम को छोड़ थोड़ी दूर पर अश्वनाग ऋषि रहते हैं, उन के आश्रम पर चले जायंगे। वहां फल मूल भी बहुत हैं और उन के भय से वहां राक्षस भी कम जाते हैं॥

रामचन्द्र—(चुप, कुछ शान्ति न दे सके)

ओ३म्

सीताचरित्र

तृतीय भाग

स्त्रीशिक्षाविषयक उत्तम २ कहानी और स्त्रीधर्म सम्बन्धी उपाख्यानयुक्त सरल मनोहर पुस्तक

जिस को

मुं० दयाराम साहब

ने

अपने रचे उर्दू सीताचरित्र नावल से देवनागरी अक्षरों में

उलथा करके प्रकाशित किया ॥

सामवेदभाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी के
प्रबन्ध से
स्वामी (मेशीन) प्रेस-मेरठ में छपा
द्वितीयवार १००० दिसम्बर सन् १९०३ मूल्य ।-)

ओ३म्

भूमिका

आज तक कोई पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य ऐसा नहीं छपा, जिस भाषा सरल हो, स्त्रियां समझ सकें और उन का मन बहले तथा धर्म के स गृहप्रबन्ध के लिये उत्तम शिक्षा की प्राप्ति हो सके। इस अभाव को दूर क के लिये मैंने "सीताचरित्र" नावल नामक पुस्तक उर्दू में रचकर छपाई थ जिस के हाथों हाथ ग्राहकों की मांग आने से मैंने यह समझा कि मे परिश्रम सफल हुआ और अपने कई मित्रों की सम्मति से कि "उर्दू में ह के कारण बहुधा स्त्रियों को इस के लाभ से वञ्चित रहना पड़ता है, इस नागरी भाषा व देवनागरी अक्षरों में अनुवाद होना चाहिये" मैंने नाग में अनुवाद किया है। यह पुस्तक चार भागों में है । इस में धर्माध सत्यासत्य, गृहप्रबन्ध, पातिव्रत आदि बड़ी उत्तमता से रोचक कहानियों द्वा दिखलाये गये हैं और श्रीमती सीता महारानी, दमयन्ती, तारामती आ का जीवनचरित्र सरल भाषा में लिख कर उन के सुन्दर उदाहरणों के ग्र कराने के लिये शक्तिभर परिश्रम किया गया है। इस के वार २ पढ़ने पर जी नहीं भरता। इस के होते रामायण, नलोपाख्यान और हरिश्चन्द्र आ की आवश्यकता नहीं रहती॥

ग्रन्थकर

ओ३म्

सीताचरित्र तृतीय भाग

अत्रि जी का स्थान

ऋषिलोग—महाराजकुमार ! यहां आकर हम को राक्षस दुःख देते हैं, इस कारण हम अत्रि जी के स्थान को जाना चाहते हैं, आप भी हमारे साथ चलिये॥

रामचन्द्र जी—(चुप हो रहे और सब ऋषि चले गये)

एक दिन

रामचन्द्रजी-ए लक्ष्मण ! अब यहां से चलो, यहां तो अयोध्यावासियों का ध्यान बना ही रहता है॥

लक्ष्मण—जो आज्ञा॥

अब दोनों भाई सीतासहित अत्रि जी के स्थान को चल दिये। वहां पहुंचे। अत्रि जी ने इन को देख, बड़ा सम्मान किया॥

अत्रि जी—(अपनी बूढी स्त्री अनसूया जी से) तुम जानकी जी की शुश्रूषा भलीभान्ति करो (और रामचन्द्र जी से) ए रामचन्द्र ! तुम इन परमतपस्विनी अनसूया जी को जानते हो ? यह बड़ी तपस्विनी हैं। आगे दश वर्ष तक मेह नहीं बर्षा था, उस समय इन्हों ने अपनी तपस्या से कन्द मूल फल उत्पन्न किये और ऋषियों के स्नान के लिये मेह भी वर्षाया। ए राम ! ये अनसूया जी तुम्हारी माता के समान हैं। इन धर्मात्मा को तुम और जानकी जी नमस्कार करो॥

रामचन्द्र जी—('बहुत अच्छा, कह नमस्कार कर, सीता जी से) ए जानकी जी ! इन मुनि जी के वचन तो हम लोगों ने सुने, अब अपने कल्याणार्थ तुरन्त तुम अनसूया जी की सेवा करो और धर्म कर्म की बातें इन से सीखो, इन्हों ने अपने तप से ही अनसूया नाम पाया है॥

सीता जी—(अनसूया जी की परिक्रमा दे, अपना नाम सीता बतला, प्रणाम कर, हाथ जोड़) माता जी ! आप कुशल तो हैं ?

अनसूया जी—(प्रसन्न हो) बड़े भाग्य की बात है कि तुम पतिसेवा

का धर्म्म वर्त्तती हो । क्योंकि सब भाई बन्धु सास सुसर धन सुख और उपमा छोड़ वनवासी रामचन्द्र के पीछे २ फिरती हो और क्यों न फिरो–

चौपाई

नगरनिवासी वा वनवासी। शुभ वा अशुभ अगुण गुणरासी॥
जिननारिनकेप्रिय निज स्वामी। तिन्हेंमहोदय लोकसुनामी॥
कामी क्रोधी निर्धन कूरा । परमदुशील अगुण सों पूरा ॥
आर्य्य स्वभाव नारिगण केरा। ऐसेहु पति देवहि सम हेरा॥

ए जानकि ! जहां तक हमने विचार किया, पति से अधिक सुखदाता कोई बान्धव स्त्रियों का नहीं जान पड़ता,क्योंकि अन्य बान्धव सब सुख नहीं दे सकते, पति सब प्रकार के सुख देता है । जैसे तपस्या सब प्रकार के सुख देती है । देखो, जो स्त्री काम के वश में हो, अपने पति की मालिक बनती हैं, उन दुष्टाओं को अपना लाभ हानि नहीं जान पड़ता कि हम को क्या करना चाहिये । वे पति को अपना दास जानती हैं और अपने को पति का दास नहीं जानतीं । उन की इस लोक में तो निन्दा होती ही है, परन्तु परलोक में सीधा नरक पाती हैं और तुम सी पतिव्रता, सर्वगुणसम्पन्न इस लोक में कीर्त्ति पा, अन्तावस्था में सीधी स्वर्ग को चली जाती हैं ॥

कुण्डली

पतिसेवासाधन करम, मानत अहौ प्रधान ।
समय समान सदा करत, पतिपूजादि महान ॥
पतिपूजादि महान धर्म पतिव्रत येहू । सकल भांति छलरहित करै त्यहि चरणसनेहू ॥ सो तुमयह वैदेहि धर्मचारिणि पतिदेवा। यश अरु धर्म अपार लहहु करिके पतिसेवा१

जानकी जी–(उपमा कर) माता जी ! जो बात आपने हम से कही, वह बहुत ठीक है । हम तौ भलीभांति जानती हैं कि स्त्री का पति ही गुरु है । चाहे पति अनारी हो, चाहे जीविकाहीन हो, परन्तु स्त्री को उस की सेवा में कभी दुविधा नहीं करनी चाहिये । स्त्रियों का तौ धर्म यही है कि सदैव पति ही की सेवा करें । फिर जिस का पति उत्तमगुणवान्, सर्वाङ्गसुन्दर, दयावान्, जितेन्द्रिय, दृढ़ानुरागी, धर्म्मात्मा, माता पिता के समान

प्रिय करने वाला हो तौ उस को और क्या करना चाहिये, अवश्य उस की सेवा ही करनी चाहिये। देखिये हमारे स्वामी रामचन्द्र जी, जो भाव अपनी माता कौशल्या जी में रखते हैं, वही राजा दशरथ जी की अन्य स्त्रियों में रखते हैं। जिस को भोग की दृष्टि से महाराज दशरथ जी ने एक वार भी देख लिया है, उस को हमारे स्वामी ने माता ही माना है। और वनवास के समय हमारी सासू जी ने जो २ पतिव्रत धर्म हम को बतलाये थे, वह सब हम को याद हैं। तुम्हारे इस कहने से वे सब नये हो गये और भले प्रकार से याद आ गये। धर्मचारिणी स्त्रियों का सिवाय पतिसेवा के और कोई धर्म कर्म ही नहीं। देखिये सत्यवान् की स्त्री सावित्री पतिसेवा ही के कारण स्वर्गलोक में पूजी जाती है और सावित्री की नाईं आप ने भी पति-सेवा कर सब सिद्धि पाई हैं और पति ही की सेवा से रोहिणी स्वर्ग में विराजमान हैं। क्षणमात्र भी विना अपने पति चन्द्रमा के आकाश में नहीं दीख पड़तीं। इसी भांति और भी पतिव्रता स्त्रियां अपने २ पतियों की सच्ची सेवा करने से और अपने ही पुण्य से स्वर्ग में सुख भोगती हैं॥

अनसूया जी-(प्रसन्न हो, सीता जी का शिर सूंघ) ए सीता! हम ने बड़ा भारी तप कर, बहुत तपोबल पाया है। अब हम तुम से कहती हैं, जो चाहो वर मांगो। ए मैथिलि! तुम्हारे वचन बड़े योग्य हैं और हम तुम से बड़ी प्रसन्न हैं। कहो तुम्हारा कौन सा कार्य्य करें?

जानकी जी—(प्रणाम कर) माता! आप की कृपा से सब प्रकार आनन्द है, किसी वस्तु की काङ्क्षा नहीं॥

अनसूया जी-(प्रसन्न हो) ए सीता! हम तुम्हारी इस अलोभिता को सफल करती हैं। ए वैदेहि! यद्यपि तुम को किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं परन्तु यह कर्पूर और केशर मिला चन्दन और यह माला तथा कुछ वस्त्र मैं तुम को देती हूं, ये सब तुम्हारे अङ्गों के योग्य हैं। ऐ जनककुमारी! केशर कर्पूर मिला चंदन जब अपने अङ्गों में लगावोगी तौ अपने पति को भी शोभित करोगी (यह सुन जानकी जी ने वह माला और चन्दन और वस्त्र ले लिये और अनसूया जी की सेवा करने लगीं)

अनसूया जी-ए जानकी! हमने सुना है कि इन महात्मा रामचन्द्र ने तुम को स्वयंवर में पाया है। इस कथा को हम विस्तारपूर्वक तुम्हारे मुख से सुना चाहती हैं॥

जानकी जी की कथा

जानकी जी–ए माता ! जनकपुरी के एक बड़े धर्मात्मा राजा जनक हैं, जो कि क्षत्रियों के कर्मों में बड़े निपुण और धर्म से ही प्रजापालन करते हैं। वे एक समय सोने का हल ले, यज्ञ करने के लिये पृथ्वी जोतने लगे कि पृथ्वी में से हम निकलीं और राजा की कन्या बनीं। राजा उस समय बीज बो रहे थे, हम को धूल में लगी देख बड़े विस्मित हुए। माता ! राजा के उस समय कोई सन्तान न थी, इस से मारे स्नेह के हम को गोद में ले, कहा कि यह हमारी कन्या है और बहुत प्यार किया। हमारे पिता जनक जी ने हम को बड़ी ऋद्धि सिद्धि जान, बहुत ही प्रसन्न हो, अपनी बड़ी रानी को दे दिया। उन्हों ने कन्या के तुल्य प्रीति कर, हमारा पालन पोषण किया। एक दिन हमारे पिता जी को बड़ा सोच हुआ, क्योंकि कन्या का पिता चाहे इन्द्रसमान हो और अपने बराबर वाले हीं के साथ अपनी कन्या का विवाह करे। परन्तु वर के पिता व माता से नीचा ही बनना पड़ता है। यह सोच विचार किया कि अब हम को अवश्य किसी से नम्रता करनी होगी और यह इच्छा की कि हमारे समान ही वर मिले, परन्तु कोई पुरुष ऐसा न मिला। लाचार हो फिर पिता जी के मन में आई कि स्वयंवर करदें। स्वयंवर में जो पुरुष इस के योग्य हो उसी को दे दें और इसी शोच में यह भी विचार किया कि यह जो धनुष् दो तूणं सहित राजा देवराज को शिव जी ने दिया है और अब निष्फल रक्खा है और इस समय इस को देवता वा मनुष्य स्वप्न में भी नहीं चला सकते और इस के रक्खे रहने से भी कोई कार्य नहीं होता, बस इसी को पैन कर दें। ऐसा विचार, सब राजाओं को न्यौता दे दिया। जिस समय राजा लोग एकत्र हुए, उस समय खड़े हो कर कहा कि जो पुरुष आप लोगों में से इस धनुष् को उठाय, इस की प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसी की यह कन्या, स्त्री होगी। यह सुन, सब राजाओं ने बल किया परन्तु चढ़ाना तो कहां, उस को उठा भी न सके और लाचार हो अपने २ देश को चले गये। उस के कुछ दिन पीछे ये महात्मा रामचन्द्र जी, विश्वामित्र जी के साथ यज्ञ देखने जनकपुर में आये और साथ में यही इन के छोटे भाई लक्ष्मण जी भी थे। हमारे पिता जी ने इन की और विश्वामित्र जी की भलीभांति पूजा की। तब धर्मात्मा विश्वामित्र जी ने हमारे पिता जी से कहा कि राजा दशरथ जी के पुत्र यह दोनों भाई राम लक्ष्मण आप का

धनुष् देखा चाहते हैं, आप कृपा कर राजकुमार रामचन्द्र जी को धनुष् दिखला दीजिये। यह सुन पिता जी ने धनुष् दिखलाया और इन महात्मा ने आव देखा न ताव, एक क्षण में धनुष् चढ़ा कर टंकोर दिया कि टंकोरते ही उस के दो टुकड़े हो गये और टूटने का शब्द बड़ा भारी हुआ। तब सत्यप्रतिज्ञ हमारे पिता जी ने जल मंगवाय, संकल्प कर हम को देने लगे। उस समय रामचन्द्र जी ने लेने से नाहिं कर कहा कि जब तक हमारे पिता दशरथ जी की आज्ञा न होगी, तब तक हम स्वीकार न करेंगे इस पर हमारे पिता जी ने महाराज दशरथ जी को अयोध्या से बुलवा, हमारा संकल्प इन को दे दिया। और हमारी छोटी बहन उर्मिला का लक्ष्मण जी से विवाह कर दिया। इस तरह स्वयंवर में हमारे पिता जी ने हमें रामचन्द्र जी को दिया है और हम अब उन्हीं धर्मात्मा अपने पति रामचन्द्र जी की सेवा करती हैं॥

अनसूया जी—(जानकी जी को दोनों हाथों से पकड़, छाती से लगा, शिर सूंघ) ए जानकी! तुम ने स्वयंवर का पूरा समाचार बड़ी मनोहर वाणी से कहा और हमने सुना। इस में हमारा मन भी अच्छा लगा, परन्तु अब सायंकाल हुआ, सूर्य छिप गया, रात हो आई। देखो, चर कर पक्षी अपने अपने घोंसलों में आगये, उन का शब्द सुनाई देता है। और मुनि लोग भी स्नान कर कलश लिये चीरवल्कल पहने आते हैं। देखो, ऋषियों के अग्निहोत्र से धुआं निकल रहा है और अंधेरा होता चला आता है। देखो जिन वृक्षों में थोड़े भी पत्ते हैं, वे भी अंधेरे के कारण बहुत ही ज्ञात होते हैं। अब स्पष्ट और दूर से दृष्टि नहीं आता और चारों ओर निशाचर घूमते हैं। देखो, तपोवन के मृग वेदियों पर सोने लगे। ए जानकी! अब दो घड़ी रात आ गई। देखो, चटकीली चांदनी फैल गई। अच्छा अब जाओ, तुमने अपनी मनोहर वाणी से हम को बहुत प्रसन्न किया, परन्तु जो कपड़ा और गहना हमने तुम को दिया है, उस को हमारे सामने ही पहनो, जिस से हम भी तो देखलें॥

जानकी—(सब वस्त्राभूषण पहन, अनसूया जी को प्रणाम कर, रामचन्द्र जी के पास आईं)

रामचन्द्र जी—(उन को अनसूया जी के दिये वस्त्र आभूषण पहिने देख, बड़े प्रसन्न हुये और सीता जी ने अनसूया जी का सब वृत्तान्त वर्णन किया। लक्ष्मण जी भी बहुत प्रसन्न हुवे। और तीनों रातभर वहीं सोये। प्रातःकाल

स्नान कर वनवासी ऋषियों से दूसरे वन जाने की आज्ञा मांगी और वहां से प्रस्थान कर दण्डकारण्य में पहुंचे। दण्डकारण्य के तपस्वियों ने इन की बड़ी पूजा की और बड़ा सत्कार कर ठहराया। ये रात को वहीं सोये, जब भोर हुआ तो सन्ध्या वन्दन से निवृत्त हो, ऋषियों से आज्ञा ले, वन में घूमने लगे। जाते२ देखा कि पर्वताकार बड़ा भारी दैत्य पड़ा हुआ, एक हाथी को खा रहा है और दो लोहे के त्रिशूल उस के पास रक्खे हैं और बड़ा शब्द कर रहा है। वह इन तीनों को देख, क्रोध में भर, इन की ओर दौड़ा और बोला)

राक्षस—तुम दोनों जटा चीर रक्खे, स्त्री सहित वन में आये हो, इस लिये अपने को मृतक ही समझो। अरे! धनुष् वाण खड्ग हाथ में लिये वन में आये हो! फिर यह तो कहो तुम दोनों तो तपस्वी हो, यह स्त्री कैसे साथ है और फिर दो पुरुषों के बीच में एक, इस से तुम हम को बड़े दुराचारी ज्ञात होते हो। बतलाओ तो कौन हो जो तपस्वियों के वेष को बट्टा लगाते फिरते हो? अरे! कहां तपस्वियों का वेष और कहां स्त्री का सङ्ग!! शीघ्र बतलाओ कौन हो और हम विराध नाम राक्षस हैं, जो इसी वन में रहते हैं और शस्त्र बांध वन में घूमते हैं और सदा ऋषियों का मांस खाते हैं। अब इस तुम्हारी स्त्री को अपनी स्त्री बनाय और रणभूमि में तुम्हारा रुधिर पीवेंगे। (यह कह, जानकी जी को पकड़ कर कन्धे पर बिठा लिया कि उस समय जानकी जी भय से कांपने लगीं)

रामचन्द्र—(बहुत उदास हो) ए लक्ष्मण! देखो, जनककुमारी हमारी पतिव्रता स्त्री जानकी विराध के कन्धे पर बैठी है। कहां ये राजकुमारी और कहां राक्षस के वश में कुछ नहीं। अब केकयी का मनोरथ सफल हुआ, उस दुष्टा ने अपने पुत्र को राज्य ही दिलाकर सन्तोष न किया, दीर्घदृष्टि से यह भी विचार लिया कि यदि ये रहेंगे तो सम्भव है कि राज्य में कुछ विघ्न डालें, इस कारण हम को भी वनवास दिला दिया। यद्यपि हम सब के प्यारे थे, तौ भी हमारी मंझली माता ने हम को वनवास दिया। उस की सब इच्छा पूरी हुई। ए लक्ष्मण! जितना शोक हमें सीता जी को इस दशा में देख हुआ, उतना पिता जी और राज्य के छोड़ने में भी नहीं हुआ॥

लक्ष्मण—(आंखों में आंसू भर, क्रोध में आ) ए राम! तुम सब के नाथ हो। जब हम सा सेवक उपस्थित हो, फिर आप ऐसे साधारण मनुष्यों के से दीन वचन क्यों कहते हैं? आप देखते रहिये, अभी हम क्रोध में आ

इस विराध को एक वाण से मारे देते हैं। अभी २ यह मारा जायगा और पृथिवी इस का रुधिर पी आनन्दित होगी ॥

दोहा—

राज काज महं भरत पर, भयो क्रोध जो मोर।
सो विराध पर छोड़िहों, जिमि हरि गिरि पवि छोर॥

कुण्डलिका–

मेरे भुजबल वेग सों, बेगित शर उर माहिं।
पैठे जाय विराध के, या महं संशय नाहिं॥
(अजी) या महं संशय नाहिं जीव निकसै तनु पाहीं।
अति घूर्णित ह्वै सोइ गिरै तुरतै महि माहीं॥
जय २ धुनि मुनि करें भरें सुख गुनि गुनि तेरे।
वृथा न कहहु बनाय वचन फुर मानहु मेरे॥

(और हंस कर विराध से) आप कौन हैं? जो इस वन में इच्छानुसार घूमते हैं॥

विराध-(शब्द करता हुआ) तुम दोनों कौन हो? कहां जाओगे? बतलाओ?

रामचन्द्र जी-हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं और क्षत्रियों का धर्म रखते हैं। तुम बतलाओ कौन हो? जो दण्डकारण्य में विचरते हो॥

विराध–राजन्! 'जव' हमारा बाप है और सत्यह्रदा हमारी माता और सब राक्षस हम को विराध कहते हैं। ब्रह्मा जी का तप कर हमने यह वर पाया है कि साधारण शस्त्रों से न हम मारे जा सकते हैं और न हमारा कोई अङ्ग कट सकता है। बस अब जाना पूछी तो हो चुकी, तुम इस स्त्री को छोड़, जिस मार्ग से आये हो, उसी से चुपके चले जाओ। इस समय हम तुम्हारा प्राण लेना नहीं चाहते॥

रामचन्द्र-(क्रोध में आ, लाल नेत्र कर) ए नीच निर्बुद्धि! तुझे धिक्कार है। अब हमने जाना कि तू मृतक बना चाहता है। अब खड़ा रह, तू अवश्य मारा जायगा। हम तुझे किसी भान्ति जीता न छोड़ेंगे। (यह कह वाण चढ़ा, उस को लक्ष्य बनाया और सात वाण एक बेर मारे कि विराध के

शरीर में पैठ उस पार निकल पृथिवी में जा गिरे । तीर लगने से विराध व्याकुल हो जानकी जी को पृथिवी पर बिठाल, त्रिशूल हाथ में ले, मुंह फैलाया, रामचन्द्र व लक्ष्मण की ओर दौड़ा । इधर इन दोनों भाइयों ने तीरों का मेह वर्षा दिया, उधर विराध ने हंस कर जम्भाई ली कि सब तीर उस के शरीर से निकल भूमि में गिर पड़े और तीरों के लगने से विराध न मरा । उलटा उठाय त्रिशूल, सांस रोक, दोनों भाइयों की ओर दौड़ा । उस समय रामचन्द्र जी ने बड़ी स्फूर्त्ति के साथ अपने तीरों से उस के शूल काट दिये और खड्ग ले यह भी मारने को दौड़े और मारना आरम्भ कर दिया । परन्तु विराध हाथ फैलाय दोनों भाइयों को पकड़ अपने कन्धे पर रख चल दिया कि कहीं दूर जाकर फेंके । यह देख जानकी जी रोने लगीं) ॥

बहनो ! यह पहिला समय है कि जानकी जी के समीप एक राक्षस रामचन्द्र जी को लिये जा रहा है । उस समय इस जनककुमारी की निराशता की दशा देखने योग्य थी । यह सोच रही थी कि हाय ! राज्य छूटा, पाट छूटा, मा बाप छूटे और इन धर्मात्मा को भी यह राक्षस लिये जाता है । न जाने क्या करेगा । लाचार बहुत उदासीन हो–

जानकी–ए विराध ! जब इन दोनों भाइयों को तुम लिये जाते हो तो हम को यहां क्यों छोड़ते हो ? हम को यहां चर्ख चीता वा सिंह खा लेंगे । हम तुम को प्रणाम करती हैं कि हम को भी साथ ले चलो, या इन दोनों भाइयों को भी छोड़ दो ॥

राम लक्ष्मण ने ऐसा सुन बहुत जल्दी से विराध के मारने का प्रबन्ध किया और लक्ष्मण ने बायां और रामचन्द्र जी ने दहना हाथ तोड़ डाला । बस हाथ टूटते ही विराध मूर्छित हो, पर्वतसमान पृथिवी पर गिर पड़ा और गिरते ही दोनों भाइयों ने उठा उठा, पत्थर की चट्टानों पर खूब पटका, परन्तु वह राक्षस न मरा और इतनी चोटें खाने पर भी जीता ही रहा ॥

रामचन्द्र जी–(सोच समझ) ए लक्ष्मण ! वर के कारण इस को हम युद्ध में नहीं मार सकते, लाओ एक गढ़ा खोद कर पृथिवी में गाड़ दें । अब इस के सिवाय और क्या प्रबन्ध हो सकता है । अब यही ठीक जान पड़ता है कि इस के गाड़ने के लिये एक बड़ा भारी गढ़ा खोदने की जल्दी कीजिये, देर न होनी चाहिये । मैं अपने पैर से इस का गला दबाये खड़ा हूं, तुम गढ़ा खोदो ॥

विराध–(होश में आ) ए राम ! अब हमने आप को जान लिया । आप की

माता बड़े धन्यवाद के योग्य हैं और लक्ष्मण और सीता जी को भी पहचान लिया। अब हम को कुछ सन्देह नहीं रहा। हमारा वृत्तान्त सुनियेः—

विराध का वृत्तान्त

विराध—ए महाराज! मैं पिछले जन्म में तुम्बरु नाम गन्धर्व था। कुवेरजी के शाप से मैं राक्षस बना हूं। पहिले तो उन्हों ने बड़े क्रोध में मुझे शाप दिया, पीछे जब मैंने उन की बड़ी शुश्रूषा की, तब उन्हों ने कहा कि जिस समय महाराजकुमार दशरथ पुत्र रामचन्द्र जी तुम को युद्ध में मारेंगे, उस समय तुम अपना पूर्वरूप पाय, वैकुण्ठ को चले आओगे। महाराज! सेवा न करने से तो शाप दिया और सेवा करने पर आप के दर्शनों से वैकुण्ठ का सुख बतला दिया। राजन्! हमने और कोई पाप नहीं किया, केवल रम्भा नाम अप्सरा में मन लगाया था। अब हम आप की कृपा से उस बड़े कष्ट से छूट अपने स्थान को जाते हैं। आप का कल्याण हो, क्योंकि आपने हम को उस शाप से छुड़ा दिया। अब आप एक काम करें कि यहां से छः कोस पर एक शरभङ्ग जी महर्षि रहते हैं। उन के पास शीघ्र जायं, वे आप का कल्याण करेंगे। हां, एक काम और करते जाइये कि एक बड़ा भारी गढ़ा खोद, हमारा यह शरीर उस में गाड़ दीजिये और फिर आनन्द से जाइये क्योंकि मरे हुवे राक्षसों की गति के लिये यही रीति है कि मरने के पश्चात् गाड़े जावें (यह कहते ही कहते विराध के प्राण निकल गये और दोनों भाइयों ने गढ़ा खोद, उस को गाड़ दिया)

रामचन्द्र जी—(जानकी जी को समझा बुझा लक्ष्मण से) ए भाई! हम वनवासी नहीं हैं, इस कारण हम को अनेक दुःख जान पड़ते हैं। आइये, शीघ्र ही शरभङ्ग जी के आश्रम को चलें (अब दोनों भाई जानकी जी सहित चल कर वहां पहुंच गये। देखा कि रथ में बैठे इन्द्र जी शरभङ्ग जी के सम्मुख पृथिवी से ऊपर खड़े हैं)

रामचन्द्र जी—(चिन्ह से रथ दिखला) ए लक्ष्मण! देखो यह कैसा मनोहर रथ और इन्द्र जी के घोड़े और यह सब देवता लोग विराजमान हैं। अब तुम जानकी जी सहित यहां ठहरो, हम ज्ञात कर आवें कि यह रथ में कौन विराजमान हैं (और चलदिये, उधर इन्द्र जी बड़ी शीघ्रता के साथ शरभङ्ग जी से विदा हुवे)

इन्द्र जी-(देवताओं से) देखो, रामचन्द्र जी आ रहे हैं । जब तक हमारा इन से मिलाप न हो, उस से पहिले ही हम को यहां से ले चलो, जिस से वे हम को न देख सकें । जिस समय ये रावण को मार, लौट कर आवेंगे, उस समय इन से मिलेंगे । इस समय के मिलने में भय है कि कहीं रावण सुने और हम से बखेड़ा करे तो बड़ी कठिन अटकेगी और सब विचार बिगड़ जायगा (और चले गये)

उधर रामचन्द्र जी, सीता जी और लक्ष्मण जी सहित अग्निहोत्र करते हुये शरभङ्ग जी के पास पहुंचे और तीनों मुनि जी को प्रणाम कर आज्ञा ले, एक जगह बैठ गये ॥

रामचन्द्र जी-ए महाराज ! यह इन्द्र जी कैसे आये थे ?

मुनि जी-ए राम ! हमने घोर तप कर तीनों लोक जीत लिये हैं कि जिन का जीतना विना तप के असम्भव है । अब इन्द्र जी हम को वरदान दे, ब्रह्मलोक को लेजाया चाहते थे और इसी कारण यहां आये थे । क्योंकि हम तपोबल से जान चुके थे कि आप निकट आगये हैं, इस लिये यही समझ आया कि अपने अतिथि से मिल लेवें । इस कारण ब्रह्मलोक को नहीं गये । अब आप के मिलने के पश्चात् चले जायेंगे । अब चाहे स्वर्गलोक को जायंगे, वा ब्रह्मलोक को अथवा मोक्ष को । अब आप से प्रार्थना करते हैं कि जिस समय आप ब्रह्मलोक को जावें, हमसे भी मिलते जावें ॥

रामचन्द्र-महाराज ! जो आप की आज्ञा हो तो हम सब लोक आपको तो यहीं प्राप्त करादें क्योंकि हम कुछ दिन इस वन में वसा चाहते हैं और आप का पास रहना अच्छा समझते हैं । कृपा कर कुछ दिन इस वन में और रहिये॥

मुनि जी—ए राम ! इसी वन में यहां से थोड़ी दूर पर सुतीक्ष्ण मुनि रहते हैं, वे आप को सुख देंगे और रहने के लिये स्थान भी बतावेंगे, उनके पास जाने का मार्ग इसी मन्दाकिनी नदी के तीर है । बस इस के किनारे २ चले जाइये, आगे सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम मिलजायगा, परन्तु दो घड़ी हम को देख लीजिये कि हम इस शरीर को सर्प की कांचली की नाईं छोड़े देते हैं । (यह कह, लकड़ी इकट्ठा कर सुनि जीने घी से हवन किया और पूर्णाहुति के समय आप भी उस में बैठ गये । बैठते ही उन के बूढ़े शरीर को शीघ्र ही अग्नि ने भस्म कर दिया और उस समय वहां बहुत से ऋषि लोग एकत्र होगये)

ऋषि लोग—ए राजन् ! आप इक्ष्वाकुवंशी इस पृथ्वी के राजा हैं और सब देशों में आप की वीरता फैल रही है और आज पृथ्वी पर आप के समान कोई राजा नहीं, इस कारण हम आप को पाय, जो आप से प्रार्थना रखते हैं, वह सुनिये—राजन् ! जो राजा, प्रजा से छठा अंश पोतले, धर्मानुसार प्रजापालन नहीं कर सकता, वह निःसंदेह नरक पाता है और जो अपनी सन्तान के तुल्य प्रजा का पालन करता है वह सीधा स्वर्ग को जाता है और ऋषि लोग जिस के राज्य में सुखपूर्वक रहते हैं, उस को चौथा अंश उन के तप का मिलता है । देखिये, यहां कैसा अनर्थ हो रहा है कि राक्षस लोग मुनियों को मार २ खाजाते हैं, यह उन के हाड़ों का ढेर पड़ा है। पम्पा नदी से मन्दाकिनी और चित्रकूट तक ये लोग अन्याय करते हैं। अब हम लोग आप की शरण हैं । इस कष्ट से हम को बचाइये । भला अब आप को छोड़ हम कहां जावें ॥

रामचन्द्र जी—महाराज ! हम वन में आप ही लोगों की सेवा करने आये हैं । यह तो ठीक है कि पित्राज्ञापालन को घर से निकले हैं, परन्तु पिता की आज्ञा का पालन तो और जगह भी हो सकता था। अब जब हम यहां आगये तो अवश्य राक्षसों को मारेंगे । आप हमारा और हमारे भाई का पौरुष देखेंगे कि क्या करते हैं (और तपस्वियों को साथ ले, लक्ष्मण जी और सीता जी के साथ सुतीक्ष्ण जी के आश्रम को चलदिये और थोड़ी देर में वहां पहुंच गये । देखा कि मैले कमलों की माला पहने सुतीक्ष्ण जी बैठे हैं)

रामचन्द्र जी—(नियमानुसार प्रणाम कर) ए भगवन् ! हम रामचन्द्र हैं और आप के दर्शनों को आये हैं । ए धर्मात्मा ऋषि जी ! हम से वार्तालाप कीजिये ॥

ऋषि जी—(रामचन्द्र जी की दोनों बांह पकड़, छाती से लिपटाय) ए सत्यप्रतिज्ञ ! ए धर्मात्मा श्रीराम ! आप अच्छी तरह से तो हैं और अच्छी तरह से तो आये ? अब यह आश्रम आप के आने से सनाथ हुवा । ए वीर ! आप के दर्शन के अभिलाष में हम अब तक देवलोक को नहीं गये । यह हम ने राजा इन्द्र से सुना था कि आप राज्य छोड़, चित्रकूट पर आये हैं । क्योंकि हमने अपने तपोबल से तीनों लोक जीत लिये हैं, इसी लिये राजा इन्द्र हम से कहने आये थे कि अब आप ब्रह्मलोक को चलिये, परन्तु हम आप के दर्शनाभिलाष में नहीं गये और हमारे तो आधीन है कि जिस समय जहां चाहें वहां चले जायं । अब आप लक्ष्मण व जानकी के साथ जहां चाहें, चल कर वास करें ॥

रामचन्द्र जी—इन लोकों में से तो हम भी अब जिस में चाहेंगे बसेंगे। परन्तु इस समय तो हमारी इच्छा इस वन में वसने की है। इसी में कोई स्थान बतलाइये कि जहां सुखपूर्वक कुछ दिन वसेरा करें। यह बात हमने महात्मा शरभङ्ग जी और गोतम जी से सुनी है कि आप सब जीवों पर रक्षा करते हैं और सब स्थानों का समाचार जानते हैं, इस लिये हमारे ऊपर भी कृपा कर कोई स्थान बतला दीजिये॥

ऋषि जी—(प्रसन्न हो) ए राम ! जो ऐसा चाहते हो तो यही आश्रम सब प्रकार से अच्छा है, आप यहीं रहें और भी ऋषिलोग यहां पर रहते हैं और यहां कोई बाधा भी नहीं और फल मूल कन्द भी सब ऋतुओं में सब भांति के मिलते हैं। हां,हिरन व सिंह व भेड़िये आदि यहां आते हैं, परन्तु किसी को दुःख नहीं देते। आप उन से डरें नहीं और न उन को मारें। यहां एक यही तो दोष है और सब सुख ही सुख है॥

रामचन्द्र—(धनुष् पर वाण चढा) महाराज ! जिन मृगों ने आप को कष्ट दिया है, उन को हम अवश्य मार डालेंगे॥

यह सुन मुनिराज कुछ न बोले और रामचन्द्र जी ने जान लिया कि इन को मृगों से कष्ट पहुंचा है और कहा कि ऐसे मृगबाधित स्थान पर हम अधिक न ठहरेंगे (और ठहर कर सन्ध्या वन्दन कर लक्ष्मण जी और जानकी जी के साथ वहीं विश्राम किया और मुनि जी ने बड़े स्वादिष्ट फलमूल मंगवा, भोजन को दिये। उन को ले, खा पीकर वहीं सो रहे। प्रातःकाल उठ मुंह हाथ धो, स्नान कर, सन्ध्या व अग्निहोत्र से निवृत्त हो)

रामचन्द्र जी-ए भगवन् ! आप की कृपा से रात भर हम लोग बड़े आनन्द से रहे, अब आप आज्ञा दें तो हम और ऋषियों के भी स्थान देखें (और सीता जी और लक्ष्मण जी सहित मुनिराज के चरण छुये)

मुनिराज—(दोनों भाइयों को छाती से लिपटाय) ए राम ! लक्ष्मण, सीता सहित निर्भय चले जाइये। सीता जी तो परछाईं की नाईं आप के पीछे २ चलती ही हैं। बहुत अच्छा,इन दण्डकारण्यवासी तपस्वियों के आश्रम भी देख आइये और इस उत्तम वन को भी देखिये,परन्तु लौटकर यहीं आइयेगा। (यह सुन, 'बहुत अच्छा, कह, तीनों तैयार हो,चलदिये। रास्ते में-)

जानकी जी—ए राम ! जो धर्म, सूक्ष्म विधि से मिलता है वह बहुत

आकाङ्क्षा करने से नहीं मिलता। आकाङ्क्षा से तीन दुःख होते हैं। प्रथम तो मिथ्याभाषण, द्वितीय परस्त्रीगमन, तृतीय बिना वैर किसी को मारडालना। सो आप में दो बातें तो कभी हुईं ही नहीं और न होंगी परन्तु तीसरी जो इन ऋषियों की प्रसन्नता के निमित्त राक्षसों का मारना, ये तो है ही। जब से आप दण्डकारण्य में आये हैं, तब से यह बात उत्पन्न हुई है। इस से हम को बड़ा शोच है और हम रात दिन शोचा करती हैं कि फल क्या होगा। आप को तो हमारा ही प्रिय चाहिये और हमारे ही सुख के कार्य करने चाहियें। हम आप का दण्डकारण्य में जाना इस हेतु से अच्छा नहीं जानतीं, क्योंकि आप दोनों भाई शस्त्र बांधे हुवे और क्षत्रिय वर्ण हैं। क्षत्रिय के पास शस्त्र और अग्नि के पास सूखा इन्धन अवश्य उन के बल को बढ़ावेंगे। जब कि क्षत्रिय के पास शस्त्र हों और अग्नि के पास सूखा इन्धन, तो वे अवश्य अपना कार्य करेंगे। मुझे एक दृष्टान्त याद है, वह सुनियेः—

एक ऋषि की कथा

किसी वन में मृगगण व पक्षी बहुत बसते थे और उसी में एक बड़े पवित्र तपस्वी सत्यवान् तप करते थे। उन की बड़ी तपस्या देख, विघ्न करने के लिये इन्द्र जी हाथ में खड्ग ले, योद्धा का रूप बनाय, मुनि के आश्रम पै आये और अति पुण्यरूप तपस्या करते हुये मुनि के निकट अपना खड्ग रख बोले कि आप इस की रक्षा करते रहियेगा। जब हम आवेंगे ले जावेंगे और यह कह चले गये। मुनि उस खड्ग को पाय, उस की रखवारी करते और वन में घूमते और जहां कहीं फलफूल मूलादि लेने जाते, उस खड्ग को सङ्ग ही लिये जाते। प्रतिदिन शस्त्र धारण किये फिरने के कारण मुनि की बुद्धि अतिरौद्र हो गई। तपस्या करने का विश्वास जाता रहा। प्रतिदिन उस से जीवों को मारने लगे। ऐसा रौद्र स्वभाव होगया कि महाप्रमत्त होगये और सब धर्म कर्म जाता रहा और मरने के पीछे नरक को गये। शस्त्र के संयोग में यह पूर्वकाल का वृत्तान्त कहा॥ जैसे इन्धन आदि का अग्नि के साथ संयोग है, वैसे ही शस्त्र का संयोग मनुष्यों के साथ है। सो मारे स्नेह व मान के आप को हमने स्मरण कराया। कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करतीं। इस से आप धनुष्बाण धारण किये, बिना अपराध किसी को कभी न मारिये और दण्डकारण्य में बिना वैर वहां के बसनेवाले

राक्षसों के मारने की बुद्धि न कीजिये क्योंकि विना अपराध किसी को मारने की प्रशंसा विद्वान् लोग नहीं करते। जो कहिये कि फिर क्षत्रियों को शस्त्र धारण करने का कौन प्रयोजन। सो वन में विचरते हुवे क्षत्रियों का धनुष् धारण करना, निरपराध जीवों के मारने के लिये नहीं, वरन जो वन में दुःखी लोग हैं, उन की रक्षा के लिये है। इस लिये आप भी इस से हम दोनों की रक्षा ही कीजिये। फिर कोई २ बातें एक सङ्ग शोभित नहीं होतीं। भला कहां शस्त्र का बांधना और कहां वन में घूमना। कहां क्षत्रियों का धर्म और कहां तपस्या करना। ये सब कर्म विरुद्ध हैं, एक दूसरे से सम्बन्ध नहीं रखते, इस से जहां का जो धर्म हो वहां वही करना उचित है। असमय में शस्त्रधारण करने से कातरों की बुद्धि ही के समान बुद्धि करनी चाहिये। अयोध्या में जाय, फिर आप क्षत्रियों के समान बुद्धि करलें और वहां आप फिर क्षत्रियों के मुख्य धर्म की रक्षा करें। यहां वन में कहां क्षत्रियों का धर्म, क्योंकि असमय है। इस में कोई दोष नहीं जो आप वन में शस्त्र न धारण करें क्योंकि यदि राज्य छोड़ आप वन को आये और यहां मुनियों के समान आचरण करे तौ हमारे सासु व श्वशुर की भी अक्षय प्रीति आप में होगी, क्योंकि माता की यही तो आज्ञा है कि मुनिवेष धारण कर, वन में वसो। कुछ क्षत्रियवेष धारण करने व क्षत्रियधर्म पालन करने की आज्ञा तौ नहीं। फिर जब आप के पिता माता ही की ऐसी आज्ञा ठहरी तौ शस्त्र-धारण की कौन आवश्यकता? सो जिस धर्म की आप को आज्ञा है वही कीजिये क्योंकि धर्म ही से अर्थ होता है व धर्म ही से सुख अर्थात् धर्म ही से सब कुछ मिलता है। क्योंकि इस असार संसार में धर्म ही सार है। सो धर्म, नाना प्रकार के नियमों से आत्मा को कष्ट देने और शरीर को दुर्बल करने और बड़े यत्न से मिलता है, कुछ सुख करने से धर्म नहीं मिलता। इस से ए सौम्य! पवित्रमति हो, इस तपोवन में जो तपस्वियों के धर्म हैं, उन्हीं को कीजिये। हम आप को क्या समझावें क्योंकि चतुर्दश भुवनों में सब कुछ निश्चय आप को विदित है॥

रामचन्द्र जी—ए धर्मात्मा जनककुमारी! तुमने जो हमारी गुण की बातें कहीं, वह तो तुम्हारे कुल के स्वभाव से हैं और बहुत अच्छी हैं। अब हम तुम्हारी बातों का उत्तर देते हैं, सुनियेः—

क्षत्रिय लोग जो भाप ग्रहण करते हैं, वह इसी कारण है कि कोई दुःखी होकर इन को दुःख की बात न सुनावे। इन को ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि किसी दुःखित महात्मा का दुःखित वचन इन के कान में न पहुंचे। सो एक महात्मा की तो क्या गिनती, इस दण्डकारण्य में सब महात्मा दुःखी हो हो कर हमारी शरण आते हैं। बहुत दिनों से ये महात्मा लोग फल मूल खा कर इस वन में वसते हैं, परन्तु इन दुष्ट राक्षसों से सुख नहीं पाते। एक तो यह राक्षसाधम मांसाहारी हैं। द्वितीय इन का रूप भयानक है। इस कारण वे आ आ इन बेचारे मुनि लोगों का भक्षण कर जाते हैं। अब बचे बचाये मुनि लोग हमारी शरण आये थे, हमने उन के मुख से ऐसे वचन सुन उन का आदर किया और कह दिया कि आप लोग प्रसन्न रहें। हम को तो ऐसे वचन सुन बड़ी लज्जा आती है। हम आप लोगों की सेवा के योग्य हैं और आप उलटी हमारी सेवा करते हैं। कहिये हम आप लोगों की क्या सेवा करें। जब सब मुनियों ने हम से कहा कि दण्डकारण्य के दुष्ट राक्षस लोग हम को बड़ा भारी दुःख देते हैं, आप हम लोगों की रक्षा कीजिये और जब हम लोग अमावास्या व पूर्णमासी को कुछ विशेष यज्ञ करते हैं, तब तो ये दुष्ट मांसभक्षी राक्षस आय २ हट कर २ हमारा यज्ञ विनाशते और हम को बड़ा दुःख देते हैं। यद्यपि हम लोग भी अपने तपोबल से इन का नाश कर सकते हैं, परन्तु बहुत दिन के बटोरे तपोबल के खण्डन हो जाने के भय से शाप नहीं देते। आप ही उन के मारने के योग्य हैं। अब लक्ष्मण सहित हमारी रक्षा कीजिये। हमने ऐसे वचन सुन, उन से कह दिया कि हम तुम्हारा पालन सब प्रकार करेंगे। किसी ने कहा है–

दोहा–

जो जाको शरणै वसै, ताको ताकू लाज।
जल सौंही मछली चढ़ै, वहै जात गजराज॥

ए जनककुमारी! दण्डकारण्य में हमने मुनि लोगों से यह प्रण किया है। अब जब तक यह शरीर नियत है और शरीर में प्राण विराजमान है, तब तक उन की रक्षा करके अपने वचन पूरे करेंगे और वचनों से नहीं फिरेंगे। हम चाहे तुम को भी छोड़दें और लक्ष्मण को भी छोड़दें और प्राण भी छोड़ दें, परन्तु मुनियों से जो प्रण किया है, उस को कभी न छोड़ेंगे और ब्राह्मणों

से जो प्रण किया है, उस को तो अतिशीघ्र पूरा करेंगे। जो हम प्रण भी न करते तौ हम ब्राह्मणों का कार्य करने को हर समय उद्यत थे और अब तौ प्रण भी कर चुके, फिर भला उस से फिर सकते हैं? और तुमने जो हमारे सुख के हेतु अपने प्रेम से हम को समझाया, इस से हम बहुत प्रसन्न हैं। अप्रसन्न नहीं है॥

दोहा-

मैथिलनृप की सुता सों, इमि कहि श्रीरघुनाथ।
धनु लै रम्य तपोवनहि, गये सिय लक्ष्मण साथ॥

अब ये तीनों जन वन को देखते चले जाते थे कि आगे चार कोस लम्बा सरोवर दीख पड़ा कि उस में से गाने बजाने की ध्वनि आ रही थी और मनुष्य कोई नहीं दीखता था। उसे सुन रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी बहुत ही विस्मित हुवे॥

रामचन्द्र (एक मुनि से) ए महामुनि! यह गाने का शब्द सुन, हम को बड़ा आश्चर्य होता है, यह क्या बात है?

मुनिराज–ए राम! इस ताल का पञ्चाप्सरस् नाम है और मण्डकरण मुनि ने बनाया है। उस मुनि ने बड़ा भारी तप किया था। एक समय तप के नष्ट करने को इन्द्रादि देवताओं ने पांच अप्सरा भेजीं। उन पांचों ने मुनि को मोहित कर लिया और मुनि ने तालाब के भीतर घर बना दिया और आप भी तपोबल से युवा हो गये। यह उन्हीं के गाने बजाने का शब्द है॥ यह सुन दोनों भाई बड़े विस्मित हुवे और वहां के ऋषियों के आश्रम देखते भालते वहीं बसे। फिर और मुनियों के स्थानों पर फिरना आरम्भ किया। यहां तक कि महीने २ दो २ चार २ महीने रहते २ दस वर्ष दण्डकारण्य में बीत गये और अन्त में सुतीक्ष्ण जी के आश्रम पर पहुंचे। वहां मुनियों ने इन की बड़ी पूजा की॥

रामचन्द्र–(हाथ जोड़, सुतीक्ष्ण जी से) कहिये महाराज! इस वन में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी भी कहीं रहते हैं? यह तो हम ने सुना है कि वे इसी वन में रहते हैं, परन्तु हम उन का आश्रम नहीं जानते। हमारी इच्छा है कि लक्ष्मण वं जानकी सहित उन को भी प्रणाम कर प्रसन्न करें और जो कुछ बनें उन की भी सेवा करें॥

सुतीक्ष्ण जी–हम भी यह कहने ही को थे, परन्तु बड़े भाग्य की बात है कि आपने ही अपनी इच्छा प्रकट की। अब सुनिये–यहां से सोलह कोश

दक्षिण दिशा को जाइये। प्रथम अगस्त्य जी के भाई का आश्रम है। वहां की भूमि एकसी और रमणीक है। वह वन भी पीपल का है। वहां एक रात बस प्रातःकाल दक्षिण दिशा को जाइये। आगे बड़ा भारी वन मिलेगा, उस से चार कोस आगे एक भारी वन अगस्त्य जी का है, बस वहीं अगस्त्य जी रहते हैं। जो आप की यही इच्छा है तो आज ही जाना उचित है॥

ऐसे सुन जानकी और लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी, मुनिराज को प्रणाम कर वहां से चल दिये। अब रास्ते में पहाड़ वन नदी व तालाव देखते चले जाते थे कि अचानक—

रामचन्द्र जी—ए लक्ष्मण! अगस्त्य जी के भाई का यही आश्रम है कि जो आगे दीखता है। देखो पकी हुई पीपलियों की सुगन्धित पवन आरही है और वह मुनि जी के स्थान का धुआं दृष्टि पड़ता है और देखो, ये न्हाये धोये ब्राह्मण लोग बैठे पूजा कर रहे हैं। निश्चय अगस्त्यजी के भाई का यही आश्रम है। ये अगस्त्य जी बड़े प्रतापी हैं, इन्होंने इल्वल और वातापि दैत्यों को मारा है॥

लक्ष्मण—इल्वल व वातापि की कथा कैसे है?

वातापि की कथा

रामचन्द्र जी—एक समय यहां वातापि और इल्वल दोनों भाई राक्षस आये। ये दोनों दुष्ट, ब्राह्मणों को मारा करते थे। उन में से इल्वल तो ब्राह्मणों का वेष बनाय संस्कृतवाणी बोल, ब्राह्मणों का नौता करता और अपने भाई वातापि को बकरा बना ब्राह्मणों को खिला दिया करता। जब ब्राह्मण वातापि को भोजन कर जाते तो इल्वल कहता कि भाई वातापि! निकल आओ। यह सुन ब्राह्मणों का पेट फाड़ वातापि बाहर निकल आता। बहुत समय तक ये दोनों भाई ऐसा ही करते रहे और सहस्रों ब्राह्मण मार २ खा गये। एक समय अगस्त्य जी यह समाचार सुन, इल्वल और वातापि के आये और इन का भी नौता हुआ और वातापि भोजन में दिये गये और अगस्त्य जी ने भोजन कर लिया। अब इल्वल ने वातापि को पुकारा कि भाई वातापि! निकल तो आओ॥

अगस्त्य जी—(हंस कर) हमने तुम्हारे भाई वातापि को खा कर पचा डाला। भला अब वह दुष्ट कैसे निकल सकता है, वह तो सीधा नरक को चला गया॥

(इल्वल यह सुन, क्रोध कर मुनि के मारने को दौड़ा)॥

अगस्त्य जी–(क्रोध से उस को देखा कि तुरन्त भस्म हो गया)। भाई ! यह उन्हीं अगस्त्य जी के भाई का आश्रम है, जिन्हों ने ब्राह्मणों के लिये ऐसा दुष्कर्म किया है। ऐसी बातें करते हुये चले जाते थे कि सायंकाल हो, सूर्य्य अस्त होगया। वहीं ठहर संध्या वन्दन कर मुनिराज को प्रणाम करने गये और जा कर प्रणाम किया। मुनि ने बड़ा सम्मान कर, फल मूल खाने को दिये॥

(रामचन्द्र जी मुनि के दिये कन्द मूल फल खा, रात भर वहीं रहे। जब प्रातःकाल हुआ)

रामचन्द्र जी—ए मुनिराज ! आप के आश्रम पर आज रात भर हम बड़े आनन्द से रहे। अब हम प्रणाम करते हैं और आप के भाई अगस्त्य जी के दर्शन की आज्ञा चाहते हैं॥

मुनि जी— बहुत अच्छा, आप जाइये॥

यह सुन, वन की सैर करते दोनों भाई सीता जी सहित चल दिये। रास्ते में-

रामचन्द्र जी—ए लक्ष्मण ! इन सब विपरीतस्वभाव जन्तुओं के आपस में प्रेमपूर्वक रहने के कारण ज्ञात होता है कि अगस्त्य जी का यही स्थान है, जो आगे दीख रहा है। देखो तो उन के वन में यज्ञ का धुआं फैल रहा है और भांति भांति के पक्षी बोल रहे हैं। जिन अगस्त्य जी ने यह दक्षिण दिशा सब मनुष्यों के आने जाने योग्य कर दी, यह उन्हीं अगस्त्य जी का आश्रम है। भाई अब राक्षस लोग आते तो हैं, परन्तु मनुष्यों को कष्ट नहीं देते। जब से अगस्त्य जी यहां आये हैं,तब से राक्षस लोग शान्तचित्त हो गये हैं। लक्ष्मण ! अब तुम आगे जाकर मुनिराज को सूचित करो कि राम सीता सहित आते हैं॥

लक्ष्मण—('बहुत अच्छा' कह, आगे बढ़, मुनि के आश्रम पर पहुंच, मुनि के शिष्य से) तुम मुनिराज को सूचित कर दो कि अयोध्यापुरी वाले राजा दशरथ जी के ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्र जी सीता महाराणी सहित आप से मिलने आये हैं। हम उन के छोटे भाई लक्ष्मण नाम उन के सेवक हैं। किसी समय तुमने भी सुना होगा कि हम सब लोग अपने पिता जी की आज्ञा से वन को आये हैं और मुनिराज को देखा चाहते हैं। तुम जा कर मुनि से ऐसे ही समाचार कह दो॥

(शिष्य ने लक्ष्मण जी को साथ ले जा, मुनिराज से रामचन्द्र जी का आगमन जैसे कि लक्ष्मण जी ने कहा था, वैसे ही कह दिया)

अगस्त्य जी—बड़े भाग्य की बात है, जो बहुत दिन पीछे हमारे देखने को रामचन्द्र जी यहां आये। हम को भी इन के देखने की बड़ी काङ्क्षा थी। अब तुम शीघ्र जाओ और बहुत शुश्रूषा के साथ रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी और सीता जी को ले आओ। अरे! हमारे बे पूंछे ही उन को क्यों नहीं ले आये॥

शिष्य—बहुत अच्छा (और जल्द आ) रामचन्द्र जी कौन से हैं, बहुत जल्द मुनि के देखने को चलें। (अब शिष्य और लक्ष्मण रामचन्द्र जी के पास पहुंचे और लक्ष्मण ने श्री रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को बतलाया, तब शिष्य नें बड़ी नम्रता से अगस्त्य जी के वचन कहे और रामचन्द्र जी चल दिये। उधर मुनिराज भी अपने स्थान से निकले। रामचन्द्र जी मुनि को देख)

रामचन्द्र—ए लक्ष्मण! देखो तपस्या ही के कारण इतना तेज अगस्त्य जी में है (और अगस्त्य जी के चरणों में प्रणाम कर,हाथ जोड़, तीनों मुनि के आगे खड़े हो गये। प्रथम मुनि ने पैर धोने को जल मंगवाया, पश्चात् कुशल पूंछ, आसन दे,बैठने को कहा। तत्पश्चात् बलिवैश्व कर इन अतिथियों को भोजन दिया)

अगस्त्य जी—ए राम! जो मनुष्य तपस्वी हो कर अतिथियों को भोजन नहीं देता, वह पुनर्जन्म में अपना मांस आप खाता है और आप तो देश के राजा हो कर हमारे अतिथि हुये हैं और हम को तो आप की पहुनई भलीभांति करनी चाहिये (और बड़े स्वादिष्ट भोजन दे) ए राम! ए लक्ष्मण! तुम जो सीता जी सहित हमारे प्रणाम को आये हो, इस से हम बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारा कल्याण हो। हम जानते हैं कि इस यात्रा में तुम को कष्ट हुआ होगा और जानकी जी को तो तुम से भी अधिक। और इस समय आप लोगों के विश्राम करने की इच्छा भी होगी और सीता जी वेचारी तो तुम्हारे प्रेम से चली आई हैं, उन्हों ने भला ऐसा कष्ट कब देखा होगा। इस लिये यही उचित है कि जिस में इन को अधिक कष्ट न हो, वह कार्य कीजिये। इन्हों ने बड़ा दुष्कर कर्म किया है, जो सब आनन्द छोड़, तुम्हारे साथ वन को चली आईं। ए राम! जब से जगत् उत्पन्न हुआ है, तब से स्त्रियों का यही स्वभाव है कि संपत्तिमान् पुरुष के तो साथ रहती हैं और प्रेम भी प्रकट रखती हैं,परन्तु कङ्गाल पति को छोड़ देती हैं। बिजुली की सी चमक और खांडे के सा काट और गरुड़ की सी चाल स्त्रियों के स्वभाव में होती हैं, परन्तु आप की सीता जी में यह दोष नहीं है। ये अवश्य कीर्त्ति

के योग्य हैं और पतिव्रता स्त्रियों में पहिले गिनती करने योग्य हैं, जैसे कि देव ऋषियों में पहिले अरुन्धती की गणना होती है। यह देश बड़ा भाग्यवान् है कि जहां आप सीता और लक्ष्मण सहित आ कर बसे हैं॥

रामचन्द्र जी—महाराज! हम बड़े भाग्यवान् हैं कि जो आप ने भाई और स्त्री सहित हम को अच्छा समझा और हम से प्रसन्न हुये। अब आप हम को एक स्थान बतला दीजिये, जहां जल भी हो और फल भी हों और सुख भी मिले। उस में हम कुछ दिन वास करें॥

अगस्त्य जी-(मुहूर्त भर तक विचार कर) ए तात! तुम्हारे योग्य एक स्थान यहां से आठ कोस है। वहां ये सब बातें हैं। फल भी हैं मूल भी हैं अर्थात् सब सुख वहां हैं। वहां कुटी आदि बना कर बसिये और लक्ष्मण जी के साथ विचर कर पिता की आज्ञापालन नियमानुसार कीजिये। ए राम! तुम्हारे और दशरथ जी के प्रेम और अपने तपोबल से हमने वनवास का सब वृत्तान्त जान लिया है और यह भी ज्ञात कर चुके हैं कि आप इस तपोवन में हमारे पास बस, यहां के राक्षसों को मारा चाहते हैं. इस लिये आप से कहते हैं कि आप पञ्चवटी को जायं, वहां जानकी जी भी आनन्द से रहेंगी और विचरने योग्य भी है और यहां से कुछ दूर भी नहीं। वहां पर गोदावरी नदी बहती है। सीता जी का मन भी भला लगेगा। मूल फलादि भी बहुत हैं और भान्ति भान्ति के पशु पक्षी भी रहते हैं और एकान्त भी है और आप वहां से तपस्वियों की रक्षा भी भली रीति से कर सकते हैं। देखो, वह जो बड़ा भारी वरगद का वृक्ष दीखता है, उस के निकट होकर जाना, फिर महुवे का वन मिलेगा, उस की उत्तर दिशा में चले जाना। आगे पर्वत के निकट तुम को पञ्चवटी दीखेगी॥

गिद्ध की कथा

ऐसा सुन दोनों भाई मुनिराज से आज्ञा ले सीता सहित पञ्चवटी को चल दिये। मार्ग में एक बड़ा भारी गिद्ध बैठा देखा। दोनों भाई उस को राक्षस जान बोले कि आप कौन हैं?

गिद्ध—(बड़ी मनोहर वाणी से) ए वत्स! हम को अपने पिता जी का मित्र समझो॥

रामचन्द्र-आप का कौन कुल है? और क्या नाम है?

गिद्ध–ए राम ! सुनो, सब से पहले कर्दम जी, दूसरे विकृत, तीसरे शेष, चौथे संश्रय, पांचवें बहुपुत्र, छठे स्थाणु, सातवें मारीच, आठवें अत्रि, नवें क्रतु, दशवें पुलस्त्य, ग्यारहवें अङ्गिरा, बारहवें प्रचेता, तेरहवें पुलह, चौदहवें दक्ष, पन्द्रहवें विवस्वान्, सोलहवें अरिष्टनेमि और सत्रहवें कश्यप, ये सब से पिछले प्रजापति हैं । इन में से दक्ष की बड़ी धर्मात्मा साठ ६० कन्या हुईं । उन में से ताम्रा १ क्रोधवशा २ मनु ३ अनिला ४ अदिति ५ दिति ६ दनु ७ कालिका ८ इन आठ का कश्यप जी से विवाह हुवा । एक समय इन से कश्यप जी अतिप्रसन्न हो बोले कि हमारे समान पुत्र उत्पन्न करो । यह सुन पहिली चारों ने कश्यप जी के वचन में मन लगाया और पिछली चारों ने उन के वचन में कुछ ध्यान न दिया कि ताम्रा से शुकी आदि पांच कन्या हुईं और शुकी के नता नाम कन्या और नता के विनता नाम और विनता के गरुड़ और अरुण दो पुत्र उत्पन्न हुवे । उन अरुण जी से हम और हमारे बड़े भाई सम्पाति हैं । हमारा जटायु नाम है और माता का शैनी । जिस समय तुम चाहोगे, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे और जब आप लक्ष्मण सहित फल लेने चले जायंगे, तब भी हम सीता जी की रक्षा करेंगे ॥

यह सुन, रामचन्द्र जी ने जटायु को अपने बाप का मित्र जान, बड़े प्रेम से पूजा की और लिपट कर मिले और झुक कर प्रणाम किया और जटायु ने बार २ राजा दशरथ जी की मित्रता वर्णन की और रामचन्द्र जी ने कहा–बहुत अच्छा, आप सीता जी की रक्षा करते रहैं । यह कह के चारों पञ्चवटी को चल दिये ॥

रामचन्द्र जी–ए लक्ष्मण ! महात्मा अगस्त्य जी के बताये स्थान पर आगये । पञ्चवटी यही है । अब तुम अपने रहने योग्य कोई सुन्दर स्थान देखलो, जहां भलीभान्ति मन भी लगे और जल भी निकट हो और सब प्रकार सुख और आनन्द भी हो ॥

लक्ष्मण–(हाथ जोड़) महाराज ! आप के होते, हम को विचार की क्या आवश्यकता । हमारे विचार का कुछ ठिकाना नहीं । जहां आप आज्ञा दें, पर्णकुटी बनालें (अब रामचन्द्र जी ने वन में विचर एक बड़ा मनोहर स्थान बड़े आनन्द का नियत किया और लक्ष्मण जी का हाथ पकड़, उस स्थान पर ले जा, हमारी समझ में तो यह स्थान बहुत सुन्दर है । यहां मनोहर कुटी तैयार करो । यहीं पर हम जटायु जी सहित रहेंगे, ऐसा सुन लक्ष्मण

जी ने बहुत ही शीघ्र लकड़ी के खम्भे गाढ़ बीच २ में मिट्टी की भीतें बना, ऊपर तिरछे बांस डाल और तिरछे बांसों पर वृक्षों की पतली २ टहनी बिछा दीं। यहां तक कि बड़ा मनोहर स्थान बना, रामचन्द्र जी को दिखला दिया। उसे देख रामचन्द्र जी और जानकी जी बड़े प्रसन्न हुवे) ॥

रामचन्द्र जी-(लक्ष्मण को छाती से लिपटाय) ए प्यारे! तुमने बड़ा भारी कार्य किया। हम तुम से बड़े प्रसन्न हैं। अब बतलाओ तुम को क्या दें। ऐ लक्ष्मण! तुम से भाई के होते, क्या कमी है। तुम सब कार्य भली भान्ति और शीघ्रता से कर देते हो॥

अब इन को यहां वसते ही वसते शरद् ऋतु जाती रही और हेमन्त ऋतु आ गई। एक दिन दोनों भाई सीता जी सहित गोदावरी स्नान को गये और अत्यन्त शरदी देख, सीता जी ने भरत जी का वृत्तान्त आरम्भ कर दिया कि वे बेचारे भरत भी तो राजा होकर ऐसी ही शरदी में सरयू न्हाते होंगे। ऐसा कहते हुये दोनों भाई सीता जी सहित स्नान कर कुटी में आये और दो पहर पहिले सब कर्मों से निवृत्त हो अपनी कुटी में बैठे। अकस्मात् एक राक्षसी स्वतन्त्र विचरती वहां आ, रामचन्द्र जी की सांवरी सूरत मोहनी मूरत देख मोहित हो गई॥

शूर्पणखा—तुम जटा रखाये, तपस्वियों का वेष बनाये धनुष्बाण लिये राक्षसों के इस देश में क्यों आये हो? तुम्हारे यहां आने का क्या कारण है, सब हम को बतलाओ?

रामचन्द्र जी—देवताओं से भी अधिक बलवान् राजा दशरथ जी हुये, उन के हम ज्येष्ठ पुत्र हैं और सब लोग हम को राम कहते हैं और यह हमारे छोटे भाई लक्ष्मण हमारे बड़े भक्त हैं और यह राजा जनक की जो कन्या हमारी भार्या है। सीता इन का नाम है। अपने पिता दशरथ और माता केकयी के कहने से धर्म के कारण इस वन में वसते हैं और अब तुम्हारा समाचार जानना चाहते हैं कि तुम किस की कन्या हो और क्या तुम्हारा नाम है और किस की स्त्री हो? वैसे तो वेष से राक्षसी जान पड़ती हो, परन्तु तुम्हारा व्यौरे वार समाचार जानना चाहते हैं कि यहां निर्जन वन में कैसे आई हो॥

शूर्पणखा-ए राम! शूर्पणखा हमारा नाम है और हम राक्षसी हैं। जब चाहती हैं, इच्छानुसार अपना रूप बना लेतीं हैं और इस वन में

अकेली ही विचरा करती हैं, परन्तु हम से सब भयभीत हैं। तुमने कभी राजा रावण का नाम सुना होगा। वह हमारा भाई है। दूसरा भाई विभीषण नाम है। वह धर्मात्मा है। उस का राक्षसी स्वभाव नहीं। एक भाई का नाम कुम्भकरण है, वह बड़े भारी योद्धा हैं, परन्तु सोते बहुत दिन तक हैं। इन के सिवाय खर दूषण दो भाई और बड़े योद्धा हैं और हम में भी सब भाइयों से अधिक बल है, परन्तु तुम को सब से सुघड़ देख अपना पति बनाया चाहती हैं, इस लिये यहां आई हैं। अब आप हमारे पति बनिये। सीता से आप को क्या सुख मिलेगा। क्योंकि हम में बड़ा तेज है और निर्भय जहां चाहती हैं, चली जाती हैं, कोई हम को रोक नहीं सकता। अब आप हम को अपनी सुघड़ भार्या समझें। जो आप यह कहें कि इन कुरूपा कुमार्गी सीता की क्या गति होगी। सो इन को तो तुम्हारे इस भाई सहित हम खा ही लेवेंगी, यह आदमी तो हैं ही हैं॥

दोहा

तब तुम मम संग विविध वन, पर्वत शृङ्ग अनेक।
बहुतक दिन तक विचर हो, कामी रहत विवेक॥

रामचन्द्र जी-हंस कर, हौले से ए शूर्पणखा! हमारा तौ विवाह हो गया। देखो हमारी प्राणप्यारी स्त्री यह बैठी है। जो कहो कि दूसरा विवाह कर लो तौ नहीं हो सकता, क्योंकि तुम भी सुघड़ स्त्रियों को सौतिया डाह बड़ा दुःख देता है। हां, यह हमारे छोटे भाई लक्ष्मण बड़े योग्य और शूरवीर भी हैं और विवाह करने की इच्छा भी रखते हैं। तरुण अवस्था और रूपवान् भी हैं। तुम इन के साथ अवश्य विवाह करलो। देखो इन के साथ अकेली भी रहोगी और सौतिया डाह भी न होगा॥

शूर्पणखा-(लक्ष्मण से) तुम से रूपवान् की अब हम स्त्री होने वाली हैं और हम से अधिक रूपवती स्त्री भी आप को संसार में न मिलेगी। इस लिये आप हमारे साथ विवाह करलें और निर्भय दण्डकारण्य में विचरें॥

लक्ष्मण-(मुस्कराकर) ए मृगनयनी! हम तौ दूसरे के दास हैं। भला तुम क्यों दासी बना चाहती हो। देखो हम इन बड़े भाई के आधीन हैं और तुम जानती हो कि आधीनता में सुख कहां। किसी ने कहा है-"पराधीन स्वपने

सुख नाहीं" इस लिये तुम अब इन महात्मा बड़े भाई की दूसरी स्त्री बनो, इस में तुम्हारे सब कार्य सिद्ध हो जायंगे और प्रसन्न भी रहोगी और हमारे तुम्हारे तो रङ्ग में भी भेद है। देखो इन का श्याम रङ्ग तुम्हारे रङ्ग से कुछ कुछ मिलता है और इन की यह स्त्री तो तुम्हारी समझ में कुरूपा कुबरी और बूढ़ी है ही है। यह अवश्य इन को छोड़ देंगे और तुम से प्रसन्न रहेंगे॥

शूर्पणखा—(ठट्ठा समझ, रामचन्द्र जी से) तुम इस कुरूपा कुबरी कुमार्गी बूढ़ी स्त्री के समीप हम को पसंद नहीं करते। अब हम तुम्हारे देखते ही देखते इस को खा लेती हैं और फिर बेसौत की हो तुम्हारे साथ आनन्द से विचरेंगी (यह कह, मुंह फाड़, आंखें निकाल, जानकी जी की ओर दौड़ी)

रामचन्द्र जी—(ऐसा देख, क्रोध में आ, शूर्पणखा को पकड़) ए लक्ष्मण! मूर्खों से कभी ठट्ठा नहीं करना चाहिये। देखो यह तो अभी २ सीता जी को खाये लेती थी और देखो सीता जी को इस समय कैसा दुःख है और हमारा मारे हंसी के बुरा हाल है। अब तुम इस दुष्टा मदान्धा कुरूपा राक्षसी का कोई अङ्ग काट डालो, जिस से यह अङ्गभङ्ग हो जाय॥

यह सुन लक्ष्मण जी ने उस के नाक कान काट डाले। अब वह नकटी और कनकटी शूर्पणखा बड़े ऊंचे स्वर से रो २ कर वन में इधर उधर दौड़ने लगी और रामचन्द्र जी को बुरी २ गालियां देने लगी और वहां से चल, खर व दूषण अपने भाइयों के पास पहुंच, इन की निन्दा करती २ पृथ्वी पर गिर पड़ी॥

खर—ए बहिन! उठो, यह किस ने तुम्हारे नाक कान काटे हैं? भला वह कौन है कि जिस ने विषधर सर्प को उङ्गली से छेड़ा है। भला वह कौन है जिस ने काल फांसी गले में डाल हलाहल विष पिया है। भला तुम सी धर्मात्मा व शूरमा की किसने यह दशा बनाई है। और की तो क्या गिनती है, देवताओं का राजा इन्द्र भी हम से वैर कर सुख से नहीं रह सकता। जिस ने यह अनुचित कर्म किया है, उस के प्राण हम आज ही अपने पैने २ तीरों से निकालेंगे। जैसे कि पानी मिले दूध से हंस दूध ही पी लेता है, वैसे ही हम भी आज उस के प्राण शरीर से निकाल लेंगे हम नहीं जानते कि आज किस के लोहू से युद्ध भूमि लाल होगी और आज किस के मांस को चील कव्वे आदि नोंच २ खायंगे। भला कोई है, जो हमारे मारे हुए की रक्षा कर सके? अब तुम हमें बतला तो दो कि वह है कौन, जिस ने तुम्हारी यह दशा बनाई है?

शूर्पणखा-(क्रोध से रोती हुई) भाई! युवावस्था रूपवान् शूरवीर चीर वल्कल पहने तपस्वी धर्म्मचारी राजा दशरथ जी के पुत्र दोनों भाई राम, लक्ष्मण सर्वगुणसम्पन्न इस वन में ठहर रहे हैं और एक बड़ी रूपवती स्त्री उन के साथ है। उन्हीं दोनों ने हमारे नाक कान काटे हैं। हम जब तक उन तीनों का लोहू न पीलेंगी, चैन न पड़ेगा। यह तुम से हमारा पहला ही काम है। ए भाई! इस को ज़रूर २ कर दो, नहीं तो हम अपना प्राण देंगी और हत्या तुम को होगी॥

खर-(क्रोध में आ) सेनापति! चौदह सहस्त्र राक्षसों को लेजाओऔर जो इस वन में चीर वल्कल पहने हुवे दो मनुष्य एक स्त्री सहित आये हैं, उन तीनों को पकड़ लाओ कि हमारी बहिन उन का लोहू पी ले। बड़ी शीघ्रता से इस कार्य को करो, देर न हो (यह सुन चौदह सहस्त्र राक्षस शूर्पणखा को साथ ले, चलदिये और उन को काले बादलों की नाईं आता हुआ रामचन्द्र और सीता जी ने देखा)

रामचन्द्र जी—(राक्षसों की भारी सेना को आती देख) ए लक्ष्मण! तुम एक मुहूर्त्त यहीं बैठ, सीता जी की रक्षा करो। हम अकेले ही उन शूर्पणखा के रक्षक राक्षसों को मारेंगे॥

लक्ष्मण-(बहुत अच्छा कह) महाराज! भला ये आप के सामने जीते रह सकते हैं?

रामचन्द्र-(धनुष् पर वाण चढ़ा) ए राक्षस लोगो! हम राजा दशरथ जी के पुत्र राम और लक्ष्मण दोनों भाई हैं और अपनी स्त्री सीता को साथ ले दण्डकारण्य में आये हैं और यहां फल मूल खा २ कर तपस्या करते वसते हैं। तुम हमारे ऊपर क्यों चढ़ आये हो। जो यह कहो कि हम नहीं चढ़ आये तो तुम शस्त्र लिये क्यों हो? और हमारा तो यह धर्म है कि ऋषि लोगों के कहने से महापापी राक्षसों को युद्धभूमि में मारें। इसी लिये हम धनुष् पर रौदा चढ़ाये हैं। जो तुम को अपना प्राण प्रिय है, तो यहां से लौट जाओ, नहीं तो हमारे सम्मुख खड़े होजाओ। देखो, भागना मत॥

राक्षस लोग-(आंखें निकाल, हंस कर) भला हमारे सरदार महाराज खर को अप्रसन्न कर तुम जीने की आशा रखते हो? आहा हमारी इतनी भारी सेना से लड़ोगे? ओहो! लड़ना तो क्या, तुम्हारा तो खड़ा होना भी

दुर्लभ है। देखो, हमारे शस्त्रों के चलने पर तुम्हारे सब शस्त्र गिर जायंगे (और शस्त्र उठा २ रामचन्द्र जी की ओर चल दिये)

पहिले रामचन्द्र जी ने अपने तीरों से राक्षसों के बहुत शस्त्र काट डाले और पश्चात् राक्षसों का मारना आरम्भ किया, यहां तक कि सब राक्षस मारे गये और शूर्पणखा भाग, खर के सामने जा, बड़ी उदासीन हो, उच्चस्वर से रोने लगी ॥

खर—(क्रुद्ध हो) ए शूर्पणखा ! हमने तौ तेरे साथ चौदह सहस्त्र मांसाहारी योद्धा भेज दिये, अब क्यों रोती है ? वह तौ बड़े शूरवीर हैं। जगत् में उन को कोई मार सकता है ? फिर तुम क्यों "हा स्वामी ! हा नाथ !" कह २ कर पृथिवी पर लोट रही हो। उठो और बतलाओ कि क्या बात है ?

शूर्पणखा–(आंसू पोंछ) भाई ! हमारे नाक कान कटे तो कटे, परन्तु तुम्हारे भी चौदह सहस्त्र योद्धा रामचन्द्र जी ने मार डाले। अब हम को रामचन्द्र से बड़ा भय है और चारो ओर से भय ही भय दीख पड़ता है। अरे भाई ! तुम हमारी रक्षा क्यों नहीं करते। क्या तुम्हारे में युद्ध की शक्ति नहीं ? जो शक्ति है तौ हमारा और राक्षसों का बदला आज ही रामचन्द्र से लो। जो तुम आज उन को न मार डालोगे तौ हम तुम्हारे सामने ही मर जावेंगी। हमारी सम्मति में तौ तुम रामचन्द्र जी के सामने खड़े भी नहीं हो सकते और युद्ध करना तौ बड़ी बात है। यह ठीक है कि तुम्हारे पास बड़ी भारी सेना है और तुम अपने को शूरवीर भी मानते हो, परन्तु रामचन्द्र के आगे बलहीन दृष्टि पड़ते हो। जो तुम कुछ शूरता रखते हो और अपने को वीर जानते हो तौ अपने बान्धवों के सङ्ग युद्धभूमि में रामचन्द्र को मारो, परन्तु तुम से कुछ नहीं हो सकता और तुम तौ उन के सम्मुख खड़े भी नहीं हो सकते। अरे भाई ! यह भी समझ लो कि वे अकेले नहीं, उन के साथ बड़ा शूरवीर उन का छोटा भाई भी है (और दोनों हाथों से छाती कूट २ रोने लगी)

खर–ए बहिन ! तुम्हारे इस वचन से हम को बड़ी लज्जा आती है और क्रोध भी होता है। हम तौ रामचन्द्र को कुछ भी नहीं समझते, वे आज ही हमारे हाथ से मारे जायगे। अब तुम आंसू बन्द कर हमारा युद्ध देखो। हम अभी २ उन को यमपुर भेजे देते हैं। ए शूर्पणखा ! हमारे फरसे से कटे रामचन्द्र का गर्म २ लोहू आज तुम पीवोगी ॥

शूर्पणखा-(प्रसन्न हो कर) यह शूरता की बात है । शूरवीर को ऐसा ही करना चाहिये ॥

दूषण-हमारे चौदह सहस्र बलवान् राक्षसों को तैयार करो और हमारा रथ सजा, उस में सब अस्त्र शस्त्र रख दो । सब से आगे हम रामचन्द्र को मारने जायंगे (और बड़ी भारी सेना ले, जनस्थान को चल दिये)

रामचन्द्र जी-(हंस कर) ए लक्ष्मण ! इन कुशकुनों को देखो, जो राक्षसों के आगे होरहे हैं। देखो रक्त वर्ष रहा है। हमारे तीरों से धुआं निकल रहा है और हमारी दहनी भुजा फड़क रही है। हमारी समझ में तौ बड़ा भारी युद्ध होगा । अवश्य हमारी जीत होगी और राक्षस मारे जायंगे । मनुष्य को चाहिये कि कार्य के समय बहुत दृढ़ता से सोचे । अब तुम सब शस्त्र बान्ध उस पर्वत की गुफ़ा में जा बैठो, देर न करो । यह हम जानते हैं कि तुम अकेले ही इन सब को मार सकते हो, परन्तु हमारी यही इच्छा है कि इन को हम ही मारें ॥

लक्ष्मण जी—बहुत अच्छा ॥

और सीता जी को लेकर चल दिये । उधर बहुत जल्द रामचन्द्र जी ने कवच पहन, धनुष् उठाय, टङ्कोरना आरम्भ किया कि ऋषि लोग आगये और परमात्मा से प्रार्थना करने लगे कि रामचन्द्र जी की जय हो । यह कह ही रहे थे कि चारों ओर से राक्षसों की सेना शस्त्र बांधे निकट आ, बड़े बल से शब्द करने लगी । इधर रामचन्द्र जी ने चारों ओर देखा तौ जान पड़ा कि चारों ओर से सेना युद्ध को चली आ रही है । उधर खर ने रामचन्द्र जी को देख कर कहा कि हमारा रथ रामचन्द्र के समीप ले चलो । अब खर का रथ रामचन्द्र जी के सम्मुख चला आरहा है और खर के सब मन्त्री लोग साथ हैं कि अचानक खर ने १ सहस्र वाण रामचन्द्र जी के ऊपर छोड़ दिये और सब सेना ने हल्ला कर दिया। अब चारों ओर से रामचन्द्र जी के ऊपर शस्त्र वर्ष रहे हैं और राक्षसों के बीच में घिरे खड़े हैं । तीर शरीर में घुस रहे हैं और शरीर से लोहू बह रहा है। इधर यह अकेले, उधर राक्षसों की अपार सेना । लाचार रामचन्द्र जी को क्रोध आया, बस तीर वर्षाने लगे कि जिन से राक्षस लोग मर मर कर पृथिवी पर गिरने लगे । यह ऐसा भारी युद्ध हुआ कि पृथिवी कांप उठी और रक्त की नदी बहने लगी । फल यह निकला कि सब राक्षस मारे गये और रामचन्द्र जी का जय हुआ । यहां

चौदह सहस्र राक्षसों से अकेले रामचन्द्र जी ने युद्ध किया, अन्त में खर त्रिशिरा और रामचन्द्र जी बचे ॥

त्रिशिरा—(खर को प्रणाम कर) आप ठहरिये, हम अकेले ही रामचन्द्र से लड़ेंगे। या तो रामचन्द्र हम को मार डालेंगे या हम रामचन्द्र को मार लेंगे। आप हम दोनों का द्वन्द्वयुद्ध देखिये और साक्षी रहिये। जो हमने रामचन्द्र को मारलिया तो प्रसन्न चित्त हो जनस्थान को चले जाइये, नहीं तो रामचन्द्र से लड़िये ॥

खर—बहुत अच्छा ॥

अब युद्ध का आरम्भ हुवा और त्रिशिरा मारागया। उस के पीछे खर खड़ा हुवा कि वह भी रामचन्द्र जी के हाथ से कट पृथिवी पर गिर पड़ा। अब रामचन्द्र जी युद्ध को जीत अपनी कुटी पर आये। उधर से सीता जी और लक्ष्मण जी कुटी पर आगये और सब आपस में मिल भेंट, बहुत प्रसन्न हुवे ॥

रावण का दरबार

अकम्पन-(हाथ जोड़,रावण से) राजन् ! जनस्थान में बहुत से राक्षस मारे गये और खर दूषण भी अपनी सेनासहित युद्ध भूमि में काम आये। हम बड़ी चाल से बच कर यहां आये हैं ॥

रावण—किस को अपने प्राण भारी पड़े, जिस ने जनस्थान वासी राक्षस मार डाले ? वह कौन है,जिस को त्रिलोकी में रहने को स्थान नहीं ? आज हम से बिगाड़ कर इन्द्र, वरुण, कुवेर, यमराज भी सुख से नहीं रह सकते। आज हम अग्नि को भस्म कर सकते हैं और काल को भी मार सकते हैं। पवन को भी बन्द कर सकते हैं। भला हमारे क्रोध को कोई संभाल सकता है? नहीं २ आज दुनियां के परदे पर कोई भी हमारा क्रोध नहीं सहार सकता॥

अकम्पन—(चुप खड़ा, कांप रहा है)

रावण—अकम्पन! क्यों डरते हो? अच्छा तुम्हारा अपराध क्षमा किया। सब समाचार व्यौरेवार वर्णन करो ॥

अकम्पन—राजन् ! दो मनुष्य युवावस्था, शूरवीर, लम्बी भुजाओं वाले, एक श्याम दूसरा गौररूप, बड़े योद्धा जनस्थान में आये हैं और उन्हों ने ही सब राक्षसों को मारा है। वे राजा दशरथ जी अयोध्यापति के पुत्र हैं और राम और लक्ष्मण उन के नाम हैं ॥

रावण—(गर्म श्वास ले) ए अकम्पन ! क्या सब देवताओं समेत राम जनस्थान में आये हैं, जो सब को मार डाला ?

अकम्पन—(रामचन्द्र जी के गुण कह) महाराज ! वह अकेले ही हैं, पर बड़े योद्धा हैं। उन के साथ तो उन के छोटे भाई लक्ष्मण ही हैं और तो कोई सेना आदि नहीं है। आप इस में कुछ संदेह न करें, अकेले रामचन्द्र ही के हाथ से सब राक्षस मारे गये और जनस्थान शून्य हो गया ॥

रावण—हम राम और लक्ष्मण के मारने को अभी जनस्थान में जायंगे।

अकम्पन—राजन् ! तुम युद्ध में रामचन्द्र जी को नहीं जीत सकते और न तुम्हारे राक्षस जीत सकते हैं। मेरे विचार में तो त्रिलोकी में भी कोई नहीं, जो रामचन्द्र जी के सम्मुख होने का सामर्थ्य रखता हो। परन्तु एक प्रबन्ध हो सकता है वह सुनिये कि उन के साथ एक स्त्री सीता नाम बड़ी रूपवती कोई सोलह वर्ष की अवस्था की है कि आज जगत् में उस रूप रङ्ग की दूसरी कोई भी स्त्री नहीं। जो हो सके तो किसी रीति से उस को चुरा लाओ। उस के विना रामचन्द्र जी आप ही मर जायंगे और सहज में पीछा छूट जायगा ॥

रावण—(प्रसन्न हो और विचार कर) बहुत अच्छा, कल अकेले ही रथ ले जाय, सीता को रथ पर चढ़ाय, लङ्का में ले आवेंगे ॥

दूसरा दिन

रावण—(गधों का रथ मंगवाय, सवार हो, जनस्थान की यात्रा के निमित्त से चल मारीच के स्थान पर पहुंचा)

मारीच—(नियमानुसार सेवा कर,कुशल पूंछ) ए राक्षसराज ! तुम्हारी प्रजा तो प्रसन्न है?आज तुम बड़े शोकवश जान पड़ते हो,इस का क्या कारण है? हम को तुम्हारी यह दशा देख बड़ा शोच है,बतलाइये तो क्या बात है ?

रावण—ए तात ! कोई दशरथपुत्र रामनाम जनस्थान में आये हैं, उस ने खर दूषण को सेना सहित मार डाला। हम उस की स्त्री सीता को चुराना चाहते हैं और आप से आशा रखते हैं कि आप हमारी सहायता करें ॥

मारीच—(कांपता हुआ) ए राजा रावण ! वह कौन सा तुम्हारा शत्रु है, जिस ने तुम को यह सम्मति दी है कि सीता को चुरा लाओ? क्या वह कोई तुम्हारा पुराना शत्रु है, जो तुम्हारा नाश चाहता है ? क्या वह राक्षसों को मरवाने में प्रसन्न होता है, जो ऐसी बात आप को सिखलाता

है ? निस्सन्देह वह तुम्हारा पूरा शत्रु है, जो तुम्हारे हाथ से विषधर सर्प के दांत उखड़वाना चाहता है । राजन् ! यह सीता चुराने की मति तुम को किसने दी और किसने रामचन्द्र से सिंह के छेड़ने को तुम्हें उद्यत किया ? तुम तौ क्या, जगत् भर के राक्षस भी रामचन्द्र जी से सरबर नहीं हो सकते । ए रावण! राक्षसों के लिये रामचन्द्र कालरूप हैं । जो तुम अपना कुशल चाहते हो तौ चुपके से लङ्का को लौट जाओ और जनस्थान जाने का नाम न लो ॥

रावण—(यह सुन, लङ्का को लौट आया और चुप हो बैठा, परन्तु कुछ दिन पीछे शूर्पणखा लङ्का में आई और देखा कि मन्त्रियों के बीच में राजा रावण सिंहासन पर बैठा है)

शूर्पणखा—(बड़े क्रोध से) ए रावण ! बड़ी लज्जा की बात है कि तुम यहां निश्चिन्त बैठे हो । अरे तुम पर किसी का दबाव नहीं रहा, इस कारण तुम स्वतन्त्रता से कार्य करते हो । तुम सरीखे राजाओं का राज्य शीघ्र ही नष्ट होजाता है और शीघ्र ही दूसरों के आधीन होना पड़ता है। मुझे तौ अब यह सोच है कि तुम्हारा यह राज्य कैसे रहेगा,क्योंकि तुम को तो अपने राज्य की सुध ही नहीं कि राज्य में क्या हो रहा है । अरे ! जिन राजाओं को अपने राज्य के समाचार ज्ञात नहीं, भला वे कैसे राजा रह सकते हैं और तुम्हारे तो सब नौकर चाकर भी मूढ हैं । मन्त्री भी तो तुम्हारे कोई योग्य नहीं कि जो तुम्हें सूचित करें कि राज्य में क्या हो रहा है । देखो, जनस्थान में चौदह सहस्र राक्षस खर दूषण सहित अकेले रामचन्द्र ने मारडाले और दण्डकारण्य के सब ऋषियों को अभय दान दे दिया और तुम को ख़बर भी नहीं हुई । अरे ! होती ही कहां से,प्रथम तौ तुम लालची ठहरे, दूसरे मदान्ध, तीसरे परवश । तुम्हें राज्य से क्या प्रयोजन, तुम को तौ अपनी स्त्रियों से प्रयोजन है । देखो–अन्यायी, लालची, मदान्ध, मूढ़ मनुष्य कभी राजा नहीं रह सकता और प्रजा के हाथ से शीघ्र ही मारा जाता है और जो अपने आधीनों की रक्षा नहीं करता,वह शीघ्र ही औरों के आधीन होजाता है । जैसे पुराने कपड़े की कोई प्रतिष्ठा नहीं करता वैसे ही पुराने राजा की भी प्रतिष्ठा नहीं रहती । ए रावण ! तुम बड़े अचेत हो । देखो इतनी तौ तुम्हारी सेना मारी गई और तुम को कुछ सुध नहीं । बस ये ही लक्षण तौ राज्य जाने के हैं । भला ऐसे अन्धेर

में राज्य रह सकता है ? नहीं कदापि नहीं । आज न गया कल गया, परन्तु जायगा अवश्य ॥

रावण—ए शूर्पणखा ! राम कौन है और कैसा है ? और दण्डकारण्य में क्यों आया है ? क्या २ शस्त्र उस के पास हैं और ये तेरे नाक कान किसने काटे हैं, ठीक २ समाचार बतलाओ ?

शूर्पणखा—रामचन्द्र जी की लम्बी २ भुजाएं और बड़ी २ आंखें हैं। चीर और मृगचर्म पहनते हैं। रूप में अपने समान दूसरा नहीं रखते। महाराज दशरथ जी के पुत्र हैं। धनुष् उन के पास है, उसी से राक्षसों को मारते हैं। हमने आंखों से उन को वाण चलाते नहीं देखा, परन्तु राक्षस मरे पड़े देखे हैं। अकेले ही ने चौदह सहस्र राक्षस तीन घड़ी में मारडाले और दण्डकारण्यमें एक राक्षस भी जीता न छोड़ा। हमको तो स्त्री जान छोड़ दिया और अकेले भी नहीं, बराबर का शूरमा उन का छोटा भाई साथ है। जो बल पौरुष में उन से किसी भांति कम नहीं और एक चन्द्रमुखी स्त्री भी तौ उन के साथ है कि जिस के समान जगत् में कोई रूपवती स्त्री ही नहीं। सीता उन का नाम है, वह तौ तुम्हारे ही योग्य है। हम सीता को तुम्हारे लिये मांगने गई थीं कि लक्ष्मण ने हमारे नाक कान काटलिये जो तुमको रुचे तौ सीता को अपनी राणी बनाओ। परन्तु यह भी याद रक्खो कि जिस समय सीता को रणवास में लाओगे, सब रणवास सुशोभित हो जायगा और रामचन्द्र, सीता के वियोग में आप मरजायंगे और राक्षसों के शिर से सहज में बला टल जावेगी ॥

रावण—(सोच विचार कर, फिर मारीच के स्थान पर पहुंचा और मृगछाला पहने मारीच को देखा)

मारीच—(बड़े प्रेम से रावण की नियमानुसार शुश्रूषा कर) राजन् ! लङ्का में कुशल तो है ? तुम किस कारण इतनी जल्दी यहां आये ?

रावण—ए मारीच ! हम बड़े दुःखी हैं। तुम को ज्ञात तो है ही कि हमारे भाई खर दूषण को जनस्थान में रामचन्द्र ने मारडाला और हमारी बहन शूर्पणखा के नाक कान काटडाले। इस के सिवाय मेरे बड़े शूरवीर चौदह सहस्र राक्षस मारडाले। उन के मारे जाने का मुझे बड़ा ही शोक है और यह वही रामचन्द्र तौ है, जिस को उस के पिता ने घर से निकाल दिया है। ए मारीच ! रामचन्द्र ने हमारे निर्दोष योद्धाओं को मारा है

और निरपराध हमारी बहन के नाक कान काटे हैं, इस कारण हम उन की सीता नाम भार्या को इस बदले में लिया चाहते हैं। जो इस कार्य्य में आप हमारी सहायता करें तो हम आपका बड़ा धन्यवाद मानेंगे। सत्य तो यह है कि आज तुमसरीखा शूरवीर हम को पृथिवीतल पर नहीं दीख पड़ता । भाई! तुम एक कार्य करो कि सोने के मृग बन, सीता के सामने से निकल, वन में जा चरो । बस जब सीता तुम को देखेगी,तब अवश्य अपने पति या देवर से कहेगी कि इस को पकड़ो और जब वे दोनों भाई तुम्हारे पकड़ने को वन में चले जायंगे, तब हम तुरन्त ही सीता को चुरा लावेंगे । बस रामचन्द्र सीता के वियोग में दुर्बल होजायंगे और हम उन को सहज में जीत लेंगे॥

यह सुन, मारीच का मुख सूख गया और लाली जाती रही, होट चाटने लगा,आंखें खुली की खुली रह गईं । अब रावण की ओर येकटक देख रहा है, पलक तक नहीं मारता, मुख पर मुर्दनी छारही है और विश्वामित्र के आश्रम की लड़ाई आंखों के सामने फिर रही है, जी घबरा रहा है, कुछ करते धरते नहीं बनती । थोड़ी देर में बड़ी सावधानी से ॥

मारीच–ए रावण ! जगत् में खुशामदी लोग बहुत हैं और गुण की बात कि जो प्रत्यक्ष में कड़वी होती है, कहने वाले बहुत ही थोड़े हैं । अब हम ने जान लिया कि बुद्धिमान् लोग तुम्हारे बहुत ही कम और मूर्ख बहुत ही अधिक हैं । शोक तो यह है कि तुम रामचन्द्र जी के बल पौरुष को भलीभांति नहीं जानते और कारण यह है कि कोई सुघड़ दूत तुम्हारे नहीं, जो रामचन्द्र जी का ठीक २ वृत्तान्त तुम से कहे । प्यारे ! तुम्हारे इस क्रोध में कहीं रामचन्द्र क्रोधित हो, सब राक्षसों का नाश न करदें । ए रावण ! कहीं तुम्हारे प्राण लेने ही को तो सीता नहीं हुई और तुम्हारे इस चुराने के ध्यान से कहीं राक्षसों का अन्त तो नहीं आगया । मेरी सम्मति में जो तुम्हारे इस कर्म से भरी पुरी लङ्का का नाश होजायगा । यह देखी हुई बात है कि तुम्हारे सा विचार जब किसी राजा का होता है,तब ही उस का राजपाट जाता रहता है । अरे भाई ! रामचन्द्र के पिता ने रामचन्द्र को निकाला नहीं । अरे ! रामचन्द्र लालची नहीं और न निर्लज्ज हैं । विद्वान् हैं धर्मात्मा हैं, तीव्रबुद्धि हैं, सब के प्यारे हैं। देखो अपने पिता के वचन पूरे करने को सब राजपाट सुख सम्पति छोड़ दण्डकारण्य को चले आये हैं । देखो रामचन्द्र आलसी नहीं हैं और न मूर्ख,न झूंठे,न लवार; वे तो सब के

राजा हैं। अरे! सीता का चुराना तो ऐसा असंभव है जैसा कि सूर्य्य की प्रभा का चुराना। ए रावण! तुझ से रामचन्द्र जी के पैने २ तीर न सहारे जायंगे और न तू उन के सम्मुख खड़ा हो सकेगा। अरे! अपने इस विचार को छोड़, आग में हाथ न डाल। याद रखियो, जो तू सीता को चुरा भी लाया तो जिस समय रामचन्द्र जी के सम्मुख पड़ेगा, जीता न बचेगा। भाई! अब तुम अपनी इस कामना को दूर कर चुपके हो घर में बैठ रहो। रावण! मेरे इस कहने को कहानी मत जानो। जो कुछ मैं कह रहा हूं इस को सत्य ही मानो। मैं तुम को अपना वृत्तान्त सुनाता हूं, उस को ध्यान लगाकर सुन लो और फिर रामचन्द्र जी का बल तेज विचारलो॥

मारीच का वृत्तान्त

मारीच—तुम जानते हो कि हमारे शरीर में दश सहस्र हाथियों का बल है। एक समय हम पृथ्वीतल पर घूमने को निकले और सब ऋषि मुनियों को दुःख देना आरम्भ किया, यहां तक कि बहुत से ऋषि मुनियों को मार २ कर खागये और फिरते २ दण्डकारण्य में विश्वामित्र के आश्रम पर पहुंचे और उन को भी दुःखी करने लगे। विश्वामित्र दुःखी हो, राजा दशरथ के पास पहुंचे और प्रार्थना की कि हम को मारीच बहुत दुःख देता है, आप रामचन्द्र को हमारे साथ कर दें कि वे हमारा यज्ञ पूरा करादें॥

दशरथ—(हाथ जोड़) ऐ मुनिराज! अभी तो रामचन्द्र कुछ कम सोलह वर्ष के हैं और वाणविद्या भी भलीभांति नहीं जानते। ये तौ जाने योग्य नहीं परन्तु मेरी चतुरङ्गिणी सेना ले जाइये, वह राक्षसों को मारडालेगी॥

विश्वामित्र—आप का वचन सत्य है कि आप की सेना ऐसी ही है, परन्तु रामचन्द्र के सिवाय तीनों लोक भी उस राक्षस को नहीं मार सकते। आप अपनी सेना तौ यहीं रहने दें और रामचन्द्र हमें देदें। यह ठीक है कि रामचन्द्र बालक हैं, परन्तु मारीच के मारने को तो पूर्णावस्था हैं। बस अब हम रामचन्द्र को लेकर ही जावेंगे और तुम्हारा कल्याण हो॥

बस राजा ने लाचार हो, रामचन्द्र व लक्ष्मण को साथ कर दिया। उन्हों ने इन को अपने आश्रम पर ला, यज्ञ आरम्भ कर दिया और रामचन्द्र को रक्षा निमित्त खड़ा कर दिया। उस समय रामचन्द्र निपट बालक

बच्चे थे और डाढ़ी मूंछों का तो चिन्ह भी मुख पर न था। बस ये जांघिया पहिने, तीरकमान हाथ में लिये, ज़ुलफ़ें रखाये, सोने की माला गले में डाले, दोयज के से चन्द्रमा दीख रहे थे। इस के थोड़ी देर पीछे हम भी पहुंच गये और रामचन्द्र जी ने हम को देख,तीर कमान तैयार किया। हमने उन को बालक जान, कुछ विचार न किया और उन का अनादर करते हुवे विश्वामित्र की वेदी की ओर चल दिये कि तुरन्त रामचन्द्र जी ने हौले से बेगांसी का काला सा तीर हमारी ओर छोड़ दिया। बस फिर क्या था. तीर लगते ही हम चारसौ कोस पर समुद्र में आगिरे। ए रावण! रामचन्द्र जी ने हमारे मारने की इच्छा नहीं की थी, नहीं तो अवश्य मार डालते। यह उन का अहसान हमारे ऊपर है कि उन्हों ने हम को जान से नहीं मारा और हम बड़ी कठिनता से समुद्र से निकल,तुम्हारी लङ्का में पहुंचे। राजन्! जितने शेष हमारे साथी राक्षस थे, उन सब को रामचन्द्र जी ने मारदिया। अब जो तुम हमारे इस समझाने को न मानोगे और रामचन्द्र से वैर करोगे तो अवश्य मारे जाओगे और अपने प्यारे राक्षसों को भी कष्ट में डालोगे और लङ्का की तो धूल ही उड़ती देखोगे। ए रावण! लङ्का में चारों ओर "हाय दादा! हाय बापू!" मचैगी। सुनो, यह समाचार तो पुराना होगया, अब थोड़े ही दिन की बात सुनिये--अब के हम मृग बन के दण्डकारण्य में गये और तपस्वियों को मार२कर खाने लगे। जो कोई हटाता, उस को धमका देते वा मारडालते। चलते२ हम को रामचन्द्र मुनिभाव में दीख पड़े। वह हम अपना पिछला वैर याद कर बदला लेने के लिये और दो दैत्यों के साथ जो मृग बने हुए थे, सींग झुका उन के मारने को दौड़े। उधर रामचन्द्र जी ने क्रोध कर तीन बाण हमारे ऊपर छोड़ दिये। हम तो बाण बचा गये, पर वे दोनों हमारे साथी मारे गये। इस समय भी हम बड़ी चालों से बचे हैं। एक जगह आड़ में आ, हमने तुरन्त तपस्वी का वेष बना लिया, तब जीते रहे, नहीं तो अवश्य मारे जाते। भाई! इस समय हम को तो यहां भी रामचन्द्र जी चीरवल्कल पहने,तीरकमान और फांसी हाथों में लिये हर वृक्ष के नीचे दीख पड़ते हैं। ए रावण! जब से तुम ने रामचन्द्र का नाम लिया है, तब से चारों ओर राम ही राम दीखते हैं और बुरा हाल हो रहा है। हम भलीभान्ति जानते हैं कि तुम रामचन्द्र जी के जोड़ के नहीं हो। भाई! तुम्हारे जो जी में आवे सो करो, परन्तु जो हमारा कुशल चाहते हो तो हमारे

समीप रामचन्द्र का नाम न लो, नहीं तो हम यहां से भाग जायंगे और तुम्हारे जी में आवे सो करो। परन्तु हम तुम्हारे लिये अपने प्राण न देंगे॥

मारीच के ये वचन रावण ने ऐसे सुने अनसुने कर दिये कि जैसे कोई मृत्यु के समय गुणकारक औषधि स्वीकार न करे और औषधि देने वाले को उलटे अनुचित और कठोर वचन कहने लगे॥

रावण—ए मारीच! यह तुम्हारी बातें शूरवीरों के कहने और सुनने के योग्य नहीं। हमारे लिये तो यह तुम्हारे वचन ऊसर में नाज बोने के तुल्य हैं। भला उस मूर्ख और निर्लज्ज रामचन्द्र के युद्ध में तुम्हारे वचन हम को कुछ हानि पहुंचा सकते हैं? उस की बुद्धिमत्ता तो इस से ही प्रकट है कि स्त्री की बातों में आ, मा बाप को छोड़, वन को चला आया। अब हम उस खर के घातक रामचन्द्र से युद्ध कर, तुम्हारे सामने ही उस की प्यारी स्त्री को छीन लावेंगे। ए मारीच! यह हमने पूरी प्रतिज्ञा कर ली है। इस हमारी प्रतिज्ञा को इन्द्रादि देवता भी नहीं बदल सकते। देखो हमने तुम से सम्मति नहीं ली, सहायता चाही है, परन्तु तुमने सम्मति देनी आरम्भ कर दी। यह बड़ी अनुचित बात है। सुघड़ मन्त्रियों को चाहिये कि हाथ जोड़ बड़ी नम्रता से राजा को सम्मति दें और यह ध्यान रक्खें कि कोई बात राजा के चित्तविरुद्ध मुख से न निकले कि जिस से राजा अप्रसन्न हो जाय। सब राजा अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम और वरुण के से पांच गुण रखते हैं,इसी से उन में अग्नि की सी उष्णता,इन्द्र का सा बल, चन्द्रमा का सा शील, यम का सा दण्ड और वरुण की सी प्रसन्नता सदैव बनी रहती है और इसी से राजा लोग शुश्रूषा और सेवा के योग्य हैं। तुम अपनी मूर्खता से राजनीति के विरुद्ध हमारे सम्मुख ऐसे कठोर और अनुचित वचन कहते हो। ए मारीच! हमने तुम से इस कार्य का लाभ हानि नहीं पूंछा और न यह सम्मति ली कि हम इस को कर सकते हैं वा नहीं। हमने तो तुम से सहायता मांगी थी और वह यह है कि तुम चुनरिया के सुनहरी मृग बन जाओ और रामचन्द्र की कुटी के आगे से निकल, सीता के समीप से चरते और ललचाते चले जाओ। उस समय सीता तुम्हारे पकड़वाने की इच्छा प्रकट करेगी और रामचन्द्र तुम्हारे पकड़ने को चले जायंगे। जब दूर निकल जाओ, तब रामचन्द्र की बोली में "ए सीता! ए लक्ष्मण!" कहना। उस पर लक्ष्मण भी तुम्हारे पीछे २ चले जायंगे। बस फिर हम

सहज में सीता को चुरा लावेंगे । जिस समय तुम यह कार्य कर दोगे उस समय हम तुम को आधा राज्य बांट देंगे । ए भाई ! तुम आगे २ चलो, हम पीछे २ रथ पर चढ़ कर आते हैं, बस पहुंचते ही रामचन्द्र को धोका दे, सीता चुरा, तुम्हारे साथ लङ्का को चले आवेंगे और जो यह हमारा कहना न करोगे तौ हम आज ही तुम को मार डालेंगे । अब सोच लो कि जो तुम रामचन्द्र के पक्ष में रहते हो तौ हम अभी मारे डालते हैं, नहीं तौ आधा राज्य देंगे । अब जो तुम्हारे मन में आवे सो करो ॥

मारीच-(क्रुद्ध हो) ए निशाचर ! कुटुम्ब और परिवार सहित तुम्हारे नाश की रीति तुम को किस पापी ने बतलाई है ? अरे ! वह कौन है ? जो तुम्हारा सुख नहीं देख सकता ? यह तौ हम जानते हैं कि तुम्हारे वैरी तौ अब तुम्हारा कुछ कर ही नहीं सकते । आहा ! उन्हों ने ही यह विचार किया है कि किसी बलवान् के हाथ से तुम मारे जाओ । ए रावण ! तुम को किस शत्रुवत् मित्र ने बहकाया है, जो तुम्हारे ही कर्मों से तुम्हारा नाश कराया चाहता है । ए रावण ! सब मन्त्री लोग वध के योग्य नहीं, हां जो तुम को कुमार्ग चलने से न रोके वही वध के योग्य है । देखो मन्त्री का यह धर्म है कि जब राजा अपनी स्वतन्त्रता से कुमार्ग में चले, तब तुरन्त उस को रोक दे । परन्तु तुम तो कहना ही नहीं मानते । देखो राजा के नाश से अकेला मन्त्री ही हानि नहीं उठाता, वरन समस्त प्रजा नाश को प्राप्त हो जाती है । राजन् ! राजा का काम रक्षा ही करने का है । इस लिये अतितीक्ष्ण स्वभाव और सब का अनभल चाहने वाला राजा राज्य की रक्षा नहीं कर सक्ता और न वह, जो महात्माओं की शुश्रूषा नहीं करता और जो मन्त्री कह सुनकर राजा से कड़ी आज्ञा प्रचलित करा देता है, वह आप भी नाश को प्राप्त होता है और राजा का भी नाश कर देता है । अब हमने जान लिया कि जब तुम से राजा उपस्थित हैं तौ अवश्य विचारे राक्षस मारे जायंगे । ए रावण ! तीक्ष्णस्वभाववाले राजा की प्रजा अपनी वृद्धि नहीं कर सकती, इस से हम को भी यह कष्ट हुवा । अरे ! तुम तौ सेना समेत मारे ही जाओगे और हमारा क्या, यहां न मरे, रामचन्द्र के हाथ से मरे, परन्तु तुम्हारे परिवार की दशा शोचनीय और विचारने के योग्य है । यह याद रक्खो कि हमारे मारे जाने के पीछे तुम या तुम्हारा कुटुम्ब जीता नहीं रह सकता । भला हम तौ वैरी के हाथ से मरने में भी अपनी गति जानते हैं, परन्तु याद रक्खो कि जो

सीता को ले आये तौ न अपने को समझो, न हम को, न लङ्का को, न राक्षसों को। (अच्छा चलो) जो तुम्हारी इच्छा, परन्तु जो हम को रामचन्द्र ने देख लिया तौ बस मरे ही समझना और हमारी तौ क्या रामचन्द्र जी के विरुद्ध हो, कोई भी उन के सामने नहीं जी सकता। याद रक्खो, हम तो तुम से हो ही जायंगे अर्थात् दोनों मारे जायंगे, परन्तु इस राज्य का ओर आगया। तुम्हारी इच्छा, हम लाचार हैं। तुम्हारी प्रसन्नता के लिये जाते हैं, जो हो सो सही॥

रावण-(मारीच को छाती से लगा, लिपटा कर) ये बातें तुम्हारे कहने के योग्य हैं पहिले तौ हमने तुम को सामान्य राक्षस समझा था, अब समझे कि तुम मारीच हो। आओ अब हमारे साथ ही रथ पर चढ़ लो॥

अब रावण और मारीच दोनों रथ पर चढ़, बातें करते चलदिये और चलते २ दण्डकारण्य में पहुंचे। वहां रामचन्द्र जी का आश्रम देख, रथ से उतर पड़े॥

रावण-ए मारीच! देर न करो॥

मारीच-'बहुत अच्छा' कह और बड़ा मनोहर सुनहरी मृग बन, रामचन्द्र जी की कुटी के द्वार पर घूमने लगा। मारीच उस समय ऐसा मनोहर मृग बना हुवा था कि उस को देख, सब का जी ललचता था और बड़ी सुघड़ाई के साथ हौले २ उछलता फिरता था। सुनहरी रङ्ग में रुपहरी टिकली बहुत ही मनोहर ज्ञात होती थीं और उस का मटक २ कर हरी २ घास चरना देखने वालों का मन हरे लेता था। यहां तक कि सीता जी के समीप पहुंच रामचन्द्र जी की कुटी में घुसगया और फिर बाहर निकल आया। अब कभी यहां कूदता है कभी वहां कभी बाहर आता है कभी कुटी में घुस जाता है और यह इच्छा किये है कि जानकी जी एक दृष्टि देखलें, परन्तु उस समय जानकी जी फूल तोड़ने के लिये वृक्षों में विचर रहीं थीं। अचानक दृष्टि उठ गई तौ एक बहुत ही सुन्दर मृग दीख पड़ा। उसे बड़े प्रेम से देखने लगीं और मारीच भी सीता जी को देख कर बड़ी सुघड़ाई से वन में उछलने लगा॥

सीता जी—(बड़े बल से) ए आर्यपुत्र! ए लक्ष्मण! शीघ्र आओ (यह सुन, वे बहुत जल्द आये)

रामचन्द्र जी—सीते! क्या है?

सीता—महाराज! देखो, यह कैसा मनोहर मृग है॥

लक्ष्मण—भाई! हमारी समझ में तो यह मृग नहीं राक्षस है। इस ने इसी रूप से शिकार में बहुतसे राजाओं को मारा होगा। आहा! यह दुष्ट

तो मारीच है, मृग नहीं है। इस रङ्ग का मृग तो हमने आज तक न देखा न सुना और न पुस्तकों में पढ़ा, निस्सन्देह यह मारीच ही है॥

सीता जी—(लक्ष्मण को रोक, कुछ मुस्कराकर, रामचन्द्र जी से) ए आर्यपुत्र! यह मृग तो हम को बड़ा प्यारा ज्ञात होता है, इस को पकड़ लाइये। हमारे खेलने के काम आवेगा। इस पुण्य आश्रम के समीप बहुतसे मृग विचरते फिरते हैं, परन्तु ऐसा मनोहर मृग हमने अब तक नहीं देखा, जो आप को यह जीता ही मिलजाय तो क्या ही बात है। यह बड़े आश्चर्य का पदार्थ सदा नेत्रों के आगे रहकर विस्मय उत्पन्न कराता रहेगा और जब हम अयोध्या पहुंचेंगी, तब भी इस को अपने महलों में रक्खेंगी और भरत जी और हमारी सासू भी इस को बहुत ही प्रिय समझेंगी। जो जीता न मिले तो मृगछाला भी इस की अमूल्य बनेगी। उस पर भी हम आप के साथ बैठेंगी। यह तो हम जानती हैं कि स्त्रियों को अपनी इच्छा के लिये पुरुषों से किसी बात या वस्तु की भिक्षा न करनी चाहिये, परन्तु अपूर्व मृग देख हमारा जी ललचता है और हम इस समय लाचार हैं॥

रामचन्द्र जी–(आप भी मृग पकड़ने की इच्छा प्रकट कर) ए लक्ष्मण! देखो तो यह सीता जी को कैसा प्रिय ज्ञात होता है और इस के अपूर्व होने से ही जान पड़ता है कि यह मृग नहीं है, जब कि पृथिवी पर ऐसे मृग पैदा ही नहीं होते तो यह आया कहां से? देखो जम्भाने के समय इस की जीभ अंगारा सी ज्ञात होती है। सदैव राजा लोग साधारण मृग मारते हैं और उन के चर्मों पर ही संतोष करलेते हैं परन्तु इस की मृगछाला तो बड़ी ही अमूल्य बनेगी और सीता जी की इच्छा भी इस पर हमारे साथ बैठने की है और निस्संदेह यह मृग भी नहीं, राक्षस ही है, परन्तु हमे तो इस को अवश्य मारना है क्योंकि इस ने वन में घूम२ बहुत से मनुष्यों को मारडाला होगा और राजा भी बहुत इस के हाथ से मारे गये होंगे। इस लिये यह अवश्य वध के योग्य है। जैसे उस वातापि को अगस्त जी ने पचा लिया था, वैसे ही आज इस को हम भी मारेंगे। हमारे सम्मुख आजाने से अवश्य मारा जायगा तुम यहां रह कर सीता जी की रक्षा करो और हम जो कुछ किया चाहते हैं, वही मैथिली जी की सम्मति है। जहां तक हम से हो सकेगा, वहां तक तो जीता ही पकड़ेंगे और नहीं तो मारने में तो कुछ शङ्का ही नहीं, परन्तु तुम मृग को ताकते रहना और सीता जी की भी रक्षा करते

रहना। जब तक हम लौट कर न आवें, तुम सीता जी के साथ बड़ी सावधानी से यहीं रहना और यह जटायु भी तुम्हारे पास यहीं रहेंगे, तुम दृढ़ता से यहीं खड़े रहो (और आप धनुष् वाण खड्ग और तूर्ण ले, मारीच के मारने को चल दिये। अब मृत्यु के भय से मारीच कभी छिप जाता है और कभी दीख पड़ता है, परन्तु रामचन्द्र जी उस के ढूंढ़ने में दौड़े फिरते थे। कभी निकट आजाता था और कभी दूर निकल जाता था यहां तक कि उस के पीछे २ बहुत दूर निकल गये और वहां मारीच साधारण मृग बन गया। तब रामचन्द्र जी क्रोध में आ झपट कर एक वृक्ष के नीचे हरीर घास पर खड़े होगये और मारीच भी निकट ही आगया, उस समय रामचन्द्र जी ने पकड़ना चाहा, परन्तु यह फिर भाग गया और दूर जाकर दीख पड़ा। देखते ही तुरन्त रामचन्द्र जी ने ताक कर वाण लगाया कि मारीच के पार होगया। मारीच बहुत ऊंचा उछल पृथ्वी पर गिर पड़ा और मरने से पहिले ही उसने मृग का शरीर छोड़ रामचन्द्र जी की बोली में "हा सीता! हा लक्ष्मण!" कहना आरम्भ कर दिया और आप राक्षस का राक्षस बन गया। उस समय रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी की बातें याद कर सीता जी का विचार किया और शोचा-ओहो! मारीच का छल ठीक हुआ। हमने इसे मार तो लिया परन्तु इस के "हा सीता! हा लक्ष्मण!" कहने से इस समय सीता जी की बड़ी बुरी दशा होगी और लक्ष्मण चाहे सावधान रहें, परन्तु संदेह में तो वे भी पड़ जायंगे और इसी सोच विचार में फूल फल लेते अपनी कुटी को लौट पड़े)॥

रामचन्द्र जी की कुटी

सीता जी-(रामचन्द्र जी की दुःखित वाणी सुन) ए लक्ष्मण! जाकर देखो तो वे कैसे हैं, इस समय हम बड़ी बेचैन हैं और कलेजा धड़क रहा है, क्योंकि ये दुःख के शब्द रामचन्द्र जी के मुख से सुने हैं, तुम उन की रक्षा के योग्य हो, तुरन्त पहुंच कर अपने भाई की रक्षा करो। अवश्य रामचन्द्र जी राक्षसों के फन्दे से घबरा रहे हैं॥

लक्ष्मण-मुझ को रामचन्द्र जी की आज्ञा तुम्हें अकेली छोड़ने की नहीं इस लिये मैं नहीं जा सकता॥

सीता जी-(क्रोध में) ए लक्ष्मण! बड़े शोक की बात है कि तुम अपने भाई के प्यारे बन कर ऐसे समय में यहां बैठे हो। अरे! तुम उन के भ्राता नहीं

वरन घातक हो, जो ऐसे समय में भी पास नहीं जाते। क्या तुम यह चाहते हो कि रामचन्द्र मारे जायं और हम को अपने वश में करलो? अवश्य तुम को हमारा लालच है और हमारे ही लोभ से तुम रामचन्द्र जी के निकट नहीं जाते। अरे तुम को अपने भाई से कुछ भी प्रेम नहीं? इसी कारण तुम यहां सुखपूर्वक बैठे हो। हाय! जब रामचन्द्र जी की यह दशा है, तो हम क्या कर सकती हैं (और रोने लगीं)

लक्ष्मण—ए वैदेहि! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दनुज, राक्षस, इन में से कोई भी श्रीमान् तुम्हारे भर्त्ता रामचन्द्र जी को नहीं मार सकता। भला कोई है जो युद्धस्थान में रामचन्द्र जी की सरवर कर सके? इस लिये तुम को अपने मुख से ऐसे अनुचित वचन न कहने चाहियें। हम किसी भांति विना रामचन्द्र जी के तुम को अकेली नहीं छोड़ सकते और रामचन्द्र जी का बल कोई नहीं रोक सकता। जो तीनों लोक भी इकट्ठे हों तौ भी उन का कुछ नहीं कर सकते। आप दृढ़व्रत धारण कर इस शोक को छोड़ दीजिये और देखती रहिये कि शीघ्र ही उस मृग को मार, रामचन्द्र जी लौट कर आते हैं और यह वाणी रामचन्द्र जी की नहीं है, किसी राक्षस की माया है। तुम तो हमारे पास धरोहर हो, जो रामचन्द्र जी की सौंपी हो, क्योंकि सब राक्षसों से हमारा वैर है। इस लिये तुम को हम अकेली नहीं छोड़ सकते। देखो जब से खर मारा गया है, तब से राक्षस लोग अनेक प्रकार की बाधा दिखलाते हैं। तुम इस वाणी पर ध्यान न दो और दृढ़ता से बैठी रहो॥

जानकी जी-(कुपित हो, लाल नेत्र कर) ए नीच! तुम राक्षसों की रक्षा चाहते हो और बड़े निर्लज्ज हो। तुम को रामचन्द्र जी का कष्ट ही अच्छा जान पड़ता है, इस कारण ऐसा कहते हो। ए लक्ष्मण! तुम बड़े दुष्टस्वभाव हो और इसी कारण अकेले रामचन्द्र जी के साथ आये हो। तुम अवश्य भरत के भेजे हो। तुम्हारी और भरत की इच्छा पूर्ण न होगी। हम तौ कभी रामचन्द्र जी को छोड़, दूसरे पुरुष की इच्छा न करेंगी और तुम्हारे देखते ही देखते अपने प्राण त्याग देंगी। अरे! विना रामचन्द्र जी के तौ हम क्षण भी नहीं जी सकतीं॥

लक्ष्मण- (हाथ जोड़) आप हमारी परम देवता हैं। इस कारण हम उत्तर नहीं दे सकते और तुम्हारा यह कहना भी कुछ अचिन्तनीय नहीं है क्योंकि अन्त को तौ स्त्री ही हो। स्त्रियों के ऐसे स्वभाव होते ही हैं कि वे

धर्म को न जान, अपने चञ्चलस्वभाव से ऐसे ही कठोर वचन कह बैठती हैं। सुनो, यह तुम्हारे कठोरवचन इस समय ताते लोहे का काम कर रहे हैं। हम तौ तुम से नियमानुसार वचन कहते हैं, परन्तु तुम हम से कठोर और अनुचित वचन कहती हो। हम को तुम्हारी इस समझ पर बड़ा शोक आता है कि जब तुम मरने को उतारू हो तौ फिर ऐसा क्यों कहती हो? ख़ैर हमारी निष्ठा तौ यह थी कि रामचन्द्र जी की आज्ञापालन करते और तुम को अकेली छोड़ यहां से न जाते। परन्तु इन कठोर वचनों को न सह, रामचन्द्र जी के पास जाते हैं। अब तुम्हारा कल्याण हो। यह वन तुम्हारी रक्षा करे, परन्तु हमें इस समय बड़े २ कुशकुन दीखपड़ते हैं। परमात्मा करे कि रामचन्द्र जी के साथ लौट कर तुम को कुशलपूर्वक देखें॥

जानकी जी—(रो कर) ए लक्ष्मण ! विना रामचन्द्र जी के हम गोदावरी में डूब जायंगी वा विष खायलेंगी वा अग्नि में पैठ जायंगी वा फांसी डाललेंगी, परन्तु रामचन्द्र जी को छोड़, दूसरे पुरुष को न छूवेंगी (और दोनों हाथों से शिर पीट २ रोने लगीं)

बहनो ! लक्ष्मण जी ने अनेक भांति से सीता जी को समझाया, परन्तु उन्हों ने न माना और अपनी यह ही हठ करती रहीं। लाचार लक्ष्मण जी को क्रोध आगया और रामचन्द्र जी के पास को चल दिये। रावण तो ताक में लगा हुवा ही था। शून्यस्थान देख, दण्डी साधु का वेष बना, झट सीता जी के समीप आ खड़ा हुवा। उस समय रावण सब गेरुवे कपड़े पहने, जटा रखाये, खड़ाओं पर चलता, बांये हाथ में कमण्डलु व लाठी लिये हुवे था॥

रावण–(सीता जी की बड़ाई कर) ए देवि ! तुम यहां बसने के योग्य नहीं, हमारे साथ चलो। यह स्थान तौ राक्षसों के रहने योग्य है। वह पुरुष बड़ा भाग्यवान् है जिस को तुम मिली हो। क्या तुम यहां के सिंहादि मांसाहारी जीवों से भी नहीं डरतीं ? तुम कौन हो? और किस की स्त्री हो ? और किस ने अकेली दण्डकारण्य में भेजी हो ? और किस लिये यहां अकेली रहती हो ?॥

सीता जी–(ब्राह्मण जान, अतिथि समझ, बैठने को आसन और हाथ पैर धोने को जल दे, खाने के लिये फल मूल सामने रख) महाराज ! आइये, कृपा कीजिये॥

रावण—(मन में शोच, इस ने तौ हमारा बड़ा सत्कार किया, इस को ज़बरदस्ती ले चलना चाहिये प्रकट में) बहुत अच्छा॥

जानकी जी–(इस का विचार पहचान रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को वन में न देख, ब्राह्मण समझ, जी में विचार, जो इस का उत्तर न दिया तौ शाप देदेगा और शोच समझ) ए महात्मा ! हम राजा जनक जी की तौ कन्या हैं और सीता हमारा नाम है। रामचन्द्र जी हमारे पति हैं। विवाह के पीछे बारह वर्ष तक हम अयोध्यापुरी में सुखपूर्वक रहीं। तेरहवें वर्ष के आदि में जब राजा दशरथ जी ने रामचन्द्र जी को राज्य देने का प्रबन्ध किया उस समय हमारी सासू केकयी ने अपने दोनों वरदान महाराजा से मांगे। एक से तौ हमारे पति को वनवास कराया और दूसरे से अपने बेटे भरत को राज्य दिलाया। वनवास के समय रामचन्द्र जी की अवस्था सत्ताईस २७ वर्ष की और हमारी अठारह १८ वर्ष की थी। यह महात्मा बड़े धर्मात्मा हैं। वहां से चौदह वर्ष के लिये वन को आये हैं। झूठ कभी नहीं बोलते। दान देते हैं, लेते नहीं और साथ में उन के सौतेले भाई लक्ष्मण हैं, जो सदैव उन की रक्षा करते हैं। वह बड़े योद्धा हैं और शूरवीर हैं। अपने समीप कभी वैरी को देख ही नहीं सकते। तुरन्त मार डालते हैं। इस रीति से हम आई हैं और अपने पति के साथ निर्भय वन में विचरती हैं। तुम एक मुहूर्त ठहरो और यह फल मूल भोजन करो। अभी २ रामचन्द्र जी राक्षसों को भगा और तपस्वियों के भोजन के योग्य फलादि ले, यहां आते हैं। वह तुम्हारी बड़ी सुश्रूषा करेंगे। उन के आने तक यहीं विराजिये और आप अपना नाम तथा गोत्र और कुल ठीक २ बतलाइये और यह भी कहिये कि अकेले दण्डकारण्य में क्यों फिरते हो ?

रावण–ए सीता ! जिस के भय से देवता, असुर और मनुष्य सब भयभीत हैं, वही राक्षसों के राजा रावण हम हैं। अब हम तुम को लङ्का को ले जावेंगे और सब रानियों में पटरानी बनावेंगे। दक्षिण समुद्र के बीच त्रिकूट पर्वत पर लङ्का नाम हमारी महापुरी है। अब तुम हमारे साथ वहां रहोगी और वनवास छोड़ हमारी स्त्री बनोगी। ए सीता ! उत्तम २ वस्त्राभूषण के सिवाय पांच सहस्र तौ तुम्हारी दासी होंगी॥

सीता जी–(क्रुद्ध हो) ए दुष्ट ! हम महाराजा रामचन्द्र जी की पतिव्रता स्त्री हैं। भला उन सिंह की स्त्री को तुम गीदड़ ताकते हो। क्या तुम्हारा काल निकट आ पहुंचा ? अरे ! जैसे सूर्य की प्रभा को कोई नहीं छू सकता,

ऐसे ही हम को तुम भी नहीं छू सकते। अरे! हमारी इच्छा करना तौ ऐसी असम्भव बात है, जैसे कोई दरिद्री अपने गृह में सौने का वृक्ष देखना चाहे। अरे! तुम भूखे सिंह के मुख से मृग और विषधर सर्प के मुख से दांत निकालने की इच्छा करते हो। अरे! तुम पहाड़ को फूंक से उड़ाना चाहते हो। अरे! तुम तौ सुई से आंख खुजाते हो जो हमारी ओर कुदृष्टि से देखते हो। अरे! तुम गले में पत्थर बांध, समुद्र उतरा चाहते हो और सूर्य चन्द्रमा दोनों को हाथ से पकड़ा चाहते हो। अरे! तुम तौ अपने पल्ले में अग्नि बांधते हो, जो हम को जबरदस्ती ले जाया चाहते हो। जितना भेद सिंह और गीदड़ में, समुद्र और पोखरा में, सौने और लोह में, चन्दन और कीकर में, हाथी और बिलाव में, गरुड़ और काक में, मुरीला और जलमुर्गी में, हंस और गिद्ध में हैं, उतना ही भेद रामचन्द्र जी में और तुझ में है। ए मूर्ख! जब तक धनुष्बाण हाथ में लिये रामचन्द्र जी पृथिवी पर विद्यमान हैं, तब तक भला तुम हम को लेजा सकते हो? देखो जैसे घी में पड़ जाने से मक्खी आप ही मर जाती है और घी की कुछ हानि नहीं करती, वही मक्खी की सी गति तुम्हारी होगी (और भय से कांपने लगीं)

रावण-(क्रोध में आ) ए सीते! हम कुवेर के सौतेले भाई हैं। रावण हमारा नाम है। हमारे दश शिर और बीस हाथ हैं। बल का तौ हमारे कुछ पार ही नहीं, औरों की तौ क्या गिनती, देवता भी हम से ऐसे भागते हैं जैसे मृत्यु से मनुष्य। जब हम ने युद्धस्थान में खड़े हो, कुवेर ही को जीत लिया और वे हमारे भय से अपना सब धन धान्य लङ्कापुरीसहित छोड़ कैलास को चले गये तौ औरों की क्या गिनती। देखो उन से ही लिया हुआ एक पुष्पक नाम विमान हमारे घर धरा है, जिस पर चढ़, जहां चाहते हैं तुरन्त चले जाते हैं। ए सीते! जब कभी हम क्रोध करते हैं तौ इन्द्र भी हमारे सामने से भाग जाते हैं। जहां हम बैठते हैं, वहां पवन भी हौले २ बहता है। बे हमारी आज्ञा के पत्ता भी नहीं हिल सकता। अमरापुरी से भी बड़ी हमारी लङ्कापुरी है, जिस में सौने के परकोटा और समुद्र की खाई है। उस में रत्नों के तौ बंदरवाल बंधे हैं। वहां नित्य आनन्द के बाजे बजा करते हैं। बाग भी बड़े २ लगे हैं। जहां सदैव पुष्प खिले रहते हैं। जिस समय वहां तुम हमारे साथ विचरोगी, उस समय तुम रामचन्द्र को भूल जाओगी। कभी याद भी न करोगी। तुम ऐसे दुर्बल रामचन्द्र के सङ्ग यहां वन में

रह, क्या करोगी ? उठो अब हम को पति बनाओ नाह न करो। जो हमारा निरादर करोगी तो पछताओगी। जैसे वह उर्वशी राजा के लात मार पछताई थी। देखो युद्धस्थान में रामचन्द्र हमारी एक अङ्गुली के बराबर भी नहीं। यह तुम्हारे सौभाग्य की बात है कि हम यहां आ गये॥

जानकी जी—(कुपित हो) बड़े शोक की बात है कि कुबेर से देवता के तौ भ्राता और परस्त्री की ओर मन चलाओ। जो तुम्हारी ऐसी मति है तौ अवश्य सब राक्षसों सहित मारे जाओगे और लङ्कापुरी तो नाश को प्राप्त हो ही जायगी। यह तो संभव है कि इन्द्र की स्त्री का चुराने वाला बच जाय, परन्तु श्री रामचन्द्र जी की रानी को ज़बरदस्ती से घर ले जाने वाला नहीं बच सकता। अवश्य मारा जायगा। और यह भी सम्भव है कि इन्द्र के समीप से इन्द्राणी का छीन ले जाने वाला जीता रहे,परन्तु रामचन्द्र जी के पीछे भी हमारा ले जाने वाला अमृत पी कर भी नहीं जी सकता॥

रावण—(क्रोध में आ, हाथ मींज, अपना शरीर बढ़ा) ए जानकि! देखो हम कितने बड़े डौल वाले हैं। देखो आकाश में खड़े हो अपने हाथों से पृथ्वी उठा सकते हैं और एक श्वास से समुद्र को पी सकते हैं। युद्धस्थान में मृत्यु को भी मार सकते हैं और सूर्य को अपने बाणों से टुकड़े २ कर पृथ्वी पर गिरा सकते हैं। ए सीता! जो तुम तीनों लोक में महा उत्तम पति चाहती हो तो हमारे साथ चल, लङ्का में बसो। रामचन्द्र के साथ क्या लोगी। जो तुम अपनी मूर्खता से ऐसे रामचन्द्र को, जो घर से निकाल दिया गया और जङ्गल में मारा २ फिरता है,उत्तम जानती हो तो बड़ी मूर्खा हो॥

रावण की यह दशा देख, सीता जी मूर्छित हो गईं और रावण ने बांए हाथ से बाल और दाहने से पैर पकड़ सीता जी को रथ में डाल दिया जब मूर्छा जागी तौ "हाय राम २" कह,रामचन्द्र जी को पुकारने लगीं और रावण ने रथ भगा दिया। उस समय जानकी जी बड़े शब्द से कहने लगीं-

चौपाई

हा लक्ष्मण गुरुचित्तप्रसादक। महाबाहु संग्राम सुनादक॥
कामरूप राक्षस हरि मोही। लिये जात का ख़बर न तोही॥
जीवत सुख धन धर्महि लागी। तजहु राम वन में अनुरागी॥
लिये अधर्म हेतु मोहि जाता। राक्षस देखहु लक्ष्मण भ्राता॥

ए परमात्मा ! आप सब को सीधे रास्ते में चलाने वाले हैं, इस पापी रावण को क्यों नहीं सीधे रास्ते में चलाते । आप तो दीननाथ हैं मुझ दीन की रक्षा क्यों नहीं करते । ए परमपिता ! मेरी रक्षा कीजिये । मुझे इस दुष्ट के पञ्जे से छुटाइये । ठीक है कि पापी को पाप का बदला तुरन्त नहीं मिलता। जैसे कि नाज बोते ही तुरन्त नहीं पक जाता, अपने समय पर ही पकता है॥

सीता जी—ए रावण ! तुम्हारा काल सिर पर खेल रहा है, जो तुम ने मरने का यह कार्य किया है। इस कारण शीघ्र ही रामचन्द्र जी के हाथ से मारे जाओगे । बड़े शोक का समय है कि महात्मा रामचन्द्र जी की स्त्री हम हरी जाती हैं । ए वन ! हम तुझ को भी प्रणाम करती हैं, तुम शीघ्र रामचन्द्र जी से कह देना कि सीता को रावण हर ले गया। ए माल्यवान् पर्वत ! तुम भी कह देना । ए गोदावरि ! तुम ही शीघ्र रामचन्द्र जी से कह देना कि रावण सीता को हर ले गया । हम सब देवताओं को प्रणाम कर कहती हैं कि सब कह देना कि रावण सीता को हर ले गया । सब पशु पक्षियों से हम हाथ जोड़ कहती हैं कि तुम अवश्य कह देना कि रावण सीता को ज़बरदस्ती ले गया । क्योंकि जैसे ही रामचन्द्र सुनेंगे, वैसे ही हम को फेर लावेंगे (और रोती हुई सीता जी चली जाती थीं कि एक वृक्ष पर बैठा हुआ गिद्ध दीख पड़ा । उसे देख) ए जटायु जी ! यह पापी राक्षस आज अनाथ समझ हम को हरे लिये जाता है । बड़े शोक का समय है कि इस के पास सब लड़ाई के आयुध हैं और इस कारण आप हम को इस से नहीं छीन सकते, परन्तु रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी से हमारे ले जाने का व्यौरेवार समाचार कह देना ॥

जटायु—(उठ और रावण को रथ पर सीता जी को बिठाये लिये जाता देख, बड़े शब्द से ललकार) ए दशानन ! तुम तो सब धर्म कर्म जानते हो । भाई ! इस समय ऐसा अनुचित कर्म न करो । और समय में तो तुम अपने स्वभावानुसार करते ही रहे हो । परन्तु इस समय ऐसा न करो । हमारा कहना मान जाओ । हम भी बड़े पराक्रमी हैं, जटायु हमारा नाम है और जगत् भर के गिद्धों के राजा हैं । देखो ये इन्द्र और वरुण से बलवान्, जगत् के सुख पहुंचाने वाले महाराजा दशरथ जी के पुत्र चौदह लोक के नाथ रामचन्द्र जी की पत्नी हैं । भला तुम इतने भारी राजा होकर पराई स्त्री को कैसे छूते हो । अरे ! राजों का तो यह धर्म है कि सब देश देशान्तर की रक्षा करें और दूसरे राजाओं की रानियों की तो अवश्य रक्षा करें । ए रावण !

ऐसा नीच कर्म न करो। वीर को चाहिये कि जिस कर्म में निन्दा हो उस को न करे। आप को चाहिये कि जैसे अपनी स्त्रियों की रक्षा परपुरुषों से कराना चाहते हो, वैसे ही परस्त्रियों की रक्षा खुद करो। ए पुलस्त्यनन्दन! अर्थ, धर्म, काम, जब शास्त्र से समझ में नहीं आता तो प्रजा लोग राजा की रीति पर चलते हैं। ए राक्षसराज! हम नहीं जानते कि तुम ऐसे पापी को राज्य कैसे मिलगया। ए रावण! जब रामचन्द्र तुम्हारी लङ्का वा तुम्हारे राज्य में कुछ बखेड़ा नहीं करते तो तुम उन से क्यों बखेड़ा करते हो? जो तुम यह कहो कि शूर्पणखा की सहायता के हेतु खर उन के समीप आया, उन्हों ने मारडाला, उस के बदले में हम सीता जी को लिये जाते हैं, तो तुम ही बतलाओ कि इस में उन का क्या दोष है? कुछ वे तो शूर्पणखा को बुलाने गये ही न थे और आने पर भी उन्होंने उस से कुछ नहीं कहा, जब शूर्पणखा ने उन से विवाह करने की इच्छा प्रकट की और उन्होंने नाह की और नाह करने पर शूर्पणखा सीता के खाने को दौड़ी, तब ही तो उन्हों ने नाक कान काट लिये और उसी की सहायता को खर चढ़ आया कि वह भी मारा गया। यह तो सदा का नियम है कि जब कोई बे सोचे समझे किसी पर चढ़ जाता है, वह तो मारा ही जाता है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा, उत्तम यही है कि तुम जल्द जानकी जी को छोड़दो कि रामचन्द्र जी तुम्हारा वध न करें। ए रावण! तुम विषधर सर्प को गले में डाल, यह विचार नहीं करते कि यह मृत्यु की फांसी है। ए भाई! इतना बोझ उठाना चाहिये कि जिस से मनुष्य दब न जाय और इतना भोजन करना चाहिये कि जो नीरोगता से पच जाय। जिस कर्म से न धर्म हो, न कीर्त्ति और न लाभ, उलटा और शरीर को दुःख ही हो, उस को कौन बुद्धिमान् करेगा। ए रावण! इस समय साठ सहस्र वर्ष की तो हमारी आयु है। बूढ़े हो ही गये हैं और तुम तो अभी युवा हो और बहुत से शस्त्र तुम्हारे पास हैं। रथ पर भी चढ़ रहे हो, परन्तु हमारे समीप से जानकी जी को नहीं लेजा सकते। असम्भव है कि हमारे सम्मुख से तुम वैदेही जी को लेजाओ। जैसे कि न्यायशास्त्र के झूंठे मूंठे वचनों से कोई वेद विद्या को नहीं बिगाड़ सक्ता, वैसे ही तुम भी सीता जी को हानि नहीं पहुंचा सकते। ए रावण! जो कुछ भी वीरता रखते हो तो एक मुहूर्त्त हम से युद्ध करलो, और देखलो, जैसे तुम्हारा भाई खर मृतक हो भूमि पर सोया है, वैसे ही तुम को भी सुलाते हैं या नहीं और श्रीरामचन्द्र जी ने तो सहस्रों दैत्य मारडाले हैं, वे तो तुम को मार ही

डालेंगे। ए नीच ! हम शोक करते हैं कि वे दोनों राजकुमार इस समय दूर चले गये, नहीं तो तुम इसी समय उन के हाथ से मारे जाते। अच्छा उन के होने पर तो जो होता सो होता, परन्तु इतना तो अब भी होगा कि जब तक हमारे शरीर में बल विद्यमान है, तब तक तुम हमारे समीप से सीता जी को नहीं लेजा सकते। हमारा तो यह धर्म है कि अपने जीते जी रामचन्द्र और सीता का कार्य करते रहें। ए रावण ! दो घड़ी हमारे सामने खड़े रहो और देखो जैसे वृक्ष से फल तोड़लिया जाता है वैसे ही तुम को भी हम रथ से पृथ्वी पर गिराय देते हैं (यह सुन, क्रोध में आ, शस्त्र ले, रावण जटायु की ओर दौड़ा और दोनों का बड़ाभारी युद्ध हुआ, जैसा कि आकाश में बादलों का होता है, पहिले तो दोनों का मल्ल युद्ध हुआ, इस में तो दोनों बराबर रहे, पश्चात् रावण ने जटायु पर तीर वर्षाने आरम्भ किये और जटायु ने पङ्खों और चोंच से रावण को घायल कर सहस्त्रों घाव रावण के शरीर में करदिये। रावण के तीरों से जटायु का भी सब शरीर घायल होगया। इधर से रावण तीर खेंच रहा है, उधर से जटायु चोंच मार रहा है। यहां तक की जटायु ने रावण का कवच व छत्र तोड़ रथ के गधे मार, रथ के टुकड़े २ कर, रथवान् का सिर भी अपनी चोंच से काट डाला और रावण भी मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा। जब मूर्छा जागी तो सीता जी को उठा, बग़ल में दबाय, चलदिया। अब रावण के पास केवल एक खड्ग बाक़ी है। शस्त्र सब टूट चुके)

जटायु—(बड़े ज़ोर से कूद, रावण को रोक) ए रावण ! श्रीमान् रामचन्द्र जी की स्त्री को तुम लिये जाते हो। हम जानते हैं कि इस से तुम्हारा मनोरथ सब राक्षसों के मरवाने का है वा कुछ और हो, जो यह जानकी जी के हरने का विषभरा कटोरा तुम अपने इष्ट मित्र बान्धव मन्त्री सेना सहित पीते हो। इस का फल यही होगा कि जैसे विषपान करने वाले मर ही जाते हैं, वैसे ही तुम भी सपरिवार मारे जाओगे। अब तुम काल फांसी में बंध रहे हो और मछली की नाईं, जो कांटे में लगे हुवे मांस को खाकर मर ही जाती है, निस्सन्देह मर ही जाओगे। अरे ! जैसा तुम्भ डरपोक ने यह चोरों का कर्म किया, ऐसा कोई शूरवीर करता है ? जो अपने को शूर मानते हो तो मेरे समीप खड़े रहो। जाते कहां हो, देखो जैसे तुम्हारा भाई

खर पृथ्वी में सोया वैसे ही तुम को भी पृथ्वी पर न सुलाऊं तो जब ही कहना। ए पापी ! कर्मों का बदला तो ब्रह्मा और विष्णु भी नहीं मिटा सके फिर तेरी तो क्या गिनती (और फर फरा कर रावण की कमर से लिपट, चोंच पञ्जों से घायल करना आरम्भ कर, पञ्जों से समस्त उस की डाढ़ी मूंछ और सिर के बाल उखाड़ लिये, और ऐसी फुरती कर रहे थे कि रावण को किसी ओर से इन पर वार करने का अवकाश नहीं मिलता था। अन्त में रावण ने घबरा, क्रोध में आ, बांयें हाथ में सीता जी को पकड़, बड़े ज़ोर से एक लात जटायु के मारी। जटायु ने उस लात को बचा, उस के दश दहने हाथ तोड़ डाले। अब रावण क्रोध में आ जटायु जी को मुक्के और लातों से मारने लगा)

श्रोतृगण ! रावण और जटायु का दो घड़ी तक महाघोर युद्ध हुआ और जटायु चोंच पञ्जों और बग़ल में घाव लगने से मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। जिस समय जटायु पृथ्वी पर गिर, तड़फने लगा उस समय सीता जी उस के कष्ट को न सह, जटायु की ओर दौड़ीं, जैसे कोई कष्ट में अपने बांधव के पास जाता है और जाकर जटायु से लिपट, रो २ कर कहने लगीं— ए राम ! कहां हो। हमारी रक्षा के लिये तो इन पक्षिराज ने भी अपने प्राण झोंक दिये। हाय ! हम बड़ी अभागन हैं कि इस रावण ने इन को भी मार डाला कि यह बेचारे पृथ्वी पर पड़े तड़फ रहे हैं॥

कुण्डली

पक्षी कहे लखि जानकी, रावण मर्द्दित गात ॥ भूमि विलोटत धूलियुत, मुख नहिं आवत बात। मुख नहिं आवत बात जनकतनया कर रोदन ॥ पकरि जटायुहि बहुरि मिली तजि सकल प्रमोदन ॥ यहि विध वारहि वार देखि पक्षी निज रक्षी ॥ जनकसुता बिललात लखत पुनि २ सो पक्षी ॥

सीता जी—ए राम ! ए लक्ष्मण ! हमारी रक्षा करो। हम तुम्हारी प्यारी स्त्री बड़ी बेचैन हैं। जैसे निकट से हमारी बातें सुन लिया करते थे, वैसे ही अब दूर से भी सुन लीजिये॥

रावण—(रोती, जटायु से लिपटी सीता जी को देख,पकड़ने को दौड़) इसे छोड़ो २ और " हाय राम ! हाय लक्ष्मण ! " कहती जानकी जी को पकड़ आकाश को ले चढ़ा । इस समय जानकी जी का मुख रावण के साथ विना रामचन्द्र जी के उस कष्ट में श्वेत हो गया,लाली जाती रही और ऐसा बुरा जान पड़ता था जैसे नीले बादलों में चन्द्रमा कभी२ बुरा जान पड़ता है । कुछ तो रावण के भय से मुख की कांति जाती रही और कुछ रावण भी उस समय बड़े वेग से जाता था और पवन भी बड़े वेग से बह रहा था । उस पवन से जो वृक्ष नीचे को झुकते थे, वे जानकी जी से ऐसा कहते जानपड़ते थे कि तुम डरो मत । जानकी जी के हरे जाने के समय सब पशु घबराये हुये दौड़ रहे थे और पर्वत भी रोते हुवे जान पड़ते थे । सीता जी को हरी हुई देख धूप भी कुछ मद्धी हो गई और अन्धकार सा छा गया। कोई २ कहता था कि भाई ! जगत् में अब धर्म नहीं रहा, जो धर्म रहता तो राजा रामचन्द्र जी की स्त्री को रावण कैसे हर ले जाता और जीव जन्तु भी रो रहे थे। जानकी जी भी "हा राम ! २ हा लक्ष्मण" कह २ रोती जा रही थीं और रावण के भय से उन का रङ्ग भी फीका पड़ गया था ॥

सीता जी—(रावण को आकाश में उड़ाये लिये जाता देख, क्रोध में हो) ए नीच ! तू हम अकेली को वन में से चोर की नाईं चुराये लिये जाता है और इस नीचकर्म से लज्जित नहीं होता । ए दुष्ट ! अब जाना गया कि वह मृग भी तूने अपनी माया का बना, हमारे पति को हम से अलग कर दिया । अरे ! हमारे सुसर के मित्र जटायु को भी तैने मार डाला और हम को भी चुरा ले चला । ए राक्षस ! तू ने तो अपना नाम बड़ा भारी बतलाया था । परन्तु रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी के सामने से जीत कर क्यों नहीं लाया । इस से प्रकट होता है कि तू चोर है,राजा नहीं। ए नीच ! अकेली वन में से पराई स्त्री को चुरा, क्यों लज्जित नहीं होता ? अरे ! तू तो अपनी बड़ी प्रशंसा कर कहता था कि मेरे तुल्य जगत् में कोई नहीं,परन्तु तू ने तो ऐसा नीच कर्म किया कि जिस से सब लोक में तेरी अपकीर्त्ति होगी । ए रावण ! तेरे ऐसा कर्म करने पर धिक्कार है । अरे ! तू तो बड़ी ही जल्दी से भागा जाता है । हमने जान लिया कि तुझे रामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी के समीप दो घड़ी भी ठहरना कठिन होगा और उन के देखते ही देखते अपनी सेनासहित मारा जायगा । ए रावण ! तू उन दोनों

भाइयों के बाणों को न सह सकेगा। जैसे कि सिंह की चोट को मृगगण नहीं सह सकते। ए रावण! अभी कुछ नहीं बिगड़ा, जो अपना कुशल चाहता है तो चुपके से हम को छोड़ दे, नहीं तो जब हमारे स्वामी रामचन्द्र जी सुनेंगे, ज़रूर उपाय कर अपने भ्राता के साथ यहीं पहुंचेंगे। और जो तू हम को नहीं छोड़ता और लिये ही जाता है, तो अपनी मृत्यु जान। अरे! जिस कारण तू अपने गृह को लिये जाता है, वह कामना तेरी पूरी न होगी क्योंकि सब देवताओं से उत्तम अपने स्वामी के देखे बिना हम वैरी के गृह में बहुत दिनों तक नहीं जी सकतीं। अरे! अब हम को जान पड़ा कि तुम को अपना लाभ हानि भी नहीं सूझता। जैसे मृत्यु के समय उलटा ही उलटा दिखाई देता है, वही गति तुम्हारी है। अरे! तुम ऐसे नीच कर्म करने से भी नहीं डरते, इस से जान पड़ता है कि तुम कालफांसी में बंधे हो। अब तुम जानलो कि महात्मा रामचन्द्र जी के साथ ऐसा बुरा कर्म करने से जीते नहीं रह सकते। जैसे कि विष पी कर कोई मनुष्य बहुत काल तक नहीं जी सकता। इन सब बातों से जान पड़ता है कि तुम काल के वश हो गये हो और महात्मा रामचन्द्र जी हमारे भर्त्ता के समीप तुम युद्ध में खड़े भी नहीं हो सकते। अरे! उन को लक्ष्मण जी की भी आवश्यकता न होगी। आप अकेले ही तुम को मार डालेंगे। ए दुष्ट! जिन रामचन्द्र जी ने अकेले ही अकेले डेढ़ घड़ी में चौदह सहस्त्र राक्षसों को मार डाला, वह महाशूर वीर श्रीरामचन्द्र जी अपनी प्यारी स्त्री के हरने वाले तुम को अपने तीखे बाणों से कैसे न मार डालेंगे? अवश्यमेव मार डालेंगे। (ऐसे ही और भी कठोर वचन जानकी जी बड़े दुःख से रो २ कर कह रही थीं)

दोहा

इमि भाषत विलपति करुण, सीतहि राक्षस नीच।
हर ले गयो कराल नहिं, गिनत आपनी मीच ॥१॥

बड़े शोक का समय है कि चलते में सीता जी ने कोई ऐसा मनुष्य न देखा कि जो उन को रक्षा करता। थोड़ी दूर चल कर दृष्टि पड़ा कि एक पर्वत की चोटी पर बड़े मोहनीमूर्त्ति पांच वानर बैठे हैं, तुरन्त अपना चीर और भूषण इस विचार से उन के पास फेंक दिये कि जब रामचन्द्र जी हम को ढूंढ़ते २ यहां आवेंगे तो इन वानरों से हमारी सुध उन को मिल

जायगी और वस्त्राभूषण से पहचान भी लेंगे। रावण ने यह प्रबन्ध करते हुवे सीता जी को जल्दी चलने के कारण नहीं देखा, परन्तु उन बन्दरों ने सीता जी के रोदन करने का शब्द सुन, भलीभान्ति उन को देख लिया। और रावण प्रसन्नतापूर्वक पम्पापुरी को लांघ, रोती हुई सीता जी को ले, बड़ी शीघ्रता से लङ्कापुरी को चला गया। जैसे धनुष् से छूटा हुआ बाण बड़े वेग से जाता है, वैसे ही रावण गया। जिस समय रावण समुद्र पार उतरने लगा उस समय सब जीव जन्तु सीता जी के हरने का शोक कर रहे थे। और ऋषि मुनि व पक्षी आदि कह रहे थे कि अब रावण न बचेगा। रावण सीताजी को ले, लङ्का में पहुंचा, उस समय सीता जी रावण का काल जान पड़ती थीं। अब सीता जी को रावण अपने महलों में ले पहुंचा॥

रावण—(एक महल में सीता जी को बिठाल, बहुत सी कुरूप राक्षसियों से) इस भांति इन की रक्षा करो कि बिना हमारी आज्ञा के कोई पुरुष वा स्त्री इन को न देख सके और वस्त्राभूषण आदि जिस वस्तु की इच्छा करें, इन को दे दिया करो। जो तुम में से किसी ने सीता जी को थोड़ा भी कष्ट दिया तो मैं उस को जीता न छोड़ूंगा। यह कह, महल से बाहर आ, कुशलपूर्वक सीता जी को परम आनन्द से राक्षसियों को सौंप, रामचन्द्र जी से वैर कर बड़ा प्रसन्न हो, घर में बैठ रहा और फिर काम के वश हो महलों में बड़ी शीघ्रता से सीता जी के देखने को गया और देखा कि राक्षसियों के बीच में दुःखित सीता जी बैठी हैं और आंखों से आंसू वह रहे हैं और बड़ी धाड़ें मार रहीं हैं। ऐसी दशा में भी रावण ने उस के पास जा, अपना घर घुमा कर दिखाया। सत्य तो यह है कि वह महल बड़ी अच्छी चित्रकारी और अमूल्य रत्नों से बनाया और दिखाते २ उन को छत पर चढ़ा लेगया। वहां पर भी वही चित्रकारी के काम बड़ी प्रशंसा कर २ दिखलाये। जहां तक कि महलों में जो कुंआ ताल बावरी फुलवाड़ी आदि थीं उन सब महलों को दिखला, ललचाने के लिये पापी रावण बोला॥

रावण—ए सीता! बत्तीस करोड़ राक्षस युवावस्थ यहां रहते हैं, जिन के हम राजा हैं। बूढ़े और बच्चे उन में नहीं गिनाये। एक हज़ार तो मुझ अकेले के सेवक हैं। सीता! तुम तो हम को प्राणों से भी अधिक प्यारी हो, इस कारण हम यह प्राण और धन तुम्हारे ऊपर न्योछावर कर तुम को पटरानी बनावेंगे। अब तुम हमारे ऊपर कृपा कर इस प्रार्थना को

स्वीकार करो। देखो यह सौ योजन लंका समुद्र में बनाई गई है। इस में इन्द्रादि देवता वा और कोई भी किसी प्रकार का कष्ट तुम को नहीं दे सकते और देवताओं में न यक्षों में न गन्धर्वों में न ऋषियों में न नागों में न किन्नरों में और न किसी लोक में कोई जन हमारे तुल्य है। भला उस कङ्गाल, तपस्वी, नङ्गे पांव, दुर्बल, विद्याहीन रामचन्द्र को लेकर क्या करोगी? ए सीता! तुम हम को स्वीकार करो। हम तुम्हारे योग्य हैं। अब तुम रामचन्द्र को भूलो। रामचन्द्र तो क्या, उस का तो ध्यान भी यहां तक नहीं आसक्ता। जैसे कोई चलते पवन को नहीं रोक सक्ता और जलते अग्नि की लपट नहीं छू सक्ता, इसी प्रकार तुम को भी यहां से कोई नहीं लेजा सकता। अब तो यही उचित है कि तुम लङ्का का राज्य करो और राजतिलक का सुख हमारे साथ भोगो। तुम्हारे पिछले पाप तो बनवास करने से छूट गये और साथ ही दुःख के दिन बीत, सुख के दिन आगये। तुमने जो पहिले पुण्य किया है उस का फल भोगो। यहां उत्तम २ आभूषण वस्त्र चन्दनादि सुगन्धि उपस्थित हैं, उन को वर्त्तो। देखो मनोवेग विमान किसी के नहीं। जो इच्छानुसार तुरन्त ही जहां चाहो, पहुंचा देता है उस पर चढ़ सब स्थानों की सैर करो देखो इस दण्डकारण्य में तुमने अपने को कलकान करलिया। अब इस शोक को छोड़ आनन्द मनाओ॥

सीता जी–(यह सुन रोने लगीं)

रावण–ए सीता! तुम्हारी यह लज्जा कष्टदायक है, इस से यहां कुछ नहीं हो सक्ता। ऐसी लज्जा तो ऋषियों को चाहिये। भला हमारे लज्जा का क्या काम? हम अपने दसों सीस तुम्हारे चरणों पर नवाते हैं। हम से प्रसन्न हो। हम तुम्हारे दास और सेवक हैं। तुम अपने भाग्य समझो जो हमने तुम से ये बातें कहीं। यह बातें हमने तुम से अपने भाई खर के शोक में कहीं। नहीं तो स्त्री के चरण तो कहां, रावण का सीस तो कभी किसी देवता के समीप भी नहीं झुका॥

सीता जी–(निर्भय हो, तिनका आड़ में खड़ा कर) ए रावण! धर्म के पुञ्ज महात्मा और बलवान् महाराज दशरथ जी हुये, जिन के पुत्र रामचन्द्र जी हैं। ये भी धर्मात्मा और तीनों लोक में विख्यात हैं, जो कि हमारे देवता और पति हैं। यह इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न हुवे और अपने भाई लक्ष्मण सहित आकर तुम्हारे प्राण लेंगे। जो तुम हम को उन के समीप से बल करके लाते, तो तुम भी वहीं अपने भाई खर के बराबर पृथ्वी पर

सोते और लङ्का में जितने राक्षस तुम ने गिनाये हैं, उन को रामचन्द्र जी के सम्मुख वह गति है जो गरुड़ के समीप कीड़ों की या दीपक के सम्मुख पतङ्गों की । रामचन्द्र जी के बाण तुम्हारे वीरों को काट २ ऐसे पृथ्वी पर गिरादेंगे जैसे कि गङ्गा जी की लहर अपने किनारों को काट २ गिरा देती है । तुम जो कहते हो कि देवता, असुर सब हम से डरते हैं और सब को हमने हराया है । यह ठीक हो, परन्तु अब की वेर तो ऐसे घर नौता दिया है कि जहां से बचना कठिन है । वे महात्मा रामचन्द्र जी तुम को अवश्य मार डालेंगे । जिस समय रामचन्द्र जी खड़े हो कर तुम को कड़ी दृष्टि से देखेंगे, तुरन्त ही भस्म होजाओगे । जो रामचन्द्र जी चन्द्रमा के टुकड़े कर पृथ्वी पर गिरा सकते और समुद्र को सुखा सकते हैं, क्या वे सीता को यहां से न छुड़ावेंगे ? ए मूर्ख ! तुम्हारे तो मृत्यु शिर पर खेल रही है । देखो तुम्हारे मुख पर मुर्दनी छा गई । दिल धड़कता है । हाथ पैर चलते नहीं । इस से भलीभांति प्रकट है कि तुम्हारे लिये अवश्य लङ्का विधवा होयगी । ए रावण ! तुमने जो हम को पतिसेवा नहीं करने दी और अपने बल से चुरा लाये । यह पाप तुम्हारा तुम को बड़े कष्ट में डालेगा और कुदशा तो अब तक तुम्हारे ऊपर आही गई होती जो रामचन्द्र जी हमारे देवर लक्ष्मण को साथ ले दण्डकारण्य से चलदिये होते । ए रावण ! याद रखियो, युद्धभूमि में वे अपने बाणों से बहुत ही शीघ्र तुम्हारा मान और अपमान सब मिटा देंगे । यह तो बनी हुई बात है कि जब मृत्यु का समय निकट आता है, तो मनुष्य कुछ का कुछ करता है और बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । ए राजन् ! हमारा अपने बल से पकड़ लाना तुम को और समस्त राक्षस और राक्षसियों को यमपुर पहुंचावेगा । जैसे ब्राह्मणों की यज्ञ की वेदी चाण्डाल नहीं छू सकता, वैसे ही महात्मा रामचन्द्र जी की हम पतिव्रता स्त्री को तुम नीच महापापी भी नहीं छू सकते । यह तो सम्भव है कि समुद्र में राजहंसी को काक छू ले और सूर्य पूर्व दिशा छोड़, पश्चिम से उदय हो जाय और सब पर्वत पृथ्वी में घुस जायं, परन्तु सीता किसी समय अपना शरीर तुम को छुवा, जगत में निन्दा न करावेगी (और चुप हो गई)

रावण—ए मैथिलि ! जो बारह महीने में हम को स्वीकार न करोगी तो हमारे रसोइया लोग तुम को रत्ती २ काट प्रातःकाल की रसोई में पका डालेंगे (और राक्षसियों से) तुम बहुत शीघ्र इन का अभिमान मिटा दो ॥

राक्षसी—(हाथ जोड़) ऐ सीता! मान जाओ, रावण को स्वीकार करलो॥

रावण—(क्रोध में आ, पृथ्वी में पैर मार) ए राक्षसियो! तुम सीताको अशोकवाटिका में लेजाओ। वहां चारों ओर से घेर इन की रक्षा करना। और बहुत सी रीतियों से समझा बुझा, स्वीकार करा, हमारे पास लाना, जैसे जङ्गली हथनी बड़े प्रबन्धों से मिलाई जाती है। ऐसे ही इन को भी प्रसन्न करो॥

राक्षसी—(रोती हुई सीता को अशोकवाटिका में ले आईं)

चौपाई—

शोकविवश मिथिलेशकुमारी। रोदन करत अनेक प्रकारी॥
परी राक्षसिन के वश सोई। व्याघ्र मध्य हरिणी जिमि होई॥
महाशोकवश ह्वै वैदेही। रोवत पर न कछुक सुधि तेही॥
कबहुक लहत तनिक कल्यानू। पाशबद्ध जिमि हरिणी जानू॥
महाकराल राक्षसी घेरी। जनकसुता सुख लहै न हेरी॥
शोकभीतिपीडित दिनराती। सुमिरत पति देवर गुणपांती॥

अशोकवाटिका—

राक्षसियों ने सीता जी को ला, अशोकवाटिका में रक्खा और अनेक भांति समझाने लगीं। यह तो पतिव्रता थीं, भला इन का चित्त कहीं बदल सकता था और किसी समय रामचन्द्र जी का ध्यान छोड़ सकती थीं? सदैव रामचन्द्र जी में ही मन लगाये थीं॥

एक दिन बहुत ही प्रभात उठीं, देखा कि रावण उत्तम २ वस्त्राभूषण पहन अपनी सब स्त्रियों सहित विराजमान है। यह रावण को देख, बहुत भयकर पैरों से पेट छिपाय, हाथों से छाती दुबका, कांप २ रोने लगीं॥

रावण—ए मैथिलि! तुमने हम को देख, छाती और पेट छुपालिया। क्या हमारे भय से कहीं भागा चाहती हो? हम को बहुत दिनों से तुम्हारे देखने की लालसा है। हमारी ओर देखो। ए सीता! इस समय यहां कोई न मनुष्य है, न कोई राक्षस, फिर यह भय कैसा? इस को दूर करो। ए वैदेहि! तुमको यहां ले आना तो हमारा स्वाभाविककर्म है कि जिस पराई स्त्री को चाहे

ले आवें। यह तो कोई बड़ी बात नहीं। सुनो, अब हमारी इच्छा तुम को भले प्रकार देखने की है और यह जब हो सकता है कि तुम भी इच्छा करो। ए देवी! अब कुछ भय न करो और निर्भय हो, हम से प्रीति रक्खो। शोक छोड़ दो। देखो बाल खुले रखना, बेबिछौने पृथ्वी पर सोना, उपवास करना, ये भले चङ्गे मनुष्यों के कर्म नहीं। देखो यहां अनेक प्रकार के धन, रत्न, सुगन्धित मदिरा, अमूल्य आसन और बिछौने, पलङ्ग, कुर्सी, नाचने गाने की सामग्री उपस्थित हैं, इन को वर्त्तो और हम से प्रसन्न हो। इस समय तुम्हारे तुल्य कोई भी स्त्री नहीं। उत्तम २ आभूषण पहनो। भला यह कैसे हो सक्ता है कि हमारी रानी होकर बेगहने के रहो? यह तुम्हारी ज्वानी यों ही बीती जाती है। देखो जो चीज़ जाती रहती है फिर नहीं आती। जैसे नदी नाले का जल फिर लौट कर नहीं आता, वैसे ही युवावस्था भी नहीं आती। हम तो समझते हैं कि ब्रह्मा जी तुम को बनाकर हाथ धो बैठे और तुम सी रूपवती और कोई नहीं बनाई॥

ए वैदेहि! ऐसा जगत् में कौन है, जिस का मन तुम को देखकर न ललचे? मेरी समझ में तो ब्रह्मा भी तुम को देखे तो चाहने लगे। ए चन्द्रमुखि! मुझे तो तुम्हारा अङ्ग २ प्यारा लगता है। ऐसा कोई भी अङ्ग नहीं जो मुझे प्यारा न लगता हो। अब तुम को भी यही उचित है कि हम को स्वीकार करो और हमारी पटरानी बनो। सुनो, जो २ रत्नादि हम जगत् भर में से छीन २ कर लाये हैं, वे सब तुम को देवेंगे और सब जगत् का राज्य जीत २ तुम्हारे पिता जनक जी को दे देवेंगे। आज जगत् में कोई हम सरीखा शूर है? और कोई है जो हमारे सम्मुख युद्धभूमि में खड़ा हो सके? देखो, देवता और दैत्य भी हमारी सेना के सम्मुख खड़े नहीं हो सकते। यह लोग कितनी ही वेर हमसे हार चुके हैं। अब तुम को भी यही उचित है कि हम से प्रीति करो, जिस में हम तुमको उत्तम २ आभूषण पहिनावें। हम तुम्हारे शृङ्गार कराने के योग्य हैं। अब तुम बुद्धि से काम लो, मूर्खता को छोड़ दो। हमारी आज्ञानुसार रहो, अच्छे २ भोजन करो, अमूल्य वस्त्र पहिनो, आनन्द करो, जिस को चाहो धन और पृथिवी दान दो और हम में मन लगाये ढिठाई से वस्तु मांगा करो। हमारी प्रसन्नता से तुम अपने पिता माता की बड़ी कीर्त्ति देखोगी। हमारी सेना और राज्य को देखो और उस चीरधारी रामचन्द्र

से मिलाओ। भला कहां वन में विचरता, भूखा मरता, भूमि पर सोता, रामचन्द्र और कहां हम और हमारी सम्पत्ति? और यह भी तो शङ्का है कि वह जीता है या मरगया और जो जीता भी होवे तो क्या करेगा? अब वह तुम को नहीं देख सकता। जैसे घिरे बादलों में उड़ते बगलों को सूर्य या चन्द्रमा नहीं देख सकता और हमारे गृह में आई, तुम को तो अब रामचन्द्र पाही नहीं सकता। जैसे इन्द्र के होते दूसरा मनुष्य इन्द्रासन नहीं पा सकता। ए हंसमुखि! ए मृगनयनि! तुम तो हम को डसे लेती हो। तुम्हें विना रेशमी वस्त्र और विना गहने के देख, हम को बड़ा शोक होता है। अब तुम समझो और लङ्का की सब रानियों में पटरानी बनो। हमारे त्रिलोकी की जो उत्तम उत्तम स्त्रियां हैं वे सब तुम्हारी सेवा करेंगी। जो धन सम्पत्ति कुबेर के है, वही सब हमारे हैं। अब तुम हमारे सङ्ग सब भांति से आनन्द करो। बस फिर है ही क्या, चैन ही चैन है॥

सीता जी—(आंसू आय, तिनके की आड़ कर, हौले से) ए रावण! हमारी ओर मन न करो, अपनी रानियों में मन लगाओ। जैसे पापी मनुष्य सिद्धि नहीं पा सकता, वैसे ही तुम भी हम को नहीं पा सकते। हम तो रामचन्द्र जी की ही स्त्री हो सकती हैं। यह अपकीर्त्ति का कार्य हम नहीं कर सकतीं, क्योंकि प्रथम तो हमारा उत्तमकुल में जन्म, द्वितीय उत्तम ही कुल में व्याहीं, भला यह कर्म कुलीन स्त्रियों का है? नहीं २ यह चलन कुलीन स्त्रियों का नहीं। क्या कोई पतिव्रता स्त्री ऐसा कर सकती है? नहीं २ कोई भी ऐसा नहीं कर सकती (और पीठ फेर) हमारे में यह बल नहीं कि तुम्हारी पटरानी बन, तुम्हारे गृह में रहें। तुम को चाहिये कि सीधे मार्ग से चलो। भले मनुष्यों का चलन स्वीकार करो। राजन्! जैसे तुम अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हो, वैसे ही औरों की भी रक्षा करो। अपने को कीर्त्तिमान् बनाओ। अपनी ही स्त्रियों में मन लगाओ। पराई स्त्रियों को न देखो, क्योंकि जो मनुष्य अपनी स्त्री में विहार कर असन्तोषी बना रहता है और अपनी चञ्चल इन्द्रियों को चलाता है, वह सज्जन नहीं गिना जाता और स्त्री वर्ग उस की अपकीर्त्ति कर, उसे सीधा नरक को पहुंचाती हैं। क्या इस लङ्कापुरी में कोई भी महात्मा नहीं, जो तुम को समझावे? चाहे हो, पर तुम उस की शिक्षा मानते ही न होगे। इसी कारण तुम ऐसे धूर्त्त होगये हो, या मदान्ध हो। पण्डितों के वचन नहीं मानते और समस्त राक्षसों की रक्षा के लिये उन को अङ्गीकार नहीं करते। देखो, राजा

के अन्यायी व कुचलन होजाने से भरापुरा देश नगर व बस्तियों सहित नाश को प्राप्त होजाता है। ऐसी ही यह भरीपुरी लङ्का तुम अकेले ही के पापसे नाश को प्राप्त होजायगी। ए रावण! तुम अपने ही पापों से मारे जाओगे और तुम्हारे मरने पर सब जीवों को सुख मिलेगा और जिन जीवों ने तुम्हारे होने से कष्ट उठाया है, वे प्रसन्न हो कहेंगे कि "अच्छा हुवा यह दुष्ट रावण मारा गया"। अच्छा है कि तुम यहां से चले जाओ और वस्त्राभूषण का हम को लोभ न दो। जैसे सूर्य की किरण सूर्य को छोड़ कहीं नहीं जा सकतीं, इसी भांति हम स्वप्न में भी अपने प्यारे रामचन्द्र जी को छोड़, दूसरे पुरुष को स्वीकार नहीं कर सकतीं। भला तीन लोक के प्यारे रामचन्द्र जी की बांह अपने शिर के नीचे धर सोई हैं, तो क्या अब दूसरे पुरुष की बांह अपने शिर के नीचे रक्खेंगी? नहीं २ यह कभी नहीं हो सकता। हम रामचन्द्र जी के योग्य हैं, तुम्हारे योग्य नहीं। जैसे कि पण्डित की विद्या पण्डित ही के योग्य होती है, साधारण मनुष्य के योग्य नहीं होती। ए रावण! जो तुम अपना भला चाहते हो तो हम को श्रीमान् रामचन्द्र जी के पास पहुंचादो, वहां पहुंच, दांव से बिछुड़ी हथनी की नांई प्रसन्न हो, तुम को धन्यवाद देंगी। सुनो, जो तुम अपना और अपनी पुरी का कुशल चाहते हो तो श्रीमान् रामचन्द्र जी को अपना मित्र बनाओ, क्योंकि वे तो शरणागतवत्सल हैं। अवश्य तुम्हारा अपराध क्षमा करेंगे और जब तुम हमको सौंप आओगे, तो तुम को बड़ा सुख मिलेगा। नहीं तो भारी कष्ट उठाओगे। सम्भव है कि इन्द्र का छोड़ा वज्र खाली जाय और यमराज का मारा जीता रह जाय, परन्तु रामचन्द्र जी का मारा वैरी जीता नहीं रह सकता। हम को पूरी आशा है कि तुम रामचन्द्र जी के धनुष् का शब्द सुन, बहुत ही शीघ्र यमपुर सिधारोगे। रामचन्द्र जी के विषधर बाण इतने इस लङ्कापुरी में गिरते देखोगे कि जिन से रहने को तो क्या, तुम को और राक्षसों को बैठने को भी स्थान न मिलेगा और इन सर्परूपी राक्षसों को गरुड़रूपी रामचन्द्र जी बहुत ही शीघ्र उड़ादेंगे और बहुत ही थोड़ी देर में हम को लेलेंगे। जो यह कहो कि लाते समय ही क्यों नहीं छीनलिया? तो तुम को तो ज्ञात ही है कि जब तुम हम को उन सिंहों के सामने से न लासके तो चोरी की। जो कुछ वीरता रखते थे तो उन वीरों के सामने पड़े होते। सो तुम्हें यह कहां सामर्थ्य था कि उन की गन्ध पाकर खड़े भी रहते। जैसे सिंह की गन्ध से कुत्ता

विचारा खड़ा नहीं रह सकता वैसे ही तुम भी उन को देख, खड़े नहीं रह सकते और जैसे इन्द्र के हाथ से वृत्रासुर काटा गया; वैसे ही तुम को भी रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी काटेंगे और जैसे सूर्य पानी को शोष लेता है वैसे ही तेरे प्राण भी वे वीर शोष लेंगे ॥

रावण-ए सीता! हम जानते हैं कि ज्यों २ पुरुष स्त्रियों को समझाते हैं त्यों २ वे गनरूढ़ होजाती हैं। इसी भांति हमने जितनी तुम से प्यारी २ बातें कीं, उतना ही तुमने हमारा निरादर किया। ए सीता! तुम हम को बड़ी प्यारी हो, इस कारण हमारा मन तुम्हारे मारने को नहीं चाहता। नहीं तो ऐसे बचन कहने से तुम बध के योग्य थीं और अवश्य हम तुम को मार डालते, परन्तु दो महीने और यहां निर्भय रहो, हम तुम से कुछ न कहेंगे, क्योंकि दो महीने उस १२ महीने की अवधि में शेष रहे हैं, जो हम पहले दे चुके हैं। इस के पश्चात् अवश्य हमारी शय्या पर आना होगा। जो दो महीने पीछे तुम हम को पति न बनाओगी तो हमारे रसोइया, तुम को काट २ प्रातःकाल के भोजन में बना डालेंगे ॥

सीता जी-अब हमने जान लिया कि इस लङ्का में तुम्हारा स्नेही कोई नहीं, जो तुम्हें इस अनुचित वर्त्ताव से रोके। जाओ त्रिलोकी में तुझ को छोड़, ऐसे अनुचित बचन हम से कोई नहीं कह सकता। ए दुष्ट! तू ने जो अनुचित वचन हम से कहे, उन के कहने से तू कहां बचेगा। अरे! जब तक तू रामचन्द्र जी के सन्मुख नहीं पड़ता, तभी तक रामचन्द्र जी के लिये जो चाहे सो कहले। समीप पड़ने पर कहना तो क्या, बोलना भी कठिन हो जायगा। और तू तो आप ही जानता है कि हमारे लाते समय भी तो तू सामने नहीं पड़ा, उन के पीछे ही हम को चुरा लाया। ए पापी! इस कुदृष्टि देखने से तेरी आंखें क्यों नहीं फूट जातीं और ऐसे कठोर वाक्यों से तेरी जीभ क्यों नहीं गिर जाती? अच्छा, क्या करें हम को तो रामचन्द्र जी की आज्ञा नहीं, नहीं तो तुझ को अपने शाप से ही भस्म करदेतीं और बड़ा सोच यह है कि रामचन्द्र जी ने अपने ही हाथ से तेरे मारने का प्रण किया है। हम उस को झूठा नहीं कर सकतीं। अरे! तुम बड़े शूरवीर कुबेर के भाई और बड़े योद्धा थे तो उन के पीछे हम को क्यों चुरा कर लाये। सम्मुख पड़ के लाते तो तुम्हारा बल पौरुष जान पड़ता। यह तो सत्य ही है कि चोर सौ भांति के प्रबन्ध करता है, परन्तु स्वामी भी अपना खोज लगाही लेता है ॥

रावण-(क्रोध में आ, लाल नेत्र कर) हम तुम को अभी मारे डालते हैं (और राक्षसियों को मारने की आज्ञा देता है)

मन्दोदरी—(हाथ जोड़) राजन्! तुम्हारी संपत्ति का भोगना बड़ा कठिन कर्म है। इस के सिवाय स्त्री की बिना इच्छा भोग करने से अपने शरीर को दुःख होता है। इस लिये जो स्त्री अपने से भोग की इच्छा करे, उस से विषय करना चाहिये, नहीं तो क्या लाभ॥

रावण-(हंस कर) बहुत अच्छा, मत मारो (और वहां से चल दिया)

राक्षसी-ए सीता! तुम पुलस्त्यवंशी रावण की रानी बनना क्यों नहीं चाहती?

एकाक्षी-(हाथ जोड़) ऐ सीता! ब्रह्मा जी के पुत्र पुलस्त्य जो चौथे प्रजापति हुवे हैं और पुलस्त्य जी के विश्रवा, विश्रवा के यह महाराज रावण हैं। यह तुम्हारे ही योग्य हैं और तुम इन की रानी बनने के योग्य हो। हमारा कहना मानो और इन की रानी बनो॥

त्रिजटा-जिस रावण ने तेंतीस देवता और इन्द्र को भी जीत लिया, ए सीता! तुम उन को अपना पति क्यों नहीं बनालेतीं। देखो, वह अपनी सहस्रों रानियों की पटरानी तुम को बनाना चाहता और आप दीन हो तुम्हारी विनती करता है। तुम बड़ी मूर्खा हो कि ऐसे बलवान् राजा की पटरानी बनना नहीं चाहतीं। हम तो तुम्हारे भले की कहती हैं, आगे तुम्हारी इच्छा। जो न मानोगी तो मारी जाओगी॥

दोहा

कहना था जो कह चुकीं, तुम हो अति नादान।
एक राम के कारणे, खोओ अपनी जान॥

सब राक्षसी—(सीता जी को बुरा भला कहने लगीं)

एक—भला यह पटरानी होने के योग्य है?

दूसरी—अरी! यह तो टहलनी होने के योग्य है। भला ऐसी कहीं पटरानी हुआ करती हैं?

तीसरी-बीबी! जो दैवयोग से किसी को कोई अवसर मिल भी जावे तो भाग्य भी कुछ वस्तु है, जब वह सुख पाने दे, तब ही आनन्द मिलता है।

चौथी-बहन! इस को रामचन्द्र की आशा लग रही है॥

पांचवीं-रामचन्द्र तो आचुके॥

पहिली—अरी! उन का तो ध्यान भी यहां तक नहीं आसकता॥

दूसरी—भला यह बुला भी ले !

तीसरी-बस बुला चुकी ॥

चौथी-अरी ! भाला तो भान पड़ा, इस की बोटी बोटी भोजन में पकेगी ।

पांचवीं-देख, देख कैसी रही है ॥

सीता जी-(नेत्रों में जल भर) ए राक्षसियो ! तुम जो यह दुर्वचन कहती हो, यह हम को नहीं सुहाते । भला मानुषी कैसे राक्षस की स्त्री हो सकती है ? इस से चाहे तुम हम को खा डालो या मार डालो, परन्तु हम तुम्हारा कहना न करेंगी । इस समय चाहे हम रानी नहीं अत्यन्त निर्धन हैं, परन्तु तो भी हमारे पति ही गुरु हैं और उन्हीं में हमारा ध्यान है । जैसे इन्द्राणी का इन्द्र में, अरुन्धती का वशिष्ठ में, रोहणी का चन्द्र में, लोपामुद्रा का अगस्त में, सुकन्या का च्यवन में, सावित्री का सत्यवान् में, श्रीमती का कपिल देव में, मदयन्ती का दुष्यन्त में, केशिनी का सगर में, दमयन्ती का नल में, इसी भान्ति हमारा ध्यान महाराज रामचन्द्र जी में है ॥

राक्षसी-(बहुत भले बुरे वाक्य कह) सीता ! तू रावण की पटरानी बनने के योग्य नहीं है ॥

सीता जी-(अतिदुःखी हो, शिंशपा वृक्ष की जड़ पर आ बैठीं)

वनिता-ए सीता ! तुम ने बहुत प्रीति अपने पति में दिखलाई , बस अब तुम हठ न करो और हमारा कहना मान जाओ । रावण को अपना पति बनाओ । इस से उत्तम पति तुम को नहीं मिल सकता ॥

विकटा-(मुष्टक उठा और भय दिखा) तुम हमारा कहना मान जाओ । अब तो तुम समुद्र पार आगई हो । अब तुम को रामचन्द्र नहीं मिल सकते और रोने धोने से कुछ नहीं होता । रावण को अपना पति बना, अपनी युवावस्था में आनन्द करो । नहीं तो तुम्हारा कलेजा होगा और हमारा मुख । (इस के पीछे और भी बहुत सी राक्षसियों ने सीता जी को धमकाया, डराया)

सीता जी-(रोती हुई) मानुषी कभी राक्षसों की स्त्री नहीं हो सकती (और खड़ी हो, शिंशपावृक्ष की टहनी पकड़, रामचन्द्र जी की याद में आंसू बहा)

चौपाई

हा राघव करुणावरुणालय । हा लक्ष्मणशुभलक्षणआलय ।१।
हा कौशल्ये सासु पियारी । हा सुमित्रे मम हितकारी ॥२॥

पण्डितों का यह कथन कि 'अकाल में मृत्यु नहीं होती,सत्य है, क्योंकि इन महा दुष्टराक्षसियों के दुःख देने पर बिना रामचन्द्र जी के हम जीती हैं। परन्तु अब कहां तक जीती रहेंगी, थोड़े पुण्य करने वाली कृपण हम शीघ्र ही मर जावेंगी जैसे अधिक बोझ भरी नौका पवन के वेग से समुद्र में डूब जाती है, ऐसे ही बिना रामचन्द्र जी के हमारा भी जीवन नहीं। हम ने पहिले जन्म में कौन पाप किया कि जिस से ऐसे दारुण दुःख हम को उठाने पड़े। राक्षसियों के पहरे में रामचन्द्र जी हम को नहीं मिल सकते, इस लिये अब हम प्राणत्याग कर देंगी और इस मनुष्यदेह को भी धिक्कार है, जिस से जब चाहे मरण नहीं होता (और रोने लगीं)

(उस समय अचेत हो, जानकी जी ऐसे तड़फ रहीं थीं,जैसे बिना जल के मछली तड़फती है थोड़ी देर पीछे) यह राक्षस रावण रामचन्द्र जी के पीछे हम को चुरा लाया और अब उस ने हम को राक्षसियों के आधीन करदिया, जो भांति २ के कटु और दुर्वचन कहती हैं। बतलाओ, अब हम यहां कैसे जीवेंगी। बिना रामचन्द्र न हम जीना चाहती हैं और न धन और न गहना। निस्संदेह हमारा कलेजा पत्थर का है, या अजर अमर है। जो इतने दुःख पर भी नहीं फट जाता। हम को धिक्कार है,जो बिना रामचन्द्र जी के जीती रहें। हम तो इस पापी रावण को पांव से भी न छूयेंगी। ए परमात्मा! यह रावण बड़ा दुष्ट है, न इस को हमारा विचार है, न अपना। हम बराबर नांह करती हैं और यह अन्यायी बराबर दुःख देता है और अत्यन्त विनती कर रहा है। राक्षसियो! तुम क्यों वारंवार कहती हो। चाहे हम रत्ती २ कर डाली जायं, चाहे पीसकर मलडाली जायं, चाहे अग्नि में डाल दी जायं, परन्तु रावण को न ग्रहण करेंगी। हम अपने मन्दभाग्य होने से भी ऐसा विचार नहीं कर सकतीं कि रामचन्द्र हमारी रक्षा न करेंगे। वह अवश्य ही रक्षा करेंगे। जिन अकेले रामचन्द्र जी ने चौदह सहस्र राक्षस थोड़ी देर में मार डाले, वे अवश्य इस पापी दुष्ट अन्यायी के हाथ से हमें छुड़ावेंगे, और जिस समय यह उन के सम्मुख पड़ेगा, जीता न छोड़ेंगे। जिन रामचन्द्र जी ने वन में विराध मारा, वह हम को क्यों न मिलेंगे। माना कि समुद्र के बीच में और की शक्ति नहीं, जो लङ्का को जीते, परन्तु श्री रामचन्द्र अवश्य लङ्का जीतेंगे। न आने का तो यह कारण है कि उन को हमारा वृत्तान्त ज्ञात न नहीं, नहीं तो अवश्य यहां हमारी विपत्ति दूर करते। हाय! वह गिद्ध भी

तो रावण ने मार डाला था । रामचन्द्र जी को हमारा वृत्तान्त किसने बताया होगा । जिस समय हमारा वृत्तान्त रामचन्द्र जी सुन पावेंगे, उस समय लङ्का तो क्या, जगत् भर के राक्षसों का नाममात्र भी न छोड़ेंगे और लङ्का को फूंक, इस रावण का चिन्ह तक मिटा देंगे और इन तुम्हारे घरों में हमारे रोने से अधिक हाहाकार मचेगा, कुछ शीघ्रता की बात नहीं । रामचन्द्र और लक्ष्मण थोड़े ही समय में यहां के राक्षसों को ढूंढ २ कर मारेंगे, क्योंकि वे अपने वैरी को एक घड़ी भी जीता नहीं देख सकते । अब बहुत ही शीघ्र इस लङ्का में इतनी चिता जलेंगी कि धुंवे के मारे कहीं मार्ग न मिलेगा और सब लङ्का मरघट हो जायगी । कोई मृतक उठाने वाला ढूंढा न मिलेगा । हमारा यह विचार शीघ्र ही सत्य होगा, क्योंकि तुम सब शास्त्र के विरुद्ध चलती हो और शास्त्र के विपरीत चलने वालों का शीघ्र ही नाश हो जाता है और जैसी कि अशुभता आज कल लङ्का में होती है, ऐसी कहीं नहीं । इस से भलीभांति प्रकट है कि थोड़े ही काल में यह लङ्का उजड़ हो, विधवा स्त्रियों की नाईं शोक में सूख, बुरी दीखने लगेगी । इस से निश्चय है कि राक्षसों की कन्याओं का रोने चिल्लाने का शब्द हम यहां पर बहुत ही शीघ्र सुनेंगी । अब रामचन्द्र जी के बाणों से गिनती के राक्षस मारे जाने पर यह लङ्कापुरी अंधेर छाकर भस्म हो जायगी और यह बातें उसी समय होंगी, जिस दिन श्री रामचन्द्र जी जानेंगे कि हम राक्षस के घर में पड़ी हैं और जो प्रण हमारे मारने का रावण ने दो महीने का किया है, यह लङ्का के उजड़ने का अन्तसमय होगा । आश्चर्य तो यह है कि यह रावण दुष्ट यह भी तो नहीं जानता कि हमारा मरना कुछ सहज बात है और यह तो अब निश्चय ही है कि दो मास पीछे रावण हम को प्रातःकाल के भोजन के लिये काटेगा । फिर उस समय सिवाय श्री रामचन्द्र जी के कौन हमारी रक्षा कर सकता है । जो कोई हम को यहां विष देता तो बहुत ही धर्म कमाता , क्योंकि हम पति के वियोग में मरने से स्वर्ग को चली जातीं । हमारी समझ में तो रामचन्द्र जी हम को जीती न समझते होंगे, नहीं तो दश महीने हुवे, क्या दोनों भाई पृथिवी से हम को न ढूंढ लेते । कहीं हमारे शोक में श्री रामचन्द्र जी अपने शरीर को त्याग, परलोक को तो नहीं चले गये ? जो ऐसा हुआ तो देवता और गन्धर्व आदि बड़े धन्य हैं, जो हमारे पति राज्य त्यागी रामचन्द्र जी के दर्शन करते होंगे । अथवा उन धर्मात्मा रामचन्द्र जी

को हम से कुछ प्रीति ही न रही होगी, क्योंकि संसार में देखते ही की प्रीति होती है। बिना देखे प्रीति नहीं रहती। परन्तु यह बात तो कृतघ्न मनुष्यों की है, धर्मात्माओं की नहीं। रामचन्द्र जी ने ऐसा कभी नहीं हो सकता कि हमारी प्रीति को त्याग दें। यह भी नहीं तो हमारे में कोई अवगुण तो अवश्य है। अथवा हमारे भाग्य ही का कुछ दोष है कि हम श्री रामचन्द्र जी से न्यारी होगईं। अवश्य ऐसा ही है, नहीं तो कभी न्यारी न होतीं। अब हम को बिना रामचन्द्र जी के मर जाना ही उचित है। अथवा ऐसा हो कि दोनों भाई बिना शस्त्र भोजन के अर्थ कन्द, मूल, फल ढूंढते फिरते हों और इसी नीच रावण पापी ने धोखा दे, उन दोनों शूरवीरों को मरवाडाला हो। इस लिये हम को इन सब विपदाओं से मरना ही भला है। परन्तु क्या करें, ऐसी विपत्ति में तो मृत्यु भी नहीं आती। भाई! मुनिलोग भी धन्य हैं कि जिन का न कोई प्रिय होता है और न शत्रु। ऐसे महात्माओं को हमारा प्रणाम है। हाय! एक तो अति प्रसिद्ध शूरवीर श्री रामचन्द्र जी ने हम को त्याग दिया, दूसरे इस पापी रावण के वश में आपड़ीं, इस लिये भी हम को प्राण त्याग देना ही उचित है। इन को रख कर क्या करेंगी। (जब श्रीजानकी जी ने ऐसे दुःखरूपी शब्द राक्षसियों से कहे तो बहुत सी दुष्ट राक्षसी रावण से वृत्तान्त कहने गईं और बहुत सी राक्षसी बुरे २ रूप धारण कर फिर वैसे ही कठोरवचन कहने लगीं)

राक्षसियां–ए सीता! आज हम तुम्हारा मांस बड़ी प्रसन्नता से भक्षण करेंगीं।

त्रिजटा–(सोने से उठ, सीता जी को भयभीत देख, राक्षसियों से) ए दुष्टाओ! अपने को खाओ, सीता को न भक्षण करो। अरे! यह राजा जनक जी की तो कन्या हैं और महाराजा दशरथ जी के बड़े पुत्र श्री रामचन्द्र जी की भार्या। अरे आज रात हमने एक स्वप्न देखा है जिस से राक्षसों का नाश और इन के पति की जय जान पड़ती है। अरे! तनिक ईश्वर का तो भय करो। देखो एक पल में कुछ से कुछ हो जाता है॥

सब राक्षसियां—(भयभीत हो) ए त्रिजटा! सुनाओ, तो आज की रात तुमने क्या स्वप्न देखा है॥

त्रिजटा–सुनो–विमान पर चढ़े राम और लक्ष्मण उत्तम २ श्वेत २ वस्त्र धारण किये, लङ्कापुरी में आये और सीता जी भी उत्तम २ वस्त्राभूषण पहन उन के निकट बैठी हैं और फिर देखा कि श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण जी के साथ चौदन्ते हस्ती पर चढ़े बड़े शोभायमान जान पड़ते हैं और उन के पीछे

सीता जी भी विराजमान हैं और इसी रीति से लङ्कापुरी में फिरते देखा। इस के पीछे देखा तो रामचन्द्र और लछमण सहित सीता जी पुष्पक विमान पर चढ़, उत्तर दिशा को चले गये। यह सर्वशुभदायक स्वप्न तो रामचन्द्र जी के विषय में देखा और जो अशुभ स्वप्न रावण के विषय में देखा, सब यह है कि–रावण को हमने क्षौर कराये, तैल लगाये, रक्त वस्त्र धारण किये, मदिरा पिये, कन्देल के फूलों की माला पहिने, पुष्पक विमान से नीचे गिरते देखा है। और फिर क्या देखती हूं कि रावण शिर मुंडाये, काले वस्त्र पहन, गधों के रथ पर चढ़, लाल चन्दन लगाये, तैल पीते, हंसते, नाचते, अचेत हो, दक्षिण दिशा को जाते हैं। और फिर रावण भय खा, उस गधों के रथ से भी नीचे गिर पड़ा और फिर कुछ देर मूर्छित हो नङ्गे शिर दुर्वचन कहता, एक ऐसे स्थान में जो कि मल मूत्रों से भरा था, डूब गया और वहां से निकल, फिर दक्षिण दिशा को चल दिया और थोड़ी दूर पर एक रक्त वस्त्रवाली स्त्री ने रावण की नाड़ पकड़, एक कीचड़ के कुण्ड में डाल दिया, फिर उस में से भी कीचड़ से सना, बड़ी कठिनाई से निकला तो दूसरी काले वस्त्रोंवाली स्त्री दक्षिण की ओर खैंच लेगई और इसी प्रकार हमने कुम्भकरण को भी देखा। फिर विभीषण को देखा कि अपने चारों मन्त्रियों समेत आकाश में चले जाते हैं और विभीषण के सिवाय शेष सब राक्षस गाते, बजाते, मदिरा पीते, लाल वस्त्र पहने हुये हैं। फिर इस लङ्कापुरी को देखा कि इस की चारदीवारी व सफ़ील सब टूट फूट गई हैं और रथ हाथी घोड़े समेत समुद्र में डूबी जाती है और जली हुई लङ्का में तेल और मदिरादि पी पी राक्षसों की स्त्रियां असावधानी से हंसती और हल्ला करती घूम रही हैं और फिर कुम्भकरण आदि बड़े २ राक्षस गोबर के कुण्ड में घुस गये॥ ए राक्षसियो! देखो, चलो यहां से भागो, क्योंकि अब रामचन्द्र जी सीता जी के पति आया ही चाहते हैं। वे अवश्य तुम्हारी इस कठोरता को देख, राक्षसों समेत मार डालेंगे, क्योंकि वह अपनी प्यारी स्त्री को तुम से भयभीत न देख सकेंगे। इस लिये अब तुम यह दुष्टाचार छोड़, दुर्वचन मुख से न निकालो और इन का आदर सत्कार करो। मेरे विचार से तो यही बात भली जान पड़ती है कि जिन जानकी जी के उदास होने पर ऐसा स्वप्न दिखाई दिया है, वे अब शीघ्र ही अपने पति रामचन्द्र जी से मिल, इन दुःखों से छूटेंगी।

हां, सीता जी को तुमने बड़ा कष्ट दिया है और बुरे २ शब्द कहे हैं, परन्तु अब तुम इन के सम्मुख हाथ जोड़ अपराध क्षमा करालो। बहुत कहने से क्या प्रयोजन, श्रीरामचन्द्र जी से राक्षसों को बड़ा भय है और वह निकट ही आगया है। जो अब सीता जी तुम्हारी आधीनता व विनती सुन प्रसन्न हो जावेंगी तो तुम को बड़े भारी भय से बचावेंगी। देखो, इन के अङ्ग में कोई अशुभ लक्षण नहीं और न कोई दुःख पाने का चिन्ह है। इन सब बातों से हम को तो भलीभांति प्रकट है कि सीता जी का मनोरथ सिद्ध हुआ चाहता है, अर्थात् रावण का नाश और रामचन्द्र जी की जय॥

और देखो, इन की जो जंघा फड़कती है, वह रामचन्द्र जी के मिलने का पूरा अति उत्तम शकुन बतला रही है। और यह भी देखो, इन के ऊपर वाली डाली पर वह पक्षी फूल २ कर बैठता है। मानो सीता जी को प्रसन्नता के समाचार सुनाता है कि तुम प्रसन्न रहो॥

सीता-(त्रिजटा के मुख से ऐसा सुन, प्रसन्न हो) जो यह बात ठीक होगी तो हम तुम सब की रक्षा करेंगी (और रावण के बुरे २ कठोर वचनों को याद करने लगीं। एक तो रावण से ही बहुत डरी हुई थीं और इस पर राक्षसियों के बीच में दुःखित बैठीं हुई को रावण ने बुरे २ दुष्टवचन कह और भी शोकातुर कर दिया था, इस लिये वह बड़ा भारी शोक कर रहीं थीं—बोलीं) पण्डितों का यह वचन कि दुःख में मृत्यु नहीं आती, बहुत ठीक है। देखो चाहे हम अपने पति से भी अलग हुई, परन्तु कुछ ऐसा दान न किया कि जिससे अब जीती न रहतीं। जो हम इस दुष्ट रावण के हाथ से मारे जाने योग्य हैं तो अच्छा, परन्तु उस के मन में जो यह विचार है कि हम उस की स्त्री बन कर रहें, यह न होगा। परन्तु श्री रामचन्द्र जी के आने से पहिले ही यह रावण हमारे शरीर के सैंकड़ों तीरों से टुकड़े २ कर देगा। रावण ने जो दो महीने की अवधि हमारे मारने की की है वह ऐसी है जैसे किसी फांसी पाने वाले को एक रात का बीत जाना। हा लक्ष्मण! हा राम! हा सुमित्रा! हा हमारी माता! हम अभागिनी इस दुःख को देखती हैं, जैसे बहुत बोझ भरी नाव पवन के झोंकों से समुद्र में डूबती है। हम जानती हैं कि उस विचित्र रूपधारी मृग ने दोनों राजकुमारों को हमारे कारण मार डाला और हम जानती हैं कि मृगरूप धारण कर वह काल हो आया था, जिस ने हम को लुभाया और हम मूर्ख ने दोनों राजकुमारों को भेज दिया॥

बड़े आश्चर्य की बात है—पतिव्रत नियम रखना, पृथ्वी पर सोना, धर्म में मन लगाना इन सब का कुछ फल न निकला जैसे दुष्ट मनुष्य के साथ भलाई करने वाला कुछ लाभ नहीं उठाता । यह उत्तम धर्म हमने किया कि उन रामचन्द्र जी को ही पति माना, उस का भी कुछ फल न निकला। इस से अब हम को जान पड़ा कि अब तक तो आप भी एकपत्नीव्रत रहे, परन्तु अब हमारे न होने पर पिता की आज्ञा पूरी कर वन से लौट, यज्ञ व्रत पूरे कर, बड़ी २ आंखों वाली स्त्रियों के सङ्ग आनन्द भोगेंगे । परन्तु ए श्रीरामचन्द्र जी ! हम तो तुम में बहुत दिनों से मन लगाये मरने को तत्पर हैं। अब अपने उत्तम २ व्रत और तप छोड़, हम सी अभागी के जीने पर धिक्कार है । अब हम अपने प्राण विष से या किसी शस्त्र से बहुत ही शीघ्र त्याग देंगी, परन्तु इस राक्षस रावण के घर में तो न कोई विष देगा न शस्त्र, फिर क्या करें ॥

इस भांति रामचन्द्र जी को याद कर सीता जी अतिदुःखित हो, कांपती कांपती उन फूले हुये शिंशिपा वृक्ष के नीचे बैठ गईं और बड़े सोच विचार के पीछे ध्यान किया कि जिस डोर से हमारी चोटी बंधी है, उस को अपने गले में डाल बहुत शीघ्र श्री रामचन्द्र जी के लोक को चली जावें । यह विचार, उस वृक्ष की टहनी पकड़ खड़ी हो, उन में डोर बांध, रामचन्द्र जी का शोच कर ही रहीं थीं कि उन के साथ लक्ष्मण और दोनों कुलों का भी ध्यान मन में आगया । उस से कुछ मन को निश्चय हुआ कि रामचन्द्र जी अवश्य आवेंगे और उस समय शकुन भी शुभ २ दिखलाई दिये, जैसे कि पहिले जनकपुर में धनुष तोड़ने के समय दिखलाई दिये थे । उदास और मरने पर तैयार सीता को उत्तम २ शकुनों ने उस समय फांसी से बचाया, जैसे धनाढ्य मनुष्य को उस के नौकर लोग बचाते हैं और उसी समय बांयीं आंख फड़कने लगी और बांयीं भुजा भी फड़की और फिर बांयीं जङ्घा भी फड़क उठी। जिस ने रामचन्द्र जी का बहुत ही शीघ्र आगमन जनलाया और फिर थोड़ी देर में उन का लाल वस्त्र भी उड़ा, जिस से सीता जी को निश्चय होगया कि अब हमारा मनोरथ बहुत ही शीघ्र पूरा हुआ चाहता है । वह यह समझ अतिप्रसन्न हुईं और सीता जी का सब अङ्ग अतिसुन्दर दीखने लगा और उस समय उन का मुख भी पूर्णमासी के चन्द्रमा के सदृश दृष्टि आने लगा ॥

आकाशवाणी

बड़े पुरे इक्ष्वाकुवंश में महाराजा दशरथ जी हुवे। यह हिंसा को बुरा समझते थे और बड़े सत्यवादी और पराक्रमी थे । यह इक्ष्वाकुवंशी बड़े विख्यात और यशस्वी सब को आनन्ददाता थे । जिन के सब से योग्य बड़े भारी विद्वान् बड़े बेटे श्री रामचन्द्र जी हैं, जिन की रुचि सदैव वेदों में है। यह महात्मा सदाचार से अपने जन और जड़ चेतन सब संसार के पालक और धर्म के वैरियों के घातक हैं। यह महात्मा धन सम्पदादि को त्याग पित्राज्ञा से अपनी स्त्री और भ्राता सहित वन को आये और वन में शिकार खेलते २ उन्हों ने बड़े २ बलिष्ठ और मायावी राक्षस मारे कि रावण अपने जनस्थान वासी बहुत से राक्षस और खरदूषण का वध सुन और उन के मरण को न सह, माया का मृग बना, धोखा दे, उन की स्त्री को हरलाया। तब रामचन्द्र जी ने श्रीमती सीता जी को ढूंढते २ वन में आ, सुग्रीव वानर को अपना मित्र बना, उस के कारण बालि को मार, वानरों का राज्य महात्मा सुग्रीव जी को दे दिया। उन सुग्रीव जी की आज्ञा से हम करोड़ों वानर सीता जी को चारों ओर ढूंढते फिरते हैं। उन्हीं वानरों में से एक हम भी हैं और सम्पाती के बताने से सीता जी को यहां जान, सौ योजन समुद्र लांघ आये हैं। यहां जिस रङ्ग रूप और चिन्हों को सीता जी को हमने रामचन्द्र जी के मुख से सुनीं थीं, वैसी ही आज पाई हैं ॥

सीता जी—(ऊपर को मुख कर, वृक्ष को देख, श्री रामचन्द्र जी का ध्यान कर, प्रसन्न हो, पत्तों में देखने लगीं और बड़े घने पत्तों में बैठे हनुमान् को देख, पहिले तो डरीं और कलेजा धड़कने लगा, परन्तु दूसरे देखने में वह तो बड़ा प्यारा वानर ज्ञात हुआ। उसे बहुत संशय में बैठा देख, बड़ा आश्चर्य किया और सोचा कि यह तो बड़ा भयानक वानर है और बड़े भय से देखा जाता है और फिर कुछ भय और प्रेम से होले २ रोने लगीं और बोलीं) हा राम ! हा लक्ष्मण ! (और हनुमान् निकट चले आये, तो विचार किया कि हम स्वप्न तो नहीं देखतीं और सोच कर देखा तो बड़ा गिरांडील वानर दृष्टि पड़ा। उसको देख बड़ी विस्मित हुईं और समझा कि यह रावण अपना वेष बदल आया है और शोक में मृततुल्य हो, मूर्छित होगईं । कुछ देर में मूर्छा जागी तो सोचने लगीं कि हम ने यह स्वप्न ही देखा है और कुछ नहीं परन्तु स्वप्न में वानर का देखना अति अशुभ है। रामचन्द्र जी

वा लक्ष्मण जी वा दशरथ जी वा पिता जनक जी का परमात्मा कल्याण करे। यह तो स्वप्न नहीं है, क्योंकि इस कष्ट में नींद तो हम को आती ही नहीं, फिर स्वप्न कैसा ? श्री रामचन्द्र जी से अलग रहने में हम को ही सुख नहीं और शेष तो सब प्रसन्न होंग, क्योंकि हम रामचन्द्र जी का सदैव ध्यान रखती हैं और सदैव उन का नाम लेती हैं, इस कारण सदैव उन का ही ध्यान बना रहता है। इस लिये उन्हीं को देखतीं और सुनतीं हैं और उन्हीं रामचन्द्र जी के लिये हम यह दुःख उठा रही हैं। या मनोरथ हो, परन्तु मनोरथ का तो कोई रूप नहीं होता और यह तो सब प्रकार वानर दृष्टि आता है और साफ़ २ बातें कहता है। यह मनोरथ कैसे हो सकताहै, यह तो और ही कुछ है। हम इन्द्र बृहस्पति और ब्रह्मा जी को प्रणाम करती हैं कि इस वानर का वचन सत्य हो, असत्य न हो) ॥

हनुमान्-(वृक्ष से उतर, प्रणाम कर, जानकी जी के निकट खड़ा हो, हाथ जोड़ शिर पर रख) ए देवि ! बहुत मैले रेशमी वस्त्र धारण किये तुम कौन हो, जो वृक्ष की टहनी पकड़े खड़ी हो और क्यों खड़ी रोती हो ? ए शोभने ! देवता हो वा दैत्य हो, नाग हो, गन्धर्व हो, राक्षस हो, यक्ष हो या किन्नर हो कौन हो ? हम को तो देवताओं से भी अधिक सुन्दर जान पड़ती हो। क्या तुम स्वर्ग से उतरी हुई रोहिणी हो ? तुम किस मनुष्य का शोच कर रही हो ? ए देवि ! बतलाओ तो, कहीं तुम अपने पति को अप्रसन्न कर यहां अरुन्धती तो नहीं आगई ? तुम अपने पिता भ्राता भर्त्ता का नाम तो बतलाओ ? परन्तु पृथिवी पर खड़े होने और कभी २ गर्म श्वास लेने से हम तुम को देवी नहीं मानते क्योंकि यह तीनों कर्म देवताओं के नहीं, वरन बारंबार राजा रामचन्द्रजी का नाम लेने से हम तुम को महाराज श्रीरामचन्द्रजी की रानी और राजा जनक जी की कन्या समझते हैं, जिन को जनस्थान से धोखा दे, रावण ले आया। जो वह हो तो हम को बतलाओ ? क्यों कि तुम गम्भीरस्वभाव हो और साधारण मनुष्यों की नांई नहीं जान पड़तीं। तुम्हारा तो तपस्वियों का सा वेष है, इस से अवश्य महाराज श्री रामचन्द्र जी की पटरानी जान पड़ती हो।

जानकी-(प्रसन्न हो) इस जगत में राजाओं में महाराजा दुष्टों के घातक राजा दशरथ जी की तो हम पुत्रवधू हैं और विदेह महात्मा जनक जी की कन्या, सीता हमारा नाम है और श्रीमान् श्री रामचन्द्र जी की हम भार्या

हैं। विवाह से पीछे बारह वर्ष तक तो आनन्दपूर्वक अयोध्या में रहीं, तेरहवें वर्ष राजा ने जब रामचन्द्र जी के राजतिलक की तैयार की और सब सामग्री एकत्रित होगई तो कैकयी ने राजा से कहा कि जो रामचन्द्र जी का राजतिलक होगा तो हम जीती न रहेंगी और न अन्न जल करेंगी। इस लिये प्रसन्न होकर हमारे वरदान पूरे करो। उन में एक से तो रामचन्द्र वन को जायं और दूसरे से भरत राज्य पावें। राजा यह सुन, बहुत उदास हुवे। वे बूढ़े तो थे ही, परन्तु सत्यवादी थे। उन्हों ने इन महात्मा रामचन्द्र जी से राज्य मांग लिया। रामचन्द्र जी तो पहिले ही से मनोरथ कर चुके थे, परन्तु फिर अपने मुख से भी कह दिया, क्योंकि सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी का यह स्वभाव है कि आप दान देते हैं, लेते नहीं और सदा सत्य बोलते हैं, झूंठ नहीं कहते। इस कर्म में तो चाहे उन के प्राण भी जाते रहें, परन्तु वह वैसा ही करते हैं। फिर वे सब धन, धान्य, राज्य छोड़, अपनी माता की आज्ञा ले, चल दिये और चलते समय हम भी उन के साथ चलने को तैयार होगईं, क्योंकि बिना उन महाराज के हम को स्वर्ग भी अच्छा नहीं और उन के छोटे भाई लक्ष्मण तो हम से पहिले ही चलने को तैयार हो, चीरवल्कल पहन चुके थे। अब हम तीनों राजा दशरथ जी की आज्ञा से वन को चले और वन में यहां दण्डकारण्य में बसे। महापराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी की भार्या, हम को दुष्ट रावण ले आया॥

हनुमान् जी–ए देवि! हम रामचन्द्र जी के दूत हैं, तुम्हारे पास समाचार लाये हैं। ए वैदेहि! रामचन्द्र जी प्रसन्न हैं, उन्हों ने अपना कुशल कहा और तुम्हारा कुशल पूंछा है। ए देवि! जो रामचन्द्र जी सब वेदशास्त्र जानते हैं, उन्हों ने अपना कुशल कहा और तुम्हारा पूंछा है और अपने भाई के अनुचर महानियमधारी लक्ष्मण जी ने बड़े शोक में अपने शिर से तुम को प्रणाम कहा है॥

सीता जी–यह बात सत्य ही जान पड़ती है कि दुःखित मनुष्य को सौ वर्ष पीछे सुख मिल सकता है (और उस वृक्ष के नीचे बैठ गईं)

हनुमान् जी–(फिर हाथ जोड़, प्रणाम किया)

सीता जी–(हनुमान् को रावण जान चुप, फिर हनुमान् की ओर न देखा और लम्बे श्वास ले) जो तुम मायावी रावण हो और रूप बदल २ हम को दुःख देते हो, यह कर्म तुम्हारा अच्छा नहीं, क्योंकि हमने तुम को अपना-

रूप छोड़ दण्डी का रूप बनाये जनस्थान में देखा है, इस लिये हम को निश्चय है कि तुम रावण ही हो। जो तुम हम दुःखित को दुःख देते हो, तो तुम बुरा कर्म करते हो, परन्तु तुम को तो देख हमें प्रीति उत्पन्न होती है, इस लिये हम विचार करती हैं कि तुम रावण भी नहीं हो और निस्सन्देह जो तुम श्री रामचन्द्र जी के दूत हो तो तुम्हारा कल्याण हो। ए वानर ! हम तुम से रामचन्द्र जी की कथा ब्योरेवार पूछती हैं, क्योंकि वह ही हम को प्यारे हैं। ए वानर ! हमारे प्यारे रामचन्द्र जी की कीर्ति कहो। ए वीर ! तुम हमारा मन ऐसे खैंचे लेते हो, जैसे नदी का जल अपने तट को खैंच लेता है। आहा, स्वप्न के आनन्द को हम क्या कहैं कि जो बहुत दिन की छोड़ी हुई रामचन्द्र जी का भेजा वानर दूत देखती हैं। बड़े आश्चर्य की बात है, क्या कहैं कि स्वप्न में भी लक्ष्मण समेत हम श्री रामचन्द्र जी को नहीं देखतीं, जो उन को स्वप्न में भी देख लेतीं तो भी कुछ आनन्द मिलता। हमारा तो स्वप्न भी अभागी है, कभी हमारे पास ही नहीं आता। हम इस को स्वप्न भी नहीं मानतीं, क्योंकि जो स्वप्न में वानर दिखाई देता है तो देखने वाले को सुख नहीं मिलता और हमने सुख पाया। इस लिये यह स्वप्न भी नहीं हो सकता, फिर या तो चित्त का भ्रम होगा या वायु का विकार या मृगतृष्णा, परन्तु यह बात भी नहीं क्योंकि भ्रम में तो अपना पराया कुछ नहीं सूझता (इसी प्रकार विचार कर सीता जी ने हनुमान् जी को फिर रावण ही विचारा और चुप हो गईं)

हनुमान्-(जो सूर्यचन्द्रसमान तेजधारी और कुबेर की नाईं सब के राजा और धर्म में विष्णु बृहस्पति की नाईं, सत्यवादी व मृदुभाषी कुलीन लोगों में श्रेष्ठ और जिन को मृग के पीछे दौड़ते सूने वन में से रावण तुम को हर लाया है, उस का फल देखोगी और इस रावण को बहुत जल्दी वही श्रीमान् रामचन्द्र जी क्रोध में हो, अग्निसमान बाणों से मारेंगे। उन्हीं के भेजे हुवे हम दूत तुम्हारे पास आये हैं और वह तुम्हारे अलग होने के कारण से दुःखित हो रहे हैं और अपना कुशल तुम से कहा और तुम्हारा कुशल पूछा है और तपस्वी सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी ने प्रणाम कर, अपना कुशल कह, तुम्हारा कुशल पूछा है और श्री रामचन्द्र जी के मित्र वानर-राज सुग्रीव जी ने भी अपना कुशल कह, आप का कुशल पूछा है। सदैव सुग्रीव लक्ष्मण समेत रामचन्द्र जी तुम्हारा विचार किया करते हैं। बड़ी

प्रसन्नता की बात है कि जो तुम राक्षसों के बीच में अब तक जीती हो। अब बहुत जल्द रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी और करोड़ों बानरों के साथ सुग्रीव जी को भी देखोगी। हम उन्हीं सुग्रीव जी के मन्त्री हनुमान् नाम बानर समुद्र कूद, इस दुष्ट रावण के शिर पर चरण रख, लङ्कापुरी में घुस आये हैं। ए देवी! जो आप हम को रावण समझीं, यह आप की भूल है। अब कृपा कर आप इन शोच विचारों को त्याग, हमारे कहने से निश्चय जाने॥

जानकी जी—तुम्हारा और रामचन्द्र जी का मेल कहां पर हुआ? और लक्ष्मण को तुम कैसे जानते हो और वानरों और नरों का संग किस प्रकार हुआ? ए वानर! रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी का वृत्तान्त भी कहो, जिस से हम को निश्चय हो। उन रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी के सब चिह्न बताओ? सूरत कैसी? हाथ पांव कैसे हैं? यह सब बातें हम को बताओ, तब हम निश्चय जाने कि उन्हीं के दूत हो॥

हनुमान्—ए वैदेहि! तुम उन के सब चिन्ह जानकर हम से पूंछती हो, हमारे अहोभाग्य हैं। अब तुम रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी के चिन्ह ब्योरे-वार सुनो—ए जनककुमारी! श्रीरामचन्द्र जी के कमलरूपी नेत्र हैं और चन्द्रसमान मुख का रूप है। विधाता ने अकेले ही उत्पन्न किये हैं। यह सब अद्भुत बातें उन्हीं में हैं। तेज में सूर्यसमान, बुद्धि में बृहस्पति के और यश में इन्द्र के और प्रजा की रक्षा करने में धर्म के समान व्रत के पालने वाले हैं। ए देवि! रामचन्द्र जी तीन लोकों के पालने वाले और मर्यादा के बांधने वाले ही हैं और अतिसुन्दर रूप, देखने योग्य, ब्रह्मचारी हैं। साधुओं का उपकार करने वाले, ब्राह्मणों के आधीन, ज्ञानी, सब शास्त्र जानने वाले हैं और शत्रुओं के लिये तो कालरूप हैं और चार वेद वेदाङ्गों को भलीभांति जानते हैं। बड़ी चौड़ी छाती है, लम्बी २ भुजा हैं, मृदुभाषी हैं, अङ्ग सब सुडौल, जैसा चाहिये श्याम रङ्ग है, भौंहें धनुष् को भी लज्जित करती हैं, छाती तीन अङ्गुल ऊंची, नख, हथेली, तलुवे सब लाल हैं। अंगूठे के नीचे चार रेखा हैं और छाजके अङ्कुश का अङ्ग है और लक्ष्मण जी भी थोड़े २ उन्हीं की सूरत के हैं, सब रङ्ग का अन्तर है। लक्ष्मण का रङ्ग गौर है और रामचन्द्र जी का श्याम। वे दोनों सिंह आप के देखने के लिये बड़े बेचैन हैं। दोनों भ्राता तुम को ढूंढते २ बहुत से वनों में फिरते २ ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुंचे। वहां अपने बड़े भाई बालि के भगाये, डरते और दुःखित

वानरों के साथ व नरराज सुग्रीव जी रहते थे और हम लोग तो राजा सुग्रीव जी की पहिले ही से सेवा करते थे, जब तक कि वे राजा भी न थे। वे चीर वल्कल पहिने,धनुष् हाथ में लिये धनुर्धारी दोनों सिंहों को देख,भय मान, पर्वत की शिखा पर चढ़ गये और धीरे से बैठ, हम को निकट भेजा। हम सुग्रीव जी की आज्ञा पाय, हाथ जोड़, रामचन्द्र जी के सन्मुख जा खड़े हुवे और अपना समाचार कह, उन का सब वृत्तान्त पूंछा। जिस समय हम जानगये तो उन दोनों को पीठ पर चढ़ाय ले आये और सब हाल महात्मा सुग्रीव जी से कह दिया। जिस समय महात्मा रामचन्द्र जी की सुग्रीव से प्रीति होगई तो फिर दोनों ने अपना २ पिछला वृत्तान्त कह,आदर सन्मान किया। प्रथम अपनी स्त्री हरजाने का सुग्रीव जी ने वृत्तान्त कहा। फिर लक्ष्मण जी ने तुम्हारे लेजाने का वृत्तान्त वर्णन किया। उस समय सुग्रीव जी बहुत उदास और बेचैन हो गये और तुम्हारे फेंके हुवे आभूषण और दुपट्टा जो कि रावण के ले जाने के समय तुमने पर्वत पर हम लोगों के पास फेंक दिये थे, वानरों से मंगवाय, रामचन्द्र जी को दिये, परन्तु तुम्हारा यह वृत्तान्त न जानते थे कि कहां हो। वे वस्त्राभूषण मैंने ही रामचन्द्र जी को दिये थे। उन को रामचन्द्र जी ने बारंबार छाती से लगाया और मूर्छित हो गये। जब थोड़ी देर में मूर्छा जाती रही तो वह महात्मा रामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी को दिखा, सुग्रीव जी को सौंप दिया। ए आर्ये! वे रामचन्द्र जी तुम को न देखने से अति दुःखित हैं। जैसे प्रतिदिन आग के जलने से पर्वत तप जाता है,वही दशा रामचन्द्र जी की है। तुम्हारे अलग होने से रामचन्द्र जी कांपते भी हैं। ए राजकन्या! विना तुम्हारे रामचन्द्र जी को उत्तम २ वन, नदी और पर्वत, फिरने अच्छे नहीं लगते। ए जनकनन्दनि! रावण को कुटुम्ब सहित मार, बहुत शीघ्र वे पुरुषसिंह तुम को पावेंगे, क्योंकि रामचन्द्र जी व सुग्रीव जी ने यह प्रण आपस में कर लिया था कि श्री रामचन्द्र जी तो बालि को मारें और सुग्रीव आप को ढूंढ देवे। सुग्रीव ने किष्किन्धापुरी में लेजाकर बालि को मरवा डाला, अर्थात् रामचन्द्र जी ने बालि को मार, सुग्रीव को सब रीछ वानरों का राजा बना दिया। इस प्रकार रामचन्द्र जी और सुग्रीव जी का मेल हुआ है और हम उन्हीं के भेजे हुवे दूत यहां आये हैं। जिस समय कि सुग्रीव जी ने राज्य पाया,उस समय बड़े बलवान् वानरों को दशों दिशाओं में आप के ढूंढने के लिये भेजा और सब वानर

आज्ञा पाय ढूंढने को चले गये। इसी प्रकार हम और २ भी बहुत से वानर आप को ढूंढते २ पृथिवी पर फिर रहे हैं। जितने कि ढूंढने को जाने से शेष रहे, उन में से चौथाई को किष्किन्धापुरी की रक्षा के लिये छोड़, शेष तीन चौथाई को बालि के पुत्र अङ्गद अपने साथ ले इधर को चले थे, परन्तु विन्ध्याचल पर आकर मार्ग भूल गये और सब को वहां बहुत दिन बीत गये कि लौट जाने का समय भी बीत गया। तब वानर मारे शोक के आतुर हो, सुग्रीव जी के भय से मरने को तैयार हो गये, क्योंकि सब नदी पर्वत वन ढूंड लिये, परन्तु तुम्हारा पता न पाया और उलटे फिरने का भी समय बीत गया। अङ्गद ने रो रो कर कहा कि देखो, बालि भी मारा गया, परन्तु सीता जी का पता न लगा, बड़ी लज्जा की बात है। इस पर सब वानर मरने को उद्यत हो गये और बोले कि जटायु ने तौ रामकाज में अपने प्राण दे दिये और हम से कुछ न हो सका। यह कह ही रहे थे कि एकाएकी जटायु का भाई सम्पाती गिद्ध हमारे निकट आया और जटायु का मरण सुन, हम से कहने लगा कि हमारे जीते जी हमारे भाई जटायु को किसने मारा और किस जगह मारा ? यह हम को बतलादो ॥

इस पर अङ्गद ने जनस्थान में जटायु के मारे जाने का सब वृत्तान्त ब्यौरेवार बतला दिया। उस समय सम्पाती ने क्रोध में आ, तुम्हारा यहां का रहना हम से वर्णन किया। यह समाचार जानने पर हम सब वानर चलने को तैयार हो गये और पर्वत से उतर, समुद्र के किनारे पर आय, आप के देखने का अभिलाष तौ सब ने किया, परन्तु समुद्र उतरने के भय से सब लाचार हो गये। उसी समय हमने सोचा कि ये लोग समुद्र पार जाने का भय कर रहे हैं, तुम क्यों नहीं चलते और सब का भय दूर कर समुद्र को कूद यह राक्षसों से भरी पुरी लङ्का हमने देखी और रावण को भी देखा और अतिदुःखी तुम को भी देखा। ए जनकनन्दनि ! यह सब हाल हमने तुम से कहा। ए देवि ! आप हम से प्रसन्न हो, कृपा कीजिये। हम श्रीरामचन्द्र जी के दूत हैं, हम को पवनपुत्र और सुग्रीव जी के मन्त्री समझिये। श्रीमान् रामचन्द्र जी प्रसन्न हैं और लक्ष्मण जी उन की सेवा कर रहे हैं। परन्तु सुग्रीव जी की आज्ञा से हम अकेले ही यहां आये हैं और निर्भय हो, लङ्का में फिरे हैं और यह दक्षिण दिशा भी सब अच्छी तरह से देखली, परन्तु धन्य भाग्य हमारे कि तुम को देख, तुम्हारा कुशल वानरों से कहेंगे और तुम्हारा

वृत्तान्त कह उन का दुःख दूर करेंगे और यह भी बड़ी प्रसन्नता की बात हुई कि हमारा यहां समुद्र पार आना निष्फल न हुवा। ए देवि ! हम तो तुम्हारे दास हैं। अब यह प्रशंसा हमारे ही बंट में आवेगी और श्रीमान् रामचन्द्र जी कुटुम्ब सहित रावण को मार, तुम को पावेंगे। जो आप कहें कि वानर पवनपुत्र कैसे ? तो वह भी वृत्तान्त सुनिये—

हनुमान् का वृत्तान्त–

एक माल्यवान् नामक पर्वत है। वहां पर केसरी नाम वानर गोकर्ण पर्वत पर रहते थे। यह केसरी हमारे पिता हैं, उन्हों ने समुद्र में घुस शम्बसादन दैत्य को मारा। इन्हीं की अञ्जना नाम स्त्री हैं। जिन से हम उत्पन्न हुवे और अपने कर्मों से सब लोक में हनुमान् विख्यात हैं। ए देवि ! हमने अपने पिता की बड़ाई तुम्हारे मन को निश्चय होने के लिये की। ए देवि! बहुत ही जल्द श्री रामचन्द्र जी तुम को यहां से ले जावेंगे॥

सीता जी ने इन सब बातों से हनुमान् को रामचन्द्र जी का दूत माना और अति प्रसन्न हुईं और राक्षसों का ध्यान मन से जाता रहा॥

हनुमान्-ए मैथिलि ! यह सब वृत्तान्त हमने आप से कहा। अब आप हम से प्रसन्न हों। हम शीघ्र ही रामचन्द्र जी के निकट जावेंगे। तुम्हारी क्या इच्छा है ? ऐसे ही चुपके से चले जावें या कुछ और कर्त्तव्य दिखलावें? क्योंकि हम पवन के पुत्र चाहे वानर ही हैं, परन्तु काम सब पवन के से कर सकते हैं। ए देवि ! हम वानर हैं और महाराज रामचन्द्र जी के दूत हैं। देखो, उन का नाम लिखी हुई उन की अङ्गूठी भी लाये हैं। वह जो तुम्हारे निश्चय करने को उन महात्मा ने दी है। अब कष्ट के दिन गये, आप इस को देख कर प्रसन्न हों॥

सीता जी-(अंगूठी ले, अति प्रसन्न हो, हनुमान् को प्यार कर) ए वानर ! तुम बड़े शूरवीर और सामर्थ्यवान् विद्वान् हो, जो तुम अकेले ही निर्भय हो, इस राक्षसस्थान को चले आये और फिर लङ्का और सौ योजन का समुद्र गौ के खुर के समान कर दिखाया। ए वानर ! देखो तुम को रावण से भी भय नहीं, इस लिये हम तुम को और वानरों के समान नहीं समझतीं और तुम अवश्य बात चीत करने के योग्य हो, क्योंकि रामचन्द्र जी के भेजे दूत हो और रामचन्द्र जी ने भरोसा कर तुम को हमारे पास भेजा है। वे सुमित्राके आनन्द बढ़ाने वाले लक्ष्मण जी प्रसन्न हैं ? और जो रामचन्द्र जी प्रसन्न हैं

तौ क्रोध में समुद्र को क्यों नहीं भस्म कर देते ? वे रामचन्द्र जी व लक्ष्मणजी तौ देवताओं को भी दण्ड दे सकते हैं, परन्तु हम जानती हैं कि हमारे दोषों का अन्त नहीं आया। भला रामचन्द्र जी हमारे वियोग में बलहीन तौ नहीं हो गये ? अपने सब कर्म किये जाते हैं और इस दुःख के दूर करने का मार्ग सोच रहे हैं ? भला वे राजकुमार शूरवीरों केसे कर्म करते हैं ? भला जीतने के लिये भान्ति २ के प्रबन्ध सोच रहे हैं ? भला अपने मित्रों से मिलते हैं और उन के साथ उठते बैठते हैं और उनके मित्र उनका आदरसन्मान और प्रतिष्ठा करते हैं ? भला दैव बल पुरषार्थ इन का भी कुछ ध्यान रखते हैं ? भला हमारे अलग होने से हम को भूल तो नहीं गये ? भला हमको इस दुःख से छुड़ावेंगे ? भला वे शोक में अचेत तौ नहीं होते ? भला कौशल्या जी व सुमित्रा जी व भरत जी का कुशल तो उन को मिलता रहता है ? भला हमारी ओर से ध्यान तो नहीं बदल गया ? हमारे शोक को हरेंगे ? भला हमारे छुड़ाने के लिये भरत जी से कुछ सेना मंगावेंगे ? भला सुग्रीव जी वानरों की सेना ले हमें छुडाने को आवेंगे ? भला सुमित्रा जी के आनन्द देने वाले लक्ष्मणजी राक्षसों को अपने पैने २ वाणों से मारेंगे ? भला हम थोड़े ही दिन में अधिक तेज वाणों से मरा हुवा रावण और रावण का कुटुम्ब देखेंगी ? भला वह रामचन्द्र जी का कमल सा मुख हमारे शोक में सूख तो नहीं गया ? भलाजो रामचन्द्र जी निर्भय वन में फिरते थे, अब भी निर्भय फिरते हैं क्योंकि रामचन्द्र जी को हम से अधिक प्यारा माता भ्राता कोई भी नहीं। इस लिये हम जब तक रामचन्द्र जी का नाम सुनती हैं, तब ही तक जीती हैं ॥

हनुमान्-(हाथ जोड़, शिर पर रख, शिर झुकाकर) एदेवि ! महाराज रामचन्द्र जी को तुम्हारा व्यौरा ज्ञात नहीं था, इस कारण तुम्हारे लेने को नहीं आये। जिस समय हमारे मुख से तुम्हारा वृत्तान्त सुनेंगे, शीघ्र ही रीछ वानरों की सेना ले, यहां आ, इस समुद्र को अपने तीरों से पाट, लङ्का में उजाड़ कर देंगे और जो असुर और देवता इस की सहायता करेंगे, उन को भी मार डालेंगे। एआर्य्ये ! तुम्हारे वियोग से रामचन्द्र जी को सुख नहीं। ए देवि ! हम मन्द्राचल के फल मूल और मलयाचल और विन्ध्याचल व मेरु की सौगन्ध खाते हैं कि कुण्डल पहिने, तीरकमान लगाये, शीघ्रही तुम रामचन्द्र जी को देखोगी। ए देवि ! इस में कुछ भी सन्देह नहीं कि तुम रामचन्द्र जी को शीघ्र ही पावोगी। रामचन्द्र जी ने तुम्हारे वियोग में

सब सुख छोड़ दिये हैं। मीठा भोजन तो करते ही नहीं। सन्ध्या के समय कुछ थोड़ा सा पसाई का भात खालेते हैं। जब से तुम वहां नहीं हो राम चन्द्र जी मक्खी, मच्छर, डांस आदि को अपने ऊपर से नहीं हटाते, काट लेने देते हैं और सदैव तुम्हारे ध्यान में रहते हैं। जब कभी कुछ इच्छा होती है तो तुम्हारा ही नाम लेते हैं। तुम्हारे सिवाय किसी का ध्यान ही नहीं करते। प्रथम तो कभी सोते ही नहीं और जो सो भी गये तो "सीता" ऐसे हौले कह, उठ खड़े होते हैं। अच्छे २ फल फूल जिस समय देखते हैं "हा प्रिये २!" कह देर तक पड़े रहते हैं और तुम्हारे मिलने का ध्यान सदैव रखते हैं॥

सीता जी–ए हनुमान्! तुमने जो यह कहा कि हमारे सिवाय रामचन्द्र जी और वस्तु का ध्यान ही नहीं करते, इस से तो हम को भी बड़ा शोक हुवा। मनुष्य चाहे सुख में हो वा दुःख में, परन्तु काल इस को रस्सी में बांध कर ले जाता है। देखो, इस समय रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी व हम तीनों दुःखी हैं। इस दुःख से पारकर्त्ता श्रीरामचन्द्र जी हैं। जैसे जहाज़ डूबने से तैरता हुवा मनुष्य समुद्रपार नहीं जा सकता, वैसे ही हमारी गति है। रावण और राक्षसों को मार, महाराज रामचन्द्र जी हम को कब देखेंगे। उन से कहना, जल्दी करें। जब तक यह वर्ष पूरा नहीं होता, तब ही तक हम जीती हैं, क्योंकि रावण ने हमारे मारने के लिये एक वर्ष का नियम किया है, जिस में से हम को यहां आये दसवां महीना तो है ही, बस दो महीने और शेष रहे हैं और यह भी उन के भाई विभीषण ने बहुत ही धर्म से समझा बुझा, एक वर्ष को उसी से कहलवा दी है और समझाते समय विभीषण जी ने यह भी कहा था कि इन रामचन्द्र जी की भार्या को फेर आओ, परन्तु उस ने स्वीकार नहीं किया, क्योंकि रावण तो अब मृत्यु के वश में पड़ा है और काल उस को ढूंढ रहा है। इस से उस को हमारा देना प्रिय नहीं लगता। यह बात हमने विभीषण की पुत्री अनिला से सुनी है, उस ने अपनी मा से सुन कर हम से कही थी। रावण का एक बड़ा मित्र सुधानन्दनाम राक्षस है, उस ने बहुत भांति से कहा कि जानकी रामचन्द्र जी की ओर से राक्षसों को कालरूप है। तुम जानकी रामचन्द्र जी को दे आओ, परन्तु रावण ने उस का भी कहना नहीं माना। ए वानर! हमारा मन शुद्ध है और रामचन्द्र जी में सच्चा स्नेह है। इस से ही हम कह सकती हैं कि

हमारे स्वामी हम को जल्द मिलेंगे। जिन अकेले रामचन्द्र जी ने जनस्थान में चौदह सहस्त्र राक्षस मार डाले, वे क्या इस को न मारेंगे? भला ऐसा कौन है, जो उन से न डरे? उन रामचन्द्र जी और इन राक्षसों में समानता नहीं हो सकती। ए वानर! जैसे शची जी इन्द्र जी का वृत्तान्त भलेप्रकार जानती हैं, वैसे ही हम भी रामचन्द्र जी का वृत्तान्त भलीभांति जानती हैं॥

हनुमान्–ए सीता! हमारे मुख से यह वृत्तान्त सुन, बहुत जल्द रीछ वानरों की बड़ी भारी सेना ले, रामचन्द्र जी यहां आवेंगे। नहीं तौ तुम अभी हमारी पींठ पर सवार हो जाओ, हम अभी तुम को राक्षसों के भय से छुड़ाते हैं और तुम को तौ हम बहुत सुख से पींठ पर चढ़ा, समुद्र पार ले जावेंगे। क्योंकि हम रावण को भी कुटुम्ब सहित पींठ पर चढ़ा, समुद्र पार ले जा सक्ते हैं। इस प्रबन्ध से आज ही प्रस्त्रवण नाम पर्वत पर हम तुम को रामचन्द्र जी के निकट पहुंचा सकते हैं और आप आज ही लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी को देखेंगी। जैसे कि हिरण्यकश्यप के मारने के समय सब ने शीघ्र ही नरसिंह जी को देखा था। ए देवि! रामचन्द्र जी को तुम्हारे मिलने का बड़ा अभिलाष है और इसी लिये तुम भी मरने को तैयार हो। इस से ए सीते! सोच विचार न करो और हमारी पींठ पर सवार होजाओ और शीघ्र ही रामचन्द्र जी से मिलो। ए देवि! हमारी पींठ पर बैठ, आकाश मार्ग से समुद्र पार उतरो। जिस समय हम तुम को यहां से लेकर चलेंगे, उस समय हमारे पीछे लङ्का में से कोई भी नहीं चल सकता। इस लिये ए देवि! आप जिस रीति से यहां आई हैं, उसी रीति से हम लेजायंगे। आप देख लेना॥

जानकी जी—(प्रसन्न हो) ए हनुमान्! यहां से बहुत दूर का अन्तर है। तुम हम को कैसे लेजा सकते हो? ए दूत! हम तो वानरों का बल थोड़ा सा मानती हैं, जैसा कि वानरों में हुआ करता है। तुम्हारे कहने के समान नहीं मानतीं। ए वानर! तुम्हारा अङ्ग भी तो बहुत छोटा सा है भला तुम हम को कैसे रामचन्द्र जी के पास पहुंचा सकते हो?

हनुमान्—([मन में] आज पहिले ही पहिल सीता जी ने हमारा यह निरादर किया कि जो छोटा सा अङ्ग बतला दिया, परन्तु ये कुछ हमारा प्रभाव नहीं जानतीं, अब हम अपना रूप तो इन को दिखला दें [प्रकट में] सम्मुख खड़े हो, बढ़ने लगे, यहां तक कि मन्दराचल व सुमेरु पर्वत के समान

दीखने लगे और) ए माता ! इस रूप व बल से तो पर्वत और सब राक्षसों के मकान उठाने की शक्ति हमारे में जान पड़ती है ? अब इस से तो निश्चय कीजिये। इस से तो आप को विचार की आवश्यकता ही नहीं । ए वैदेहि ! अब तो चलो और रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी का सोच दूर करो ॥

सीता जी—ए महाकाय ! हमने तुम्हारा बल पौरुष तो देख लिया कि पवन के समान तो तुम्हारा वेग है, परन्तु अपने विचार से अवश्य सोचने योग्य हो । ए वायुवेग ! कपिश्रेष्ठ ! तुम्हारे साथ हमारा जाना योग्य नहीं, क्योंकि जब तुम अपने वेग से चलोगे तो उस वेग से हम अचेत हो जायंगी और असावधानी में या तो मर जायंगी वा समुद्र में गिरने से जल जन्तु हम को खा जायंगे। इस लिये हम तुम्हारे साथ नहीं चल सकतीं। हम स्त्री हैं। तुम्हारे साथ जाने में हमें खटका है कि जिस समय तुम हम को लेकर भागोगे, उसी समय बड़े २ राक्षस तुम्हारे पीछे दौड़ेंगे। तुम शूल मुद्गर लिये राक्षसों की लड़ाई में हमारी ओर से असावधान होजाओगे, क्योंकि राक्षस लोग तो शस्त्र लिये होंगे और तुम विना शस्त्र, और इस के सिवाय हमारी रक्षा करोगे या युद्ध करोगे ? भला सोचो तो कि उसी समय हम को संभालोगे ? जो तुमने संभाला भी और हम ही युद्ध के भय से पृथिवी पर गिर पड़ीं तो कैसे होगी ? देखो, राक्षस भी बड़े बलवान् हैं, कुछ बलहीन नहीं। जो उन्होंने तुम को जीत लिया तो उन का चाहा कार्य हो ही गया और जो जीत न सके और तुम युद्ध में लग गये और हमारी याद न आई और किसी राक्षस ने अवसर पा, हम को छीन लिया, तो भी यही फल होगा कि वे लोग हम को फिर लङ्का में ला, मार डालेंगे। देखो, युद्ध में हार जीत तो होती ही है। क्या जाने किन की हार हो, किन की जीत हो। जो तुम्हारी जीत हुई तो भी समुद्र पार आना और यह दुःख उठाना सब निष्फल हो जावेगा और जो उन्होंने हम को मारा भी नहीं और और किसी गुप्त स्थान में छिपा दिया तो भी क्या फल होगा। हम यह भी मानलें कि तुम सब राक्षसों से जीत भी गये और हम को कुशलपूर्वक ले भी पहुंचे, परन्तु यह तो बतलाओ कि इस में श्रीमान् रामचन्द्र जी की क्या प्रशंसा होगी ? वरन उलटी निन्दा होगी कि रावण सीता को चुरा ले गया था और एक वानर ले आया । उन से कुछ भी न हो सका। अब विचारो कि काम के होने में तो कुछ लाभ नहीं और न होने में हानि है तो

फिर ऐसा कार्य क्यों किया जावे। ए वानर! तुम सोचलो, जो हम को राक्षस ले आये और किसी गुप्तस्थान में छुपा दिया और रावण भी मारा गया तौ तुम हमारा पता कहां से पावोगे। इस से यही उचित है कि श्रीमान् रामचन्द्र जी तुम्हारे साथ यहां आय, कुटुम्बसहित रावण को मार, हम को यहां से ले जावें, क्योंकि इस में स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध होते हैं। अब इन सब बातों को छोड़ दो और विचारो कि हमारा पतिव्रतधर्म है और यह अवश्य है कि सिवाय श्रीमान् रामचन्द्र जी के अपनी प्रसन्नता से किसी दूसरे पुरुष की पींठ न छुवें और इस दशा में तुम्हारी पींठ पर बैठना होगा। बस यह भी उचित नहीं। जो कहो कि रावण की पींठ पर कैसे आईं थीं? सो उस दशा में असमर्थ थीं, कुछ हमने प्रसन्नता से या सुख के लिये तो यह कर्म किया ही नहीं। क्या करें, उस समय तो कोई हमारा सहायक ही न था, जो हम को उस अन्यायी के हाथ से बचाता। उस ने तो अपने बल से अपने रथ पर हम को सवार कर लिया था। अब श्रीमान् रामचन्द्र जी यहां आ, रावण को मार, हम को यहां से ले चलें, यही उचित है, इस में उन की भी प्रशंसा है और हमारी भी बड़ाई है। उन महात्मा रामचन्द्र जी का बहुत ही यश हम ने सुना और भले प्रकार जानती हैं कि आज देवता गन्धर्व यक्ष किन्नर राक्षस कोई भी युद्धस्थान में उन के सम्मुख नहीं ठहर सकता। फिर इस रावण विचारे की तो क्या गिनती है, यह तो पहिले ही से सम्मुख आने से जी चुराता है। ए हनुमान्! तुम को यही उचित है कि श्रीमान् रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी व सुग्रीव जी को यहां शीघ्र लाओ, भला संसार में कोई है जो उन के क्रोध को सह सके और युद्धस्थान में सम्मुख खड़ा हो सके? वे आते ही आते इन सब राक्षसों का नाश कर देंगे। ए हनुमान्! उन को शीघ्र ही यहां लाकर हम को प्रसन्न करो॥

हनुमान्–ए देवि! तुम ने जो कहा, सत्य है। पतिव्रता स्त्रियों का यही धर्म है। इस में संशय नहीं कि हमारी पींठ पर चढ़, सौ योजन का समुद्र लांघना आप को कठिन है। दूसरे, परपुरुष की पींठ छूना भी अच्छा नहीं ए देवि! तुम्हारा दुःख और सोच और भी जो २ वृत्तान्त तुमने हम से कहा है, सब व्यौरेवार रामचन्द्र जी से कहेंगे। ए मैथिलि! हम ने श्रीमान् रामचन्द्र जी की प्रसन्नता और प्रेम से ले चलने को कह दिया था, क्योंकि हमारी समझ में यहां आप को बड़ा कष्ट हुवा और यह सब अपने दासभाव

से हम ने कह दिया कि आज ही आप श्रीमान् रामचन्द्र जी से मिल जावें। नहीं तो यह बड़ी कठिन बात तो नहीं परन्तु धर्मविरुद्ध तो है ही। माता! अच्छा, अब आप साथ तो चलतीं ही नहीं, परन्तु हम को कुछ चिन्ह तो देदीजिये, जिस से श्रीमान् रामचन्द्र जी को निश्चय हो कि मैं आप के निकट पहुंच गया।

सीता जी- (नेत्रों में जल भर) ए हनुमान्! हमारा सब से अधिक चिन्ह यही है कि तुम रामचन्द्र जी से कहना कि आप को याद होगा कि चित्रकूट की ईशानकोण की चोटी पर जहां बहुत से सिद्ध लोग विचरा करते थे और फल मूल भी भोजन के लिये रखते थे, जहां मन्दाकिनी नदी का मेल है, वहीं एक समय हम आप के पास बैठ गईं थीं कि थोड़ी देर में एक काक ने आकर हमारे ऊपर चोंच चलाई, हम ने उसे ढेले से मारा, परन्तु वह काक बैठा ही रहा और बड़ी भक्ति से हमारी ओर देखता ही रहा। वह यह मनोरथ किये हुवे था कि हमारे अङ्ग से मांस लेकर खावे। हम को क्रोध आ गया और क्रोध की दशा में उस की ओर चलदीं। हमारा कमरबन्ध दृढ बन्धा हुवा था, परन्तु क्रोध के कारण नीचे को खिसक गया और आप हंस दिये और हम लज्जित हो गईं। कुछ क्रोध तो न आया परन्तु लज्जा से आंखों में कुछ आंसू आने लगे और आप की गोद में आकर बैठ गईं। उस समय आपने हम को लज्जित देख बहुत चापलोसी की और हमारे आंसू पोंछे। हम उसी दशा में आप की जांघ पर शिर रख सो गईं और देर तक सोती रहीं। जिस समय आंख खुलीं तो आपने कहा कि हम को नींद आ रही है। हमने आप का शिर अपनी गोद में रख लिया और आप सो रहे। आप के सो जाने पर उस काकने हमारे ऊपर हमला किया। हमने बहुत ही प्रबन्ध किया परन्तु इस विचार से कि आप को दुःख न पहुंचे, सब प्रबन्ध निष्फल हुआ और उस ने हमारी छाती के बीच में चोंच मार, घाव कर दिया कि एकाएक आप जाग उठे और हमारी छाती लोहू से भरी और घाव देख, विषधर सर्प की नाईं गर्म श्वास ले, बोले-ए प्यारी! किसने तुम्हारी छाती में घाव किया है? वह कौन है कि जो विषधर सर्प को क्रुद्ध कर साथ खेलना चाहता है? और चारों ओर देखने लगे कि वह काक चोंच में लोहू लगाये हमारी ओर देखता सम्मुख दृष्टि पड़ा। जिस समय कि आप ने उस की ओर देखा, वह तुरन्त उड़ थोड़ी देर में छिप गया।

उस समय आप को क्रोध आया और आसन में से एक कुशा निकाल उस काक की ओर फेंक दी। बस फिर क्या था, वह कुशारूपी तीर काक के पीछे २ जाता था। काकने बहुत कुछ चाहा परन्तु कहीं उस को बचने की सूरत दृष्टि न आई। लाचार हो, आप के चरणों पर आ गिरा, उस समय आप ने क्षमा किया और यह कहा कि जान से तो बच गये, परन्तु दाहिनी आंख अवश्य यह कुशा फोड़ेगी॥

और ऐसा ही हुआ और काक प्रणाम कर अपने घर को चला गया। और यह कहना कि महाराज! हमारे थोड़े से दुःख पर तो आपने ऐसा भारी दण्ड उस काक को दिया, परन्तु जिसने हम को तुम से अलग करदिया, उस पर अब क्रुद्ध क्यों नहीं होते? अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये। देखिये आप से नाथ के होते हम अनाथ की नांई दुःख पा रहीं हैं। हम सब जीवों में उत्तम और शूरवीर तेजधारी आप को ही जानती हैं। अब राक्षसों पर अपने अग्निरूपी बाण क्यों नहीं छोड़ते। युद्धभूमि में तो सर्प किन्नर गन्धर्व आदि कोई भी आप की सरबर नहीं कर सकता। अब आप जल्द दर्शन दें, परन्तु लक्ष्मण जी भी तो बड़े बलवान् हैं, वे क्यों नहीं आप से आज्ञा ले, इन दुष्ट राक्षसों का नाश करते। जब कि आप दोनों भाइयों से देवता तक भय खाते हैं, तो फिर हमारे सहाय में क्या देर है, परन्तु इस में आप का कुछ दोष नहीं, यह सब देर हमारे कर्मों से ही है कि आप दोनों पुरुष-सिंहों की दयादृष्टि ही नहीं हुई, या यों कहो कि हमारा वृत्तान्त ही नहीं जानते। ए हनुमान्! यह हमारा सन्देश महाराज रामचन्द्र जी से कहना॥

हनुमान्–ए देवि! हम अपने धर्म की शपथ करते हैं कि रामचन्द्र जी को तुम्हारा बड़ा शोक है और लक्ष्मण जी भी इसी शोक में रहते हैं, परन्तु अब शोक का समय नहीं रहा, इस का अन्त समझिये। वह महा-बलवान् पुरुषसिंह राम व लक्ष्मण आप के लिये इन सब शत्रुओं को मारेंगे और रावण का तो परिवार सहित नाश कर आप को अपनी पुरी को ले ही जायंगे। अब आप यह तो कहिये कि श्री महाराज रामचन्द्र जी से आप को और क्या संदेश कहना है और लक्ष्मण जी से क्या और सुग्रीव जी से क्या और सब वानरों से क्या?

सीता जी–ए हनुमान्! कौशल्या जी ने जिन २ दुःखों से उन लोक-भर्त्ता का पालन किया है, उन से हमारी ओर से कुशल पूछना और हमारा

प्रणाम कहना और जिन सुमित्रानन्दन को हमारा पता नहीं, उन से कुशल पूंछ, दुःख मिटाने का निवेदन करना और कहना कि तुम्हारे ही उपदेश से श्रीमान् रामचन्द्र जी हमारे छुड़ाने को तैयार होंगे और इस कार्य में आप ही सहायक हो सकते हैं। और यह भी कहना कि अब बस एक महीने तक हम जीती रहेंगी, पीछे प्राण त्याग देंगी। और बार २ रामचन्द्र जी से यह कहना कि रावण के बंधी पड़ी सीता जी को शीघ्र ही छुड़ाना उचित है और यह हमारा चूड़ामणि चिन्ह के लिये लेते जाओ (और चूड़ामणि देती हैं)

हनुमान्-(चूड़ामणि को शिर से लगा,अंगली में पहनते हैं,क्योंकि उन के पहुंचे में तो आही नहीं सक्ता था और प्रणाम कर, परिक्रमा दे, हाथ जोड़, शिर झुका, सन्मुख खड़े हो, कुछ कहना चाहते थे कि)

सीता जी—ए हनुमान्! इस चूड़ामणि को रामचन्द्र जी भलीभांति पहचानते हैं, इस के देखते ही हमारा व माता कौशल्या व पिता दशरथ जी का ध्यान करेंगे, क्योंकि जिस समय हम विवाह के पीछे अयोध्या में आई थीं, उस समय राजा दशरथ जी के सामने और राजा रामचन्द्र जी के आगे यह चूड़ामणि हम को मुंह दिखलाई में माता कौशल्या जी ने दिया था। वे इस चूड़ामणि के देखते ही आप लोगों को लड़ने की आज्ञा देंगे, इस से तुम को उचित है कि युद्ध के लिये विचार कर रक्खो क्योंकि तुम इस कार्य के योग्य हो, इस लिये अभी से वह विचार करो कि जिस में हमारा यह दुःख जल्द दूर हो जाय॥

हनुमान्-(प्रणाम कर चलने को तैयार हुवे कि-)

जानकी जी-(नेत्रों में जल भर) ए हनुमान्! श्रीरामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी व सब मन्त्रियों सहित सुग्रीव जी से हमारा कुशल कहना और जिस प्रकार कि रामचन्द्र जी हमारा दुःख जल्द दूर कर सकें, तुम वही कार्य करना और ऐसा विचार करना कि जिस से श्री रामचन्द्र जी हम को जीती आ देखें और उन का यश संसार में फैले। ऐसा कह देने व कर देने से तुम भी अपने ऋण से छूट जाओगे और हमारी दशा प्रतिदिन तुम्हारे मुह से सुन २ सदैव श्रीमान् रामचन्द्र जी का पुरुषार्थ बढ़ता रहेगा। और कुछ इस की भी आवश्यकता नहीं वे तो आप ही हमारे छुड़ाने का प्रबन्ध करेंगे॥

हनुमान्-(हाथ जोड़, शिर पर रख) ए देवि! बहुत ही जल्द ठीक

वानरों के साथ श्रीमान् रामचन्द्र जी यहां आवेंगे और इन राक्षसों को मार तुम्हारा दुःख दूर करेंगे, क्योंकि हम तो देवताओं में से भी किसी को ऐसा नहीं देखते कि जो रामचन्द्रजी के बाणके सन्मुख युद्ध तो क्या, खड़ा भी होसके और तुम्हारे लिये तो वे युद्ध में यमराजको भी जीत सकते हैं और समुद्र तो कुछ है ही नहीं। तुम्हारे लिये तो सब संसार को ऊजड़ कर सकते हैं॥

सीता जी—(हनुमान् जी को लाला जान, बड़े प्यार से) ए वीर! जो हमारा कहना मान जाओ तो कहैं। प्यारे किसी गुप्त स्थान में छिप कर एक दिन विश्राम करलो, प्रातःकाल अच्छी तरह सस्ताकर चले जाना। सिवाय इस के तुम्हारे यहां के रहने से दो घड़ी को हमारा भी दुःख बंट जायगा। जो तुम्हारे लौट कर आने में कुछ संदेह हो तो हो, परन्तु हमारे प्राण जाने में तो संदेह ही नहीं होसक्ता। जो आप लोग न आये तो वे अवश्य चले जायंगे और यह तुम्हारा इस समय का मिलना हम को अधिक दुःखदायी होगा। अब हम को एक और सोच पैदा हुआ कि राजा सुग्रीव और उन की सेना और दोनों महाराजकुमार इस अपार समुद्र को कैसे उतरेंगे, क्योंकि सब जीवों में से इस तीन ही जीवों में समुद्र उतरने की शक्ति समझती हैं। प्रथम गरुड़ में, दूसरे तुम्हारे में, तीसरे पवन में; सो इस के लिये तुम ने क्या सोच रक्खा है? यह भी तो बतलाओ? जो कहो कि इस काम के लिये तुम अकेले ही बहुत हो परन्तु रामचन्द्र जी के लिये यह योग्य है कि रामचन्द्र जी सेना सहित यहां आ, रावण को युद्ध में जीत, हम को यहां से ले जावें। बिना सेना श्रीमान् रामचन्द्र के यहां आये में कुछ शोभा नहीं और किस तरह से कि सेनासहित आसकें, यह भी तो बतलाओ?

हनुमान्—ए देवि! वानरराज सुग्रीव जी इस को तो पहिले ही सोच चुके हैं कि राक्षसों के नाश करने को अगणित वानर लङ्का में ले चलने पड़ेंगे, क्योंकि इस समय उन के इकट्ठा करने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं, सब संसार के रीछ वानरों को इकट्ठा कर चुके हैं कि जिन को कोई ऊंचा नीचा तिर्छा चलने से नहीं रोकसकता और वे सब वानर हम से भी अधिक बलवान् हैं। किसी भारी से भारी काम में भी उन को दुःख नहीं होता और वे वानर कई २ बार पृथ्वी की परिक्रमा कर चुके हैं और सब पवन के समान चलने वाले और हम से अधिक बलवान् या बराबर के हैं, परन्तु हम से छोटा और थोड़े बल का कोई भी नहीं और यह आप जानती हैं

कि सेवा और दूतकाम सब से छोटे को दिया जाता है। इसी से विचारो कि जब हम अति छोटे ही इस सरलता से चले आये तो बड़ों का आना क्या कठिन है। ए देवि! अब तुम देखोगी कि वे वानर एकही एक कुलांच में लङ्का के बीचाबीच पहुंचेंगे। अब रहे दोनों रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी, सो वे दोनों हमारी पीठ पर चढ़, तुम्हारे सम्मुख आ खड़े होंगे और यहां आ, अपने पैने २ बाणों से इस लङ्का के चीथड़े उड़ा देंगे। उस समय आप देखेंगी कि जब रावण कुटुम्ब सहित मरा पड़ा होगा और आप अयोध्यापुरी को जा रही होंगी। अब कुछ दिन और संतोष करो, शीघ्र ही श्रीमान् रामचन्द्र जी को यहां देखोगी और रावण के मारे जाने पर आप को रामचन्द्र जी का सुख मिलेगा। ए मैथिलि! अब बहुत जल्द अपना शोक और रावण का कुलनाश एक साथ अपनी आंखों से देखोगी। ए जानकि! अब बहुत ही थोड़ी देर है कि रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी को धनुष्वाण हाथ में लिये, लङ्का के द्वारे पर खड़ा देखो और बड़े २ नखों वाले बलवान् योद्धा वानर साथ में हों। ए सीता! पर्वताकार वानर यहां शोर मचावेंगे। ए माता! रामचन्द्र जी भी तो एक पल आप को नहीं भूलते। उन की भी तो एक २ घड़ी एक २ कल्प के समान बीत रही है। अब तुम शोक न करो, दुःख के दिन गये, सुख के आये। आज संसार में कौन है जो रामचन्द्र जी या लक्ष्मण जी के सम्मुख युद्ध को खड़ा हो? उन का सूर्य से भी अधिक तेज है। ए देवि! बस उस समय तक देर है, जब तक मैं रामचन्द्र जी के सम्मुख नहीं पहुंचता॥

सीता जी—ए वानर! तुम को देख, हम अतिप्रसन्न हुई हैं। जैसे कि महावट के जल को वर्षता देख, किसान लोग प्रसन्न होते हैं। तुम ऐसी कृपा करो कि शीघ्र ही हम को श्रीमान् रामचन्द्र जी के दर्शन होजायं। ए वानर! तुम एक चिन्ह हमारा यह चूड़ामणि देना और दूसरी वह काक की आंख फोड़ने की कथा सुना देना, तीसरी यह कहना कि एक बार हमारे माथे पर से तिलक मिटगया था। तब आप ने एक मनशिल का तिलक अपने हाथ से हमारे मुख पर लगादिया था और कहना कि ए पुरुषोत्तम! आप ऐसे वीर्यवान् हो, राक्षसों के बीच में बसी हम सीता को कैसे अच्छा जानते हो। यह चूड़ामणि हमने अपनी रक्षा में रक्खा था, जिस समय अधिक शोक होता

या इस को देख, मन बहला लिया करती थीं और दुःख भूल जाती थीं। अब यही चूड़ामणि आपके चिन्ह के लिये भेजा है। इस को अङ्गीकार कीजिये और यह भी सुन लीजिये कि एक महीने से अधिक हम नहीं जी सकतीं। सोच लीजिये कि प्रथम तो कठिन दुःख लङ्का का वास, दूसरे राक्षसों के वश में। हम यह सारे कष्ट आप के अर्थ सहती हैं। जो आप एक महीने में यहां न आये तो हम को जीती न पावेंगे। रावण तो हम से सिवाय मार डालने के और कुछ कहता ही नहीं और आप भी एक महीने में न आसके तो हम जी जी कर क्या करेंगी॥

हनुमान्–ए देवि! वह नहीं जानते थे कि यहां हो, नहीं तो अब तक क्या था, तुम उन को आज ही देखतीं। वे तुम्हारे शोक में बड़े दुःखी रहते हैं और लक्ष्मण जी भी उन के सोच में बेचैन हैं। ए सीता! बड़ी कठिनता से आप का पता लगा है, नहीं तो यह भी कठिन था। अब आगे कुछ बात नहीं और यह समय आप के रोने का नहीं। अब आप अपने दुःखों का अन्त जानें और उन दोनों भाइयों को आप के देखने का अभिलाष है और यह लङ्कापुरी क्या, तुम्हारे लिये तो वे सब लोक फूंक सकते हैं और याद रक्खो कि बहुत जल्द कुटुम्बसहित रावण को मार, तुम को यहां से ले जावेंगे, परन्तु अब और जो कुछ आप को देना हो वह भी देदीजिये, लाओ साथ के साथ लेतेजावें॥

सीता जी–बस इसी चूड़ामणि से श्रीमान् रामचन्द्र जी तुम्हारा यहां का आना सत्य जानेंगे और हम से मिलना मानलेंगे॥

हनुमान्–(फिर शिर से प्रणाम कर उचकने को तैयार हुये)

सीता जी–(आंखों से आंसू जा रहे हैं। शोक में अतिदुःखी बोला चाहती हैं फिर भी बोला नहीं जाता, बड़ा बल कर) ए हनुमान्! सिंह समान दोनों भाइयों से और मन्त्रियों सहित राजा सुग्रीव जी से हमारा कुशल कहना और जिस प्रकार रामचन्द्र जी हमारा दुःख जल्द दूर करसकें, वैसाही प्रबन्ध करना। ए वीर! जितना हम को दुःख है और जो कुछ राक्षसों के हाथ से कष्ट होता है, वह सब तो तुम ने अपनी आंखों से देख ही लिया है। यह सब हमारी दशा रामचन्द्र जी से कहदेना। परमात्मा करे तुम्हारा मार्ग तुम को कल्याणदायक हो॥

हनुमान्–(प्रणाम कर चलदिये)

थोड़ी देर पीछे

एक राक्षसी–ए सीता! वह लाल मुख वाला बन्दर जो, तुम से बातें

कर रहा था, देखो उस की पूंछ जला कर राजा रावण की आज्ञा से उस को लोग बाग लङ्का में लिये फिरते हैं॥

सीता-जी परमात्मा! उस दीन वानर पर कृपा करो। आप तो दीननाथ हैं और सदा से दीनों पर रक्षा और सहाय की है। इस हमारे वानर पर कृपा कीजिए। जो हम सच्ची पतिव्रता हैं तो अवश्य इस वानर को कुछ कष्ट न होगा (और चुप होजाती हैं, अब बड़ा सोच है कि) वहां मार्ग में तो जटायु मारा गया, जिस के कारण दश महीने तक रामचन्द्र जी को हमारा खोज न मिला और अब यह बेचारा वानर बड़े२ दुःखों से यहां आया था, सो भी आज इस रावण के पञ्जे में आ फंसा। जो यह भी मारा गया तो रामचन्द्र जी तक हमारा समाचार कौन पहुंचावेगा। अच्छा ईश्वर की इच्छा, हमारा क्या वश। जो ऐसी ही होनी है तो किसी का क्या सामर्थ्य है जो टाल सके। (यह सोच ही रहीं थीं कि एकाएक सामने अन्धेरासा हुआ, ऊपर को दृष्टि कर देखा तो हनुमान् आरहा है। देखते ही प्रसन्न हो गईं। सब दुःख भूल गईं। भाई संसार भी आश्चर्यमय स्थान है कि एक २ घड़ी में कभी सुख होता है कभी दुःख। अब देखो श्रीमती सीता महारानी को श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन भी नहीं हुवे, आने का पूरा विश्वास भी अबतक नहीं, आशा ही आशा है कि रामचन्द्र जी आवेंगे और लङ्का को जीतेंगे, परन्तु इस वानर को जीता देख, ऐसी प्रसन्न हो गई हैं कि फूली अङ्ग में नहीं समातीं)

हनुमान्-(लङ्का फूंक) ए माता! हम तुम को जीती देख बड़े ही प्रसन्न हुवे। हम से आज बड़ी मूर्खता हुई कि यहां से जा, रावण का बाग़ उजाड़ डाला और उस के बड़े २ कई योद्धा और कई बेटे हमने मारडाले और बहुतसी मूर्खता यह की कि आप बन्धन में आ सम्मुख जा खड़े हुवे, जिस समय कि रावण ने हमारे मारने की आज्ञा दी उस समय हमने सोच लिया कि आज ही रावण हमारे हाथ से मारा जायगा, परन्तु आश्चर्य यह है कि इस में महाराज रामचन्द्र जी की कुछ प्रशंसा न होगी। यह सोच ही रहे थे कि एकाएक मन्त्रियों की सम्मति से उस की मति बदल गई और हमारी पूंछ जलाने की आज्ञा दी। जिस समय हमारी पूंछ में बहुत सा कपड़ा व तेल लगा कर आग दी गई, उस समय हमने कुलाच भर, रावण के महल

को फूंक, सब लङ्का में कूदना आरम्भ कर दिया। ए माता! देखो कि सब लङ्का के घर अब तक फुंक रहे हैं। राक्षसियां व बच्चे कैसे हाहाकार शब्द कर रहे हैं, परन्तु मूर्छित यह हुई कि आप के स्थान का ध्यान न रहा और हम को बड़ा सोच हुआ। अब हम परमात्मा को धन्यवाद देते हैं कि आप को जीती देखा। अब हम प्रणाम करते हैं और पम्पापुर को जाते हैं॥

सीता जी-(कुछ हंस कर) ए वीर! तुम ने यह और भी श्रम का कर्म किया। प्रथम तो समुद्र उतरे, दूसरे सब लङ्का में फिरे, तीसरे लङ्का कूद २ कर जलाई कि इस लिये किसी गुप्त स्थान में आज विश्राम कर लो। सवेराकर भोर ही चले जाना और जाने का समय भी भोर का अच्छा होता है, तुम भी आराम कर लोगे और हमारा दुःख भी बंट जायगा। ए प्यारे! तुम्हारे चले जाने पर तो हम को अपने प्राणों की भी आशा नहीं कि लौट कर शरीर में आवें या नहीं। ए हनुमान्! इस राक्षसी ने मुझ से तुम्हारी पूंछ जलाने का वृत्तान्त कहा, बस मूर्छा आगई और ऐसा भारी शोक हुआ कि रावणहरण में भी नहीं हुआ था। अच्छा तुम जाओगे तो हो ही, परन्तु सोच यह तो हमारा दूर कर दो कि इस भारी समुद्र को यह रीछ वानरों की सेना कैसे उतरेगी?

हनुमान्-माता! इस का कुछ संशय नहीं, बस जाने की देर है कि सब प्रबन्ध वे श्रीमान् आप ही कर लेंगे। तो मैं जाता हूं (और प्रणाम कर चलदिये)

रावण का मन्दिर

पार्श्व मन्त्री-ए रावण! तुम सीता जी के लिये ऐसे उदास हो। तुम से महात्मा राजाओं को तो अपने आप स्त्रियों के ध्यान में न फंसना चाहिये॥

रावण-ए पार्श्व! तुम जानते हो कि हम कामी तो हैं ही और इसी काम के वश हमारे सहस्त्रों राणी हो गई हैं॥

पार्श्व-राजन्! सीता पतिव्रता स्त्री है। उसका तो प्रसन्न होना बहुत कठिन जान पड़ता है, क्योंकि अब तो उस के मृत्यु का दिन भी जो आप ने नियत किया है, निकट आगया और उस का रामचन्द्र जी के आने की भी आशा नहीं, परन्तु रामचन्द्र का ही ध्यान है॥

रावण-मन्त्री! ऐसी रीति निकालो, जिस से सीता हम को अङ्गीकार कर लेवे और हम से प्रसन्न होजावे। हम को उस की याद बड़ा दुःख देती है॥

पार्श्व-राजन्! इस विचार को छोड़ दो। तुम्हारे तो एक से एक रूपवती राणी प्रत्येक देश की रणवास में हैं। जाने दो, इस का विचार न करो॥

रावण-ए मन्त्री ! सीता जी की मोहिनी सूरत मन में बस गई है। जो सीता हम को ग्रहण न करेगी तो हमारी आज्ञानुसार मारी तो जावे ही गी, परन्तु साथ ही हम अपने प्राण त्याग देंगे॥

पार्श्व-राजन् ! जो ऐसा ही विचार है तो आप सीता को अपने बल से अपने वश में क्यों नहीं कर लेते । यहां लङ्का में उस का सहायक तो कोई है ही नहीं, जिस समय यह आप के वश में आ गई तो फिर लाचार तुम को ग्रहण कर लेगी। जिस प्रकार मुर्ग़ा मुर्ग़ियों से ज़ोरावरी करता है, उसी प्रकार तुम भी करो। जिस समय आप का मनोरथ पूरा होजावेगा सब देखा जावेगा। और फिर रामचन्द्र ही यहां आकर क्या करेंगे, तुम्हारी सहायता को कुम्भकर्ण और मेघनाद दोनों हैं हीं। जो रामचन्द्र आ भी गये तो कुछ ले देकर प्रसन्न होजावेंगे और फिर वे सीता को लेकर क्या करेंगे। इस हिसाब से सीता आप के ही हाथ में रहेंगी॥

रावण-ए पार्श्व ! यह बात अच्छी नहीं, सुनो, एक छिपी बात तुम से कहते हैं कि एक बार पञ्जकस्थाली नाम अप्सरा आकाश में जाती थी, दैवयोग से लङ्का के निकट हो कर निकली और हमारे भय से आकाश में छिपी हुई चलने लगी। हमारी दृष्टि उस पर जा पड़ी। फिर क्या था, शीघ्र ही पकड़ अपने वश में ला डाला, उस ने बहुतेरी हमारी विनती की परन्तु तुमजानते हो कि हम तो बड़े भारी कामी हैं और हमारा तो स्वभाव है कि स्त्रियों को रूपवती देखा और मन में समा गई,फिर उस से विना विषय किये नहीं रहते। उसी स्वभाव से लाचार हम ने उस की एक न सुनी और अपने बल से विषय कर छोड़ दिया। वह छूटते ही ब्रह्मलोक में ब्रह्मा जी के निकट पहुंची और हमारी सब कथा ब्रह्मा जी से कही॥

ब्रह्मा जी यह समाचार सुनते ही क्रुद्ध हो गये और हम को बुला कर उसी क्रोध की दशा में शाप दे दिया कि जो अब विषय की इच्छा से किसी स्त्री को हाथ भी लगावोगे तो तुम्हारे प्रत्येक शिर के सौ २ टुकड़े हो जावेंगे और तुम जीते न रहोगे। ए पार्श्व ! उस दिन से हम को शाप का भय है और हम किसी स्त्री से ज़ोरावरी नहीं करते, क्योंकि ब्रह्मा जी का शाप तो झूठा हो ही नहीं सकता और हम को विचार भी बड़ा है॥

पार्श्व-ए रावण ! हमने जहां तक विचारा है, वहां तक तो भली

भान्ति निश्चय है कि सीता प्रसन्न न होंगी, यही अच्छा है कि सीता रामचन्द्र को फेर दो, इस लिये कि युद्ध न हो और आनन्द से बैठे रहो ॥

रावण—इस में तो हमारी बड़ी अपकीर्त्ति होगी। यह तो हम से नहीं हो सकता कि अपने जीते जी हम सीता को फेरदें ॥

पार्श्व—तो अच्छा,युद्ध की तैयारी करो। जो कुछ होगा,देखा जायगा॥

अशोकवाटिका

हनुमान् के चले जाने पर कुछ देर तक तो सीता जी हनुमान् का विचार करती रहीं, पीछे फिर रावण के कठोर वचन याद कर रोने लगीं और श्रीमान् रामचन्द्र जी का विचार कर मृत्यु के दिन गिनने लगीं कि या तो इन दो महीनों में रावण का नाश है, नहीं तो हम अपनी जान खोवेंगी। एक दिन की बात है कि सीता जी सोच कर रहीं थीं कि रावण कुछ मन में विचार महाकायादि मन्त्रियों सहित सीता जी के निकट आया और देखा कि सीता जी नीचे को मुख किये सोच कर रही हैं ॥

रावण—(कठोर वाणी से) ए सीता ! मैं रावण हूं। सुनो,जिस रामचन्द्र के लिये तुम हम को ग्रहण नहीं करती थीं, वह रामचन्द्र आज मार डाला गया। अब तुम्हारी जड़ सब ओर से कट गई और तुम्हारा कोई सहायक नहीं रहा। अब थोड़ी देर पीछे तुम आप ही कहोगी कि हम को रानी बनालो। तुमने हमारी विनति से तो नहीं माना,परन्तु अब उलटी हमारी बिनति करोगी। अच्छा, अब एक वार और भी तुम से कहते हैं कि अब उस मरे हुवे रामचन्द्र का ध्यान मन से दूर करो। वह अब मारा गया,कुछ भी नहीं कर सकता। अब तुम हमारी रानी बनना स्वीकार करो और अपने पति के मारे जाने का समाचार मन लगा कर सुनलो। तुम्हारे स्वामी रामचन्द्र हमारे मारने के लिये समुद्र के उत्तर किनारे पर सुग्रीव की बड़ी भारी सेना साथ लेकर आये और बड़ी धूम धाम से वहां ठहरे। मूर्ख तो थे ही, सेना को निर्भय सोने की आज्ञा देदी और सब लोग खाने को खा,पानी पी, निश्शङ्क इधर उधर ठहर गये। हमारी ओर का तो कुछ भय ही न था। यह जानते थे कि समुद्र पार रावण नहीं आसकता और तुम जानती हो कि हम बहुत दिनों से राजा हैं और सब चाल युद्ध व राज्य की जानते हैं। हम तो अचेत थे ही नहीं और हमारे दूत तो चारों ओर फिर ही रहे थे कि दो दूत वहां भी पहुंच गये और उन की दशा देख,प्रहस्त मन्त्री से आ,

सब समाचार कह दिया। फिर क्या था, तुरन्त ही प्रहस्त सेना समेत समुद्र के किनारे पहुंचा और पहुंचते ही सोते हुवे रामचन्द्र का शिर काट लाया और लक्ष्मण को मार पीट, अयोध्या को भगा दिया। वानरों की सेना भी बहुत मार डाली और कुछ भगादी। सुग्रीव और हनुमान् भी मारे गये कि अब तक वहीं पृथिवी पर पड़े हैं। हां,जाम्बवान् कुछ देर लड़ा, परन्तु राक्षसों को न जीत सका और मारा गया। मैन्द और द्विविद् मार डाले गये। मानो कि लड़ाई हुई, परन्तु राक्षसों की जय हुई और सब सेना मार डाली। जो निश्चय नहीं है तो यह लो रामचन्द्र का लोहू लुहान शिर हमारे पास है। देख कर भलीभांति पहचान लो (मायावी से) जाओ, प्रहस्त को शीस समेत यहां लिवा लाओ, क्योंकि वही युद्धभूमि से रामचन्द्र का शीस लाया है और उस के ही पास है॥

मायावी—('बहुत अच्छा, कह, थोड़ी देर में वह श्री रामचन्द्र जी का शीस और धनुष् बाण ले, आगया और प्रणाम कर शिर झुका, खड़ा, होगया)

रावण—मायावी ! रामचन्द्र का शिर सीता के आगे रखदो, जिस से यह अपने पुराने पति की सूरत भले प्रकार देखले ॥

मायावी—('बहुत अच्छा' कह,रामचन्द्र जी का कृत्रिम शीस व धनुष् सीता जी के आगे रख,तुरन्त अलग हो गया क्योंकि उस को सीता जी की दशा देख, दया आगई और उन की उदासी को न देख सका)

रावण—(रामचन्द्र जी का धनुष् उठा, सीता की ओर फेंक) लो देखो, भले प्रकार पहचान लो, यही रामचन्द्र जी का धनुष् है, यह वही धनुष् है जिस पर तुम को अभिमान था कि धनुष के टंकोर से लङ्का हिल जायगी और बाणों से राक्षस मारे जायंगे (प्रहस्त इस के पीछे रामचन्द्र का शीस लाता है और शिर सामने रख, देखो, यही तुम्हारे पति रामचन्द्र हैं ? यही तुम्हारे सहायक थे ? इन्हीं पर विश्वास था ? इन्हीं के ऊपर हम से विमुख रहती थीं ? लो देखलो, इन का तो अन्त हो गया। बस अब अच्छा समझो और अपना कुशल चाहो तो हमारी रानी बनो ॥

सीता जी—(शिर व धनुष् देख,भले प्रकार से पहचान और सुग्रीव व हनुमान् का मरण सुन,बड़ी शोक की दशा में हो,कुछ देर पीछे चिल्ला २ कर रोने लगीं) हा परमात्मा ! कैसा हुवा। ए केकयी ! अब तो कृतकृत्य हुई,अब सब कुल के सुख देने वाले रामचन्द्र जी मारे गये अब तो तेरा मनोरथ पूरा

हुआ ? ए कैकयी ! इन रामचन्द्र जी ने तेरा क्या बिगाड़ा था कि जिस से चीरवल्कल पहना, इन्हें वन को भेजा। अब आकर देखले कि शिर कटा हुआ लङ्का में धरा है। अब तो तेरा मन चीता हुआ ? (यह कहते २ मूर्छा आगई और कटे हुवे वृक्ष की नांई पृथिवी पर गिर पड़ीं। जब मूर्छा जागी, फिर विलाप करने लगीं) ॥

ए महाबाहो ! हम मारी गईं। हमारा अब इस संसार में कोई सहायक नहीं रहा। ए महाराज ! हम तुम्हारी यह सब से पिछली अवस्था देख रही हैं। हा ! अब हम विधवा हो गईं। स्त्री के सामने पति का मरना बड़ा अनर्थ है। यह बड़ा अनर्थ हुआ कि हम सुन्दर आचरणवाली के सामने आप देवलोक को चले गये। हाय ! बड़ा ही अन्याय हुआ। आप तो हमारी सहायता करने को सेना लाये थे,कौन अब हम को इस बन्धन से छुड़ावेगा ? न इधर की हुई न उधर की। हा परमात्मा ! यहां तो कोई मनुष्य भी नहीं कि जो हम को धैर्य देवे ? हा राघव ! हमारी सास कौशल्या जी तुम को पुत्र पाय, तुम से अति प्रसन्न होती थीं, अब वे आप की मृत्यु सुन, कैसे जीवेंगी ? अवश्य मरजायंगी। हा राघव ! वे तो तुम्हारे शोक में विना बछड़े की गौ की नाईं विलाप करती होंगी। हा राघव ! तुम्हारी आयु तो ज्योतिषी पण्डितों ने बहुत विशेष बड़ी बतलाई थी, यह क्या होगया? क्या सब शास्त्र झूंठे होगये? और ब्राह्मणों के वाक्य भी झूंठे पड़गये ? जो ब्राह्मणों के वाक्य सच्चे हैं तो आप अभी तक जीते होंगे ? बस चेतनशक्ति जाती रही होगी, क्योंकि काल इसी प्रकार चेतनशक्ति दूर करदेता है। आप तो सब शास्त्र भलेप्रकार जानते थे और इन कष्टों का निवारण भलेप्रकार कर सकते थे। आप तो सब बातों में सावधान थे, फिर क्यों एकाएकी से धोखे में आ, मृत्यु के वश में फंस गये ? हाय!तुमने तो अपने बचने का कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया,गीदड़ की मौत मारे गये। जो रावण को मारकर मरते तो हम को भी सन्तोष आजाता, परन्तु तुम को तो हमने ही मार डाला, या हमारे ही पापों से आप मारे गये। हे महाबाहो ! हम तपस्विनी को छोड़, आप अकेले पृथ्वी पर सोते हो। यह धनुष् तो हम को बड़ा प्रिय था, इस पर तो हम चन्दन चढ़ा,फूल चढ़ाया करती थीं। अब हमने जान लिया कि आप अपने पिता दशरथ और सब पितरों में जा मिले? आपने तो चन्द्रमा की नांई देदीप्यमान होकर बड़े२ कार्य किये थे। भला फिर आप

क्यों पितरों में मिलते हैं ? हा महाराज ! आप हमारी ओर क्यों नहीं देखते ? हम से क्यों नहीं बातें करते ? क्या आप हम से अप्रसन्न हैं ? हमने तो कोई कार्य आजतक आज्ञाविरुद्ध नहीं किया, फिर हमारे ऊपर क्यों क्रोध कर रहे हो ? तनिक हमारी ओर तो देखो, हम से बातें तो करो। हा महाराज ! हम तो आप की शुभचारिणी भार्या हैं । अब आप हम को क्यों नहीं पहचानते ? विवाह के समय आपने प्रतिज्ञा की थीं कि तुम्हारे साथ ही साथ सब धर्म कर्म करेंगे,क्या भूल गये ? उन का कुछ ध्यान नहीं रहा? अब अकेले कहां जाते हो ? हम दुखिया को भी तो साथ लेते चलो । हाय ! हमारी ओर से इस लोक को और हम को दुःख में त्याग आप कहां चले गये । हाय ! जिस आपके तन से हम चन्दन मला करतीं थीं, हाय ! उस तन को गिद्ध और गीदड़ वन में घसीटे फिरते होंगे। आपने तो बड़े भारी२ यज्ञ किये थे,यह मरते समय आप को संस्कार की अग्नि क्यों नहीं मिली ? भला हम तीन जन वन को आये थे,उन में से अकेले लक्ष्मण ही लौट कर गये। क्या जब लक्ष्मण जी से माता कौशल्या पूछेंगी तो वे बतला देंगे कि राक्षसों ने सुग्रीव सहित आप को रात्रि के समय मार डाला ? हा राघव !जिस समय आप का मरना और हमारा बन्धन माता कौशल्या सुनेंगी, उस समय वे किसी प्रकार जीती न रहेंगी । हाय! हम कुमारी के लिये आप महाराजकुमार समुद्र उतर,इस गौ के खुर समान पानी में डूब मरे । हाय! आप का बिना जाने पूंछे इस कुल नाशिनी से विवाह हुवा । हम आप की मृत्यु का कारण हुई । हाय ! क्या हमने पूर्वजन्म में कुछ दान नहीं किया कि आज श्रीमान् रामचन्द्र जी की स्त्री होने पर भी हम शोक कर रही हैं ॥ हा रावण ! अब तुम हम को भी मारडालो, जिस से हमारा और रामचन्द्र जी का साथ होजाय । ऐसा करने से तुम को बड़ा फल होगा । ए रावण ! उन के शिर में तो हमारा शिर मिला दो और तन में तन,इस लिये कि हम अपनी गति को प्राप्त होवें (यह कह ही रही थीं कि एकाएक)

अनीकस्थ—(हाथ जोड़,रावण से) महाराजाधिराज ! आप की जय हो । प्रहस्त सेनापति बहुत से मन्त्रियों को साथ ले,आप के दर्शनों को आया है और कुछ राज काज में बहुत आवश्यकता बतला रहा है । हम को इस लिये भेजा है, चल कर उस को दर्शन दीजिये)

रावण-('बहुत अच्छा' कह, चल दिया)

सरमा राक्षसी--(बहुत हौले से रोती हुई, हाहाकार करती, सीता

जी से) ए सीता! जो कुछ रावण ने तुम से कहा और तुमने रावण से, वह सब हमने सुना और तुम्हारी कृपा से अब हम को रावण से कुछ भय भी नहीं रहा और बाहर जाकर भी हम सब समाचार ले आईं। उन पुरुषसिंह श्री रामचन्द्र जी के सोते हुये भी किसी राक्षस का सामर्थ्य नहीं कि उन के दल में जा युद्ध करे। भला मारना तो बड़ी कठिन बात है, यह तो किसी प्रकार हो ही नहीं सकता॥

(अब सीता जी कान लगाकर सुनने लगीं) और वृक्ष और पर्वतों से लड़ने वाले वानरों को कोई राक्षस इस प्रकार नहीं मार सकता, जैसा कि रावण ने कहा, क्योंकि वे तो सब रामचन्द्र जी के पायक हैं। वे रामचन्द्र बड़ी २ भुजाओं वाले, जिन की चौड़ी छाती है और बड़े पराक्रमी धनुष् धारण किये हुवे, बड़े धर्मात्मा सब संसार में विख्यात हैं और सब शास्त्र जानने वाले व अगणित शत्रुओं के मारने वाले, सर्वगुणसम्पन्न श्री रामचन्द्र जी अपने भाई के साथ जीते और कुशलपूर्वक हैं। अभी तक मारे नहीं गये और यह शिर जो आप के आगे रक्खा है और धनुष् जो आपने देखा है, यह सब इन दुष्ट अधर्मी राक्षसोंने अपनी माया से बनाया है। इसी शिर को भले प्रकार ध्यान से देखो कि तुम को निश्चय होजावेगा॥

सीता जी-(ध्यान से शिर देख, कुछ धैर्य किया और शोक भी घट गया और बहुत ध्यान दे सरमा की बातें सुनने लगीं)

सरमा-ए सीता! अब समझलो कि दुःख के दिन गये, सुख सम्मुख आया। अब तुम को सुख ढूंढता फिरता है और तुम्हारा दुःख दूर जारहा है, क्योंकि रामचन्द्र जी सब सेनासहित जिस समुद्र पर रावण को अभिमान था, उस के इस पार उतर आये और लङ्का और समुद्र के बीच में विश्राम कर दिया। हमने आप जाकर राम व लक्ष्मण दोनों भाइयों को अपनी आंख से देखा है। समुद्र के किनारे से लङ्का के किनारे तक बड़ी भारी रीछ वानरों की सेना लिये आनन्द से विराजमान हैं। रावण ने भी बहुत से दूत भेजे थे, वे भी यही ख़बर लाये हैं कि रामचन्द्र जी समुद्र उतर आये। अब रावण यह ख़बर सुन मन्त्रियों से सलाह कर रहा है कि हम को क्या करना चाहिये॥

यह बातें होही रहीं थीं कि एकाएक मारू के बाजे का शब्द भी सुनाई दिया और कूच का नक़ारा बजा और तुरई का शब्द भी सुनाई देने

लगा । अब रथ व घोड़ों का शब्द होने लगा और राक्षसों का गर्जना भी सुनाई देने लगा और युद्ध का बाजा बजने लगा ॥

सरमा–देखो, सीता यह सेना रावण की युद्ध को जा रही है। अब तुम्हारे दुःख और राक्षसों के जीने पर आपत्ति आगई । याद रक्खो कि बहुत ही जल्द रामचन्द्र जी इन राक्षसों को मार, तुम से मिलेंगे और आज तुम्हारे स्वामी अपने भाई लक्ष्मण सहित इन राक्षसों पर क्रोध प्रकट करेंगे । और बहुत ही जल्द रावण के मरने पर हम तुम को रामचन्द्र जी की गोद में बैठी और हंसती देखेंगी । ए सीता ! अब बहुत ही जल्द तुम उस पुरुषसिंह रामचन्द्र जी से मिल, प्रसन्नता के आंसू बहाओगी और बहुत दिनों से न धोये जाने और तैल न लगने से जो तुम्हारे बाल उलझ गये हैं, उनको श्री रामचन्द्र जी आप अपने हाथों से सुलझावेंगे और रावण को मार, तुम अपनी प्यारी स्त्री के साथ सुख पावेंगे और महात्मा रामचन्द्र जी के मिलने से तुम भी प्रसन्न होवोगी, जिस प्रकार मेघ के बर्षने से पृथिवी प्रसन्न हो, अनेक प्रकार के फल फूल उत्पन्न करती है ॥

बहनो ! कष्ट से सताई सीता जी को अपने मधुरवचनों से सरमा ने बहुत ही प्रसन्न करदिया, और सब दुःख उन का मारे प्रसन्नता के दूर होगया॥

सीता जी–(प्रसन्न हो) ए सरमा ! परमात्मा तेरा कहना करदे । हम जिस समय लङ्का को जीती सुनेंगी तो तुम को अमूल्य वस्त्राभूषण देंगी और तेरा मुंह भी मीठा करेंगी ॥

सरमा–(हंसकर) परमात्मा ऐसाही करे, पर ए सखी ! सुन, हम गुप्तरूप से श्रीमान् रामचन्द्र जी के पास जा, सब समाचार रावण के इस समय का और तुम्हारा कुशल कह, बहुत जल्द लौट कर आसकती हैं । जिस समय हम पवनरूप से आकाश में चलती हैं तो हमारे पीछे पवन भी नहीं जा सकता ॥

सीता जी–ए सरमा ! हम जानती हैं कि तुम आकाशमार्ग में जासकती हो और यह भी जानती हैं कि हमारे लिये जिस काम को यहां कोई न कर सके, उस को तुम कर सकती हो और तुम को सदैव हमारे प्रसन्न रहने का ध्यान है । इस लिये अब यही उचित है कि तुम रावण के पास जा, यही ख़बर ले आओ कि हमारे लिये वह क्या विचार करता है । बस हमारी यही इच्छा पूरी करदो क्योंकि वह दुष्ट रावण हम को सदैव लुभाता है,

जैसे कि मदिरापान करने वालों को मदिरा लुभाती है और सदा इन राक्षसियों से भय दिखला २ कर इन से ही हमारी चौकसाई कराता है। जिस से इस अशोकवाटिका में हम बहुत उदास रहती हैं। कभी यहां हम प्रसन्न नहीं रहीं। अब हमारे छोड़ने न छोड़ने की जैसी रावण की सम्मति हो, ज्ञात कर हम से कह दो। हम इस कर्म से तुम्हारा बहुत गुण मानेंगी॥

सरमा—(सीता जी के आंसू अपने हाथों से पोंछ) ए जानकि ! जो तुम्हारी यही इच्छा है तो हम अभी जाती हैं और रावण का मनोरथ जान अभी आती हैं (और शीघ्र ही जा, वृत्तान्त जान, फिर चली आई। देखा कि जानकी जी बाट देख रही हैं)

जानकी जी—(सरमा को छाती से लगा, प्रेम से) ए सरमा ! क्या समाचार लाई ?

सरमा—ए सीता ! रावण की माता और उत्तम २ मन्त्रियों ने बहुत ही कुछ समझाया और कहा कि रामचन्द्र जी का बल पौरुष तो तुमने जनस्थान में देख ही लिया, इस लिये उचित है कि बहुत प्रतिष्ठा के साथ सीता रामचन्द्र जी को देआओ और समुद्र का उतर आना और हनुमान् का लङ्का फूंकना भी तुमने देख लिया है और जिस प्रकार राक्षस मारे गये वह भी तुम जानते हो। इन सब बातों पर ध्यान दे, सोच लो कि साधारण मनुष्य ऐसे काम नहीं करसकता और और भी अनेक भांति समझाया, परन्तु रावण ने अपनी हठ न छोड़ी और तुम्हारा छोड़ना अच्छा नहीं समझता, जैसे कामी पुरुष काम का त्याग नहीं कर सकता। ऐ मैथिलि ! जिस समय तक यह दुष्ट रावण न मारा जायगा, तब तक तुम को किसी प्रकार न छोड़ेगा। इस दुष्ट की तो यही सम्मति है कि अपने जीते जी तुमको जाने न दे, सो कुछ डर की बात नहीं। उस की तो मौत शिर पर खेल रही है, जो छोड़ने नहीं देती। अब जल्द वह कुटुम्ब सहित और नौकर चाकरों समेत श्रीमान् रामचन्द्र जी के हाथ से मारा जायगा और रामचन्द्र जी अपने अग्निरूपी वाणों से उस को कुटुम्ब सहित मार, तुमको बहुत जल्द अयोध्या को लेजावेंगे॥

यह बात चीत हो ही रही थी कि मारू बाजे का शब्द सुनाई दिया और बानरों का गर्जना सुनाई देने लगा। इस सरमा के मेल से सीता जी को बड़ा सुख मिला और सदैव युद्ध के समाचार मिलने लगे॥

सरमा नित्यप्रति युद्ध का समाचार सुन आती और सीता जी से कह

दिया करती और सीता जी नित्यप्रति रामचन्द्र जी की जय का भजन किया करती। एक दिन-

सरमा—बहन सीता! आज इन्द्रजित् श्रीमान् रामचन्द्र जी से लड़ने गया है॥

सीता—इस की लड़ाई कैसी है?

सरमा—बहन! यह बड़ा लड़नेवाला रावण का बड़ा बेटा है। इस ने देवताओं के राजा इन्द्र को भी जीत लिया है। आज की लड़ाई बड़ी कड़ी है, परन्तु रामचन्द्र जी इसे भी मार डालेंगे उस का क्या सामर्थ्य है जो रामचन्द्र जी से जीत सके (यह बातें हो ही रहीं थीं कि रावण का दूत आगया)

दूत—सरमा! तुम को राक्षसियों सहित महाराज देखा चाहते हैं॥

सरमा—(बहुत अच्छा कह चलदी और महल में पहुंच) महाराज! हम हाज़िर हैं॥

रावण—(प्रसन्न हो) तुम जानकी से कह दो कि आज मेघनाद ने दोनों भाई राम व लक्ष्मण को सचमुच युद्ध में मार डाला और पुष्पकवि-मान में लेजा कर सीता को उन का मृतक दिखला दो और कह दो कि जिन दोनों भाइयों पर तुम अभिमान करती थीं और मुंह मुड़काती थीं आज वे रणभूमि में मेघनाद के हाथ से मारे गये। अब तुम सब शृङ्गार कर हमारे पास चली आओ॥

राक्षसी—('बहुत अच्छा, कह' अशोकवाटिका में आईं)

सीता जी—(अचम्भे में) ए सरमा! क्या बात है कैसे तुम बुलाई गई थीं?

सरमा—(आंसू भर) कुछ समझ में नहीं आता। आज उस दुष्ट ने हम को बुला कर कहा कि मेघनाद राम व लक्ष्मण दोनों भाइयों को युद्ध में जाकर मार आया। तुम सीता को पुष्पक विमान में लेजा कर दिखला दो। सो मेरी समझ में नहीं आता कि क्या बात है। अच्छा अब उस की आज्ञा से सेना में चलती हैं, वहां सब हाल मालूम हो जायगा। चलो, अब तुम पुष्पकविमान में सवार होजाओ॥

सीता जी—(आंसू भर, ठण्डा श्वास ले) पुष्पकविमान में सवार हो चलदीं)

प्रथम तो राक्षसियों ने उस विमान को सब लङ्का में फिराया और आगे२ मनादी कराई कि आज मेघनाद ने राम व लक्ष्मण दोनों भाइयों को रणभूमि में मार डाला और फिर रामचन्द्र जी के लशकर में लाईं॥

सीता जी-(देखती हैं कि बानरों की बड़ी भारी सेना मरी पड़ी है। कोई करवट तक नहीं लेता और राक्षस ठौर २ प्रसन्न होते फिरते हैं, और

एक जगह बहुत से वानर इकट्ठे होकर शोक कर रहे हैं और उन के बीच में रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी दोनों भाई तन में तीर घुसे अचेत पृथिवी में पड़े हैं। जिन के सब कवच व बख़्तर टूट रहे हैं और धनुष् अलग को पृथिवी पर पड़ा है और तन सब घायल है। घावों से लोहू बह रहा है ऐसे ज्ञात होते हैं कि किसी ने दो खम्बे फूलों के बना पृथिवी में डाल दिये हैं। यह देखते ही सीता सहम गईं और ऊंचे स्वर से रो २ कर विलाप करने लगीं) हाय ! हम से तो सामुद्रिक ब्राह्मणों ने कहा था कि आप के पुत्र होगा और सदैव सुहागन रहोगी । वह सब आज झूंठ होगया और जो लोग शूरवीर राजाओं की रानियों में हम को सुमङ्गली कहते थे, वह भी सब श्री रामचन्द्र जी के मारे जाने पर झूंठे होगये और जो ज्योतिषी लोग हम से कहा करते थे कि तुम जन्म भर सुहागन रहोगी, वह सब झूंठे होगये। हाय ! कुलीन सुहागन स्त्रियों के सब चिन्ह पद्म आदि हमारे पांओं में हैं और विधवा होने का तो कोई भी चिन्ह हमारे तन में नहीं। क्या वह सब चिन्ह झूंटे होगये। हाय ! हमारे तो बराबर २ नीले रङ्ग के बाल हैं और भौंहें भी हमारी अलग २ हैं। छातियों का मुंह काली है । ढूंडी हमारी बीच में गहरी और किनारों पर ऊंची है। छाती हमारी सब से ऊंची है। सान पर रक्खे मणि का सा हमारा रङ्ग है। रोम सब मुलायम हैं। हाय ! फिर यह क्या हो गया । हाय ! तुम को तो सब शुभ लक्षण बतलाया करते थे। हाय ! हमारे तो सब पोरवे पूर्ण हैं। लकीरों से कोई भी खाली नहीं और हाथ पांवों की सब ऊंगलियां मिली हुई हैं। हाय ! फिर यह क्या होगया । अरे ! हमसे तो ब्राह्मणोंने कहा था कि रामचन्द्र जी के साथ तुम्हारा राजतिलक होगा, वह सब आज झूंठा होगया । हाय ! रामचन्द्र जी तो हम को घने २ बनों में से ढूंढते हुवे, हनुमान् से सुध पाय, समुद्र उतर, यहां आगये थे। हाय ! यह तो थोड़े से गौ के खुर की समान पानी में डूब गये। हा महाराज ! तुम्हारे ऊपर तो किसी कुबेर व यम आदि देवताओं का शस्त्र भी नहीं उठ सकता था, फिर आप क्यों पृथ्वी पर मृतक पड़े हैं । हाय ! हमारी समझ में तो इन्द्र से भी अधिक सामर्थ्यवान् दोनों भाइयों को हमारे शत्रुओं ने धोखे से मार डाला, क्योंकि रणभूमि में तो आप का सामना कोई भी नहीं कर सकता । हाय ! काल किसी से नहीं डरता और यमराज बड़ा निर्भय है कि जिस ने भाई सहित रामचन्द्र जी को मार, पृ॰

पड़ी में सुला दिया। हाय महाराज! अब यहां हमारा कौन साथी है? यहां हमारी कौन सहायता करेगा? अपना तो यहां कोई भाई बन्धु भी नहीं॥

त्रिजटा–ए देवि! ऐसा शोक न करो, अभी तो यह तुम्हारे स्वामी जीते हैं। एक दम हज़ार दम। अभी ऐसा शोक करने का अवसर नहीं। परमात्मा उन को अच्छा करदे। सुनो, जिस समय सेनापति मारा जाता है तो सिपाहियों में क्रोध व आनन्द नहीं रहता सब घबड़ा जाते हैं। सो वह बात यहां नहीं दीखती, इस से भलीभांति प्रकट है कि यह दोनों भाई मूर्छित हो गये हैं और जीते हैं, मरे नहीं। सिवाय इस के यह पुष्पक विमान, जिस पर आप सवार हैं, विधवा स्त्री को अपने ऊपर सवार नहीं होने देता। जो यह मर गये होते तो यह तुम को धरती पर गिरा देता, कभी सवार न रहने देता और इस ने तुम को सवार कर रक्खा है, इससे भी स्पष्ट विदित है कि यह जीते हैं। सिवाय इस के सर्दार के मरने पर सेना रोती है, या भाग जाती है। परन्तु यह सेना तो बड़ी दृढ़ता से दोनों भाइयों की रक्षा कर रही है, इस से भी प्रकट होता है कि मूर्छित हैं और जीते हैं। तुम्हारी प्रीति के कारण हम यह कहती हैं। इन सब बातों को सोच समझ कर शोक छोड़दो। ए मैथिलि! हमने कभी झूंठ नहीं कहा, और न आगे को कहने की इच्छा है। हां और यह भी तो सुनो कि पतिव्रता स्त्री किसी समय विधवा नहीं हो सकती। वह आप अपने पति के सामने पहिले ही मर जाती है या साथ, परन्तु विधवा कभी नहीं होती और तुम तो पतिव्रता हो, फिर भला तुम्हारे होते यह कैसे मर सकते हैं? ए सीता! तुमने अपने श्रेष्ठ स्वभावों से हमारे हृदय में जगह करली है, यह दोनों भाई तो इन्द्रादि देवताओं के वश में भी नहीं आ सकते, फिर बिचारे राक्षस तो इन को क्या मार सकेंगे। पहिले आप तो अपने को इन के हाथों से बचा लेवें। ए वैदेहि! आश्चर्य तो यह है कि दोनों भाई ऐसे घायल और मूर्छित हो जाने पर भी ऐसे सुन्दर ज्ञात होते हैं और सुर्ख़ी मुख पर बनी है, सुफ़ेदी का चिन्ह नहीं। जो मर गये होते तो सुर्ख़ी जाती रहती और मुर्दनी चेहरे पर छा जाती। ए सीता! मरने पर मनुष्य की सूरत भयानक हो जाती है, परन्तु इन की सूरत तो बड़ी प्यारी ज्ञात होती है, इस से ए जानकि? शोक छोड़ो। इस समय रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी को मौत नहीं मिल सक्ती॥

सीता जी–(हाथ जोड़) बहुत अच्छा, परमात्मा तुम्हारा वचन सत्य करे॥

राक्षसियोंने बिमान लौटाया और सीता जी और त्रिजटा को अशोक-वाटिका में ले आईं। अब अशोकवाटिका में बैठी सीता जी बिलाप कर रहीं थीं कि सरमा आई ॥

सरमा–ए सीता! क्यों बिलाप करती हो, तुम राक्षसों की माया नहीं जानतीं। उस रोज़ भी तो तुम को रामचन्द्र जी का शिर दिखलाया था। यह राक्षसों की माया है। लो, मैं अब जाकर ख़बर लाती हूं (और युद्धभूमि को चलदी और चार घड़ी में लौट आई। देखा, कि सीता जी बाट देख रहीं हैं)

सीता–(उठ, सरमा को छाती से लपटाय, आसन दे) कहो सरमा! क्या देखा? बड़ी देर में आई?

सरमा–बहन! जिस समय मैं पहुंची हूं, उसी समय सब वानर मिल सुषेण वानर को (जो रामचन्द्र जी की सेना का वैद्य है) वहां लाये। उसने आते ही एक नस्य रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी को सुंघाया। बस सुंघाते ही सब तीर शरीर से बाहर निकल आये, फिर दूसरा नस्य दिया कि घाव भरने लगे और रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी ने नेत्र खोल दिये, फिर तीसरा नस्य दिया कि जिस से दोनों के घाव अच्छे हो गये। अब दोनों भाई प्रसन्न हैं। मुझे इस देखने ही में बहुत देर होगई। सुषेण ने दो घड़ी में तीनों नस्य दिये और रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी को अच्छा कर दिया। (इतने में वानरों के किलकारने का शब्द सुनाई दिया) लो, बहन! सब वानरों की सेना अच्छी हो कर खड़ी होगई, अब कुछ सन्देह नहीं रहा ॥

सीता जी–परमात्मा करे, ऐसा ही हो। बहन! जिस दिन मैं रामचन्द्र जी से मिलूंगी, पहिले पहिल तेरा मुंह घी शक्कर से मीठा करूंगी॥

सरमा–बहन! अब बहुत ही जल्द यह रावण कुलसहित मारा जायगा। तुम बिश्वास रक्खो और प्रतिदिन समाचार तो मैं कह ही दिया करती हूं। अब तक आधे से अधिक रावण की सेना मारी गई है और रामचन्द्र जी के सब वानरों को सुषेण प्रतिदिन अच्छा कर लेता है। (अब रोज़ युद्ध होता रहा और होते २ बड़ी कठिनाई से एक दिन इन्द्रजित अर्थात् मेघनाद रावण का बड़ा बेटा मारा गया)

रावण–(मेघनाद का मरण सुन, क्रोध में आ, मन्त्रियों को बुला) ए मन्त्रियों! आज हम सीता को मारेंगे, जीती न छोड़ेंगे। बस उस के मरने

से आज रामचन्द्र जी की सब आशा मिटादेंगे। देखें तो आज रामचन्द्र सीता की क्या सहाय करेंगे। जो ब्रह्मा जी भी आवें तो आज हमारे हाथ से सीता को नहीं बचा सकते। आज हम सीता की हठ का बदला उस को देवेंगे। वह किसी प्रकार चाहे कोई प्रबन्ध करे, परन्तु जीती नहीं रह सकती। मेघनाद ने जो रणभूमि में मायावी सीता मार, रामचन्द्र को दुःख दिया था, आज हम उस को सच्चा कर दिखावेंगे। जिस दिन से यह दुष्टा हमारे गृह में आई है, उसी दिन से अनेक झगड़े फैल रहे हैं। आज हम इस झगड़े को दूर करदेंगे। ख़बरदार, जो हम को किसी ने रोका तो हम उस का भी घात कर देंगे (यह कह और तलवार म्यान से खेंच, क्रोध में भर, चलदिया और अशोकबाटिका में पहुंच, दूर से तलवार दिखला) ए सीता! हम आज तेरा झगड़ा ही निबटाय देते हैं। तुझे हमने सब प्रकार समझाया, परन्तु अपनी हठ नहीं छोड़ती और बराबर हमारा अनादर किये जाती है। अब तेरा शरीर ही नष्ट होता है॥

सीता जी-(खांडा चमकाता रावण को देख, मन में) इस दशा से तो भलीभांति प्रकट है कि महाराज रामचन्द्र जी के लङ्का में होते, आज यह हम को अवश्य मारेगा, क्योंकि हमने इस का कहना नहीं माना। इसी कारण यह अब निराश हो हमारे मारने को आया है, या आज इसने राम व लक्ष्मण दोनों सिंहों को मारडाला। जो ऐसा है तो आश्चर्य है कि हमारे लिये वे दोनों महाराज राजकुमार मारे गये। जो मारे गये तो हमारा जीवन निष्फल है, परन्तु सरमा ने कहा था कि इस का बेटा श्रीमान् लक्ष्मण जी के हाथ से मारा गया। योंही हो कि यह अपने प्यारे पुत्र की मृत्यु सुन, बहुत दुःखित हुवा है और महाराज रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी से कुछ वश चलता न देख, उन को दुःख देने के लिये हम को मारना चाहता है। हमने बुरा किया कि हनुमान् के साथ न चली गईं। जो चली जातीं तो मृत्यु का मुख न देखना पड़ता और आनन्द से रहतीं और अपने पति रामचन्द्र जी की गोद में बैठी हुई कुछ सोच सन्देह न होता। ख़ैर जो कुछ हुआ सो हुआ और जो कुछ होगा वह होगा, परन्तु जो रामचन्द्र जी मारे गये तो बड़ा अन्याय होगया। हा! रामचन्द्र जी का मरना सुन, माता कौशल्या तो जीती न रहेंगी क्योंकि उन के तो यही अकेले रामचन्द्र जी हैं। भला कहां उन की विधवा दशा और फिर उस पर इकलौते बेटे का मरण। वह अवश्य रो २ मरजायंगी, क्योंकि वह अवश्य रामचन्द्र जी का रूप यौवन याद

करेंगी, बस उसी समय उन को मूर्छा आजायगी और सावधान होने पर देखेंगी कि कोई सहायक नहीं । बस यह विचारते ही आग में जलजायंगी, या पानी में डूब मरेंगी । उस पापिनी मन्थरा को धिक्कार है कि जिस के कर्मों से कौशल्या जी को ऐसे कठिन दुःख में प्राण त्यागना होगा (और प्रकट में, निर्भय हो । ए रावण ! तुम तो अपने को बड़ा शूरवीर बतलाते थे, क्या शूरता इसी का नाम है ? शूरवपन इसी को कहते हैं ? अब तो रामचन्द्र जी तेरे सम्मुख विद्यमान हैं,क्यों नहीं उन से सामना करता ? अरे ! अभी तो वह दिन जो तुमने हमारे मारने को नियत किया है,नहीं आया । अरे ! हम स्त्रियों ही का मारना वीरता रहगई ? शूरमा तुम से ही होते हैं, जो बिचारी अबला स्त्रियों को मारते हैं । अरे ! तुम से तो पशु पक्षी भी अच्छे हैं कि जो अपनी स्त्रियों को नहीं मारते । ख़ूब अच्छा,तुम अपनी शूरता पूर्ण कर, शूरमाओं की नामावली में अपना नाम लिखाओ । हमारे प्राण की कुछ परवाह न करो । अरे ! प्राण तो एक दिन जाने ही हैं, परन्तु तुम को तो बड़ाई मिले । यही धर्म हम को होगा । हमारे प्राण जायं तो जायं पर तुम्हें तो कीर्त्ति मिले ॥

सुपार्श्व मन्त्री—ए महाराज ! आप कुवेर के छोटे भाई होकर क्रोध में धर्म को छोड़, वैदेही को मारना चाहते हैं । विचार तो कीजिये कि वेद शास्त्र जान कर आप स्त्री को वद्धय कैसे जानते हैं । हमारी समझ में तो आप प्रतिदिन जानकी जी के दर्शन किया करें और अपना यह क्रोध उन्ही रामचन्द्र जी पर छोड़ें । आज महीने के आदि की चौदश है,इसी समय चलिये और तैयारी कर, कल पूर्णमासी को हमारे साथ जय की यात्रा कीजिये । इस समय जानकी जी के मारने से क्या फल उठावेंगे । आप तो बड़े शूरवीर और ज्ञानी हैं इसी तलवार से रामचन्द्रजी को मार,सीताजी को अपने वश कीजिये॥

रावण—(कुछ लज्जित हो, दर्बार को लौट चलदिया)

सीता जी—(रावण को लौटा देख, परमात्मा को धन्यवाद देने लगीं और सरमा से) ए सरमा ! परमात्मा ने बड़ी कृपा की,जो यह दुष्ट टलगया ॥

सरमा—बहन ! इस रावण की मृत्यु शिर पर खेल रही है । यह सब कार्य उलटे ही करता है । अब देखती रहो कि दो चार दिन में मारा जाता है । अब तुम विश्वास से बैठी रहो,रोज़ युद्ध का हाल मैं तुम से कहती रहूंगी॥

एक दिन

सरमा—(बाहर से मगन२ आ)लो,सीता! आज रावण रणभूमि में श्रीमान् रामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया। अब तुम्हारा सब सन्देह मिट गया। प्रसन्नतापूर्वक आनन्द मङ्गल करो॥

सीता जी—(अति प्रसन्न हो, नेत्रों में जल भर लाईं और बोल बन्द होगया, थोड़ी देर में शान्त हो) बहन! यह सब तुम्हारी प्रीति का फल है, नहीं तो मुझ मन्दभागिनी का यह भाग्य कहां कि ऐसा सुख आंखों से देखती। अब परमात्मा वह समय दिखलावे कि रामचन्द्र जी हमारे पास बैठे हों॥

सरमा—बहन! कल यह भी हुआ रक्खा है। अब सब विपत्ति टलगई, यह सदा की रीति है कि दुःख के पीछे सुख होता है। तुम बड़ी भाग्यवती हो कि इतना दुःख पाकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण हुई॥

सीता जी—ए सरमा!अब तुम जाकर रामचन्द्र जी को देखो कि क्या कररहे हैं॥

सरमा—बहुत अच्छा जाती हूं (और जाकर बहुत जल्द लौट) लो सीता जी! अब तुम्हारे लेने के लिये हनुमान् व राजा विभीषण जी आते हैं॥

आज क्यों लेखनी मगन है आज यह क्या समय है? कैसी सुगन्ध आरही है? आज कैसे आनन्दी बाजे बज रहे हैं? चारों ओर आनन्द का समय होरहा है। भाई आज क्या है? आहा! आज तो यह सरमा व त्रिजटा राक्षसी भी फूली नहीं समातीं। आज तो हनुमान् जी भी किलकारी मार रहे हैं। आज तो लङ्का के द्वार पर आनन्द के बाजे बज रहे हैं। पक्षी वृक्षों पर आनन्द के राग गारहे हैं। मृग किलोलें कर रहे हैं। सब राक्षस उदास फिरते हैं आज तो वानर सिंहों की नाईं निडर लङ्का में घूम रहे हैं। भाई! बतलाओ तो आज यह क्या समय वर्त्त रहा है?

हम-अरे भाई! कौन जाता है? आज यह क्या आनन्द होरहा है?

बटोई-अरे भाई! तुम भी बड़े गूंगे हो, क्या तुम को ख़बर नहीं? क्या तुम इन्द्रलोक से आये हो? अरे! संसार की तुम्हें कुछ सुध ही नहीं कि क्या हो रहा है। अरे भाई! आज तो बड़े आनन्द का दिन है॥

हम-भाई! बतलाओ तो क्या है?

बटोई-अरे मूर्ख! आज रावण मारा गया। अब सीता जी को राम-

चन्द्र जी ने बुलाया है। आज बहुत दिन के बिछड़े सीता जी व रामचन्द्र जी के मिलने का दिन है। आज बड़े आनन्द का समय है कि बड़ा भारी दुष्ट राक्षस मारा गया॥

हम-अरे भाई! आज तो हम भी यह श्रीमति सीता महारानी व श्री रामचन्द्र जी के मिलने का तमाशा देखेंगे। भला भाई! यह तो बतलाओ कि श्रीमान् रामचन्द्र जी की सेना कहाँ है?

बटोई-भाई! सेना यह समुद्र और लङ्का के बीच में पड़ी है। क्या तुम को दीखता भी नहीं?

श्रीमान् रामचन्द्र जी का दल

श्रीमान् रामचन्द्र जी युद्ध से निवृत्त हो, शिला पर बैठे हैं और लक्ष्मण जी समीप खड़े हैं। राजा सुग्रीव व बिभीषण जी व हनुमान् जी सब अपने२ मौक़े से बैठे हैं। बड़ा आनन्द मनाया जाता है॥

रामचन्द्र जी-ए प्यारे सुमित्रानन्दन! हमारे शुभग्राहक, हमारे भक्त और सहायक बिभीषण जी का लङ्का में जा कर राज्यतिलक कर आओ। हमें आप को लङ्का में राजा देखने का बड़ा अभिलाष है॥

लक्ष्मण जी-(बहुत अच्छा कह, प्रसन्न हो, सोने का कलश हाथ में ले, सुग्रीव जी को दे) राजन्! इस में समुद्र से जल मंगवा दीजिये॥

सुग्रीव-वानरो! अच्छा जाओ, समुद्र से जल भर लाओ॥

वानर—महाराज! यह जल आगया?

लक्ष्मण जी-अच्छा चलो, लङ्का में चलें (और सुग्रीव जी व जाम्बवानादि कुछ वानर व बिभीषण जी और लक्ष्मण जी लङ्का में पहुंचे)॥

अब बिभीषण जी को रत्नजटित गद्दी पर बिठाय, सब राक्षसों को बुलाय इकट्ठे कर उस समुद्र के जल से लक्ष्मण जी ने बिभीषण जी का राज्यतिलक कर दिया और सब ने लौटकर रामचन्द्र जी को प्रणाम किया। रामचन्द्र जी बिभीषण जी को अभिषेक कराये देख, बहुत प्रसन्न हुये और जो कुछ लङ्कानिवासी बिभीषण जी की भेंट लाये थे, वे सब वस्तु लाकर रामचन्द्र जी की भेंट कर दीं॥

रामचन्द्र जी-ए हनुमान्! महाराज बिभीषण जी को प्रणाम कर, इन से आज्ञा ले, रावण के महलों में जा, मनादी करादो कि राजा रावण मारा गया

और बिभीषण जी ने गद्दी पाई और वहां जा वैदेही जी की सुध लाओ और वैदेही जी से यह भी कहना कि राम व लक्ष्मण व सुग्रीव जी प्रसन्न हैं और रावण मार डाला गया और उन का कुशल पूछ शीघ्र ही लौट आओ ॥

हनुमान्–महाराज ! जो आज्ञा, अभी जाता हूं (और बिभीषण जी से) महाराज ! आप भी आज्ञा दीजिये (बिभीषण जी) अच्छा हम भी चलते हैं (और दोनों जाते हैं)

बस हनुमान् जी मनादी करा, बिभीषण जी सहित अशोकवाटिका में पहुंचे॥

अशोकवाटिका

सीता जी राक्षसों के बीच में बैठी सरमा व त्रिजटा से कुछ बातें कर रही हैं ॥

हनुमान्-(सिर झुकाय, प्रणाम कर हाथ जोड़, शिर पर रख, खड़े हैं)

सीता जी–अपनी विपत्ति याद कर आनन्द में चुप हैं और इतनी प्रसन्न हैं कि बोल मुख से नहीं निकलता ॥

हनुमान्–ए देवि ! सुग्रीव जी व लक्ष्मण जी व बिभीषण जी और सब वानरों सहित रामचन्द्र जी कुशल हैं और महाराज ने रावण को मार, तुम्हारा कुशल पूछा है और यह भी कहा है कि श्रीमान् बिभीषण जी की सहायता से हमने कुलसहित रावण को मारा है और तुम को यह आनन्दवचन सुनाने के लिये मुझे भेजा है और यह सब कुछ आप के ही कारण हुआ। अब आप सब शोक छोड़, प्रसन्न हों । और महाराज ने यह भी कहा है कि जब से रावण आप को चुरा लाया था, तब से हम नींद भर नहीं सोये और हमने अपनी आज्ञानुसार लङ्का का राज्य भी बिभीषण जी को देदिया। अब आप किसी प्रकार का भय न करें और अपने को अब अयोध्या में बैठी समझें। ए देवि! अब अपनी प्रसन्नता प्रकट कीजिये और महाराज बिभीषण जी भी आप के दर्शनों की इच्छा से बाहर खड़े हैं ॥

सीता जी उस समय हनुमान् की यह बातें सुन, इतनी प्रसन्न हुईं कि बोल सी बन्द होगया और मृत्यु की सी दशा हो गई। कुछ न बोल सकीं॥

हनुमान्–ए देवि ! आप किस सोच में हैं, जो हमारी ओर दृष्टि नहीं करतीं?

सीता जी—(भरी हुई बाणी से) ए हनुमान्! इस आनन्दमय समाचार से हमारा बोल बन्द होगया कि तुम से कुछ न कह सकीं । यह जो तुमने हम को आनन्ददाता समाचार सुनाया है,इस के बदले में हम तुम को क्या दान दें । इस समय हमारे पास कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं, जो तुम को देवें।

इस समाचार के बदले तो तुम को बड़ा भारी दान मिलना चाहिये। अब सोचती हूँ कि क्या दूं, जिस से तुम को परमानन्द मिले। जो सब जगत् का राज्य भी इस समाचार के बदले तुम को दान दिया जाय तो उसे भी थोड़ा जानती हूँ॥

हनुमान्—(हाथ जोड़) ए माता ! ऐसे प्रीतियुक्त वचन कहना आप ही का बट है। आप की प्रसन्नता ही हम को सब धन व धान्य जगत् भर के राज्य के तुल्य तो क्या वरन इन्द्रपुरी के राज्य से भी विशेष है। प्रकट में तो हम ने देवताओं के गुण पाये हैं क्योंकि जय पाये श्रीमान् रामचन्द्र जी को प्रसन्न देखते हैं॥

सीता जी—सचमुच तुम वार्त्तालाप करने में बड़े चतुर और पवनपुत्र भी हो, इस लिये प्रशंसा व मान्य के योग्य हो, क्योंकि सब बड़ाई आप में हैं तो फिर क्यों न ऐसा कहो॥

हनुमान्—ए माता ! मैं एक दान मांगता हूं कि यह जो राक्षसी यहां पर हैं, इन्होंने आप को बहुत डराया और भय दिया है। जो आप भी उचित समझें तो इन्हें हम को दीजिये। हम इन सब को मार डालना चाहते हैं। इन बुरी २ चुड़ैलों ने तुम पतिव्रता को कठोर २ वचन कह २ कड़ी २ दृष्टि से देख २ बड़ा दुःख दिया है। जो आप कृपाकर इन के मारडालने की हम को आज्ञा दें तो हम बड़े प्रसन्न होंगे। अब आप यह दान हम को दे दीजिये कि हम मुक्का व लात और भान्ति २ का कष्ट दे, इन को मार डालें। प्रथम तो हम इन के नाक कान काट, बाल उखाड़, मुख में आग डाल, अपने दांत व नाखूनों से इन का शरीर चीर इन के नाचने कूदने का तमाशा देखेंगे। फिर इन को मार डालेंगे। इन दुष्टात्माओं ने बड़ा पाप किया है जो आप को दुःख दिया है॥

सीता जी—ए पुत्र ! यह तो राजा के आधीन, उसी की आज्ञापालन करती थीं और रावण के घर से इन का पालन पोषण होता था और लाचार भी थीं। जो रावण की आज्ञा न मानतीं तो कहां रहतीं और कहां खातीं, पीतीं। कुछ अपने आप स्वतन्त्रता से तो इन्हों ने हम को कष्ट दिया ही नहीं, तुम को इन पर इतना क्रोध नहीं करना चाहिये॥

हनुमान्-माता ! इन्हों ने उस दिन मेरे आगे आप को डराया और धमकाया था, इस लिये मुझे क्रोध आ रहा है (और दांत कट कटा रहा है)

सीता जी—ए वानरोत्तम ! भला कहीं तुम से बुद्धिमान् दासियों पर

क्रोध किया करते हैं ? तुम्हारे क्रोध के योग्य तो रावण ही था, सो उस को कुलसहित तुम ने मार ही डाला । भला इन के मारने में तुम्हारी क्या कीर्त्ति होगी और हम को जो कुछ दुःख यहां हुआ, वह अपने भाग्य से, या यों कहो कि पिछले जन्म के पाप से। इन विचारियों का इस में क्या दोष है क्योंकि दुःख सुख सब अपने ही कर्मों का माना गया है । जो हम लक्ष्मण जी को रामचन्द्र जी की बोली सुन, रामचन्द्र जी के पास न भेज देतीं या आप भी उन के साथ ही चली जातीं, अकेली जङ्गल में न रह जातीं तो हम को यह दुःख क्यों उठाना पड़ता । हमने यह विश्वास कर लिया है कि हमारी ऐसी ही दशा होनी थी । जिस से यह दुःख पाये और इसी से इन विचारी रावण की दासियों के हम को कठोर वचन सहने पड़े । ए वानरोत्तम ! रावण की आज्ञा से यह हम को डराया, धमकाया करतीं थीं, अब जिस समय से रावण मारा गया, तब से यह विचारी बराबर हमारी सेवा करती हैं, कभी हम को नहीं डरातीं । यहां, जो यह अपने स्वभाव से हमें डरातीं तो दण्ड के योग्य थीं, इन का कुछ भी दोष नहीं । इस विषय में हम तुम को एक बड़ी पुरानी कहानी सुनातीं हैं ॥

एक वधिक व रीछ की कहानी

एक वधिक एक बड़े भारी वन में रोज़ शिकार को जाता और दो चार जीव सदैव मार लाता । दैवयोग से एक दिन भेड़िये का निशाना लगाया और निशाना ठीक न लगा । भेड़िया क्रोध में भर वधिक के पीछे दौड़ा और वधिक अवसर पा, एक वृक्ष पर चढ़ गया । दैवयोग से उस वृक्ष पर एक रीछ बैठा था ।।

भेड़िया—ए रीछ ! इस ने यहां बहुत से वन के जीव मारे हैं, इस को आप नीचे गिरादें, मैं इस को मार डालूंगा ॥

रीछ—भाई ! हम अपने गृह पर आये वैरी की भी सेवा करते हैं, इस लिये इस को न गिरावेंगे, क्योंकि अपने स्थान पर आये को दुःख देना बड़ा पाप है और तू तो बड़ा पापी है और तू तो प्राणघात करना चाहता है (और वधिक से) तुम बैठे रहो, कुछ शङ्का न करो ॥

भेड़िया—ए रीछ ! यह बड़ा अन्यायी है, मान जाओ, इस को नीचे गिरा दो, नहीं तो यह तुम को भी मार डालेगा । देखो किसी ने कहा है कि "वश में आये वैरी को कभी जीता न छोड़"

रीछ—तुम पागल हो। शरणागत को कोई भी सताता है ? अरे ! तुम ने यह दोहा नहीं सुना ॥

दोहा

जो जाकी शरणै वसै, ताको ताकी लाज।
जलसों ही मछली चढ़े, वहे जात गजराज ॥

तुम हम से ऐसी अधर्म की बातें न कहो और अपना मार्ग लो, और हम तो अब सोते हैं (और सो गया)

भेड़िया-ए वधिक ! तुम जानते हो कि रीछ मनुष्यों का सब से बड़ा वैरी है। यह अवश्य तुम को खा जावेगा ॥

वधिक—नहीं, यह तो मुझ पर बड़ी कृपा करता है ॥

भेड़िया-नहीं कृपा नहीं करता, जब तक मैं यहां हूं, तभी तक कुछ नहीं कहता, मेरे जाते ही यह तुम को मार डालेगा। भला यह रीछ की जाति कहीं मनुष्य को जीता छोड़ सकती है ?

वधिक(कुछ सोच विचार) अच्छा, अब मैं क्या करूं ?

भेड़िया-इस को नीचे गिरादो, बस गिरते ही इस के हाथ पांव टूट जायंगे और मर जायगा। बस, तुम इस अन्यायी के फन्दे से बच जाओगे ॥

वधिक—अच्छा, जो मैंने इस से छुटकारा भी पाया तो क्या तुम मुझे छोड़ दोगे ? इस ने मेरे ऊपर इतनी तो कृपा की है जो इस के साथ से मारा जाऊं तो अच्छा है, क्योंकि किसी ने कहा है कि " मित्र मारे तो छाया में डारे और वैरी मारे तो धूप में डारे "

भेड़िया-ए वधिक ! मैं तुम से प्रण करता हूं कि जिस समय तुम रीछ को धरती पर गिरा दोगे, मैं यहां से चला जाऊंगा और तुम को न मारूं गा। यह मेरा तुम से अधिक वैरी है और इस ने बहुत से मनुष्य मारे हैं, लो मैं तुम्हारा मार्ग छोड़े देता हूं, तुम इस को गिरा दो (और भेड़िया दूर जा खड़ा हुवा)

वधिक-अच्छा भाई ! जो तुम्हारी इच्छा, लो गिराये देता हूं, परन्तु वचन न भूल जाना (और गिराता है)

रीछ-(नीचे को गिरता, टहनी पकड़ रुक गया और आंख खुल गई, कुछ क्रोध भी किया, परन्तु शान्त हो गया)

भेड़िया-(वृक्ष के निकट आ, हंस कर) ए रीछ ! जो हमारा कहना सच हुआ, यह बड़ा दुष्टात्मा है। जो देख लिया, इस ने आप को नीचे गिरा दिया। जो अब इसी में कुशल है कि तुम अब भी इस को नीचे गिरादो॥

रीछ-निस्सन्देह इस ने तुम्हारे बहकाने से हम को नीचे गिराया, परन्तु हम इस में भी इस का कुछ दोष नहीं समझते। चाहे इस ने अपराध किया परन्तु हम तो कह चुके, कुछ हो, किन्तु इस की रक्षा ही करेंगे। सुनो धर्म-शास्त्र का एक प्रमाण है-

पापियों का पाप कोई धर्मात्मा नहीं लेता और न गिनता है, इस लिये सदैव मनुष्य को चाहिये कि समय को देखें, क्योंकि महात्मा लोग सदैव धर्म ही किया करते हैं। अरे! तुमने वह साधु की कहानी सुनी।

भेड़िया-वह कैसे है?

एक साधु की कहानी

रीछ-एक साधु नदी के किनारे बैठा तप कर रहा था, देखा कि एक बिच्छू बहाजा रहा है। साधु ने उस को निकाला। निकालते ही बिच्छू ने डंक मारा, डंक लगते ही साधु ने इस को किनारे पर रख दिया फिर वह बिच्छू चला और बहने लगा, साधु ने फिर निकाला, बिच्छू ने फिर डंक मारा। साधु ने फिर किनारे पर रख दिया और फिर बिच्छू चला और बहने लगा। साधु ने फिर तीसरीवार निकाला, बिच्छू ने फिर डंक मारा॥

चेला-गुरु जी! आपने इसे पहिली वार बहने से बचाया परन्तु इस ने आप के उस गुण के बदले डंक मारा। आपने फिर इस को बचाया, परन्तु इस ने तीसरी वार भी डंक मारा, ऐसे दुष्ट के साथ वार २ दुःख देने पर आप क्यों दया करते हैं॥

साधु—(हंस कर) चेला! हम साधु हैं। हमारा कर्म दया करने का है, और यह दुष्ट है, इस का स्वभाव दुष्टता का है। जब कि यह हमारे साथ अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो हम इस के साथ अपनी दया क्यों छोड़ें। किसी फ़ारसीके कवि ने कहा है॥

"वह अपनी खू न छोड़ेंगे, हम अपनी वजअ क्यों छोड़ें"

भेड़िया—अरे रीछ! तुम तो निरे मूर्ख हो। क्या तुमने वह गुरसल की कहानी नहीं सुनी?

रीछ—वह कैसे है?

गुरसल की कहानी

भेड़िया—एक मकान में पातर रहती थी, उस के पलंग के ऊपर छत में एक गुरसल ने घौंसला बनाया । अब गुरसल कभी २ पातर के शिर पर शब्द किया करती और पातर दुःखित होती, एक दिन पातर को क्रोध आगया और गुरसल को पकड़ने का यत्न किया और उस का मनोरथ पूरा हुआ । पातर ने गुरसल को पकड़, उस के सब पर नोंच और निकट ही एक देवमन्दिर में फेंक दिया ॥

अब यहां गुरसल कुछ चावल आदि चुग लिया करती और जलस्थान में जल पी लिया करती।कुछ दिन में पर निकल आये और सोचने लगी कि इस पातर से बदला अवश्य लेना चाहिये । सोचते २ उस मन्दिर के एक छिद्र में अपना घर बनाया और समय देखती रही । एक दिन दैवयोग से सूने मन्दिर में पातर आई ॥

शब्द—त्वया सिद्धं वैकुण्ठम् २ (अर्थात् तुझे स्वर्ग हुआ) [पातर चारों ओर देख] तुम कौन हो ? मुझ को दीखते नहीं । देव हो,दैत्य हो, किन्नर हो, गन्धर्व हो, बतलाओ तो कौन हो ?

शब्द—हम राजा इन्द्र के गण हैं । तुम्हारे कारण विमान लाये हैं । तुम को स्वर्ग हुआ । अब चलो देर न करो ॥

पातर—मैं तैयार हूं ॥

शब्द—तो इतना काम और करो कि दो घड़ी में अपना सब माल टाल लुटा, आप शिर मुंडा, एक धोती पहन, मिट्टी की हांडी हाथ में ले, तुरन्त यहां चली आओ । हम तुमको स्वर्ग में ले चलेंगे । परन्तु दो घड़ी से विशेष देर न करना, नहीं तो हम चले जायंगे ॥

पातर—अच्छा, मैं दो घड़ी में आती हूं (और जाकर सब मालटाल दान कर दिया और बहुत जल्द शिर मुंडवा, सफ़ेद धोती पहन, स्वर्ग के लालच,हांडी हाथ में ले,चली आई और आते ही) मैं तैयार हूं,विमान लाओ॥

शब्द—जाओ, मांगो और खाओ ॥

पातर—यह क्या ! तुमने तो हम से स्वर्ग लेचलने को कहा था ?

गुरसल—(तुरन्त छिद्र से उड़, पातर के सामने से निकल) है क्या, यह तुम्हारे उस पङ्ख उखाड़ने का बदला है।तुमने वह नीति का लेख नहीं सुना,

"खोटे के साथ खोटा बनना चाहिये और साधु के साथ साधु" तुमने मेरे पर उखाड़े, मैंने तुम्हारा शिर मुंड़वाया। चलो बराबर हुवे, अब छुट्टी पाई॥

रीछ—अरे मूर्ख ! यह खोटे आदमियों की बात है, अच्छे मनुष्य ऐसा नहीं कहते॥

सीता जी—ए वानरोत्तम ! इस से यह फल निकलता है कि धर्मात्मा मनुष्यों को सदैव पापियों पर भी दया ही करनी चाहिये, कभी किसी का सताना अच्छा नहीं। ऐसे ही तुम भी समझो कि इन विचारी राक्षसियों ने ऐसा कौन अपराध किया है कि जिस से मार डाली जायं। इन राक्षसियों का ऐसा करना कुछ विचार के योग्य नहीं,क्योंकि इनका तो स्वभाव ही दुःख देने का होताहै और स्वभाव का कुछ दोष नहीं।अब तुम इन पर क्षमा करो॥

हनुमान्—ए माता ! श्रीमान् रामचन्द्र जी की तुम धर्मपत्नी हो। इस लिये ऐसा कहती हो और यह कहना तुम्हारे ही योग्य है, क्योंकि तुम धर्मात्मा हो। तुम्हारी प्रशंसा किसी से नहीं हो सकती। अच्छा अब हम को आज्ञा दीजिये कि दल में जाकर महाराज को उत्तर दें॥

सीता जी—ए हनुमान् ! अब तो हम श्रीमान् रामचन्द्र जी को देखा चाहती हैं। उन के बिना देखे अब हम को एक पल भी चैन नहीं॥

हनुमान्—ए देवि ! विश्वास रक्खो, अभी तुम मन्त्रियों के सङ्ग में बैठे, वैरियों पर विजय पाये, चन्द्रमुख श्रीमान् रामचन्द्र जी को देखोगी। और मैं जाता हूं (और चलदिये)

श्रीमान् रामचन्द्र जी का दल

हनुमान्–(हाथ जोड़) महाराज ! सीता जी प्रसन्न हैं। उन्होंने अपना कुशल कहा और आप का कुशल पूंछ, दर्शनों का मनोरथ प्रकट किया है। इसी लिये आप ने लड़ाई भी की और वह पूरी भी हो गई। शत्रु सब मारे गये, आप की जय हुई। अब तो रावण भी कुलसहित मारा गया। अब सीता जी को देखिये, वे शोक के कारण अतिदुर्बल हो गई हैं, परन्तु आप के जय के समाचार सुन, एकाएकी प्रसन्न हो गई और नेत्रों में जल भर हम से कहा है कि अब लक्ष्मण जी सहित हम अपने पति को देखा चाहती हैं॥

रामचन्द्र जी–(कुछ मन में विचार कर, आंसू भर, बड़े ज़ोर से श्वास ले, बिभीषण जी से) राजन् ! तुम अपनी दासियों को आज्ञा दो कि सीता जी को शिर से स्नान करा, चन्दनादि लगा, उत्तम २ वस्त्राभूषण पहना, जल्द यहां ले आवें, देर न करें॥

बिभीषण-जो आज्ञा (और जाते हैं)

अशोकवाटिका

बिभीषण-(दासी ! आज श्रीमती सीता महारानी को उत्तम २ स्नान करा और उत्तम २ चन्दनादि लगा, सुन्दर २ वस्त्राभूषण पहना, श्रीमान् रामचन्द्र जी के पास ले चलो (और हाथ जोड़, शिर पर रख, नीचे को मुख कर सीता जी से) ए देवि ! अब आप स्नान कर उत्तम २ सुगन्ध अङ्ग में लगा, अमूल्य वस्त्राभूषण पहन लो । अब तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे पति तुम को देखा चाहते हैं ॥

सीता जी—ए राक्षसराज ! हम तो बिना स्नान किये ही अपने स्वामी को देखा चाहती हैं ॥

बिभीषण-ए देवि ! जिस प्रकार आप के स्वामी आज्ञा करते हैं, वैसे ही आप को करना चाहिये ॥

सीता जी-बहुत अच्छा, जैसे स्वामी की आज्ञा, वैसे ही करेंगी (इस के पीछे उबटन कर सुगन्धित जल से सीता जी को स्नान करा उत्तम उत्तम वस्त्राभूषण पहना और अति सुशोभित पालकी पर सवार करा, आगे २ बिभीषण जी और सङ्ग में हज़ारों राक्षस चल दिये और पालकी दल में पहुंची)

दल

बिभीषण—(हाथ जोड़) श्री महाराज ! सीता जी आप के दर्शनों को आई हुई आज्ञा चाहती हैं ॥

रामचन्द्र जी—(आने से प्रसन्न व पिछले दुःखों को याद कर उदास, राक्षसों की कठोरता से क्रोध और अप्रसन्नता प्रकट कर) ए बिभीषण ! ए प्यारे सुहृद् ! बहुत जल्द सीता जी हमारे सामने आवें ॥

बिभीषण-जो आज्ञा (और सब मनुष्यों के हटाने का प्रबन्ध करते हैं । खोजा लोग बेत हाथ में ले सब को हटाते हैं । बानर और राक्षस भागकर दूर जा खड़े होते हैं, परन्तु सीता जी के दर्शन के अभिलाष में बड़ा शब्द करते हैं)

रामचन्द्र जी—ए बिभीषण ! इन लोगों को न हटाओ । यह बात अच्छी नहीं है (और फिर आंसू भर) ए बिभीषण ! बिना हमारी आज्ञा के क्यों इन लोगों को दुःख देते हो, इस प्रबन्ध को बन्द करो । देखो यह बानर लोग हम को लक्ष्मण के समान हैं, इस के सिवाय जो स्त्री अपने पति की प्रतिष्ठा रखती हैं उन का उत्तम आचार ही उन का परदा है । कुछ

घर के अन्दर बैठे रहने से ही नहीं है। देखो इन के मनोरथ को न कपड़ा रोक सकता है न ऊंची दीवार न कनातादि और इन सब बातों को भी छोड़ कर छः समय पर अर्थात् दुःख में, विपत्ति में, युद्ध में, स्वयंवर में, यज्ञ में और विवाह में स्त्रियों का सब के सामने निकलना अनुचित नहीं, सो यह सीता जी भी तो अभी दुःख वा विपत्ति में हैं। इन का सब के सामने निकलना कुछ दोष नहीं। इस के सिवाय हमारे साथ तो कभी इन को दोष नहीं हो सकता। चाहे जो देखे। अब तुम पालकी वहीं रोको और सीता जी से कह दो कि पैदल २ उतर कर हमारे सामने आवें, जिस में सब वनवासी रीछ वानर इन को भले प्रकार देख लें॥

विभीषण—जो, बहुत अच्छा, कह, पैदल २ जानकी जी को रघुनन्दन जी के सामने लाते हैं। बहनो! परन्तु ऐसे क्रोधयुक्त वचन रामचन्द्र जी से सुन लक्ष्मण जी व सुग्रीव जी को भी दुःख हुआ और सीता जी भी कुछ लज्जित सी श्रीमान् रामचन्द्र जी के सामने पहुंच और हाथ जोड़ प्रणाम कर रामचन्द्र जी के निकट जा बैठीं)

रामचन्द्र जी—ए भद्रे! हमने रणभूमि में शत्रु को मार, तुम को पाया है। द्वितीय बल पौरुष का जो काम था वह तो हमने सब दिखलादिया और क्रोध भी जाता रहा। शत्रु से अनादर का भी हम को जो शोक था, वह भी अब नहीं रहा और शत्रु ने जो २ बात कठोर कही थीं, उन का भी सब प्रकार हमने अन्त कर दिया। आज तुमने हमारा पौरुष भी देखा और तुम को हमारे परिश्रम का भी फल मिल गया और हम और तुम भी अपनी २ कामना को पहुंचे। हमारे कुटी पर न होने से जो दैवी दुःख रावण ने तुम को दिया था, हमने मनुष्य ही होने पर सब दैवकृत दुःख दूर कर दिया, जिस पुरुष की अपकीर्त्ति संसार में हो और वह अपनी शक्ति से उसे दूर न कर सके अर्थात् अनादर करने वालों को न मार सके तो उस बलहीन का क्या पौरुष। समुद्र कूदना लङ्का जलाना आदि जो २ कर्म हनुमान् जी ने किये थे, वे आज सब पूरे हो गये और आज ही हनुमान् प्रशंसनीय ठहरे। युद्ध में उत्तम मन्त्री सुग्रीव जी का भी परिश्रम ठिकाने लगा। विभीषण जी का रावण अपने भाई को मूर्ख जान हमारे पास आना आज लाभदायक हुआ॥

सीता जी—(प्रसन्न मन हो, प्रसन्नता के आंसू बहाने लगीं)

रामचन्द्र जी—ए सीता! अपनी अपकीर्त्ति का निवारण जो तुम्हारे यहां

लाने में रावण की ओर से हुआ था, हमने कर लिया। जैसे कि अगस्त जी ने अपने तप से इल्वल व वातापि के मारने और आर्य्यावर्त्त के दक्षिणी भाग जीतने से किया उसी प्रकार तुम्हारा मनोरथ पूरा होगया। परन्तु यह न समझो कि जो कुछ यह कर्म हमने अपने मित्रों की सहायता से किया है वह तुम्हारे लिये किया है। नहीं, सदाचार की रक्षा और यह निन्दा मिटाने के लिये कि अपनी स्त्री के चुराने वाले को भी न मार सके और इस अपकीर्त्ति के मिटाने के लिये कि यह कुल सदा से शत्रुओं को दण्ड देने में विख्यात हो रहा था, अब रावण तक इन से न मारा गया, हमने रावण को मारा है। कुछ तुम्हारे लिये नहीं मारा। इस समय तुम हमारे सामने आगई हो, परन्तु बहुत दिन अलग रहने से हम को तुम्हारे आचार पर विश्वास नहीं रहा और जिस प्रकार दुखती आंख को दीपक अच्छा नहीं लगता वैसे ही इस समय तुम भी हम को अच्छी ज्ञात नहीं होतीं। अब तुम हम से मिल भी लीं और रावण मारा भी गया और यह बात भी विख्यात हो गई कि रावण का कुल सहित नाश कर हम ने तुम को कुशल-पूर्वक लौटा लिया। अब उचित यही है कि दशों दिशा में से जहां तुम्हारा जी चाहे चली जाओ और हम से कुछ प्रयोजन न रक्खो क्योंकि कौन ऐसा विख्यात मनुष्य है कि जो कुलीन हो कर मोह वश हो, दूसरे के घर में बहुत दिन तक रही स्त्री को फिर अपने घर में रखले। हमारी समझ में तो इस समय कोई नीच वर्ण भी ऐसा नहीं कर सकता। इसी प्रकार रावण की गोद में आई और कुदृष्टि से देखी तुम को हम कैसे ग्रहण करलें और कुलीन बने बैठे रहें। इस चुरा ले जाने की अपकीर्त्ति मिटाने के लिये हमने तुम को अपने पास बुलाया था। यह मनोरथ तो हो चुका कि यहां बुला, सब नीच ऊंच समझा दिये और कुशलपूर्वक देख भी लिया परन्तु अब तुम्हारा हम से कुछ प्रयोजन नहीं। अब उचित यही है कि जहां जाने से तुम प्रसन्न हो, वहीं चली जाओ और इस मामले को हमने सब प्रकार विचार लिया है। अब तुम को अख़्त्यार है कि लक्ष्मण या भरत से भी इस में सलाह करलो या वानरेन्द्र सुग्रीव व राक्षसेन्द्र बिभीषण जी से पूंछ लो या जैसे जी में आवे और जिस में अपना लाभ समझो, करो परन्तु हमारे पास नहीं रह सकतीं क्योंकि रावण के वश में तुम यहीं रहीं और वह सब कर्म्मों में विना दबाव बड़ा स्वतन्त्र था॥

सीता जी–(लज्जित हो नीचा शिर कर, आंसू पोंछ बहुत होले से) ऐसे वीर, इस प्रकार का अयोग्य वचन जो सुनने में भी कठोर हो, नहीं कहा करते, यह तो साधारण मनुष्य व स्त्रियों के कहने योग्य हैं । आप को हम से कहने योग्य नहीं, आप को हम से ऐसा न कहना चाहिये, इस समय आप, जैसी स्त्री हम को विचार कर रहे हैं, वैसी हम नहीं हैं, इस बात को आप भले प्रकार मान लें, कि हमने पूरा पतिव्रतधर्म इस आपत्ति में भी बना रक्खा है और हम अपने पतिव्रतधर्म की वा आप की सौगन्द खाती हैं कि हम में कोई दोष इस समय तक नहीं । बड़े आश्चर्य की बात है कि आप साधारण स्त्रियों का चलन देख, पतिव्रता स्त्रियों के चलन में भी संशय करते हैं, आप को विना सबूत ऐसा मनोरथ न करना चाहिये । जो हमारे पतिव्रतधर्म पर आप को विश्वास हो चुका तो इस सन्देह को छोड़ दीजिये । ए स्वामी ! जो उस चोरी के समय रावण का कोई अङ्ग हम से छू गया हो, वह तो लाचारी थी । क्योंकि उस दुष्ट ने हम को ज़बर-दस्ती से आप के पीछे पकड़ लिया था । कुछ हमारी इच्छा न थी,बाक़ी तो हमने उस को अपने पांव भी नहीं छूने दिये । ए नरसिंह ! हमारे आधीन तो हमारा मन है, सो वह आप के चरणों में रहा, और शरीर दूसरे के आधीन था । और विपत्ति काल में हमारा क्या वश था ? एकाएकी आसन पर बैठे अनुराग से जो आपने इतने दिन में हम को न जान पाया तो हम विना सन्देह मारी गईं, और जो यही करना था तो जिस समय कि आपने हनुमान् को हमारे ढूंढ़ने के लिये भेजा था, उसी समय क्यों नहीं कहला भेजा कि हमने तुम को त्याग दिया । जो हम उस समय ऐसा जान लेतीं तो जीती ही अपने प्राण त्याग देतीं और इस लड़ाई झगड़े को यह भारी दुःख आप क्यों उठाते और आप के इन मित्रों को दुःख क्यों होता । सुख से सब अपने २ घर बैठे रहते । ए नरेश्वर ! तुमने तुच्छ मनुष्यों की नाईं क्रोध कर सांसारिक स्त्रियों के समान हम को समझ लिया । विचारे महात्मा जनक जी का कुछ धर्म न सोचा और हमारे पृथिवी से उत्पन्न होने का कुछ विचार न किया कि पृथ्वी से उत्पन्न हुई कन्या हैं, यह धर्मात्मा और पवित्र ही होगीं । आश्चर्य है कि तुमने हमारे स्वभावों को भले प्रकार नहीं समझा । आपने तो विवाह यज्ञ में हमारा हाथ पकड़ा है और उसी समय से हम आप के साथ हैं । जैसा कुछ धर्म व चलन हम में है वह सब आप जानते हैं,उस पर भी आपने कुछ विश्वास न किया। अच्छा, जो कुछ इच्छा । हम को आप की प्रसन्नता में कुछ विचार नहीं । (भारी

आवाज़ से) ए लक्ष्मण ! अब आप हमारे ऊपर कृपा कर एक चिता बना दीजिये । बस इस रोग का निवारण चिता ही है, और कुछ नहीं हो सकता। जब कि श्रीमान् रामचन्द्र जी ने ऐसा विचार कर लिया तो फिर कहां ठिकाना है । हम तो थोड़ी सी निन्दा में भी जीती नहीं रहना चाहतीं क्योंकि हम को व हमारे आचरणों को रामचन्द्र जी स्वीकार नहीं करते इस लिये हम आग ही में जल जावेंगी क्योंकि इस समय में आग में जलना ही हमारे छूटने का करण हो सकता है ॥

लक्ष्मण—(रामचन्द्र जी की ओर देखने लगे, और चुप रहने के कारण रामचन्द्र जी की भी सम्मति समझ, बहुत जल्द चिता तैयार करदी)

उस समय श्रीमान् रामचन्द्र जी का मुख बड़ा भयानक हो रहा था । सब लोग देख २ कांप रहे थे, किसी की हिम्मत न पड़ती थी, कि समझावे (चिता को तैयार देख, नीचा शिर किये)

सीता जी—(उठ, प्रथम रामचन्द्र जी की परिक्रमा कर पश्चात् जलती चिता की परिक्रमा कर, हाथ जोड़, खड़ी हो) ए अग्नि ! जो हमारा मन श्री रामचन्द्र जी के चरणों को छोड़ और कहीं नहीं गया, और जो हमारा पतिव्रतधर्म बना है तो तू हमारी रक्षा कर, (और परिक्रमा देती हुई हंस कर निर्भय जलती आग में बैठ गईं)

यह देख, सब राक्षसियां व राक्षस व वानर लोग शोक कर २ बड़ा शब्द करने लगे और सीता जी के ऐसे शब्द सुन रामचन्द्र जी भी चलायमान हो गये और आंसू भर लाये, दो घड़ी तक कुछ ध्यान सा करते रहे, और सब देवता लोग लङ्का में पहुंच गये और बहुत ऋषि मुनि इकट्ठे हो गये ॥

अग्नि ऋषि—ए रामचन्द्र ! भला यह सब कुछ जान कर आग में बैठी सीता जी को भी आप अच्छा नहीं समझते । आप को तो विश्वास है कि सीता जी सब प्रकार निर्दोष हैं और कुछ दोष इन में नहीं । क्या निर्दोष पर दोषारोपण ही न्याय है ? जो ऐसा है तो ख़ैर, नहीं तो निर्दोष सीता जी का साधारण रीति से त्यागना बड़ा भारी अन्याय है ॥

रामचन्द्र जी—महाराज ! हम तो साधारण मनुष्य हैं और महाराज दशरथ जी के पुत्र हैं । भला बिना देखे का समाचार क्या जानें ॥

अग्नि ऋषि—देखो रामचन्द्र ! सीता अपने सत व पतिव्रतधर्म पर

आरूढ़ हैं। किसी प्रकार का पाप सीता जी में नहीं। उन को अग्नि से कुछ भी भय न होगा और वह कुशलपूर्वक इस अग्नि से जीती निकलेंगी ॥

(बस थोड़ी देर में आग बुझी और सीता जी जीती निकलीं)

अग्नि ऋषि—(सीता जी का हाथ पकड़) ए रामचन्द्र! लो अब तो परीक्षा पूरी होली। इन का हाथ पकड़ो और फिर ऐसा काम न करना। देख लो इन में रत्तीभर भी पाप नहीं और किसी समय ध्यान भी इन का पाप में नहीं गया और न सिवाय आप के इन्होंने किसी की ओर ध्यान दिया। केवल रावण ज़बरदस्ती से इन को लङ्का में ले आया था इन का क्या दोष, परन्तु लङ्का में भी उस ने बड़ी सावधानी से रक्खा है। इन के पास कोई पुरुष नहीं जाने पाता था। सब स्त्रियां ही स्त्रियां रक्षक थीं, यह वहां भी आप ही का ध्यान रखती थीं। यह सत्य है कि बहुत सा डर भी इन को दिया गया, लालच भी दिखाया गया, मारने का समय भी नियत कर दिया गया, परन्तु इन्हों ने अपने विचार को नहीं बदला। आप कभी इन से इस प्रकार की बातें न करें और हम भी यह वरदान देते हैं कि इन के नाम के साथ सब सती कहा करें ॥

रामचन्द्र जी–ए ऋषि जी! आप का सब कहना सत्य है, परन्तु इतना तो विचार कर लीजिये कि जो इस प्रकार इन की परीक्षा न ली जाती तो सब लोग हम को व्यभिचारी विख्यात करते और कहते कि ये बड़े कामी हैं कि जो सीता को बिना परीक्षा अपने पास रख लिया और सीता जी के स्वभाव को तो हम पहिले ही से जानते हैं और हम को किसी प्रकार का सन्देह भी नहीं, यह तो पतिव्रता हैं। भला इन को रावण कैसे कुदृष्टि से देख सकता था और इन का मन तो सिवाय हमारे और कहीं गया ही नहीं, इसी लिये हम आप का वचन भी ग्रहण करते हैं ॥

सब लोग प्रसन्नता का शब्द करते हैं, अब रात भर तो उसी सेना में बीती, सवेरे होते ही रामचन्द्र जी स्नान आदि कर सन्ध्या अग्निहोत्र से निवृत्त हो, बैठे ॥

बिभीषण-(हाथ जोड़) श्रीमहाराज! सुगन्धित जल और सुगन्धि लिये ये स्त्रियां आप के स्नान कराने को खड़ी हैं। यह इस सुगन्धित जल से आप को स्नान करा उत्तम २ वस्त्राभूषण पहनावेंगी ॥

रामचन्द्र जी–राजन्! इन जलादि से तो महात्मा लोग सुग्रीवादि की पूजा करो, क्योंकि हम अभी साधारण से अधिक स्नानादि नहीं कर

सकते। देखो अभी तक भरत जी हमारे लिये तपस्या कर रहे हैं, जिस समय तक कि हम भरत जी को नियमपूर्वक स्नान करा उत्तम २ वस्त्राभूषण न पहना लेवेंगे, तब तक साधारण से अधिक स्नानादि नहीं कर सकते। हां, ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि शीघ्र अयोध्यापुरी में पहुंच जायं क्योंकि यहां से अयोध्यापुरी का बड़ा कठिन और भयानक मार्ग है॥

बिभीषण–महाराज! आप को याद नहीं रहा, यहां महात्मा कुबेर जी का पुष्पकविमान आप की सवारी के लिये बहुत सावधानी से रक्खा है, उस पर तो आप एक दिन में पहुंच सकते हैं। भला विमान के होते आप पैदल २ जा सकते हैं? आप उस में सवार हो बिना परिश्रम अयोध्या जी को चले जायं, बस अब अयोध्या जी की यात्रा से तो निवृत्ति हुई, अब आप आनन्दपूर्वक यहां विश्राम कीजिये। हम भी तो कुछ दिन आप की सेवा करलें और आप अकेले ही विश्राम न करें, वरन यह सब रीछ और वानर आप के साथ कुछ दिन यहां कृपा करें। भलीभांति सस्ता लेवें और सब लोग बड़े प्रेम से हमारी महमानी स्वीकार करें, क्योंकि हम आप के दास हैं इस लिये निवेदन करते हैं। कुछ हम के ऊपर दबाव तो डालते ही नहीं, यह तो आप ग्रहण कर ही लीजिये। इस के सिवाय और जो आज्ञा दीजिये, उस के करने को हम तैयार हैं॥

रामचन्द्र जी–(सब को सुना) ए मित्र! आपने अब तक हमारी पूजा में कुछ चूक नहीं की। बहुत बड़ी पूजा और शुश्रूषा की है, अभी उस से हमारी शुश्रूषा अधिक अब आप कर सकते हैं और ठहरने के लिये हम आप का कहना इस कारण स्वीकार नहीं कर सकते कि भरत जी के देखने को मन बड़ा बेचैन है। देखो वे महात्मा भरत जी हम को लौटाने के लिये चित्रकूट तक आये थे और हमारे बदले में आप वनवास को तैयार थे और बहुत सिर झुका २ कर उन्होंने हम से प्रार्थना की, परन्तु हमने स्वीकार न की। सिवाय इस के कौशल्यादि माता और वशिष्ठादि गुरु मन्त्री और पुरवासियों के देखने को हमारा मन बेचैन होरहा है। अब तो आप हम को जाने की आज्ञा दे ही दीजिये क्योंकि ऐसी बेचैनी का होना दुःख का कारण है। ए मित्र! अब तो हम को जाने दीजिये परन्तु आप अप्रसन्न न हों, इस की हम आप से क्षमा चाहते हैं। लो अब जल्द विमान मंगवाइये॥

बिभीषण–बहुत अच्छा, जो आप की इच्छा। हमारे मन में मनोरथ

है यह तो है ही परन्तु हम लाचार हैं कि आप के विपरीत भी नहीं कर सकते, परन्तु कुछ और ही आज्ञा दीजिये ॥

चन्द्रमुखी—लो बहनो ! अब संध्या होगई । कल सीता जी व रामचन्द्र जी की अयोध्या की यात्रा का वृत्त न कहूंगी । हां यह हो सकता है कि तुम में से किसी को कुछ शङ्का हो तो वह निवारण करलो ॥

चावली—सखी ! शङ्का तो कुछ नहीं, परन्तु यह पूछना है कि जैसी विपत्ति सीता जी ने उठाई, ऐसी और किसी ने भी पाई है ? जो आप को किसी और महारानी का समाचार ज्ञात हो तो कृपा कर वह भी सुना दीजिये।

चन्द्रमुखी—हां बेटी ! मुझे राजा हरिश्चन्द्र की रानी तारामती का वृत्तान्त याद है, तुम सब कान लगा कर सुनो ॥

सत्य हरिश्चन्द्र

इन्हीं श्रीमान् रामचन्द्र जी के पुरुषाओं में एक राजा हरिश्चन्द्र जी हुवे हैं। वे बड़े धर्मात्मा, दानी और प्रतापी थे। इन के दान की जगत् भर में धूम थी और कभी दान देने में शोच विचार नहीं करते थे। जो याचक ने मांगा, तुरन्त दे दिया। एक समय का वृत्तान्त सुनो—

राजा इन्द्र का दरबार

द्वारपाल—(राजा इन्द्र से) महाराज ! नारद जी द्वार पर खड़े हैं ॥

इन्द्र जी—आने दो, भले समय आये (और जी में) नारद जी तो जगत भर के समाचार जानते हैं। इन से हरिश्चन्द्र का सब समाचार ज्ञात हो जायगा। (और हाथ जोड़ नारद जी को प्रणाम कर) आइये २ कहिये प्रसन्न तो रहे, आज किधर भूल पड़े ?

नारद जी—राजन् ! आप की कृपा है। आप जानते हैं कि हम को सिवाय विचरने के और क्या कार्य है ॥

इन्द्र जी—साधु तो अपने स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं और जिन में आप से, जो हम पापियों को घर बैठे दर्शन देते हैं। महाराज गृहस्थियों को साधुसंगति दुर्लभ है ॥

नारद जी—राजन् ! आप को इतना शिष्टाचार नहीं सोहता। आप तो देवराज हैं। आप के संग को तो बड़े २ ऋषि मुनि इच्छा करते हैं ॥

इन्द्र जी—हम को बड़ा सोच है कि आप ने हमारी बातों को शिष्टा-

चार समझा। क्षमा कीजिये आप से हम बनावट नहीं करते। भला विराजिये तो सही॥

नारद जी—विराजिये (दोनों बैठते हैं)

इन्द्र जी—कहिये, इस समय कहां से आना हुआ॥

नारद जी—अयोध्या से। आहा! राजा हरिश्चन्द्र धन्य है। मैं तो उस के निष्कपट और अकृत्रिम स्वभाव से बहुत ही सन्तुष्ट हुआ। यद्यपि इसी सूर्यकुल में अनेक बड़े २ धार्मिक हुवे, पर हरिश्चन्द्र तो हरिश्चन्द्र ही है।

इन्द्र जी—(आप ही आप) यह भी तो उसी के गुण गाते हैं॥

नारद जी—महाराज! सत्य की तो मानो हरिश्चन्द्र मूर्त्ति है। निस्सन्देह ऐसे मनुष्यों के उत्पन्न होने से भारत भूमि का सिर केवल इन के स्मरण से उस समय भी ऊंचा रहेगा जब यह पराधीन होकर हीनावस्था को प्राप्त होगी॥

इन्द्र जी—(आप ही आप) आहा! हृदय भी ईश्वर ने क्या ही वस्तु बनाया है। यद्यपि इस का स्वभाव सहज ही गुणग्राही हो तथापि दूसरों की उत्कट कीर्ति से इस में ईर्ष्या होती ही है, उस में भी जो जितने बड़े हैं, उन की ईर्ष्या भी उतनी ही बड़ी है। हमारे से बड़े पदाधिकारियों को शत्रु उतना सन्ताप नहीं देते, जितना दूसरों की सम्पत्ति और कीर्ति॥

नारद जी—आप क्या सोच रहे हैं॥

इन्द्र जी—कुछ नहीं। यों ही मैं सोचता था कि हरिश्चन्द्र की कीर्ति आज कल छोटे बड़े सब के मुंह से सुनाई पड़ती है, इस से निश्चय होता है कि हरिश्चन्द्र निस्सन्देह बड़ा मनुष्य है॥

नारद जी—क्यों नहीं, बड़ाई उसी का नाम है, जिसे छोटे बड़े सब माने और फिर नाम भी तो उसी का रह जायगा, जो ऐसा दृढ़ होकर धर्म्मसाधन करेगा। (आप ही आप) और उस की बड़ाई का यह भी तो एक बड़ा प्रमाण है कि आप ऐसे लोग उस से द्वेष मानते हैं। क्योंकि जिस से बड़े २ लोग डाह करें पर उस का कुछ बिगाड़ न सकें, वह निस्सन्देह बहुत बड़ा मनुष्य है॥

इन्द्र जी—भला उस के गृहचरित्र कैसे हैं?

नारद जी—दूसरे के लिये उदाहरण लेने के योग्य। भला पहिले जिस ने अपने निज के और अपने घरों के चरित्र ही नहीं शुद्ध किये, उस की

और बातों पर क्या विश्वास हो सकता है ? शरीर में चरित्र ही मुख्य वस्तु है । वचन से उपदेशक और क्रियादिक में कैसा ही धर्मनिष्ठ क्यों न हो पर यदि उस के चरित्र शुद्ध नहीं तो लोगों में वह टकसालन समझा जायगा और उस की बातें प्रमाण न होंगी। महात्मा और दुरात्मा में इतना ही भेद है कि उन के मन वचन और कर्म एक रहते हैं, इन के भिन्न २। निस्सन्देह हरिश्चन्द्र महाशय हैं। उन के आशय बहुत उदार हैं, इस में कोई सन्देह नहीं॥

इन्द्र जी—भला आप उदार वा महाशय किस को कहते हैं ?

नारद जी—जिस का भीतर बाहर एक सा हो और विद्याऽनुरागिता उपकारप्रियता आदि गुण जिस में सहज हों । अधिकार में क्षमा, विपत्ति में धैर्य, सम्पत्ति में निरऽभिमान और युद्ध में जिस को स्थिरता है वह ईश्वर की सृष्टि का रत्न है और उसी की माता पुत्रवती है । हरिश्चन्द्र में यह सब बातें सहज हैं । दान करते २ उस को प्रसन्नता होती है और कितना भी दे कर सन्तुष्ट नहीं होता । यही समझता है कि अभी कुछ नहीं दिया ॥

इन्द्र जी-(आप ही आप हृदय पत्थर का होकर यह कान खोलकर सुने)

नारद जी—और इन गुणों पर ईश्वर की निश्चला भक्ति उस में ऐसी है जो सब का भूषण है । क्योंकि इस के बिना किसी की शोभा नहीं, फिर इन सब बातों पर विशेषता यह है कि राज्य का प्रबन्ध ऐसा उत्तम और दृढ़ है कि लोगों को सन्देह होता है कि इन्हें राज्य काज देखने को छुट्टी कब मिलती है। सच है कि छोटे जी के लोग थोड़े ही कामों में ऐसे घबरा जाते हैं, मानो सारे संसार का बोझ इन्हीं पर है । पर जो बड़े लोग हैं उन के सब काम आरम्भ होते हैं, तब भी उन के मुख पर कहीं से व्याकुलता नहीं झलकती क्योंकि एक तो उन के उदार चित्त में धैर्य और अवकाश बहुत है । दूसरे उन के समय व्यर्थ नहीं जाते और ऐसे यथायोग्य बंटे रहते हैं कि जिस से उन पर कभी भीड़ पड़ती ही नहीं ॥

इन्द्र जी-भला महाराज! वह ऐसे दानी हैं तो उन की लक्ष्मी कैसे स्थिर है ?

नारद जी-यही तो हम कहते हैं कि निःसन्देह वह राजकुल का कलङ्क है, जिस ने विना पात्र विचारे दान देते देते सब लक्ष्मी का क्षय कर दिया और कुछ उपार्जन किया ही नहीं। जो था वह नष्ट हो गया और जहां प्रबन्ध है, वहां धन की क्या कमती है। मनुष्य कितना धन देगा और याचक कितना लेगा॥

इन्द्र जी-पर यदि कोई अपने वित्त के बाहर मांगे या ऐसी वस्तु मांगें जिस से दाता की सर्वस्व हानि होती हो, वह दे कि नहीं ॥

नारद जी-क्यों नहीं ? अपना सर्वस्व वह क्षण भर में दे सकता है, पात्र चाहिये । जिस को धन पाकर सत्पात्र में उस के त्याग की शक्ति नहीं है वह उदार कहां हुवा? राजन् ! मानियों के आगे प्राण और धन तो कोई वस्तु हीं नहीं, वे तो अपने सहज स्वभाव ही से सत्य और विचार तथा दृढ़ता में ऐसे बन्धे हैं कि सत्पात्र मिलने या बात पड़ने पर उन को स्वर्ण का पर्वत भी तिल सा दिखाई देता है । और उस में भी हरिश्चन्द्र, जिस का सत्य पर ऐसा स्नेह है, जैसा कि भूमि कोष रानी और तलवार पर भी नहीं । जो सत्यानुरागी ही नहीं है, भला उस से न्याय कब होगा । जिस में न्याय नहीं वह राजा ही काहे का । कैसी भी विपत्ति और उभय संकष्ट पड़े और कैसी ही हानि या लाभ हो पर जो न्याय न छोड़े वही धीर और वही राजा और वही सत्य न्याय का मूल है ॥

इन्द्र जी-तो भला वह जिसे जो देने को कहेगा, देगा वा जो करने को कहेगा, करेगा ?

नारद जी-क्या आप उस का परिहास करते हैं ? किसी बड़े के विषय में ऐसी शङ्का ही उस की निन्दा है ? क्या आप ने उस का वह सहज साभिमान वचन नहीं सुना ?

दोहा—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत् व्यवहार ।
पै दृढ़ श्री हरिचन्द्र को, टरै न सत्यविचार ॥

इन्द्र जी-(आप ही आप) [तो फिर इसी सत्य के पीछे नाश भी होगा । हम को भी अच्छा उपाय मिला] (प्रकट में) हां, पर आप भी यह जानते हैं कि क्या वह यह सब धर्म स्वर्ग लेने को करता है ?

नारद जी-वाह ? भला जो ऐसे हैं, उन के आगे स्वर्ग क्या वस्तु है ? क्या बड़े लोग धर्म स्वर्ग पाने को करते हैं ? जो अपने निर्मल चरित्र से सन्तुष्ट है, उस के आगे स्वर्ग क्या वस्तु है ? फिर भला जिन के शुद्ध हृदय और सहज व्यवहार हैं, वे क्या यश वा स्वर्ग के लालच से धर्म करते हैं ? वे तो आप के स्वर्ग को सहज में दूसरे को दे सकते हैं । वे क्या किसी कामना से धर्म का आचरण करते हैं ? यह भी एक क्षुद्रता है कि इस लोक में एक देकर परलोक में दो की आशा रखना ॥

इन्द्र जी-(आप ही आप) हमने माना कि उस को स्वर्ग लेने की इच्छा न हो, तथापि अपने कर्मों से वह स्वर्ग का अधिकारी तो हो ही जायगा॥

नारद जी-और जिन को अपने किये शुभ अनुष्ठानों से आप सन्तोष मिलता है, उन के उस असीम आनन्द के आगे आप के स्वर्ग का अमृतपान और अप्सरा तो महातुच्छ हैं। क्या अच्छे लोग कभी किसी शुभकृत्य का बदला चाहते हैं?

इन्द्र जी-तथापि एक वेर उनके सत्य की परीक्षा होती तो अच्छा होता॥

नारद जी—राजन्! आप का यह विचार बड़ा अयोग्य है। ईश्वर ने आप को बड़ा किया है, आप को दूसरों की उन्नति और उत्तमता पर सन्तोष करना चाहिये। ईर्ष्या करना तो क्षुद्राशयों का काम है, महाशय वही हैं जो दूसरों की बड़ाई से अपनी बड़ाई समझें॥

इन्द्र जी-(आप ही आप) इन से काम न होगा (बात बहला, प्रकट में) नहीं २, मेरी यह इच्छा थी कि मैं भी उन के गुणों को अपनी आंखों से देखता। भला मैं ऐसी परीक्षा थोड़े ही लेना चाहता हूं, जिस से उन्हें कुछ कष्ट हो?

नारद जी-(आप ही आप) आहा! बड़ा पद मिलने से कोई बड़ा नहीं होता, बड़ा वही है जिस का चित्त बड़ा है। अधिकार तो बड़ा है, पर चित्त में सदा क्षुद्र और नीच बातें सूझा करती हैं। वह आदर के योग्य नहीं परन्तु जो कैसा भी दरिद्र है, पर उस का चित्त उदार और बड़ा है वही आदरणीय है॥

द्वारपाल-महाराज! विश्वामित्र जी आए हैं॥

इन्द्र जी-(आप ही आप) [हां इन से यह काम होगा। अच्छे अवसर पर आये। जैसा काम हो, वैसे ही स्वभाव के लोग भी चाहियें] (प्रकट में) हां हां, लिवा लाओ॥

द्वारपाल-जो आज्ञा (जाता है)

(विश्वामित्र जी आते हैं और नारद जी को प्रणाम कर और इन्द्र को आशीर्वाद दे, बैठते हैं)

नारद जी-तो अब हम जाते हैं, क्योंकि पिता के पास हमें किसी आवश्यक कार्य को जाना है॥

विश्वामित्र जी—यह क्या! हमारे आते ही आप चले? भला ऐसा विचार किस काम का?

नारद जी—हरे हरे, आप ऐसी बात सोचते हैं। भला आप के आने

से हम क्यों जायंगे। मैं तो जाने ही को था कि इतने में आप आगये ॥

इन्द्र जी—(हंस कर) आप की जो इच्छा ॥

नारद जी-(आप ही आप) [हमारी इच्छा क्या, अब तो आप ही की यह इच्छा है कि हम जायं क्योंकि अब आप तो विश्व के अमित्र जी से राजा हरिश्चन्द्र को दुःख देने की सलाह कीजियेगा, तो हम उस के बाधक क्यों हों, पर इतना निश्चय है कि सज्जन को दुर्जन लोग जितना कष्ट देते हैं उतनी ही उस की सत्य कीर्त्ति तपाये सोने की भांति और भी चमकती है, क्योंकि विपत्ति विना सत्य की परीक्षा नहीं होती] (प्रकट में) यद्यपि "जो इच्छा" आपने सहज भाव में कहा है, तथापि परस्पर में ऐसे उदासीन वचन नहीं कहते, क्योंकि इन वाक्यों से रूखापन झलकता है। मैं कुछ इस का ध्यान नहीं करता केवल मित्र भाव से कहता हूं लो जाता हूं। और यही आशीर्वाद देकर जाता हूं कि तुम किसी को कष्टदायक न हो, क्योंकि अधिकार पाकर कष्ट देना, यह बड़ों की शोभा नहीं, सुख देना शोभा है ॥

(इन्द्र कुछ लज्जित हो, प्रणाम करता है)

नारद जी जाते हैं

विश्वामित्र जी—यह क्यों, आज नारद भगवान् ऐसी जली कटी क्यों बोलते थे, क्या तुमने कुछ कहा था ?

इन्द्र जी—नहीं तो राजा हरिश्चन्द्र का प्रसङ्ग निकला था, सो उन्हों ने उस की बड़ी स्तुति की और हमारे उच्चपद का आदरणीय स्वभाव उस पर कीर्त्ति को सहन न कर सका, इस में कुछ बातों ही बातों ऐसा सन्देह होता है कि वे रुष्ट हो गये ॥

विश्वामित्र—तो हरिश्चन्द्र में कौन से ऐसे गुण हैं ?

(सहज ही भृकुटी चढ़ जाती हैं)

इन्द्र जी—(ऋषि का भ्रूभङ्ग देख, चित्त में सन्तोष कर, उन का क्रोध बढ़ाता हुआ) महाराज ! सिफ़ारशी लोग चाहें जिस को बढ़ादें, चाहें घटादें। भला सत्यधर्म पालन क्या हंसी खेल है ? यह आप सरीखे महात्माओं का काम है, जिन्हों ने घर वार छोड़ दिया है। भला राज्य करके और घर में रह के, मनुष्य क्या धर्महठ करेगा ? और फिर कोई परीक्षा लेता तो मालूम पड़ता। इन्हीं बातों से नारद जी बिना बात ही अप्रसन्न हो गये ॥

विश्वामित्र—मैं अभी देखता हूं। जो हरिश्चन्द्र को तेजोभ्रष्ट न किया तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं। भला मेरे सामने वह क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपने का अभिमान करेगा॥

राजा हरिश्चन्द्र का राजभवन

रानी—सहेली! आज मैंने ऐसे बुरे २ स्वप्न देखे हैं,जब से सोकर उठी हूं, कलेजा कांप रहा है। भगवान् कुशल करें॥

सहेली—महाराज के पुण्य प्रताप से सब कुशल होगा। आप कुछ चिन्ता न करें। भला क्या स्वप्न देखा है, मैं भी सुनूं?

रानी—महाराज को तो मैंने सारे अङ्ग में भस्म लगाये देखा है और अपने को बाल खोले (और आंखों में आंसू भर) रोहिताश्व को देखा है कि उसे सांप काट गया है॥

सहेली—दैव दैव! भगवान् सब कुशल करेगा। भगवान् करे रोहिताश्व युग २ जिये और जब तक गङ्गा यमुना में जल रहे, आप का सुहाग अचल रहे। भला आपने इस की शान्ति का भी कुछ उपाय किया है॥

रानी—हां, गुरु जी से कहला तो भेजा है॥

सहेली—हे भगवन्! हमारे महाराज, महारानी, कुंवर, सब सकुशल रहें। मैं आंचल पसार के यह वरदान मांगती हूं॥

ब्राह्मण—(आशीर्वाद दे)

स्वस्त्यस्तुते कुशलमस्तु चिरायुरस्तु, गोवाजिहस्तिधनधान्यसमृद्धिरस्तु। ऐश्वर्य्यमस्तु बलमस्तु रिपुक्षयोस्तु, सन्तानवृद्धिसहिता हरिभक्तिरस्तु॥

रानी—(हाथ जोड़, प्रणाम करती है)

ब्राह्मण—महाराज गुरु जी ने यह अभिमन्त्रित जल भेजा है,इसे महारानी पहिले तो नेत्रों से लगालें और फिर थोड़ा सा पान भी करलें और यह रक्षाबन्धन भेजा है, इसे कुंवर रोहिताश्व की दहिनी भुजा पर बांध दें। फिर इस जल से मैं मार्जन करूंगा॥

रानी—(नेत्रों में जल लगा और कुछ मुंह फेर, आचमन कर) मालती! यह रक्षाबन्धन तू संभाल के अपने पास रख, जब रोहिताश्व मिले, उस के दाहिने हाथ पर बांध दीजियो॥

मालती—जो आज्ञा (रक्षाबन्धन अपने पास रखती है)

ब्राह्मण—तो अब आप सावधान हो जायं, मैं मार्जन करलूं ॥

रानी—(सावधान हो) जो आज्ञा ॥

ब्राह्मण—(दूर्वा से मार्जन करता है, मार्जन का जल पृथ्वी पर फेंक)

यत्पापं रोगोऽशुभं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु

(फिर रानी पर मार्जन करके)

यन्मङ्गलं शुभं सौभाग्यं धनं धान्यमारोग्यं बहुपुत्रत्वं तत्सर्वमीशप्रसादाद्ब्राह्मणवचनात्त्वय्यस्तु ॥

(मार्जन कर फूल अक्षत रानी के हाथ में देता है)

रानी—(हाथ जोड़, ब्राह्मण को दक्षिणा देती है) महाराज ! मेरी ओर से विनति कर, गुरु जी से दण्डवत् प्रणाम कह दीजियेगा ॥

ब्राह्मण—जो आज्ञा (आशीर्वाद दे कर जाता है)

रानी—आज महाराज अब तक सभा में नहीं आये ॥

सहेली—अब आते होंगे, पूजा में कुछ देर लगी होगी ॥

रानी—महाराज मन्दिर से चले । देखो, बाजों का शब्द सुनाई देता है और वन्दी लोग भी गाते आते हैं ॥

सहेली-आप कहती हैं कि चले, वह देखिये आपहुंचे कि चले ॥

रानी—(घबड़ा कर आदर के हेतु उठती है)

हरिश्चन्द्र—(रानी से प्रीतिपूर्वक) प्रिये ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र मलिन क्यों हो रहा है ?

रानी—पिछली रात मैंने कुछ दुःस्वप्न ऐसे देखे हैं जिन से चित्त व्याकुल हो रहा है ॥

हरिश्चन्द्र-प्रिये ! यद्यपि स्त्रियों का स्वभाव सहज ही भीरु होता है, पर तुम तो वीरकन्या, वीरपत्नी और वीरमाता हो। तुम्हारा स्वभाव ऐसा क्यों ?

रानी-नाथ ! मोह से धैर्य जाता रहता है ॥

हरिश्चन्द्र-तो गुरु जी से कुछ शान्ति करने को नहीं कहलाया ?

रानी-महाराज ! शान्ति तो गुरु जी ने करदी है ॥

हरिश्चद्र-तब क्या चिन्ता है । शास्त्र और ईश्वर पर विश्वास रक्खो, सब कल्याण होगा । सदा सर्वदा सहज मङ्गल साधन करते भी जो आपत्ति आपड़े तो उसे निरी ईश्वर की इच्छा ही समझ के सन्तोष करना चाहिये ॥

रानी—महाराज ! स्वप्न के शुभाऽशुभ का विचार कुछ महाराज ने भी ग्रन्थों में देखा है ?

हरिश्चन्द्र (रानी की बात अनसुनी करके) स्वप्न तो कुछ मैंने भी देखा है (चिन्तापूर्वक स्मरण करके) हां यह देखा कि एक क्रोधी ब्राह्मण विद्यासाधन करने को सब दिव्य महाविद्याओं को खींचता है । और जब मैं स्त्री जान उन को बचाने गया तो वह मुझ ही से रुष्ट होगया और फिर बड़े विनय से मैंने उसे मनाया, तो उस ने मुझ से सारा राज्य मांगा । मैंने उसे प्रसन्न करने को अपना राज्य देदिया । (इतना कह कर अत्यन्त व्याकुलता नाट्य करता है)

रानी—नाथ ! आप एक साथ ऐसे व्याकुल क्यों होगये ॥

हरिश्चन्द्र-मैं यह सोचता हूं कि अब मैं उस ब्राह्मण को कहां पाऊंगा, विना उस की थाती (धरोहर) उसे सौंप भोजन कैसे करूंगा ॥

रानी-नाथ ! स्वप्न के व्यवहार को भी आप सत्य मानियेगा ?

हरिश्चन्द्र-प्रिये ! हरिश्चन्द्र की अर्द्धाङ्गिनी हो, तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं । भला तुम ऐसी बात मुह से निकालती हो, स्वप्न किस ने देखा है ? मैंने न । फिर क्या स्वप्न अपने काल में असत्य है ? इस का कौन प्रमाण और जो असत्य कहो तो मरने के पहले इस संसार में परलोक के हेतु लोग धर्माचरण क्यों करते हैं । दिया सो दिया, क्या स्वप्न में और क्या प्रत्यक्ष ॥

रानी-(हाथ जोड़) नाथ ! क्षमा कीजिये, स्त्री की बुद्धि ही कितनी ॥

हरिश्चन्द्र-(चिन्ता कर) पर अब मैं क्या करूं । अच्छा प्रधान ! नगर में डोंडी पिटवा दो कि सब लोग आज से राज्य, अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण का समझें, उसके अभाव में हरिश्चन्द्र उसके सेवक की भांति उसकी थाती समझ राजकार्य करेगा और दो मुहर राजकाज के हेतु बनवालो । एक पर अज्ञातनामगोत्रब्राह्मण सेवक हरिश्चन्द्र और दूसरे पर राजाधिराज अज्ञातनामगोत्र ब्राह्मण महाराज खुदा रहे और आज से राजकाज के सब पत्रों पर भी यही नाम रहे । देश के राजाओं और बड़े२ कार्याधीशों को भी आज्ञापत्र भेज दो कि महाराज हरिश्चन्द्र ने स्वप्न में अज्ञात नाम गोत्र ब्राह्मण को पृथिवी दी है । इसलिये आज से उस का राज्य हरिश्चन्द्र, मन्त्री की भांति सम्हालेगा ।

द्वारपाल—महाराजाधिराज ! एक बड़ा क्रोधी ब्राह्मण द्वार पर खड़ा व्यर्थ हम लोगों को गाली देता है ॥

हरिश्चन्द्र—(घबराकर) अभी आदरपूर्वक ले आओ ॥

द्वारपाल—जो आज्ञा (जाता है)

हरिश्चन्द्र—यदि ईश्वरेच्छा से यह वही ब्राह्मण हो तो बड़ी बात हो॥

हरिश्चन्द्र—(आदरपूर्वक प्रणाम कर) महाराज! पधारिये,यह आसन है॥

विश्वामित्र—बैठे बैठ चुके। बोल अभी तैंनें मुझे पहिचाना कि नहीं?

हरिश्चन्द्र—(घबराकर) महाराज! पूर्व परिचित तो आप ज्ञात होते हैं।

विश्वामित्र—(क्रोध कर) सच है रे क्षत्रियाधम! तू काहे को पहिचानेगा? सच है रे सूर्यकुलकलङ्क! तू क्यों पहिचानेगा। धिक्कार तेरे मिथ्या धर्माभिमान को। ऐसे ही लोग पृथिवी को अपने बोझ से दबाते हैं। अरे दुष्ट! तू भूलगया,कल पृथिवी किस को दान दी थी? जानता नहीं कि मैं कौन हूं?

हरिश्चन्द्र—(पैरों पर गिर बड़े विनय से) महाराज! भला आप को त्रिलोकी में ऐसा कौन है, जो न जानेगा?

विश्वामित्र—(क्रोध से) सच है रे पाप पाषण्ड मिथ्यादानकारी! ठहर २ देख, इस झूठ का कैसा फल भोगता है। हा! इसे देख कर क्रोध से जैसे मेरी दहिनी भुजा शाप देने को उठती है। वैसे ही जातिस्मरण के संस्कार से बांई भुजा फिर से कृपाण ग्रहण किया चाहती है। (अत्यन्त क्रोध से लम्बा श्वास ले और बांह उठा) अरे ब्रह्मा! सम्हाल अपनी सृष्टि को, नहीं तो मेरे आज इस परमतेजःपुञ्ज दीर्घतपोवर्द्धित असह्य क्रोध से सारा संसार नष्ट होजायगा। अथवा संसार के नाश ही से क्या? ब्रह्मा का तो गर्व उसी दिन मैंने चूर्ण कर दिया, जिस दिन दूसरी सृष्टि बनाई। आज इस राजकुलाङ्गार का अभिमान चूर्ण करूंगा। जो मिथ्या अहङ्कार के बल से जगत् में दानी प्रसिद्ध हो रहा है॥

हरिश्चन्द्र—(पैरों पर गिर) महाराज! क्षमा कीजिये। मैंने इस बुद्धि से नहीं कहा था। सारी पृथिवी आप की। भला आप ऐसी क्षुद्र बात मुंह से निकालते हैं (ईषत क्रोध से) और आप वारंवार मुझे झूंठा न कहिये। सुनिये मेरी यह प्रतिज्ञा है—

दोहा

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत् व्यवहार।
पै दृढ़ श्रीहरिचन्द्र को,टरै न सत्यविचार॥

विश्वामित्र—(क्रुद्ध, अनादरपूर्वक हंस) ह ह ह हां! सच है २ रे मूढ़! क्यों नहीं, आख़िर तो सूर्यवंशी है तो दे हमारी पृथिवी॥

हरिश्चन्द्र—लीजिये, इस में विलम्ब क्या है। मैंने तो आप के आगमन के पूर्व ही से अपना अधिकार छोड़दिया है (पृथिवी की ओर देख) ॥

दोहा

जेहि पाली इक्ष्वाकु सों, अबलों रविकुलराज।
ताहि देत हरिचन्द्र नृप, विश्वामित्रहि आज ॥
वसुधे ! तुम बहुसुख कियो,मम पुरुषन की होय।
धर्मबद्ध हरिचन्द को, क्षमहु सु परवश जोय ॥

विश्वामित्र—(आप ही आप) अच्छा अभी अभिवान दिखाले। जो मेरा नाम विश्वामित्र है,तो तुझ को सत्यभ्रष्ट करके छोड़ा और लक्ष्मी से तो हो ही चुका (प्रकट में) स्वस्ति। अब इस महादान की दक्षिणा कहां है?

हरिश्चन्द्र—महाराज ! जो आज्ञा हो, वह दक्षिणा अभी आती है।

विश्वामित्र-भला सहस्र स्वर्णमुद्रासे कमइतने बड़ेदानकी दक्षिणा क्या होगी ॥

हरिश्चन्द्र—जो आज्ञा (मन्त्री से) मन्त्री ! सहस्र स्वर्णमुद्रा अभी लाओ॥

विश्वामित्र—(क्रोध से) "मन्त्री सहस्र स्वर्णमुद्रा अभी लाओ" मन्त्री कहां से लावेगा ? क्या अब ख़ज़ाना तेरा है ? झूंठा कहीं का, देना ही नहीं था तो मुंह से कहा क्यों, चल मैं नहीं लेता ऐसे मनुष्य की दक्षिणा ॥

हरिश्चन्द्र—(हाथ जोड़, विनय से) महाराज ! ठीक है, ख़ज़ाना अब सब आप का है। मैं भूला, क्षमा कीजिये। क्या हुवा, ख़ज़ाना नहीं है तो मेरा शरीर तो है ॥

विश्वामित्र—एक महीने में जो मुझे दक्षिणा न मिलेगी तो मैं तुझपर कठिन ब्रह्मदण्ड गिराऊंगा। देख, केवल एक मास की अवधि है ॥

हरिश्चन्द्र—महाराज ! मैं ब्रह्मदण्ड से उतना नहीं डरता,जितना सत्य-दण्ड से। इस से-

दोहा

बेचि देह दारा सुतन, होइ दास हम मन्द।
रखिहैं निज वच सत्य कर,अभिमानी हरिचन्द ॥

(और रानी सहित काशी को जाते हैं)

(काशी)

हरिश्चन्द्र—देखो, काशी भी पहुंच गये। अहा! धन्य! है काशी भगवती वाराणसी! तुम्हें अनेक प्रणाम हैं। अहा! काशी की कैसी अनुपम शोभा है॥

(विश्वामित्र आते हैं)

हरिश्चन्द्र—अरे मुनि तो आपहुंचे, क्या हुवा। आज उन से एक दो दिन की अवधि और लेंगे॥

विश्वामित्र—(आप ही आप) (हमारी प्रतिज्ञा सत्य हुई भी ? इसी दुष्ट के कारण सब बहक गई। कुछ इन्द्र के कहने ही पर नहीं, हमारा इस पर स्वतः भी क्रोध है, पर क्या करें। इस के सत्य धैर्य और विनय के आगे हमारा क्रोध कुछ काम नहीं करता। यद्यपि यह राज्यभ्रष्ट हो चुका, पर जब तक इसे सत्यभ्रष्ट न करलूंगा, तब तक सन्तोष न होगा) (आगे देख कर) अरे! यही दुरात्मा (कुछ रुककर) वा महात्मा हरिश्चन्द्र है (प्रकट) क्यों रे! आज महीने में के दिन बाक़ी हैं ? बोल, कब दक्षिणा देगा ?

हरिश्चन्द्र—(घबरा कर) आहा! महात्मा कौशिक भगवन्! प्रणाम करता हूं। दण्डवत् करता हूं॥

विश्वामित्र—हो ली प्रणाम, बोल तैने दक्षिणा देने का क्या उपाय किया। आज महीना पूरा हुवा, अब मैं एक क्षण भर भी न मानूंगा। दे अभी, नहीं तो शाप के वास्ते कमण्डलु से जल हाथ में लेते हैं॥

हरिश्चन्द्र—(पैरों पर गिर) भगवन्! क्षमा कीजिये। यदि आज सूर्यास्त के पहले मैं न दूं तो जो चाहे सो कीजियेगा। मैं अभी अपनी स्त्री को बेच मुद्रा ले आता हूं॥

विश्वामित्र—(आप ही आप) वाहरी (महानुभावता) (प्रकट) अच्छा आज सांझ तक और सही। सांझ को न देगा तो मैं शाप ही दूंगा और त्रिलोकी में आज ही विदित करदूंगा कि हरिश्चन्द्र सत्यभ्रष्ट हुआ (जाते हैं)

हरिश्चन्द्र—भला किसी तरह मुनि से प्राण बचें। अब चलें अपना शरीर बेच दक्षिणा देने का उपाय सोचें। ऋण भी कैसी बुरी वस्तु है। इस संसार में वही मनुष्य कृतार्थ है जिस ने ऋण चुका देने को कभी क्रोधी और क्रूर लहनदार की लाल लाल आंखें नहीं देखीं हैं। (आगे चल कर) अरे! क्या बाज़ार में आ गये। अच्छा, (शिर पर तृण रख) अरे सुनो भाई! सेठ साहूकार, महाजन, दूकानदारो! हम किसी कारण से अपने को हज़ार मोहर

पर बेचते हैं। किसी को लेना हो तो लो (इसी तरह कहता हुवा इधर उधर फिरता है) देखो कोई दिन वह था कि इसी मनुष्यविक्रय को अनुचित जान हम दूसरों को दण्ड देते थे, पर आज वही कर्म हम आप करते हैं। दैव बली है। अरे सुनो भाई ! (इत्यादि कहता हुवा इधर उधर फिरता है) स्वामी जो कहेगा, वही करेंगे। और जैसे स्वामी रक्खेगा, वैसे रहेंगे। जब अपने को बेच ही दिया, तब इस का क्या विचार ॥

ग्राहक—कुछ दाम कम करो ॥

हरिश्चन्द्र—आर्य ! हम लोग तो क्षत्रिय हैं, हम दो बात कहां से जानें। जो कुछ ठीक था, कह दिया ॥

रानी—आर्यपुत्र ! अपनी दासी को क्यों छोड़े जाते हो। तुम दास होगे तो मैं स्वाधीन रहके क्या करूंगी। स्त्री को अर्द्धाङ्गिनी कहते हैं, इस से पहिले बांयां अङ्ग बेचलो, तब दाहिना अङ्ग बेचना ॥

हरिश्चन्द्र—(सुन कर, बड़े शोक से) हा ! रानी की यह दशा इन आंखों से कैसे देखी जायगी ॥

(सड़क पर रानी और बालक फिरते हैं)

रानी—कोई महात्मा कृपा करके हम को मोल ले तो बड़ा उपकार हो।

बालक-अम को बी कोई मोल ले तो बला उपकाल ओ ॥

रानी-(आंखों में आंसू भर) पुत्र ! सूर्यकुलभूषण महाराज वीरसेन का नाती, सूर्यकुल की शोभा महाराज हरिश्चन्द्र का पुत्र होकर तू क्यों ऐसे कातर वचन कहता है। मैं अभी जीती हूं (रोती है) ॥

बालक-(मा का अञ्चल पकड़) मा ! तुम को कोई मोल लेगा तो अम को भी मोल लेगा। आं आं मां रोती काएको ओ (कुछ रोता सा मुंह बना के रानी का आंचल पकड़ झूलने लगता है)

रानी-(आंसू पोंछ) पुत्र ! मेरे भाग्य से पूछ ॥

हरिश्चन्द्र-अहह ! भाग्य ! यह भी तुम्हें देखना था। हा ! अयोध्या की प्रजा रोती रह गई। हम उन को कुछ धैर्य भी न दे आये। उन की अब क्या गति होगी। हा ! यह नहीं कि राज्य छूटने पर भी सुख हो। अब यह देखना पड़ा। हृदय ! तुम इस चक्रवर्ती की सेवा योग्य बालक और स्त्री की वार्त्ता देख, टुकड़े २ क्यों नहीं हो जाते। (वारंवार लम्बा श्वास ले आंसू बहाता है)

रानी–परपुरुष से सम्भाषण, उच्छिष्ट भोजन छोड़ और सब सेवा करूंगी॥

(उपाध्याय और बटुक आते हैं)

उपाध्याय–अरे कौण्डिन्य ! सच मुच दासी बिकती है॥

बटुक–हां गुरु जी ! क्या मैं झूठ कहूंगा। आप ही देख लीजियेगा॥

उपाध्याय–तो चल आगे २ भीड़ हटाता चल। देख धारा प्रवाह की भांति ये सब काम काजी लोग इधर से उधर फिर रहे हैं। भीड़ के मारे पैर धरने को जगह नहीं है। मारे कोलाहल के कान नहीं दिया जाता॥

बटुक–(आगे आगे चलता हुवा हटो भाई ! (कुछ आगे बढ़ कर) गुरु जी ! यह जहां भीड़ लगी है, वहीं होगी॥

उपाध्याय–(रानी को देख) अरे ! यही दासी बिकती है ?

रानी–("अरे कोई हम को मोल ले" इत्यादि कहती और रोती है)

बालक–माता की भांति तोतली बोली से कहता है॥

उपाध्याय–पुत्री ! कहो तुम क्या २ सेवा करोगी॥

रानी–परपुरुष से सम्भाषण और उच्छिष्टभोजन छोड़ और जो २ कहियेगा, सब सेवा करूंगी॥

उपाध्याय–वाह २ ठीक, अच्छा लो यह सुवर्ण है, हमारी ब्राह्मणी अग्निहोत्र की सेवा से घर के काम काज नहीं कर सकती सो तुम सम्भालना॥

रानी–(हाथ फैला) महाराज ! आपने बड़ा उपकार किया॥

उपाध्याय–(रानी को भलीभांति देख, आप ही आप) [आहा यह निःसन्देह किसी बड़े कुल की है, इस का मुख सहज लज्जा से ऊंचा नहीं होता और दृष्टि बराबर पैर ही पर है। जो बोलती है वह धीरे २ और बहुत सम्भाल के बोलती है। हा ! इस की यह गति क्यों हुई] (प्रकट) पुत्री ! तुम्हारे पति है ?

रानी–(राजा की ओर देखती है)

हरिश्चन्द्र–(आप ही आप ठण्डे श्वास ले) अब नहीं है। पति के होते भी ऐसी स्त्री की यह दशा हो ?

उपाध्याय–(राजा को देख आश्चर्य से) अरे ! यह विशालनेत्र प्रशस्त-वक्षःस्थल और संसार की रक्षा करने के योग्य लम्बी २ भुजा वाला कौन मनुष्य है ? और मुकुट के योग्य शिर पर तृण क्यों रखता है (प्रकट) महात्मा ! तुम हम को अपने दुःख का भागी समझो और कृपापूर्वक अपना सब वृत्तान्त कहो॥

हरिश्चन्द्र-भगवन् ! और तो विदित करने का अवसर नहीं, इतना ही कह सकता हूं कि ब्राह्मण के ऋण से यह दशा हुई है ॥

उपाध्याय-हम से धन लेकर आप शीघ्र ही ऋणमुक्त हूजिये ॥

हरिश्चन्द्र-(दोनों कानों पर हाथ रख) राम राम, यह तो ब्राह्मण की वृत्ति है । आप से धन लेकर हमारी कौन गति होगी ॥

उपाध्याय-तो पांच सौ पर आप दोनों में से जो चाहें सो हमारे सङ्ग चलें ॥

रानी—(राजा से हाथ जोड़) नाथ ! हमारे होते आप मत बिकिये, जिस में हम को अपनी आंख से यह न देखना पड़े । हमारी इतनी विनति मानिये (रोती है)

हरिश्चन्द्र-(आंसू रोक) अच्छा, तुम्हीं जाओ (आप ही आप) [हा ! यह वज्रहृदय हरिश्चन्द्र ही का है कि अब भी नहीं विदीर्ण होता]

रानी-(राजा के कपड़े में सोना बांधती हुई) नाथ ! अब तो दर्शन भी दुर्लभ होंगे (रोती हुई, उपाध्याय से) आर्य ! आप क्षण भर क्षमा करें तो मैं आर्यपुत्र का भलीभांति दर्शन करलूं । फिर यह सुख कहां और मैं कहां ।

उपाध्याय-हां हां, मैं जाता हूं । कौण्डिन्य यहां है । तुम इस के साथ आना (जाता है)

रानी-(रोकर) नाथ ! मेरे अपराधों को क्षमा करना ॥

हरिश्चन्द्र—(अत्यन्त घबराकर) अरे अरे विधाता ! तुझे यही करना था (आप ही आप) हा ! पहिले महारानी बनाकर अब दैव ने इसे दासी बनाया । यह भी देखना बदा था (रोता हुआ प्रकट में) प्रिये ! सर्वभाव से उपाध्याय को प्रसन्न रखना और सेवा करनी ॥

रानी— (रोकर) नाथ ! जो आज्ञा ॥

वटुक—उपाध्याय जी गये, अब चलो जल्दी करो ॥

हरिश्चन्द्र—(आंखों में आंसू भर) देवि ! (फिर रुककर अत्यन्त शोच से आप ही आप) हाय ! अब मैं देवी क्यों कहता हूं, अब तो विधाता ने इसे दासी बनाया (धैर्य से) देवि ! उपाध्याय की आराधना भलीभांति करना और उन के सब शिष्यों से भी सुहृद्भाव रखना । ब्राह्मण की स्त्री की प्रीतिपूर्वक सेवा करनी । बालक का यथासम्भव पालन कर अपने धर्म और प्राण की रक्षा करनी । विशेष हम क्या समझावें, जो जो दैव दिखावे, उसे धैर्य से देखना (आंसू बहते हैं)

रानी—जो आज्ञा (राजा के पैरों पर गिर, रोती है)

हरिश्चन्द्र—(धैर्यपूर्वक) प्रिये ! देर मत करो, वटुक घबरा रहे हैं ॥

रानी-(उठकर रोती और राजा की ओर देखती हुई, धीरे २ चलती है)

बालक—(राजा से) पिता ! मां कआं जाती ऐं ?

हरिश्चन्द्र-(धैर्य से, आंसू रोक) जहां हमारे भाग्य ने उसे दासी बनाया ॥

बालक—(वटुक से) अले ! माँ को मत लेगा (मां का आंचल पकड़ कर खींचता है)

वटुक—(बालक को धकेल) चल चल देर होती है ॥

बालक—(धकेलने से गिर कर रोता हुवा उठ, अत्यन्त क्रोध और करुणा से माता पिता की ओर देखता है)

हरिश्चन्द्र—ब्राह्मण, देवता बालकों के अपराध से नहीं रुष्ट होते (बालक को उठाकर धूलि पूंछ, मुंह चूमता हुवा) पुत्र ! मुझ चाण्डाल का मुख इस समय ऐसे क्रोध से क्यों देखता है ? ब्राह्मण का क्रोध तो सभी दशा में सहना चाहिये । जाओ माता के सङ्ग, मुझ भाग्यहीन के साथ रहकर क्या करोगे ? (रानी से) प्रिये धैर्य धरो, अपना कुल और जाति स्मरण करो । अब जाओ देर होती है ॥

(रानी और बालक वटुक के साथ रोते हुवे जाते हैं)

हरिश्चन्द्र—धन्य हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे सिवाय ऐसा कठोर हृदय किस का होगा कि संसार में धन और जन छोड़, लोग स्त्री की रक्षा करते हैं, पर तुम ने उस का भी त्याग किया ॥

विश्वामित्र आते हैं

हरिश्चन्द्र—(पैर पर गिर, प्रणाम करता है)

विश्वामित्र-ला दे दक्षिणा, अब शाम होने में कुछ देर नहीं है ॥

हरिश्चन्द्र--(हाथ जोड़) महाराज ! आधी लीजिये, आधी अभी देता हूं (सोना देता है)

विश्वामित्र-हम आधी दक्षिणा ले के क्या करें, दे चाहे जहां से सब दक्षिणा ॥

(शब्द-धिक् याचक धिक् दाता)

विश्वामित्र-(बड़े क्रोध से) आः हम को धिक्कार देने वाला यह कौन दुष्ट है (ऊपर देख कर) अरे विश्वेदेवाः ! (क्रोध से जल हाथ में ले) अरे क्षत्रिय के पक्षपातियों ! तुम अभी विमान से गिरो । जो क्षत्रिय के कुल में

तुम्हारा जन्म हो और वहां भी लड़कपन ही में ब्राह्मण के हाथ से मारे जाओ (जल छोड़ते हैं)

हरिश्चन्द्र-(ऊपर को देख, भय से) आहरे तप का प्रभाव (आप ही आप) हरिश्चन्द्र को अब तक शाप नहीं दिया, यही बड़ा अनुग्रह है। (प्रकट में) भगवन्! यह स्त्री बेच आधा पाया है, सो लें और आधा धन हम अपने को बेच अभी देते हैं॥

विश्वामित्र-हम आधा न लेंगे, चाहे जहां से अभी सब दे॥

हरिश्चन्द्र—अरे भाई! सुनो, सेठ साहूकारादि (पुकारता हुआ घूमता है) अरे सुनो भाई सेठ साहूकारादि (दो तीन बेर पुकार के इधर उधर घूम) हाय कोई नहीं बोलता और सूर्य भी आज हम से रुष्ट होकर शीघ्र हीं अस्ताचल जाया चाहते हैं (घबराहट दिखाता है)

चाण्डाल—(आप ही आप) हाय हाय! इस समय महात्मा को बड़ा ही कष्ट है, तो अब चलें। (आगे बढ़) अरे अरे हम तुम को मोल लेंगे। लेव लेव यह पांच सौ मुहर लेव॥

हरिश्चन्द्र-(आनन्द से आगे बढ़) वाह कृपानिधान, बड़े अवसर पर आये। लाइये (उस को पहचान) आप मोल लेंगे ?

चाण्डाल-हां हम मोल लेंगे (सोना देना चाहता है)

हरिश्चन्द्र-आप कौन हैं ?

चाण्डाल-

हम चौधरी हैं सरदार। अमल हमारा दोनों पार॥
सब मसान पर हमरा राज। कफ़न मांगने का है काज॥
फूलमती देवीदास। पूजें सती मसान निवास॥
धनतैरस ओ राति दिवाली। बलि चढ़ायके पूजें काली॥
सो हम तुम को लेंगे मोल। देंगे मुहर गांठ से खोल॥
(मत्त की भांति चेष्टा करता है)

हरिश्चन्द्र-(बड़े दुःख से) अहह! बड़ा दारुण व्यसन उत्पन्न हुआ है (विश्वामित्र से) भगवन्! मैं पैर पड़ता हूं, जन्म भर आप का दास हो कर रहूंगा। मुझे चाण्डाल होने से बचाइये॥

विश्वामित्र-छिः मूर्ख! भला हम दास लेके क्या करेंगे? स्वयं दासास्तपस्विनः॥

हरिश्चन्द्र-(हाथ जोड़) जो आज्ञा कीजियेगा, हम सब करेंगे ॥

विश्वामित्र-सब करेगा ना (ऊपर को हाथ उठा) धर्म के साक्षी देवता लोग ! सुनें यह कहता है कि जो आप कहेंगे मैं सब करूंगा ॥

हरिश्चन्द्र-हां हां जो आप आज्ञा कीजियेगा, सब करूंगा ॥

विश्वामित्र-तो इसी ग्राहक के हाथ अपने को बेचकर शेष दक्षिणा चुकादे ॥

हरिश्चन्द्र-जो आज्ञा (आप ही आप) अब कौन सोच है (प्रकट में चाण्डाल से) तो हम एक नियम पै बिकेंगे ॥

चाण्डाल-वह कौन सा है ?

हरिश्चन्द्र—

भीख अशन कम्बल वसन, रखि हैं दूर निवास ।
जो प्रभु आज्ञा होइ है, करि हैं सब ह्वै दास ॥

चाण्डाल-ठीक है । लेव सोना (दूर से राजा के आंचल में मुहर देता है)

हरिश्चन्द्र-(लेकर, हर्ष से आप ही आप)

दोहा—

ऋण छूटयो फुरियो वचन, द्विजहु न दीन्हो शाप ।
सत्य मान चण्डाल हू, होइ आज मोहि दाप ॥

(प्रकट में विश्वामित्र से) भगवन् ! लीजिये यह मुहर ॥

विश्वामित्र-(मुंह चढ़ा) सच मुच देता है ॥

हरिश्चन्द्र-हां हां यह लीजिये (मोहर देते हैं)

विश्वामित्र-(ले) स्वस्ति (आप ही आप) बस अब चलो बहुत परीक्षा हो चुकी (जाना चाहते हैं)

हरिश्चन्द्र-(हाथ जोड़) भगवन् ! दक्षिणा देने में देर होने का अपराध क्षमा हुआ ना ?

विश्वामित्र-हां क्षमा हुआ (अब हम जाते हैं)

हरिश्चन्द्र-भगवन् ! प्रणाम करता हूं ॥

(विश्वामित्र आशीर्वाद देकर जाते हैं)

हरिश्चन्द्र-अब चौधरी जी ! (लज्जा से नीचा मुख कर) स्वामी की जो आज्ञा हो करें ॥

चाण्डाल—मत्त की भांति नाचता हुआ ॥

चौपाई—

जाओ अभी दक्खनी मसान । लेओ वहां कफ़न का दान ॥
जो कर तुम को नहीं चुकावे । सो क्रिया करने नहिं पावे ॥
चलो घाट पर करो निवास । भए आज से हमरे दास ॥

हरिश्चन्द्र—जो आज्ञा ॥

श्मशान

हरिश्चन्द्र-(लम्बा श्वास ले) हाय ! अब जन्म भर यही दुःख भोगना पड़ेगा ॥

दोहा—

जाति दास चाण्डाल की, घर घन घोर मसान ।
कफ़न खसोटी को करम, सब ही एकसमान ॥

न जाने विधाता का क्रोध इतने पर भी शान्त हुआ कि नहीं। बड़ों ने सच कहा है कि दुःख में दुःख होता है । दक्षिणा का ऋण चुका तो यह कर्म करना पड़ा । हम क्या क्या सोचें, अपनी अनाथ प्रजा को या दीन नातेदारों को या अशरण नौकरों को या रोती हुई दासियों को या सूनी अयोध्या को या दासी बनी महारानी को या उस अनजान बालक को या अपने ही इस चाण्डालपने को । हा ! वटुक के धक्के से गिर कर रोहिताश्व ने क्रोधभरी और रानी ने जाते समय करुणाभरी दृष्टि से जो मेरी ओर देखा था वह अब तक नहीं भूलता (घबरा कर) हाय ! देवी ! सूर्यकुल की बहू और चन्द्रकुल की बेटी हो कर तुम बेची गई और दासी बनी । हाय ! तुम अपने जिन सुकुमार हाथों से फूलमाला भी नहीं गुथ सकती थीं, उन से बर्तन कैसे माजोगी । (मोह प्राप्त होना चाहता है पर संभल कर) अथवा क्या हुवा, यह तो कोई न कहेगा कि हरिश्चन्द्र ने सत्य छोड़ा ॥

दोहा—

बेचि देह दारा सुतन, होय दासहू मन्द ।
राख्यो निज वच सत्य कर, अभिमानी हरिचन्द ॥

योगी—(देख कर) अरे ! यही महात्मा हरिश्चन्द्र हैं । (प्रकट) महाराज ! कल्याण हो ॥

हरिश्चन्द्र—(प्रणाम कर) आइये योगिराज !

योगी—महाराज ! हम अर्थी हैं ॥

हरिश्चन्द्र—(लज्जा और विकलता नाट्य करता है) ॥

योगी—महाराज ! आप लज्जा न कीजिये हम लोग योगबल से सब कुछ जानते हैं । आप इस दशा पर भी हमारे अर्थ पूर्ण करने को बहुत हैं ॥

हरिश्चन्द्र—हमारे योग्य जो कुछ हो, आज्ञा कीजिये ॥

योगी—अञ्जन गुटिका पादुका धातु भेद वैताल, वज्र रसायन योगिनी मोहि सिद्ध इह काल ॥

हरिश्चन्द्र—तो मुझे जो आज्ञा हो वह करूं ॥

योगिराज-यही आज्ञा है कि यह सब मुझे सिद्ध हो गये, पर विघ्न इस में बाधक होते हैं, सो आप विघ्नों का निवारण कर दीजिये ॥

हरिश्चन्द्र-आप जानते हैं कि मैं पराया दास हूं । इस से जिस में मेरा धर्म न जाय, वह मैं करने को तैयार हूं ॥

योगिराज-(आप ही आप) राजन् ! जिस दिन तुम्हारा धर्म जायगा उस दि॰ पृथिवी किस के बल ठहरेगी (प्रत्यक्ष) महाराज ! इस में धर्म न जायगा क्योंकि स्वामी की आज्ञा तो आप उल्लङ्घन करते ही नहीं । सिद्धि का आश्रम इसी श्मशान के निकट है और मैं अब पुरश्चरण करने जाता हूं, आप विघ्नों का निषेध कर दीजिये (जाता है)

हरिश्चन्द्र—(ललकार कर) हटोरे हटोरे विघ्नो ! चारों ओर से तुम्हारा प्रचार हम ने रोक दिया ॥

योगिराज—महाराज का कल्याण हो । आप की कृपा से महानिधान सिद्ध हुवा । आप को बधाई है, अब लीजिये इस रसेन्द्र को ॥

दोहा

याही के परभाव सों, अमर देवसम होय ।
योगी जन विहरहि सदा, मेरु शिखर भय खोय ॥

हरिश्चन्द्र—(प्रणाम कर) महाराज ! दासधर्म के यह विरुद्ध है । इस समय मेरा कुछ भी लेना स्वामी को धोखा देना है ॥

योगिराज—(आश्चर्य से आप ही आप) वाहरी महानुभावता (प्रकट) तो इस से स्वर्ण बना कर आप अपना दास्य छुड़ालें ॥

हरिश्चन्द्र—यह ठीक है, पर मैंने तो विनति की है कि जब मैं दूसरे का दास हो चुका तो इस अवस्था में मुझे जो कुछ मिले, सब स्वामी का है क्योंकि मैं तो देह के साथ ही अपना सरवमात्र बेच चुका, इस से आप मेरे बदले कृपा करके मेरे स्वामी ही को यह रसेन्द्र दीजिये ॥

योगिराज—(आश्चर्य से आप ही आप) धन्य हरिश्चन्द्र ! धन्य तुम्हारा धैर्य और धन्य तुम्हारा विवेक और धन्य तुम्हारी महानुभावता ॥

दोहा

चलै मेरु अरु प्रलयजल, पवन झकोरन पाय।
पै वीरन के मन कबहुं, चालहिं नहिं ललचाय ॥

तो हमें भी इस में कौन हठ है (प्रत्यक्ष) वैताल ! जाओ जो महाराज की आज्ञा हो सह करो ॥

वैताल—जो रावल जी की आज्ञा (जाता है)

योगिराज—महाराज ! ब्राह्म मुहूर्त्त निकट आया, अब हम को भी आज्ञा हो॥

हरिश्चन्द्र—अच्छा तुम भी जाओ और हम भी जाते हैं ॥

योगिराज ! हम को भूल न जाइयेगा। कभी २ स्मरण कीजियेगा ॥

योगिराज—महाराज ! बड़े २ देवता आप का स्मरण करते हैं और करेंगे। मैं क्या कहूं (जाता है)

हरिश्चन्द्र—क्या रात्रि बीत गई। आज तो कोई भी मुर्दा नहीं आया, रात्रि के साथ ही श्मशान भी शान्त हो चला। भगवान् नित्य ऐसा करें ॥

(नेपथ्य में घंटादि का शब्द सुन कर) अरे ! यह बड़ा कोलाहल कैसा हुआ (विमान पर अष्ट महासिद्धि नवनिधि और बारहों प्रयोग आदि देवता आते हैं)

हरिश्चन्द्र—(आश्चर्य से) अरे ! यह कौन देवता बड़े प्रसन्न होकर श्मशान में एकत्रित हो रहे हैं ॥

देवता—महाराज हरिश्चन्द्र की जय हो। आप के अनुग्रह से हम लोग विघ्नों से छूट कर स्वतन्त्र हो गये। अब हम आप के वश में हैं, जो आज्ञा हो, करें। हम लोग अष्ट महासिद्धि नवनिधि और बारह प्रयोग सब आप के हाथ में हैं ॥

हरिश्चन्द्र—(प्रणाम कर) यदि हम पर आप लोग प्रसन्न हो तो महासिद्धि योगियों के, निधि सज्जन और प्रयोग साधुओं के पास जाओ ॥

देवता—(आश्चर्य से) धन्य राजर्षि हरिश्चन्द्र ! तुम्हारे बिना और ऐसे कौन होगा जो घर आई लक्ष्मी का त्याग करे । हमी लोगों अर्थात् सिद्धियों को बड़े २ योगी मुनि पच मरते हैं, पर तुमने तृण की भान्ति हमारा त्याग करके जगत् का कल्याण किया ॥

हरिश्चन्द्र—आप लोग मेरे शिर आंखों पर हैं, पर मैं क्या करूं क्योंकि पराधीन हूं । एक और भी निवेदन है और वह यह कि अच्छे प्रयोग की तो हमारे समय में सद्यःसिद्धि होय पर बुरे प्रयोगों की सिद्धि विलम्ब से हो ॥

देवता—महाराज ! जो आज्ञा । हम लोग जाते हैं । आज आप के सत्य ने सब को शिथिल कर दिया । महाराज का कल्याण हो । (जाते हैं)

हरिश्चन्द्र—अरे ! अब सवेरा होनेके समय मुर्दा आया, अथवा चाण्डाल कुल का सदा कल्याण हो, हमें इस से क्या । ख़बरदार (इत्यादि कहता हुवा फिरता है)

शब्द—हाय ! कैसी भई, हाय बेटा ! हमें रोती, छोड़,कहां चले गये ॥ हाय हाय रे !

हरिश्चन्द्र—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है और शोक भी इस को पुत्र का है । हाय हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म सौंपा है, इस से भी वस्त्र मांगना पड़ेगा (रोती हुई रानी रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

रानी—(रोती हुई) हाय बेटा ! जब बापने ने छोड़ दिया, तब तुम भी छोड़ चले । हाय ! हमारी विपत्ति और बुढ़ौती की ओर भी तुमने न देखा । हाय हाय रे ! अब हमारी कौन गति होगी (रोती है)

हरिश्चन्द्र—हाय हाय ! इस के पति ने भी इस को छोड़ दिया है । हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है ॥

रानी—(रोती हुई) हाय ! बेटा ! अरे आज मुझे किस ने लूट लिया हाय ! मेरी बोलती चिड़िया कहां उड़ गई । हाय ! अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी । हाय ! मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया । हाय ! मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किसने तोड़ डाला । अरे बेटा ! तू तो मरे पर

भी सुन्दर लगता है। हायरे! अरे! बोलता क्यों नहीं। बेटा! जल्दी बोलो। देख मा कबकी पुकार रही है। बच्चा! तू तो एक ही बेर पुकारने में दौड़ कर गले से लिपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता (शव को बारंबार गले लगाती, देखती और चूमती है)

हरिश्चन्द्र–हाय हाय! इस दुःखिया के पास तो खड़ा भी नहीं हुआ जाता॥

रानी—(पागल की भान्ति) अरे! यह क्या होरहा है। बेटा! कहां गये, आओ जल्दी। अरे! अकेले श्मशान में मुझे डर लगता है। यहां मुझ को कौन ले आया। अरे बेटा! जल्दी आओ। अरे! क्या कहते हो, मैं गुरु को फूल लेने गया था, वहां काले सांपने मुझे डस लिया। हाय हायरे! अरे! कहां काट लिया। अरे! कोई दौड़ के किसी गुणी को बुलाओ, जो जिलावे बच्चे को। अरे! वह सांप कहां गया। हम को क्यों नहीं काटता। काटरे काट, क्या इस सुकुमार बच्चे ही पर बल दिखलाना था, हमें काट। हाय! हम को नहीं काटता। अरे! यहां तो कोई सांप वांप नहीं है। मेरे लाल! झूठ बोलना कब से सीखे। हाय हाय! मैं इतनी पुकारती हूं और तुम खेलना नहीं छोड़ते। बेटा! गुरुजी पुकार रहे हैं। उन के होम की वेला निकली जाती है। देखो बड़ी देर से वह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उन को दूब और पुष्प। हाय! हमने इतना पुकारा, तुम कुछ नहीं बोलते। (ज़ोर से) बेटा! सांझ भई सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये (आगे शव देख) हाय २ रे! अरे! मेरे लाल को सांपने सच मुच डस लिया हाय लाल! हाय मेरे आंखों के उजियाले को कौन लेगया। हाय! मेरा बोलता हुवा सुग्गा कहां उड़ गया। बेटा! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया। हाय! मेरा बसा घर किसने उजाड़ दिया। हाय! मेरी कोख में किसने आग लगादी। हाय! मेरा कलेजा किसने निकाल लिया (चिल्ला चिल्ला कर रोती है) हाय लाल! कहां गये। अरे! अब मैं किस का मुंह देख के जीऊंगी। अरे हाय! अब मा कह के कौन पुकारेगा। अरे! आज किस वैरी की छाती ठण्डी हुई। अरे तेरे सुकुमार अङ्गों पर भी काल को तनिक दया न आई। अरे बेटा! आंख खोलो। हाय! मैं तो सब विपत्ति तुम्हारा ही मुंह देख कर सहती थी, सो अब मैं कैसे जीती रहूंगी। अरे! लाल एक बेर तो बोलो? (रोती है)

हरिश्चन्द्र—न जाने क्यों इस के रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है॥

रानी—(रोती हुई) हा नाथ! अरे अपने गोद के खिलाये बच्चे की

यह दशा क्यों नहीं देखते। हाय! अरे तुमने तो इस को हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हम ने इस की यह दशा करदी। हाय! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहायक होते। भला एक वेर तो पुत्र का मुंह देख जाओ। अरे! मैं किस के भरोसे जीऊंगी॥

हरिश्चन्द्र—हाय हाय! इस की बातों से तो प्राण मुंह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहां से हट चलें (कुछ दूर हट शव की ओर देखता खड़ा हो जाता है)

रानी—(रोती हुई) हाय! यह विपत्ति का समुद्र कहां से उमड़ पड़ा। अरे छलिया! मुझे छल कर कहां भाग गया? (देखकर) अरे आयु की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी से यह वज्र कहां से टूट पड़ा। अरे! ऐसा सुन्दर मुंह, बड़ी २ आंख, लम्बी २ भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रङ्ग। हाय! मरने के तुझ में कौन से लक्षण थे, जो भगवान् ने तुझे मार डाला। हाय! लाल! अरे! बड़े २ ज्योतिषी गुणी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्ती राजा होगा, बहुत दिन जीवेगा। सो सब झूठे निकले। हाय! पोथी पत्रा, पूजा पाठ, दान, जप, होम; कुछ भी काम न आये। हाय! तुम्हारे बाप का कठिन पुण्य भी तुम्हारा सहायक न भया और तुम चल बसे। हाय!

हरिश्चन्द्र—अरे! इन बातों से तो मुझ को बड़ी शङ्का होती है (शव को भली भांति देख) अरे! इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्ती के से दिखाई देते हैं। हाय! न जाने किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है और न जाने किस नगर को आज इस ने अनाथ किया है। हाय! रोहिताश्व भी इतना बड़ा भया होगा (बड़े सोच से) हाय! हाय! मेरे मुंह से क्या अमङ्गल शब्द निकल गया। नारायण! (सोचता है)

रानी—महाराज विश्वामित्र! अब तो तुम्हारा मनचीता हुआ॥

हरिश्चन्द्र—(घबड़ा कर) हाय हाय! यह क्या। (भली भांति देख, रोता हुआ) हाय! अबतक मैं सन्देह ही में पड़ा हूं। अरे! मेरी आंखें कहां गई थीं, जिन्हों ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना और कान कहां गये थे, जिन्हों ने अब तक महारानी की बोली न सुनी। हा पुत्र! हा लाल! हा सूर्यवंश के अङ्कुर! हा! हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एकमात्र अवलम्ब! हाय! तुम ऐसे कठिन समय में दुःखिया मा को छोड़ कर कहां गये। अरे! तुम्हारे कोमल अङ्गों को क्या होगया। तुमने क्या खेला, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे। पुत्र! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा

था तो मुझ से कहते तो मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुंचा देता, अथवा अब इस अभिमान से क्या, भगवान् इसी अभिमान का फल यह सब देरहा है। हा पुत्र ! (रोता है) आह ! मुझ से बढ़कर और कौन मन्दभागी होगा। राज्य गया, धन जन कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्रशोक उपस्थित हुआ। भला अब मैं रानी को क्या मुंह दिखलाऊं। निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागी और कौन होगा। न जाने हमारे किस जनम के पाप उदय हुवे। जो कुछ हमने आजतक किया वह यदि पुण्य होता तो यह दुःख न देखना पड़ता। हमारा धर्म का अभिमान सब झूंठा था, क्योंकि परमात्मा के अन्याय नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह मैं महा अभागी और बड़ा पापी हूं (रङ्गभूमि की पृथ्वी हिलती और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलयकाल आगया, नहीं यह बड़ा भारी अशकुन हुआ। इस का फल कुछ अच्छा नहीं वा अब बुरा होना ही क्या बाक़ी रहगया जो होगा। हा! न जाने किस अपराध से दैव इतना रूंठा है। (रोता है) हा सूर्यकुल के दीपक ! हा हरिश्चन्द्रहृदयनन्दन ! हा ! वत्स रोहिताश्व! हा मातृपितृविपत्तिसहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़ कहां गये। आज हम सच मुच चाण्डाल हुवे। लोग कहेंगे कि इसने न जानें कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्रशोक देखा। हाय ! हम संसार को क्या मुंह दिखलावेंगे (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रकट होने के पहिले ही हम भी प्राणत्याग करें। हा निर्लज्ज प्राण ! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हा वज्रहृदय ! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता। अरे नेत्रों ! अब और क्या देखना बाक़ी है कि अब तक खुले हो। या इस व्यर्थ प्रलाप का फल ही क्या है। समय बीता जाता है। इस के पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फांसी देने को योग्य डाल खोज कर उस में दुपट्टा बांधता है) धर्म ! मैंने अपनी जान सब अच्छा ही किया परन्तु जाने किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा, सो मुझे क्षमा करना (दुपट्टे की फांसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) हरे २ यह मैंने क्या अनर्थ अधर्म विचारा। भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैंने प्राणत्याग करना चाहा। भगवान् सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण नारायण ! इस इच्छाकृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा। हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा

करना। दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। अब तो मैं चाण्डाल कुल का दास हूं न अब रानी मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूं अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊं वा देखूं अब दुःखिया रानी क्या करती है (शैव्या के पीछे जा खड़ा होता है)

रानी—(पहिली भांति बहुत रोकर) हाय! अब मैं क्या करूं। अब मैं किस का मुंह देख कर संसार में जीऊंगी। हाय! मैं आज से निपूती भई। पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर मेरी छाया न पड़ने देंगी। हा! नित्य सवेरे उठ कर अब मैं किस की चिन्ता करूंगी। खाने के समय मेरी गोद में बैठ कर और मुझ से मांग २ कर अब कौन खायगा। मैं परोसी थाली सूनी देख, कैसे प्राण रक्खूंगी (रोती है) हाय! खेलता २ आकर मेरे गले से कौन लिपटेगा और मा मा कह कर तनक २ बातों पर कौन हठ करेगा। हाय! मैं अब किस को अपने आंचल से मुंह की धूल पोंछ कर गले लगाऊंगी और किस के अभिमान से विपत्ति में भी फूली २ फिरूंगी (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूंगी (छाती पीट कर) हाय प्राण तुम अब भी क्यों नहीं निकलते। हाय! मैं ऐसी स्वार्थनी हूं कि आत्महत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती। नहीं नहीं अब मैं न जीऊंगी, या तो इस पेड़ में फांसी लगा मरजाऊंगी, या गंगा में कूद पड़ूंगी (उन्मत्त की भांति उठ कर दौड़ना चाहती है)

हरिश्चन्द्र—(आड़ में से) चौपाई

तनहिं बेंच दासी कहवाई। मरत स्वामि आयसु विनपाई॥
करु न अधर्म सोच जिय माहीं। पराधीन सुपनहु सुख नाहीं॥

रानी—(चौंकती हो) अहा! यह किसने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया। सच है, मैं अब इस देह की कौन हूं जो मर सकूं। हा दैव! तुझ से यह भी न देखा गया कि मैं मर कर भी सुख पाऊं (कुछ धैर्य धर) तो चलूं, छाती पर वज्र धर अब लोकरीति करदूं (रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई) हाय! जिन हाथों से ठोक २ कर रोज सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूंगी। जिस के मुंह में छाला पड़ने के भय से कभी मैंने गर्म दूध भी नहीं पिलाया, उसे-(बहुत ही रोती है)

हरिश्चन्द्र—धन्य देवि! आख़िर तो चन्द्र सूर्य कुल की स्त्री हो, तुम न धीरज करोगी तो और कौन करेगा॥

रानी-चिता बना, पुत्र के पास आ (उठाना चाहती और रोती है)

हरिश्चन्द्र-तो अब चलें इस से आधा कफ़न मांगें (आगे बढ़ कर और बलपूर्वक आंसू रोक, रानी से) महाश्मशानपति की आज्ञा है कि आधा कफ़न दिये बिना कोई मुर्दा फूकने न पावे, सो तुम भी पहिले हमें कपड़ा देलो, तब क्रिया करो (कफ़न मांगने को हाथ फैलाता है, आकाश से पुष्पवृष्टि होती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्य्यमहो सत्यमहो दानमहो बलम् ।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र ! सर्वं लोकोत्तरं कृतम् ॥

रानी-हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है या इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं । नहीं तो आर्यपुत्र की यह गति हो । यह केवल देवताओं, ब्राह्मणों का पाखण्ड है ॥

हरिश्चन्द्र-(दोनों कानों पर हाथ रख) नारायण ! २ ऐ महाभागे ! ऐसा मत कहो । शास्त्र ब्राह्मण देवता त्रिकाल में सत्य हैं । ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित्त करना होगा, अपना धर्म विचारो । लाओ मृत्यु कम्बल हमें दो और अपना कार्य आरम्भ करो । (हाथ फैलाता है)

रानी—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्त्ती का चिन्ह देख और कुछ आकृति से अपने पति को पहचान) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहां छिपे थे देखो अपने गोद खिलाये दुलारे पुत्र की दशा । तुम्हारा था । यह रोहिताश्व देखो आज अनाथ की भांति श्मशान में पड़ा है (रोती) है॥

हरिश्चन्द्र—प्रिये ! धैर्य धरो, यह रोने का समय नहीं । देखो सवेरा हुआ चाहता है ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों को जानले और एक लज्जामात्र बच गई है, वह भी जाय । चलो कलेजे पर शिल रख, अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो ।।

रानी-(रोती हुई) नाथ ! मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आंचल फाड़, इसे लपेट लाई हूं, उसमें से भी जो आधा देदूंगी तो यह खुला रह जायगा । हाय ! चक्रवर्त्ती के पुत्र का आज कफ़न नहीं मिलता (बहुत रोती है)

हरिश्चन्द्र (बलपूर्वक आंसुओं को रोक और बहुत धैर्य धर) प्यारी ! रोओ मत, ऐसे ही समय में तो धैर्य और धर्म रखना काम है कि बिना आधा कफ़न लिये क्रिया न करने दूं । इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ, तुम से इस का आधा कफ़न न लूं तो बड़ा अधर्म हो । जिस हरिश्चन्द्र ।

ने उदय से अस्त तक की पृथिवी के लिये धर्म न छोड़ा, उस का धर्म आध गज़ कपड़े के लिये मत छुड़ाओ और कफ़न से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सवेरा हुवा चाहता है, ऐसा न हो कि कोई देख ले (हाथ फैलाता है)

रानी-(रोती हुई) नाथ ! जो आज्ञा (रोहिताश्व का मृत्युकम्बल फाड़ा चाहती है कि रङ्गभूमि की पृथिवी हिलती है, तोप छुटने का सा बड़ा शब्द और बिजुली का सा उजाला होता है। नेपथ्य में बाजे की और बस धन्य और जय २ की ध्वनि होती है, फूल वर्षते हैं और देवता प्रकट हो कर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं)

देवता-बस महाराज ! बस धर्म और सत्य सब की परमावधि होगई। देखो तुम्हारे पुण्यप्रताप से पृथ्वी वारंवार कांपती है अब त्रिलोकी की रक्षा करो॥

हरिश्चन्द्र-(नेत्रों में आंसू वहते हैं, साष्टाङ्ग दण्डवत् कर रोता हुआ गद्गद स्वर से) भगवन् ! मेरे लिये आपने परिश्रम किया। कहां यह श्मशान भूमि, कहां यह मृत्युलोक, कहां मेरा मनुष्य शरीर और कहां आप (प्रेम के आंसुओं से और गद्गद कण्ठ होने से कुछ कहा नहीं जाता)

देवता-(रानी से) पुत्री ! अब शोच मत कर, धन्य तेरा सौभाग्य कि तुझे राजर्षि हरिश्चन्द्र ऐसा पति मिला (रोहिताश्व की ओर देख) वत्स रोहिताश्व! उठो, देखो तुम्हारे माता पिता देर से तुम्हारे मिलने को व्याकुल हो रहे हैं (रोहिताश्व उठ खड़ा होता है और आश्चर्य से प्रणाम कर माता पिता का मुह देखने लगता है। हरिश्चन्द्र और रानी आश्चर्य, आनन्द, करुणा और प्रेम से कुछ कह नहीं सकते। आंखों से आंसू बहते हैं और एक टक देवताओं के मुखारविन्द की ओर देखते हैं)

(इन्द्र और विश्वामित्र आते हैं)

सब-धन्य महाराज हरिश्चन्द्र धन्य ! जो आपने किया सो किसी ने न किया, न करेगा। (राजा हरिश्चन्द्र रानी और रोहिताश्व सबको प्रणाम करते हैं)

विश्वामित्र-महाराज ! यह केवल चन्द्र सूर्य तक आप की कीर्ति स्थिर रहने के हेतु मैंने छल किया था। सो क्षमा कीजिये और अपना राज्य लीजिये॥

(हरिश्चन्द्र देवताओं और धर्म का मुख देखते हैं)

धर्म—महाराज ! राज्य आप का है, इस का मैं साक्षी हूं ! आप निस्संदेह लीजिये ॥

सत्य—ठीक है, जिस ने सत्य संसार में प्रत्यक्ष कर दिखाया, उसी का पृथ्वी का राज्य है ॥

इन्द्र जी-(राजा को आलिङ्गन कर और हाथ जोड़) महाराज ! क्षमा कीजिये, यह सब मेरी धृष्टता थी, परन्तु इस बात से आपका तो कल्याण ही हुवा। स्वर्ग की कौन कहे । आपने अपने सत्यबल से ब्रह्मबल पाया । देखिये आप की रक्षा के हेतु सब देवता विद्यमान हैं । मुझ पर क्षमा कीजिये ॥

हरिश्चन्द्र-(गद्गद स्वर से) अपने दासों का यश बढ़ाने वाला और कौन है ?

इन्द्र जी—महाराज ! और भी जो इच्छा हो, मांगो ॥

हरिश्चन्द्र—(हाथ जोड़) भगवन् ! मुझे अब कौन इच्छा है ? मैं और क्या वर मागूं ॥

ओ३म्

सीताचरित्र

चतुर्थ भाग

स्त्रीशिक्षाविषयक उत्तम २ कहानी और स्त्रीधर्म सम्बन्धी उपाख्यानयुक्त सरल मनोहर पुस्तक

जिस को

मुं० दयाराम साहब

ने

अपने रचे उर्दू सीताचरित्र नावल से देवनागरी अक्षरों में

उल्था करके प्रकाशित किया॥

सामवेदभाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी के
प्रबन्ध से
स्वामी (मेशीन) प्रेस-मेरठ में छपा
द्वितीयवार १००० एप्रिल सन् १९०४ मूल्य ।-)

ओ३म्

—*[भूमिका]*—

आज तक कोई पुस्तक स्त्रियों के पढ़ने योग्य ऐसा नहीं छपा, जिसकी भाषा सरल हो, स्त्रियां समझ सकें और उन का मन बहले तथा धर्म के साथ गृहप्रबन्ध के लिये उत्तम शिक्षा की प्राप्ति हो सके। इस अभाव को दूर करने के लिये मैंने "सीताचरित्र" नावल नामक पुस्तक उर्दू में रचकर छपाई थी, जिस के हाथों हाथ ग्राहकों की मांग पर मांग आने से मैंने यह समझा कि मेरा परिश्रम सफल हुवा और अपने कई मित्रों की सम्मति से कि "उर्दू में होने के कारण बहुधा स्त्रियों को इस के लाभ से वञ्चित रहना पड़ता है, इस का नागरी भाषा व देवनागरी अक्षरों में अनुवाद होना चाहिये" मैंने नागरी में अनुवाद किया है। यह पुस्तक चार भागों में है। इस में धर्माधर्म सत्यासत्य, गृहप्रबन्ध, पतिव्रत आदि बड़ी उत्तमता से रोचक कहानियों द्वारा दिखलाये गये हैं और श्रीमती सीता महारानी, दमयन्ती, तारामती आदि का जीवनचरित्र सरल भाषा में लिखकर उन के सुन्दर उदाहरणों के ग्रहण कराने के लिये शक्ति भर परिश्रम किया गया है। इस के बार २ पढ़ने पर भी जी नहीं भरता। इस के होते रामायण, नलोपाख्यान और हरिश्चन्द्र आदि की आवश्यकता नहीं रहती। आज मैं इस के चारों भाग पाठकों को अर्पण करता हूं॥

ग्रन्थकार

ओ३म्

सीताचरित्र

चौथा भाग

पुष्पक विमान

बिभीषण जी—(पुष्पक विमान मंगवाय [यह विमान निरा सुवर्ण का, पाये चांदी के, बैठकों में अपने अपने स्थान पर रत्न जड़े प्रत्येक भांति के सुखस्थान न्यारे न्यारे बने, उचित स्थानों पर सुन्दर सुन्दर जालियां हीरे और पन्नों की कटीं और यथायोग्य घण्टे भी बंधे थे, जिन का शब्द चलते समय अति आनन्द देता और अतिप्रिय जान पड़ता था। इस को पर्वताकार विश्वकर्मा जी ने अपने हाथ से बनाया था। कितने ही स्थान उस में बड़ी २ चित्रकारी के बने थे। इस की धरती में भी कहीं २ रत्न लगाये गये और बिछौने भी अमूल्य बिछाये गये थे। रसोई अलग, पुस्तकालय अलग, कचहरी अलग, दर्बार अलग, सोने के स्थान अलग, अर्थात् ऋतु २ के सुख के लिये न्यारे २ प्रत्येक स्थान बनाये गये थे, लागत की तो किसी समय में जांच ही नहीं हुई। परन्तु उस विमान के होते महल बनाने की आवश्यकता किसी राजा महाराजा को भी नहीं होसकती थी।] बोले कि—)

श्रीमहाराज ! विमान आगया ॥

रामचन्द्र जी—(बहुत अच्छा कह, लक्ष्मण जी और सीता जी सहित सवार हुवे और खड़े हो)ए बिभीषण जी ! हम तुम्हारी शुश्रूषा आदर सत्कार और सहायता को जन्मभर न भूलेंगे। यह सब आप ही की कृपा का फल है कि हम ऐसी प्रतिष्ठा से अयोध्या को लौट कर जाते हैं (और सुग्रीव से)

ए कपीश सुग्रीव जी ! क्या आप की सहायता ऐसी है कि हमारे हृदय से न्यारी हो सके ? आप ने हम अतिथियों के साथ वह सहायता की है कि जिस का यश हमारे जीते जी तो क्या प्रलय काल तक भी संसार में बना रहेगा। ए रीछ वानरो ! हमारे मुंह में जिह्वा नहीं कि आप की कृपाओं और सहायताओं और शूरता का धन्यवाद देसकें। हमारे मुख में तो एक

जिह्वा है, जो रोम रोम भी जिह्वा होजाय तो भी आप से सत्पुरुषों का धन्यवाद नहीं दे सके। अब आप लोग हमारे ऊपर कृपा कर हम को अयोध्या जाने की आज्ञा देदीजिये और आप भी प्रसन्नतापूर्वक अपने २ स्थान को जाइये। ए सुग्रीव जी! आपने धर्म और मित्रता दोनों को भले प्रकार निवाह दिया अब आप भी पम्पापुर को पधारिये और बहुत समय से जो पम्पापुर सूना पड़ा है, उस को देखिये। ए बिभीषण जी! अब आप भी लङ्कापुरी का राज्य करें, आप को इन्द्रादि देवता कुछ भी क्लेश न देंगे और हम भी सदैव आप लोगों की सहायता करते रहेंगे। जो आप लोग हम से ऐसी ही प्रीति रक्खेंगे, तो हम आप लोगों से अतिप्रसन्न रहेंगे, क्योंकि अब हम को अपने पिता जी की राजधानी अयोध्यापुरी को जाने की आवश्यकता है। इस लिये आप लोगों से विदा और आज्ञा चाहते हैं, परन्तु मन तो आप के छोड़ने को नहीं चाहता ॥

सुग्रीव जी—(सब वानर और बिभीषण जी राक्षसोंसहित हाथ जोड़) हम लोग भी अयोध्यापुरी को चला चाहते हैं। जो आप उचित समझें तो हम लोगों को भी साथ लेते चलें,क्योंकि हम लोग भी मार्ग में अच्छे २ वन और उपवन देखें और वहां पहुंच, आप का राज्यतिलक देख,माता कौशल्या जी को प्रणाम कर, अपने २ घर को चले आवें ॥

रामचन्द्र जी—जो आप लोगों की यह इच्छा है तो हम बहुत प्रसन्न होंगे और उस समय अतिप्रसन्न होंगे जिस समय कि आप लोगों के साथ अयोध्या में विचरेंगे, क्योंकि आप लोगों के साथ रहने को मन बहुत ही चाहता है परन्तु क्या करें कि अयोध्या जाने पर लाचार हैं। अच्छा तो अब सुग्रीव जी! सब रीछ वानरों सहित शीघ्र विमान पर आजाइये और बिभीषण जी! आप भी अपने मन्त्रियोंसहित इस पर आरूढ होलीजिये (अब सुग्रीव जी बड़े २ वानरों सहित और बिभीषण जी अपने मन्त्रियोंसहित पुष्पकविमान पर आचढ़े। जिस समय कि सब आचुके उस समय महाराज रामचन्द्र जी की आज्ञा से विमान आकाश में चला, अब कैसी सुहावनी ठण्डी २ पवन आरही है और कैसे आनन्द से विमान जारहा है कि सब बैठने वालों का मन लुभा रहा है। अब सीता जी रामचन्द्र जी के पास बैठी मग्न होरही हैं) ॥

रामचन्द्र जी—(चारों ओर दृष्टि कर) वैदेहि ! देखो कैसी रमणीक लङ्कापुरी विश्वकर्मा जी की बनाई हुई कैलाशपर्वत की शिखा के समान

शोभायमान जान पड़ती है। इस को सब भलीभांति देखो। यह युद्धभूमि है, जिस में राक्षस और वानरों के रुधिर और मांस से कीचड़ हो रहा है और अब तक कच्चे मांस की दुर्गन्धि आती है। ए देवि! इस जगह वह वरदानी महाबली रावण हमने मारा था और इस जगह कुम्भकरण दुष्ट को मारा है और इस जगह धूम्रराक्षस को हनुमान् जी ने और यहां सुषेण महात्मा ने विद्युन्माली राक्षस को और यहां लक्ष्मण जी ने रावण के पुत्र मेघनाद को और यहां विकट राक्षस को अङ्गद ने मारा है और इसी जगह विरूपाक्ष आदि त्रिशिरा सहित बहुत से राक्षस मारे गये हैं। यहां उस मकर राक्षस को हमने मारा था और यहां अकम्पनादि बहुत से राक्षस काम आये हैं और यहां आकर राणी मन्दोदरी रावण के लिये रोई थीं, उस समय रावण की सहस्रों विधवा रानियां उस के साथ खड़ी रोरही थीं। प्रिये! यह वह समुद्र का तट है जहां पहली रात आकर हम लोगों ने निवास किया था। ए प्यारी! यह वह सेतु है जो तुम्हारे अर्थ हमने समुद्र में बन्धवाया है। इस के बनाने में नल नील ने बड़ा कीर्त्ति के योग्य कार्य किया है। ए देवि! यह सागर है। यह इस में नाक मैनाक पर्वत है जो हनुमान् जी के सुख देने के अर्थ आप ही आप समुद्र से बड़े वेग के साथ प्रकट हुआ था। यह वह स्थान है जहां आकर पहिले ही पहिले सेना इकट्ठी हुई थी। यहां हमने पहिले ही पहिले महादेव की पूजा की है यहीं विभीषण जी हम से मिले थे। ऐ सीता! यहां हमने बालि मारा था। यह जो दृष्टि आरही है सुग्रीव जी की किष्किन्धापुरी है

सीता जी-(अति मनोहर वाणी से) महाराज! हमारी इच्छा है कि राजा सुग्रीव जी की तारा आदि स्त्री भी हमारे साथ अयोध्या जी को चलें वहां पर यह सब भी तो अयोध्यापुरी देख, माता कौशल्या जी को प्रणाम कर आवें॥

रामचन्द्र जी—बहुत अच्छा ऐसा ही होगा। (और विमान किष्किन्धा पुरी में ठहरा, सुग्रीव जी से) वानरराज! सीता जी की यह इच्छा है कि तुम्हारी रानी तारा और इन पुरवासियों की स्त्रियां आप के साथ अयोध्या जी को चलें। इस से उचित जान पड़ता है कि आप और यह सब वानर अपनी २ स्त्रियों को ले आवें क्योंकि वे सब भी सीता जी के साथ साथ अयोध्या जी को चली चलें॥

सुग्रीव-(बहुत अच्छा कह, सब वानरों सहित महल में पहुंच तारा से) ऐ प्यारी! श्री जानकी जी की प्रसन्नता के लिये सब वानरियों सहित आप

को रामचन्द्र जी ने बुलाया है और तुम सब को अयोध्या जी चलना होगा, इस लिये तुम आज ही तैयार होजाओ और चलो, वहां हम महाराज दशरथ जी की सब रानी तुम को दिखलावेंगे ॥

तारा—(सब वानरियों से) तुम सब को अपने २ पतियों के साथ चलने की महाराज सुग्रीव की आज्ञा देते हैं और हम भी तुम्हारे साथ वहां चला चाहती हैं। अब जिस को अयोध्या जी का दर्शन करना हो वह शीघ्र तैयार हो हमारी खुशी करे। वहां रामचन्द्र जी के अयोध्या पहुंचने का आनन्द और राजा दशरथ जी की सब रानियों को देखेंगे ॥

सब वानरियां बहुत प्रसन्न हो, "बहुत अच्छा" कह, प्रसन्नतापूर्वक शृङ्गार कर सीता जी के दर्शनों की अभिलाषा से विमान पर आ सवार हो गईं ॥

सीता जी—ऐ तारा! तुम प्रसन्न तो हो और यह सब तुम्हारी सहेली भी प्रसन्न हैं?

तारा—(हाथ जोड़ प्रणाम कर) महारानी जी! सब आप की कृपा है। हम आप के इस प्रेम से अति प्रसन्न हैं। यह आप ही की कृपा दृष्टि है, नहीं तो हम कहां और अयोध्यापुरी कहां। भला कहां यह वन और कहां अयोध्यापुरी।

सीता जी—अच्छा तो आप अपने २ पतियों के संग आनन्द से बैठो अब हम सैर कर लें अयोध्या जी में तुम से बातें करेंगी ॥ (अब विमान चलदिया)

रामचन्द्र जी—ए सीता यह जो बिजली सहित बादल की नाईं दृष्टि आता है, यह ऋष्यमूक पर्वत है। यहीं पर हमारी और सुग्रीव जी की मित्रता हुई है। देखो यह तमसा नदी है यहां हमने तुम्हारे लिये बड़ा शोक किया था और यहीं हम को धर्मचारिणी शबरी मिली थी। यहां पर हमने बड़ी लम्बी बाहों वाला कबन्ध राक्षस मारा था। ए सीता! यह जनस्थान है। देखो यह भारी बरगद का वृक्ष है जहां रावण ने जटायु गिद्ध को मारा था। ए देवि! यह वही हमारा प्यारा आश्रम है। वह पर्णशाला दीखती है यहीं से तुम को रावण हर लेगया था। देखो, यह गोदावरी नदी दीखती है और देखो यह अगस्त्य जी का आश्रम है। ए प्यारी! यह बड़े भारी महात्मा शरभङ्ग जी का आश्रम है, जहां हमने तुमने और लक्ष्मण जी ने इन्द्र जी को देखा था। ए देवि! देखो यह वे तपस्वी लोग हैं जो अत्रि जी के आधीन रहते हैं। ए देवि! यहां हमने उस बलवान् विराध को मारा था।

ए देवि! यहीं तुमने अनसूया जी के दर्शन किये थे। देखो यह वह चित्रकूट पर्वत दीखता है जहां हमारे फेरने को वे कैकयी के पुत्र श्रीमान् भरत जी आये थे और यह बड़े २ वृक्षों के बीच में यमुना नदी दिखाई देती है। ए मैथिली! यह मनोहर आश्रम भरद्वाज जी का दृष्टि आता है और यह गङ्गा जी दिखलाई देरही हैं, यह शृङ्गवेरपुर दिखलाई देता है, जहां हमारा मित्र निषादों का राजा गुह रहता है, और देखो वह घने २ वृक्षों के बीच में सरयू नदी दिखलाई देती है और देखो वह हमारे पिता जी की राजधानी अयोध्यापुरी दीखती है, इस को यहीं से प्रणाम करो॥

अब सीता जी अयोध्यापुरी को वहीं से प्रणाम करती हैं और सब वानर और सुग्रीव और बिभीषण जी और सब राक्षस शिर उठाय उठाय अयोध्यापुरी को देखते हैं। अब वहीं से सब को अयोध्यापुरी दिखलाय, पूरे चौदह वर्ष की पञ्चमी को रामचन्द्र जी ने प्रयाग में भरद्वाज जी के आश्रम पर विश्राम कर और सब साथियों सहित विमान से उतर भरद्वाज जी को प्रणाम किया॥

रामचन्द्र जी—(हाथ जोड़) भगवन्! भला आप को अयोध्या का कुछ समाचार ज्ञात है? वहां सब मनुष्य प्रसन्न तो हैं? भरत जी भलीभांति राज्य कर रहे हैं? हमारी माता सब सकुशल हैं?

भरद्वाज जी—(मुस्करा कर) ए रामचन्द्र! अयोध्या सब प्रसन्न है। भरत तुम्हारी आज्ञा पाल रहे हैं और तुम्हारी पादुका आगे रख सब राज्य काज करते हैं परन्तु तुम्हारा ध्यान बहुत ही कर रहे हैं। रात दिन तुम्हारी ही चर्चा रहती है। महलों में सब प्रसन्न हैं। ए रामचन्द्र! जिस समय तुम सीता लक्ष्मण सहित नङ्गेपैरों वन को गये थे उस समय हम को बड़ी दया आई थी। अच्छा अब सब कार्य ठीक होगये और तुम्हारे हाथ से अपने मित्रों सहित सब शत्रु मारे गये। अब हम तुम को देख अतिप्रसन्न हुवे। तुम्हारा नित्य का वृत्तान्त और सब सुख दुःख हम को यहीं बैठे ज्ञात होता रहा है कि आप ब्राह्मण और तपस्वियों की रक्षा करते रहे हैं। इन तुम्हारी धर्मचारिणी भार्या को रावण हर लेगया था और जिस भांति मारीच मारा और सुग्रीव से मिले, लङ्का पर चढ़े और रावण मारा और अयोध्या जी का भी सब वृत्तान्त ज्ञात है। वहां भी सब प्रकार से कुशल है॥

रामचन्द्र जी—इतनी कृपा और कीजिये कि यहां से अयोध्या तक के फल बिना ऋतु के फल जायें और फलें ही नहीं वरन सब मीठे और सुगन्धित होजायं, जिस में यहां से अयोध्या तक आप की कृपा सब को ज्ञात हो ॥

भरद्वाज—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा ॥

रामचन्द्र जी—(वानरों से) लो भाई! चाहे जितने फल भोजन करो।

वानर—('बहुत अच्छा कह' खाने लगे। और रामचन्द्र जी विचार करने लगे कि भरत जी ने हम से विदा होते समय कहा था कि जो पूरे चौदह वर्ष होने पर आप न आवेंगे तो हम आग में बैठ जायंगे इस से यही उचित है कि किसी को अयोध्या भेज दें क्योंकि एक दो दिन की देर होजाने से भरत आग में न जल जावें)

रामचन्द्र जी—ए हनुमान्! तुरन्त ही तुम अयोध्या को जाओ, वहां जाकर देखो कि राजमन्दिर में सब लोग प्रसन्न तो हैं, परन्तु मार्ग में शृङ्गवेरपुर होते जाना। वहां हमारे मित्र राजा गुह से हमारा कुशल कहना, वह हमारा कुशल सुनते ही प्रसन्न होजायगा क्योंकि वह हमारा मित्र है, उस को तुम हमारे समान समझना और बहुत प्रतिष्ठा करना, वह तुम को अयोध्या जी का मार्ग और भरत जी का सब समाचार ब्यौरेवार बतला देगा। जब तुम भरत जी के पास पहुंचो तो हमारी ओर से कहना कि राम और लक्ष्मण सीता सहित प्रसन्न हैं और सब कार्यों से निवृत्त हो चुके हैं और सब वृत्तान्त ब्यौरेवार उन से हमारी यात्रा और अपने मिलने और लङ्का के युद्ध का वर्णन करना और कहना कि अब रामचन्द्र बहुत ही निकट आगये हैं, और बिभीषण जी राक्षसों सहित और सुग्रीव जी वानरों सहित साथ हैं और भरत का विचार अच्छा या बुरा जैसा हो वह अपनी बुद्धि से जान, पहिले से कह देना क्योंकि जगत् में ऐसे मनुष्य बहुत थोड़े हैं कि जिन का राज्य मिल जाने से मन नहीं बदल जाता और जो चौदह वर्ष राज्य करने से भरत को राज्य का लालच होगया हो तो हम से तुरन्त आकर कहना क्योंकि भरत के राजा रहने से हम बड़े प्रसन्न हैं जहां तक होसके यह सब वृत्तान्त हम से मार्ग ही में कहना और जो भरत हमारे आने की आशा मनाते हों और तुम को ठहरावें तो ठहर जाना, हम भी तुम्हारे पीछे ही पीछे आते हैं ॥

अयोध्यापुरी और भरत जी का स्थान

(हनुमान् हाथ जोड़, शिर पर रख, बहुत अच्छा कह चल दिये और शृङ्गवेरपुर में आ, राजा गुह के पास दम लिया)

हनुमान्—राजन् ! आप के मित्र रामचन्द्र जी सीता जी और लक्ष्मण जी सहित अपना कुशल कहते हैं और प्रयाग में भरद्वाज जी के आश्रम पर ठहरे हैं, वहां से आज्ञा पाय आप के निकट शीघ्र आवेंगे, और आप को यहीं देखेंगे और मैं अयोध्या को जाता हूं ॥

गुह—ऐ मित्र ! बतलाओ तो आप कौन हैं,इस आनन्ददायक सन्देश के बदले हम तुम को क्या दें ॥

हनुमान्—मैं हनुमान् नाम वानरराज सुग्रीव जी का मन्त्री हूं । मुझे देर होती है । अयोध्या जाता हूं । आप भी तो रामचन्द्र जी के साथ अयोध्या जी आवेंगे बस वहीं मिलूंगा ॥

यह कह-हनुमान् अयोध्या जी को चल दिये । देखा कि अयोध्या जी के निकट नन्दिग्राम में एक महात्मा रामचन्द्र जी को चनिहार मृगचर्म पहने बड़े शोकातुर और उदास बलहीन अपने आश्रम पर सिंहासन बिछाये बैठे हैं । जटा रखाये हैं । कुछ फल मूल आगे धरे हैं । सन्मुख अतिसुन्दर राजगद्दी बिछी है । उस पर एक जोड़ी पादुका रक्खी हैं । बहुत से पुरोहित मन्त्री आगे बैठे हैं । सेना भी खड़ी है और सेनापति हाथ बांधे खड़े हैं । राज्य के कार्य हो रहे हैं । देखते ही समझे कि हों न हों यही भरत जी हैं । यह विचार, उन के सन्मुख जा ॥

हनुमान्—(हाथ जोड़) राजन् ! जिन रामचन्द्र जी का आप विचार कर रहे हैं, उन्होंने अपना कुशल कह, आप का कुशल पूंछा है । अब इस दुःख और शोक को त्याग दीजिये, आप बहुत ही शीघ्र अपने भाई रामचन्द्र जी से मिलेंगे । वह कुटुम्बसहित रावण को मार,सीता जी और लक्ष्मण जी और सुग्रीव जी और विभीषण जी और बहुत से वानरों के साथ आप के निकट भरद्वाज मुनि के आश्रम पर आगये हैं ॥

भरत जी—(अतिप्रसन्न, मूर्छित हो,थोड़ी देर में जाग, सस्ताय, अतिमनोहरवाणी से) ए प्यारे ! (और छाती से लिपटाय) तुम देवता हो वा मनुष्य ? जो हमारे ऊपर कृपा की । इस आनन्ददायक सन्देश के बदले जो मांगो हम तुम को देवें । अच्छा एक लक्ष गौ और सौ गांव और गहने कपड़े पहने सोलह कन्या तुम्हारे विवाह को दीं । देखो प्यारे हमारे भाई को वन गये बहुत ही दिन बीत गये परन्तु हमारे अहोभाग्य कि आज फिर उन का आगमन सुनने में आया । यह कहावत प्रसिद्ध है कि जो मनुष्य जीता रहे तो सौ वर्ष

पीछे सुख मिलता है। आज यह कहावत हम को सुखदायक हुई। अब तुम रामचन्द्र जी का ब्योरेवार वृत्तान्त सुनाओ॥

हनुमान्—चित्रकूट से आरम्भ कर प्रयाग तक का वृत्तान्त सुनाते हैं॥

भरत जी—ऐ वानरोत्तम! तुम को आये हुए तो बहुत देर होगई और अभी तक महाराज रामचन्द्र जी नहीं आये। कहीं तुमने अपने चञ्चलस्वभाव से तो झूंठ मूंठ नहीं कह दिया कि श्री रामचन्द्र जी आते हैं क्योंकि अब तक श्रीमान् को आता नहीं देखते और न कोई साथ का वानर दृष्टि आता है॥

हनुमान्—नहीं महाराज! हमने चंचलता से नहीं कहा, सब समाज को हमने भरद्वाज जी के आश्रम पर छोड़ा है। वानर लोग सुन्दर २ फल खा रहे थे परन्तु अब तक तो कभी के वहां से चल दिये होंगे॥

भरद्वाज जी के आश्रम से यात्रा

रामचन्द्र जी—(हाथ जोड़) ए मुनिराज! अब हम को अयोध्या जी जाने की आज्ञा दीजिये, आप को तो ज्ञात है कि भरत कैसी बाट देख रहे हैं। अब आप की सेवा में तो कभी २ आते ही रहेंगे॥

भरद्वाज—अच्छा कुशल पूर्वक जाइये, जो अवकाश मिले तो कभी २ दर्शन देते रहना। (अब रामचन्द्र जी समाज सहित विमान पर सवार हुये, देखा कि राजा गुह बाट देख रहे हैं। गुह—हाथ जोड़, प्रणाम कर,) कहो मित्र प्रसन्न तो रहे, कुशलपूर्वक तो आये? बड़ी प्रसन्नता का समय है कि चौदह वर्ष पीछे आप के दर्शन हुये। आज यहीं विश्राम कर, भोजन पाय, मेरे स्थान को पवित्र कीजिये॥

रामचन्द्र जी—(गुह को छाती से लिपटाय) मित्र! तुम्हारी कृपा से कुशल पूर्वक आये। तुम तो प्रसन्न हो? भाई! इस समय तो हम अयोध्या को जाते हैं, भरत हमारी बाट देख रहे हैं, वहीं पर भोजन करेंगे। सो आओ तुम भी साथ चलो (और गुह को मन्त्रियों सहित विमान में चढ़ा लिया। अब गोमती पर आ, वानरों ने बड़ा भारी नाद किया और शाल वन में बहुत से वानर विमान से उतर, पैदल चलने और वन देखने लगे)॥

भरत जी का मन्दिर

हनुमान्—राजन्! देखो वह बड़ा भारी वानरों का शब्द सुनाई देता

है। मेरी समझ में तो इस समय महाराज गोमती पर आये हैं और शालवन की ओर धूल भी तो उड़ रही है और देखो, आहा! विमान तो स्पष्ट दीखता है। यही तो पुष्पक विमान है। यही तो रावण को मार, रामचन्द्र जी ने लङ्का से पाया है। यही रामचन्द्र जी की सवारी में है। चित्रकारी में दूसरा इस सरीखा नहीं। मन का सा तो इस का वेग है। दोनों भाई रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी और सीता जी, सुग्रीव जी व बिभीषण जी और बहुत से बानर व राक्षस इस में सवार हैं। इसी बीच में भरत और समस्त पुरवासियों ने बड़ा शब्द किया कि भाई रामचन्द्र ये ही हैं, भाई रामचन्द्र ये ही हैं कि आकाश शब्दायमान होगया और सब मनुष्य यानों से उतर २ रामचन्द्र जी को विमान में देखने लगे और भरत जलादि से पूजा करने लगे और वहीं से विमान में बैठे श्री रामचन्द्र जी को प्रणाम किया और रामचन्द्र जी ने तुरन्त विमान पृथिवी पर उतार, भरत व शत्रुघ्न जी को सवार कर लिया॥

भरत जी—(विमान पर चढ़) हाथ जोड़ प्रणाम करते हैं ।।

रामचन्द्र जी—(उठ भरत को छाती से लगा, शिर सूंघ, गोद में बिठलाते हैं)

लक्ष्मण जी—(हाथ जोड़ खड़े हो, भरत जी को प्रणाम करते हैं)

भरत जी—(उठ, हाथ जोड़, शिर नीचा कर, सीता जी को प्रणाम करते हैं और सुग्रीव हनुमान् अङ्गद मयन्द द्विविद नील और बिभीषणादि सब को छाती से लगा २ मिलते हैं)

सुग्रीव—कहिये महाराज! आप प्रसन्न तो हैं, प्रसन्न तो रहे ?॥

भरत जी—सुग्रीव जी! सब आप की कृपा है, आप चारों भाइयों के पांचवें भाई हैं। देखो, प्रीति से ही पराया अपना होजाता है। किसी को लाभ पहुंचाना मित्रता का चिह्न है और हानि करना शत्रुता का। परन्तु भाई! हम तो तुम्हारा सदैव कुशल चाहने वाले हैं (फिर बिभीषण जी से ए राजन्! हमारे धन्य भाग्य हैं कि तुम्हारी सहायता से यह कठिन कार्य सहज ही में सिद्ध होगया ।।

शत्रुघ्न जी—(प्रथम रामचन्द्र जी को प्रणाम कर, पीछे लक्ष्मण जी व सीता जी को प्रणाम करते हैं)

रामचन्द्र जी—माताओं को आंसू भरे देख, विमान से उतर, माता कौशल्या जी के चरणों पर गिरे और आसूं भर लाये ।।

कौशल्या जी—(आंसू भर अपने हाथों से उठा, छाती से लगा, शिर सूंघ, मुख पर हाथ फेरती हैं) ।।

रामचन्द्र जी—माता जी ! आज्ञा हो तो हम और माताओं को भी प्रणाम कर लें ॥

कौशल्या जी—बहुत अच्छा, सब से मिल लो (और हाथ से धूल झाड़ती हैं । पीछे रामचन्द्र जी ने केकयी और सुमित्रा को प्रणाम कर और सब माताओं को प्रणाम किया और वहां से चल, गुरु वशिष्ठ जी के पास जा, हाथ जोड़ प्रणाम किया)

सब अयोध्यावासी—(हाथ जोड़) ऐ कौशल्यानन्दन ! प्रसन्न तो आये ? (अब रामचन्द्र जी ने विमान चलाया और भरत जी के आश्रम पर आये)

भरत जी—(खड़ावं अपने हाथ से उठा,हाथ जोड़े) महाराज ! यह आप का राज्य हमारे धरोहर रक्खा था,वह यह लीजिये । हमने आप को भुगता दिया (और पादुका चरणों में पहनाते हैं, और फिर हाथ जोड़) ए महाराज ! हमने बड़े दुःखों से आज तक इस की रक्षा की है । अब आप इस की रक्षा करें । आज आप को वन से लौटा देख, हमारा जन्म सुफल हो गया और मनोरथ भी पूर्ण हुआ । अब आप कोष तोशाखाना व सेना,जिस को हमने पहिले से दश गुणा कर दिया है, देख लें ॥

यह सुन बिभीषण व सुग्रीव और सब वानर प्रसन्न हो आंसू बहाने लगे और रामचन्द्र जी विमान से उतरे, पृथिवी पर बैठ गये और विमान से–अच्छा तुम कुबेर जी के पास चले जाओ और उन को सवारी दो ॥

भरत जी—(हाथ जोड़,शिर पर रख) महाराज ! यह राज्य जो हमारी माता की आज्ञा से आपने हम को दिया था और उस के ले लेने को चित्रकूट पर कह दिया था वह अब हम आप को देते हैं क्योंकि जिस भांति धोरी बैल का काम छोटा सा नटिया नहीं कर सकता, वैसे ही आप के सम्मुख हम से नियमानुसार राज्यरक्षा भी नहीं होसकती । ऐ राघव ! किसी मनुष्य ने अपने घर की फुलवारी में बहुत अच्छा वृक्ष लगाया और उस की भले प्रकार सेवा की कि जिस से वह बहुत बड़ा हो गया और गुद्दे भी बहुत बढ़े, फूल भी अच्छे आये, अब फल लगने का समय है कि काट डाला गया और फल कुछ न हुवा । इसी भांति आप के वन जाने से हम लोग आप की सेवा न कर सके, इस लिये वह ही फल हम को हुआ । अब हमारी प्रसन्नता इस में है कि आज ही आप का राज्य तिलक किया जावे और हम

लोग आप को गद्दी पर बैठा देखें और आज से ही आप मीठे २ घण्टों के शब्द में सोया करें और नक्कारे के शब्द पर जागा करें ॥

रामचन्द्र जी-अच्छा भरत! अच्छा आप का कहना किया जायगा (और उत्तम आसन पर जा बैठे)

भरत जी-ए शत्रुघ्न ! उत्तम २ जल समेत स्नान कराने वालों को बुलाओ॥

शत्रुघ्न-महाराज ! यह लोग पहिले ही से जल लिये हाज़िर हैं ॥

रामचन्द्र जी--पहिले भरत जी को स्नान कराओ, पीछे लक्ष्मण जी को, फिर वानरेन्द्र सुग्रीव जी को , फिर राक्षसेन्द्र बिभीषण जी को और सब से पीछे हम को ॥

शत्रुघ्न-बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा ॥

सुमन्त—(रथ ला) महाराज सवार हो,अयोध्या जी की सैर कीजिये ॥

रामचन्द्र जी—बहुत अच्छा, (सवार होकर चले और सुग्रीव जी और हनुमान् जी आदि साथ होलिये । उधर सीता जी सवार हुईं और सब वानरियां उन के साथ २ सैर को चल दीं)

रामचन्द्र जी—ए भरत ! सुग्रीव जी और बिभीषण जी को हमारे महल में ठहराओ ॥

भरत जी—(बिभीषण जी व सुग्रीव जी का हाथ पकड़,पहिले माता कौशल्या जी को प्रणाम कराते हैं और फिर रामचन्द्र जी के महल में ठहराते हैं और शत्रुघ्न ने तुरन्त सब सामान आराम के पहुंचा दिये)

भरत जी-ए सुग्रीव जी ! रामचन्द्र जी के तिलक के लिये चारों समुद्रों से जल लाने को वानरों को आज्ञा दीजिये । यह घड़े रक्खे हैं ॥

सुग्रीव जी—हनुमान् ! तुम चार वानर जाओ और जल्दी चारों समुद्रों से एक २ घड़ा जल ले आओ ॥

हनुमान् जी—बहुत अच्छा, (चारों जाते हैं)

अब जल आया और भरत जी ने रत्नजटित चौकी पर रामचन्द्र जी को सीता जी सहित बिठा, राजतिलक कर दिया और बहुत से दान देने लगे । निर्धन=धनाढ्य किये गये । रामचन्द्र जी ने रत्न की माला सुग्रीव जी को अपने हाथ से पहनाई । दो कुण्डल अमूल्य अङ्गद के कानों में पहनाये । मोतियों का अमूल्य हार सीता जी को दिया, दो कपड़े जो कभी पुराने न हों बहुत से गहने सहित हनुमान् जी को पहनाये ॥

सीता जी—(हार गले से उतार रामचन्द्र जी की ओर देखती हैं)

रामचन्द्र जी—ए प्यारी देखती क्या हो, जिस को चाहो पहना दो ।।

सीता जी-(प्रसन्न हो, वह हार भी हनुमान् जी को पहनाती हैं)

यहां तक कि सब वानरों को बहुत सा इनाम दिया गया । अब बिभीषण जी की वारी आई । एक मोतियों की माला बिभीषण जी के गले में डाली गई और उन के मन्त्रियों को भी बहुत इनाम दिया गया । इतने इनाम दिये कि किसी को मांगने की आवश्यकता न रही और श्रीमान् रामचन्द्र जी राज्य करते रहे ॥

विदा

पाठकगण ! जिस समय भरत जी को ज्ञात हुआ था कि रामचन्द्र जी लङ्का चढ़ाई का मनोरथ कर रहे हैं तो अपने आधीन और मिलने वाले राजाओं को लङ्का चढ़ाई का नोता देदिया था और सब राजाओं को रामचन्द्र जी की सहायता के लिये बुलाया था कि थोड़े ही काल में तीन सौ एक राजा अपनी सेना सहित आय इकट्ठे होगये थे । अब लङ्का की तैयारी हो रही थी कि लङ्का जीतने का समाचार सुना । बस उन का विदा करना अनुचित जान, सब से कहा कि भाई ! लङ्का तो आप लोगों की कृपा से जीत ली और रामचन्द्र जी भी अब शीघ्र ही आया चाहते हैं, इस लिये उचित है कि आप लोग भी ठहरें, और रामचन्द्र जी का तिलक देख लें । इस पर सब प्रसन्न हो कर ठहर गये ॥

जिस समय कि रामचन्द्र जी के आने की ख़बर सुनी तो सब सज २ कर आगौनी को गये॥

रामचन्द्र जी—(बड़े प्रेम से आंसू भर, सब से) भाइयो ! आप लोगों को लङ्का तक पहुंचने का कष्ट न हुआ, परन्तु आप ही की कृपा से हमारी जय हुई और रावण मारा गया और आप लोगों के राज काज में हानि भी न हुई, परन्तु हम आप को धन्य मानते हैं ।।

राजा लोग-यह आप की सर्दारी है और यह वार्त्ता आप के कहने योग्य है।

अब सब लोग ठहर गये और रामचन्द्र जी का राजतिलक हुआ और सब अयोध्या में मङ्गल होने लगे ।।

एक दिन

श्रीमान् रामचन्द्र जी सिंहासन पर विराजमान थे और हनुमान् व अङ्गद चंवर कर रहे थे। भरत व लक्ष्मण व शत्रुघ्न व वशिष्ठ आदि मन्त्री व सुग्रीव व जाम्बवान् व नल नील आदि रीछ वानर व राजा बिभीषण और सब तीन सौ एक राजे अपने २ आसनों पर बैठे थे ॥

रामचन्द्र जी—ए सुग्रीव जी! यह अङ्गद बड़ा शूर है और हनुमान् बड़ा श्रेष्ठ मन्त्री है। इन दोनों को सदैव प्रसन्न रखना, किसी समय इन को अप्रसन्न न करना। इन दोनों ने हमारे लिये बड़ा परिश्रम किया है। जो इन को आप किसी प्रकार दुःख देंगे तो हम को दुःख होगा। यह दोनों हम को सब से अधिक प्यारे हैं ॥

सुग्रीव जी—राजन्! आप के कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह दोनों मुझ को प्राण से भी प्रिय हैं। मैं इन सब राजे महाराजों के समीप कहता हूं कि किसी समय इन को अप्रसन्न न करूंगा ॥

रामचन्द्र जी—(राजा लोगों से) आप लोगों ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की और यह भी जानता हूं कि आप मुझ से बड़ा प्रेम रखते हैं और अपने मुख से आप जाने को भी न कहेंगे। हां मुझे भी आप लोगों को अपने मुख से जाने को कहना उचित नहीं परन्तु राज्यकाज में हानि होना भी पाप है और ऐसी दशा में वह पाप मेरे सिर होगा, इस लिये यही उचित समझता हूं कि आप लोगों से जाने को कहूं। इस लिये अब निवेदन है कि आप लोग अपना२ राज्यकाज देखें और मुझ से ऐसा ही प्रेम रक्खें और समयानुसार मिलते रहें ॥

राजा लोग—हां, आप से अलग होने को तो मन नहीं चाहता, परन्तु आप की आज्ञाभङ्ग भी नहीं कर सकते और हम भी इस समय अपना जाना ही उचित समझते हैं इस लिये प्रार्थना है कि आप भी हम लोगों से प्रेम रक्खेंगे और किसी समय हमलोगों को न भूलेंगे (और प्रणाम करते हैं)

रामचन्द्र जी—ए वानरराज! आप को भी पम्पापुर छोड़े बहुत दिन होगये और यह भी मैं जानता हूं कि जब तक मैं न कहूंगा, आप मुझे न छोड़ेंगे। इस लिये मैं आप को भी विदा करता हूं ॥

सुग्रीव जी—(हाथ जोड़ खड़े हो) 'जो आज्ञा' कह, बैठ जाते हैं ॥

रामचन्द्र जी—ए राक्षसेन्द्र! आपकी भी लङ्कापुरी कुछ काल से सूनी है और अब यहां कोई काम काज भी नहीं कि जिस में आपका मन लगे और

यह सब राजे महाराजे भी अपनी २ राजधानी को जाते हैं, इस लिये आप भी अब लङ्का देखें और इन कपीश्वरों व नरेश्वरों से प्रीतिपूर्वक बर्त्ताव रक्खें जिस से यह लोग आप की लङ्कापुरी में आते जाते रहैं और आप की नवता बढ़ती रहे ॥

बिभीषण जी—(हाथ जोड़) बहुत अच्छा जो आप की आज्ञा । ऐसा ही होगा । (यहां तक कि सब को अलग २ बड़े प्रेम से बिदा किया और आप सुखपूर्वक रहने लगे)

सीता-वनवास

थोड़े दिन पीछे सीतासहित अशोकवाटिका में विश्राम किया । जब शरद ऋतु आई और ठण्ड भी पड़ने लगी तो श्री रामचन्द्र जी सीता जी सहित बड़ी प्रसन्नता से अशोकवाटिका में रहने और आनन्द करने लगे । परमात्मा की कृपा से अब श्रीमती सीता महारानी को गर्भ स्थित हुआ ॥

रामचन्द्र जी—(बड़े प्रसन्न हो) ए सीता जी ! बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ, बड़ी प्रसन्नता का समय है कि तुम को गर्भ रहा । अब परमात्मा शीघ्र ही आप को सन्तान देगा और आप सन्तान का सुख भोगेंगी । अब तुम इस दशा में क्या चाहती हो, जो आप की इच्छा हो पूरी की जायें ॥

जानकी जी—(मुस्कराकर) ऐ राघव ! बड़े तेजधारी गङ्गातीरवासी ऋषियों के पवित्र आश्रम देखने की इच्छा है और फलमूल खाने वाले उन ऋषियों की सेवा करने का मनोरथ है । यही हमारी इच्छा है और तो कोई आप की कृपा से इच्छा नहीं । कुछ वे लोग अधिक तो हैं ही नहीं जो आप एक रात को भी आज्ञा दे दें तो बहुत ही अच्छी बात है ॥

रामचन्द्र जी—बहुत अच्छा, ऐसा ही किया जायगा और कल सवेरे ही तुम्हारे तपोवन के जाने का प्रबन्ध होगा और निश्चय है कि कल ही तुम तपोवन देख सकोगी । यह कह महल से निकल राजमन्दिर में चले आये । (अब दूत राजमन्दिर में बैठे हैं और बहुत अच्छी २ बातें सब राज्य की सुना रहे हैं) ॥

रामचन्द्र जी—(भद्र दूत से) अच्छा कहो राज्य में आजकल लोगबाग क्या २ बात चीत कर रहे हैं और हमारे लिये लोगों का कैसा विचार है और सीता जी के लिये क्या कहते हैं और भरत व लक्ष्मण शत्रुघ्न के लिये क्या २ बातें कही जाती हैं और केकयी के लिये मनुष्य क्या २ कहते हैं और शेष हमारी सब माताओं के विषय में मनुष्यों की कैसी सम्मति है । जो तुम

यह कहो कि किस की शक्ति जो राज्य के विषय में कुछ कह सके? सो यह वृथा है,क्योंकि वनवासी व राज्यवासी राजाओं के जो कुछ आचरण पाते हैं उन को वैसा ही कहते हैं,इस लिये राजाओं को उचित है कि उन का ध्यान करें॥

भद्र-(हाथ जोड़) राजा! सब पुरवासी अच्छी ही बातें कहते हैं,प्रथम तो आप के लङ्का जीतने के वृत्तान्त कहते हैं और शेष राज्य का यश वर्णन करते हैं॥

रामचन्द्र जी—अच्छा बतलाओ, यह लङ्का जीतने का वृत्तान्त मनुष्य किस रीति से कहते हैं? चाहे वह अच्छा कहते हों चाहे बुरा, तुम ब्यौरेवार वर्णन करो कि किस रीति से बात चीत करते हैं। उस में से जो अच्छा होगा उस को हम स्वीकार करेंगे और बुरे को हम छोड़ देंगे।तुम निर्भय हो बतलाओ, और यह भी सोच लो कि हमारा कुशल चाहने वालों की भी बात कहो और बुरा चाहने वाले व अपराधियों की भी बातें वर्णन करो॥

भद्र—(हाथजोड़) राजन्! चौक में बाजारों में वन और उपवन में भला या बुरा जो कुछ पुरवासी कहते सुनते हैं वह यह है। वे कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने बड़ा दुष्कर कर्म किया जो समुद्र में सेतु बांधा। ऐसा कर्म तो आज तक देवता गन्धर्व राक्षस और दैत्यों ने भी नहीं किया और सेना व कुटुम्बसहित रावण को भी मारा और वानर रीछ राक्षसों को अपने आधीन कर लिया और रावण को रणभूमि में मार, सीता जी को ले आये। यह सब कार्य तो रामचन्द्र जी ने अच्छे किये परन्तु नहीं कह सकते कि उन्होंने सीता जी का घर में रखना कैसे अङ्गीकार किया। उन सीता जी को तो अपने बल से गोद में बिठाल रावण लङ्का को लेगया था और वहां अशोक-वाटिका में कुछ काल तक ठहराया और बहुत दिनों तक सीता जी राक्षसों के वश में रहीं। फिर उन से रामचन्द्र जी क्यों प्रीति करने लगे। अब जो कोई हमारी स्त्रियों को भी चुरा या भगा कर ले जायेगा तो हमें भी घर में रखनी होंगी क्योंकि जिस मार्ग को राजा अङ्गीकार करते हैं वही प्रजा को भी करना होता है। महाराज! नगरवासी और गांव वाले कहीं २ ऐसा कहते हैं। कोई एक दो नहीं वरन अधिक लोग ऐसा कहते हैं॥

रामचन्द्र जी—(उदास हो, सब मनुष्यों से) आप लोग बतलावें कि भद्र सत्य कहते हैं या असत्य?

सब लोग—(हाथ जोड़,शिर झुका) श्री महाराज! भद्र का कथन ठीक है सब ऐसा ही कहते हैं, हमने भी कितनों से सुना है॥

रामचन्द्र जी–(सब को बिदा कर और फल सोच, थोड़ी देर पीछे द्वारपाल से) ए द्वारपाल ! सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी और महाभाग्यवान् भरत जी और शत्रुसूदन शत्रुघ्न जी को शीघ्र ही बुलाओ ॥

द्वारपाल—(हाथ जोड़, शिर पर रख, लक्ष्मण जी के महल में बिना रोक टोक जा, हाथ जोड़ लक्ष्मण जी से) ए महाराज ! आप को महाराजाधिराज देखा चाहते हैं, अब आप शीघ्र चलिये, विलम्ब न कीजिये ॥

लक्ष्मण जी—बहुत अच्छा चलते हैं (और रथ पर चढ़ चल दिये)

द्वारपाल—(हाथ जोड़, भरत जी से) ए महाराज ! आप की सदा जय हो । आप को महाराजाधिराज देखा चाहते हैं ॥

भरत जी—("बहुत अच्छा" कह, आसन से उठ, पैदल ही चलदिये)

द्वारपाल—(शत्रुघ्न के महल में जा, हाथ जोड़) ए रघुश्रेष्ठ ! चलिये। आप को महाराज देखा चाहते हैं और लक्ष्मण जी और भरत जी पहिले जा चुके, आप भी शीघ्र चलिये ॥

शत्रुघ्न घबरा कर, आसन से उठ, तुरन्त चल दिये और द्वारपाल बहुत ही शीघ्र चल सब से पहिले आगया ॥

द्वारपाल—(हाथ जोड़) महाराजाधिराज ! सब राज कुमार आगये ॥

रामचन्द्र जी—(नेत्रों में जल भर) बहुत जल्द भाइयों को हमारे सामने लाओ, क्योंकि हम को प्यारे ही नहीं वरन प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं॥

द्वारपाल—ए महाराजकुमार ! आइये ॥

तीनों भाई हाथ जोड़े, प्रणाम कर, महल में आये । रामचन्द्र जी को कुछ नेत्रों में जल भरे बैठे देख, सब हाथ बांध खड़े होगये और रामचन्द्र जी की आखों से आंसू बहने लगे ॥

रामचन्द्र जी—(आसन से उठ, सब को छाती से लगा, आसन पर बिठाल) नरेश्वरों ! आप लोग ही हमारा सब धन हैं और आप ही हमारे प्राण हैं और आप ही का दिया हुआ राज्य हम पालते हैं और आप ही की सहायता से राजा बन रहे हैं और आप लोगों की शूरता व वीरता भी भलीभांति जानते हैं, क्योंकि आप लोग ज्ञानवान् हैं । अब आप लोग हमारे

प्रयोजन को ध्यान देकर सुनें ॥ (ये लोग शोच रहे हैं,परन्तु कुछ समझ में नहीं आता कि रामचन्द्र जी ने क्या आज्ञा दी)

रामचन्द्र जी—(बहुत दुःखित व उदासीन) आप लोग सदा प्रसन्न रहें। जैसी अयोध्यावासियों की सम्मति हमारे और सीता जी के बारे में है, वह सुन लीजिये । और मन पर कुछ ध्यान न लाइये । आजकल अयोध्या पुरी और सब राज्य में हमारी बड़ी भारी निन्दा होरही है, जो हमारे ऊपर भारी घाव का कार्य कर रही है, क्योंकि हम महात्मा इक्ष्वाकु जी के कुल में उत्पन्न हुवे हैं और सीता जी भी महात्मा जनक जी के कुल में उत्पन्न हुई हैं । और हे लक्ष्मण प्यारे ! तुम को तो सब ख़बर है ही कि किस भांति से दण्डकारण्य से रावण सीता जी को चुरा ले गया और उस को हमने मार भी डाला और यह भी जानते हो कि हमने लङ्का में ही यह शङ्का कर कहा था कि जब सीता जी १२ महीने तक लङ्का में रहीं तो हम कैसे अयोध्या को ले जायं। उस समय अपना सत्य दिखाने को सीता जी आग में बैठ गईं और सब देवता ऋषि मुनि लोगों ने सीता जी को पापरहित बतलाया और सब के सामने अग्नि ने हमारे हाथ में सौंपा था और हम भी अपने मन से सीता जी को सती और शुभाचरण वाली जानते हैं । इस लिये लङ्का से अयोध्या में ले आये ।अब अयोध्यावासियों का बुराई करना हमारे मन में बैठ गया । हम इस से डरते हैं और जानते हैं कि जिस की संसार में निन्दा हुई, वह संसार के रहने तक बुरा कहलावेगा और जिस की कीर्त्ति संसार में विख्यात नहीं,उस की निन्दा देवता लोग भी करते हैं,जो कि भाई की प्रशंसा जगत् में होती है । इस से महात्मा लोग वह कार्य करते हैं जिस से संसार में कीर्त्ति हो । और हम तो निन्दा के भय से यह राज्य तो क्या, आप लोगों को भी छोड़ने को तैयार हैं और सीता जी का छोड़ना तो बात ही क्या है, उन को तो छोड़ ही सकते हैं । इसी कारण आप लोग हम को इस शोकसागर में डूबा देखते हैं । भाई ! इस समय हम से अधिक दुःख में और कोई मनुष्य संसार में न होगा । इस लिये ए लक्ष्मण ! भोर ही सुमन्त से रथ मंगवाय,सीताजी को सवार कर,आप भी उन्हीं के साथ बैठ,हमारे राज्य

के किनारे पर छोड़ आओ और जगह नहीं। गङ्गा जी के दक्षिण तीर पर तमसा नदी के किनारे जो वाल्मीकि जी का आश्रम है और यह तमसा जो अयोध्या से सोलह कोश दक्षिण दिशा को है, यह नहीं वह दूसरी तमसा है कि जहां वाल्मीकि जी रहते हैं, वहां पर छोड़ आना। परन्तु तुम वाल्मीकि जी से न मिलना, नहीं तो वे तुम को भी वहीं ठहरा लेंगे। और यह हमारा कहना पूरा कर शीघ्र ही लौट कर चले आओ और इस विषय में आप लोग हम से कुछ न कहें, चुपके से चले जायं। हम आप को अपनी ही सौगन्द देते हैं कि अब आप इस में कुछ शोच विचार न करें और हमारे इस कहने को मानें, नहीं तो हम अप्रसन्न होंगे और जो कोई तुम लोगों में से हमें इस के विरुद्ध करने को कहेगा, उस को हम अपना वैरी जानेंगे। अब जो आप लोगों में से अपने को हमारे आधीन समझते हैं, वह हमारा यह कार्य पूरा करें, कि यहां से सीता जी को ले जायं। इस बात से सीता जी का भी मनोरथ पूरा होजायगा क्योंकि अब थोड़ी ही देर हुई, जब हमने सीता जी को गर्भवती जान, उन से पूंछा था कि क्या चाहती हो, उन्होंने उत्तर दिया कि गङ्गा किनारे के ऋषियों के आश्रम देखा चाहती हूं। हम ने कह दिया कि कल अवश्य देखोगी। बस उन की इच्छा भी पूरी हो जावेगी और हम भी इस निन्दा से बचेंगे (और आंखों में आंसू भर अपने भाइयों के साथ बैठे शोक से गरम श्वास लेने लगे। अब वह रात इसी शोच विचार में बीती और सवेरा हुआ)॥

लक्ष्मण जी—(बहुत उदास) ए सुमन्त! अतिउत्तम रथ शीघ्र चलने वाले घोड़ों का तैयार करो और उस पर सीता जी के बैठने के लिये अति सुन्दर बिस्तर लगा दो। हम महाराज की आज्ञा से बहुत जल्द सीता जी को तमसा पर ऋषि महर्षियों के आश्रम दिखाने ले जायंगे। बहुत जल्द रथ लाओ॥

सुमन्त—(बहुत जल्द आज्ञानुसार रथ तैयार कर) महाराज! रथ तैयार है, अपना कार्य आरम्भ कीजिये॥

लक्ष्मण जी—(सीता जी से) कल आप ने महाराज से कुछ कहा था, जिस को उन्होंने अङ्गीकार किया था। अब हम को आज्ञा दी है कि गङ्गा

किनारे ऋषियों के आश्रम पर सीता जी को लेजाओ। इस आज्ञानुसार तुम को वहां बहुत जल्द चलना चाहिये॥

सीता जी—(अपने मन में अतिप्रसन्न हो) वहां जाने की तो हमारी बड़ी इच्छा थी और हमने महाराज से निवेदन भी किया है (तुरन्त उठ, भांति २ के अमूल्य वस्त्राभूषण रत्नजटित इकट्ठे कर) यह सब मुनियों की स्त्रियों को देंगे॥

लक्ष्मण—('बहुत अच्छा' कह सब रथ पर रख लिये और सीता जी को रथ पर चढ़ा, रथ हंकवा दिया। मार्ग में-)

सीता जी—ए लक्ष्मण! इस समय हम बहुत कुशकुन देखती हैं। हमारी दाहिनी आंख फड़कती है और सब दाहिना अङ्ग कांप रहा है, दिल घबड़ाता है, बेचैनी हो रही है, सब पृथिवी सूनी २ जान पड़ती है। अच्छी बात हो कि तुम्हारे बड़े भाई प्रसन्न हों और हमारी सास भी अच्छी हों और प्रजा भी सब आनन्द से हो (और हाथजोड़, सब देवताओं को प्रणाम करती हैं)

लक्ष्मण—(प्रकट में, सीता जी को प्रणाम कर) देवि! परमात्मा भला करेगा (और सन्ध्या को गोमती पर आ, विश्राम करते हैं, सवेरे होते ही-)

लक्ष्मण—ए सुमन्त! जल्द रथ में घोड़े जोतो। आज हम गङ्गास्नान किया चाहते हैं॥

सुमन्त—(जल्द रथ जोत, हाथ जोड़) महारानी! जल्द रथ पर सवार हूजिये (और बहुत जल्द लक्ष्मणसहित सवार हो कर शीघ्रता से चल दोपहर के समय गङ्गा जी पर पहुंचे)

लक्ष्मण—(नेत्रों में जल भर, धाड़ मार रोने लगे)

सीता जी—(घबड़ा कर) ऐ लक्ष्मण! रोते क्यों हो? भला तुम हमारी इच्छा पूरी होने से क्यों उदास होते हो? यह प्रसन्नता का समय है, रोने का नहीं। हम जानते हैं कि तुम सदैव रामचन्द्रजी के पास रहते हो इस लिये तुम को शोक है। अभी तो तुम को केवल दो ही रात्रि बीती हैं तो भी शोक करते हो। हम को भी तो रामचन्द्र ऐसे ही प्यारे हैं परन्तु हम कुछ शोक नहीं करतीं, इस लिये तुम भी इस समय शोक न करो। अब हम को गङ्गा जी के उस किनारे पर लेचलो और तपस्वियों के दर्शन कराओ, हम उन सब को अमूल्य २ वस्त्राभूषण देंगे और नियमानुसार ऋषियों को प्रणाम कर एक रात

विश्राम के पश्चात् कुशलपूर्वक अयोध्या को लौट चलेंगे क्योंकि हमारा मन भी तो श्रीमान् महाराज के दर्शनों को जल्दी करता है ॥

लक्ष्मण—(आंसू पोंछ) नाव जल्दी लाओ ॥

मल्लाह—महाराज नाव तैयार है ॥

लक्ष्मण—(सीता जी समेत सवार हो) ए सुमन्त ! तुम रथसहित यहीं ठहरे रहो (और मल्लाह से) ए मल्लाह ! नाव चलाओ (अब नाव चल दी और दक्षिण किनारे पहुंची)

लक्ष्मण—(हाथ जोड़, रोते हुवे) आर्ये ! आप के यहां भेजने की जो भ्राता जी ने आज्ञा दी है वह तो हमारे हृदय में बाण मारा है, क्योंकि संसार हम को कहेगा कि वही लक्ष्मण हैं जो सीता जी को गङ्गा किनारे छोड़ आये इस समय जो हमारी मृत्यु होजाती तो हम बड़े प्रसन्न होते और मृत्यु से भी अधिक हम को कोई दण्ड होता तो भी अति प्रसन्न होते कि निन्दित कर्म करने को तो न भेजे जाते। हाय ! मेघनाद के सम्मुख शक्ति खाने पर जो मर जाते तो आज यह दिन न देखते। ए माता ! हमारे ऊपर कृपा कर कोई पाप न करना। ऐसा कहते, हाथ जोड़े, पृथिवी पर गिर पड़े)

जानकी जी—(उदास हो)ऐ लक्ष्मण ! यह क्या बात है ? समझा कर कहो हम कुछ नहीं जानतीं,परन्तु तुम को दुःखी देख बहुत घबराती हैं। भला महाराज प्रसन्न तो हैं, तुम को किस लिये महाराज ने भेजा है,जिस से तुम को इतना शोक है। कृपा कर हम से सब वृत्तान्त ब्यौरेवार कहो ॥

लक्ष्मण—(बहुत उदास हो, नीचा शिर किये, रोते हुवे) ए सीता ! दर्बार में महाराज तुम्हारे लिये निन्दित वचन सुन, क्रोध कर, हम को आज्ञा दे,आप महल में चले गये। तुम हमारे आगे सती ज्ञात हो चुकी हो और महाराज भी जानते हैं परन्तु निन्दा के भय से महाराज ने तुम को छोड़ दिया।अब आप को उस के विरुद्ध न करना चाहिये क्योंकि पति की आज्ञा-पालन आप को अवश्य कर्त्तव्य है। अब हम महाराज की आज्ञानुसार कठोर हृदय कर मुनियों के आश्रम के निकट तुम को छोड़ जायंगे। अब तुम्हारे लिये गङ्गा किनारे यह महर्षियों का अति मनोहर तपोवन ही रहने का स्थान है।

यहां रहना और कुछ बात शोक व क्लेश की न करना। इस के सिवाय तुम्हारे पिता जी के बड़े भारी मित्र वाल्मीकि जी भी यहीं रहते हैं। उन महात्मा के चरणों में उपवास करती, यहीं बसना॥

ए जानकी जी! जो तुम अपना पतिव्रत धर्म रक्खे, रामचन्द्र जी में ध्यान लगाये, मुनि की सेवा करोगी तो तुम्हारा सदैव कल्याण होगा।

जानकी जी—(बहुत दुःखी हो, पृथिवी पर गिर, रोती हुई बड़े शब्द से) ए लक्ष्मण! ब्रह्मा ने हमारा शरीर सचमुच दुःख ही उठाने को बनाया है। इस लिये यह शरीर दुःखों ही का समूह जान पड़ता है। हम नहीं जानते कि हम ने पहिले जन्म में कौन पाप किया और किस स्त्री को उस के पुरुष से न्यारा किया कि जिस के बदले यद्यपि हम सच्ची पतिव्रता हैं तथापि राजा ने हम को त्याग दिया। ए लक्ष्मण! जब पहिली बार हम यहां ठहरी हैं, तब भी रामचन्द्रजी के साथ होने पर दुःख ही पाती रहीं। ए प्यारे! जब रामचन्द्र जी के साथ ही हम को कष्ट पहुंचा तो अब अकेली कैसे मुनि के आश्रम पर बसेंगी और दुःख में फंस अपना दुःख किस से कहेंगी। मुनियों के आगे हम अपना क्या दोष बतलावेंगी। क्योंकि आज तक कोई पाप तो कियाही नहीं। हम नहीं जानतीं कि किस कारण महात्मा होकर भी श्रीमान् रामचन्द्रजी ने हम को छोड़ दिया। ए लक्ष्मण! हम अभी गङ्गा जी में डूब कर मर जांयगी। जिस से हमारे पिता व पति को हमारी निन्दा से बचने की प्रसन्नता मिले। ए लक्ष्मण! जैसी तुम को आज्ञा है, उसी के अनुसार करो। हम अभागिनी को यहां छोड़ दो। राजा की आज्ञा पूरी करो, परन्तु इतना हमारा कहना करो कि हमारी ओर से महाराज से कुशल पूछना और हमारा कुशल कहना और सब सासुओं से हमारा प्रणाम कह, सब वृत्तान्त कह देना कि निर्दोष सीता को वनवास दिया गया और जिस समय कि रामचन्द्र जी निश्चिन्त बैठे हों उस समय कहना कि ए राघव! जैसी सीता पतिव्रता हैं वह तो आप जानते हैं और आप के आधीन भी रहती हैं और प्रीति भी रखती हैं परन्तु निन्दा के भय से उस को त्याग दिया है। अच्छा जिस में आप की निन्दा हो, उस

को वह भी करना नहीं चाहती और कहती हैं कि आप ही तो हमारा जीवनमूल हैं। और महाराज से यह भी कहना कि गम्भीरता के साथ धर्म करते रहें। अपने भाइयों के समान पुरवासियों को समझते रहें, इस में बड़ी प्रशंसा होगी। आप पुरवासियों में एकसा वर्ताव रक्खें और हमारे कारण से कुछ कष्ट न पावें। आप की प्रसन्नता के आगे हम अपने शरीर को कुछ वस्तु नहीं समझतीं। माना कि निन्दा के कारण आप ने हम को त्याग दिया, परन्तु हम तो जानती हैं कि स्त्री का पति ही देवता और पति ही प्यारा और पति ही गुरु है, इस लिये स्त्री को उचित है कि जो अपने प्राण देने से पति का कार्य निकल जावे तो अपने प्राण भी पति के अर्पण करदे। ए लक्ष्मण! इसी भांति हमारी ओर से कहना और हम गर्भवती को तुम भी देख जाओ, महाराज को तो गर्भ का ब्यौरा ज्ञात ही है॥

लक्ष्मण—अति शोक के वश हो, शिर झुका, प्रणाम कर, कुछ कहने को थे कि शोक में न बोलसके और चिल्ला२ कर रोने लगे और मन में शोच, सीता जी का विचार कर, दो घड़ी में शान्तचित्त हो) ए माता! हम से ऐसा न कहो। हमने तो सिवाय चरणों के आप का मुख कभी नहीं देखा। फिर भला रामचन्द्र जी के पीछे तुम्हारी ओर कैसे देखें (और नमस्कार कर नाव पर चढ़, चलदिये और वार २ मुख फेर २ उन दुःखित सीता जी को देखते जाते थे कि नदी पर पहुंचे, सीता जी उस वन में कोई अपना सहायक न देख, बड़े शब्द से रोने लगीं। सीता जी को रोता देख, मुनियों के बालक वाल्मीकि जी के निकट पहुंचे और मुनि जी को प्रणाम कर)

बालक—ए मुनि महाराज! एक राजकुमारी वन में बड़े उच्चस्वर से रो रही है॥

दूसरा—ए भगवन्! आप भले प्रकार उस को देखें, वह तो आकाश से गिरी हुई देवता ज्ञात होती है और नदी किनारे बैठी रोरही है और वह तो कोई बड़ी देवता जान पड़ती है और जिस भांति रो रही है उस भांति रोने के योग्य नहीं। वह मुनियों की भांति रो रही है, हम उस को मनुष्य नहीं जानते। आप उस की सुध लें। देखिये वह आप के आश्रम के समीप ही तो है। अब आप ही उस के सहायक हैं और वह भी अपना सहायक ढूंढती है॥

वाल्मीकि जी—(तुरन्त सीता जी के पास को चल दिये और उन के चेले भी पीछे २ दौड़े और नद से जल ले, सीता जी को अचेत पृथिवी पर लोटती देख) ए पतिव्रता! तुम तो राजा दशरथ जी की पुत्रवधू, महाराजा रामचन्द्र जी की पटरानी और राजा जनक जी की पुत्री हो। भला प्रसन्न तो हो ? हमने तुम्हारा आना पहले ही अपने तपोबल से जान लिया और आने का कारण भी ज्ञात कर लिया और हम यह भी तपोबल से जानते हैं कि तुम गर्भवती हो। अब तुम हमारे आश्रम पर आनन्द से निस्सन्देह रहो। ए वैदेहि ! हमारे आश्रम के पास बहुत सी तपस्विनी तप करती हैं, वह अपने प्यारे की तुल्य तुम्हारी रक्षा करेंगी। अब यह जल लो और शोक दूर कर सन्तोष करो। जैसे कि अपने घर में सब मनुष्य प्रसन्न होते हैं, वैसे ही तुम भी अपना घर जान, शोक दूर करो ॥

सीता जी-(शिर झुकाय, मुनि को प्रणाम कर, 'बहुत अच्छा' कह, साथ होलीं और मुनि साथ लेकर तपस्विनियों के निकट आये)

तपस्विनी-(हाथ जोड़) ए मुनिराज ! आप अच्छे तो आये, आज तो बहुत दिन में आप ने कृपा की। हम सब आप को प्रणाम करतीं हैं, कहिये आप की क्या सेवा करें ?

वाल्मीकि जी—यह दशरथ जी की पुत्रवधू और महाराजा जनक जी की पुत्री पतिव्रताओं में शिरोमणि हैं, पाप का इन में लेश भी नहीं। परन्तु इन के पति ने इन का त्याग किया है और हम को इन की रक्षा करनी उचित है। इस लिये तुम लोग इन को बड़ी भारी प्रीति से रक्खो। एक तो इन के कुल से, दूसरे हमारे कहने से इन की सदैव प्रतिष्ठा करती रहो और (फिर सीता जी के साथ अपने आश्रम पर आये)

जब तक सीता जी को वाल्मीकि जी अपने आश्रम पर नहीं ले गये थे, तब तक लक्ष्मण जी ओट में दूसरे किनारे से देखते रहे। जिस समय कि वाल्मीकि जी अपने आश्रम को ले गये। तब लक्ष्मण जी उदास हो, चल दिये॥

लक्ष्मण-ए सुमन्त ! अब सीता जी का दुःख देखो, इस से अधिक दुःख रामचन्द्र जी को और क्या होगा कि धर्मात्मा पतिव्रता अपनी स्त्री को त्याग दिया। यह अच्छा नहीं किया। ए सूत ! दैव को किसी ने देखा नहीं। परन्तु

दैव ने ही भाग्य के वश यह दुःख रामचन्द्र जी को दिया। इसी से ए सुमन्त! भाग्य के विपरीत कोई कुछ नहीं कर सकता और रामचन्द्र जी तौ देवता, गन्धर्व, दैत्य और राक्षसों को क्रोध की दशा में मार सकते हैं। परन्तु वे भी तौ भाग्य के ही भरोसे पर बैठे हैं, कुछ भी नहीं करते। देखो पहिले भी भाग्य के भरोसे पर चौदह वर्ष तक श्री रामचन्द्र जी वन में वसे, परन्तु इस से अधिक यह और शोक हुवा कि सीता जी को विना अपराध पुरवासियों की साधारण चर्चा पर त्याग दिया। यह कर्म उन का मुझ को तौ बहुत बुरा जान पड़ा। भला ऐसा करने से उन को कौन धर्मात्मा कहेगा?

सुमन्त—ए लक्ष्मण! सीता के विषय में तुम को शोक न करना चाहिये, क्योंकि यह वनवासादि, रामचन्द्र के इस वनवास से पहिले ही ब्राह्मणों ने तुम्हारे पिता जी को बतला दिये थे और कह दिया था कि जब वे अपने प्यारों से अलग भी हो जायंगी तब भी सुहागन ही बनी रहेंगी और भाग्य क्या, जब समय आवेगा तब तुम को और भरत और शत्रुघ्न को भी रामचन्द्र जी त्याग देंगे, परन्तु यह बात अभी भरत से न कहना। यह दुर्वासा जी ने आप के पिता जी से कही थी और उन से अकेले ही में नहीं कही, वरन हमारे और बहुत से महाजनों और वसिष्ठ जी के आगे कही थी। ऋषि के वचन सुन राजा दशरथ ने हम से कहा था कि किसी से न कहना। सो हम दशरथ जी की आज्ञा के विरुद्ध न करेंगे, हम तुम से भी न कहेंगे। परन्तु जो तुम को सुनने की इच्छा है तौ अवश्य कह देंगे। माना कि राजा ने कहा था कि किसी से न कहना, परन्तु भाग्य बड़ा बलवान् है, वह अपना कर्म करा ही लेता है। जिस कारण यह वनवास का दुःख तुमने और सीता जी ने व रामचन्द्र जी ने पाया, वह भरत शत्रुघ्न से न कहना॥

लक्ष्मण-ए सुमन्त! इस को व्यौरेवार कहो॥

सुमन्त—ए लक्ष्मण! जब तक रामचन्द्र जी वन को न गये थे, उस से पहिले वसिष्ठ जी के आश्रम पर महात्मा अत्रि जी के पुत्र दुर्वासा जी एक वर्ष तक रहे और जब ही तुम्हारे पिता जी वसिष्ठ जी के दर्शन को गये। वहां वसिष्ठ जी की बाईं ओर दुर्वासा जी को देख, महाराज ने साथ ही दोनों की बड़ी सेवा की और मूल फल खाने को दिये और दुपहर के समय निश्चिन्त बैठ, उत्तम २ कथा कहने लगे। इसी बीच में महाराजा ने दुर्वासा जी से कहाः—

राजा दशरथ जी— भगवन् ! हमारा कुल कैसा होगा और रामचन्द्र की क्या अवस्था होगी, और तीनों पुत्रों की कितनी २, और रामचन्द्र के पुत्रों की कितनी २। कृपा कर हम को हमारे वंश का वृत्तान्त बतला दीजिये ॥

दुर्वासा—राजन् ! जब पहिले देवासुर संग्राम हुआ था तो देवताओं से हार दैत्यलोग भृगु जी की स्त्री के शरण में गये थे । उन्हों ने उन को अभयदान दे दिया, इस लिये राक्षस निर्भय हो वसने लगे । उस समय श्री विष्णु जी महाराज ने बड़ा क्रोध किया और अपने सुदर्शनचक्र से भृगु जी की स्त्री का शिर काट डाला, उस पर भृगु जी ने विष्णु जी को शाप दे दिया कि तुम ने जो क्रोध में हमारी स्त्री को मार डाला है इस लिये तुम मनुष्य होगे और वहां बहुत दिन तक तुम को भी स्त्री का वियोग होगा परन्तु तपोबल की न्यूनता से भृगु जी बहुत दुःखित हो गये और विष्णु जी की बहुत तपस्या करने लगे तब विष्णु जी ने कहा—अच्छा हम रावण के वध करने को जन्म लेंगे । राजन् ! अब वे विष्णु अयोध्या में आकर तुम्हारे पुत्र हुवे हैं, जो रामचन्द्र नाम से विख्यात हैं और बहुत दिन तक स्त्री का शोक भुगत अयोध्या का राज्य करेंगे और जो लोग उन की प्रतिष्ठा करेंगे वे प्रसन्न रहेंगे और बहुत बड़ी उन की आयु होगी, फिर देवलोक को जायंगे और बहुत उत्तम २ अश्वमेधादि यज्ञ कर बहुत से राजकुल नियत करेंगे और रामचन्द्र जी के सीता जी से दो पुत्र होंगे ॥

(यह सुन राजा प्रणाम कर अपनी पुरी को चले आये)

सुमन्त—ए लक्ष्मण ! हम जानते हैं कि दुर्वासा के वचन झूंठे न होंगे और पीछे से सीता जी के ही पुत्रों को रामचन्द्र जी अयोध्या का राज्य देंगे और जब यह बात होने वाली है तो तुम क्यों शोक कर उदास होते हो । आप निश्चय कर प्रसन्न हूजिये ॥

लक्ष्मण प्रसन्न हो " बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" कहने लगे । यहां तक कि संध्या हो गई और केशनी नदी के किनारे बस, प्रातः ही फिर चल दिये और दोपहर को अयोध्या में पहुंचे। अब लक्ष्मण सोच करने लगे कि रामचन्द्र जी से जाकर क्या कहेंगे । यह विचार ही कर रहे थे कि राममन्दिर में पहुंचे और उठकर नीचा शिर किये महल में चले गये तो दोनों आंखों में आंसू भरे रामचन्द्र जी को देखा)

लक्ष्मण—(पांव पकड़े, हाथ जोड़) महाराज ! हम आप की आज्ञा से

वाल्मीकि जी के उत्तम आश्रम पर सीता जी को छोड़ आप की सेवा के लिये फिर यहां आये हैं और परमशुभाचरणा सीता जी को मुनि जी अपने आश्रम पर ले गये। ए पुरुषसिंह! अब सोच न कीजिये। काल की गति ऐसी ही है। आप से विद्वान् लोगों को कुछ सोच न करना चाहिये। यह सब चीज़ें कभी न कभी नाश को प्राप्त होती ही हैं और सब उन्नति सदैव न्यूनता पाती हैं और सब संयोगों का वियोग अवश्य होता है और जीवधारी कभी न कभी मरता है। इस से विद्वान् को उचित है कि पुत्र स्त्री मित्र व धन सम्पत्ति में अधिक प्रीति न बढ़ावे, क्योंकि अवश्य यह छोड़ने होंगे। राजन्! आप तो आप ही अपने को समझा सकते हैं। आप को शोक कैसे हो सक्ता है। इन कामों में आप से लोग प्रीति नहीं किया करते। आप जो ऐसा करेंगे तौ वह दोष फिर लोग बाग आप को देवेंगे, जिस दोष के भय से आपने सीता जी को छोड़ा है। इस में कुछ सन्देह न कीजिये। ए पुरुषसिंह! निश्चय दृढ़ता के साथ यह दशा बदल दीजिये॥

रामचन्द्र जी—(प्रसन्न हो) ए वीर! ए लक्ष्मण! तुम सत्य कहते हो और हमारी आज्ञापालन जो तुम कर आये इस से हम अति प्रसन्न हुवे और तुम्हारे समझाने से हम को संतोष भी आगया और सोच भी जाता रहा और सब प्रकार हम समझ भी गये॥

वाल्मीकि जी का आश्रम

अब वाल्मीकि जी सीता जी को ले गये और अलग पर्णशाला तपस्वियों के बीच में बना दी और प्रतिदिन उत्तम २ कहानियां सुनाया करते और यही प्रबन्ध रखते कि सीता जी को दुःख न हो। सीता जी वाल्मीकि जी को 'पिता' कहा करतीं और वाल्मीकि जी सीताजी को 'पुत्री' कहा करते। सज्जन पुरुष ऐसा विचार करेंगे कि वाल्मीकि जी का ऐसा वर्त्ताव सीता जी से क्यों था। इस का वृत्तान्त भी प्रकट करने से अवश्य शंका निवारण होगी। सज्जन पुरुषो! राजा जनक और वाल्मीकि जी में भाईपने का वर्ताव था और एक समय में दोनों अपने को भाई २ कह चुके थे। इस लिये दोनों भाई पना समझते थे और रामचन्द्र जी ने भी यह समझ सीता जी को वाल्मीकि जी के आश्रम पर छोड़ दिया था। एक दिन की बात है—

वाल्मीकिजी—पुत्री! तुम सुखपूर्वक रहो। तुम्हारे पुत्र तुम को आनन्द देंगे।

सीता जी—पिता जी ! आप के आश्रम पर दुःख ही क्या है, परन्तु एक शोच है, वह मेरा दूर करदीजिये ॥

वाल्मीकि जी—वह क्या है ?

सीता जी—मैंने इस जन्म में कोई पाप नहीं किया, फिर मुझे यह दुःख क्यों भोगना पड़ा ?

वाल्मीकि जी—(हंस कर) आहा बेटा ! अपने पिछले जन्म की कथा सुनना चाहती हो। अच्छा सुनो, हम सुना सकते हैं ॥

सीता जी के पिछले जन्म का वृत्तान्त

वाल्मीकि जी—ए सीता ! प्रहस्त जी के कुशध्वज नाम बड़े धर्मात्मा और तपस्वी पुत्र हुवे। उन के एक कन्या उत्पन्न हुई, वह बड़ी रूपवती और शुद्ध आचरण वाली थी। देवता, गन्धर्व,यक्ष,राक्षस सब उस की इच्छा करते थे। एक दिन कुशध्वज से जा सब ने मांगा ॥

कुशध्वज—भाई ! इस कन्या का तो हम विष्णु जी से विवाह करेंगे ॥

शम्भुदैत्य-ए कुशध्वज ! तुम यह कन्या हमको देदो, नहीं तो हम तुम को मार डालेंगे और कन्या को तो अपनी पुत्री समझें होंगे ॥

कुशध्वज-(क्रुद्ध हो) जाओ, हम नहीं देंगे ॥

एक दिन कुशध्वज को शम्भु दैत्य ने रात्रि के समय मार डाला और उस की स्त्री साथ ही सती होगई और मुनियों ने उस कन्या का पालन किया। जब वह कन्या स्यानी हुई तो उस ने अपने पिता का प्रण पूरा करने को श्री विष्णु जी से विवाहार्थ तप आरम्भ किया और हिमालय पर्वत पर भारी तप करने लगी ॥

एक दिन रावण फिरता हुआ उधर जा निकला और कन्या को तप करते देख, उस पर मोहित होगया ॥

रावण-(हंसकर) ए भद्रे ! यह तरुण अवस्था में शास्त्रविरुद्ध तुम क्या कर्म करती हो ? तुम तो बड़ी रूपवती हो, तुम को ऐसा काम करना ठीक नहीं। तुम्हारे रूप को देख सब मोहित होजाते हैं। तुमको तपकरना ठीक

नहीं, इस को छोड़दो। ए भद्रे! तुम किस की कन्या हो? तुम्हारा पति कौन है? जो तुम्हारा पति है या होगा वह धन्य है और तुम तप क्यों करती हो? तुम अपना वृत्तान्त ब्यौरेवार बतलाओ॥

वेदवती-हमारे पिता जी कुशध्वज प्रहस्त जी के पुत्र थे। उन को शम्भु दैत्य ने मारडाला, क्योंकि पिता जी हमारा विवाह विष्णु जी से किया चाहते थे। इस लिये हम भी विष्णु जी के अर्थ तप कर रही हैं और उन को पति चाहती हैं और हम ने अपने तप से तुम को भी जान लिया। राजन्! तुम पुलस्त्यवंशी रावण हो। अब आप यहां से जाइये॥

रावण-ए मृगनयनि! तुम रूप के अभिमान से योग्य अयोग्य का विचार नहीं करतीं। तपस्या बुढ़ापे में होनी चाहिये नकि युवा अवस्था में। किस लिये कि तुम्हारी तरुणावस्था है, तुम को ऐसा कहना न चाहिये। देखो हम लङ्का के राजा हैं, रावण हमारा नाम है। तुम हमारी रानी बनो और सब प्रकार के सुख भोगो। वह विष्णु कौन है जिस का तुम तप करती हो? वह कभी हमारे सामने नहीं आ सकता॥

वेदवती-ख़बरदार ऐसा न कहना। ए राक्षसेन्द्र! तुम्हारे सिवाय कोई विद्वान् ऐसा नहीं कह सकता और न विष्णु जी की निन्दा कर सकता है॥

रावण-(क्रोध में वेदवती के बाल पकड़, अपनी ओर घसीटता है)

वेदवती-(क्रोध में आ, रावण के हाथ से अपने बाल छुड़ा, आग जला) राजन्! तुमने पुरुष होकर हमारे बाल छुये। इस लिये अब हम जीती नहीं रह सकतीं और तुम्हारे सामने ही आग में बैठती हैं। ए पापी! तुम्हारी मृत्यु के लिये हम फिर उत्पन्न होंगी, जो शाप देवें तो तप घट जायगा। इस लिये (और शोचकर) दूसरे के हाथ से तुम्हारी मृत्यु करा देंगे और (अग्नि से) हे अग्नि! जो हम धर्मात्मा व सती हैं तो किसी राजा के अयोनिजा उत्पन्न हों (और अग्नि में बैठ गईं)॥

ए सीता! तुम वही वेदवती हो। बस जो तुमने प्रण किया था वह पूरा होगया। अर्थात् तुम्हारा शत्रु मारा गया और तुम्हारा पिछला तप भी बन रहा है। तुम को तो याद भी नहीं रहा, परन्तु वह ज्यों का त्यों है। बस तुम को शोच छोड़, अपना तप पूरा करना चाहिये। इस तुम्हारे भाग्य में रामचन्द्र जी का कुछ दोष नहीं। सब पिछले तप का फल है कि जो तुम्हारा मनोरथ पूरा कर, तुम को तप करने के लिये लाचार कर रहा है॥

सीता—(अति प्रसन्न हो) पिता जी ! आप ने बड़ी कृपा की, जो मेरे पिछले जन्म का वृत्तान्त सुना दिया । अब मैं किसी प्रकार ग्रहस्थ ग्रहण न करूंगी और यहीं रह, तप कर, अपनी अवस्था पूरी करूंगी (यहां तक कि गर्भ के दिन पूरे होने पर सीता जी के दो पुत्र जोड़िया उत्पन्न हुवे)

चेला-गुरु जी ! सीता जी के दो पुत्र जोड़िया उत्पन्न हुवे हैं । अब आप चल कर नान्दीमुख श्राद्ध कीजिये ॥

मुनि जी-('बहुत अच्छा' कह, पर्णशाला में पहुंच, बड़े प्रसन्न हो, और बड़े लड़के का कुशा की फुलक से और छोटे का कुशा की जड़ से मार्जन कर) इस बड़े का नाम 'कुश' और छोटे का नाम 'लव' होगा । (अब तपस्विनी सीता जी की रक्षा करने लगीं और लड़के दिन दिन बढ़ने लगे और वाल्मीकि जी आप उन को पढ़ाते रहे और सीता जी बड़ी प्रसन्नचित्त उस पर्णशाला में रहने लगीं । कभी अयोध्या या राजा जनक जी के छूटने का विचार भी मन में न लातीं) ॥

अश्वमेध यज्ञ

दरबार लगा है । महाराज रामचन्द्र जी सिंहासन पर विराजमान हैं । भरत व लक्ष्मण व वसिष्ठ जी अपने २ उचित आसनों पर बैठे हैं ॥

रामचन्द्र जी–ए लक्ष्मण ! तुम युवराज पदवी ग्रहण कर, कुछ राज काज देखो, जिस से कि हम को भी कुछ सुख मिले ॥

लक्ष्मण जी—(हाथ जोड़) महाराज ! मैं तो दासकर्म अच्छा जानता हूं । श्रीमान् भरत जी इस पद के योग्य और चौदह वर्ष तक राज्य पालन भी कर चुके हैं, आप को युवराज पदवी दीजिये ॥

रामचन्द्र जी–अच्छा भरत जी ! आप युवराज पदवी ग्रहण करें क्योंकि काम तो आप करते ही हैं फिर सब राजा महाराजा यह जान लेवें कि तुम युवराज हो । आप इस को ग्रहण करें । जो नाह करेंगे तो हम अप्रसन्न होंगे॥

भरत—(हाथ जोड़) जो आज्ञा ॥

अब युवराजतिलक का प्रबन्ध हुवा और बड़ी धूमधाम से भरत जी का का युवराजतिलक किया गया और रामचन्द्र जी ने इतना दान दिया कि अयोध्या तो क्या राज्यभर धनाढ्य हो गया और कुछ दिन तक रामचन्द्र जी राज्य करते रहे । एक दिनः—

रामचन्द्र जी—ए भरत ! हमारी राजसूय यज्ञ करने की इच्छा है ॥

भरत जी—(हाथ जोड़) महाराज! जो आज्ञा, परन्तु सब लोग आनन्द कर रहे हैं और राजा लोग भी आपस में शत्रुता त्याग, नियमपूर्वक राज्य पाल रहे हैं। किसी को किसी से द्वेष नहीं। इस लिये आप राजसूय यज्ञ कर, राजा लोगों को क्यों मरवाना चाहते हैं? मैं तौ कुछ युद्ध के भय से नांह नहीं करता। वरन विना कारण मारे जाने के भय से ऐसा कहता हूं। जो आप की यज्ञ ही करने की इच्छा है तौ अश्वमेध यज्ञ कीजिये ॥

रामचन्द्र जी-(हंस कर) भरत! निश्चय तुम बहुत ठीक कहते हो, राजसूय यज्ञ में तौ अवश्य लोग मारे जायेंगे और विना कारण मरवाना बुद्धि, न्याय और धर्म के भी विरुद्ध है। अच्छा लक्ष्मण! बोलो क्या सलाह है ॥

लक्ष्मण-(हाथ जोड़) महाराज! मेरी समझ में भी राजसूय यज्ञ उचित नहीं, अश्वमेध यज्ञ अच्छा है और अश्वमेध का माहात्म्य भी अधिक है। इस लिये अश्वमेध ही कीजिये ॥

रामचन्द्र जी—अच्छा तौ वसिष्ठ वामदेव जावालि कश्यप आदि ऋषि और अश्वमेधकर्त्ता ब्राह्मणों को बुलाइये और सब से सम्मति कर नियमानुसार घोड़ा छोड़, अश्वमेध यज्ञ का प्रारम्भ कर दीजिये ॥

लक्ष्मण जी-(सब ऋषि ब्राह्मणों को बुला) महाराज! ये ऋषि व ब्राह्मण आये हैं ॥

रामचन्द्र जी—(खड़े हो, प्रणाम कर) आइये महाराज! विराजिये (और आसन देते हैं)

ऋषि लोग—(आशीर्वाद दे, आसनों पर बैठ) श्री महाराज! कैसे याद किया है?

रामचन्द्र जी—महाराज! हमारी इच्छा अश्वमेध यज्ञ करने की है ॥

ऋषि लोग—बहुत उचित है, अश्वमेध यज्ञ भी बड़ा श्रेष्ठ यज्ञ है, अवश्य कीजिये ॥

रामचन्द्र जी—ए लक्ष्मण! सुग्रीव जी के बुलाने को दूत भेजो और लिख दो कि हनुमान्, अङ्गद, जाम्बवान्, नल नील, द्विविद, मयन्द, सुसेन

व तारा और सब वानरों सहित यज्ञ देखने आवें । राजा बिभीषण को लिख दो कि सब सर्दार राक्षसों व मन्दोदरी सहित यज्ञ देखें और राजा केकयराज और जनक व गुह और सब राजे महाराजों को ख़बर कर दो कि अपने कुटुम्ब सहित यज्ञभूमि देखें । सब देश देशान्तरों के ब्राह्मण व यज्ञकर्त्ता और ऋषि मुनियों को ख़बर कर दो कि सब यज्ञ देखने आवें। सब गाने बजाने वालों को ख़बर कर दो कि यज्ञशाला में पहुंचें। गोमती किनारे नैमिषारण्य के ऋषि मुनियों को ख़बर कर दो कि यज्ञ में आवें । यह यज्ञ नैमिषारण्य में होगा क्योंकि नैमिषारण्य के ब्राह्मण व ऋषि लोग पहिले से बहुत से अश्वमेधयज्ञ कराते रहे हैं, इस लिये उन को अवश्य ख़बर कर दो कि यज्ञ में आवें । दूत बहुत गुणी २ भेजे जावें, क्योंकि उन को मार्ग भी अधिक चलना होगा और न्यौता भी जगह २ देना होगा । कहीं ऐसा न हो कि किसी को ख़बर न देवें । रसद भी पूरी २ पहुंचा दी जावे । कोश भी सब कोशाध्यक्षसहित पहुंचाया जावे । प्रथम भरत जी चतुरङ्गिणी सेना-सहित जावें । बाज़ार अति उत्तम विधि से लगाया जावे । शत्रुघ्न मथुरापुरी से बुलाये जावें । डेरों का प्रबन्ध किया जावे । सब माताओं को ख़बर देदी जावे । अर्थात् प्रबन्ध में किसी भान्ति कमी न हो और किसी को चर्चा का अवसर न मिले ॥ (लक्ष्मण 'बहुत अच्छा' कह, चल दिये)

भरत नौकरों सहित नैमिषारण्य में पहुंचे । मध्य में यज्ञ स्थान बनाया और चारों ओर चौसर समान विश्राम का स्थान बनाया गया । एक ओर राजा सुग्रीव आदि वानरों के ठहरने के लिये दुहरे डेरे खड़े किये गये। दूसरी ओर राजा बिभीषण और उन के आधीन राक्षसों के लिये दुहरे डेरे लगाये गये । तीसरी ओर श्रीमान् रामचन्द्र जी के कुटुम्ब व नातेदारों के ठहरने के लिये नियत किये गये । चौथी ओर महमान राजा महाराजों का प्रबन्ध हुआ और चारों कोनों पर चार बाज़ार अलग २ चौसर के बना दिये गये । उन में एक ओर आटा दाल आदि जिन्सों के बाज़ार थे । दूसरी ओर मिठाई पक्वान्न का प्रबन्ध था । तीसरी ओर शाक भाजी आदि वस्तुएं मिलतीं थीं । चौथी ओर बाक़ी सब प्रकार की दुकानें थीं । यह चारों बाज़ार चारों कोनों पर बड़ा आनन्द दिखा रहे थे । एक ओर तो यह प्रबन्ध हुआ और दूसरी ओर ऐसा ही चौसर का स्थान यज्ञकर्त्ता व याचक लोगों के लिये बनाया गया । वहां पर फूंस व लकड़ी की भींत और फूंस के छप्पड़ बनाये

गये थे। उत्तर दिशा में राजा लोगों के स्थान थे। दक्षिण दिशा में ऋषि लोगों के, पश्चिम दिशा में यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों के लिये, पूर्व दिशा में याचक और ब्राह्मणों के लिये, जिन में से ऋषि मुनि व यज्ञकर्त्ताओं के लिये झोपड़ियों के आगे छोटी २ यज्ञशाला बनाई गईं थीं और मध्य में यज्ञ व अग्निहोत्र की सामग्री का ढेर लगा दिया गया था। सब दुकानदार व कामदारों को आज्ञा थी कि जिस राजा महाराजा या ब्राह्मणों की ओर से जिस वस्तु की माग आवे, तुरन्त पूरी की जावे। दीन याचक से कोई नाह न करे। सब लोग अपना हिसाब प्रतिदिन पहुंचाकर मूल्य कोशाध्यक्ष से ले आया करें। किसी वस्तु का मूल्य किसी से न लिया जावे। सब राजा महाराजा ऋषि मुनियों से ख़बर कर दी जावे कि प्रथम तो सब समान कोठारी पहुंचा ही देगा। जो किसी प्रकार की कमी हो या यज्ञसमय के कारण किसी के पास कोई वस्तु न पहुंच सके तो अपने २ बाज़ारों से आदमी भेज कर मंगा लिया करें क्योंकि यज्ञ का कार्य अवश्य करना है। हां आपलोगों का सत्कार भी हमारा धर्म है और जहां तक हो सकेगा आदर में कमी न होगी। परन्तु यज्ञ का कार्य सब से मुख्य है। बाज़ार के मुखिया महाजनों को आज्ञा देदी गई थी कि प्रातःकाल अपने २ निकट के डेरों पर जाकर पूंछ आवें कि किसी के यहां कोई वस्तु पहुंचने को तो नहीं रही. जो कहीं न पहुंची हो तो बाज़ार से तुरन्त पहुंचा दें। सब डेरों के समीप तख़्ते पर नाम लिखा कर लगा दिये गये, जिस से किसी को पूंछना न पड़े। प्रत्येक कार्यों के अलग २ कामदार और नौकर नियत कर दिये गये और आज्ञा देदी गई कि दोनों समय अपना २ कुशल बोला करें। अब महमानों का प्रबन्ध तो भरत व शत्रुघ्न व सुग्रीव व बिभीषन व हनुमान् व अङ्गद व गुह व युधाजित ने अपने ऊपर लिया और घोड़े की रक्षा लक्ष्मण जी को सौंपी गई॥

श्रोतृगण! ऐसा प्रबन्ध किया गया कि किसी मनुष्य को कहने को जगह न रही। भूमण्डल में कोई राजा महाराजा ऐसा न था कि जो यज्ञ में न आया हो। सब राज्य पाट ख़ाली थे। ऋषि मुनि सब अपने २ आश्रम छोड़ यज्ञ में चले आये थे। राक्षस लोग भी अपनी २ जगह छोड़ तमाशा देखने आ गये थे। जो व्यौरेवार लिखा जाय तो एक पूरा ग्रन्थ तैयार होता है। परन्तु वक्ता ने केवल सीता महारानी का वृत्तान्त वर्णन करने का प्रण किया है। इस लिये वह ऐसे स्थान पर अधिक बढ़ाव करना नहीं चाहता॥

रामचन्द्र जी–भाई भरत ! कल से यज्ञारम्भ होगा। आज से ऐसा प्रबन्ध कर दो कि राजा लोगों के चारों स्थानों और ऋषि मुनियों के चारों स्थानों और आठों बाज़ारों में दान दिया जावे और दान थोड़ा नहीं, इतना दिया जावे कि याचक लोगों को दूसरे मांगने की इच्छा न रहे। उचित तो यही है कि इस कार्य पर वानर लोग नियत किये जावें, क्योंकि उन को धन रत्न पैसा रुपया सब बराबर हैं। वे इन्हें समान जानते हैं। नल नील द्विविद मयन्द जाम्बवान् ऋषभ आदि दान देवें। दान केवल नक़दी ही न दी जावे। जिस को वस्त्रों की आवश्यकता हो उस को वस्त्र, जिस को भोजन की हो उस को भोजन, जिस को गहने की हो उस को गहना और जिस को नक़दी की हो उस को नक़दी दी जावे॥

भरत—बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा (और प्रबन्ध करते हैं)

रामचन्द्र जी—भरत जी ! यज्ञशाला का क्या प्रबन्ध किया ?

भरत जी–(हाथ जोड़) महाराज ! एक ओर स्त्रियों और दूसरी ओर पुरुषों के लिये स्थान नियत किया गया है क्योंकि सब लोग आनन्दपूर्वक यज्ञ देखें। सब मनुष्यों की जांच कर पृथक् २ स्थान बना, सब के लिये नियत करा दिये गये हैं और चित्रकार को नक़शा बनवा कर भलीभान्ति समझा दिया गया है कि नक़शे के अनुसार प्रत्येक मनुष्य बिठाले जायं। दो २ मनुष्यों के बीच में छोटी २ गली बनादी हैं, जिस से आने जाने में कुछ श्रम न हो और स्थान यथोचित नियत किये हैं और साधारण मनुष्यों को चारों ओर कुछ पृथिवी ऊंची करदी गई है कि जिस से वे भी दूर बैठे आनन्दपूर्वक यज्ञ देखा करें। ऋषि व मुनि व यज्ञकर्त्ताओं के आसन अपने २ उचित स्थानों पर डलवा दिये हैं और ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि किसी को पूछने या कहने की आवश्यकता न पड़े कि हम कहां बैठेंगे। जो कोई सुजन किसी कारण घड़ी दो घड़ी को यज्ञ में न आसकें तो उन की जगह आप को ख़ाली मिलेगी। चल कर देख लीजिये। छत्त का प्रबन्ध ऐसा किया गया है कि जो मेह भी वर्षे तो सुखपूर्वक यज्ञ होता रहे, किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। बाज़ारों व राजस्थानों का ऐसा प्रबन्ध किया है कि एक ओर से लोग जावें और दूसरी ओर से आवें। कोई आवश्यकता किसी से 'हटो बचो' कहने की न पड़े। जितनी जगह यज्ञशाला को नियत की गई है, उस में सवारी

तो आ ही नहीं सकती । सवारियों के लिये उचित २ स्थानों से अलग प्रबन्ध किया गया है । मार्ग के बीच में एक छोटी सी गली लाल रङ्ग डाल, बनवाई है, जिस पर दूत लोग चलें और कोई न चलने पावे ॥

रामचन्द्र जी-(देख कर अति प्रसन्न हो) भरत जी ! आप ही इस योग्य हैं और से ऐसा प्रबन्ध कभी हो सकता था ? कभी नहीं (यहां तक कि महमानों का उत्तम रीति से प्रबन्ध किया गया और सवेरे होते ही सब लोग स्नानादि से निवृत्त हो, सन्ध्या कर, यज्ञशाला में एकत्र हुए। चित्रकार दरवाज़ों पर खड़े प्रत्येक मनुष्य को विधिपूर्वक बिठलाते जाते हैं। थोड़ी देर में सब मनुष्य एकत्र हो गये और होता लोगों ने अग्नि स्थापन कर यज्ञ का आरम्भ कर दिया । इस के पीछे एक घोड़ा श्वेत रङ्ग, श्यामकर्ण, पीतपुच्छ का मंगवाया और श्रीमान् रामचन्द्र जी आदि चारों भाइयों ने नियमपूर्वक उस को स्नान कराया और एक पत्र सुनहरी मस्तक पर लगाया गया। जिस से विदित हो कि यह किस का घोड़ा है और किस ने इस को छोड़ा है और घोड़े के पांवों में केसर लगा यज्ञ कुण्ड के निकट खड़ा किया । यज्ञकर्त्ताओं ने मन्त्र पढ़ पढ़ आहुति छोड़नी आरम्भ कर दीं । जिस समय आहुति पूरी हुई उसी समय घोड़ा स्वतन्त्र छोड़ दिया गया ॥

रामचन्द्र जी—ए लक्ष्मण भाई ! भरत जी तो महमानों का प्रबन्धकर रहे हैं, आप ही घोड़े के साथ जायं और जितनी आवश्यकता हो सेना और पहरेदार व छकड़े गाड़ी आदि सामान साथ लेते जायं ॥

लक्ष्मण—('बहुत अच्छा' कह चल दिये और यहां कुछ दिनों तक यज्ञ होता रहा । अब दान की यह दशा है कि याचक याचना नहीं करने पाता कि उस को धनाढ्य कर दिया जाता है)

रामचन्द्र जी—भाई भरत ! देखो तो सब बड़े२ ऋषि मुनि आगये। कहीं ऐसा तो नहीं हुवा कि दूत किसी को नौता न दे आये हों। राजे महाराजों के सब जगह नौता पहुंच गया ?

भरत जी—महाराज ! सिवाय वाल्मीकि भगवान् के सब आगये ॥

रामचन्द्र जी—उन को तो अवश्य आना चाहिये ॥

भरत जी—बहुत अच्छा, दूत भेजता हूं। (और दूत से) वाल्मीकि भगवान् के नौता देने कौन गया था ?

एक दूत-श्री महाराज ! मैं गया था ॥

भरत जी-वाल्मीकि भगवान् क्यों नहीं आये ?

दूत-श्री महाराज ! मैं तो बहुत ही दीनता से निवेदन कर आया हूं ॥

एक प्रबन्धकर्ता-श्री महाराज ! वाल्मीकि भगवान् अपने सब चेलों और बहुत से सामान के छकड़ों सहित अभी आये हैं। जहां आज्ञा हो ठहराये जावें॥

भरत जी-(उठ, बहुत जल्द उन के निकट पहुंच, हाथ जोड़, प्रणाम कर) ए भगवान् ! आप की बड़ी आशा लग रही थी। कहिये कहां रहे ? प्रसन्न तो आये ? आज मैं तो दूतों से पूंछ रहा था और महाराज को तो यह विचार हुआ था कि कहीं दूत आप के पास नहीं गया। अब आप जहां आज्ञा दें ठहराने का प्रबन्ध कर दिया जावे ॥

वाल्मीकि जी-राजन् ! नौता तो हमारे पास पहुंच गया था, परन्तु कई आवश्यक कार्यों के कारण देर हुई। हम को एक अलग पर्णशाला बनवा दो, देर न होवे ॥

भरत जी-जिस जगह आज्ञा दें। मैंने तो यह जगह आप के लिये शोच रक्खी है ॥

वाल्मीकि जी-राजन् ! हम तो उस जगह, (उङ्गली उठा, बतला कर) ठहरेंगे ॥

भरत जी—जो इच्छा (और चित्रकारों से) तुरन्त अति उत्तम पर्ण-शाला तैयार हो और यज्ञ की वेदियां बनादी जायं (और आप वाल्मीकि जी को यज्ञस्थान दिखाने लगे। बस आज्ञा की देर थी कि एक मुहूर्त्त में वाल्मीकि जी की आज्ञानुसार पर्णशाला तयार हो गई)

चित्रका-(हाथ जोड़, नीचे को शिर झुका) श्री महाराज ! पर्णशाला तयार है ॥

भरत जी-भगवान् ! आइये चलिये, देख लीजिये, जो कुछ और आव-श्यकता हो, उस का और प्रबन्ध किया जावे ॥

(वाल्मीकि और भरत आते हैं और पर्णशाला देख)

वाल्मीकि जी—राजन् ! बहुत ठीक। इस में बड़े आनन्द से निवास करेंगे। अब आप अपना कार्य देखें। हमारे साथ सब सामान है ॥

(भरत जी प्रणाम कर जाते हैं)

सज्जन पुरुषो ! एक बात और प्रकट करने योग्य है कि वाल्मीकि जी के साथ शिष्य तो बहुत ही थे, परन्तु बहुत सी तपस्विनी भी सीता जी के साथ थीं और कितने ही छकड़े रसद भी थी। रसद के साथ लाने का यह कारण था कि वाल्मीकि जी राजा जनक जी से भाईपना रखते थे। इस कारण रामचन्द्र जी के घर का सामान कुछ खाते पीते न थे और रामचन्द्र जी व भरत जी भी यह जानते थे। इस लिये खाने पीने को कभी कहते भी न थे, परन्तु यह समझ कि कदाचित् आवश्यकता पड़े, एक अलग बाज़ार उन के निकट भी लगवा दिया था॥

अब वाल्मीकि जी ठहर गये और साधारण यज्ञ से निवृत्त हो, कुश व लव को बुलाया है॥

वाल्मीकि जी-पुत्रो ! हमने जो रामचरित्र काव्य तुम को सिखाया है और जिस की तुम वीणा पर नियमपूर्वक गाते हो, यहां उस के गाने का ठीक समय है, इस लिये तुम को उचित है कि प्रथम ऋषि लोगों के आश्रमों पर, फिर यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों के स्थानों पर, फिर मार्ग व चौराहों पर, फिर बाज़ारों में, फिर राजा लोगों के डेरों पर, फिर महाराजा रामचन्द्र जी के द्वारे पर और फिर यज्ञशाला में नियमानुसार स्वर ताल से उसे गाना और बीच २ में फल मूल खा लिया करना, क्योंकि जो कुछ खाते रहोगे तो थकोगे नहीं और राग भी भङ्ग न होगा। जहां तुम को कोई राजा बुलाये तुरन्त उस के पास चले जाना और सुना देना, क्योंकि राजा सब का पिता होता है, उस की आज्ञा पालन करना बहुत ही आवश्यक है और जो कोई राजा तुम को कुछ दे तो कदापि न लेना और कह देना कि हम वनवासी जीवों को धन से क्या प्रयोजन। जब कभी रामचन्द्र जी यज्ञ में तुम को बुलालें तो निर्भय चले जाना और आदि से रामायण का आरम्भ कर प्रथम बालकाण्ड के बीश सर्ग गाना और प्रति दिन बीश ही सर्ग पूरे करते रहना। जो वे तुम को कुछ देवें तो कह देना कि महाराज ! हम तो वनवासी हैं, धन लेकर क्या करेंगे। जो तुम से पूंछे कि तुम किस के पुत्र हो, कह देना कि हम वाल्मीकि जी के शिष्य हैं। कल सवेरे से यह कार्य आरम्भ करना॥

कुश व लव-(हाथ जोड़) जो आज्ञा ! (अब सवेरा हुआ और दोनों

कुमारों ने गाने का प्रारम्भ करदिया। प्रथम ऋषि मुनियों के आश्रमों पर गाया, वहां से ब्राह्मणों के स्थलों पर, वहां से चौराहों में, फिर बाज़ारों में गाते फिरते थे। दैवयोग से माता कौशल्या जी के पास राजा दशरथ और दूसरे राजाओं की सब रानी तारा व मन्दोदरीसहित विराजमान थीं और कौशल्या जी यथोचित सब का आदर सत्कार कर कुशल पूंछ रहीं थीं)

एक बांदी-(हाथ जोड़) महारानी ! आज तो दो लड़के चन्द्रसूर्य्य समान अधिक स्वरूपवान् बाल्यावस्था, कोई पन्द्रह सोलह वर्ष के, देवरूप, वीणा बजाते, रामचरित्र गाते फिरते हैं। सूरत तो परमात्मा ने उन को अच्छी दी ही है परन्तु वाणी भी अतिप्रिय है और अति लहरा २ कर रामचरित्र गाते हैं और ऐसे अच्छे मार्ग से गाते हैं कि जी नहीं चाहता कि उन को छोड़ कर चली आवें। आप के भय से मैं तो चली आई हूं। नहीं मन तो यही चाहता था कि उन के साथ २ सब सुनती। माता ! आप के पीछे उत्तम २ राग सुने पर ऐसा गाना हमने तो आज तक सुना नहीं॥

माता कौशल्या—आज जो यह सब रानी सुनना चाहें तो बुलालो (रानियों की ओर देखती हैं)

तारा व मन्दोदरी-दासी ! वे हैं कौन ?

बांदी-महारानी जी ! यह तो हम को विदित नहीं, परन्तु मृगचर्म चीरवल्कल पहन रहे हैं और लोग बाग यह कहते थे कि वाल्मीकि जी के शिष्य हैं। वे बहुत ही मनोहर गाते हैं और अभी निपट बालक हैं। वाणी भी अतिप्रिय जान पड़ती है॥

तारा-(हाथ जोड़) माता जी ! उन को तो बुलवा ही लीजिये। थोड़ी देर सुन लेंगे॥

मन्दोदरी-हां माता जी ! बुलवा लीजिये॥

और रानी—माता ! हम भी उन का गाना सुनना चाहती हैं॥

(यह बातें हो रहीं थीं कि भरत जी आगये और हाथ जोड़ प्रणाम कर)

भरत जी-(कौशल्यासे) माता जी ! किसी वस्तु की आवश्यकता तो नहीं॥

माता कौशल्या-पुत्र ! यह बांदी कहती है कि दो लड़के अति रूपधारी

रामचरित्र गाते फिरते हैं और इन सब रानियों की सुनने की इच्छा है। उन को बुला दो और जो तुम्हारा कुछ बिगाड़ न हो तो तुम आप ही बुला लाओ क्योंकि तुम्हारी आज्ञा से वह निर्भय यहां चले आवेंगे, और जो किसी और को भेजोगे तो कभी राजमन्दिर का भय मान, यहां न आवें॥

भरत जी–जो आज्ञा, अभी जाता हूं (और चल दिये और उन के निकट पहुंच) ए ऋषिपुत्रो ! तुम कौन हो और किस की आज्ञा से और किस लिये गाते फिरते हो ?

लड़के–महाराज ! हम वाल्मीकि जी के शिष्य हैं, उन्हीं की आज्ञा से गाते हैं। प्रयोजन तो हमारा कुछ भी नहीं। हम को तो जैसी गुरु जी की आज्ञा है, वैसा ही करते हैं॥

भरत जी––अच्छा तुम महाराज रामचन्द्र जी के स्थान पर चलकर अपना गाना कौशल्यादि माताओं को सुनाओ॥

लड़के-जो आज्ञा (और साथ चलते हैं)

अब मार्ग में भरत जी उन से बातें करते चले जाते हैं और लड़के मृदु वाणी से बहुत ही प्यारे लगते हैं। और मोहित होगये हैं (साथ लेजा) बहुत अच्छा, तुम निर्भय हो, इन माता लोगों को जब तक यह सुनें सुनाओ। (लड़के हाथ जोड़, प्रणाम कर बैठते हैं और वीणा बजा कर गाने का आरम्भ करते हैं। अब लड़कों ने बालकाण्ड आरम्भ किया और राजा दशरथ जी के यज्ञ का वृत्तान्त आया कि माता कौशल्या और सब रानियां मोहित होगईं और प्यार से आंसू बहाने लगीं और गाना बन्द कर उन से पूंछना आरम्भ किया)

कौशल्या जी–पुत्र ! तुम किस के पुत्र हो? कहां रहते हो ? किस से तुम ने यह काव्य सीखा है ?

लड़के–माता ! हम भगवान् वाल्मीकि जी के शिष्य हैं, उन्हीं के पास रहते हैं और उन से ही हमने यह काव्य सीखा है॥

(कौशल्या जी बहुत प्रसन्न हो, बहुत से आभूषण उन को देती हैं)॥

लड़के–माता जी ! भला हम तो वनवासी जीव हैं, इन को ले क्या

करेंगे, यह तो राजा लोगों का शृङ्गार है। हम को तो मृगचर्म व वनफल चाहियें, सो वह भी गुरु जी ने बहुत दे रक्खे हैं, हम और किसी से नहीं ले सकते। जो कुछ आप को देना होय तो उन्हीं के पास पहुंचा दीजिये॥

माता कौशल्या-(रानियों से) सुनो बहनो! यह लड़के तो मुझे बड़े ही प्यारे लगते हैं, जैसा मेरा मन रामचन्द्र व भरत को चाहता है, वैसा ही इस युगल जोड़ी से प्रीति करता है॥

केकयी-बीबी! मुझे भी यह बहुत ही प्यारे जान पड़ते हैं, फिर बड़े सन्तोषी हैं और गुरु का बड़ा ध्यान रखते हैं। यह यहां ठहरेंगे तो हैं ही नहीं, परन्तु यह तो कह दीजिये कि नित्यप्रति यहां आकर यह काव्य सुना जाया करें (और लड़कों से) पुत्रो! यह कितना बड़ा है, कितने दिन में पूरा होगा॥

लड़के—माता! यह काव्य बहुत बड़ा है, एक महीने में पूरा हो सकता है। जो आप को प्रिय जानपड़ा है तो नित्यप्रति सुना जाया करेंगे॥

उर्मिला—देखो, सूरत तो प्यारी ही है, परन्तु दोनों एक से हैं। परमात्मा ने एक ही सी जोड़ी बनाई है और सन्तोष भी इन को कितना बड़ा है और कैसे मीठी २ बोली बोलते हैं॥

सुमित्रा जी—बहन! निरन्तर रामचन्द्र की उनिहार हैं, बचपन में ऐसी ही सूरत रामचन्द्र की थी। इस समय मेरी आंखों के आगे वह बचपने की रामचन्द्र की सूरत फिर रही है। फिर इतना करो कि रामचन्द्र से कह दो कि इन का गाना नित्यप्रति हम को सुनवा दिया करें (अब सब रानी मोहित और प्रसन्न हैं कि बहुतसा धन व गहना इन को दें। परन्तु यह तो प्रथम ही माता कौशल्या से नांह करचुके हैं, लेना कैसा ?)

लड़के—(हाथ जोड़) माता जी! अब हम को आज्ञा दीजिये कि और जगह जाकर गावें, नहीं गुरु जी क्रोध करेंगे॥

माता कौशल्या-नहीं पुत्र! अभी नहीं, ठहरो। हम तुमसे और गाना सुनेंगे॥

अब कौशल्या जी और सब रानियां इस सोच विचार में कि इन की बातें गाने से भी अधिक आनन्ददायिनी हैं, बातें सुनें या गाना ? परन्तु यह तो गाने की धुन में बातें भी नहीं करते (और मारे प्रेम के हृदय उमगा रहा

है, परन्तु बिचारी यह नहीं जानतीं कि ये हमारे ही पौत्र हैं और हमारे प्यारे रामचन्द्र व सीता के पुत्र हैं। प्रेम में मग्न हैं। सुमित्रा के मुख से रामचन्द्र जी का नाम सुन, सीता जी को याद कर, आंसू बहा रही हैं और सब रानी मारे प्रेम के नेत्रों में जल भरे हुवे हैं कि अचानक रामचन्द्र जी माता जी को प्रणाम को आये)

रामचन्द्र जी (हाथ जोड़, प्रणाम कर) माता जी ! आज आप उदास क्यों हैं?

कौशल्या जी-ए पुत्र ! ये दो लड़के वाल्मीकि जी के शिष्य यहां आये हैं। इन्होंने हम को तुम्हारा चरित्र गा २ कर सुनाया, उस से हम सब मोहित होरही हैं और सब की यह इच्छा है कि नित्यप्रति सुना करें। तुम इस का प्रबन्ध करदो कि यह हम को नित्यप्रति सुना जाया करें॥

रामचन्द्र जी ने लड़कों की ओर देखा और पिता रूपी प्रेमने बल किया। सूरत देखते ही मोहित होगये और उन को पुचकार, शिर पर हाथ फेर पुत्र! अब तो जाओ। अब यज्ञ का समय निकट आगया, परन्तु यज्ञ पूरा होने पर पहर दिन से तुम यज्ञशाला में आजाना या हमारे साथ ही चलो। इस समय यज्ञ का तमाशा देखो। जिस समय यज्ञ पूरा होजाय, अपना गाना आरम्भ करना। जो तुम को आवश्यकता हो तो हम तुम्हारे गुरु जी से आज्ञा मंगवादें॥

लड़के-नहीं महाराज ! हमारे गुरु जी की तो हम को आज्ञा है ही कि आप की आज्ञानुसार चलें॥

रामचन्द्र जी-अच्छा, यह तो बतलाओ कि तुम कौन हो और किस के पुत्र हो? जिस ने यह काव्य बनाया है? और वह तुम्हारे गुरु जी कौन हैं? और कहां है? और यह काव्य कितना बड़ा है? कितने दिनों में पूरा कर सकते हो?

लड़के-महाराज ! 'कुश' व 'लव' तो हमारा नाम है। भगवान् वाल्मीकि जी के हम शिष्य हैं, इन्होंने ही यह काव्य बनाया है और वह आप के इस यज्ञ में आये हैं और यह काव्य चौबीस हज़ार श्लोक और पांचसौ सर्ग का है। बीस सर्ग रोज़ हम गाते हैं यहां एक महीने में पूरा हो जायगा॥

रामचन्द्र जी-तो अच्छा सब लोग इस समय तो यज्ञ को चलें॥

अब सब यज्ञशाला को चलदिये और यज्ञशाला में पहुंच, रानियां भी

अपनेस्थानपरजाबैठीं,परन्तुसबरानियोंकीदृष्टि उन्हींदोनोंलड़कोंकीओर है ॥

रामचन्द्र जी-ए भरत जी! आज माता लोगों की इच्छा इन लड़कों का गाना सुनने की है, इस लिये आज हम यज्ञ समाप्त होने पर यज्ञशाला ही में इन का गाना करावेंगे। इस लिये तुम वाल्मीकि भगवान् व ऋषि मुनि सब राजा व वेदपाठी पण्डितों व परमहंसों व पौराणिकों व व्याकरणियों और सब पौढ़े ब्राह्मणों और स्वरशास्त्र जानने वालों और सामुद्रिक वालों अर्थात् सब को जिन को गाना सुनने की इच्छा हो और सङ्गीत शास्त्र वालों व पुरवासियों व छन्दविद्या जानने वालों और ज्योतिष जानने वालों और सब नाचने गाने वालों और सब को ख़बर करादो कि आज पहर दिन रहे सब यहां आजावें, यहां गाना होगा ॥

भरत-बहुत अच्छा, अभी प्रबन्ध करता हूं। (और दूतों को आज्ञा दी कि प्रबन्ध करें। अब यज्ञ पूरा हुआ और गान आरम्भ कराया गया)

प्रथम कुश लव ने वीणा तैयार कर, ताल व स्वर मिला, इस प्रकार रामायण का गाना आरम्भ किया और ऐसी मृदु वाणी से गाया कि सब मोहित हो, चुपके २ सुन रहे थे। कोई चूं तक न करता था और बड़े ध्यान से लोग कान लगाये सुन रहे थे। राजा लोग कह रहे थे कि भाई! यह दोनों लड़के तो अने बने रामचन्द्र जी की सूरत हैं। ऐसा जान पड़ता है कि परमात्मा ने रामचन्द्र जी का प्रतिबिम्ब लिया है। यह कहते २ बालकाण्ड पूरा हो गया और उन्नीस सर्ग अयोध्याकाण्ड के गाये गये कि संध्या हो, सभा विसर्जन हुई ॥

रामचन्द्र जी-ए भरत! इन दोनों लड़कों को अठारह २ हज़ार मुहर दे दो ॥

भरत जी—लड़को! लो, यह मुहर तुम्हारे लिये हैं ॥

कुश व लव-महाराज! हम यह धन लेकर क्या करेंगे, हम तो वनवासी जीव हैं, हम को धन से क्या प्रयोजन। हम को तो फल मूल और मृगचर्म चाहिये सो गुरु जी नित्य प्रति पहुंचा ही देते हैं ॥

रामचन्द्रजी-(और सब राजा आश्चर्यमान) ओ हो! बड़े त्यागी बच्चे हैं। अच्छा तो तुम लोग नित्यप्रति गाया करो ॥

कुश व लव-जो आज्ञा, जिस समय यज्ञ पूरा हो जाया करे, आप सुना करें ॥

अब साढ़ेतीस दिन में सब काव्य पूरा होगया और सुनते २ रामचन्द्र जी और सब को ज्ञात हो गया कि यह दोनों भाई सीता जी के पुत्र हैं ॥

रामचन्द्र जी–आज इस समय वाल्मीकि भगवान् यहां नहीं हैं । अच्छा भरत ! तुम जाओ और उन से हाथ जोड़, प्रणाम कर, विनति करो कि जो सीता जी के सब आचरण शुद्ध हों और सब के सामने इस बात पर शपथ करने को कहें तो कल यज्ञशाला में आकर शपथ करें । हम प्रसन्नतापूर्वक उनको अङ्गीकार करेंगे और लोकापवाद का कुछ भी विचार मन में न लावेंगे ॥

भरत जी—(' जो आज्ञा ' कह, वाल्मीकि जी के आश्रम पर जा, हाथ जोड़ प्रणाम कर) ए मुनिराज ! श्रीमान् रामचन्द्र जी ने आप को प्रणाम कह कुछ संदेशा कहा है ॥

वाल्मीकि जी—(हंसकर) हम ने समझ लिया । रामचन्द्र जी से कह दो कि सीता जी को आप की आज्ञापालन में कभी नाह नहीं । वे अवश्य कल यज्ञ में आवेंगी ॥

भरत जी–(प्रणाम कर) तो अच्छा मैं जाता हूं (और चल दिये)

भरत जी–(हाथ जोड़, रामचन्द्र जी से) महाराज ! वाल्मीकि भगवान् ने उत्तर दिया है कि सीता जी कल यज्ञ में आप की आज्ञा पूरी करेंगी ॥

रामचन्द्र जी–अच्छा, सब लोगों से कह दो कि कल श्रीमती सीता महारानी यज्ञ में अपने सत्यधर्म पर शपथ करेंगी । सब लोग कृपाकर, देखने आवें ॥

राजा लोग—महाराज ! आप तो सब वृत्तान्त जानते हैं, परन्तु मर्यादा बांधने के लिये ऐसा करते हैं और यह बात आप के कहने और करने के योग्य भी है, अच्छा जो मरज़ी । (अब यज्ञ से निवृत्त हो, सब लोग अपने २ स्थानों को चले गये) ॥

यज्ञमण्डप

सवेरा होते ही यज्ञ का प्रारम्भ हुआ । अब सब जगह यह चर्चा हो रही है कि आज सीता जी शपथ लेवेंगी । और बहुत से मनुष्य आ रहे हैं ॥

वाल्मीकि जी आगे २ और सीता जी नीचा शिर किये पीछे चली आती हैं और उन के पीछे बहुत से मनुष्य चले आ रहे हैं ॥

एक–भाई ! रामचन्द्र जी कीर्त्ति के योग्य हैं ॥

दूसरा–नहीं भाई ! सीता जी प्रशंसा के योग्य हैं ॥

तीसरा–भाई ! दोनों ही प्रशंसा के योग्य हैं ॥

वाल्मीकि जी—(यज्ञशाला में पहुंच) ए राम ! जिन पतिव्रता सीता जी को तुमने लोकापवाद के भय से हमारे आश्रम के समीप छोड़ दिया था, वे अब विराजमान हैं और लोकापवाद से डरे तुम्हारा विश्वास भलीभांति पूरा करेंगी और यह दोनों लड़के जोड़िया आप के ही हैं, जो सम्मुख बैठे हैं। आप को ज्ञात है, हम वरुण जी के पुत्र हैं और आज तक हम ने कभी झूंठ नहीं बोला। इस से हमारा विश्वास कर लीजिये, हम सच कहते हैं। जो सीता जी के सत्य धर्म में कुछ भी सन्देह हो तौ हम को हमारी आज तक की तपस्या का फल न मिले और जो सीता जी में कुछ भी दोष हो तौ विना किया हुआ पाप हम को लगे। ए रामचन्द्र ! हम पृथिवी, वायु, जल, तेज, अग्नि, इन पांचों तत्वों के सामने सब प्रकार सीता जी को शुद्ध समझ, अपने आश्रम पर लें गये थे। इस से भी समझ लो कि सीता जी निर्दोष हैं, क्योंकि आप लोकापवाद से बहुत डर रहे हैं, इस लिये हम आप को विश्वास दिलाते हैं। ए रामचन्द्र जी ! आप जानते थे कि सीता जी सब प्रकार शुद्ध हैं और आप से प्रीति भी रखती हैं, परन्तु आप ने केवल लोकापवाद से छोड़ा था। पर हमने अपने योगबल से जान लिया कि सीता जी में कुछ भी दोष नहीं, इस लिये अपने आश्रम पर जगह दी। अब सब प्रकार समझ लो कि यह निर्दोष हैं॥

रामचन्द्र जी–(वाल्मीकि जी को हाथ जोड़ और सीता जी की ओर देख) ए महाभाग्य ! जैसा आप कहते हैं, हम उस को सच मानते हैं और हम को सब प्रकार विश्वास भी हो गया। इस के सिवाय लङ्का जीतने के पीछे हम ने अग्नि में बिठला सीता जी का विश्वास भी कर लिया था, परन्तु लोकापवाद के भय से सीता जी को त्याग दिया। ए ब्रह्मन् ! हमने सब मुच जान बूझ कर सीता जी को त्यागा था। अब आप हमारा अपराध क्षमा करें और हम यह भी जानते हैं कि यह दोनों पुत्र शुद्ध उत्पन्न हुये हैं, इसी कारण हम को इन से अधिक प्रीति है और आप के कहने से हम को सीता जी से भी पूरी प्रीति है। हम अब किसी प्रकार इन को अलग न करेंगे॥

सीता जी–(हाथ जोड़े) ए परमात्मा ! तुम को ज्ञात है कि मैं इस समय तक निर्दोष हूं और पूरा पतिव्रत धर्म रखती हूं॥

रामचन्द्र जी–भाई ! अब सब पुरवासी विराजमान हैं और सीता जी भी यहीं हैं, जिस को आप के आचरण पर कुछ सन्देह हो, वह निर्भय हो कहे। हम उस का सन्देह दूर करेंगे और प्रसन्न होंगे ॥

पुरवासी—महाराज ! भला सीता जी के आचरण पर किसी को संदेह हो सक्ता है? इतने में सब लोग जय जय कार करने लगे और बाजे बजने लगे ॥

चन्द्रमुखी–अब रात बहुत गई, अच्छा अब कल कहेंगे ॥

स्त्रियां–बहन ! आज तो तुमने बड़े आनन्द की कथा छोड़ दी। अच्छा तुम्हारी इच्छा, कल कहना ॥

दूसरा दिन

(संक्षेप से वनवास)

चावली–चची ! बहुत से मनुष्य यह प्रश्न करते हैं कि किस अवस्था में रामचन्द्र जी को वनवास हुआ और कब सीता जी को दुबारा वनवास दिया गया और कब कुश व लव का जन्म हुआ और कब अश्वमेध यज्ञ हुआ। जो आप उत्तर दे सकें तो इस का उत्तर मुझे दे देवें ॥

चन्द्रमुखी–वनवास के समय रामचन्द्र जी की अवस्था २७ वर्ष की और सीता जी की अठारह वर्ष की हो गई थी। जहां तक मैं जानती हूं ब्यौरेवार सब वृत्तान्त सुनाती हूं, कान लगाकर सुनो ॥

वैशाख वदि ७ सप्तमी को रामचन्द्र जी को वनवास हुआ और तीन दिन तक केवल जल ही पीते रहे। चौथे दिन शृङ्गवेरपुर में राजा गुह के फल मूल खाये। पांचवें दिन भरद्वाज जी से प्रयाग में मिले। छठे दिन वहां से चल कुछ दिन चित्रकूट पर विश्राम किया कि वहीं भरतमिलाप हुआ और वहां से शरभङ्ग जी व सुतीक्ष्ण जी से मिले और दण्डकारण्य में रहते हुवे उन को दश वर्ष वीत गये और यहां से चल अगस्त जी से मिले और अगस्त की आज्ञा से चल कर पञ्चवटी में कुटी बना, जटायु समेत दो वर्ष तक रहे। तेरहवें वर्ष के आदि में शूर्पणखा की नाक काटी और खरदूषण से युद्ध हुवा तथा खर और दूषण मारे गये ॥

माघ शुदि ८ अष्टमी को रावण सीता जी को हर ले गया और मारीच को मार, जटायु की गति कर, कबन्ध का बध किया। शबरी की महमानी

ग्रहण कर पांच महीने तक विचरते हुवे आषाढ़ के महीने में सुग्रीवजी से मिले और बालि को मार ४ महीने तक पर्वत पर रहे॥

अगहन वदि ११ को हनुमान् वानरों समेत समुद्र पर पहुंचे और सम्पाति से ख़बर पा, समुद्र लांघ, लङ्का में जा कूदे। वहां श्रीमती सीता महारानी से मिल, लङ्का फूंक लौट कर चले आये॥

अगहन शुदि ७ को हनुमान् जी ने सीता जी की ख़बर ला, रामचन्द्र जी को सुनाई॥

अगहन शुदि ८ अष्टमी को दो पहर के समय उत्तरा फल्गुनी नक्षत्र में सेना सहित रामचन्द्रजी ने लङ्का पर चढ़ाई की॥

अगहन शुदि १५ को सात दिन में रामचन्द्रजी समुद्र के किनारे पहुंचे॥

पौष वदि १ से ३ तीज तक रामचन्द्र जी ने समुद्र के किनारे विश्राम किया॥

पौषवदि ४ चौथ को बिभीषण जी लङ्का से आकर रामचन्द्र जी से मिले॥

पौष वदि ५ पञ्चमी से नवमी तक सेतु बांधने का प्रबन्ध किया गया॥

पौष वदि १० दशमी से पौष वदि ३० अमावास्या तक ४०० कोश लम्बा सेतु तैयार हुवा॥

पौषशुदि १ व दोयज को सब सेना समुद्र पार पहुंच गई॥

पौष शुदि ३ से १० तक लङ्का घेरी गई॥

पौष शुदि ११ को रावण के दूत शुक व सारन ने रामचन्द्र जी की सेना देख रावण को ब्यौरेवार समाचार बतलाये॥

पौष शुदि १२ को रामचन्द्र जी ने सेना के चार भाग कर लङ्का के चारों द्वारों पर नियत किये॥

पौष शुदि १३ से १५ तक रावण ने युद्ध की तैयारी की।

माघ वदि १ को अङ्गद लङ्का में पहुंचे और रावण को समझाया॥

माघ वदि २ से ९ नवमी तक ख़ूब युद्ध हुवा और १० को रावण ने सीता जी को पुष्पक विमान में चढ़ा, रामचन्द्र जी व लक्ष्मण जी को मूर्छित पृथ्वी पर पड़ा देखलाने को भेजा॥

माघ वदि ११ व १२ के युद्ध में धूम्राक्ष मारा गया ॥

माघ वदि १३ से १५ तक नील आदि कई योद्धा रावण के मारे गये ॥

माघ शुदि १४ को कुम्भकरण मारा गया ॥

माघ शुदि १५ को कुम्भकरण के शोक में युद्ध बन्द रहा ॥

फाल्गुन वदि १ से ८ तक भारी युद्ध हुवा और बहुत से राक्षस मारेगये॥

फाल्गुन वदि ९ से १२ तक युद्ध हो कर कुम्भ व निकुम्भराक्षस मारे गये ॥

फाल्गुन वदि १५ से शुदि १ तक के युद्ध में रावण का सेनापति मारा गया ॥

फाल्गुन शुदि ३ से युद्ध का आरम्भ होकर १२ तक रहा। १३ को मेघनाद मारा गया और रावण सीताजी के मारने को अशोकवाटिका में पहुंचा॥

फाल्गुन शुदि १४ को मेघनाद के शोक में युद्ध बन्द रहा।

फाल्गुन शुदि १५ को रावण युद्धभूमि में लड़ने को आया॥

चैत्र वदि १ से ८ तक घोर युद्ध हुवा ॥

चैत्र शुदि १५ को रावण मारा गया ॥

वैशाख वदि २ को बिभीषण जी का राजतिलक हुवा ॥

वैशाख वदि ३ को सीता जी रामचन्द्र जी के पास आईं और आग में बैठ, अपने सतीत्व की परीक्षा दी और वैशाख वदि ४ को बिमान में सवार हो, पम्पापुर पहुंचे ॥

वैशाख वदि ५ को प्रयाग में पहुंच, भरद्वाज जी के आश्रम पर विश्राम किया ॥

वैशाख वदि ६ को प्रयाग से चल नन्दिग्राम में भरत जी से मिले ॥

वैशाख वदि ७ को रामचन्द्र जी का राजतिलक हुवा ॥

भाद्र वदि ९ को सीता जी को गर्भ रहा ॥

चैत्र वदि १२ को सीता जी को लक्ष्मण जी वन में छोड़ आये ॥

आषाढ़ वदि ९ को लव व कुश का जन्म हुवा ॥

इन लव व कुश की अठारह वर्ष की अवस्था थी कि जब यज्ञ हुवा और सीता जी रामचन्द्र जी से मिलीं॥

चावली-चची! सीता जी में तो कुछ दोष न था और अग्नि में बिठाल रामचन्द्र जी ने परीक्षा भी करली थी, फिर वनवास क्यों दिया।

चन्द्रमुखी—बेटी! लोकनिन्दा (दुनिया की चर्चा) से डर, रामचन्द्र जी ने ऐसा किया। धर्मात्मा लोग लोकनिन्दा को बहुत बुरा समझते हैं अर्थात् जिस बात को दुनियां बुरा कहे, उस बात को न करना चाहिये॥

चावली-तो क्या चची! धर्म से लोकनिन्दा बड़ी है॥

चन्द्रमुखी-बेटी! धर्म को तो कभी छोड़ना ही न चाहिये, परन्तु जब संसार में अधर्म बढ़जाय उस समय बड़ी सावधानी से धर्म चलाना चाहिये, क्योंकि जब धर्म घटजाता है उस समय धर्म एकाएकी प्रचलित नहीं हो सकता। यह दैवी नियम है। एकाएकी नहीं बदला जाता, बरन थोड़ा थोड़ा बदलता है। जब धर्म अधिक बढ़जाता है तो वह भी थोड़ा २ घट कर अन्त में अधर्म बढ़ जाता है और जब अधर्म बढ़जाता है तो वह भी थोड़ा २ घट कर धर्म अधिक होता है॥

चावली-चची! यह ऐसा क्यों होता है? सदैव धर्म ही क्यों नहीं रहता?

चन्द्रमुखी-बेटी! जो सदैव धर्म ही रहे और बदला न जाय तो जीव ईश्वर को भूल, भांति भांति के झगड़े उत्पन्न करें और पापकर्मों का बदला कैसे मिले? देखो जब जीव एक जन्म में बड़े पाप करता है, तब दूसरे जन्म में उस का बदला अवश्य पाता है और ऐसे ही धर्म का फल भी उसी जन्म और अगले जन्म में भोगता है॥

चावली-इस सीताचरित्र में तुम ने बहुत सी स्त्रियों का वृत्तान्त कहा। परन्तु विधवा स्त्रियों का वृत्तान्त नहीं कहा। क्या उस समय विधवा नहीं होती थीं? और नहीं होती थीं तो क्यों?

चन्द्रमुखी-बेटी! मैं विराध के वृत्तान्त में तुम को सुना चुकी हूं और वह तुम को याद भी होगा। जब विराध ने रामचन्द्र जी से कहा था कि "तुम स्त्री को साथ लिये वेष को बट्टा लगाते हो और स्त्री भी दो पुरुषों बीच में एक। तुम बड़े दुराचारी हो इस लिये मैं तुम को अवश्य मारूंगा"

इस से समझ लो कि उस समय अधिक स्त्री पतिव्रता थीं, नहीं तो धर्मात्मा तो सब ही होती थीं । इस कारण वे विधवा भी थोड़ी होती थीं । तुम ने पढ़ा होगा कि पतिव्रता स्त्री कभी विधवा नहीं होतीं सदैव सौभाग्यवती ही रहती हैं और मुझ को केवल सीता जी का वृत्तान्त वर्णन करना था, इस लिये मैंने वह ब्यौरेवार नहीं कहा, परन्तु यह तो कहूंगी कि उस समय विधवा बहुत ही थोड़ी होती थीं ॥

चावली—हां चची ! अब आगे को वृत्तान्त कहो ॥

चन्द्रमुखी-लो बहनो ! सीताचरित्र तो पूरा होगया, उस में तो कुछ बाक़ी है नहीं । बहुत ही सूक्ष्म कथा शेष रही है, सो किसी समय फिर सुना दूंगी और न भी सुनाऊं तब भी कुछ बात नहीं । अब मुझे चावली से एक बात पूंछनी है कि इस चरित्र को सुनते २ इस को बहुत सी शङ्का उत्पन्न हुई हैं, क्यों चावली ?

चावली-(हाथ जोड़,) चची ! जो आप मेरी शङ्का निवारण कर दें तो मैं बहुत ही प्रसन्न हूं ॥

चन्द्रमुखी-अच्छा तो जो २ शङ्का तुम को हों, वह पूंछ लो ॥

चावली-चची ! यह तो बतलाओ कि जब राजा दशरथ ने आज्ञा न दी थी तो सीता जी वन को क्यों गईं ?

चन्द्रमुखी-चावली ! स्त्री का पति ही देव, पति ही गुरु, पति ही दाता है । मा, बाप, भाई, सास, सुसर, बेटा यह सब खाने पीने पहनने के सुख दे सकते हैं, परन्तु लोक व परलोक का सब सुख पति ही दे सकता है। विना पति स्त्री की कुछ भी पत नहीं । स्त्री पति ही की सेवा से स्वर्गलोक पाती है । पति चाहे कायर हो, क्रूर हो, कुरङ्ग हो परन्तु स्त्री को सुख पति ही की सेवा से मिलता है । देखो मैं तुम से एक कहानी कहती हूं, उस से तुम पतिव्रतधर्म की दशा जान जाओगी ॥

एक पतिव्रता की कहानी

चन्द्रमुखी-एक राजा के कुछ सन्तान न थी । दैवयोग से एक कन्या उत्पन्न हुई, उस को बड़े प्रेम से पाला । जब वह कन्या स्यानी हुई तो राजा वर ढूंढने का विचार कर रहे थे कि दैवयोग से एक दिन नारद मुनि आये॥

राजा-(खड़े हो, प्रणाम कर) आइये महाराज ! आज तो बड़ी कृपा की । कहिये प्रसन्न तो रहे ? कुशलपूर्वक तो आये ?

नारद मुनि-हां, राजन् ! अच्छे रहे । आप की कृपा से सब अच्छा है॥

राजा-रानी ! कन्या को बुला, प्रणाम कराओ ॥

रानी-बहुत अच्छा (और प्रणाम कराती हैं)

मुनिराज-सौभाग्यवती हो, पुत्रवती हो (और राजा से) राजन्! इस कन्या का विवाह होगया ?

राजा-महाराज ! अभी तक तो नहीं हुआ, मैं वर ढूंढ रहा हूं ॥

मुनिराज-इस के योग्य तो कुमार सत्यवान् है ॥

राजा-तो अच्छा उसी से विवाह करादीजिये ॥

मुनिराज-पर भाई ! उस में एक दोष है कि विवाह से एक वर्ष पीछे मृतक होजावेगा ॥

राजा-भला महाराज ! फिर कैसे विवाह कर सक्ता हूं ॥

सावित्री-(कन्या) पिता जी ! मुनिराज तो मेरे योग्य वर बतला चुके और आप ने भी एक बेर हां करली, अब कुछ विचार न कीजिये । मैंने भी आदि ही से पतिव्रत धर्म का मार्ग सीखा है और पतिव्रत धर्म ही ग्रहण किया है और पतिव्रतधर्म का पालन हम को करना भी उचित है, इस लिये अब आप कुछ विचार न करें। जो वर विचार लिया है उसी को रहने दें। क्या मुनिराज के यह वचन कि "सौभाग्यवती हो, पुत्रवती हो" मिथ्या होजांयगे ॥

अब सावित्री का सत्यवान् के साथ विवाह होगया और उस ने पतिव्रतधर्म से जीता रक्खा ॥

ए चावली ! पतिव्रता स्त्री और सुखों के सिवाय बड़ा सुख यह पाती हैं कि अपने जीते जी विधवा नहीं होतीं अर्थात् पति उन के सामने नहीं मरता । वह पति के आगे अपना शरीर छोड़ देती हैं और दूसरे जन्म में अनेक प्रकार के सुख पाती हैं । ऐसा ही विचार सीताजी ने भी समझ लिया था कि अयोध्या में रहने से रामचन्द्र जी की सेवा करने को न मिलेगी । वन में चाहे कुछ दुःख भी हो परन्तु रामचन्द्र जी की सेवा कर, भले प्रकार पतिव्रतधर्म का निर्वाह करेंगी और वियोग के दुःख से भी बचेंगी । इस

लिये सीता जी ने वनवास ग्रहण किया और इसी कारण महाराज दशरथ आदि किसी ने उन को वन जाने से न रोका ॥

चावली-चची ! आप ने यह बात जो कही कि पतिव्रता स्त्री कभी विधवा नहीं होती, यह तो बड़े आश्चर्य की बात है । इस के लिये मुझे और कोई दृष्टान्त दीजिये ॥

चन्द्रमुखी-बेटी ! तुम्हारी यही प्रसन्नता है तो मैं कई ऐसे ही दृष्टान्त इस समय के बतला सक्ती हूं, सुनो ॥

दूसरी पतिव्रता का वृत्तान्त

एक वीरवाहन नाम ब्राह्मण था । देवहूति नाम उस की स्त्री पतिव्रता थी। एक समय उस का पति किसी आवश्यकता से परदेश गया और वहां जा, व्यापार करने लगा । एक दिन कुछ मनुष्य और एक पण्डित बैठे यों बातें करने लगे ॥

मनुष्य-पण्डित जी ! हमने यह सुना है कि पतिव्रता स्त्री विधवा नहीं होती ॥

पण्डित-भाई ! शास्त्रों में तो ऐसा ही लिखा है और जहां तक हम जानते हैं, हमने आज तक कोई विधवा नहीं देखी और न सुनी ॥

मनुष्य-तो पण्डित जी ! हम को कोई ऐसी स्त्री दिखला दीजिये ।

पण्डित-बहुत अच्छा हम दिखलादेंगे (और शोच विचार वीरवाहन की ओर दृष्टि कर) इस ब्राह्मण की स्त्री पतिव्रता है, उस को देखो ।

मनुष्य-अच्छा तो पण्डित जी क्या प्रबन्ध करें ॥

पण्डित-भाई और बात तो कठिन है परन्तु इस के घर को एक चिट्ठी लिख भेजो कि वीरवाहन स्वर्ग को चला गया । और तुम अपनी सवारी आदि का प्रबन्ध कर वहां पहुंच देख लो कि वह क्या समझती है ॥

मनुष्य-बहुत अच्छा,(चिट्ठी भेजता है औरआप वीरवाहनके घरको जाता है)

वीरवाहन का घर

हलकारा-(वीरवाहन भाई को चिट्ठी देता है)

वीरवाहन का भाई-(चिट्ठी पढ़ " हा भाई! २" कह रोता है ॥

देवहूति-ए भ्राता ! यह क्या बात है, तुम क्यों रोते हो?

भाई—माता ! क्या कहूं, इस चिट्ठी में तो भाई के स्वर्ग जाने का समाचार लिखा है, इसे देख मैं शोकातुर हो रहा हूं ॥

देवहूति—भ्राता ! यह तो असम्भव है कि मेरे जीते जी तुम्हारे भाई का देवलोक होजाय । तुम कुछ देर सन्तोष करो । मैं एक मुहूर्त में तुम को सब समाचार बतला दूंगी । (यह कह और आसन बिछा, ईश्वर प्रार्थना कर, मौन साध, बैठ गई और दो घड़ी पीछे आंखें खोल,कह दिया कि)एक सवार तुम्हारे भाई के पास से इस नगर में आता है और अभी यहां आया चाहता है । उसने केवल हमारी परीक्षा के लिये यह कर्म किया है,तुम्हारे भाई तो प्रसन्न हैं । तुम थोड़ी देर और ठहरो ॥

(भाई ! बाहर बैठा बाट देख रहा है कि एक सवार दीख पड़ा) ॥

सवार—(प्रणाम कर) भाई ! वीरवाहन का मकान कौनसा है ?

भाई—उतरो, कुशल तो हो, प्रसन्न तो आये ? यही मकान है । विराजिये । आप भाई वीरवाहन के गांव से आते हैं ॥

सवार—(सोच में) इस को यह व्योरा कैसे मिल गया (और आश्चर्य कर, हाथ जोड़) महाराज ! आप ने मुझ को कैसे पहचान लिया ?

भाई—मित्र ! थोड़ी सी देर हुई कि हमारे भाई के मृतक की चिट्ठी आई, हमने अपनी भावज से कहा, उस ने दो घड़ी का मौन साध, हम से कह दिया कि वे प्रसन्न हैं । हमारी परीक्षा के लिये यह ख़बर भेजी गई है । थोड़ी सी देर में एक सवार तुम्हारे भाई के गांव से आता होगा, वह सब कुशल कहेगा ॥

सवार—(हाथ जोड़, पांवों पर गिर) महाराज ! हमारा अपराध क्षमा कीजिये ॥

ए चावली ! पतिव्रता स्त्री पूरी तपस्विनी होजाती हैं और इस लोक में आनन्द भोग सीधी स्वर्गलोक को जाती हैं ॥

चावली—चची ! अब यह बतलाओ कि स्त्री कै प्रकार की होती हैं ॥

चन्द्रमुखी—तीन प्रकार की ॥

चावली—कैसी २ ?

चन्द्रमुखी—प्रथम ' पतिव्रता ' दूसरी 'धर्मात्मा' तीसरी 'साधारण' ॥

चावली—चची ! जो आप को श्रम न हो तो इन तीनों का भिन्न २ धर्म वर्णन करदो ॥

चन्द्रमुखी—बहुत अच्छा, सुनो ॥

प्रथम पतिव्रता, जो अपने पति को ही पति मानती है और जगत् भर के किसी पुरुष को पुरुष नहीं मानती । बचपन में माता पिता की सेवा कर विद्याध्ययन करती है और कभी किसी पुरुष की बात सुनना भी अच्छा नहीं मानती और विवाह हो जाने पर अपने पति को ही देव मानती है । जिस काम में पति प्रसन्न रहे उसी को करती है, पति का बचा बचाया भोजन करलेती है और सदैव पति की प्रसन्नता का विचार रखती है,पति के मित्रों व बान्धवों की प्रसन्नतापूर्वक सेवा करती है । किसी समय परपुरुष का ध्यान भी नहीं करती । पति चाहे निर्धन रहे, चाहे धनाढ्य, सदैव उस को ही अपना दाता मानती है। कभी किसी वस्तु को पति से नहीं कहती । प्रथम तो ऐसी स्त्रियों को पति ही श्रेष्ठ मिलते हैं,पर जो दैवयोग से किसी को दुष्ट या कटुवादी पति मिल भी जाता है तो वह किसी स्त्री से नहीं कहती और उस से भी किसी प्रकार की बात नहीं कहती । जो पति की सेवा में भोजन भी न मिले तो उपवास भी सह लेती है । मुंह से तो क्या, मन से भी पति के कार्यों पर मुंह नहीं मोड़ती । अर्थात् तीर्थ तमाशा देवता जो कुछ संसार में वस्तु है सब पति ही को मानती है। पति से अकेले अपना घर छोड़,कभी दूसरे घर नहीं जाती । जो किसी के बहकाने से कोई अनुचित बात मुख से निकल भी जाय तो बड़ी लज्जित हो जाती है और फिर के लिये याद रखती है ॥

चावली—तो चची ! उन को सुख ही क्या मिलता है ?

चन्द्रमुखी—हां, बेटा ! यही तो अन्तर है । अब इस समय मुझे तुम को सुख दुःख बतलाना पड़ा । अब जब तक मैं सुख और दुःख न बतला दूं तुम को निश्चय नहीं होगा ॥

चावली—हां,चची ! ऐसी रीति से समझाइये कि भले प्रकार निश्चय होजावे ॥

चन्द्रमुखी—देखो बेटा ! परमात्मा ने दो वस्तु बनाई हैं-एक सुख, दूसरा दुःख । इन में सुख के विरुद्ध दुःख और दुःख के विरुद्ध सुख समझो । सुख वह है कि जिस से सब प्रकार का आनन्द मिलता है । दुःख वह है जिस से आनन्द नहीं मिलता, वरन कष्ट उठाना पड़ता है । और प्रत्येक जीव

सुख चाहता है, कोई जीवधारी ऐसा नहीं जो सुख को न चाहे। यह तौ तुम लोगों के देखने में आया ही होगा कि कैसे ही दुःख में कोई जीव हो, परन्तु जब दूसरा अति दुःख देता है तौ उस से बचने का उपाय करता है। तौ अब समझ लीजिये कि कोई पशु भी नहीं जो सुख न चाहता हो और दुःख की चाहना करता हो और जहां तक पिछले लोगों ने कहा है, उन में से बहुतों की सम्मति यह है कि काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, इन पांचों की विशेषता से दुःख उत्पन्न होता है और इन ही के घटने से सुख मिलता है॥

प्रथम काम, जिसे विषयभोग, व्यभिचार, जारकर्मादि कहते हैं। इसी से मोह उत्पन्न होता है और जब मनुष्य कामी हो जाता है तौ काम के वश परस्त्रीगमन आदि कर्म करता है। ऐसे ही स्त्री जब कामवश हो जाती है तौ वह भी परपुरुष का सङ्ग करती है। इस में समझ लो कि ऐसे स्त्री पुरुषों की संसार में तौ बड़ी निन्दा होती ही है, परन्तु परलोक में भी नरक मिलता है। उत्तम स्त्री पुरुष उन का पास बैठना अच्छा नहीं समझते। कहीं२ उन को त्याग भी देते हैं और उच्च वर्ण के स्त्री पुरुष नीच वर्ण में मिला दिये जाते हैं। भाई बन्धुओं में तौ बराबर बैठने ही नहीं पाते। धन सब इस कुकर्म की भेंट कर दिया जाता है। जितनी स्त्रियां यहां हैं, वह भलीभांति जानती हैं कि जिस समय काम प्रबल होता है तौ अन्धी होकर पति के न होने पर अपने मन में भांति २ के विकार उत्पन्न करती हैं और जब यह बढ़ जाता है तौ संसार में जो २ दुःख उठाने पड़ते हैं वह तौ सब जानती ही हैं। परन्तु परलोक में भी सीधा नरक पाती हैं और विचारो कि जो कोई कामी स्त्री है और उस को परपुरुष उस की इच्छानुसार मिल गया तो क्या वह सुख पाती है? नहीं २ बड़ी लोकनिन्दा और अपवाद कराती है। देखो, आज कल की वेश्या आदि कैसी व्यभिचारिणी होती हैं और व्यभिचार से ही धनसञ्चय करती हैं। प्रकट में स्थान स्वच्छ वस्त्राभूषण सब स्वच्छ और मूर्ख पुरुषों को लूट २ निर्धन कर देतीं हैं तो क्या कोई मनुष्य उन को अच्छा कहता है? नहीं २। भलेमानस और महात्माओं की मण्डली में उन को बैठना भी नहीं मिलता और जो कोई उन के पास बैठता है, उस की भी सब निन्दा करते हैं। इस के सिवाय जब काम बढ़ जाता है तो स्त्री हो चाहे पुरुष, सोज़ाक आतशक आदि रोगों में फंस जाते हैं और जब वह रोग बढ़ जाते हैं तौ उन का रुधिर बिगड़ कुष्ठादि रोग हो जाते हैं और रात दिन

दुःख पाते हैं। भला उस समय उन को क्या सुख होगा। अच्छा खाना तौ दूर रहा, शरीर को एक घड़ी भी चैन नहीं। देखो बहुत से मनुष्य इस बात को कहते हैं कि अधिक काम से ही सोज़ाक आतशक आदि रोग होते हैं तो अब समझलो कि क्या यह काम अच्छा है ? बेटी ! अच्छी वही बात है कि जिस के बढ़ने से आनन्द ही आनन्द मिले न कि दुःख ही दुःख। देखो तुमने देखा होगा कि उस मार्ग में एक स्त्री कोई छः महीने तक इसी रोग की मारी रात दिन चिल्लाया करती थी और अन्त में उस की नाक बैठ गई और मुंह कैसा बुरा हो गया कि उस की ओर देखा भी नहीं जाता था। मक्खियां सदैव घेरे रहती थीं और अन्त को सब शरीर गल गया। हाथ पांव मारे गये और कई जगह हाथ पांव में घाव हो, कीड़े भी पड़ गये और वह बड़ा भारी कष्ट पा, कोई एक वर्ष से अधिक में तड़फ २ कर मरी। बेटी ! जिस ने उस का दुःख देखा है और ख़याल रहा होगा, वह अवश्य उस को बुरा कह कर अतिकाम को भी बुरा बतलावेगी॥

चावली—चची ! यह भी तौ समझा दो कि स्त्री पुरुष का विवाह क्यों किया जाता है ? क्योंकि विवाहित स्त्री पुरुष भी तौ व्यभिचार करते हैं, इस में तौ उन को कोई भी बुरा नहीं कहता॥

चन्द्रमुखी—बेटी ! विवाह व्यभिचार के लिये नहीं है वरन सन्तान उत्पन्न करने के लिये है। जो स्त्री व पुरुष सन्तान करने के सिवाय अतिऋतु करते हैं, वह भी व्यभिचारी हैं और भांति २ के दुःख पाते हैं और अपनी मूर्खता से आगे की सम्पत्ति का नाश कर अनेक प्रकार के रोगों में फंस जाते हैं। देखो मुझे एक मुनि का वचन याद आगया :-

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं
संपूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥१॥

इस मनुष्यदेह की चार अवस्था हैं। एक वृद्धि, जिस को उन्नति का समय कहते हैं। दूसरी यौवन, जिस को युवा अवस्था का आदि कहते हैं। तीसरी सम्पूर्णता, जो पूरी युवा अवस्था है। चौथी आदि बुढ़ापा है। इन में सोलह वर्ष तक पहली, पच्चीस वर्ष तक दूसरी अवस्था है और पच्चीस से लेकर चालीस वर्ष से पहिले तीसरी अवस्था है। चौथी चालीस वर्ष के

पीछे। जो कोई पहली अवस्था में अधिक रति करता है, वह कुहाड़े से काटे वृक्ष या डण्डे से तोड़े मिट्टी के घट की नाईं हो, अवस्था भर हाथ मलता रहता है और फिर कुछ भी सुधार नहीं कर सकता। दूसरी अवस्था में भी जो कोई अपने शरीर व वीर्य की रक्षा नहीं करता, वह भी सब अपनी उन्नति खो बैठता है। तीसरी अवस्था में जो मनुष्य अपनी स्त्री में गर्भ रख, गर्भ रहे पीछे एक वर्ष तक ब्रह्मचर्य न रक्खेगा, वह भी बना बनाया घर धूल में मिला देगा। चौथी अवस्था में भी जो कोई अतिविषय करता है, वह भी कुष्ठ, भगन्दर आदि रोगों में फंस, दुःख उठाता है और जो इन चारों की नियमानुसार रक्षा करता है वह आप भी सुख पाता है और २ लोगों को भी सुख देता है॥ ए चावली! इस से यह फल निकलता है कि विवाह विषय के लिये नहीं, वरन सन्तानोत्पत्ति करने के लिये है। अब मैं एक और दृष्टान्त तुम को सुनाती हूं, उस से तुम को पूरा विश्वास होजायगा। देखो, तुम्हारे पिता जी ने वह बछेरा पाला था, जिस का बड़े प्यार से पालन करते और रातदिन प्रबन्ध रखते थे कि किसी घोड़ी पर न छूट जाय। एक दिन पांच वर्ष की अवस्था में जब कि वह जवान होगया, एक घोड़ी पर साईस ने छोड़ दिया। तब क्रोध कर उन्होंने उस से कहा कि तैंने इस बछेरे का नाश कर दिया, अब यह किसी कर्म का न रहा और सवारी भी अच्छी न देगा और अन्त को उसे ख़राब समझ, अलग ही करदिया तो अब समझलो कि उन्होंने उस घोड़े का घोड़ी पर एक बार पड़ना हानिकारक समझा। भला जब पशु विषय से बिगड़ जाते हैं तो मनुष्य कैसे ठीक रह सकता है? सिवाय इस के यह भी विचार करो कि मनुष्य और पशुओं में केवल बुद्धि का ही भेद है, क्योंकि खाना, पीना, डरना, विषयादि यह मनुष्य और पशुओं में तुल्य ही हैं। केवल परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि ही अधिक दी है और बुद्धि ही के द्वारा उस को प्रबन्ध करने होते हैं। इन सब स्त्रियों में से अवश्य दो चारों को ख़बर होगी कि जिस समय तक गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि को गर्भ रखने की इच्छा नहीं होती, उस समय तक नर उन के पास नहीं जाता और खुला हुवा साथ २ फिरा करता है, जिस समय उन के गर्भ का समय आता है, उसी समय सङ्ग करता है और एक बार में गर्भ रह जाता है। गर्भ रहे पीछे भी कभी कोई नर मादीन के पास नहीं जाता। इस से भले प्रकार प्रकट होता है कि नर मादह या स्त्री पुरुष का सम्बन्ध केवल सन्तानोत्पत्ति करने के लिये है, व्यभिचार के लिये नहीं। जो

स्त्री पुरुष सन्तानोत्पत्ति के सिवाय सङ्ग करते हैं, वे पापी हैं और भांति २ के दुःख पा, बल पौरुष को हीन कर, प्रमेह आदि रोगों में फंस, अपना शरीर जल्द नष्ट कर देते हैं। देश और जाति को सुख पहुंचाना तो कहां, वरन अपना भी पालन धर्मयुक्त नहीं कर सकते ॥

चावली—अच्छा चची ! यह तो बतला दो कि स्त्री पुरुष को सब अवस्था में कै वार रति करके कितनी सन्तान उत्पन्न करनी चाहियें ॥

चन्द्रमुखी—बेटी ! दश वार रति करके दश सन्तान उत्पन्न करनी चाहियें॥

चावली—इस रति का समय कौनसा है ?

चन्द्रमुखी—बेटी ! जब स्त्री मासिक कर्म से निवृत्त हो तो मासिककर्म के आदि से सोलह दिन के मध्य जिस वार मासिक कर्म में कलेजा बहुत धड़कता रहे, वही गर्भस्थान का समय है। अब तुम समझलो कि जो मनुष्य इस भांति सन्तानोत्पत्ति करेगा और व्यभिचार से बचेगा, वह अवस्था भर सुख पावेगा ॥

चावली—चची ! व्यभिचार से मनुष्य कैसे बच सकता है ?

चन्द्रमुखी—बेटी ! स्त्री कभी सिवाय गर्भस्थापन के पुरुष की इच्छा न करे और पुरुष विना स्त्री के गर्भस्थापन की इच्छा के रति न करे तो दोनों आनन्द से रहेंगे। क्योंकि गर्भस्थापन के समय जो रति किया जाता है उस में अधिक इच्छा नहीं बढ़ती और समय में रति करने से अधिक इच्छा बढ़ जाती है और वही विकार अर्थात् बिगाड़ का कारण होती है ॥

अब ध्यान करलो कि जब स्त्री या पुरुष को रति की इच्छा न हो तो वह कैसे सुख और आनन्द से रहेगा और कभी उस को काम न सता सकेगा। काम सदैव कामी आदमी ही को सताता है। जैसे कि मालिक अपने नौकर से ही काम लेता है। इस लिये स्त्री पुरुष को चाहिये कि काम के वश में न पड़ें और गृहस्थ होकर दश सन्तान उत्पन्न कर, स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को स्त्री पुरुष न समझें और फिर कभी काम में न फंसे और तप कर, सब प्रकार नियमानुसार अवस्था पूरी करें ॥

चावली—चची ! मैंने तो इसे भले प्रकार समझ लिया। अब इन सब से पूंछलो कि इस काम के विषय में जिस किसी को शङ्का रही हो वह कहदे ॥

चन्द्रमुखी—क्यों बहनो ! आप ने समझलिया या और कुछ कहूं ॥

हरदेवी—बहन! यह और बतलादो कि स्त्री को रति किस अवस्था में करनी चाहिये॥

चन्द्रमुखी–बहन! सोलह वर्ष पीछे रतिकर्म का समय है। सोलह वर्ष से पहिले तो कहीं शास्त्र में नहीं लिखा। हां जो कोई स्त्री अपनी पच्चीस वर्ष की अवस्था तक रति न करे तो वह पूरा आनन्द उठा सकती है और पूरी सौ वर्ष की अवस्था पावेगी और मरने के समय तक आंख, नाक, कान, दांत, हाथ, पांव सब इन्द्रिय चलती और वश में रहेंगी और सब से विशेष बात यह होगी कि काम उसे कभी न सतासकेगा। अब भले प्रकार शोच लो कि यह काम दुःखका कारण है और कामी को कभी सुख नहीं मिलसकता॥

हरदेवी–क्यों बहनों! कुछ और पूंछना है तो पूंछ लो फिर यह और कुछ वर्णन करेंगी॥

सब–हम को अब कुछ पूछना नहीं, हमने इसे भले प्रकार समझ लिया

चन्द्रमुखी–बहन! अब क्रोध की वार्त्ता सुनो—

इस को गुस्सा भी कहते हैं। मेरे विचार में तो इस समय तुम सब में से कोई भी नहीं कि जिस को अपनी अवस्था में एक दो बार क्रोध न आया हो और सब जानती हैं कि क्रोध की दशा में कोई भी अपने आपे में नहीं रहती। कोई २ दूसरों को भला बुरा कहती हैं। कोई २ किसी को मारती हैं, जिस से उस को दुःख होता है। जिस से पीछे उस के सहायकों की शुश्रूषा करती हैं और उन से भला बुरा सुनती हैं। कोई २ अपने प्राण भी खो देती हैं लड़ाई सदैव क्रोध से आरम्भ होती है। देखो क्रोध की अधिकता से ही एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को मार डालता है और राजदर्बार से आप भी मारा जाता है। उस समय इस क्रोध के द्वारा दो प्राणी का घात होजाता है। जो क्रोध न किया जावे तो दोनों आनन्द से रहें और किसी को किसी भांति का दुःख न हो, तुम सब को याद होगा कि जिस समय शूर्पणखा ने सीता जी के खाने का मनोरथ किया और श्रीमान् रामचन्द्रजी के इशारे से लक्ष्मण जी ने क्रोध में शूर्पणखा के नाक कान काट डाले और इसी कारण से खर दूषण लड़ने आये कि वह भी मारे गये और शूर्पणखा के नाक कान काटने और खर दूषण के मारे जाने की ख़बर सुन, क्रोध में रावण सीता जी को हर लेगया और दोनों को दुःख उठाना पड़ा। अर्थात् रावण का तो

उस क्रोध में कुटुम्ब सहित नाश हो ही गया परन्तु रामचन्द्र जी को भी अवस्था भर सीता जी का वियोग उठाना पड़ा और गर्भवती सीता जी को घर से निकाल सब संसार में अपनी निन्दा कराई। जो क्रोध न करते तो दोनों में से कोई दुःख न उठाता। इस से भी आप समझ लेवेंगी कि क्रोध करने से दुःख ही होता है, सुख नहीं होता॥

चावली–चची! यह तो समझादो कि क्रोध मनुष्य कैसे रोक सकता है?

चन्द्रमुखी—(हंसकर) चावली! तुम को याद होगा कि जिस समय तुम ने उदास हो, मुझ से कहा था कि अनपढ़ों में तो पढ़े हुवे की मिट्टी खराब है और हरदेवी जयदेवी ने बुरा भला कहा था और मेरे समझाने पर भी मुझ से क्रुद्ध हो कर कठोर वचन कहने लगीं थीं। उस समय तैंने कैसी शान्ति से उन को लज्जित किया। बस बेटा यही बात है कि दूसरे के क्रोध पर आप शान्ति ग्रहण करे। कठोर उत्तर न दे और अपना बिगाड़ होजाने पर भी यही समझ लेवे कि अब जो होगया सो होगया, फिर के लिये ऐसा प्रबन्ध करे कि कोई बिगाड़ न पहुंचाने पावे॥

हरदेवी–बहन! यह तो बड़ी कठिन बात है कि कोई अपना बिगाड़ करे या अपने को दुःख देवे और उस पर क्रोध न किया जावे॥

चन्द्रमुखी–निस्संदेह शान्ति कठिन बात है, परन्तु विचार तो करो कि उत्तर देने का फल क्या होता है कि दूसरा भी कठोर प्रत्युत्तर देता है और मुंहज़ोरी से हाथापाई हो जाती है। शान्ति का फल यह होता है कि दूसरा थोड़ी देर में बक बका चुप हो जाता है। देखो जो रावण शूर्पणखा के नाक कान कटने का क्रोध सहलेता तो कुटुम्बसहित क्यों नाश होता। शान्ति का फल पहिले आप को उस लड़ाका और बहू की कहानी में चावली सुना चुकी है। जो वह बहू भी मुंहां मुंह उत्तर देती तो लड़ाका लड़ना न छोड़ती, परन्तु उस ने शान्ति कर सब गालियां उस की सुनीं, इस लिये लाचार हो, लड़ाका को लड़ाई छोड़नी पड़ी। बहनो! बहुत करके लड़ाई इस क्रोध ही से होती हैं। देखो मैं तुम को एक कहानी सुनाती हूं॥

दो लौमिड़ियों की कहानी

एक लौमड़ी—ए बहन! आज तो हम तुम लड़ें?

दूसरी लौमड़ी-भला तू बावली है, अच्छी तरह आनन्द से बैठे बिठाये लड़ना चाहती है, यह कुछ समझ की बात है ?

पहिली-बावली होगी तुम, मैं तो दिल्लगी के लिये लड़ना चाहती हूं ॥

दूसरी-(यह समझ कि इसको क्रोध आगया)अच्छा, क्षमा करो। मैं भूलगई॥

पहिली- मैं तो जब मानूंगी, जब तुम आज लड़लोगी ॥

दूसरी-अच्छा, जैसे तेरी मर्ज़ी, परन्तु यह तो बतला कि लड़ाई कैसे होगी॥

पहिली-मैं एक पत्थर लाती हूं और अपना बतलाऊंगी, तुम अपना बतलाना,बस मुझ में और आप में ख़ूब लड़ाई होगी और दुनियां तमाशा देखेगी ॥

दूसरी—अच्छा, जो तेरी इच्छा ॥

पहिली-(एक पत्थर ला) यह पत्थर मेरा है ॥

दूसरी-बहन ! तेरा है तो तू ले ले ॥

पहिली-वाह ! भला ऐसे कहीं लड़ाई होती है ? लड़ाई जब हो सकती है कि जो कुछ मैं कहूं तुम उस के विरुद्ध कहो ॥

दूसरी-अच्छा बहन ! तेरे मन में आवे सो कर मैं तो न लड़ूंगी ॥

अब इस से विचार करलो कि लड़ाई एक ओर से नहीं होती सदैव क्रोध आजाने पर दोनों ओर से होती है। जो एक भी क्रोध को शान्त कर सकती है तो कभी लड़ाई नहीं होती। सिवाय इस के क्रोध में बहुत से कठोर वचन कहे जाते हैं कि जिस का ध्यान दूसरे के मन से कभी नहीं जाता, और फिर जन्मभर को शत्रुताहो जातीहै और कभी मन नहीं मिलता।किसीने कहा है कि-

दोहा

मन मोती अरु दूध को, इन को यही स्वभाव ।
फाटे पर फिर ना मिलें, कोटन करो उपाय ॥

इन सब बातों से यह फल निकलता है कि लड़ाई विना क्रोध के नहीं होती। इस को भी छोड़ दो तो तुम को यह भी ज्ञात होगा कि क्रोध में मनुष्य की बुद्धि बिगड़ जाती है। देखो एक खेल शतरञ्ज का होता है, उस में मनुष्य

को शान्तचित्त रहना आवश्यक है। जो कोई शान्तचित्त रहता है, वह ही जीत पाता है, नहीं तो हार जाता है। चावली ! तेरे लाला जी उन महाराज के साथ शतरञ्ज खेला करते हैं। मैंने देखा है कि वह खेलते समय आपस में कैसी कड़वी २ बातें कहते हैं। उन बातों से उन का मनोरथ यह नहीं कि आपस में लड़ें बरन यह प्रयोजन होता है कि दूसरे को क्रोध आजाय और वह क्रोध की दशा में विना शोचे चाल चल दे और हम उस को मात दे दें ॥

चावली-आहा चची ! अब मैं समझी । मैं बड़े आश्चर्य में थी कि यह क्यों ऐसे कठोर वचन कहते हैं। ठीक अब समझ में आगया ॥

चन्द्रमुखी-बहन ! क्रोध में यह बात ही नहीं कि केवल साधारण बिगाड़ हो और समय ही निरर्थक जाय, बरन बुद्धि भी नष्ट हो जाती है और भांति २ की अनुचित बातें मुख से निकलती हैं कि जिन से दूसरे निर्दोष मनुष्य को हानि पहुंचाई जाती है ॥

हरदेवी-बहन ! जिस समय कि दूसरी स्त्री बुरी २ गालियां देती हैं, उस समय मन नहीं मानता और लाचार उत्तर देना ही पड़ता है ॥

चन्द्रमुखी-बहन ! भली भांति विचार लो और समझवाल जानती भी हैं कि गालियां क्रोधदाता शब्द हैं, कुछ हानिकारक नहीं। जो कुछ भी हानिकारक होतीं तो अब तक हज़ारों परिवार नाश को प्राप्त होगये होते परन्तु कुछ भी नहीं हुआ। केवल क्रोधदाता शब्द हैं। निःसन्देह उन को सुन क्रोध आजाता है और उसी क्रोध में तुरन्त प्रत्युत्तर दिया जाता है कि जिस का फल कुछ नहीं निकलता। जो थोड़ा सा शान्त होकर चुप लगा जाय तो फल वही हो जो उस लड़ाका की कहानी में चावली ने दिखलाया था। अब आप सब प्रकार से समझ गई होंगी कि क्रोध भी दुःख का कारण है। अब जो कुछ और शङ्का हो तो निवारण करलो, मैं आगे मद का वृत्तान्त कहूंगी ॥

सब स्त्रियां-बहन ! अब और आवश्यकता नहीं। बस हम को इतना ही सुनाना बहुत है। हमने समझ लिया ॥

चन्द्रमुखी-बहनो ! तीसरा मद, जिस को कोई २ तो नशा कहते हैं और कोई २ अभिमान। ये दोनों मद हैं। पहिले नशे की दशा सुन लो। नशे में

मनुष्य को कुछ सुध नहीं रहती और यह भी ज्ञात नहीं होता कि मैं क्या कर रहा हूं और कहां हूं। शरीर की सुध ही नहीं रहती। उचित अनुचित का कहना ही क्या है, अपना पराया भी नहीं जान पड़ता। हानि लाभ की ओर ध्यान ही नहीं रहता। प्रयोजन यह है कि कुछ बुरा भला नहीं सूझता। आचार की तौ यह दशा हो जाती है कि कोई २ तो मोरियों के सड़े पानी में लोटते हैं और कोई २ उसी नशे में भक्ष्य अभक्ष्य वस्तु खालेते हैं। कोई २ और बुरे २ कर्म करने लगते हैं। बहन की सुध रहती है न मा की, न स्त्री की, न पुत्र की। उस समय की दशा बड़ी भयानक हो जाती है। यह विचार ही नहीं रहता कि किसी को दुःख पहुंचा रहा हूं या सुख। अपनी ही कहे जाता है, दूसरे की सुनता ही नहीं। यह विचार भी नहीं कि जो कुछ कर रहा हूं, ठीक है या बेठीक। कभी २ अपने हाथ पांव को भी तोड़ लेता है। कोई २ मनुष्य नशे की दशा में आग में जल जाता है। कोई २ पानी में डूब जाता है और घर की चीज़ों का तोड़ना फोड़ना तौ साधारण बात हो जाती है। चावली! तैने उस शराबी को देखा होगा कि जो मार्ग में उस दिन पड़ा था और कुत्ता उस के मुंह पर मूत्र डाल रहा था। प्रयोजन यह है कि जब उस को अपनी सुध ही नहीं रहती तौ धर्म अधर्म का कहना ही क्या है। सिवाय इस के एक बात और भी बतलाऊंगी कि किसी धर्म में स्वर्ग मांगा है, किसी में राज्य, किसी में सम्पत्ति, किसी में परमात्मा का दर्शन। परन्तु हिन्दूधर्म में यही मांगा है कि " ए परमात्मा! हमारी बुद्धि शुद्ध कर " अब इस से समझ लो कि जिस धर्म में बुद्धि के शुद्ध कराने की प्रार्थना हो और नशे की चीज़ें खाकर बुद्धि भ्रष्ट की जाय तौ वह अधर्म हो सकता है या धर्म? नहीं २ नशा खाने वाला सदैव धर्म त्याग अधर्म को ग्रहण करता है और कभी २ नशे की दशा में अपने ऐसे भेद कह बैठता है कि जिन के कारण बड़ी भारी हानि उठानी पड़ती है। इस से भी समझ लो कि जिस कार्य में हानि हो वह दुःख का ही कारण होता है और वही दुःख हो सकता है, कभी सुख नहीं हो सकता॥

अब रहा अभिमान (ग़रूर) यह भी एक भ्रान्ति का नशा है, जो अज्ञानता से उत्पन्न होता है और सदैव मूर्ख मनुष्य ही में अधिक बताया जाता है। विद्वान् मनुष्यों में भी क्रोध के होने से उत्पन्न हो जाता है। जिस को यह होता है वह अपने को बुद्धिमान्, चतुर या धर्मात्मा और औरों को

मूर्ख और दुराचारी समझ तुच्छ समझने लगता है। जिस का फल यह होता है कि सब लोग इस को बुरा जान वैरी हो जाते हैं, जिस से वह भान्ति२ के दुःख में फंस, किसी समय सुख नहीं पाता और अभिमान के कारण अपने को विद्वान् समझ, दूसरों से सम्मति भी नहीं लेता और अपनी ही बात को ठीक मानता है। इस लिये उस के कार्य भी बिगड़ जाते हैं और अनेक प्रकार की हानि उठाता है। अब विचार करलो कि सब लोग शत्रु हो गये और सब कार्य में हानि होने लगी, उस समय क्या दशा होगी। तुम से मैंने रावण का वृत्तान्त कहा ही है। यह बड़ा अभिमानी था। अपने बल के समीप किसी को कुछ भी नहीं समझता था। उस के बान्धव व मन्त्रियों ने बहुत ही समझाया। पहिले तौ इस के प्यारे मन्त्री मारीच ने ही इस को समझाया और फिर बिभीषण और इस की माता और मन्त्रियों ने, परन्तु अपने बल के अभिमान में इस ने रामचन्द्र जी को कुछ भी न समझा। फल उस का यही हुवा कि कुटुम्बसहित मारा गया। मुझे और भी बहुत सी कहानी याद हैं, परन्तु बढ़ाव होने के कारण तुम से वर्णन नहीं करती और यह भी समझाती हूं कि इस रावण के दृष्टान्त से ही तुम को शङ्का न रही होगी। भली भांति विश्वास हो गया होगा कि अभिमानी का नाश अवश्य होता है। सो यह तौ तुम को भले प्रकार ज्ञात ही है कि अभिमानी को कोई अपने तुल्य नहीं दीखता और थोड़े ही विचार से जान लोगी कि परमात्मा ने एक से एक अधिक बनाया है। मनुष्य के जीवन का यह हाल है कि ठोकर लगी और प्राण निकल गये। धन की यह दशा है कि चाहे राजा छीन ले, या चोर लेजाय, इस को स्थिरता ही नहीं। फिर अभिमान मूर्खता नहीं तौ कुछ और है? और मूर्खता का फल सदैव दुःख निकलता है। बस समझ लो कि अभिमान दुःख का कारण है, किसी समय सुख नहीं दे सकता। ऐसे ही बहुत सी मूर्खा स्त्रियां अपने रूप यौवन और सुन्दरता पर अभिमान कर, अपने पति आदि को दुःखी कर, सब कुटुम्ब को भी दुःखी कर, अपना ही ऐश्वर्य चाहती हैं। जिस का फल यह होता है कि सब कुटुम्ब उन्हें छोड़ देता है और अकेला पति उन के साथ रहजाता है। वह विचारा रात दिन दुःखी और निन्दित रहता है। कोई स्त्री का गुलाम बतलाता है। कोई मूर्ख व कपूत कहता है॥

बहनो! अब तुमने जान लिया होगा कि हम स्त्रियों की बड़ी हानि का

कारण यही क्रोध है। जो कोई इस को छोड़, अपने को तुच्छ समझ सब से प्रीति करे और अपने नातेदार व बगड़पड़ौसी से मेल रक्खे तौ कैसे सुख मिलें। देखो जिस समय कि अभिमान में अलग होजाने से कोई दुःख होजाता है तो कैसे २ विचार होते हैं कि लाचार अभिमान छोड़, शुश्रूषा करनी पड़ती है और उसी समय विचार होता है कि कष्ट भी उठाया और फल कुछ न मिला! अब मैं जानती हूं कि इस से भी आप को निश्चय हो गया होगा। जो कहो तो लोभ का वृत्तान्त सुनाऊं ॥

स्त्रियां—हां बहन! यह तो भली भांति समझ लिया। अब आगे कहो॥

चन्द्रमुखी—बहनो! "लोभ" भी बड़ा बुरा है। इस के पीछे भी मनुष्य अन्धा होजाता है, कुछ नहीं सूझता, भले बुरे का विचार नहीं रहता। हम सब में कोई स्त्री अवश्य ऐसी न होगी कि जिसने अपने गहने कपड़े के लालच से दूसरे का बिगाड़ न कराया हो या दूसरे की वस्तु पर मन चला, अपने को दुःखी न किया हो। बहनो! इसी लोभ के कारण बहुत से मनुष्य कारागार में जाते हैं। बहुत से अपने भाई बन्धुओं में बैठने के योग्य नहीं रहते और संसार में निन्दित होते हैं। देखो, कई एक मनुष्य तुमने अपनी आंखों से इसी लोभ से कारागार में जाते देखे होंगे। चावली! तुझे याद है, उस दिन वह कैसे सुन्दर २ नवीनावस्था वाले लड़के इसी लोभ से पुलिस के साथ बंधे जाते थे। लोभी मनुष्य बदनाम ही नहीं बरन अपना शरीर भी भङ्ग करालेता है और कहीं २ जान भी जोखम में आजाती है। मैं तुम को एक फ़क़ीर की कहानी सुनाती हूं॥

एक फ़क़ीर की कहानी

एक फ़क़ीर भीकी नाम अपने आसन पर बैठा है, स्थान भी सुन्दर बना है, लोगबाग बैठे करामात की प्रशंसा कर रहे हैं। जो कोई कुछ नक़दी भेट करता है, कह देता है—बच्चा! फ़क़ीरों को नक़दी से क्या ग़रज़? दो रोटियां चाहियें सो मालिक सांझ को भेज ही देता है॥

मुसाफ़िर—(हाथ जोड़) बाबा साहब! मेरे ऊपर थोड़ी सी कृपा कीजिये। मैं परदेशी हूं, यहां कोई मेरा सहायक नहीं। आप की शरण हूं।

फ़क़ीर—कह बाबा ! फ़क़ीर के पास क्या रक्खा है और जो कुछ है, वह देने को हाज़िर है ॥

मुसाफ़िर—बाबा साहिब ! अकेले में सुन लीजिये तो अरज़ करूं ॥

फ़क़ीर—नहीं बच्चा ! सब के सामने कहो ॥

मुसाफ़िर—बाबा साहिब ! मेरे पास यह हज़ार रुपये हैं, रातभर मुझ को चोर घेरे रहते हैं, सोने नहीं देते । आप हुक्म दें तो मैं आप की झोंपड़ी में रखदूं ॥

फ़क़ीर—(मन में प्रसन्न, प्रकट में क्रुद्ध) नहीं बच्चा ! नहीं, फ़क़ीर के पास से चलदो। फ़क़ीर ऐसा लालच नहीं करते और न किसी की चौकसी करते हैं । चेला ! इस को निकालदो (और दूसरे चेले से कान में) देखो इस को अकेले में लाओ (अब पहिला चेला उस को धक्के मार, मकान से बाहर निकालता है और दूसरा तूंबा झोली उठा, पीछे २ जाता है । मुसाफ़िर बेचारा उदास दूर जा, एक पेड़ के नीचे निराश बैठता है)

चेला—कहो बाबा ! कैसे उदास बैठे हो, क्या किसी ने सताया है ?

मुसाफ़िर—नहीं भाई ! सताया तो किसी ने नहीं । हमने इस फ़क़ीर से कहा था कि हमारे कुछ रुपये रखले, परन्तु अन्यायी ने हम को पिटवा कर निकलवा दिया ॥

चेला—अरे भाई ! तुम भी बावले हो । देखो तुमने बहुत से मनुष्यों के सामने कहा होगा । जो सब के सामने रखवालेते तो बोलो, उन के घर में चोर कैसे छोड़ते ? तुम सांझ को हमारे साथ चलना, हम तुम्हारे रुपये कहीं धरती में गड़वा देंगे । गुरु तो हमारे छुयेंगे ही नहीं, परन्तु जब तुम लौट कर आओ, वहीं से उखाड़लेना ॥

मुसाफ़िर—प्रसन्न हो, अच्छा तो मैं बैठा रहूं ॥

चेला—हां यहीं बैठे रहो, मैं भिक्षा लेकर आता हूं, जो अवसर हुआ तो अभी लेचलूंगा ॥

अब चेला दो चार घर घूम, झट पट लौट, आगया और उधर फ़क़ीर ने सब लोगों को अलग कर दिया और चेला मुसाफ़िर को साथ ले फ़क़ीर साहब के पास पहुंचा ॥

फ़क़ीर—अरे चेले ! इसे क्यों ले आया ? यह तो रुपया लिये फिरता है। अरे बाबा ! हम फ़क़ीरों को रुपये से क्या मतलब ॥

चेला—मुरशद ! यह परदेशी है, विचारा किसी को जानता तक नहीं, फिर कहां जाय। आप तो सब का भला करते हैं। इस के भी रुपये कहीं रखवा दीजिये ॥

फ़क़ीर—अच्छा तो यों क्यों न कहो, तुमने इस से इक़रार कर लिया है। (और मुसाफ़िर से) अच्छा बाबा ! लाचार हैं, जब इस ने तुम से कह लिया। अच्छा तुम इन को कौने में दबा दो। जब आओ, वहीं से उखाड़ लेना॥

अब मुसाफ़िर कौने में रुपये गाढ़ अपनी यात्रा को चलदिया और कह गया कि दो महीने पीछे आकर लेजाऊंगा। मुसाफ़िर के जाते ही फ़क़ीर ने अपनी एक आंख फोड़, मकान का दरवाज़ा बदल डाला। जिस से मुसाफ़िर आने पर न पहिचाने। अब मुसाफ़िर आया और मकान तलाश करता है, न मकान है और न फ़क़ीर दीखता है, परन्तु एक काणा फ़क़ीर बैठा है ॥

मुसाफ़िर—बाबा साहिब ! यहां एक मियां भीकी रहते थे, वह कहां गये और उन का मकान क्या हुआ ?

फ़क़ीर—अरे बच्चा ! भीकी यहां कहां, उस को तो कुछ दिन हुये कि यहां से चला गया ॥

मुसाफ़िर—(विस्मित हो) हा ! अब कैसे होगी ॥

फ़क़ीर—अरे बच्चा बतला तो सही क्या हुआ, क्या बात है ?

मुसाफ़िर—बाबा साहिब ! मैं उन के पास एक हज़ार रुपया अमानत रख गया था, अब तो लुटगया। मेरी तो उमरभर की कमाई थी। मैं तो अब किसी काम का न रहा। हाय ! लुटगया, हाय लुटगया, कह २ रोने लगा ॥

फ़क़ीर—अरे हरामज़ादे बावला हुआ है। जा ढूंढले भीकी को। यहां किस से कहता है। चेले ! इसे निकाल दो ॥

यह कहते ही चेलों ने धक्के मार निकाल दिया। यह विचारा विपत्ति का मारा वस्ती में रोता फिरता था कि एक धर्मात्मा स्त्री ने इसे रोता देख बुला लिया ॥

स्त्री—ऐ मुसाफ़िर ! तू ऐसा क्यों रोता है ?

मुसाफ़िर—बहना ! क्या कहूं मैं तो लुट गया। इस वस्ती में कोई ऐसा नहीं जो मेरी सहायता करे ॥

स्त्री—अरे ! भाई कुछ कह तो सही, क्या बात है, देख जो कुछ सहायता हो सकेगी तो मैं करूंगी ॥

मुसाफ़िर—बीबी! दो महीने हुवे कि यहां एक भीकी फ़क़ीर रहता था। मैंने उस के मकान में अपने एक हज़ार रुपये एक कोने में गाड़ दिये थे, उस समय मकान का दरवाज़ा पूर्व को था, अब उस मकान का दरवाज़ा तो पश्चिम को है और भीकी वहां है नहीं। एक काणा फ़क़ीर बैठा है, मैंने जब ज़िकर किया तो उसने मुझे धक्के मार २ निकाल दिया॥

स्त्री—बस भाई! यही काम है। तुम इतमीनान से ठहरो। मैं अभी प्रबन्ध करती हूं। देखो मैं पहिले से जाकर अपना गहना फ़क़ीर के सामने फैला दूंगी। जिस समय कि मैं गहना फैलाचुकूं, तुम चले आना और रुपया मांगना वह तुरन्त तुम को दे देंगे और (बांदी से) ए बांदी! बहुत जल्द पालकी लाओ। देखो जिस समय इस मुसाफ़िर के रुपये मिल जायें, तुम तुरन्त पहुंच कर मुझ से कहना कि मियां तो आगये॥

अब पालकी आई और स्त्री पांच चार हज़ार रुपये का गहना ले, फ़क़ीर के मकान पर पहुंची। फ़क़ीर ने सब लोगों को अलग कर दिया और पालकी उतारी गई॥

स्त्री—(घूंघट खेंच, गहना फैला) बाबा साहब! मेरे मियां का ख़त बुलाने को आया है और मेरा इरादह कल उन के पास परदेश में जाने का है। आप तो जानते हैं कि आज कल चोरों का बड़ा ज़ोर है और आपके सिवाय मुझे किसी का विश्वास भी नहीं। महरबानी करके मेरा गहना आप रखलें। मैं आप का बड़ा गुण मानूंगी॥

फ़क़ीर—(मुसाफ़िर की ओर देख) अरे बाबा! तू कहां था? तू अपने रुपये क्यों नहीं ले गया? देख, जल्द उसी कोने में से निकाल लेजा॥

मुसाफ़िर—("बहुत अच्छा, बाबा साहिब!" कह, रुपये ले, खड़ा होगया)

बांदी—(फ़क़ीर साहब को सलाम कर) बीबी! मियां तो आप ही आगये और तुम को याद कर रहे हैं, चलो जल्दी चलो॥

स्त्री—बहुत जल्दी से गहना इकट्ठा करती है और मुसाफ़िर खड़ा हो, नाचता है। उधर बांदी भी नाचती है। इधर मियां भीकी भी बड़े उदास खड़े हो नाचते हैं॥

स्त्री—अरे मुसाफ़िर ! तू क्यों नाचता है ?

मुसाफ़िर—बीबी ! तुम्हारी बदौलत मेरे हज़ार रुपये मिलगये। इस लिये नाचता हूं ॥

स्त्री—बांदी ! तू क्यों नाचती है ?

बांदी—बीबी ! हमारे मियां आगये, मैं यों नाचती हूं ॥

स्त्री-मियां भोंकी ! तुम क्यों नाचते हो ?

भोंकी-बीबी ! यह नई बात सीखी। आंख भी फोड़ी, घर भी फोड़ा और रुपये भी हाथ न लगे। इस नई बात के सीखने से मैं भी नाचता हूं। अफ़सोस ! मैं अपने मुरशद के वचन भूलगया कि "बहुत लालच में आदमी थोड़े को भी खो बैठता है"

बहनो ! ऐसे ही विचार करलो कि लोभ बुरी बला है। यह लोभ ही भाई को भाई से अलग करता है। लोभ ही बाप बेटे को न्यारा करता है। लोभ ही के कारण सास बहुओं में लड़ाई होती है। लोभ ही के कारण आपत्ति मिलती है। लोभ ही के कारण मिलने बैठने वाले दुःखी करते हैं। देखो, लोभ ही के कारण बहुत से कुल नष्ट होगये। इसी लोभ से कौरव पाण्डवों का बड़ा भारी कुल नष्ट होगया। जहां देखो इसी लोभ अर्थात् लालच का झगड़ा है। गृहस्थी धन व सन्तान के लालच में पड़ रहा है। स्त्री विवाह ही को आई है, परन्तु यह इच्छा है कि सब घर की मालिकनी बनूं। पति अपनी कमाई से सास श्वशुर देवर जेठ को कुछ न देसके। इसी लोभ से कुछ जाति या यों कहो कि अकाल में कोई २ अपने बाल बच्चों को बेच डालती हैं, लोभ में फंसने पर कुछ धर्म अधर्म का विचार नहीं करतीं। बहनो ! लालच बुरी बला है, यह मनुष्य की सब प्रतिष्ठा बिगाड़ देती है ॥

चावली- चची ! क्या कुछ मनुष्य ऐसे भी हैं कि जो अपने बच्चों को बेचते हैं ? क्या सरकार इस का कुछ भी प्रबन्ध नहीं करती ?

चन्द्रमुखी-हां, हैं। बेटी ! सरकार इस का क्या प्रबन्ध करे। मैं तुम को एक कहानी सुनाती हूं, राजपूताने की है। पांच छः वर्ष हुवे जब हुआ है ॥

कहानी

एक बनिये ने अपनी अठारह वर्ष की पुत्री का एक साठ वर्ष के बूढ़े से पांच हज़ार रुपये लेने ठहराकर विवाह ठहरा, सगाई करदी। जिस समय लड़की ने सुना, बड़ी उदास हुई और उदास हो, बाप से तो कुछ न कह सकी, परन्तु पुरोहित जी से–

लड़की–पुरोहित जी! मैंने आप का क्या अपराध किया है, जो साठ वर्ष के बूढ़े से मेरा विवाह किया जाता है?

पुरोहित–बेटी मैं क्या करूं, तेरा बाप नहीं मानता॥

लड़की–फिर आपभी तो धर्मके बाप हैं। आप मेरी सहायता क्यों नहीं करते?

पुरोहित–बेटी! मैं सब प्रकार से तैयार हूं, जो सहायता मुझ से लेना चाहती हो, दूंगा और पीछे न फिरूंगा॥

लड़की–अच्छा तो आप मुझ से धर्म करलें कि मैं तेरी सहायतासे न हटूंगा॥

पुरोहित–(जनेऊ हाथ में ले) बेटी! मैं जनेऊ की सौगन्ध खाता हूं, जब तक शरीर में प्राण बाक़ी हैं, तेरी सहायता से पीछे न हटूंगा॥

लड़की—अच्छा पिता जी! अब मैं अच्छासा वर ढूंढ़ती हूं, आप इस विवाह से पहिले मेरा उस के साथ विवाह करदें॥

पुरोहित–बहुत अच्छा, तू ढूंढ़ले॥

अब इस बात से तो लड़की को निश्चय हुवा और उसने शोचा कि कोई लड़का सुन्दर युवावस्था चतुर हो, उस से विवाह करलें और आगे की सब नीच ऊंच शोचलीं। आप जानते हैं कि धर्मात्माओं का परमेश्वर सहायक है। दैवयोग से एक लड़का कोई पच्चीस छब्बीस वर्ष का, जिस का इस समय तक विवाह न हुवा था, दूसरे गांव से बज्ञी करने आया और फिरता हुवा इस के द्वारे पर पहुंचा॥

लड़की–(उसे अलग लेजा) ए लड़के! तेरा विवाह होगया है?

लड़का–वीर! अभी तो मेरी सगाई भी नहीं हुई॥

लड़की—जो कोई तेरा विवाह करे तौ तू राज़ी है ?

लड़का—ले, मैं क्या राज़ी, मेरे मा बाप सब राज़ी । परन्तु मुझ ग़रीब का विवाह कौन करता है ? आज कल विवाह तौ रुपये वालों का होता है । भला तू मुझ से क्यों ठट्ठा करती है ॥

लड़की—नहीं, ठट्ठे की बात नहीं । जो तू मुझ से वचन भरले तौ मैं तुझे व्यौरेवार बतला दूं ॥

लड़का—ले, मैं गङ्गा और परमेश्वर की सौगन्द खाता हूं । जैसे तू कहेगी वैसे ही करूंगा और किसी से यह भेद न कहूंगा ॥

लड़की-अच्छा तू पहिले यह बतलादे कि तू हाड़ (जाति) में कैसा है ?

लड़का—मैं तेरे बाप भाई के साथ हुक्का पीता हूं । बिरादरी का कोई दोष मुझ में तो क्या मेरे कुल में भी नहीं ॥

लड़की—अच्छा तो सुन कि मेरे बाप ने वैशाख वदि १४ को मेरा विवाह उस फ़लाने बुड्ढे से पांच हज़ार रुपये ले, करना ठहराया है । अवश्य बरात आवेगी । पर मुझे वह स्वीकार नहीं । मैं तुझ से विवाह करना चाहती हूं । तू एक काम करना कि एक रुपया नक़द और चार आने के पैसे और थोड़ा सा घी और एक दीपक घी का और एक लोटा पानी, थोड़े से चावल और थोड़े से बतासे ले, उन सामने वाले पेड़ों में आ जाना । मैं पहिले तुझ से विवाह कर लूंगी और जिस समय कि रात को उस बुड्ढे से विवाह किया जावेगा, मैं साफ़ कह दूंगी कि मेरा विवाह तौ हो गया । बस फिर झगड़ा हो जावेगा और देखा जावेगा ॥

लड़का-यह तौ बड़े फ़ज़ीते की बात है । कहीं मैं राज्य में न पकड़ा जाऊं॥

लड़की-तू इस बात से निर्भय रह । मैं तेरा नाम तब तक न लूंगी, जब तक कि यह बात सब प्रकार निबट न जाये । मैंने सब पक्का प्रबन्ध कर लिया है परन्तु इस समय में तुझे बतलाऊंगी नहीं । तेरा तो केवल डेढ़ रुपये का ख़र्च है सो तू चाहे मुझ से लेजा । या तौ यह डेढ़ रुपया गया या तेरा विवाह हो गया, परन्तु ख़बरदार अपने मा बाप से भी न कहना और चुपके से दो घड़ी दिन रहे आ, मेरे सामने हो, इन्हीं पेड़ों में जा बैठना और थोड़ीसी आग भी ले चलना मैं वहां आकर सब प्रबन्ध कर लूंगी ॥

लड़का—अच्छा, जो तेरी मर्ज़ी, परन्तु देखो कहीं हंसी न हो ॥

प्रयोजन यह हुआ कि दोनों ने आपस में वचन कर लिये कि चाहे कुछ हो, परन्तु इसी दिन सब नेग जोग विवाह के कर लिये जावें और एक दूसरे के सिवाय और को ख़बर न हो। अब दूसरे दिन—

लड़की-(पुरोहित से) पिता जी! वर तो मैंने ढूंढ लिया, बहुत अच्छा, बिरादरी में ठीक, रूपवान्, पच्चीस छब्बीस वर्ष की आयु है। परन्तु मैं आप को बतलाऊंगी नहीं। आप एक काम करदें कि मेरे विवाह के दिन संध्या समय इन पेड़ों में चल मेरा विवाह पढ़ा देवें और किसी को ख़बर न होवे। फिर मैं देख लूंगी ॥

पुरोहित-बहुत अच्छा। मैं तयार हूं।

अब विवाह का दिन आया और बरात आई। बुड्ढे की गरदन हिलती देख, गांव में चर्चा करने लगे ॥

एक-भाई लोभ भी कैसी बुरी बला है। देखो लोभ के वश उस बुड्ढेको कैसी रूपवती युवती लड़की दी जाती है। हा! बड़े अन्याय की बात है ॥

दूसरा—भाई! पांच हज़ार रुपये भी तो थोड़े नहीं होते। रक़म भी तो पूरी है ॥

तीसरा-अरे! यह दुष्ट कितने दिन खावेगा। यह तो महीने दो महीने में मर ही जावेगा पर यह कन्या किस की जान को रोवेगी ॥

चौथा-अरे भाई! उस को तो अपने दाम से काम है। चाहे बेटी रांड हो या सुहागन रहे ॥

अब सांझ का समय आया और वह लड़का सामग्री ले, लड़की को दिखला, पेड़ों में जा बैठा और दिन छिपते ही जिस समय कि दीवे जले, लड़की ने पुरोहित जी को लेजा, घी का दीपक जला, आग पर घृत छोड़ा। पुरोहित के हाथ से विवाह करा लिया और एक रुपया पुरोहित जी को दिलवाया॥

पुरोहित-बेटी! मैं तुझ से दक्षिणा न लूंगा, क्योंकि मैंने ही तो तेरा दान किया है। तू तो अब मेरी धर्म की बेटी हो चुकी ॥

लड़का-अच्छा तो अब चलो ॥

लड़की-मैं इस भान्ति दबक कर न जाऊंगी। इस में तो मैं भगोड़ी कहलाऊंगी। तुम अब चुपके से अपने घर को चले जाओ और देखते रहो कि

थोड़े ही दिन में नियमानुसार जैसे दुनियां की बहू बेटी जाती हैं, मैं भी चलूंगी (और यह कह पुरोहित जी के साथ अपने बाप के घर चली आई)

मा-अरी लड़की ! आज तेरे ब्याह का दिन है, तुझ को ऐसे न फिरना चाहिये । तू कहां गई थी ? ख़बरदार बैठजा, तेरी भांवरों की तैयारी हो रही हैं ॥

लड़की-बहुत अच्छा, बैठती हूं । मैं यहीं पड़ौस में गई थी ॥

अब बरात तैयार हो भांवरों को आ गई और सब लोग इकट्ठे हो मढे के नीचे बैठे, पण्डित मन्त्र पढ़ने लगे। स्त्री राग गाने लगीं और लड़की बुलाकर वर के दाहिनी ओर बिठलाई गई ॥

पण्डित—बेटी ! दाहिना हाथ निकालो ॥

लड़की-(बांयां हाथ निकालती है)

पण्डित-यह नहीं ॥

लड़की-(फिर हाथ कपड़ों में ढांप लेती है)

पण्डित—नहीं बेटी ! दाहिना हाथ निकालो ॥

लड़की—(फिर बांयां हाथ निकालती है)

पण्डित—अरी तू बड़ी बावली है, तुझ से कईवार कहा कि दाहिना हाथ निकाल, परन्तु तू बांयां ही हाथ निकालती है ॥

लड़की—महाराज ! मेरे दाहिने हाथ का तो विवाह हो चुका । इस बांयें हाथ का आप को अख़्त्यार है, जिस से चाहें विवाह करदें। इसी लिये मैं दाहिना हाथ नहीं निकालती ॥

पण्डित—(विस्मित हो) यजमान ! यह दूसरा व्याह तो हम न पढ़ावेंगे॥

पञ्च लोग—भाई ! ऐसा अनर्थ तो न होना चाहिये । अरे अन्यायी ! दूसरा व्याह करते हो ॥

लड़के वाले—(बेटी वाले से) अरे ! तुम बड़े बेईमान हो । तुम को कुछ भी भय नहीं । इस व्याही लड़की का विवाह कैसे करते हो ॥

बेटी वाला—अजी सब झूंठ है । यह लड़की तो पागल होरही है । भला कहीं ऐसा हो सकता है कि मैं दूसरे विवाह करता ॥

एक मसख़रा-भाई ! यह तो हम को भी ज्ञात है कि इस लड़की का विवाह तौ पहिले हो चुका । अब दूसरे किया जाता है ॥

लड़के वाले-अच्छा पुरोहित जी ! तुम कह दो, क्या बात है ?

पुरोहित जी-भाई ! विवाह तौ पहिले हो चुका । अब यह तौ दूसरा ही विवाह है ॥

बेटी वाला-(घुड़क कर) कब हुवा है ? आये हो पुरोहित बन के नाहक़ पराई बेटी को दोष लगाते हो ॥

पुरोहित-मैं क्या दोष लगाता हूं ? तुम्हारी लड़की भी तौ कहती है ॥

लड़के वाला-अच्छा लाला ! जाने दो । तुमने जो हमारे साथ किया, सो तौ अच्छा किया । अब हमारे रुपये फेर दो । हम अपने घर को चले जावेंगे॥

बेटी वाला-रुपया तौ मेरे ख़र्च में आगया । अब मेरे पास नहीं है । लड़की मौजूद है, चाहे विवाहो चाहे न विवाहो ॥

एक बराती—अरे अन्यायी ! दूसरे विवाह करलें। तू तो भ्रष्ट हो गया और जाति बाहर होगा । परन्तु औरों को भी जाति बाहर करावेगा । चल बेईमान रुपये दे दे । नहीं तो इतने जूते लगेंगे कि खोपड़ी याद करेगी ॥

बेटी वाला—लाला ज़ुबान संभालो, मैं कोई अपने इक़रार से फिरता हूं ? जो रुपया दूं ? जाओ नालिश करदो, लड़की मौजूद है । विवाह कर लो । किसी बदमाश ने उसे बहका दिया है । भला ऐसा अंधेर हो सकता है कि मैं दूसरे विवाह करता ॥

अब इस तू तू मैं मैं के पीछे लड़के वाला अपने घर को चला गया और लड़की वाला रुपये ले अपने घर चुप हो बैठा ॥

वकील का मकान

वह सेठ, जिस ने अपने विवाह के लिये रुपया ख़र्च किया था, निराश हो लौट आया और निन्दा के डर से कुछ अपकीर्ति दूर करने के लिये राज-दर्बार में नालिश को तैयार हो, एक वकील साहिब के पास पहुंचा ॥

सेठ जी—अजी वकील साहब ! राम २ ॥

वकील साहब–राम २ सेठ जी साहब ! राम २, आइये आज कैसे २ आना हुआ ?

सेठ–मुन्शी जी ! क्या कहें। हमारा तो रुपया भी लुटा और बात भी गई॥

वकील साहब–भला सेठ जी ! बतलाइये तो सही क्या बात है ?

सेठ–अजी क्या कहें कहते हुवे शर्म आती है अब आप भी हंसी उड़ावैंगे॥

वकील साहब–अरे भाई ! कुछ कहोगे भी । आख़िर विना कहे तो हम कुछ कर ही नहीं सकते। महर्बानी करके बतला तो दो क्या बात है ?

सेठ–अजी ! मैंने अपने विवाह की तजवीज़ की थी और पांच हज़ार रुपये ठहरे थे ॥

वकील–(चौंक कर) क्या आपने अपनी शादी या किसी लड़के की ?

सेठ–नहीं जी, हमने अपनी ही शादी की तजवीज़ की थी, सो यार ! बरात भी पहुंच गई और भांवरों की तैयारी होगई । जिस समय भांवरों को पहुंचे तो लड़की ने कह दिया कि मेरा विवाह तो हो चुका ॥

वकील–क्या तुम किसी विवाही लड़कीसे शादी करतेथे? यार था तो ठीक॥

सेठ– अजी ! यही तो बदमाशी की ॥

वकील–यार ! तुम को यह सत्तर वर्ष की उमर में विवाह की क्या सूझी ? तुम तो क़बर में पैर लटकाये बैठे हो। अरे यार ! तुम को तो कभी ऐसा सुना भी नहीं कि औरतों से शौक़ है। यह आप को सूझी क्या कि सत्तर वर्ष की उमर में और विवाह ! !

सेठ—अजी ! क्या बताऊं, मैं तो आप जानते हैं, भक्त आदमी हूं। दिन रात में तीन बेर तौ पूजा करता हूं, परन्तु सब बिरादरी व कुनबे वालों ने मुझे बहका दिया कि तुम्हारे इतना धन है कौन संभालेगा, विवाह करलो, एक दो लड़के वाले हो ही जावेंगे । सो मेरे भी मन में आ गई, नहीं आप जानते हैं कि मुझे और विवाह से कौन कोथ । प्रथम तो बूढ़ा फूंस, दूसरे भक्त आदमी । अजी और एक ज्योतिषी ने कह दिया कि विवाह करते ही लड़का होगा ॥

वकील—अरे ज़ालिम! यह क्या ग़ज़ब हुआ । यार ! सच पूछो तो

बहुत अच्छा हुआ। जो कहीं किसी कम उमर से शादी हो जाती तो तुम तो आज मरे कल दूसरा दिन, परन्तु उस बिचारी का तो जन्म ख़राब हो जाता। अरे! ऐसी ही वारिस की हविस थी तो किसी को गोद ले लिया होता॥

सेठ—भाई! क्या बतलावें, लोगों ने बहका दिया। यार! इन बातों को तो जाने दो, अब हमारे रुपये निकलवाने का फ़िक्र करो॥

वकील– तो क्या आप रुपये भी पहले ही दे बैठे हैं?

सेठ–अरे भाई! भला बूढ़ों के विवाह में रुपये की पीछे को कौन मानता है

वकील–अच्छा तो कितना रुपया है?

सेठ–अजी रक़म तो पूरी है। पांच हज़ार चाहियें॥

वकील–फिर कुछ लिखा पढ़ी हुई है या जुबानी ही मामला है॥

सेठ––अजी! भला ऐसी बातों की लिखा पढ़ी होती है? पर गवाह बहुत हैं॥

वकील––अच्छा गवाह भरोसे के हैं और कुछ उस गांव के भी मिल जावेंगे॥

सेठ–अजी! बहुत आदमी। भांवरों के वक़्त तो सब मौजूद थे। बेटी वाला तो अब तक यही कहता है कि किसी ने इस को बहका दिया है अभी इस का विवाह नहीं हुआ। विवाह करलो। जो मैं विवाह न करूं तो रुपये फेर दूं। और तुम लड़की को भी तलब करादो, वह खुद रुपये का इक़रार कर देगी॥

वकील–सेठ जी! यह तो बतला दो कि महनताना क्या दोगे और शुकराना क्या?

सेठ––जो मांगोगे, वह देदेवेंगे। हमारा तुम्हारा मामला दोदो तो है ही नहीं॥

वकील–साहब! नहीं, मामला तो एक ही है। फिर महनताना तो मामूली लेंहींगे। फिर यार! शुकराना भी पांच सौ रु० से कम न लेवेंगे॥

सेठ–भाई! यह तो ज़ियादह हैं, परन्तु ढाई सौ महनताने के और ढाई सौ शुकराने के लेलो॥

वकील–बहुत अच्छा। आप तो हमारे निजके मवक्किलहैं, हम आपसे क्या उज़र कर सकते हैं। जो यह भी न दो तौ भी मुक़द्दमे की पैरवी को तैयार हैं॥

सेठ-जी ! आप अर्ज़ीदावा तो तयार कर लेवें ॥

वकील—बहुत अच्छा, अर्ज़ी दावा तयार करता हूं (और अर्ज़ी दावा लिखते हैं । सेठ बतलाता जाता है)

अर्ज़ीदावा

सेठ जवाहरमल वल्द भूरीमल क़ौम बनिया साकिन मौज़ा पटपरगञ्ज इलाक़ा राजपूताना—मुद्दई=वादी ॥

बनाम

लाला फ़क़ीरचन्द वल्द भिकारीदास क़ौम बनिया साकिन मौज़ा श्यामपुर इलाक़ा राज्य मज़कूर–मुद्दआइलह (प्रतिवादी)

श्री महाराजाधिराज ! वादी निम्न लिखित अर्ज़ करता है ॥

(१) प्रतिवादी ने वादी से पांच हज़ार रुपये का क़रारदाद कर अपनी लड़की श्रीमती भगवती की सगाई की, और यह क़रार पाया कि विवाह के दिन पहिले पांच हज़ार रुपये वादी प्रतिवादी को अदा करदे । पीछे भांवर डालले॥

(२) वादी ने विवाह के दिन अर्थात् वैशाख वदि १४ संवत् १९४० को पांच हज़ार रुपया नक़द अदा करदिया और भांवरों की तयारी हुई ॥

(३) जब भांवरों का समय हुआ तो श्रीमती भगवती ने कहा कि मेरा विवाह तो हो चुका है, दूसरा विवाह चाहे इन के साथ करदो ॥

(४) इस पर पञ्चान बिरादरी ने कहा कि दूसरा विवाह होना धर्मविरुद्ध है और सब लोग वापिस चले आये ॥

(५) वादी ने प्रतिवादी से पांच हज़ार रुपया वापिस तलब किया । प्रतिवादी को देने से इनकार है और बिनाय मुख़ास्मत मिति वैशाख वदि १४ से पैदा है॥

लिहाज़ा दादख्वाह हूं कि डिगरी पांच हज़ार रुपये मयख़र्चा बहक़्क़ मुद्दई बनाम मुद्दआइलह सादिर फ़रमाई जावे ॥

तहरीर मिती जेठ वदि १२ संवत् १९४०

अलब्द	वकालत क़बूल
——	————
सेठ जवाहरमल मुद्दई	केशव चन्द्र सेन वकील अदालत

अब दावा दायर हुआ और वकील साहिब ने नामावली गवाहों की दाख़िल की और उस में श्रीमती भगवती को भी तलब कराया ॥

दीवान—(हाथ जोड़, महाराज से) महाराज ! आज तो एक नये प्रकार का दावा दायर हुआ ॥

राजा साहब–क्या है ? बतलाओ तो ?

दीवान साहब–श्री महाराज सेठ जवाहरमल पटपड़गञ्ज वाले ने फ़क़ीरचन्द बनियां श्यामपुर के नाम पांच हज़ार रुपये विवाह की ठहराव के लौटाने की अर्ज़ी दी है। अर्थात् जवाहरमल ने पांच हज़ार रुपये दे, फ़क़ीरचन्द की बेटी से विवाह का प्रबन्ध किया था। भांवरों के समय ज्ञात हुआ कि उस लड़की का विवाह पहिले हो चुका है, इस कारण विवाह न हुआ। अब जवाहरमल अपना रुपया उलटा चाहता है और फ़क़ीरचन्द नहीं देता ॥

राजा—जवाहरमल की क्या उमर है ?

दीवान—श्री महाराज ! कोई सत्तर वर्ष की होगी ॥

राजा—अच्छा यह मुक़द्दमा हमारे सामने पेश किया जावे और लड़की भी बुलाई जावे ॥

दीवान—जो आज्ञा ॥

अब तारीख़ मुक़द्दमे पर वादी, प्रतिवादी, गवाह और लड़की सहित आये और भगवती डोली में बैठी दर्बार में बुलाई गई और बहुत से तमाशे देखने वाले मुक़द्दमा देखने को आये ॥

राजा–अच्छा, पहिले सेठ जवाहरमल से पूंछो, पीछे फ़क़ीरचन्द से ॥

जवाहरमल–महाराज ! मुझ से पांच हज़ार रुपये के क़रार पर फ़क़ीरचन्द ने इस भगवती का जो डोली में है, विवाह ठहराया। जिस समय भांवर आरम्भ हुईं तो भगवती ने कहा कि मेरे दाहिने हाथ का विवाह हो गया, बांये का इन के साथ कर दीजिये। इस पर हम लोगों ने कहा कि हम दूसरी बार विवाह नहीं कर सकते। हमारा रुपया फेर दो। फ़क़ीरचन्द कहते हैं कि अभी विवाह नहीं हुआ। विवाह कर लो ॥

फ़क़ीरचन्द–महाराज ! इस लड़की का विवाह अभी तक नहीं हुवा। महाराज ! जवाहरमल बूढ़े हैं इस लिये लड़की को किसी ने बहका कर ऐसा

कहलवा दिया है। यह विवाह करलें, मैं रुपये क्यों फेर दूं। जो विवाह से नांह करूं तो रुपये फेर दूं। मैं तो अपने इक़रार से नहीं फिरता॥

राजा—अच्छा लड़की! तुम कहो कि यह मामला क्या है?

भगवती—(डोली में से) श्री महाराज! हाल तो मैं ब्यौरेवार कह दूंगी, परन्तु एक शङ्का मेरी भी निवारण कर दी जाय तो बहुत अच्छा हो॥

राजा—वह क्या है, कहो।

भगवती-श्री महाराज! सब जगत् कहता है कि राजा सब का धर्म-पिता होता है और रानी सब की धर्ममाता। क्या यह ठीक है?

राजा-बेशक ठीक है॥

भगवती-तो जब आप मेरे धर्मपिता हैं, तो मुझ को किस का परदा? अब हुक्म दीजिये कि सब के सामने मैं अपना ब्यौरेवार समाचार कहूं॥

राजा-अच्छा पुत्रि! परदा छोड़ बाहर निकल, ब्यौरेवार कहो॥

भगवती-महाराज! एक बात मुझे और पूछनी है। मैं जानती हूं कि आप के दर्बारी पण्डित इस का उत्तर देंगे और वह यह है कि कहीं आप के शास्त्रों में लिखा है कि जब कन्या सोलह वर्ष की होजावे और मा बाप समान वर न ढूंढें। तो कन्या आप ढूंढ लें। क्या यह ठीक है?

राजा-(पण्डितों से) बोलो, इस में क्या उत्तर है॥

पण्डित लोग हां महाराज! लिखा तो है। मनु में लिखा है।

भगवती-(परदा छोड़) श्री महाराज! मेरी उमर अब अठारह वर्ष की है और मेरे पिता ने मेरा विवाह इन सत्तर वर्ष के बुड्ढे से पांच हज़ार रुपये ले, कुछ मेरे दुःख का ध्यान न कर, तजवीज़ की। अन्नदाता! जिस समय मुझ को ज्ञात हुआ उस समय मैंने विचार किया कि यह सत्तर वर्ष का बूढ़ा तो दो चार महीने में मर ही जावेगा, मैं अपना रंडापा कैसे पूरा करूंगी। हाय! मेरा यह बाप तो धन के लालच में मेरा सुखदुःख कुछ नहीं देखता। मैंने पड़ौस के पण्डित से पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि सोलह वर्ष के पीछे कन्या को अधिकार है कि अपने समान वर आप ढूंढले। इस पर मैंने पुरोहित जी से शिकायत की कि मेरे साथ आप ऐसा अनर्थ क्यों करते

हैं। पुरोहित जी ने कहा कि मैं सब प्रकार सहायता को तैयार हूं, परन्तु क्या करूं, तेरा बाप नहीं मानता। पांच हज़ार रुपये के लोभ ने उसे अन्धा कर दिया है। फिर मैंने कहा कि आप भी तो धर्मपिता हैं। मेरा समान वर से क्यों नहीं विवाह करदेते। उन्होंने कहा कि मैं तैयार हूं। इस पर मैंने (अपने पतिकी ओर इशारा कर) इन से विवाह के दिन शाम को पुरोहित जी के हाथ से विवाह करा लिया और सब विवाह कर्म पुरोहित जी ने पूरा किया। धर्मपिता जी ! अब विचार लीजिये कि इस में मेरा क्या दोष है। अब पुरोहित जी और मेरे पति दोनों यहां हैं। जैसा आप न्याय समझें, आज्ञा दें॥

राजा-(पुरोहित और भगवती के पति से) सुनो भाई ! भगवती का कथन सत्य है ?

दोनों-अन्नदाता ! यह सब सत्य है॥

राजा-(जवाहरमल के वकील से) आप का क्या महनताना व शुकराना ठहरा है और आप ने उस में से क्या पाया है ?

वकील-अन्नदाता ! ढाई सौ महनताना और ढाईसौ शुकराना क़रार पाया है और सेठ जवाहरमल ने मुझ को सब दे दिया॥

राजा-दीवान जी ! हुक्म लिखो। आज सब बयान सुने गये। हालात मुक़द्दमा अच्छी तरह से मालूम हुए। फ़क़ीरचन्द व जवाहरमल व बाबू केशवचन्द्रसेन वकील की ओर से यह बड़ा अनुचित कर्म इस राज्य में हुआ है। इस लिये दावा जवाहरमल मये ख़र्चा व शुकराना ख़ारिज और अलावह इस के पांच हज़ार रुपये जवाहरमल पर और जुरमाना किया जावे और फ़क़ीरचन्द पर छः हज़ार रुपये इस प्रकार कि पांच हज़ार रुपया जो जवाहरमल से लिया है वह और एक हज़ार रुपया और जुरमाना हो। बाबू केशवचन्द्रसेन पर पांच सौ रुपये महनताना व शुकराना व पांच सौ और कुल एक हज़ार रुपया जुरमाना किया जावे और यह कुल बारह हज़ार रुपये भगवती को दिये जावें। और जिस वक़्त तक यह लोग रुपया अदा न करें जेल में रक्खे जावें, पूरणचन्द्र को जिस ने भगवती से विवाह कर लिया है, बारह गांव की चौधर दी जाय। पुरोहित जी को एक हज़ार रुपया राज्य से इनाम दिया जाय और भगवती का नाम राज्य की बेटियों में लिखा जाय और राज्य से नियमानुसार दान दहेज़ दे, रुख़सत किया जाय

और सब राज्य में मनादी करादी जावे कि जो कोई लड़की बेचेगा उस का घर बार छीन, राज्य से निकाल दिया जावेगा और लेने वाले को दुगुण ठहराव का दण्ड दिया जावेगा ॥

बहनो ! अब तुमने इस वृत्तान्त से भलीभान्ति समझ लिया होगा कि जो लोग अधिक लोभ करते हैं वे उचित अनुचित का कुछ विचार नहीं करते। अब सोच लो कि लोभ ही से कैसा कठिन दुःख फ़क़ीचन्द को उठाना पड़ा। बहनो ! तुम भी भलीभान्ति शोच लो कि जब किसी प्रकार का लोभ न करोगी तौ कैसी आनन्द से रहोगी । सब घर के मनुष्य ख़ातिर करेंगे, सब प्रीति रक्खेंगे । जिस समय किसी चीज़ का लोभ किसी को घेरता है, उसी समय दूसरों को खिंचावट उत्पन्न हो जाती है । किसी कवि ने कहा हैः-

दोहा—

मान बड़ाई प्रेमरस, बिरवापन अरु नेह ।
ये पांचों तब ही गये, जभी कहा कछु देव ॥

अब जो आपको इस लोभ की बुराई से विश्वास न हुआ हो तौ और कहूं । नहीं तौ मोह का वृत्तान्त सुनाऊं ॥

हरदेवी—बहनो ! इस समय बीबी चन्द्रमुखी भलीभान्ति समझा रही हैं । जो किसी की समझ में न आया हो तौ और पूंछ लो ॥

सब स्त्री-हम को अब कुछ पूंछने की आवश्यकता नहीं । सच मुच लोभ ऐसा ही बुरा है ॥

चन्द्रमुखी—पांचवां दोष मोह है, जिस को प्रीति भी कहते हैं। प्रीति वहीं तक ठीक है, जहां तक धर्म बना रहे । जिस समय मर्यादा से अधिक बढ़ जाती है फिर आदमी को उचित अनुचित का विचार नहीं रहता । किसी ज्ञाता ने कहा है कि "जैसे के साथ वैसा ही वर्त्ताव मोह नहीं कहलाता" मनुष्य का धर्म है कि सब से मिल जुल कर रहे और सब से एकसा वर्त्ताव रक्खे । बड़े को बड़ा, और छोटे को छोटा माने । अपना ऐसा स्वभाव रक्खे जिस में सब समझें कि इस को हम से प्रीति है । जब मोह बहुत बढ़ जाता है तौ महाराज दशरथ जी की नाईं जैसे कि उन्हों ने श्री रामचन्द्र जी के मोह में अपने प्राण दिये, प्राण देने होते हैं । इस मोह की कृपा से

जगत् भर में निन्दा हो जाती है। देखो तुम ने सीता जी के वृत्तान्त में सुना है कि माता केकयी ने मोह के वश कैसी २ अपकीर्त्ति पाई और कैसा कैसा दुःख उठाया। जो वे भरत जी के लिये राज्य का मोह न करतीं तो कैसा अच्छा होता, क्यों तो विचारे भरत तपस्वियों का भेष बना, उन के सामने ही धरती पर सोते और काहे को रामचन्द्र व लक्षमण व सीता जी यह वनवास का दुःख भोगते और काहे को राजा दशरथ प्राण देते और क्यों यह आप साढ़ेतीन सौ रानीसहित विधवा होतीं और क्यों सीता जी को अपनी सब अवस्था वनवास में पूरी करनी पड़ती। बहनों! यह सब मोह का ही तो फल हुआ॥

मोह के वश हो प्रत्येक जीवधारी बड़ा २ दुःख उठाते हैं। देखो बिल्ली बालछड़ पर मोहित है। जहां पाती है, उस पर लोटती है और ऐसी मोहित हो जाती है कि अपने प्राण की कुछ परवाह नहीं करती। चाहे उसे कोई पकड़ ले। और मोह के ही वश चूहा पारा पी, बैठा रहता है चाहे उसे कोई पकड़ ले,या मारे। जिस को मोह नहीं होता वह बड़ा आनन्द से रहता है॥

चावली–चची! जो प्रीति न की जावे तो यह छोटे २ बच्चे कैसे पल सकते हैं॥

चन्द्रमुखी–बेटी! इस को मोह नहीं कहते। यह तो मा बाप का धर्म है कि अपने २ बच्चों का पालन करें, पढ़ावें, लिखावें। मोह यह होता है कि किसी एक बच्चे की अच्छी रक्षा की जावे और बाक़ी की ओर देखा भी न जाय। तुम्हारे ऐसे विचार करने से तो सब कार्य मोह में गिने जावेंगे। बेटी! जो काम जिस प्रकार से होना चाहिये उस को वैसे ही करना मोह नहीं कहला सकता। मोह उस को कहते हैं कि जिस में धर्म का विचार न रहे और किसी का हानि लाभ न सोच, कोई काम किया जावे। असल में लालच का बढ़ जाना ही मोह कहलाता है। धन दौलत से प्रेम लालच कहलाता है। मनुष्यों, मित्रों और नातेदारों से प्रेम मोह नहीं कहलाता अब तुम भले प्रकार समझ गई हो तो मैं अब सुख दुःख का वर्णन करूं॥

सब स्त्री–बहुत अच्छा, अब सुख दुःख का वर्णन करो॥

चन्द्रमुखी–बहनों! जब काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, में से कोई भी मर्यादा से अधिक होता है, बस उस समय मनुष्य को धर्माधर्म का विचार

नहीं रहता। और इन के वश में पड़ अधर्म करने लगता है और अधर्म से सदैव दुःख पाता है। इसी लिये इन की विशेषता दुःख का कारण मानी गई है और जब तक मनुष्य इन काम आदि पांचों दोषों के चक्कर में नहीं फँसता, अर्थात् मर्यादा से अधिक इन को नहीं करता, तभी तक धर्म का विचार रहता है और सदैव धर्म ही करता रहता है और धर्म करने से सुख पाता है। अब सोचो कि कोई स्त्री कामातुर न हो, क्रोध न करे, नशा न खावे, अभिमान न करे, लालच में न फँसे और अधिक प्रीति किसी से न रक्खे तो फिर उस को क्या दुःख हो सकता है? वह सदैव आनन्द से रहेगी। इसी भांति पतिव्रता स्त्रियोंको सिवाय पति सेवाके गहना, भोजन, कपड़ा, माता, पिता, भाई, बहन, ऊंचे २ मन्दिर अर्थात् किसी वस्तु का लोभ या मोह नहीं रहता और इसी कारण उस को कोई दुःख भी नहीं ज्ञात होता। विचारो कि जब तुम को उत्तम २ वस्त्र भोजन की इच्छा है, तभी तक रूखी रोटी और बे घुली दाल बुरी ज्ञात होती है और जिस समय उत्तम भोजनों का ध्यान न रहे, केवल पेट भरने को भोजन आवश्यकीय समझो तो तुम को रूखी रोटी भी स्वादिष्ट ज्ञात होगी और जैसा भोजन कोई देदेगा उस से ही अपना पेट भर लोगी। देखो चटोरा मनुष्य सदैव भूखा रहता है, कभी उस का पेट नहीं भरता। इस के विरुद्ध जो मनुष्य जिह्वा को अपने वश में रखता है और भांति २ के भोजन अपनी प्रसन्नता के लिये खाता है वह कभी भूखा नहीं रहता॥

चावली—तो क्या चची! इन उत्तम २ भोजनों के खाने से कुछ लाभ नहीं होता?

चन्द्रमुखी—कुछ भी नहीं। बेटी! तुमने तो भले प्रकार देखा है कि जाट गूजर कहारादि निरी नमक डाली रोटी विना दाल तरकारी और अचार आदि के खाते हैं और कैसे मोटे ताज़े रहते हैं। सिवाय इस के जितने अच्छे२ भोजन खाने वाले हैं वे सदैव रोगी ही रहते हैं। कभी विशूचिका बतलाते हैं, कभी कहते हैं कि भोजन नहीं पचा, कभी दस्तों की, कभी गिरानी की। प्रयोजन यह है कि वे कभी यह नहीं कहते कि हम सुख से हैं। सिवाय इस के यह बात और समझलो कि साधारण भोजन खाने वाले मनुष्य अच्छे भोजनों से अपना पेट बड़े आनन्द से भर लेते हैं परन्तु अच्छे खाने वालों का पेट कभी मामूली भोजन से नहीं भरता और यह चटोरी जिह्वा धन का ही नाश नहीं करती बरन शरीर के सुख को भी बिगाड़ देती है। जितने

विषमादि रोग हैं, चटोरी जिह्वा वालों को ही होते हैं । कभी तुमने यह न देखा होगा कि मामूली भोजन खाने वाले रोगग्रस्त रहें । इस से मेरा प्रयोजन यह नहीं कि कोई उत्तम और असूल्य वस्तु खावे ही नहीं वरन यह है कि अमूल्य वस्तु का खाना बहुत लाभदायक नहीं। अब रहा कपड़ा—सो असल में कपड़ा तन ढकने को है। कपड़े के विचार में बड़ोंने यही कहा है कि कपड़ा तन ढकने के लिये है बाक़ी फ़िज़ूल ख़र्ची है । अधिक से अधिक कुछ जोड़े कपड़े चाहियें कि जिन में सदैव स्वच्छ वस्त्र पहनने में आवें और कुछ कष्ट न हो और जब कपड़े धोबी के जावें तो कुछ जोड़े पास बने रहें ॥

चावली—चची ! क्या यह गोटा ठप्पा पहनना उचित नहीं ?

चन्द्रमुखी—नहीं उचित तो है, परन्तु बनाव चुनाव के लिये है । तन ढकने को नहीं और ख़ास कर यह पुरुषों के रिझाने के लिये नियत किया गया है । अब बढ़ते २ यह रिवाज होगया कि बूढ़ी और विधवा और बच्ची सब पहनने लगीं । यह बात सब जानते हैं कि अच्छे २ कपड़े केवल शृङ्गार के कारण पहने जाते हैं, नहीं तो साधारण कपड़े पहनने में आते हैं । अब शोचो कि जब स्त्री को अपने पति से ही प्रयोजन है और पुरुष दूसरी स्त्री से प्रयोजन ही नहीं रखता तो फिर गोटे ठप्पे की क्या आवश्यकता ? दूसरी बात यह है कि किसी विवाह आदि में जहां अधिक स्त्रियां इकट्ठी होती हैं, वहां सदैव दिखलाने के लिये या इस बात के प्रकट करने के लिये कि यह बड़ी धनाढ्य हैं, भारी २ गोटे ठप्पे के कपड़े पहन २ कर दूसरों के घरों में जाती हैं, या जब अपने घर कोई उत्सव हो तब ऐसे कपड़े पहनती हैं । इस से भी भली भांति प्रकट होता है कि कपड़े तन ढकने के लिये नहीं पहने जाते, वरन अपनी बड़ाई व सम्पत्ति के प्रकट करने के लिये पहनती हैं । अब इस से भी समझ लो कि यह बात केवल बनावट चुनावट के लिये है और बनावट चुनावट सदैव मक्कारी है और मक्कारी कभी धर्म नहीं होसकती और पतिव्रता व धर्मात्माओं को अधर्म से क्या प्रयोजन, उन को तो केवल धर्म से प्रयोजन है और जिस समय बनावट चुनावट का ध्यान न रक्खें, उस समय केवल सादे कपड़ों की आवश्यकता रहजायगी । इच्छा और मोह जो कपड़े व गोटे का है, न रहेगा । तो फिर कोई कहन सुनन व खिंचावट भी न रहेगी और जैसा कुछ साधारण घर में होगा, सब ओढ़ पहन लेवेंगी । उस समय का तुम विचार करलो कि कौन घर का मनुष्य है कि जो कुछ कहे या

यों कहे कि ये तो गोटे के कपड़े नहीं पहनतीं, वरन सब प्रशंसा ही करेंगे और कहेंगे कि बड़ी धर्मात्मा स्त्री है, जैसा कुछ मिल जाता है, ओढ़ पहन लेती है। और सदा धर्म और साधारण चलन की प्रशंसा होगी। अब रहा गहना, उस की भी दशा सुनो कि गहने को कुछ तो शृङ्गार बतलाते हैं और कुछ पूंजी। मेरी सम्मति में तो गहना शृङ्गार भी नहीं होसकता और न पूंजी, क्योंकि हाथ, पैर, कान, नाक को कुछ सुख या प्रशंसा इस से नहीं मिलती, वरन उलटा निर्जीव और कुरूप करदेता है। किसी समय में कोई गहना शृङ्गार हुवा हो, परन्तु इस समय तो ऐसी बुरी दशा हो गई है कि कुछ कहा ही नहीं जाता। विचार तो करो कि कोई २ पांवों का गहना इतना भारी २ बनवाती हैं कि उत्तमता तो मालूम, परन्तु पांव उठाना भी कठिन होजाता है। किसी २ के पांव तो ऐसे बुरे ज्ञात होते हैं कि जी उलझता है। ऐसे ही हाथों की दशा है और कई ने मुझ से कहा है कि आज फलां विवाह में गहना पहना था, दोनों हाथ दुखते हैं। ऐसी ही कानों की दशा है कि जिस समय बाली, बाले, पत्ते, झूमके, पङ्खुरे आदि गहना पहना जाता है तो कान भी नीचे को टूटे पड़ते हैं और उतारने पर घण्टों तक दुःखा करते हैं। नाक में नथ की यह दशा हुई है कि किसी २ की नथ तो ऐसी होती है कि होशियार सा लड़का कला करके दूसरी ओर निकल जाय और बहुतसी स्त्रियां तो नथ का बोझ न सह, गरदन में डाल लेती हैं। उस समय उन का मुख कैसा बुरा मालूम होता है। जैसे कि जानवर के नाथ डाल दी हो। ज़िला मुज़फ़्फ़रनगर व सहारनपुर में नथ को नाथ कहते हैं। मैं नाथ का शब्द वहां के वासियों से सुन, पहिले ही पहल अचम्भे में रहगई, पीछे ज्ञात हुवा कि यह लोग नथ को नाथ कहते हैं। एक गूजर ने मुझ से कहा कि अजी यह नाथ तो है ही, जैसे बैलों के लिये रस्सी की नाथ है, वैसे ही स्त्रियों के लिये सोने की। प्रकट में कोई लाभ इस से दृष्टि में नहीं आता। हां, अभिमान तो अवश्य उत्पन्न हो जाता है कि बहुत स्त्रियों को अपने से कम गहना पहने देख, यह विचार करें कि हमारे समान किसी के पास गहना नहीं और सब से खिंचावट कर, सब को अपना शत्रु बनालेवें, और गहने की नित्य नई मांग और नित्य की तोड़ फोड़ से जो बहुत सी हानि कर, पति का धन बिगाड़ दे, वह अलग रहा। तुमने देखा होगा कि जिस समय गहने का प्रेम बढ़ता है, उस समय पति ही क्या कुटुम्ब भर शोकातुर किया

जाता है और फल यह होता है कि गृहस्थ के कार्य करने तौ मालूम, घण्टों हाथ, पांव और गहने के मञ्जन में लगाये जाते हैं और बहुतसा समय गहने के धरने ढकने में लग जाता है। चाहे बालक भूखे रोते हों, पति खाने को कह रहा हो, सास श्वशुर पानी मांगते हों, परन्तु उन को गहने के मञ्जन से कब छूट कि किसी की सेवा करें॥

रात का सोना—अब कुटुम्ब भर उसी गहने की रक्षा में जाग रहा है, नींद भर नहीं सोता। कहीं ऐसा न हो कि अचेत हो सो जायं और चोर हाथ साफ़ करें। जो कहीं नातेदारी में जाती हैं तौ गहने की रक्षा के लिये आप रात भर जागती हैं और ऐसा भी करती हैं कि अपने गहने कपड़े की रक्षा के लिये अलग कोठरी सदैव बन्द रखनी पड़ती है और अड़ौस पड़ौस नातेदारी का जाना आना कम किया जाता है और स्त्रियां अभिमानी कह, उन को बुरा समझने लगती हैं और जो कभी क्रोध की दशा में किसी बच्चे के तमाचा लगाने से कोई गहना हाथ का लगजाय तो बेचारा घड़ियों रोता है। आनन्द सुन्दरता तौ मालूम, अब पूंजी की दशा सुनिये कि गहना एक रुपये की लागत में बारह आने की पूंजी समझी जाती है। जिस समय बदलवाते हैं या फिर कर बनवाते हैं तो बीस तोले के गहने के बदले पन्द्रह तोले मिलता है। बेचने के समय तो सीधे रुपये में दस आने पल्ले पड़ते हैं। जो दैवयोग से समयानुसार कोई नग जाता रहे तो समस्त घर कुनबे के मनुष्यों पर पाप रखती हैं। बिचारे नौकर चाकर ख़िदमतगारों पर दशा आजाती है। आवश्यकता के समय लाभ तो क्या, रुपये के आठ आने को गहना रख, बाक़ी व्याज में दिया जाता है। कोई २ तो बहुत सा गहना उलटा उसी के व्याज की भेंट करती हैं। हां, सदा यह कहने को तौ बात रहती है कि हमारे पास गहना बहुत है। गृहस्थ के कार्य की यह दशा है कि गहने की संभाल से ही छूट नहीं, घर का कार्य कौन देखे॥

चावली—तो चची! क्या गहना पहनना ही न चाहिये?

चन्द्रमुखी—बेटी! यह तो मैं नहीं कहती कि पहने ही नहीं, क्योंकि न पहनने से भी तो संसार की स्त्रियां चैन नहीं लेने देतीं। हां, यह अवश्य कहूंगी कि थोड़ासा होना चाहिये कि जो नित्यप्रति पहनने में आता रहे। रखने के लिये तो जैसा ही गहना, वैसा ही पत्थर, जो वह यह समझ लें,

और अपने गहने की बराबर नक़द रुपया किसी बैङ्क में जमा करदें तौ पूंजी भी बनी रहे और आमदनी भी हो, परन्तु पतिव्रता स्त्रियों को इस बनाव चुनाव से क्या प्रयोजन। शोचो तौ कि जितना समय इस से पहनने, उतारने, धरने, मांजने में लगा देतीं हैं, जो इतना अपने पति व कुटुम्ब की सेवा में लगावें तो कैसा अच्छा हो। सब लोग प्रसन्न रहें, सब प्यार करें, सब दास बने रहें। भला इस समय सिवाय आनन्द के कुछ कष्ट हो सकता है? नहीं२ कुछ भी कष्ट नहीं हो सकता। विचार कर देखो तौ गहने से सिवाय बिगाड़ व दुःख के कोई आनन्द नहीं होता। यह भी शोच लो कि जब किसी स्त्री के पति ने किसी समय सौ दो सौ रुपये कमा कर स्त्री को दिये और उस ने उन को रक्षा से रख छोड़ा और समय पर दे दिये तौ वह क्या प्रसन्न न होगा और विना विचारे अपना कमाया धन स्त्री को न दे दिया करेगा? अब इस के विरुद्ध, जब पति ने रुपया दिया और उन्हों ने गहना बनवा डाला और जिस समय पति ने मांगा और यहां से ख़ाली उत्तर मिला कि मैंने तौ गहना बनवा लिया। तौ उस समय उस को कैसा बुरा जान पड़ेगा और तुरन्त यह शोचेगा कि कुछ रुपया अलग रखना चाहिये कि समय पड़े पर काम आवे और स्त्री की ओर से विचार हो जायगा कि यह हमारी सब पूंजी बिगाड़ देती है और जो उस ने यह प्रबन्ध कर लिया तौ मियां बीबी में शत्रुता हो गई। अब पुरुष को स्त्री का ऐतबार नहीं और स्त्री समझती है कि पति मुझ से अलग रुपया पैसा रखता है। इस को विचार अब मांग चल रही है। जो पति रुपये देता है तौ पांच रुपये के ख़र्च में सात मांगे जाते हैं और बराबर तक़ाज़े पर तक़ाज़े रखतीं हैं, बिचारा शोच में है और जब यहां से जवाब मिल चुका कि हमने गहना बनवा लिया तौ वह भलामानस कहीं से क़रज़ लेवेहीगा, क्योंकि आवश्यक कार्य तौ कभी बन्द रह ही नहीं सकते। अब विचार कर लो कि क़रज़ मांगते ही दूसरे की दृष्टि में तुच्छ ठहरेगा और बड़ी निन्दा होगी कि बहुतेरी आमदनी है पर तौ भी जब आवश्यकता होती है, क़रज़ ही लेना पड़ता है। अच्छा कहीं से क़रज़ मिल भी गया तौ व्याज देना होगा और विना कारण इन्हीं स्त्री महारानी की कृपा से यह हानि भी उठानी पड़ेगी। जो दैवयोग से क़रज़ न मिला तौ स्त्री से गहना मांगा जायगा। उस में दो बात होंगी। जो स्त्री के चित्त में कुछ प्रेम है तौ वह अपना गहना गिरवी रखने को देदेगी। उस समय बिचारा उस के गिरवी

रखने के फ़िक्र में दो चार घर झांकेगा और व्याज की हानि तौ उठावेगा ही। परन्तु क़र्ज़ के लये जो २ हथजोरी किसी की करेगा वह विशेष रही और जो स्त्री के चित्त में प्रेम न हुवा और उत्तर दे दिया कि मैं अपना गहना नहीं देती। उस समय बिचारे मर्द की क्या दशा होगी। इधर घर से जवाब साफ़, उधर पूंजी का, जिस पर भरोसा किया था, पता नहीं। इधर ऋण नहीं मिलता और कार्य भी नहीं रुकते। अब बिचारा चुप है, कुछ करते धरते नहीं बनती। करे तौ क्या करे। लाचार मित्रों की शुश्रूषा करता है। जिस से याचना करता है उसी की आंखों में तुच्छ होता चला जाता है। अच्छा किसी ने कुछ प्रीति का विचार कर थोड़ा बहुत रुपया क़र्ज़ दे भी दिया तौ जीते जी उस का अहसान मानना पड़ा। अब विचार कीजिये कि यह जो कुछ कष्ट हुवा, इन्हीं धर्मचारिणियों के गहने बनवाने से ही तौ। जो वह पूंजी रक्षा से रखतीं तौ यह बुरा दिन देखना न पड़ता। ए चावली! पतिव्रता स्त्री कभी अपने पति का कष्ट नहीं सह सकती और न कपड़े, गहने, खाने की परवाह करती है। केवल पतिसेवा को अपना खाना, अपना पहनना, अपना शृङ्गार, अपना सुख मानती है। अब दोनों को जांच लो कि कौन ठीक है। जो यह सोचो कि गहने या कपड़े से पति को सुन्दर ज्ञात होगी, तौ यह भी भूल है। पतिसेवा क्या मर्द को स्त्री से प्रेम न उत्पन्न करावेगी। जिस समय सत्य प्रेम से स्त्री पुरुष की सेवा करेगी, उस समय नहीं हो सकता कि उस का ध्यान चित्त से कभी दूर हो सके। मेरी समझ में तौ नहीं हो सकता कि कभी मर्द स्त्री को भूल जावे। जिस समय स्त्री पुरुष को किसी घर के कार्य में दुःख न देगी और पूंजी सम्भाल कर रक्खेगी, सेवा में सदैव तत्पर रहेगी तौ पुरुष कभी एक कौड़ी भी उस से अलग रक्खेगा? और कभी कोई कार्य विना सलाह करेगा? नहीं २ सदैव प्रेम से रहेगा और सब बस्ती व मुहल्ले में सब को भरम होगा कि इस के पास बड़ा धन है। किसी पुरुष का सामर्थ न होगा कि स्त्री से किसी भान्ति दोष वा गुण पति के वर्णन करे। उधर किसी स्त्री को सामर्थ नहीं कि उस के मर्द से किसी भान्ति की बुराई कर, मन में कुछ भेद डाल सके क्योंकि प्रत्येक मनुष्य समझ लेगा कि यह स्त्री पुरुष एक जीव दो देह हैं। अब इस के विरुद्ध जब पुरुष नित्य नये झगड़ों से तङ्ग रहेगा तौ बिचारा क्या करेगा। सदैव दुःखी उदास और स्त्रियों की निन्दा जिह्वा पर रक्खेगा। अब समझ लो कि स्त्री को पतिसेवा उत्तम है या गहने कपड़े और खाने का मोह?॥

चावली—चची! अच्छी तो पतिसेवा ही है, परन्तु इन सब से पूछो॥

हरदेवी—हां बहन! पतिसेवा से अधिक स्त्री को और कोई बनाव शृङ्गार नहीं॥

जयदेवी—निस्संदेह मेरी सम्मति में भी स्त्री को पतिसेवा के समीप कभी बनाव शृङ्गार का विचार न करना चाहिये॥

चम्पा—मैं भी पतिसेवा को उत्तम समझती हूं॥

रेवती—सच मुच पतिसेवा ही स्त्री का शृङ्गार है॥

सब स्त्रियां—बहन! हम भी पतिसेवा को अच्छा समझती हैं। परन्तु एक बात की हम को और शङ्का है जो तुम को कष्ट न हो तो वह बतलादो॥

चन्द्रमुखी—वह क्या?

स्त्रियां-यह और बतलादो कि स्त्री को किस प्रकार गृह प्रबन्ध करना चाहिये?

चन्द्रमुखी-अच्छा सुनो, संसार में स्त्री पुरुष के साथ रहने का नाम गृहस्थ है। शास्त्रानुसार तो तुम को बड़ा श्रम होगा, परन्तु लौकिक बतलाती हूं। उस से तुम को लाभ भी होगा और उस का पालन भी कर सक्ती हो। जब तक स्त्री लिख पढ़ न जावें, शास्त्रानुसार चलना कठिन है॥

सुनो, संसार में सब गृहस्थ चार प्रकार के माने जाते हैं। पहिले तो बड़े आदमी जो कि धनवान् और प्रतिष्ठित होते हैं। जिन के समस्त कामों के लिये नौकर चाकर रहते हैं और उन की स्त्रियों को कोई घर का कार्य देखने की आवश्यकता नहीं होती। दूसरे मामूली आदमी, जिन की स्त्रियों को कुछ कार्य घर के करने होते हैं और कुछ उन के नौकर चाकर करते हैं। तीसरे छोटे दर्जे के आदमी, कि जिन की स्त्रियों को सब काम काज घरका करना पड़ता है, केवल पानी आदि के लाने को कहार आदि रहते हैं। चौथे किसान, जिन की स्त्रियों को पूरा २ गृहस्थकर्म करना होता है॥

अब मैं घटिया पुरुषों से वर्णन करती हूं। वह सुनो—पहिले तो मैं उन का नियम बतलाऊंगी कि जो कुछ आज कल है, पीछे यह कहूंगी कि किस भांति उन को करना चाहिये। इन चौथे दर्जे के आदमियों में जो किसान कहते हैं, जाट, गूजर, अहीरादि गिने जाते हैं। वैसे तो और भी कई जाति हैं, परन्तु ऐसी थोड़ी २ और भ्रष्टाचरण हैं कि जिन का ज़िकर

भी करना उचित नहीं । इन तीनों जातों में भी कई २ भाग हैं । पहिले गूजर, दूसरे जाट व अहीर ॥

यह गूजर बहुत करके चोर होते हैं और जो चोर नहीं होते वे सब भांति प्रसन्न और धनाढ्य हैं । इस जाति की सब गूजरी स्त्रियां घर का पूरा काम काज करती हैं । अब उन का ब्यौरेवार वृत्तान्त सवेरे से संध्या तक का सुनो । पहिले सवेरे ही उठ, गूजर बैल खोल, खेत को ले जाता है । गूजरी बड़े सवेरे उठ, पहिले दूध के वर्तन साफ़ कर, गाय भैंसों का दूध निकाल, गर्म करने को रख देती है और फिर दही बिलो, घी निकाल छाछ साफ़ कर, अलग रख देती है और फिर नाज ले, पीसती है । इस पीसने से निवृत्त होते ही दिन निकल आता है । बस भोर होते ही अपने बच्चों को जगा, बड़े बच्चों को रोटी खिला, गाय भैंस खोल, जंगल को भेज देती है और फिर गृह को झाड़ बुहार, गोबर उठा, अलग ले जा, एक जगह में जिस को पथनवारा कहते हैं, पाथ देती है और पीछे घर आ, कूआ से जल ला, रोटी पकाती है और गर्म रोटी बना, अपने बच्चों को खिला पिला, कुछ गाढ़ी सी छाछ और गर्म २ रोटी अपने मालिक को जङ्गल में ले जाती है । वहां से लौटते समय एक गड़ा चारे का ला, गाय भैंस बैलों के लिये काट, उन की खोर में डाल देती है । अब दुपहर होने वाला है कि छोटे २ बच्चों को खेत में काम करने के लिये भेजती है और फिर दोपहर का खाना तैयार कर सब को खिलाती है और सांझ को उसी भांति सब बच्चे ढोर और पति की टहल करती है । गूजर पञ्चायत या हल कुआ जोतने का काम करता है और लेन देन व्यापार आदि का काम भी गूजर ही करता है, परन्तु आचार के न होने से इस जाति से बहुत से द्विज लोग ग्लानि मानते हैं ॥ दूसरे अहीरी व जाटनी, इन के नियम समान हैं । ये चार बजे सवेरे ही उठ पहिले आटा पीसती हैं और फिर गाय भैंसों का दूध निकाल, दही बिलो, दूध दही के काम से सूर्य्योदय से पहिले ही निवृत्त हो जाती हैं । भोर होते ही बैल खोल, इन का पति जङ्गल को चल देता है । यह झाड़ू बुहारू कर गोबर उठा, उस को पाथ, कुए से पानी ला, चौका वर्तन साफ़ कर, रोटी बना, बच्चों को खिला, मालिक को जङ्गल में ले जाती हैं । और लौटते समय जङ्गल से चारा चौपायों के लिये लाती हैं और घर आ, फिर दुपहर की रोटी तैयार करती

हैं। पति और बच्चों के लिये गर्म पानी कर अलग रख देती हैं। उधर पति के लिये हुक्का ताज़ी कर, अलग रक्खा है और सब को खिला पिला दुपहर पीछे आप लेन देन का कार्य करती हैं और थोड़ा बहुत दुपहरी में सूत भी कात लेती हैं या कपास ओट रुई निकाल लेती हैं और दुपहर पीछे भी फिर जङ्गल से चारा लाती हैं। प्रयोजन यह है कि चार चौपाये,एक मालिक और दो तीन बच्चों का पालन अकेली भले प्रकार करती हैं। अपने कपड़े अपने हाथ के कते सूत से बुनवा, आप ही सींती हैं। गहना बहुत ही कम पहनती हैं। हां, ओढनों पर रेशम व शीशे का काम करती हैं, वह सब अपने ही हाथ का होता है। एक प्रबन्ध इन का और प्रशंसनीय है कि एक भैंस क़रज़ लेती हैं और चार या पांच रुपये महीने की क़िस्त कर लेती हैं कि जिस को उस भैंस का घी बेच २ कर निबटाती हैं और दूध छाछ पी २ दो वर्ष में भैंस बचा लेती हैं। उधर उस के दो बच्चे भी इसी समय हो जाते हैं। यह कभी खेती की प्राप्ति से गहना नहीं बनातीं और न कभी कपड़ा अधिक मोल का लेती हैं। कपड़ा बहुत कम मोल लेती हैं। जब इन के पास दो एक भैंस, गाय और बैल हो जाते हैं और कुछ रुपया घी बेच २ कर जमा करलेती हैं तो उस रुपये से गहना बनवाती हैं। इन के मालिकों को ज्ञात भी नहीं होता कि हम को किस का क्या देना है और क्या लेना है। वह तो बस दोपहर तक हल या सांझ तक कुआ जोतने का काम जानता है। यही स्त्रियां सब लेन देन का कार्य करती हैं और इतनी टहल पर भी वर्ष भर में आधे से अधिक दिन अपने पति के पैर दबाती हैं। कभी किसी बात की हट अपने पति से नहीं करतीं। गहना कपड़ा तो दूर, वह तो नमक मिर्च आटा दाल सब चीज़ें अपने आप ख़रीदती हैं और आनन्द यह है कि पति के नातेदारी में जाने के लिये अच्छे २ कपड़े बनवाकर बड़ी सुघड़ाई से रखती हैं। जितनी लागत का गहना अपने लिये बनवाती हैं, उतनी ही लागत के कण्ठे तोड़े आदि मालिक को तैयार करदेतीं हैं, और आवश्यकता के समय बिना शोचे विचारे गहना गिरवीं रखदेती हैं। कपड़े चाहे मोटे पहनती हैं, परन्तु स्वच्छ। असम्भव है, बू आ सके। मकान की लिपाई लिहसाई अपने हाथ से करती हैं। मकान कच्चा होता है, परन्तु बहुत ही स्वच्छ लिपा पुता रखती हैं, बटोई भी यही चाहता है कि थोड़ी देर इस में बैठलें। दह में सदैव आग तैयार, न जानें किस समय कोई बान्धव आजाय और हुक्के के लिये चाहिये। दूध सदैव गर्म। छाछ के लिये तो किसी बटोई को नांह ही नहीं।

जो कोई जानता पहचानता आजाता है तो दूध भी पिला देती हैं। प्रयोजन यह है कि अपने मालिक की टहल के सिवाय बच्चों वगै आदि पशुओं की टहल नियमपूर्वक करती हैं। कभी किसी से लड़ाई झगड़ा नहीं, प्रीति ऐसी जो कोई पड़ौसन में बीमार होजावे तो सब पड़ौसन मिल उस के घर का काम काज कर देती हैं। यह भी ज्ञात नहीं होता कि कोई बीमार है। सिवाय इस के खेती की नलाई व कटाई में पति की सहायता करती हैं। जहां तक मैंने देखा है तो समस्त आर्यावर्त्त की स्त्रियों में पति की सुखदात्री यही जाटनी व अहीरी होती हैं और परपुरुष की ओर पर देखती भी नहीं। अब तीसरी भान्ति की स्त्रियों का वृत्तान्त सुनिये। इन का चलन कुछ २ इन पहले कही स्त्रियों से मिलता है। लोभ इन को भी कम है। विचारी अपने को निर्धन जान दीनता से दिन काटती हैं। पति जो कुछ थोड़ा बहुत कमा कर लेआता है, उसी में सन्तोष से पेट भर लेती हैं। आप भी कताई, पिसाई से सहाय कर, बालकों का पालन करती हैं। कपड़े गहने में इन पहली स्त्रियों से मिलती हैं, हां यह अपने चाल चलन से प्रशंसा के योग्य हैं और यह निर्धन होने से अपने दिन काटती हैं परन्तु इन में लड़ाई झगड़े का चिन्ह होता है। बात २ पर लड़ा करती हैं, परन्तु पति की सेवा भी करतीं हैं और बच्चों का पालन भी। कहारों को पानी भराई कुछ रोटी या पैसा देतीं हैं। कोई कोई निर्धन होने से अपने हाथ भी भर लाती हैं॥

चावली—चची ! यह भी कुछ बुरी नहीं॥

चन्द्रमुखी-हां बेटी ! इन में इतना दोष है कि निर्धन होने के कारण यह पतिसेवा करतीं हैं, कुछ मन व स्वभाव से नहीं। जो किसी के पास कुछ धन हो जाता है तो उन की दशा भी वैसी ही हो जाती है। जैसी मैं आगे कहूंगी॥

चावली—तो हां, अब आप मामूली स्त्रियों का वृतान्त कहें॥

चन्द्रमुखी—ये वे हैं, जिन को कुछ शोच नहीं। घर में या तो इतना धन है, या आमदनी का प्रबन्ध ऐसा हो रहा है कि जो थोड़ा सा भी प्रबन्ध रक्खें तो जीवन आनन्द से पूरा हो जाय। इन की दशा सुनिये-इन में कोई दस या पन्द्रह भली मानस होंगी जो गृहस्थ का प्रबन्ध या काम काज करती हों। इन की वही दशा है जैसे कि बीबी जयदेवी हरदेवी आदि ने अपने २ वृत्तान्त में कही है। विद्या पढ़ने का तो लेश भी नहीं, सदैव मूर्ख और दुष्ट

लड़कियों में खेला करती हैं। शिक्षा है तो सास, ननद, दौरानी जिठानी से लड़ाई की, पति को दास बनाने की पैदा होती है। मा बाप लाड़ भी लड़याते हैं तो सास को गाली देने का। नन्द से लड़ाई का। बराबर की सहेली सिखाती हैं, तो पति को दास रखने को, बहुत सा गहना कपड़ा मांगने को। इन को कभी २ विवाह आदि में बड़े घरों की स्त्रियों से मिलने का अवसर पड़ता है, उन के गहने कपड़े और ख़र्च को देख चित्त लुभाता है कि ऐसा ही हम भी करें। प्रबन्ध की समझ नहीं। गृहस्थ के काम काज का कुछ सोच नहीं। जिस समय देखा कि इन के तो नौकर चाकर प्रत्येक कार्य को नियत हैं, निहलाने को नौकर, धुलाने को नौकर घर की सफ़ाई को नौकर, यहां तक कि प्रत्येक काम के नौकर नियत हैं, तो अब इच्छा बढ़ती है और उन की चाल चलने को तयार हो जाती हैं। यह नहीं सोचतीं कि इन की आमदनी कितनी है और पूंजी कितनी है और हमारे प्रबन्ध से गुज़र के ही तुल्य है। यह समझ कहां कि अपनी अपनी आमदनी का हिसाब लगा, प्रबन्ध से जन्म पूरा करें। किसी समय दैवयोग से पति को कहीं से कुछ आमदनी होगई या किसी बान्धव का धन सहज में मिल गया। बस फिर क्या है। (हम भी हैं पांचवे सवारों में) ख़र्च बढ़ा दिया गया। मामूली ख़र्च बढ़ गये। थोड़े दिन में सब बराबर कर, अब औरों को देख सदैव जलतीं हैं। सब से लड़ने को तयार। एक आंखों से देखी कहानी आप से कहती हूं॥

एक फ़िज़ूल ख़र्च की कहानी

एक गांव में एक मनुष्य मदनमोहन नामी रहता था। बिचारे को पचीस तीस रुपये महीने की आमदनी थी। स्त्री भी चाहे श्रेष्ठ न थी परन्तु भली मानस थी। उस के दो बेटे हुए। एक का नाम शिवचरण दूसरे का रामचरण रक्खा। कुछ दिन में वह लड़के बड़े होगये और दोनों लड़कों का विवाह होगया। अब शिवचरण का द्विरागमन भी होगया और किशोरी नाम स्त्री आई। किशोरी एक लड़की है जिस की मा उस को बचपन में छोड़ मर गई थी परन्तु बाप को इस से बड़ी प्रीति थी। यह जिस महोल्ले में अपने बाप के घर रहती थी, उस में बहुत से धनाढ्य मनुष्य रहते थे। यह बचपन में विचारा करती थी कि इन धनाढ्य स्त्रियों की नाईं पति के घर रहेंगी।

दैवयोग से मदनमोहन की स्त्री बीमार हुई और उस का मृत्यु होगया। अब किशोरी अकेली रहने लगी। कुछ तो मदनमोहन ने यह विचारा कि बहू बच्चा है, कभी भयभीत न हो जाय और अकेला रहना भी अनुचित जान, एक स्त्री उस के पास नौकर रखदी। अब इस की इच्छा बढ़ी और उस स्त्री से बहुत सा घर का काम काज लेने लगी और समझ लिया कि श्वशुर ने यह इस को टहलनी नियत कर दी है। इस के कुटुम्ब वालों में कोई टहलनी न थी, परन्तु दो दो चार २ स्त्रियां प्रत्येक गृह में थीं और मिल जुल कर अपना काम काज कर लेती थीं। परन्तु इस को अभिमान था। यह उस टहलनी के रहने पर घमण्ड करती और बिरादरी व कुनबे की स्त्रियों को तुच्छ समझती, परन्तु बचपने के कारण इस का विचार प्रकट न होता था। अब रामचरण के द्विरागमन की तैयारी हो, रामचरण की केवली नाम, बहू आगई। जिस समय केवली आई मदनमोहन ने समझ लिया कि अब तो यह दो होगई ॥

मदनमोहन-(शिवचरण से) बेटा ! अब तो रामचरण की बहू आगई इस दासी का दश रुपये महीने का ख़र्च ही कम कर देना चाहिये ॥

शिवचरण—बहुत अच्छा, जो मर्ज़ी ॥

मदनमोहन-तो टहलनी से कह दो कि अब अपने घर का धन्धा देखे, हमारी दोनों बहू मिल जुल कर घर का काम काज कर लेंगी ॥

शिवचरण-(घर में जा) ए ठकुरानी ! अब तुम अपना प्रबन्ध और कहीं कर लो, हमारे लाला जी कहते हैं कि अब तो हमारे दूसरी बहू आ गई, अब हम को आवश्यकता नहीं। फिर जब आवश्यकता होगी, बुलालेंगे ॥

किशोरी-तुम इस को तो जवाब देते हो पर यह घर का धन्धा कौन करेगा ?

शिवचरण-अब भी तो दो ही जनी थीं और अब तुम और केवली मौजूद हो। कोई आदमी तो बढ़ा ही नहीं। मिल जुल कर काम काज कर लिया करना ॥

किशोरी—(मन में समझ कि मुझ को तो दूसरी टहलनी केवली मिल ही गई, चुप होगई, प्रकट में) अच्छा जो तुम्हारी मर्ज़ी ॥

अब किशोरी केवली से नौकरों की नांई काम लेती है। वह विचारी निर्धन की बेटी है। चुपके २ सब कर देती है। एक दिन दुपहरी के समय दो पड़ौसन आपस में बात चीत कर रही थीं और केवली सुन रही थी ॥

एक—बहन ! इस किशोरी का स्वभाव बिगड़ गया है। देखो उस बिचारी केवली से कैसी निर्दयता से टहल लेती है ॥

दूसरी—अरी बहन ! सास न होने का फ़ज़ीता है । जो सास होती तो इस को काहे को करने देती ॥

पहिली—ए बहन ! यह बहुत दिनों तक स्वतन्त्र रही है । किसी बड़ी बूढ़ी का दबाव तो रहा ही नहीं । अब इस का सुधरना कठिन है ॥

दूसरी—बहन ! ज़माने को देखो । थोड़े ही दिन में यही केवली इस को कैसा ठीक करती है ॥

केवली—(उन के पास जा, पालागन कर) ए जी ! मैं क्या कहूं, सब तो टहल करती हूं और फिर भी बीबी जी नाक भौं चढ़ाये रहती हैं । मैं तो चुप हो जाती हूं ॥

पहिली—बेटी ! हम तो कह नहीं सकतीं, तेरे ससुर से डरती हैं । हम तो तेरे पीछे ही ज़िकर कर रही थीं ॥

केवली—अब तुम्हीं मेरी सब सास हो । सास तौ कुछ फिर कर आती ही नहीं । अब जैसे कहो, वैसे करूं ॥

दूसरी—बेटी ! इस में बात ही क्या । बराबर का काम बांटकर कर लिया करो ॥

केवली—तो अच्छा, अब ऐसा ही करूंगी और मैं जाती हूं ॥

दैवयोग से रामचरण एक नातेदारी में गया और वहां से नौकरी को चल दिया । इधर सवेरे ही केवली ने चौका वर्तन न किया ॥

किशोरी—केवली ! आज तैने चौका वर्तन क्यों नहीं किया ॥

केवली—अब तौ आटा पीस के निबटी हूं, चौका वर्तन तुम ही कर लो । तुम ने भी तौ सवेरे से कुछ नहीं किया, ठाली ही तौ बैठी हो ॥

किशोरी—मैं तो जब से आई हूं, मैंने तो कभी कुछ काम काज किया नहीं । पहिले टहलनी करती थी, अब तेरे आने पर लाला जी ने टहलनी को अलग कर, कह दिया कि अब केवली काम काज कर लिया करेगी, सो अब तुझ को करना होगा ॥

केवली—बीबी जी ! मैं तौ जब से आई हूं, बराबर घर का काम काज करती ही हूं । रोज़ आटा पीसती हूं । दोनों वक़्त चौका वर्तन कर, रोटी दोनों वक़्त करती ही हूं । तुम को कुछ तरस भी आता है ? क्या मेरे जान

नहीं है ? वही तुम ख़सम जोरू दो आदमी हो, वही हम। रहे ससुर, वह दोनों के साझले हैं ॥

किशोरी—मैं तो नहीं करूंगी, तुझे ही करना होगा ॥

केवली—मैं तो आधे काम से अधिक न करूंगी। सिवाय इस के मेरा पति तो परदेश चला गया। अब श्वशुर रहगये तो चार हिस्से में डेढ़ हिस्सा मेरी ओर चाहिये तुम मुझ से आधा करालो, मैं और इस से अधिक न करूंगी॥

अब दुपहर तक चौका बर्तन न हुवा और न रोटी तैयार हुई। दैवयोग से शिवचरण घर में आया ॥

शिवचरण—आज रोटी कैसे तैयार नहीं हुई ?

किशोरी—आज बहू जी ने नहीं चढ़ाई। वे कहती हैं कि मैं टहलनी नहीं, जो सब काम काज करूं। बहुत करो, आधा काम करालो। मुझ से कहती है कि तुम भी तो कुछ करो, भला मैं काम करूंगी ?

शिवचरण—ठीक तो कहती है, तुम को भी तो कुछ करना चाहिये ॥

किशोरी—(आंखें निकाल) आहा, आप मुझ से काम लेंगे, मैंने तो किया! आज तक मैंने तुम को कभी काम काज करके दिया होगा, जो आज कराओगे ? जाओ लाला जी से कहदो कि रसोइया ख़िदमतगार रख लेवें ॥

शिवचरण—कुछ भङ्ग तो नहीं खागई। अरे ! जो आज बहू नहीं करती तो तू ही करले, क्या वह तेरी टहलनी है ॥

किशोरी—ज़रूर मेरे हाथ की पकी रोटी खाओगे, यही मुंह है, मेरे हाथ की पकी रोटी खाने को ॥

शिवचरण—(चुप, एक पड़ौसन से) चची ! बहू को तुम ही समझा दो, अब तो रोटी चढ़ादे। सांझ को हम लाला जी से कह, कुछ प्रबन्ध करादेंगे॥

पड़ौसन—उठ बहू ! तेरे जेठ कहते हैं, चौका बर्तन कर। जेठ बाप के समान होता है ॥

केवली—(घूंघट किये, उठ चौका बर्तन करती है और शिवचरण बाप के पास जाता है) ॥

मदनमोहन—बेटा! आज कैसे उदास हो? आज न्हाते क्यों नहीं? आज क्या है?॥

शिवचरण लाला जी! क्या कहूं आज तो घर में किसी ने सेह का कांटा रख दिया है॥

मदनमोहन—(अचम्भे में) क्या बात है? क्या हुआ?

शिवचरण-लाला जी! दोनों बहू चौका वर्तन पर झगड़ा कर रही हैं। इस समय तो मैंने कह सुनकर रामचरण की बहू को समझा दिया है और रोटी चढ़वा दी है। आप घर चल कर ताई जी को बुला फ़ैसला करादें, नहीं तो नाहक़ फ़ज़ीता होगा॥

मदनमोहन-(उठ, घर को जाता है और शिवचरण से) तुम अपनी ताई को बुला लाओ॥

अब इधर से मदनमोहन और उधर से चन्द्रवती मदनमोहन की भावज पहुंचती है॥

मदनमोहन-भाभी! राम राम॥

चन्द्रवती-जीते रहो, लाला कैसे याद किया है? क्या बात है?

मदनमोहन-आज शिवचरण पहुंचा था कि बहू रोटी नहीं चढ़ाती। तुम को इस लिये बुलाया है कि पूंछो तो क्यों झगड़ा करती हैं॥

चन्द्रवती—(दोनों बहुओं से पूंछ) लाला! छोटी तो यह कहती है कि बीबी जी कुछ भी काम नहीं करतीं, किसी काम को हाथ तक नहीं लगातीं। मुझ पै आधा काम करालो और जाने दो, थोड़ा बहुत कर लिया करें। बड़ी कहती है, मैं तो कुछ भी नहीं करती, केवली चाहे करे चाहे न करे॥

मदनमोहन—भला यह न्याय की बात है? क्या किशोरी खाती पीती नहीं है?॥

चन्द्रवती-लाला! यह सब उस के मरजाने का फ़ज़ीता है। तुमने तो यह टहलनी इस के पास रहने को रखदी थी, परन्तु यह हरामखोर हो गई॥

मदनमोहन—अच्छा, इस से यह तो पूंछो कि तू अपने पेट को भी कुछ न करेगी?॥

चन्द्रवती-(किशोरी से पूंछ) लाला! यह तो कहती है कि मुझ से कुछ न होगा॥

मदनमोहन—तो अच्छा भाभी! इन दोनों को अलग २ कर दो॥

चन्द्रवती (किशोरी के इशारे पर उस से बातें कर) लाला! बड़ी बहू कहती है कि केवली को अलग करदो और मेरे पास उसी टहलनीको रख दो, मैं सब काम उस से करालूंगी॥

मदनमोहन-अच्छा, छोटी बहू से भी तो पूंछो, वह क्या कहती है॥

चन्द्रवती-(केवली से पूंछ) लाला! छोटी बहू तो यों कहती है कि मुझे तो टहलनी की ज़रूरत नहीं, लाला जी का पीसना पोना सब कर लूंगी। चाहे जेठ जी भी मेरे ही पास रोटी खा लिया करें, पर बीबी जी अपनी रोटी आप कर लिया करें॥

मदनमोहन—भाभी! छोटी बहू कहती तो ठीक है। अच्छा, अब बड़ी से पूंछो, उस की क्या सलाह है॥

चन्द्रवती-(किशोरी से पूंछ) लाला! यह तो यों कहती है कि जब अलग ही होना ठहरा तो मैं कुछ अपाहज तो हूं ही नहीं, जो मेरा मालिक इस के हाथ की रोटी खाय। लाला जी की खुशी, चाहे इस में रोटी खावें, चाहे मुझ में। मेरा मालिक तो मुझ में ही रहेगा॥

मदनमोहन-भाभी! अब तो तुम ने सब सुन लिया, कुछ ऐसा प्रबन्ध करदो कि जिस से यह झगड़ा दूर हो जाय॥

चन्द्रवती-अच्छा लाला! तुम थोड़ी देर बाहर बैठो, मैं इन को समझालूं॥

अब मदनमोहन बाहर जाता है और चन्द्रवती समझाती है। बड़ी बहू काम करने को हां ही नहीं करती। छोटी कहती है कि एक वक्त़ ये कर लिया करें, एक वक्त़ मैं। ख़ैर आटा रोज़ मैं पीस लिया करूंगी और जो अलग भी हो जायं तो मैं लाला जी की भी टहल कर लिया करूंगी॥

किशोरी—ताई जी! मैं अलग हो जाऊंगी तो भी टहलनी रक्खूंगी। मैं तो पलङ्ग से नीचे पांव देने की नहीं, यह चाहे करे या न करे॥

चन्द्रवती-(मदनमोहन से) लाला! सुनो, बहू तो नहीं मानती छोटी तो पूरा पीसना और बाक़ी आधे काम पर राज़ी है, परबड़ी किसी काम को हां ही नहीं करती। अब यही ठीक है कि रोटी खाकर इन को अलग अलग कर दो॥

अब मदनमोहन ने आधा २ सामान बांट, दोनों बहुओं को अलग २ कर दिया। केवली तो बिचारी अपने घर का पोना पीसना सब करलेती और जो कुछ चीज़ सुसर भेजते बड़ी सावधानी से रखती, परन्तु किशोरी ने अलग होते ही एक टहलनी और एक रोटी पकाने वाली दो स्त्री नौकर रक्खीं। और थोड़े ही दिन में सब धन ख़र्च कर दिया, यहां तक कि उप-वास होने लगा। दैवयोग से एक दिन चन्द्रवती इस को देखने आई। दोनों बहुओं ने पालागन की, यह आशीष दे, बैठ गई और जानलिया कि किशोरी कुछ अपना हाल कहा चाहती है॥

चन्द्रवती—बेटी केवली ! तू थोड़ी देर अपना काम काज कर, मैं किशोरी से बातें करलूं, फिर तुझ से बातें करूंगी॥

केवली–अच्छा ताई जी ! मैं जातीहूं, पर मुझ से विना मिले न चली जाना॥

चन्द्रवती—(किशोरी से) कहो बहू ! अब क्या हाल है ?

किशोरी—(आंसूभर) ताई जी ! मैं तो अपने किये को पछताती हूं। अब केवली को समझादो कि साझे हो जाय। जो कुछ बनेगा, मैं भी काम काज कर लिया करूंगी॥

चन्द्रवती—बहू ! जो मुझ से कहलाती है तो मज़बूती से क़रार कर, ऐसा न हो जो तू फिर जाय। अच्छा मैं केवली के घर जाती हूं, तू पीछे से आजाना (और जाती है)

किशोरी—ताई जी ! मैं मज़बूती से क़रार करती हूं॥

केवली—ताई जी ! रोटी तैयार है, खा लीजिये॥

चन्द्रवती—बेटा ! वहां भी तो तुम्हारी ही रोटी हैं, भगवान् बहुत दे। पर जो तू हमारा कहना माने तो हम तुझ से एक बात कहें॥

केवली—ताई जी ! जो हुक्म। मैं आप की टहलनी हूं, जो हुक्म आप देंगी, सिर माथे से करूंगी॥

चन्द्रवती—बेटी ! किशोरी कहती है कि मुझे शामिल करलो॥

केवली—ताई जी ! मुझे आप के कहने से नाह तो नहीं, पर आप ही समझलें कि अब तो विना लड़ाई झगड़े अलग होगई। भला वह घर का काम काज करेगी ? तुम सोच लो कि टहलनियों की ज़रूरत ही क्या

थी, जो ढङ्ग से रहतीं तो रोटियों की क्या कमी थी । अब आप सब नीच ऊंच सोच जो हुक्म दें, करूंगी । पर मेरी समझ में तो अब साझा उचित नहीं, वैसे जैसा आप हुक्म दें, मुझे कुछ उज़र नहीं ॥

चन्द्रवती-हां, साझा तो अब मैं भी उचित नहीं समझती, जो होगया, सो होगया, पर बहू ! हम को तो उसे भी तङ्ग देख तरस आता है । बहू ! हम को तो दोनों बराबर हो ॥

केवली-ताई जी ! अच्छा लाला जी को राज़ी करलो । जेठ जी अपनी कमाई अलग रक्खें और अपने घर में रहें । रोटी दोनों वक्त जेठ जिठानी यहां खा लिया करें । मैं बड़ी खुशी से खिला दिया करूंगी ॥

चन्द्रवती-कहो किशोरी ! क्या कहती हो ॥

किशोरी-ताई जी ! यों तो हम रोटी न खावेंगे । जो केवली इस बात को अङ्गीकार करे कि हम उसी घर में रहें और एक वक़्त की रोटी मैं बना लिया करूं, तो मुझे मंज़ूर है ॥

केवली-यह तो मैं मंज़ूर न करूंगी । मुझे फिर फ़ज़ीते का डर है ॥

चन्द्रवती-तो भला बहू ! इस का भी कैसे ही गुज़ारा हो ?

केवली-जो मुझ से कहो, देने को हाज़िर हूं ॥

चन्द्रवती-तो अच्छा सौ रुपये इन को दे दो । उन से शिवचरण कुछ दुकान आदि करलेगा और इन की गुज़र होजावेगी ॥

केवली-अच्छा मंज़ूर । लाला जी को बुलालो और उन से कहो कि केवली कहती है-सौ रुपये जेठ जी को देदो।जो वे इनकार करें तो मेरा यह गहना बेचकर देदें ॥

अब चन्द्रवती ने मदनमोहन को बुलाया और सब समाचार कहा ॥

मदनमोहन-तो अच्छा, बहू से कहो कि अपना गहना उतार दे । मैं इस को बेच, सौ रुपये शिवचरण को देदूंगा । मेरे पास तो हैं ही नहीं, जो दूं ॥

केवली-(गहना उतार, चुपके से चन्द्रवती को दे) ताई जी ! लाला जी को देदो ॥

चन्द्रवती--लाला ! बहू गहना देती है ।

मदनमोहन—(गहना ले) अच्छा तुम यहीं बैठी रहना, अभी रुपये लाता हूं (और खुश हो, दुकान पर जा, कुछ ले, वापिस आ) भाभी !

यह लो । बहू से कहदो कि यह सौ रुपये अपने हाथ से इस किशोरी को देदे और यह अपना गहना ले और यह सुनहरी पचलड़ी दो सौ रुपये लागत की मैंने इस को बनवाई थी, इसे भी पहने । मैं इस को इन बातों पर बड़ा प्रसन्न हूं । जो यह किशोरी भी ढङ्ग से रहती तो मैं इस की भी सहायता को तैयार था । मुझे तो दोनों बेटे एकसे हैं । पर इस किशोरी ने अपने कोकन्दों से शिवचरण को भी ख़राब करदिया और आप भी ख़राब हुई । जो अब भी ढङ्ग से चले और कुछ काम ढङ्ग से करे तो मुझे और भी सौ दोसौ रुपये देने में नाह नहीं ॥

अब किशोरी ने सौ रुपये ले, अपने मालिक से नाममात्र दुकान कराई और फिर भी एक टहलनी रखली और सब रुपया बराबर कर फिर उपवास करने लगी और केवली ने वह बुद्धिमत्ता की कि पचास सौ रुपये की सहायता देती रही ॥

बेटी चावली ! इन स्त्रियों की यह दशा है कि अपना घर नहीं देखतीं और अमीरों की बराबरी चाहती हैं । ख़सम से सदैव कहती रहती हैं कि देखो फ़लानी पड़ौसन के पास इतना गहना है, ऐसे उत्तम उत्तम वस्त्र हैं, दो तीन टहलनी रहती हैं । तुम तो हमारे लिये कुछ भी नहीं करते । वह बिचारा जहां तक हो प्रबन्ध करताहै, परन्तु लावे कहां से, आमदनी तो मामूली,बड़ी कठिनाई से रोटी कपड़े का गुज़ारा होता है । अब बहू जी की इच्छा पूरी नहीं होती । दैवयोग से कोई द्यौरानी धनाढ्य घर की आगई । उस के पास गहना कपड़ा बहुतसा देख, डाह मानने लगीं। सास से भी लड़ती हैं, नन्द से भी नहीं बनती । जिठानी से नित्य तकरार रखती हैं, द्यौरानी को तो देख लोहू ही वर्षता है । अन्त में ताताथेई मचा, अलग हो जाती हैं और नित्यप्रति पति लानत मलामत की बौछार रखतीं हैं । वह बिचारा आफ़त का मारा सदैव दुःखी, जो कुछ बनज व्यापार करता, उसे भी नहीं करसकता, क्योंकि जब इतमीनान ही नहीं तो कार व बार कौन करे । अब रहीं धनाढ्य घरों की स्त्रियां, यह भी दो प्रकार की होती हैं और बहुत सी पतिसेवा नहीं करतीं । कोई २ होगी जो पतिसेवा व गृहस्थ का काम देखती हो, नहीं तो घर से कुछ प्रयोजन ही नहीं। इन में से जिस के मर्द विद्वान् हैं और अपने घर का प्रबन्ध रखते हैं उन के घर में

उन की मूर्खता से कुछ हानि नहीं होती और जहां प्रबन्धकर्त्ता पुरुष नहीं होते, वहां थोड़े दिन में घर का नाश होजाता है। कोई २ तो ऐसी धूर्त्त होती हैं कि जो कोई महिमान भी घर में आजावें तो बिचारे मालिक को उस की ख़ातिरदारी में बड़ा श्रम उठाना पड़ता है। लाचार बाज़ार से खाने का प्रबन्ध करता है। प्रयोजन यह है कि नियमपूर्वक शुश्रूषा भी नहीं कर सकता। कोई २ ऐसी निर्लज्जा होती हैं कि अपने घर का कुछ विचार न कर, बाप भाई को बहुतसा धन देदेती हैं। मैंने जहांतक देखा और विचारा है, मैं तो इन किसानियों की परिपाटी आज कल की सब स्त्रियों में उत्तम जानती हूं और मुझे उन के चालचलन व गृहस्थप्रबन्ध में कुछ भी गिला नहीं। बाक़ी इन सबों का चालचलन मुझे बहुत ही बुरा ज्ञात होता है।

हरदेवी—तो बीबी! यह तो बतलादो कि किस प्रकार उन को प्रबन्ध करना चाहिये?

चन्द्रमुखी—हां, मैं यह भी कहती हूं, कान लगाकर सुनो। अब इस कई दिन की बात चीत का फल सुनो॥

बहनो! संसार एक गाड़ी है, जिस के खेंचने के लिये पुरुष स्त्री दो बैल बनाये गये हैं। जब तक दोनों बराबर का बल नियमानुसार न लगावें, तब तक यह गाड़ी ठीक २ न चलेगी और मार्ग में ही पड़ी रहेगी। इन दोनों बैलों में इतना अन्तर और भी है कि इन के कार्य अलग २ हैं॥

पुरुष का कार्य यह है कि धन कमाकर लावे और अपने घर में सावधानी से रक्खे। आवश्यक कार्यों में ख़र्च करे। व्यर्थ अपनी कमाई न लुटावे। स्त्री का कार्य है कि जो कुछ भी बुद्धि रखती हो तो पति का धन या कमाई सावधानी से रक्खे और जो चीज़ घर के ख़र्च को आवें उन को बड़े प्रबन्ध से ख़र्च करे। मैं एक प्रबन्धकर्त्री स्त्री का वृत्तान्त सुनाती हूं, उस से सब गृहस्थ-मार्ग तुम्हारी समझ में आ जायगा, इस को ध्यान देकर सुनो॥

एक प्रबन्धकर्त्री स्त्री की कहानी

एक गांव में एक विक्रमसेन नामी रईस था। यह बड़ा मूर्ख, कुपढ़, ख़ुशामदी लोगों में रहता था। प्राप्ति भी उस की पचीस हज़ार रुपये सालकी थी, परन्तु प्रबन्ध न होने के कारण सदैव ऋणी रहता। स्त्री भी इस की कुछ प्रबन्धकर्त्री न थी। रोज़ आटा दाल भी क़र्ज़ ही आता, जो क़रज़ न मिलता तो रोटी भी तैयार न होती। कभी २ उपवास ही करना पड़ता।

एक दो महीने में एक उपवास अवश्य हो जाया करता। सेवक दश बारह मौजूद, टहलनी दश बीस हाज़िर, परन्तु सब हानिकारक। शायद चौथाई जिन्स बड़ी मुशकिल से घर पहुंचती हो, बाक़ी का हिस्सा टुकड़ा यह लोग बाहर ही कर लेते। कामदारों की यह दशा कि सदैव ख़ाली। जब आवश्यकता हो तमस्सुक ही लिखाने को तैयार। गांव में बटाई थी, जिस का हिसाब भी न मिले, कुछ पूंछ गछ भी न हो। इस के एक लड़का था, रिछपालसिंह नाम। अब रिछपालसिंह के विवाह का समय आया और रुपया क़रज़ ले, विवाह किया गया और चन्द्रकला नाम बहू आई। सास श्वशुर ने खुश हो, उस को घर में लिया॥

यह चन्द्रकला लिखी पढ़ी और एक सुगढ़ लड़की थी। इस के मा बाप ने इस को बड़ी अच्छी शिक्षा कराई थी। कुछ २ हिसाब किताब भी सिख लाया था, क्योंकि अपने बाप के अकेली बेटी थी, इस लिये वह अपने काम काज के काग़ज़ भी उसे दिखला दिया करता था। यहां तक कि उस ने प्रबन्ध के कामों में भी अच्छी बुद्धि पा ली थी। चन्द्रकला ने आते ही देखा कि सब नौकर चाकर चोर, मुंह ज़ोर, सास टहलियों के हाथ में, श्वशुर अपने नौकरों के फन्दे से नहीं निकलता। अब शोची कि व्याह को आई हूं, क्या करूं। (परन्तु एक दिन सास से-)

चन्द्रकला–मा जी! आप के कितनी सालाना आमदनी है?

पद्मकुंवर–बहू! जब मैं गौनिहाई आई थी, उस समय मेरी सास ने पचीस हज़ार रुपये साल की आमदनी बताई थी। अब कुछ ठीक आमदनी नहीं है, क्योंकि सब गांव में नाज बटाई कर दी है, पर तेरे श्वशुर कहा करते हैं कि पचीस तीस हज़ार रुपये साल की आमदनी है॥

चन्द्रकला–मा जी! यह आमदनी और कुछ उत्तम आभूषण तुम्हारे घर में नहीं? क्या कुछ क़रज़ हो गया है जो हमेशह सब जिन्स क़रज़ ही आती है॥

पद्मकुंवर—(आंसू भर) बहू! तुझ से क्या परदा है, तेरे श्वशुर को दो लाख रुपया देना है॥

चन्द्रकला—फिर प्रबन्ध क्यों नहीं करते?

पद्मकुंवर—बहू! यह प्रबन्ध तो सब भांति का करते हैं, पर कुछ हो ही नहीं सकता॥

चन्द्रकला-यह तो कुछ कठिन बात नहीं। जो आप और बड़े ठाकुर साहब मुझे हुक्म देवें तो मैं करूं॥

पद्मकुंवर--बहू! एक वार मेरा भाई आया था और उस ने प्रबन्ध करना चाहा था। इन नौकरों चाकरों ने मिलकर सब करज़ वालों को भड़का दिया, वे नालिश को तैयार हो गये। लाचार तेरे श्वशुर ने फिर इन कारिन्दों की खुशामद कर ली और ऐसे ही सब प्रबन्ध रहने दिया॥

चन्द्रकला-मा जी! जो प्रबन्ध न हुआ तो हम को क्या रहेगा, सिवाय इस के कि भीख मांगें और क्या हो सकता है॥

पद्मकुंवर-बहू! जो तू या तेरा बाप कुछ कर सकें तो ठाकुर बिचारे तो कुछ कहने के ही के नहीं, वह खुशी से मंजूर कर लेंगे। अब तुम आगई हो, तुम को अख़त्यार है, जो चाहो सो करो, क्योंकि वह तो आप ही यह कह दिया करते हैं कि दो चार महीना और रोटी खा लो, फिर कहीं परदेश को निकल चलेंगे। क़िसी ने कहा है कि "देश चोरी परदेश भीख"॥

चन्द्रकला-अच्छा मा जी! ठाकुर साहब को बुलालो, परन्तु इन सब बांदी, टहलनियों को अलग कर दो। मैं हूं और तुम हो और ठाकुर साहब और मैं कुछ बातें उन से पूंछ लूं। उस समय प्रबन्ध कर दूंगी। देखो इन में से किसी को ख़बर न हो॥

पद्मकुंवर—अच्छा अभी बुलाती हूं (और बांदी से) गेंदा! तू जाकर ठाकुर साहब से कहना कि रनवास में याद किये हो और केसर! तू उस दालान में फ़रश साफ़ कर दे॥

गेंदा--(चौपाल में पहुंच) ठाकुर साहब! आप को रनवास में याद किया है॥

विक्रमसेन—अच्छा चलते हैं (और उठ कर रनवास में आते हैं और रनवास में पहुंच) कैसे याद किया है?

पद्मकुंवर-(गर्दन फेर) गेंदा! तुम लोगों में से जब तक हम न बुलावें, कोई बांदी यहां दालान में न आवे। सब बाहर बैठो॥

ठाकुर विक्रमसेन गद्दी पर बैठ गये और नीचे को पद्मकुंवर बैठी, उन के पीछे बहू चन्द्रकला॥

विक्रमसेन-क्यों क्या कथा है?

पद्मकुंवर—महाराज ! आज बहू ने तुम्हारी सब आमदनी और ऋण का ब्यौरा पूंछा था और पूंछ कर बड़ी उदास होकर कहा कि हमारे लिये इस घर में क्या है । जो प्रबन्ध न हुआ तो कोई दिन में हम को भीख मांगनी पड़ेगी । मैंने कहा कि बहू ! क्या कहूं, अपनी समझ से तो सब प्रबन्ध किया ही जाता है । इस पर बहू ने कहा-जो बड़े ठाकुर साहब हुक्म देवें तो हवेली में बैठी मैं सब प्रबन्ध करदूं । इस लिये आप को बुलाया है,अब आप बहू को समझा दें (और कुछ शोकातुर होती है)

ठाकुरसाहब—हम ने तो तुम को कई वार कहा है कि हम को अब इस रियासत में क्या है, जो बहू प्रबन्ध करे तो सब से अच्छा, परन्तु स्त्रियों से भला कहीं प्रबन्ध होते हैं ?

पद्मकुंवर–(बहू से पूंछ) महाराज ! बहू यह कहती है कि सत्य है । रियासत और बाहर का काम मर्दों ही के हाथ है, परन्तु हवेली का प्रबन्ध तो मैं सब प्रकार कर सकती हूं ॥

विक्रमसेन—बहुत अच्छा, बहू से पूंछ लो । जैसा वह कहे, मैं करने को तयार हूं ॥

पद्मकुंवर–(बहू से पूंछ) महाराज ! बहू कहती है कि मैं एक चिट्ठी लिखे देती हूं, मेरे बाप के पास भेज दीजिये । वे रियासत का प्रबन्ध सब कर देंगे । घर का प्रबन्ध तो मैं ही कर लूंगी,परन्तु यह वृत्तान्त किसी को ज्ञात न हो॥

विक्रमसेन–बहुत अच्छा, बहू से चिट्ठी लेकर भेज दो,मैं अभी सवार को बुलाता हूं । वह आज ही चिट्ठी इस के बाप के पास पहुंचा देगा ॥

अब विक्रमसेन चौपाल में पहुंचे और सवार को बुलाया । इधर चन्द्रकला ने बाप को ब्यौरेवार चिट्ठी में लिखा कि आप कल सवेरे ही यहां आ जावें । नहीं तो इस घर का नाश है और चिट्ठी लेकर सवार चन्द्रकला के बाप इन्द्रजित् के पास पहुंचा और साथ लिवा लाया ॥

इन्द्रजित्-(आ) जुहार, ठाकुर साहब !

विक्रमसेन–जुहार साहब ! जुहार ! आइये,प्रसन्न तो आये ? प्रसन्न तो रहे?

इन्द्रजित्-हां साहब ! आप की कृपा है, कैसे याद किया ?

विक्रमसेन–भीतर हवेली में चलिये, आप की लड़की ने बुलाया है ॥

अब परदा कराया गया और चन्द्रकला व पद्मकुंवर परदे में बैठगईं और इन्द्रजित व विक्रमसेन परदे के निकट बैठे। इन्द्रजित ने सब हाल पूंछ लिया और जो ज़रूरत होती है, पूंछता जाता है और यों बात चीत होंने लगीं–

इन्द्रजित् ठाकुर साहब ! अब मुझ में और आप में कुछ अन्तर तो है ही नहीं। जो माल आप का है, वह मेरा है और जो मेरा है, वह आप का है और जो नुक़सान आप का है, वह मेरा है और जो नुक़सान मेरा है, वह आप का है॥

विक्रमसेन-बेशक, इस में कुछ संशय नहीं कि मेरा और आप का नुक़सान फ़ायदा एक ही है॥

इन्द्रजित्–अच्छा साहब ! अब आप अपना ब्यौरेवार हाल मुझ से कहदें, किसी प्रकार का छुपावें नहीं। वैसे तो मुझ को भी ज्ञात होगया है, परन्तु अब ब्यौरेवार मालूम होना चाहिये॥

विक्रमसेन–ठाकुर साहब ! इस समय मुझ को दो लाख तो रुपया देना है और आठ मेरे पास गांव हैं। सब की बटाई है। नक़दी किसी की है नहीं, पांच कारिन्दे हैं, पचीस सिपाही, दश सवार, दो हाथी, चार रथ, पांच मंझोली, बीस घोड़े, चालीस टहलनी हैं। सदा घर के ख़र्च को रुपया क़र्ज़ आता है। मुझे तो यही सूझती है कि दो चार महीने में कुछ न रहेगा, परन्तु दश हज़ार मन नाज इस समय मेरे कोठार में है॥

इन्द्रजित्–अच्छा कल से एक प्रबन्ध करो कि सब गावों की नक़दी लगान करदो, परन्तु किसी को यह हाल प्रकट न हो। आज से मैं प्रबन्ध करता हूं, आप कुछ न कहें॥

विक्रमसेन-भला आप के प्रबन्ध में मैं कुछ बोल सकता हूं ? और मुझ से तो कुछ हो ही नहीं सकता, आप जो चाहें सो करें॥

इन्द्रजित्-निस्सन्देह आप मेरे प्रबन्ध में कुछ हां न करेंगे, परन्तु आज से आप किसी कारिन्दे या सिपाही से भी बात चीत न करें। जो कोई कुछ पूंछे तो उस को मेरे पास भेज देवें॥

विक्रमसेन–बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा॥

अब दोनों बाहर चौपाल में आये और सब कारिन्दे और सिपाही कानाफूंसी कर रहे हैं कि ठाकुर इन्द्रजित् क्यों एकाएक बुलाये गये, कुछ समझ में नहीं आता ॥

इन्द्रजित्—(दीवान से) दीवान जी! आप के कितने कारिन्दे हैं और कितने सिपाही उन के आधीन हैं? और ठाकुर साहब के कितने गांव हैं?

दीवान-ठाकुर साहब! हम पांच कारिन्दे हैं और पच्चीस सिपाही और आठ गांव हैं ॥

इन्द्रजित्-अच्छा तो आप चार कारिन्दों को चार २ सिपाही साथ कर इलाक़े में भेजदेवें कि वे सब आसामियों को बुलालावें और पटवारी भी बुलालिये जावें। हम सब का लगान नक़दी मुक़र्रिर करेंगे और कारिन्दों को यह भी समझा दीजिये कि इस प्रबन्ध में जो ख़ैरख़्वाही करेगा उस के साथ आगे अच्छा सलूक होगा ॥

दीवान जी-बहुत अच्छा, जो हुक्म ॥

इन्द्रजित्-दीवान जी! यह तो फ़र्माइये कि आप लोगों को तनख़्वाह क्या क्या मिलती है? और सिपाहियों को क्या? और पटवारियों को क्या फ़सलाना मिलता है?

दीवान जी-महाराज! पांच रुपये महीना तो मुझ को मिलता है और चार २ रुपये महीना और कारिन्दों को और दो २ रुपये महीना सिपाहियों को और पटवारियों को हमारे यहां से कुछ भी नहीं मिलता ॥

इन्द्रजित्-हम आप को पन्द्रह रुपये से तीस रुपये महीने तक तनख़्वाह देंगे और और कारिन्दों को बीस रुपये महीने तक, सिपाहियों को पांच रुपये महीने तक, परन्तु यह तनख़्वाह सब कारगुज़ारी व लियाक़त पर नियत की जावेगी। पटवारियों से भी कह दीजिये कि पचास रुपये फ़ी गांव तक उन को भी सालाना ख़ैरख़्वाही पर मिलेगा। अब आप इस काम में जल्दी कीजिये, देर न हो ॥

दीवान जी-जो हुक्म, अभी २ सब को समझाये देता हूं (और दीवान जी सब को बुला कर समझाते हैं और चारों कारिन्दे और सोलह सिपाही देहात की आसामियों को लेने जाते हैं। आठों गांव के दो पटवारी थे, वे

भी आते हैं और अलग बालाखाने पर जा, इन्द्रजित् और पटवारियों में यों बात चीत होती हैं)

इन्द्रजित्-पटवारी जी ! आप को मालूम है कि ठाकुर विक्रमसेन की रियासत का प्रबन्ध कैसा बुरा है। जो आप लोग इस का प्रबन्ध करादेंगे तो हम आप को पूरा २ सालीना देवेंगे ॥

एक पटवारी-हां ठाकुर साहिब ! मेरा तो साला गोकुलप्रसाद आप के गांव चमरावले में पटवारी है। वह आप की बड़ी तारीफ़ किया करता है॥

इन्द्रजित्-बस आप को मालूम ही है। अब आप लोग अपना हक़ तै करलें और लगान माक़ूल आसामियों से तै करादें ॥

पटवारी-अजी ! जो आप देवेंगे, हम खुशी से लेलेवेंगे। हम को क्या उज़र है। हम तो आप के ताबेदार हैं ॥

इन्द्रजित्-नहीं दीवान जी ! साफ़ मामला अच्छा होता है। हम अपने पटवारी को रसूमातपटवारी जो क़ानून से वसूल होती है, देते हैं। वही आप को मिलेगी, परन्तु जब कुछ बक़ाया गांवों में रहजावेगी तो हम आप की फ़ीस में से काटलेवेंगे ॥

पटवारी लोग-महाराज ! बहुत अच्छा। हम को कुछ उज़र नहीं,केवल एक कारिन्दा और आठ सिपाही क़ाफ़ी हैं ॥

इन्द्रजित्-हां हमारी समझ में भी इतना ही चाहिये,परन्तु इस समय किसी को जवाब न देना चाहिये। जिस समय सब की पट्टे क़बूलियत होजायंगी, उस समय हम ऐसी तरक़ीब से इन को अलग करदेंगे कि इन को किसी रीति की निन्दा का अवसर न मिले और मुझ से तो कहलाइये भी नहीं। आप सब देहात की पट्टबन्दी करादीजिये और तहसील तशख़ीस आज ही से सब आप ही के ज़िम्मे रहेगी ॥

पटवारी-बहुत अच्छा, आसामियों को आने दीजिये ॥

अब आसामी आने लगीं और क़ानूनगोह पर्गना भी दैवयोग से आगये और आसामियों के पट्टे क़बूलियत बशरह नक़दी लिखे गये और क़ानूनगोह से तसदीक़ कराई गई। प्रयोजन यह है कि तमाम देहात की शरह

नक़दी मुक़र्रिर कर दी और जमाबन्दी का जोड़ चालीस हज़ार रुपये साल हुवा। इस से निवृत्त हो:—

इन्द्रजित्—दीवान जी! क़र्ज़ की फ़हरिस्त निकालिये और साहूकारों को बुलवाइये, हम सब का हिसाब साफ़ करेंगे॥

दीवान जी-बहुत अच्छा (अब बज़ाज़, मोदी, साहूकार, कोंजड़े, दरज़ी सब लोग बुलाये जाते हैं और सब के हिसाब साफ़ कर, क़र्ज़ की मीज़ान लगाई जाती है तो दो लाख बीस हज़ार रुपये होते हैं)

इन्द्रजित्—(लाला किरोड़ीमल व लक्खीमल व बसन्तराय साहूकारों से) सेठ जी साहब! ज़ियादह रुपया आप ही लोगों का इस रियासत को देना है और आप लोगों ने रियासत से सूद भी बहुत लिया है। अब आप यह तो फ़रमा दीजिये कि आगे को आप लोग क़र्ज़ा रियासत के ज़िम्मे रक्खेंगे या कहीं बाहर से इस का फ़िक्र करें॥

किरोड़ीमल ठाकुर साहब! हम को क्या उज़र है। जैसे आप कहें, हम हाज़िर हैं॥

इन्द्रजित्—तो अच्छा अब सब साहब सम्मति करके व्याज ठैरा देवें॥

किरोड़ीमल—(लक्खीमल व बसन्तराय से सम्मति कर) ठाकुर साहब! आप बुरा न मानें, यह मामले की बात है, पहिले आप इक़रार कर लेवें कि हम नाराज़ न होंगे तो हम अरज़ करें॥

इन्द्रजित्—आप बिला तकल्लुफ़ फ़रमावें। भला इस में नाराज़गी की कौन बात है॥

किरोड़ीमल—जो रुपया इसी तरह से जैसे कि अब है, क़रज़ रक्खा जावे तो हम बारह आने सैंकड़ा माहवारी सूद लेवेंगे और जो जायदाद रहन की जावे तो हम छः आने सैंकड़ा तक सूद लेलेवेंगे॥

इन्द्रजित्-(सोच कर) अच्छा आप दस आने सैंकड़ा बहैसियत मौजूदह और पांच आने सैंकड़ा रहन पर लेलेवें और आप को अख़्त्यार है, जिस तरह से चाहें लिखत करालें॥

किरोड़ीमल-(लक्खीमल व वसन्तराय से कानाफूंसी कर कि अच्छा मौक़ा है। इस वक्त दस्तावेज़ हो जायंगी, पांच आने मन्जूर करलो) अच्छा ठाकुर साहब ! आप से क्या उज़र है। पांच आने सैंकड़ा माहवार पर रहन करा दीजिये। अब तीन मौज़े सात हज़ार दोसो पचास रुपये सालाना मुनाफ़े के, जिन की जमाबन्दी सत्तरह हज़ार रुपये सालाना थी, अलग २ तीनों के नाम दो लाख बीस हज़ार रुपये में रहन किये गये। पांच गांव तेईस हज़ार की जमाबन्दी के ठाकुर साहब के पास रहे। इस से निवृत्त होः-

इन्द्रजित्-दीवान जी ! आप वसूल बाक़ी का हिसाब रक्खें। रुपया सब चन्द्रकला के पास रहेगा और दो वर्ष तक लड़की यहीं रहेगी। रोज़ाना काग़ज़ हिसाब के आप हवेली में भेज दिया करें और दस्तख़त करा मंगवाया करें, रसीद सब रुपये की दस्तख़ती चन्द्रकला दी जावे। विना रसीद किसी से रुपया न लिया जावे। फलां २ पांच सिपाही देहात में फ़ी गांव एक के हिसाब से तईनात किये जावें। एक ब्राह्मण, एक कहार, एक नाई, चार २ रुपये महीने और बाहर की ख़ूराक पर ठाकुर साहिब के साथ रहें। दो आदमी ख़िद्मतगार कुंवर साहब के पास रहें। बाक़ी चार कारिन्दों और १५ सिपाहियों से कह दो कि हमारी रियासत में चलें। हम कारिन्दों को बजाय चार २ रुपये माहवार के दश २ रुपये माहवार और सिपाहियों को दो दो रुपये की जगह चार २ रुपये महीने तनख़्वाह देवेंगे। एक हाथी, एक रथ, एक मंझोली, पांच घोड़े रक्खे जावें। बाक़ी सब नीलाम कर दिये जावें। आज से पन्द्रहवें दिन यह सब शहर में पहुंच जावें। हम जाकर आप नीलाम करेंगे। घोड़ों में से दो सवारों के पास रहें, बाक़ी में से दो ठाकुर साहब व कुंवर साहब की सवारी को, एक तुम्हारी सवारी के लिये। जिस रोज़ आप चन्द्रकला के दस्तख़त न करावें, उसी रोज़ जवाब लूंगा॥

दीवान जी ('बहुत अच्छा कह, दरयाफ़्त कर) महाराज ! कोई कारिन्दा या सिपाही आप के साथ जाना पसन्द नहीं करता॥

इन्द्रजित्-अच्छा तो हिसाब कर दो, यह रियासत तो इस का भार नहीं उठा सकती। (अब हिसाब तै कर, सब अलग कर दिये गये और इन्द्रजित् ने बहुत से इश्तिहार छपवाकर तारीख़ नीलाम नियत कर कई शहरों व देहातों में भिजवा दिये और हवेली में पहुंचे)

इन्द्रजित्—बेटी ! मैंने बाहर का प्रबन्ध कर दिया है। हाथी, घोड़े, रथ, मंझोली नीलाम करने हैं, सो उन के लिये इश्तिहार देकर तारीख़ नीलाम नियत करदी है नीलाम कर, रुपया तुम्हारे पास भेजदूंगा। आज से जो रुपया वसूल हो उस की रसीद पर तुम दस्तख़त किया करो। अब घर का प्रबन्ध तो तुम्हारे हाथ है। नाज दश हज़ार मन तुम्हारे मौजूद है, सो इस के बेचने का समय अभी नहीं, हौले २ बेचलेना। अब मैं जाता हूं (और रुख़सत हो, बाहर आये और हाथी घोड़ों आदि का मूल्य नियत कर, ठाकुर साहब से कह दिया कि) इस मुताबिक़ जो कोई क़ीमत दे तो आप बेचदेवें, नहीं तो इन को तारीख़ से दो रोज़ पहिले शहर में पहुंचा-देवें। मैं पहुंच कर नीलाम करदूंगा और जितने ख़र्च की ज़रूरत होवे आप चन्द्रकला से मंगवालिया करें। यह थोड़ीसी तङ्गी आप को अपने जी पर करनी होगी। जो यह तङ्गी भुगतली तो थोड़े ही दिन में आप और भी जायदाद ख़रीद सकेंगे॥

विक्रमसेन-मैं तो आप से इक़रार कर चुका हूं, इस में फ़र्क़ न होगा॥

इन्द्रजित्-अच्छा तो क़ीमत विक्रययोग्य माल की सुन लीजिये और (दीवान जी से) आप लिखलें॥

हाथी	घोड़ा सबज़ा	घोड़ा कुम्मा
४०००)	३००)	२००)
घोड़ी सबज़ी	जोड़ी कुम्मेत	जोड़ी सबज़ी
२५०)	८००)	९००)
घोड़ा बादामी	जोड़ी बादामी	घोड़ी कुम्मेत
३५०)	२०००)	२५०)
घोड़ी बड़ी कुम्मेत	घोड़ी समन्द	घोड़ी सुर्ख़ी
३००)	२२५)	२००)
घोड़ी पंचकल्याणी	रथ दुबुर्जिया	रथ एकबुर्जिया
२५०)	६००)	५५०)
रथ मुरादाबादी	मंझोली प्रत्येक	जोड़
५००)	४००)	१२०७५)

और यह एक अशर्फ़ी आप की नज़र है और एक कुंवर साहब की और

पांच अशर्फ़ी ठकुरानी साहब की । और मैं जाता हूं (और राम २ कर रुख़सत हुवे । दैवयोग से ग्राहक आने लगे और तारीख़ नीलाम से पहिले सब चीज़ें नियत मूल्य पर बिक गईं और सब रुपया चन्द्रकला के पास रक्खा गया । अब घर के प्रबन्ध का समाचार सुनिये)–

चन्द्रकला–(पद्मकुंवर से) माता जी ! बाहर का प्रबन्ध तो मेरे पिता जी ने कर दिया, अब यहां का आप के हाथ है ॥

पद्मकुंवर बहू ! हम को तो रोटी दे दिया कर और जैसे तू कहेगी वैसे ही हाज़िर हैं । जो तू धूपमें कहे धूपमें और छांहमें कहे छांह में खड़ी रहूं ॥

चन्द्रकला–तो अच्छा, एक ब्राह्मणी रोटी बनाने को रहने दीजिये और दो कहारी चौका वर्तन के लिये, तीन टहलनी आप की ख़िदमत को, एक मेरे लिये और एक बुढ़िया बाहर से रुपया पैसा काग़ज़ लाने को, बाक़ी सब अलग॥

पद्मकुंवर–बहू तेरे लिये एक थोड़ी है, दो तो रहने दे ॥

चन्द्रकला–बहुत अच्छा, दो रहने दीजिये ॥

पद्मकुंवर–अच्छा तो कब निकालोगी ? ॥

चन्द्रकला–देखो, मैं ऐसी राह से निकालूंगी कि कोई गिला न कर सके और सब चुप से निकल जावें । आप कुंवर साहब से इतना और समझादें कि जिस चीज़ को मेरा परचा जावे, अपने आप बाज़ार से साथ लिवा लाया करें॥

पद्मकुंवर–('बहुत अच्छा कह, रिछपालसिंह को बुला, हिदायत करती है और बांदियों से) देखो, जो हुक्म छोटी ठकुरानी देवें, उस को करो ॥

चन्द्रकला–अच्छा तुम सब को अब हम दो २ रुपये महीना नक़द और खाना और साल भर में दो २ जोड़े कपड़े प्रत्येक को देंगे । जिस को नौकरी करनी हो वह ठहरे, नहीं तो रुख़सत हों ॥

सब बांदी—भला ठकुरानी जी ! हम तो यहां बूढ़ी हो गईं यहां से कहां जा सकती हैं ॥

चन्द्रकला–जो तुम्हारी खुशी है, रहो, परन्तु तुम में से जो कोई विना आज्ञा चली जायगी वह अपने को अलग समझे (और आप ने ख़बरदारी की कि एक सप्ताह में आधी ग़ैरहाज़िरी निकाली गईं और एक लिखी पढ़ी टहलनी के पांच रुपये मासिक और तीन जोड़े कपड़े और खाना नियत कर, हुक्म दिया कि) तुम रोज़ाना हिसाब किताब लिखा करो (और एक

बनियायन को बुला, हुक्म दिया कि) तुम को चार रुपये मासिक और ३ जोड़े कपड़े सालाना और खुराक मिलेगी। चाहे नक़द दश रुपये मासिक लो। कोठार में जिन्स तोल, जमा कर लिया करो और ख़र्च लायक़ तोल दिया करो। अब कोठार हवेली के अन्दर है और उस की रक्षक दो स्त्रियां हैं। दो टहलनी अपनी ख़िदमत में हैं। तीन ठकुरानी पद्मकुंवर के, दो रसोई को ब्राह्मणी, दो टहलनी चौका वर्तन को। जिस जिन्स की ज़रूरत होती है, कुंवर साहब नक़द रुपया ले जा, बाज़ार से अपने साथ ला, हवेली के कोठार में जमा कर देते हैं। किसी की शक्ति नहीं कि चोरी कर सके। दो बांदी बाहर जिन्स पहुंचाने को नौकर हैं। यहां तक कि चोर बांदियों ने एक मास पूरा किया और पीछे सब अपने २ घर बैठीं। इधर १२०५५ रुपये बिक्री माल का जमा हुआ। उधर ख़र्च कम कर दिया गया। जो जिन्स बड़े कोठार में से, जिस में दश हज़ार मन नाज था, आती, तो विक्रय में लिखी जाती और रुपया नक़द बिक्री में जमा किया जाता। उधर जिन्स कोठार के हिसाब में जमा होती। एक महीना गुज़रने पर चन्द्रकला ने विचार किया कि ठाकुर साहब को जब कुछ ज़रूरत रुपये पैसे की होती है तो वह मुझ से मांगते हैं, यह बात अनुचित ज्ञात होती होगी और न भी हो तो औरों को तो चर्चा का अवसर मिलेगा। इस लिये उचित समझ पचास रुपये महीना ठाकुर साहब का और पचीस रुपये महीना कुंवर साहब का और पचीस रुपया महीना ठकुरानी पद्मकुंवर का और पन्द्रह रुपये महीना अपना ख़र्च नियत कर, सब को सुना दिया कि अख़ीर महीने पर लेलिया करें और जो कुछ रुपये पिछले महीने के ख़र्च से बचें उन को जमा कर दिया करें। मैं उस पर आठ आने सैंकड़ा मासिक व्याज दूंगी और जिस को जितनी अपनी पूंजी से ज़रूरत होगी, व्याज तुरन्त दे दूंगी। इस व्याज के लोभ ने उन को ऐसा लोभित कर दिया कि कोई शायद एक दो रुपये महीना ख़र्च करता (नहीं तो तनख़ाह ली और उलटी जमा। अब हिसाब तैयार किया गया, ठीक पांचसौरुपये का ख़र्च है। छमाहीपर आमदनी लगान शुरू हुई। आमदनी से पहिले मालगुज़ारी अदा की गई और सात हज़ार रुपये मुनाफ़ा हुवा। दैवयोग से नाज भी बीस हज़ार रुपये को बिक गया॥

चन्द्रकला—(बांदी से) दीवान जी से कहो कि छमाही का हिसाब तैयार करके भेजदेवें॥

बांदी—(बाहरजा)दीवान जी छमाही का हिसाब ठकुरानी साहब मांगतीहैं॥

दीवान जी—बैठ जाओ, तैयार है, लेतो जाओ॥

बांदी-महारानी जी ! यह काग़ज़ दीवान जी ने दिया है॥

चन्द्रकला-(पद्मकुंवर से) माजी ! यह हिसाब तो देख लीजिये॥

पद्मकुंवर-बेटी मैं हिसाब क्या जानूं ?

चन्द्रकला-नहीं सुन तो लीजिये॥

पद्मकुंवर-अच्छा तुम्हारी ख़ुशी, सुनादो॥

चन्द्रकला-	आमदनी इलाक़ा	ख़र्च छःमाही	
	११५००)	७०००)	
बाक़ी	बिकरी नाज	बिकरी घोड़ा हाथी	जोड़
४५००)	२००००)	१२०७५)	३६५७५)

हां इस के सिवाय तीन सौ रुपये ठाकुर साहब का, डेढ़ सौ रुपये आप का और डेढ़ सौ रुपये कुंवर साहब का और नठवे रुपया मेरा; छः सौ नठवे और जमा हैं॥

पद्मकुंवर-बेटी ! अब इस रुपये को क्या करोगी ?

चन्द्रकला—माजी ! जो साहूकार कोई लेकर आधा गांव छोड़ देगा तो उस को दूंगी, नहीं तो किसी बङ्क में भेज दूंगी, वहां मुझे छः आने सैंकड़ा व्याज मिलेगा॥

पद्मकुंवर— तो सब भेजदोगी ?

चन्द्रकला-नहीं माजी ! इस में से तीस हज़ार भेजदूंगी, छः हज़ार पांच सौ पिछत्तर रुपये ख़र्च को रक्खूंगी॥

पद्मकुंवर-भला बहू जो किसी ने नहीं लिया तो कितना लाभहोगा ?

चन्द्रकला-माजी बङ्क से एक हज़ार तीन सौ पचास रुपये सालाना व्याज मिलेगा॥

अब चन्द्रकला ने एक सेठ को रुपया दे, आधा गांव छुड़ा लिया और इसी प्रकार थोड़े दिन में सब जायदाद ऋण से छुड़ाली॥

ए चावली! प्रबन्ध बड़ा श्रेष्ठ है। जिस समय कोई मनुष्य प्रबन्ध से ख़र्च करता है उस समय उस को कोई हानि नहीं होसक्ती।सब स्त्रियोंको चाहिये कि पहले घर का प्रबन्ध देखें। आमदनी को परताल फिर ख़र्च को परतालें और फिर बचत देख, उस में से कुछ गांठ करें कुछ से गहना तैयार करावें

दूसरों को देख, खाने कपड़े गहने का लोभ न करें। यह डाह बुरी बला है। जिस समय कि यह बढ़ती है, सब घर बार को ख़राब कर देती है ॥ अच्छा अब समय नहीं रहा, इस समय मैं बन्द करती हूं। कल जो तुम सब इकट्ठी हुई तो फिर कहूंगी ॥

हरदेवी—चन्द्रमुखी ! जो किसी और पतिव्रता रानी की कहानी याद हो तो सुना दीजिये ॥

चन्द्रमुखी-सुनो बहनो ! मैं तुम को महात्मा नल और श्रीमती दमयन्ती का हाल सुनाती हूं। यह दमयन्ती जिस को आज कल "दुर्मती" कहते हैं, बड़ी पतिव्रता स्त्री हुई हैं। उन का वृत्तान्त सुनोः—

नल का वृत्तान्त

अवध देश में वीरसेन नाम राजा थे। उन के पीछे उन का बेटा नल गद्दी पर बैठा। नल बड़ा शूरवीर, महादानी, घोड़ों की विद्या में बड़ा चतुर और सब राजाओं में महाराजा माना जाता था। राजाओं में उस की प्रतिष्ठा देवताओं के राजा इन्द्र के समान थी। सत्यवादी, सत्यकर्मी प्रयोजन यह कि सत्य ही के जानने वाला, विद्या बहुत अच्छी जानता था। वेद ही को मानता। ब्राह्मण और पण्डित बहुत दर्बार में रहते। चतुरङ्गिणी सेना भी मौजूद। उस समय कोई राजा ऐसा न था कि जो उस के समान हो, परन्तु पासों से खेलने का स्वभाव पड़ गया था। सब विद्या जानता था, परन्तु तुम जानती हो कि कोई न कोई दोष तो मनुष्य में अवश्य होता ही है। इस में पासों के खेल का दोष पड़ गया था। सिवाय और गुणों के इस राजा की प्रजा भी बड़ी सुखी थी और राजा सुन्दर स्वरूपवान् था कि संसार में उस के रूप की प्रशंसा हो रही थी ॥

दमयन्ती

विदर्भ देश में, जिसे अब त्रिचनापल्ली कहते हैं, राजा भीम बड़ा धर्मात्मा, पराक्रमी, यशस्वी, जितेन्द्रिय, सर्वगुणसम्पन्न राजा था। उस के चतुरङ्गिणी सेना भी थी, परन्तु सन्तान न होने के कारण सदैव उदास रहता। एक दिन की बात है कि राजा दर्बार में सिंहासन पर बैठा था और सब मन्त्री, पुरोहित, दर्बारी मौजूद थे कि दमन ऋषि दर्बार में आये। राजा हाथ जोड़, प्रणाम कर, खड़ा हो गया ॥

राजा भीम-(हाथ जोड़, आसन छोड़, हंस) आइये महाराज ! बड़ी कृपा की। कहिये प्रसन्न तो आये ? प्रसन्न तो रहे ? आप को इस राज्य में कुछ दुःख तो नहीं हुआ ? किसी ने आप को सताया तो नहीं ? (और आसन पर बिठाल, चरण धो, ख़ूब सेवा करता है)

दमन ऋषि-राजन् ! प्रसन्न तो रहे। तुम्हारे राज्य में हम को सब प्रकार आनन्द मिला, परन्तु यह सुना है कि तुम को सन्तान न होने का शोक है। भाई ! जब हम लोगों की तुम रक्षा करते हो तो हम लोग किसी समय तुम को दुःखी नहीं देख सकते ॥

राजा-हां महाराज ! मुझे यह शोक तो है कि मेरे पीछे राज्य का कौन भागी होगा। हां, अब आप ने कृपा की है, इस से आशा होती है कि मेरा यह दुःख भी जाता रहेगा। जहां आप से ऋषि विद्यमान हैं वहां क्या कमी है भला आप के होते मुझे यह शोक रह सकता है ? नहीं २ मुझे यह सन्तान का भी दुःख न रहेगा। अब आप जो उचित समझें, प्रबन्ध करें ॥

दमन ऋषि-अच्छा, राजा ! यज्ञ कराइये। हम तुम्हारे सन्तान होने का प्रबन्ध करेंगे ॥

राजा-जो आज्ञा ॥

बस अब राजा ने यज्ञ कराया और बहुत कुछ दान पुण्य किया गया और राजा के दम, दान्त, दमन तीन बेटे और दमयन्ती नाम १ बेटी उत्पन्न हुई यह कन्या बड़ी रूपवती शीलस्वभाव थी। राजा ने शिक्षा भी अच्छी कराई थी। जब यह कन्या विवाह के योग्य हुई तो इस की सुन्दरता और रूप का यश दूर २ देशों में फैला और सब देवता, गन्धर्व यक्ष, नाग व राजा लोग इस की इच्छा करने लगे और सखी दमयन्ती से नल की प्रशंसा करने लगीं और दमयन्ती को भी विना देखे इच्छा हो गई कि नल के साथ विवाह होना चाहिये ॥

राजा नल का वृत्तान्त

एक दिन राजा नल शिकार खेलने को चला और एक अति सुन्दर हंस को शिकार में जीता पकड़ लिया, परन्तु दूसरा उड़ गया ॥

हंस-(उड़ता हुआ) राजा ! तू हंस को छोड़दे। हम इस के बदले तेरा बड़ा लाभ करेंगे। सुन, हम विदर्भ देश के राजा भीम की पुत्री से तेरी प्रशंसा करेंगे और वह तेरे साथ विवाह करेगी। आज संसार में दमयन्ती से अधिक रूपवती स्त्री कोई नहीं ॥

राजा—'बहुत अच्छा' कह, हंस को छोड़ दिया ॥

अब हंस उड़ कर विदर्भनगरी में पहुंचे और वहां पृथिवी पर उतरे। दमयन्ती हंसों को देख, बड़ी प्रसन्न हुई और प्रसन्नता से उन के पकड़ने को चली। उधर हंस सब इकट्ठे हो गये, परन्तु राणी ने प्रबन्ध किया कि एक एक सखी एक २ हंस के पीछे पीछे जाकर पकड़ लावे और आप दमयन्ती भी एक हंस के पीछे दौड़ी ॥

हंस—ए दमयन्ती! तू जो हम से प्रीति करती है, इस लिये हम तुझ से कहते हैं कि हम सारे संसार में फिर आये, परन्तु तेरे समान वर कोई भी देवता, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और मनुष्य में नहीं दीखा। परन्तु तुम्हारे योग्य एक राजा नल अयोध्या वाले को हमने देखा है। वह बड़ा धर्मात्मा शूर वीर सब विद्या पढ़ा है। जैसी कि तू स्त्रियों में रूपवती और चतुर है, वैसा ही वह पुरुषों में। जो तुम्हारा और उस का विवाह हो जाय तो हमारा सा जोड़ा तुम्हारा भी ख़ूब मिले ॥

दमयन्ती—ए हंस तुम सच कहते हो। मैंने भी नल की बहुत प्रशंसा सुनी है। मैं जानती हूं कि उन से ही मेरा विवाह होगा (और राजा नल के साथ विवाह का प्रबन्ध करने लगी और यहां तक ध्यान हुआ कि रात दिन बेचैन रहने लगी)

भीम—(मन्त्री व पुरोहितों से) भाई! अब दमयन्ती विवाह के योग्य हुई। उचित यही है कि इस का स्वयंवर किया जाय। अब आप लोग सब राजा महाराजाओं को नौता दे आवें ॥

मन्त्री 'जो आज्ञा, कह, विदा हुआ और सब संसार के राजों के पास नौता भेज दिया और महमानदारी का प्रबन्ध होने लगा ॥

बस राजा लोग आने लगे और आदर सत्कार यथायोग्य होने लगा ॥

इन्द्रपुरी

एक दिन नारदमुनि पर्वत ऋषिसहित विचरते हुवे इन्द्रपुरी में राजा इन्द्र के पास पहुंचे ॥

इन्द्र-(नारद मुनि व पर्वत ऋषि को आते देख, आसन छोड़ खड़ा हो, बहुत सत्कार कर, कुशल पूछ) महाराज! सब लोक में कुशल है?

नारद-सब लोक में कुशल है, किसी को कुछ कष्ट नहीं ॥

इन्द्र–महाराज ! आज कल बहुत से राजा लोग अपनी २ राजधानियों में नहीं हैं, इस का क्या कारण है ?

नारद–राजन् ! विदर्भ देश के राजा भीम की कन्या का स्वयंवर है और वह कन्या देवरूपिणी है। उस के स्वयंवर में सब राजा लोग और बहुत से देवता व गन्धर्व भी जा रहे हैं ॥

इन्द्र–महाराज ! मेरा भी इरादा उस स्वयंवर में जाने का है ॥

नारद–अच्छा आप भी जाइये । वहां तो अग्नि, वरुण, यमराज भी गये हैं और अब हम भी घूमने जाते हैं, फिर मिलेंगे (और पर्वत ऋषि के साथ चल दिये)

बस सब राजे और नल, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यमराज सहित विदर्भ नगरी में पहुंचे। राजा नल पूजा कर रहे थे कि आकाशवाणी हुई ॥

आकाशवाणी–ए धर्मात्मा अयोध्याधीश ! तुम सब मनुष्यों में धर्मात्मा और श्रेष्ठ हो । हमारी भी सहायता करो और हमारे दूत हो ॥

राजा नल–आइये, आप कौन हैं आइये । मेरे सम्मुख आइये । जो आप कहेंगे, करूंगा ॥

चारों राजा के सम्मुख आ खड़े होगये ॥

राजा नल—आप कौन हैं और क्यों मुझ को दूत बनाया चाहते हैं और आप का मुझ से क्या कार्य है, सच २ बतलाइये ॥

इन्द्र—मैं इन्द्र हूं, आप वरुण हैं, आप अग्नि हैं और आप यमराज हैं। आप कृपा कर रानी दमयन्ती से जाकर हमारा यह समाचार कह दीजिये कि अग्नि, इन्द्र, वरुण और यमराज तुम से विवाह करना चाहते हैं, तुम उन में से किसी को अङ्गीकार कर लो ॥

राजा नल–(हाथ जोड़) महाराज ! आप सब का एक प्रश्न है और एक ही मनोरथ । मुझ को न भेजिये । भला यह कब होसक्ता है कि मनुष्य इस प्रकार कुंवारी कन्या से ऐसा कहने की शक्ति करे। अब कृपा कर मेरे ऊपर क्षमा कीजिये ॥

चारों–राजन् ! पहिले आप हम से कह चुके हैं । धर्मात्माओं को अपने वचन से न फिरना चाहिये । इस लिये अब आप को जाना होगा ॥

राजा नल–भला महाराज ! उन सुरक्षित महलों में मैं कैसे जा सकता हूं ।

बतलाइये तो वहां जाने का कैसे मनोरथ करूं ॥

इन्द्र-हम तुम को वरदान देते हैं कि बेखटके महलों में चले जाओ ॥

नल-'बहुत अच्छा, कह, महलों को चल दिया और जाकर देखा कि बहुत सखियों के बीच में रानी दमयन्ती बड़ी रूपवती अति सुन्दर आसन पर बैठी है॥

दमयन्ती-(खड़ी हो, मुस्कराती हुई) आइये, आप देव हैं? गन्धर्व हैं, कौन हैं? मैं आप को जानना चाहती हूं और यह भी बतलाइये कि यह महल तो मेरे पिता ने सुरक्षित कर रक्खा है, तुम यहां कैसे चले आये? क्या किसी ने आप को नहीं रोका? ।।

नल—ए कल्याणि! मैं राजा नल हूं और देवताओं का भेजा हुआ दूत यहां आया हूं। इन्द्र, वरुण, अग्नि और यमराज चारों देवताओं ने मुझे आप के पास भेज कर कहा है कि चारों में से जिसे चाहो वर बना लो और उन्हीं के वरदान से निर्भय यहां चला आया हूं और मुझे किसी ने रोका भी नहीं और न मुझे किसी ने देखा। ए सुन्दरि! मैं उत्तम देवताओं का दूत हूं। अब आप जो उचित समझें सो करें ॥

दमयन्ती-(देवताओं को नमस्कार कर हंसती हुई) राजन्! आप मुझ को वरलें। मैं इस के सिवाय आप का क्या कार्य करसक्ती हूं। मेरे पास जो कुछ धन धान्य है, सब आप का ही है। आप मेरा कथन सत्य मान मुझ से विवाह कर लीजिये। राजन्! जब से उन हंसों से मैंने आप की प्रशंसा सुनी है तब से आप के साथ विवाह करने का प्रण कर लिया है। अब तो मैंने आप को देख भी लिया। निस्संदेह यह राजा लोग मेरे स्वयंवर को इकट्ठे हुये हैं परन्तु मैं सिवाय आप के और को पति नहीं चाहती। जो आप मुझे ग्रहण न करेंगे तो मैं विष खालूंगी या अग्नि में जल जाऊंगी या गले में फांसी डाललूंगी॥

नल—रानी! ऐसे लोकपाल देवताओं के होते आप क्यों मुझे पति बनाया चाहती हैं। मैं उन महात्मा देवताओं की चरणधूलि के तुल्य भी नहीं हूं। आप उन से ही विवाह करें। यह बात सत्य है कि मनुष्य देवताओं को क्रोधित करने से शीघ्र ही मृत्यु पाता है, इस लिये मेरे ऊपर कृपा कर उन उत्तम देवताओं में से किसी के साथ विवाह कर लीजिये और देवताओं को प्राप्त हो, उत्तम २ वस्त्राभूषण पहनिये। ऐ देवि! देखिये कौनसी स्त्री है कि अग्नि से देवता को पति न ग्रहण करे और जिस यमराज से

तीनों लोक डरते हैं, उन को कौनसी स्त्री अपना पति बनाना नहीं चाहती और देवता व दैत्यों के मारने वाले राजा इन्द्र को कोई स्त्री है जो स्वीकार न करे? जाने दीजिये, आप कृपाकर वरुण देवता ही से विवाह कर लीजिये॥

दमयन्ती—(आंसू भर) राजन्! (सब देवताओं को नमस्कार कर हाथ जोड़) मैं तो तुमही को पति बनाया चाहती हूं॥

नल-ऐ कल्याणि! आप को देवताओं की इच्छानुसार कर्म करना चाहिये। यह मुझ से कैसे हो सक्ता है कि देवताओं का दूत बनकर आया और उन का कार्य न करूं और अपने कार्य की इच्छा करूं। ऐ देवि! मैं धर्म को नहीं छोड़ना चाहता, मेरी इच्छा तो यही है कि आप अवश्य ही चारों देवताओं में से किसी को पति बनावें (जो मैंने तुम से विवाह का इक़रार कर लिया तो मुझे बड़ा पाप होगा)॥

दमयन्ती—(रोती हुई) अच्छा राजन्! कल आप और सब देवताओं के सामने आप ही को पति बनाऊंगी। इस में तो कुछ दोष न होगा॥

नल-'बहुत अच्छा, कह, अपने मकान पर आया॥

इन्द्र-कहोजी! राजा नल! दमयन्ती ने क्या उत्तर दिया। व्यौरेवार वर्णन करो॥

नल-महाराज! आप के वरदान से मैं निर्भय महल में चला गया और आप की कृपा से सिवाय दमयन्ती के और किसी ने मुझे न देखा। मैंने दमयन्ती की सखियों को देखा और सखियों ने मुझे, परन्तु वह मुझ से कुछ भी न कह सकीं। मैं ने दमयन्ती से आप का प्रश्न कह दिया, परन्तु वह आप लोगों को अङ्गीकार नहीं करती, मुझ से विवाह चाहती है। बहुत समझाने पर उसने कहा कि स्वयंवर में सब देवताओं के सामने तुम को वरूंगी। इस में तो कुछ दोष न होगा। ए ईश्वर! यह बातें हुईं जो आप से मैंने कहदीं॥

अब सवेरे ही स्वयंवर की तैयारी हुई और सब राजा दमयन्ती की इच्छा कर स्वयंवरस्थान में पहुंचे। राजा लोग राजमहल में उत्तम २ पोशाकें पहन, हथियार लगा २ बड़े आनन्द से बैठ गये और इन्द्र, वरुण, अग्नि, यमराज भी नल का रूप बना, नल की बराबर जा बैठे और राजा भीम ने प्रत्येक राजा का नाम व्यौरेवार दमयन्ती से कहदिया॥

अब दमयन्ती बड़ी विस्मित है कि यहां तो पांच नल मौजूद हैं, फिर शोचा कि इन में चारों देवता नल का रूप बनाये बैठे हैं और अपनी विद्या के बल से देवताओं का विचार किया, परन्तु कुछ समझ में न आया। दूसरे फिर विचारा॥

दमयन्ती—(देवताओं को नमस्कार कर) जिस प्रकार हंस से सुन, मैंने राजा नल से विवाह की इच्छा की है, उसी प्रकार मैं राजा नल को पति बनाया चाहती हूं। ए देवताओ! मेरे पतिव्रतधर्म पर कृपा कर, जतला दीजिये कि नल कौन से हैं। ए कृपानिधान! आप तो लोकपाल हैं। आप अपना ही रूप धारण कर, मुझ दासी पर कृपा कीजिये कि मुझे राजा नल मिल जायं॥

देवता ऐसा विलाप सुन और सच्चा स्नेह जान, वहां से अलग हो, इधर को बैठ गये॥

दमयन्ती—(तुरन्त पहचान, नल के गले में मोतियों की माला डालदी)

सब राजा लोग—हाय २!

ऋषि लोग—बहुत अच्छा २॥

नल—ए कल्याणि! जिस कारण मुझे तुम ने देवताओं के सामने पति बनाया है, उसी विचार से मैं तुम्हारा पति बनता हूं और जब तक प्राण शरीर में हैं, तब तक तुम से प्रीति रक्खूंगा (और प्रसन्न हो, दोनों स्त्री पुरुष चारों देवताओं की शरण में गये और उन की पूजा की)

देवता—(प्रसन्न हो) राजन्! हम तुम को वरदान देते हैं, इन को लो॥

राजा नल—जो आज्ञा॥

राजा इन्द्र-तुम को देवताओं का दर्शन प्रकट होगा, तुम उत्तम गुणी होगे॥

अग्नि—राजा! जहां तुम चाहोगे, मैं मौजूद हूंगा और सब लोकपाल तुम्हारी सहायता करेंगे॥

यमराज—तुम्हारा धर्म सदा बना रहेगा और तुम्हारी इच्छा से वृद्ध मनुष्य भी रतिवान् हो जायंगे॥

वरुण—जहां जाओगे, मैं मौजूद हूंगा (और एक सुगन्धित माला दी)

अब सब देवता स्वर्ग को चले गये और राजा लोग भी दमयन्ती का विवाह देख, जैसे २ आये थे, वैसे ही वैसे चले गये और राजा भीम ने शूरता व गम्भीरता से शास्त्रानुसार वैदिकधर्म से राजा नल का दमयन्ती से विवाह कर दिया। थोड़े दिन पीछे राजा नल भी रानी सहित अपनी राजधानी को चला आया और आकर इन्द्र के समान आनन्दपूर्वक राज्य करता रहा और

कई यज्ञ भी किये और सदैव शत्रुओं को जीत, पापी मनुष्यों को दण्ड देता रहा। थोड़े दिन में रानी दमयन्ती के इन्द्रसेन नाम पुत्र और इन्द्रसेना नाम कन्या उत्पन्न हुई॥

इन्द्र और कलियुग

मार्ग में कलियुग द्वापर के साथ बातें करता आ रहा है॥

इन्द्र-ए कलियुग! आज द्वापर के साथ कहां जाते हो?

कलियुग-दमयन्ती के स्वयवर को जाता हूं। वहां जाकर दमयन्ती से विवाह करूंगा। मेरा मन उस से विवाह करने को चाहता है॥

इन्द्र-(हंसकर) वह स्वयंवर तो पूरा होगया और दमयन्ती ने नल को हमारे सामने पति बना लिया॥

कलियुग-क्या आप भी स्वयंवर में थे?

इन्द्र मैं क्या! वरुण, अग्नि, यमराज हम चारों मौजूद थे॥

कलियुग-तो क्या आप चारों में से दमयन्ती ने किसी को ग्रहण नहीं किया?

इन्द्र-हां, हम चारों में से किसी को ग्रहण नहीं किया। नल को ही पसन्द किया॥

कलियुग-दमयन्ती ने देवताओं को छोड़, मनुष्य को पति बनाया है। इस लिये मैं उस को बड़ा भारी दण्ड दूंगा॥

इन्द्र-नहीं २ दमयन्ती ने हम सब से आज्ञा ले, नल को पति बनाया है। भला कौनसी स्त्री है जो नल के होने पर दूसरा पति पसन्द करे। नल नियमानुसार चलने वाला और चारों वेदों का जानने वाला है और उस के सदा वेदानुसार यज्ञ होते हैं। वह सदा धर्म में प्रीति रखता है और गम्भीरस्वभाव, सत्यवादी, शुभाचरण, जितेन्द्रिय देवताओं की नाईं लोकपाल है। सत्य, दृढ़ता, ज्ञान, तप, शौच, दाम, साम उस में सब हैं। ए कलियुग! जो ऐसे राजा को शाप देना चाहे, वह मूर्ख तो क्या, बरन अधर्मी भी है और अवश्य ही नरक ऐसे लोगों के लिये है, जो नल को शाप देना चाहते हैं॥

कलियुग-(द्वापर से) भाई! मुझ में क्रोध रोकने की शक्ति नहीं, अब मैं अवश्य नल की बुद्धि भ्रष्ट करूंगा। और उस के अङ्ग में ही घर बनाऊंगा। उसे राज्य से भी अलग करदूंगा। नल किसी भांति दमयन्ती के साथ सुख से नहीं रह सकता। जो किसी प्रकार से न मानेगा तो पासे अवश्य खेलेगा।

उन के द्वारा भ्रष्ट कर दूंगा। और तुम जाओ, मैं अब नल के पास जाता हूं॥

अब कलियुग यह बाट देख रहा था कि राजा नल कहीं भूले और मैं उस के अङ्ग में घुंस अपना काम करूं, परन्तु बारह वर्ष तक अवसर न मिला। दैवयोग से एक दिन राजा नल पेशाब कर विना पांव धोये सन्ध्या करने को बैठ गया। बस कलियुग तुरन्त अङ्ग में पहुंच गया और दिल पर काबू कर नल के भाई पुष्कर के पास पहुंचा॥

कलियुग—ए पुष्कर! आज तुम राजा से पासे खेलो। सब राज्य पाट तुरन्त जीत लोगे॥

पुष्कर—('बहुत अच्छा, कह, राज्य का लालची राजा के पास आ) राजन्! आज हम तुम से पासे खेला चाहते हैं॥

नल—('बहुत अच्छा'कह,चौसर बिछवा दी और सब धन हारने लगा)

मन्त्री—महाराज! आप चौसर न खेलें। यह कर्म अनुचित है॥

राजा—(क्रोध से) जाओ, हम नहीं मानेंगे॥

मन्त्री—(दमयन्ती से) महारानी! ये पुरवासी व राज्यकर्मचारी कुछ प्रार्थना रखते हैं कि आज महाराज चौसर में सब दौलत व राज्यपाट हार रहे हैं, आप उन को रोकें॥

दमयन्ती—(आंसू भर, नल से) महाराज! यह मन्त्री और सब पुरवासी हाज़िर हैं, कुछ अरज़ किया चाहते हैं, उन की तो सुन लीजिये॥

राजा—(कुछ ध्यान नहीं करते)

रानी और सब लोग "आज यह राजा नहीं" कह, घर को जाते हैं। अब यह चौसर कई महीने तक रहा, आख़िर नल हारा। इस बीच में कई बार रानी और मन्त्रियों ने समझाने को प्रार्थना की परन्तु कुछ फल न निकला॥

रानी—ए सूत! तुम रथ तैय्यार कर इस कुंवर व कन्या को विदर्भदेश में राजा भीम के पास पहुंचा दो और राजा के भी समाचार कह देना और जो जीमें आवे तो वहीं बसना। राजा से राज्य शीघ्र छूटेगा, परन्तु मैं इस समय राजा को नहीं छोड़ सकती और राजा की ऐसी बुद्धि भ्रष्ट हुई है कि हित की बात भी नहीं सुनते॥

सूत 'बहुत अच्छा' कह, रथ जोड़, राजा के लड़का लड़की के ननिहाल कुन्दनपुर को चल दिया॥

मन्त्री लोग—राजन् ! सूत लड़का लड़की को ले, विदर्भ देश को चला गया ॥

राजा—(कुछ ध्यान नहीं)

मन्त्री लोग—महाराज ! कुछ राज्यकाज देखिये ॥

राजा—(कुछ नहीं सुनते)

अब फल यह हुआ कि सब धन दौलत पुष्कर ने राजा से जीत लिया॥

पुष्कर—(हंस कर) राजा ! तुम सब धन दौलत हार चुके,अब चौसर नहीं होगी ॥

राजा—नहीं अभी और खेलिये ॥

पुष्कर—तो अब आप के पास दमयन्ती रही है और तो कुछ रहा नहीं। अब इस को दाव पर लगा दीजिये ॥

राजा यह सुन, चुप और चौसर बन्द हुई । उधर राजा सब वस्त्राभूषण अङ्ग से उतार, राज्य त्याग, एक धोती पहन, वन को चलदिया और रानी दमयन्ती भी एक धोती पहन, सब गहना कपड़ा वहीं तज, पीछे २ चल दी और तीन दिन तक शहर से बाहर विश्राम किया। यहां पुष्कर ने मनादी करादी कि जो मनुष्य नल से मिलने, जायगा, वह मार डाला जायगा । इस लिये कोई मनुष्य नल से मिलने तक न आया। अब यह तीन दिन राजा रानी को विना अन्न जल बीते ॥ भाई ! परमात्मा की क्या माया है कि कल जिस राजा के हाथ में राज्य पाट था और थोड़े ही दिन पहिले एक बड़े भारी स्वयंबर से रानी दमयन्ती को लाया था, आज वही राजा अपने शहर के दरवाज़े पर विना अन्न जल पड़ा है। कोई मनुष्य ग़रीब वा अमीर पास नहीं आता। संसार में बहुत से फ़क़ीरों को ख़ैरात व खाना मिलता है, परन्तु उस के पास जाना भी मनुष्य अपनी हानि का कारण समझते हैं। वह अतिरूपवती रानी, जिस के अर्थ देवता भी इच्छा करते थे। एक धोती ओढ़े तीन दिन से धरती पर पड़ी है। हा ! बिछौना ओढ़ना कपड़ा तो क्या, तीन दिन से उपवास हो रहा है परन्तु अपने पतिव्रतधर्म में बंधी हुई चूं तक नहीं करती और बराबर टहल को तैयार है और वह मोहनी सूरत रानी विना अन्नजल अपने धर्म पालन में बड़ी सावधानी से दृढ़ है। सोच लीजिये कि इस संसार पर भरोसा न करना चाहिये। भरोसा करना

मूर्खता है। आख़िर लाचार हो, राजा रानी समेत वहां से जङ्गल को चल दिया और गिरे पड़े फल चुनता खाता चला जाता था। अब धरती का बिछौना, आकाश का उढ़ौना है। खाने पीने को कुछ पास नहीं, कोई मनुष्य पास नहीं आता। दैवयोग से राजा ने एक दिन कई सुनहरी रङ्ग के पक्षी चुगते देखे और उन को पकड़ने की इच्छा से अपनी धोती उतार उन के ऊपर डाल दी॥

पक्षी—(धोती को ले, उड़, ऊपर जा) ए मूर्ख! तैने नहीं जाना कि ऐसे पक्षी नहीं होते। हम पक्षी नहीं हैं। हम वही पासे हैं, जिस से राज्य हारा, अब जाते हैं (और चल दिये)

राजा—(नीचे को गर्दन किये, नङ्गा, दमयन्ती से) प्रिये! जिन के कोप से राज्य छूटा और कई दिन से भूखा प्यासा हूं और अयोध्या वालों ने मेरी प्रतिष्ठा तो क्या, वरन पास तक भी नहीं आने दिया, वे पासे पक्षी बन, मेरा कपड़ा भी लिये जाते हैं। मैं तेरा पति होकर बड़ा दुःख पा रहा हूं। देखो, यह मार्ग दक्षिण देशों को जा रहा है। यह बड़ा ऊंचा विन्ध्याचल है और यह पीयूषिणी नदी है और यह महर्षियों के आश्रम बडे २ उत्तम २ फल फूलों से भरे हुवे हैं। यह मार्ग विदर्भ देश को और यह कौशल्यापुरी और यह विदर्भ नगरी को जाता है। देखो यह मार्ग तुम्हारे पिता के देश का है॥

दमयन्ती-(आंसू भर) राजन्! आप के विचार को सोच २ मुझे बड़ा दुःख होता है और सब इन्द्रियां थकित हुई जाती हैं। भला सोचो तो, भूखे प्यासे, नङ्गे, राज्यभ्रष्ट तुम को छोड़ मैं कैसे अपने बाप के घर चली जाऊं। क्या मैं साधारण स्त्री हूं? नहीं २ मैं पतिव्रता हूं। जब तक प्राण शरीर में बाक़ी है, कैसी ही कठोर विपत्ति हो, पर आप को नहीं छोड़ सकती। वेद, स्मृति इस बात को कहती हैं कि घोर विपत्ति में पतिव्रता स्त्री ही विपत्ति के लिये औषध है। क्या मैं उस को झूंठा करूं?

नल—ए मृगनयनि! जो तुम ने कहा, वह बहुत ठीक है सच है, विपत्ति के समय में मनुष्य की सहाय पतिव्रता स्त्री ही हो सकती है। मैं तुम्हारे छोड़ने की इच्छा नहीं रखता। ए प्यारी! तुम में कोई दोष नहीं है। मैं चाहे अपने शरीर को छोड़ दूं, परन्तु तुम को नहीं छोड़ सकता॥

दमयन्ती—महाराज! भला जो आप मुझे छोड़ा नहीं चाहते तो यह विदर्भ देश का मार्ग क्यों बतलाते हो? राजन्! मैं तुम्हारी शरण हूं। मैं

त्यागने के योग्य नहीं । राजन् ! कलियुगवश हो, आप मेरा त्याग न कीजिये और आप जो मुझे वार २ यह मार्ग बतलाते हैं, इस से मुझे बड़ा शोक होता है और यह जो तुम्हारा मनोरथ है कि मैं अपने माता पिता के घर चली जाऊं तौ एक काम कीजिये कि आप भी विदर्भ नगरी को चलें । मैं आप के पीछे २ छाया की नाईं चलूंगी । वहां राजा भीम तुम्हारी भलेप्रकार पूजा करेगा और आप वहां बड़े सुख से रहेंगे ॥

नल-रानी ! इस में संदेह नहीं कि तुम्हारे पिता का राज्य हमारा ही है, परन्तु मैं ऐसी दशा में वहां जाना किसी प्रकार पसन्द नहीं करता । पहिली वार जब मैं विदर्भ नगरी में गया था, उस समय मेरी प्रतिष्ठा व बड़ाई देखने योग्य क्या, वरन दुनियां भर में विख्यात थी । जो आज उस के विरुद्ध ऐसी दशा में जाऊं और वहां किसी ने कुछ तुम से कह दिया तौ तुम को बड़ा शोक होगा (और समझा बुझा कर बहुत ढाढस बंधाया)

अब राजा की दशा सुनिये कि—एक धोती है, जिस में से आधी २ से राजा व रानी दोनों अपना तन ढके, जहां तहां फिरते हैं । भूख प्यास अलग सता रही है । मार्ग का थकान और भी दुःख दे रहा है । मनुष्य कोई पास नहीं आता । सुनसान जङ्गल बियाबान में गुज़रान है और रात दिन चले जाते हैं । चलते २ रात का समय हो गया और एक ख़ाली मकान के निकट पहुंचे । देखा कि यहां एक मकान बना हुवा है, परन्तु कोई मनुष्य उस में नहीं । यह बिचारे विपत्ति के मारे थे ही, एक कोने में पृथिवी पर बैठ गये । आश्चर्य की बात है कि जो राजा कभी ख़ाली पृथिवी पर पाव भी न रखते थे, आज उन को कुशासन भी बिछाने को नहीं रहा । कई दिन के थके मांदे तौ थे ही, राजा और रानी दोनों को ख़ाली मकान की पृथिवी पर बैठते ही आलस्य ने दबाया और दोनों ने पांव फैला दिये । बस पांव फैलाते ही नींद ने दबाया और आंख लग गईं । थोड़ी देर पीछे राजा की आंख खुलीं और पिछली बातें याद कर, बड़ा सोच विचार करने लगे और सोचा कि मैं तौ दुःख पा ही रहा हूं, परन्तु मेरे पीछे यह चन्द्रमुखी मृगलोचनी ! जो किसी प्रकार दुःख पाने के योग्य नहीं, दुःख उठा रही है । और इस का पतिव्रतधर्म और मेरी सेवा मुझे ऐसे समय में जब कि मैं इस का पालन पोषण नहीं कर सकता और भी दुःख दे रहा है । जो यह अपने माता पिता के यहां चली जावे तौ मुझे अपना ही कष्ट का दुःख रहे । इस

के कष्ट का तो दुःख न उठाना पड़े। यहां तो यह अवश्य दुःख ही दुःख पावेगी। हां चले जाने पर यह आशा है कि इस को सुख मिले। यहां तो मुझे कोई सुख का प्रबन्ध दृष्टि नहीं आता। इसी भांति सोच समझ रानी को वहीं छोड़ देने का पक्का मनोरथ कर लिया और चाहा कि आधा कपड़ा फाड़, अपना अङ्ग लपेट ले और आधा रानी के लिये रहने दे। फिर शोचा कि कहीं ऐसा न हो कि कपड़ा फाड़ने से रानी जाग पड़े। इस विचार में चारों ओर फिरने लगा। दैवयोग से एक उमदा तलवार हाथ आ गई और उस के द्वारा हौले २ आधा कपड़ा काट लिया और बेखबर अचेत रानी को छोड़ चल दिया। थोड़ी दूर जा, फिर लौट, सोती हुई दमयन्ती के पास बैठ, हौले २ रो २ कर–हाय ! जिस मेरी प्यारी दमयन्ती को पवन व सूर्य्य भी नहीं देख सकते थे, आज वह अनाथ की नांई मेरे होते पृथिवी पर सोती है। मुझे धिक्कार है कि ऐसी सुन्दर और पतिव्रता स्त्री को मैं अपने जीते जी भी सुख नहीं दे सकता। मुझ से पशु पक्षी भी अच्छे हैं कि जो अपनी स्त्री की रक्षा भलेप्रकार करते हैं। हा ! मेरे चले जाने पर यह रूपवती रानी इस निर्जन वन में कहां फिरेगी और कहां बसेगी (और फिर सोच कर) ए भगवती ! बारह सूर्य ग्यारह रुद्र, दोनों अश्वनीकुमार तेरी रक्षा करें और धर्म से ही तेरा पतिव्रतधर्म बना रहे और परमात्मा तुझे प्रसन्न रक्खे। अब राजा की यह दशा थी कि जाता था और फिर लौट आता था। कई वार लौटापौटी की, अन्त में मन को दृढ़ कर रानी को अकेली उसी निर्जन वन में छोड़ चला गया। पाठकगण ! कुछ देर पीछे दमयन्ती जागी, देखा कि राजा नहीं। सोचा कि कहीं शौचादि को गये होंगे, परन्तु जिस समय कि कपड़ा कटाहुआ पाया, मन में समझ गई कि राजा मुझ को छोड़ चले गये॥

दमयन्ती–(ऊंचे स्वर से) ए महाराज ! मुझ से क्या पाप बना, जो आप ने मुझे इस निर्जन वन में छोड़ दिया ? हा नाथ ! हा स्वामी ! मुझे क्यों त्यागते हो। हा ? अब मैं मारीगई। अब मैं किसी जगह की न रही क्योंकि मुझे स्वामी ने त्याग दिया। भला स्वामी की त्यागी स्त्री का कहीं ठिकाना है ? राजन् ! मैं इस निर्जन वन में बड़ी भयानक दशा में हूं। यह तो सब दुनियां में विख्यात है कि तुम सत्यवादी, सत्यकृत, सत्यभाषी हो और मुझ से स्वयंवर में भी तुमने प्रतिज्ञा की थी कि तुझ को न छोड़ेंगे।

मैं यह तो नहीं कह सकती कि आप ने मुझे विना कारण छोड़ दिया, मैं यही जानती हूं कि मुझ से कोई अपराध अवश्य हुआ। राजन् ! मुझे वह अपराध तो बतला दीजिये कि क्या है, जिस से मुझे सन्तोष तो आजाय। हा राजन् ! तुम मुझे वन में छोड़कर चले गये, भला कोई भी अपनी पतिव्रता भार्या को इस प्रकार छोड़ता है। क्यों आप भूलगये ? क्या आपने लोकपालों के सामने मुझ से प्रतिज्ञा की थी। हा ! मेरे प्राण क्यों नहीं निकल जाते? पृथिवी क्यों नहीं फटजाती, जो मैं उस में समाजाऊं। क्या मैं ऐसी निर्लज्जा हूं कि तुम्हारे विना दो घड़ी भी जी सकूं। कुसमय मृत्यु भी नहीं आती। और अवश्य मुझे विपत्ति उठानी पड़ेगी। ए राजन् ! क्या तुम ने मुझ से हंसी की है ? और छिपे हुये मेरी दशा देख रहे हैं ? परन्तु मुझ से बोलते भी नहीं। महाराज ! क्या ऐसी विलाप करती हुई स्त्री को धैर्य न देना यह निर्दयता नहीं है ? अच्छा मैं अपनी विपत्ति तो नहीं शोचती, पर यह अवश्य शोचती हूं कि तुम अकेले वन में कैसे रहोगे ? दिनभर के भूखे प्यासे, थके थकाये रात को वृक्षों की जड़ में अकेले कैसे सोओगे। हा ! तुम्हारी सेवा कौन करेगा ? तुम्हारे पास तो कोई नौकर भी नहीं। और उठकर राजा की तलाश में चारों दिशों दौड़ने लगी। कभी उसी दशा में ठोकर लगने से गिर पड़ती और फिर तलाश करती और बार २ रोती थी। थोड़ी देर में लम्बे २ सांस ले बोली–राजन् ! जिस के शाप से हम यह दुःख पारहे हैं वह हम से अधिक दुःख पावेगा। हा ! जिस पापी ने हम को यह दुःख दिया है, वह जन्मानुजन्म दुःख भोगेगा। क्या परमात्मा ऐसे अन्यायी को दण्ड न देगा ? और इसी दशा में दौड़ती हुई रानी को एकाएक एक अजगर सांप ने पकड़ लिया, मानो कि आप सांप के मुंह में थी, परन्तु राजा के दुःखों का ध्यान चित्त पर चढ़ा हुआ था और कहती थी कि राजन् ! मुझे तो यह सांप निगल ही लेगा, परन्तु तुम थके हुये के पांव कौन दाबेगा। दैवयोग से एक शिकारी मृगों का शिकार करता उस वन में आनिकला और रानी की वाणी सुन, तुरन्त पास आ, तीर से अजगर का मुंह चीर, रानीको निकाल लिया॥

शिकारी–(रानी को स्नान करा, धीरज दे, खाने को पूछ) ए मृगनयनि ! तुम इस वन में कैसे आई और कैसे इस आपत्ति में फँसीं ?

रानी–मैं राजा नल की रानी दमयन्ती हूं। राजा मुझे वन में छोड़ चले गये॥

शिकारी–(रानी से प्रीति की बातें कर, अपनी स्त्री बनाने की इच्छा प्रकट करता है)

रानी—ए शिकारी ! तू अपना विचार बदल और कभी यह विचार दिल में न ला कि दमयन्ती सिवाय नल के दूसरे की स्त्री हो ।

शिकारी—(शस्त्र दिखला) रानी ! या तो मेरी स्त्री बन, नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा ॥

रानी–(क्रोध में भर) हा दैव राज्य छूटा, पति छूटा, मा बाप छूटे, अब धर्म भी छूटा चाहता है । मेरे ऊपर कृपा कर, इस को मृतक कर दीजिये ॥

पाठकों को याद होगा कि यमराज का वरदान तो था ही, तुरन्त शिकारी अचेत हो, पृथ्वी पर गिर पड़ा और प्राण निकल गये और यहां से रानी जङ्गल को चलदी । जङ्गल बियाबान जिस में हाथी, सिंह, भेड़िया,भैंसा, रीछ बहुत से थे और जगह जगह से बहुत से शब्द सुनाई दे रहे थे । शाल आदि के वृक्ष सन सन कर रहे थे । टेढ़ी मेढ़ी नदियां बहरहीं थीं, भय व्याप रहा था । उन को देख २ मनुष्यों का हृदय कांपता था और इसी में रानी बिचारी अकेली चली जाती थी । मानों भैंसे और रीछों के झुंड रानी ने देखे परन्तु अपने पति की तलाश में कुछ भी डर न किया और एक सिल पर बैठ, रोर कर–ऐ महाबाहो ! ए चौड़ी छाती वाले ! ए अयोध्याराज आप मुझे निर्जन वन में छोड़ कहां गये ? ए वीर ! ए देव ! ए पुरुष ! आप किस नीति से झूंठा वर्त्ताव मेरे साथ करते हैं । आप ने जो सब राजाओं के सामने मुझ से वचन किया था, उस को याद करो । क्या आप के चारों वेद पढ़ना और यज्ञकर्म मेरे छोड़ने पर लाचार करते हैं, नहीं २ कभी तुम मुझको न छोड़ोगे । हा ! मैंने जानलिया कि आप ने मेरा वियोग ग्रहण कर लिया, जो आप ने उत्तर न दिया । ए राजन् ! देखो, यह शार्दूल मुझ को खाजावेगा, तुम मेरी रक्षा करो । मैं पतिव्रता इस वन में पुकार रही हूं, तुम उत्तर दो । ए राजा ! मैं तुम को किस से पूछूं ? यहां मुझ से कौन कहेगा कि मैंने नल को देखा । हा ! मैं अब किस की मधुरवाणी सुनूंगी । ए मृग ! तूही बतला कि राजा कहां गये ? ए सिंह ! तूही कह कि राजा किधर हैं ? ए शार्दूल ! तूही मुझ को खाले कि इस दुःख से छूट जाऊं । ए पर्वत ! मैं आप को प्रणाम करती हूं तुम मुझे राजा भीम की पुत्री और राजा वीरसेन के बेटे की वधू जान राजा का पता लगादो ॥

ऐसे रोते २ रानी को सवेरा हो गया । सवेरे होते ही देखा कि एक राजा बड़ी भारी सेना लिये जङ्गल में शिकार खेल रहा है । रानी उस को देख,

वृक्षों में छिप गई, परन्तु राजा ने देखलिया और देखकर हाथी पर अपने बराबर सवार कर थोड़ी देर पीछे कामातुर हो प्यार की बातें करने लगा। रानी ने फिर परमात्मा को याद किया और कहा कि-परमात्मा मुझे राज्य पाट, पति भाई और बाप के छूटने का कुछ शोक नहीं, परन्तु आप मेरे धर्म की रक्षा करें। यह कहती ही थी कि हाथियों की दांग निकल आई और राजा की सब सेना रूंदडाली,केवल रानी ही बचीरही। अब यह अकेली वनमें चली जाती है और भांति २ के शोच कररही है। और कुछ नहीं करसक्ती। दैवयोगसे एक वस्ती नज़र पड़ी और वस्ती के किनारे एक बुढ़िया मिली॥

बुढ़िया-ए कल्याणि! तू देवीरूप कौन है?

रानी-मैं एक विपत्ति की मारी स्त्री हूं। मेरा पति मुझ को विना अपराध छोड़ कहीं वन में चला गया॥

बुढ़िया-ए कल्याणि! मैं यहां के राजा की माता हूं। तू मेरे पास ठहर, मेरे आदमी तेरे पति को ढूंढ लावेंगे,चाहे वह कहीं हो। मेरे विचार में तो वह आप ही फिरता हुआ यहां आ निकलेगा॥

रानी-माता! इन नियमों से मैं तुम्हारे पास विश्राम करना अङ्गीकार करूंगी, वह सुन लीजिये।।

पहिले-मैं किसी का झूठा भोजन न खाऊंगी॥

दूसरे-किसी के पैर नहीं धोऊंगी।।

तीसरे-किसी पर पुरुष से बात चीत न करूंगी॥

चौथे-आदमी मेरे पति के ढूंढने को भेजे जावें॥

बुढ़िया-बेटी! मुझे यह सब नियम स्वीकृत हैं (और अपने बेटे से) ए नन्दा इस देवी को तुम अपनी बहन जानो और इस के साथ प्रसन्न रहो और बहन भाई का वर्त्ताव करो॥

राजा नल का वृत्तान्त

पाठकगण! राजा नल का वृत्तान्त तो सुनिये। राजा दमयन्ती को छोड़ वन में चल दिये। देखा कि एक जगह आग लगरही है और उस में से शब्द आरहाहै कि "ए राजा नल! मेरी सहायता कर, मुझे जलने से बचा। तुम तो अग्नि के वरदानी हो, तुम ही मुझे बचा सकते हो"॥

राजा—(आग में जा, एक नाग को कुण्डली मारे आग के बीच में बैठा देख) नाग ! तुम कौन हो ?

नाग—राजन् ! मेरा नाम कोटक है । मैंने एक समय ब्रह्मऋषि नारद मुनि जी को प्रणाम नहीं किया, वरन उन को सताया । उन्हों ने क्रोध में आकर मुझे शाप दिया कि—"तू नाग बन यहां पड़ा रह । जब नल तुझ को यहां से उठा कर ले जायगा, उस समय तू इस शाप से छूटेगा" । राजन् ! मैं उस शाप के कारण एक पग भी नहीं चल सकता । आप कृपा कर मुझ को यहां से ले चलें । मैं तुम को बड़ा अच्छा उपदेश करूंगा और तुम्हारा मित्र बन कर रहूंगा ॥

राजा—('बहुत अच्छा, कह, उठाकर बाहर ले आया)

नाग—राजन् ! अब तुम चलते हुवे अपने पग गिनों, इस में तुम्हारा बड़ा लाभ होगा ॥

राजा—एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ, नौ, दश ॥

बस दश कहते ही नाग ने राजा को काट खाया और काटते ही राजा का रङ्ग बदल गया ॥

राजा—(अचम्भे में हो) ए कोटक ! क्या जलते हुये के बचाने का यही बदला है ?

कोटक—हां महाराज ! यही बदला है । मैंने आप का कुछ बिगाड़ नहीं किया । प्रथम तो आप का रूप बदल दिया कि जिस से आप को कोई पहचाने नहीं । दूसरे जिस ने आप को यह दुःख दिया है और आप के शरीर में है, वह इस विष से सदैव दुःखी रहेगा और जब तक वह तुम्हारे शरीर को न छोड़ेगा, कभी चैन न पावेगा और जिस समय वह आप के शरीर को छोड़ देगा,उसी समय आप का सब दुःख जाता रहेगा । ए राजन् ! मेरे इस कर्त्तव्य से तुम को डाढ़ वाले जीवधारियों से भी कुछ कष्ट न पहुंचेगा और न ब्रह्मज्ञानियों से कुछ भय होगा और मेरा विष आप को कुछ दुःख भी न देगा । बराबर युद्ध के समय तुम्हारी जय होगी । मेरा नाम बाहुक सूत है । अब आप राजा ऋतुपर्ण के यहां जायें, वह पासों में बड़ा चतुर है । वह तुम को पासों के सब करतब सिखला देगा । फिर तुम अपनी स्त्री, राज्य और बच्चों को पावोगे । कुछ सोच न करो और इस वृक्ष के नीचे से एक जोड़ा कपड़ों का निकाल लो। जिस समय तुम को रानी दमयन्ती मिल जावे, उसी समय यह कपड़े पहन लेना। अपने रूप में आजाओगे और मैं जाता हूं॥

अब राजा नल राजा ऋतुपर्ण के नगर को चल दिये और दशवें दिन ऋतुपर्ण की राजधानी में पहुंचे। दैवयोग से राजा ऋतुपर्ण तुरन्त मिल गये॥

ऋतुपर्ण—ए परदेशी! तुम कौन हो और कैसे आये हो और क्या काम जानते हो?

नल—महाराज! मैं आपत्ति का मारा हूं। बाहुक सूत मेरा नाम है। घोड़े हांकने में मेरे समान आज जगत् में कोई नहीं। राज्य के कामों में सम्मति के योग्य हूं। भोजन मेरे तुल्य कोई बना ही नहीं सकता। शिल्प विद्या में मेरे समान कोई उत्पन्न ही नहीं हुआ। अब आप से रक्षा की आशा रखता हूं॥

ऋतुपर्ण—बाहुक! ठहरो, मैं सवारियों का तेज चलाना बहुत पसन्द करता हूं। अच्छा तुम को सब का सर्दार नियत किया और दश हज़ार रुपये मासिक मिलेंगे। मेरे दोनों सूत वारसेन व जीवन सदा तुम्हारे पास रहेंगे और इन दोनों के साथ तुम प्रसन्न रहोगे। तुम अब मेरे यहां रहो॥

नल-'बहुत अच्छा' कह, ठहर गया और रात को रानी दमयन्ती का विचार करने लगा कि वह पतिव्रता भूखी प्यासी थकी मांदी कहां सोती होगी और मुझे किस प्रकार याद करती होगी॥

जीवन—ए बाहुक! तुम किस का सोच कर रहे हो, मैं सुना चाहता हूं। वह किस की स्त्री है जिस को इस प्रकार सोचते हो?

नल-अरे भाई! एक मूर्ख मनुष्य की स्त्री बड़ी चतुर है, उस मूर्ख ने अपनी स्त्री को मूर्खता से छोड़ दिया। अब वह उस के शोक में व्याकुल हो, घूमता फिरता है और रात्रि के समय उस का ध्यान करता है॥

राजा भीम का वृत्तान्त

जब राजा भीम को ज्ञात हुआ कि राजा नल का राज्य धोके से उस के भाई ने ले लिया और राजा दमयन्ती सहित वन को चला गया, तो पितृरूपी प्रेम ने बल किया॥

भीम-(ब्राह्मणों से) मन माना धन लेना। नल और दमयन्ती को ढूंढो। जो पता लगाकर लावेगा, हज़ार गौ पावेगा और जो नल दमयन्ती दोनों को लावेगा तो वह धरती और नगर के समीप गांव पावेगा॥

ब्राह्मण-'बहुत अच्छा, कह, चारों दिशाओं को चल दिये। अब ढूंढते

फिरते हैं, परन्तु कहीं नल और दमयन्ती का पता नहीं लगता। सुदेव नाम ब्राह्मण ढूंढता २ चन्देरी पहुंचा। देखा कि दमयन्ती तो है, परन्तु मैलेपन से कुछ सन्देह होता है। बड़े ध्यान से बहुत चिन्ह पहचाना-

सुदेव-ए दमयन्ती मैं सुदेव नाम ब्राह्मण तेरे भाई का मित्र हूं और राजा भीम की आज्ञा से तेरे ढूंढने को यहां आया हूं। बहन! तेरे माता पिता भाई और लड़का और लड़की सब प्रसन्न और सुखपूर्वक हैं। हां तेरी विपत्ति और वियोग से दुखी हैं और सैंकड़ों ब्राह्मण तेरे ढूंढने के लिये देश देशान्तरों में भेजे हैं॥

दमयन्ती-(सुदेव को पहचान, अपने सब बांधवों का समाचार सुन रोने लगी)

सन्निदा-(अपनी माता से) ए माता! यह दमयन्ती इस ब्राह्मण से मिल रोती है। इस का समाचार तो जानना चाहिये कि यह कौन है॥

बुढ़िया-(दमयन्ती के पास जा, सुदेव से) ए ब्राह्मण! तू जानता है? यह किस की भार्या और किस की पुत्री है। तुम जानते हो कि यह देवी कौन है, सच २ बतलाओ॥

सुदेव-माता! यह धर्मात्मा तेजस्वी त्रिचनापाली के राजा भीम की पुत्री और दमयन्ती नाम और वीरसेन के पुत्र राजा नल अयोध्या वाले की रानी है। राजा नल अपने भाई से राज्य को जुए में हार, दमयन्ती के साथ वन को चला आया। हम बहुत से ब्राह्मणों को राजा भीम ने इस दमयन्ती और नल के ढूंढने को भेजा है, जो यह हम को तुम्हारे घर मिली। इस के समान रूपवती तो जगत् में कोई है ही नहीं और इस की भौंह के बीच में एक लाल मस्सा है कि जिस से हमने इस को सहज में पहचान लिया॥

बुढ़िया-दमयन्ती को लिपटा, आंसू भर, हौले से ए बेटी! तू तो मेरी बहन की बेटी है। पुत्री! मैं और तेरी मा दोनों सधानाम राजा व सारन माता की बेटी हैं। तेरी मा राजा भीम से व्याही गई और मैं वीरबाहु से। तुझे मैंने अपने पिता के घर दशार्ण देश में देखा है। ए बेटी! यह तो तेरा ही घर है और यह जो मेरा ऐश्वर्य है, तेरा ही है॥

दमयन्ती-(अपनी मावसी को प्रणाम कर) माता! तूने तो मुझ को

के जाने ही बहुत आनन्द से रक्खा और यह दिन मेरे बड़े सुख से बीते और अब तो तुम मुझे और भी सुख से रक्खोगी, परन्तु मेरे लड़का लड़की के मा बाप बड़ी विपत्ति में होंगे। इस लिये आप को उचित है कि मुझ को जाने की आज्ञा दीजिये। अब मैं विदर्भ देश को जाती हूं॥

श्रोतृगण–इस बुढ़िया मोसी ने बहुत अच्छा कह, पालकी में बिठा, अपने बेटे को सेना सहित रक्षार्थ साथ कर, विदर्भ देश को विदा किया॥

दमयन्ती–थोड़े दिन में विदर्भ देश पहुंच, अपने पिता भाइयों से मिली और राजा भीम ने प्रसन्नतापूर्वक सुदेव ब्राह्मण को हज़ार गौ और गांव और धन दे, प्रसन्न किया॥

दमयन्ती की मा–ए बेटी! अब तुम शोक छोड़ दो और प्रसन्नतापूर्वक रहो॥

दमयन्ती–माता! जो तुम नल को ढूंढवा दो तो मैं प्रसन्न रह सकती हूं, नहीं तो मेरी प्रसन्नता कहां॥

रानी–(भीम से)महाराज! दमयन्ती को नल का बड़ा शोक है और उस ने लज्जा त्याग मुझ से आप कहा है॥

राजा––(ब्राह्मणों को बुला) तुम लोग चारों दिशाओं में जा, नल को ढूंढलाओ॥

ब्राह्मण लोग–(दमयन्ती से) ए पुत्री! हम तो ढूंढते २ हार गये, अब कोई राह तुम ही बतलाओ॥

दमयन्ती–अच्छा सब रजवाड़ों में और अच्छे २ लोगों में जहां तहां यह वचन कहते फिरो–"ए छलिया! ए प्यारे! तुम मेरे आधे कपड़े को काट, मुझ प्यारी पतिव्रता सताई हुई को वन में छोड़ कहां हो, मैं तुम्हारी बड़ी बाट देख रही हूं। अब मेरे ऊपर कृपा कर उत्तर दो" जब कोई मनुष्य तुम को किसी प्रकार का उत्तर दे तो समझ लेना कि वह नल है और फिर उस का पता लगा कर मुझ से कह देना॥

ब्राह्मण लोग 'बहुत अच्छा' कह, चारों दिशाओं में ढूंढने को चलदिये। ढूंढते २ शहर गांव ऋषियों के आश्रमों में फिरे परन्तु नल का पता न लगा और लौट कर दमयन्ती के पास आये॥

पर्णाद–दमयन्ती ! एक नगर में ऋतुपर्ण नाम राजा है। उस के दर्बार में मैंने यह वचन कहे तौ राजा या सभासद् कोई कुछ नहीं बोला, परन्तु ऋतुपर्ण का एक सारथि बाहुक नाम मुझ को अलग ले जाकर बोला कि–"जो कुलीन स्त्रियां विपत्ति में भी अपनी रक्षा आप करती हैं, निस्सन्देह उन्हों ने ही स्वर्ग जीता है"। वह लम्बी २ सांसें लेता और रो २ कर मेरा कुशल पूंछता था और यह भी कहता था कि "ऐसी स्त्रियां पति से अलग होने पर भी क्रोध नहीं करतीं और अपने प्राण पति में ही लगाये रखती हैं। चाहे वह रानी मूर्खता से छोड़ी गई, परन्तु क्रोध करने के योग्य नहीं। चाहे पक्षियों के लेजाने के कारण उस का आधा वस्त्र भी फाड़ा गया और राजलक्ष्मी से भी भ्रष्ट की गई; परन्तु उस को ऐसा क्रोध न करना चाहिये" और वह बाहुक घोड़ों के शीघ्र चलाने और भोजन के बनाने में बड़ा चतुर है। मैं यह सुन, बड़ी शीघ्रता से तुम्हारे पास आया हूं। जो उचित समझो तौ राजा से ज़िकर कर दो ॥

दमयन्ती–(आंखों में आंसू भर, एकांत में माता से) माता ! यह बातें विना निश्चय किये महाराजा भीम के प्रकट करने योग्य नहीं, इस लिये यही प्रबन्ध करो कि पिता जी को वृत्तान्त ज्ञात न हो और मैं सुदेव ब्राह्मण को भेजती हूं, जिस प्रकार से वह मुझे ढूंढ कर लाया है, उसी प्रकार राजा को भी लावेगा (और सुदेव से) ए सुदेव ! तुम जल्द राजा ऋतुपर्ण के चले जाओ। पता व्यौरेवार पर्णाद से पूंछ लो और पर्णाद को बहुत कुछ धन दे कह दिया कि जिस समय राजा नल यहां आजावेंगे, उस समय और भी धन दिया जायगा ॥

पर्णाद–(प्रसन्न हो 'बहुत अच्छा' कह, अपने घर को चला गया)

दमयन्ती–ए सुदेव ! याचक की नाईं दौड़ा हुआ राजा ऋतुपर्ण के चला जा और राजा से कहना कि दमयन्ती राजा भीम की पुत्री का दूसरे स्वयंवर होता है। वहां सब राजा व राज पुत्र जाते हैं और कल सवेरे ही स्वयंवर होगा, जो तुम से वहां पहुंचा जाय तौ जल्द चलो, दमयन्ती सूर्य निकलते ही तुम को अपना पति बनावेगी, क्योंकि वीर नल का तौ कुछ पता मिलता ही नहीं कि वह जीता है या मर गया ॥

सुदेव—('बहुत अच्छा' कह चल दिया)

कई दिन में सुदेव राजा ऋतुपर्ण के दर्बार में पहुंचा और पहुंच कर दूर से राजा को प्रणाम किया ॥

राजा-ए महाराज ! आप कौन हैं ? और कहां से आये ?

सुदेव—महाराज ! मेरा नाम सुदेव है । मैं विदर्भ देश का रहने वाला ब्राह्मण हूं । राजा भीम की पुत्री दमयन्ती का विवाह राजा नल से हुवा था, परन्तु बहुत दिनों से राजा नल का पता नहीं कि जीता है या मरगया। इस लिये रानी दमयन्ती का दूसरे स्वयंवर रचा जाता है और वह कल का है । रानी दमयन्ती ने कह दिया है कि जो आप पहुंच सकें तो आप के जय-माला डालूंगी ॥

राजा-(बड़ा प्रसन्न हुवा और फिर उदास हो गया ओर ब्राह्मण को ठहरा, बड़ी शुश्रूषा की)

राजा-(बड़े मीठे वचनों से) ए घोड़े के पहुंचाने वाले बाहुक ! जो तुम से प्रबन्ध हो सके तो मैं एक दिन में विदर्भ नगरी के राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के स्वयंवर में जाना चाहता हूं ॥

नल (मन में उदास हो और शोच कि कभी दमयन्ती ने मेरे बुलाने की रीति निकाली हो । यह तो अनुचित है कि सन्तान के होते दमयन्ती दूसरा विवाह करे। निस्सन्देह मैं राजा ऋतुपर्ण की इस इच्छा के पूरा करने से अपना मनोरथ पाऊंगा । और प्रकट में राजा से) राजन् ! मैं आप की आज्ञा मानता हूं । एक ही दिन में आप को विदर्भनगरी पहुंचा दूंगा । अब मैं घोड़े देख लूं (और घुड़साल को जाता है)

नल-(घुड़साल में जा, घोड़ों की परीक्षा कर, बहुत दुबले व बलहीन चालाक-सिंधी घोड़े छांट, राजा से) आप तैयार हूजिये ॥

राजा-नल ! भला यह कौन बात है ? आप मुझ को मार्ग में धोका दिया चाहते हैं ? भला ये बलहीन घोड़े कैसे पहुंचा सकेंगे ? भला हम को तो चुप चुपाते जाना चाहिये, यह घोड़े किसी प्रकार नहीं पहुंचा सकते ॥

नल—राजा ! जिस घोड़े के मस्तक पर एक और गले में दो और बाहों पर दो २ और छाती पर दो और पीठ पर एक भौंरी हो वही घोड़ा विदर्भ देश को जावेगा । नहीं तो जिन घोड़ों को आप आज्ञा दें, मैं उन को जोत लूं परन्तु और घोड़े शीघ्र नहीं पहुंचा सकते ॥

ऋतुपर्ण—नहीं बाहुक ! आप ही घोड़ों की जाति भलेप्रकार जानते हैं।

जिन घोड़ों को उचित समझें, जोतलें, मैं कुछ नहीं कह सकता। निस्संदेह यह जानता हूं कि नल के समान विद्या नहीं जानता, परन्तु आप भी उस से कुछ कम नहीं हैं ॥

नल—महाराज! यह आपकी सरदारी है (और रथ तैयार कर कहता है कि) चलिये, बहुत सावधानी से बैठिये ॥

राजा सवार हो चलते हैं। अब रथ चला और नदी ताल पहाड़ जङ्गल नांघता चल दिया कि एकाएक राजा ऋतुपर्ण का दुपट्टा गिरा ॥

ऋतुपर्ण-बाहुक! मेरा दुपट्टा गिरा, रथ को रोक कर उठादो ॥

नल—(रथ रोक) महाराज! दुपट्टा तो चार कोश पीछे रहा, मुझ में शक्ति उस के लाने की नहीं ॥

ऋतुपर्ण—अच्छा जाने दो ॥

अब चलते २ रथ कुन्दनपुर में पहुंचा और राजा भीम को राजा ऋतुपर्ण के आने की ख़बर हुई और राजा भीम ने अपना मन्त्री राजा के लाने को भेजा। जिस समय राजा ऋतुपर्ण भीम के पास पहुंचेः-

भीम-(खड़ा हो, चरण धुला) कहो राजन्! प्रसन्न तो रहे? प्रसन्न तो आये?

ऋतुपर्ण-(मन में सोच कि यहां तो स्वयंवर का कुछ भी प्रबन्ध नहीं) राजन्! शिकार खेलते २ आप के दर्शन को चला आया हूं ॥

भीम-आपने बड़ी कृपा की (और भले प्रकार सेवा कर) अब आप आराम करें, सवेरे ही मिलूंगा। क्योंकि आप भी हारे थके हैं ॥

अब राजा नल का वृत्तान्त सुनिये कि रथ को रथख़ाने में छोड़ घोड़ों को रातब दिला, पुचकार बड़े उदास बैठे हैं ॥

दमयन्ती-(बांदी से) ए केशिनी! शब्द तो नल के रथ का सा है, पर तू जाकर ज्ञात कर कि रथ का चलाने वाला कौन है। देखो वह रथवान् सामने बैठा है। उस से पूंछ। सूरत तो नल की सी है परन्तु रङ्ग में भेद है, तू बहुत चतुराई से पूछना ॥

केशिनी—(बहुत अच्छा कह, रथ के पास जा) महाराज! तुम्हारा आना कल्याणदायक हो। कहो कुशल तो हो, तुम अपने देश से कब चले और यहां कैसे आये?

नल-महात्मा राजा ऋतुपर्ण ने ब्राह्मण से सुना कि दमयन्ती का स्वयंवर सवेरे ही है इस लिये आज सवेरे ही चल यहां आये हैं, मैं उन का सारथि हूं ।

केशिनी-तुम्हारे पास यह दूसरा मनुष्य कौन है और कहां से आया और किस का बेटा है और तुम किस के बेटे हो और यह विद्या तुमने कहां से सीखी है?

नल-यह वारर्शभु नाम नल का सूत है । नल के निकल जाने पर यह राजा ऋतुपर्ण के यहां आरहा है और मैं भी सवारी हांकने व भोजन बनाने में चतुर हूं और राजा ऋतुपर्ण का सारथि हूं ॥

केशिनी—भला वारर्शभु को ज्ञात होगा कि नल कहां गया ॥

नल—यह तो राजा नल के लड़का लड़की को यहां छोड़ कर चलागया था । इस को कुछ ज्ञात नहीं और न किसी और को ज्ञात है । राजा नल तो अपने रूप को छिपाये फिरता है । उस को तो उस की प्यारी दमयन्ती ही पहचान सकती है ॥

केशिनी-(बाहुक को नल जान) राजन् ! पहिले जो ब्राह्मण यह वचन " ए छलिया ! ए प्यारे ! मेरा आधा कपड़ा काट, मुझ प्यारी दासी को छोड़ कहां हो " कहता हुआ तुम्हारे पास गया और तुमने जो उत्तर दिया, उस को रानी दमयन्ती तुम्हारे मुख से फिर सुना चाहती है ॥

नल—(बहुत उदास हो और नेत्रों में जल भर) ए केशिनी ! कुलीन स्त्रियां पति के त्यागने पर भी आप अपनी रक्षा करती हैं । निश्चय स्वर्ग उन के ही बांट में आया है । उत्तम स्त्री अपने पति पर कभी क्रोध नहीं करतीं, प्राणयात्रा किये, पक्षियों के वस्त्र हरे, राज्य से भ्रष्ट, विपत्ति के मारे किसी समय पति पर क्रोध करने के योग्य दमयन्ती नहीं है (और शोकातुर हो उच्चस्वर से रोने लगे)

केशिनी-(दमयन्ती के पास जा, सब वृत्तान्त कहती है) ॥

दमयन्ती-(निश्चय नल समझ) ए केशिनी ! तू अब की बार फिर जा और भले प्रकार ज्ञात कर परीक्षा ले । देख उन को जल व अग्नि न देना और उन से उत्पन्न कराना ॥

केशिनी—(राजा नल के पास जा) देखती है कि राजा भीम के महल से बे पका अन्न विना पानी आया और नल ने अपनी दृष्टि से घड़ों में पानी कर दिया और दृष्टि से ही आग जला ली ॥

केशिनी—(लौट, दमयन्ती से) रानी ! उस ने तो दृष्टि से ही घड़ों में जल कर दिया है और आग जलाली और फूल हाथ से मल दिये परन्तु अपनी रङ्गत पर रहे ॥

दमयन्ती—ए केशिनी ! बाहुक का बना भोजन और ला ॥

केशिनी—(भोजन ला) रानी ! लो मैं भोजन ले आई ॥

दमयन्ती—(भोजन चख) अच्छा तो तू इस लड़के लड़की को बाहुक के पास लेजा ॥

केशिनी-('बहुत अच्छा' कह, लड़के लड़की को लिये जाती है और नल इन्द्रसेना लड़की को एक गोद में और इन्द्रसेन लड़के को दूसरी गोद में ले, प्यार कर, आनन्द के आंसू बहाता है)

नल—केशिनी ! यह जोड़ी अनीबनी मेरे बच्चों की सी है ! इस से मेरा मन इन पर प्यार करने को चाहता है और हम तो यहां ठहरे हैं। अच्छा तुम अब जाओ ॥

केशिनी—(महल में आ, दमयन्ती से सब वृत्तान्त कहती है)

दमयन्ती—(अपनी माता से) माता ! सब प्रकार यह बाहुक नल ज्ञात होता है। केवल रङ्ग का भेद है। अब यह समाचार मेरे पिता को ज्ञात होना चाहिये ॥

रानी—(राजा भीम से) महाराज ! दमयन्ती कहती है कि यह बाहुक राजा नल है। बस इस के रङ्ग में भेद है। जो आप कृपा कर उस को महल में भेज दें तो इस का व्यौरेवार वृत्तान्त पूंछ लिया जाय ॥

राजा भीम-बहुत अच्छा (और भेजता है)

दमयन्ती-(गेरुवे और मैले वस्त्र पहने, जटा रखाये) ए बाहुक ! तुमने कभी पहिले कोई धर्मात्मा ऐसा देखा है कि जो अचेत सोती हुई निरपराधिनी अपनी स्त्री को निर्जन वन में छोड़, चला गया हो ? क्या सिवाय राजा नल के कोई है कि थकी मांदी अचेत सोती अपनी स्त्री को छोड़ गया हो ? निस्संदेह मैंने कुछ राजा का अपराध न किया था कि जो मुझ आज्ञाकारिणी, सोती, सन्तान वाली को छोड़ चले गये। राजा ने तो मुझ से अग्नि आदि देवताओं के समीप यह प्रण किया था कि मैं तुझे कभी न छोड़ूंगा और सदैव प्रीति रक्खूंगा। वह वचन कहां गये ? (और रोने लगी)

नल-(अति उदास और लज्जित और आंसू भर) रानी ! जो कुछ मुझ से हुआ, वह बुद्धि की भ्रष्टता से हुआ । मैंने जान बूझ कोई अपराध नहीं किया और सच मुच मैं अपराधी हूं ॥

दमयन्ती-(अपना पिछला सब गिला कर और धर्म पर सौगन्द ले) अब आप अपना रूप दिखलाइये ॥

तब राजा ने वह जोड़ा नाग का दिया पहन,नाग को याद किया और नाग ने आते ही पहला रूप बना दिया । अब दोनों आपस में मिले और राजा भीम व ऋतुपर्ण ने राजा की बड़ी प्रतिष्ठा की और एक महीने तक वहीं विश्राम किया और एक रथ व सोलह हाथी और पचास घोड़े और छः सौ प्यादे साथ ले अपने देश में पहुंचे ॥

नल-(पुष्कर से) लो भाई ! या तो जुआ खेललो या युद्ध को तैयार होजाओ ॥

पुष्कर-अच्छा जुआ हो ॥

अब जुआ हुवा और नल ने सब राज्य व धन दौलत जीत लिया ॥

जयदेवी की सुसराल

श्रोतृगण ! विचार रहे होंगे कि जयदेवी का क्या फल हुआ । यह वही जयदेवी है, जो भगवती को गुलूबन्द दे, सुसराल का बहुत सा धन क्षय कर पीहर में (बाप के घर) जारही थी ॥

जैसीराम की मा-(ठण्डा श्वांस ले) बेटा जैसी ! जयदेवी को तो मैं दोष न दूंगी । वह विचारी तो व्यार भूलों की मारी पीहर में जा रही, पर उस के देखने को मेरा जी बहुत चाहता है, जैसे बने उसे लेही आओ ॥

जैसीराम-मा ! कल जा कर दो तीन दिन में ले आऊंगा ॥

मा-बेटा ! अवश्य ले आना, पर अभी तो तुम पांच चार दिन ठहरो । बहुत दिन में आये हो (बस जैसीराम अपनी मा से विदा हो सुसराल में आया)

जैसीराम-(जयदेवी से) लो जी, मेरी माने तुम को बुलाया है और बहुत ही गिड़गिड़ा कर कह दिया है कि एक बार तो बहू मुंह दिखलादे ।

जयदेवी-मैं तो तैयार हूं और मैंने मा को राज़ी भी कर लिया है, वे

भी मेरे भेजने पर राज़ी हैं । तुम उन से कहो, वे तुरन्त मेरे ले जाने की आज्ञा देवेंगी और मैं चली चलूंगी ॥

जैसीराम—तुमने तो मुझ से कह दिया था कि मैं तुरन्त चली चलूंगी अब यह मा बाप से पूंछने का झगड़ा क्या करती हो ?

जयदेवी—नहीं, मैं तैयार हूं । मुझे चलने में कुछ देर नहीं और मैंने अपनी मा को भी राज़ी कर लिया है । देखो विना पूंछे चलने में बदनामी है । वह कुछ नाह तो करेंगी ही नहीं, तनक उन का मुंह तो पूंछ लो । मेरे मा बाप दोनों भेजने पर राज़ीहैं ॥

जैसीराम—अच्छा तो पहिले तुम चलो, मैं पीछे से आता हूं ॥

जयदेवी—अच्छा मैं जाती हूं, तुम बहुत जल्द आ जाना । आज ही आज्ञा ले, कल परसों तक चल देंगे ॥

जयदेवी—(अपनी मा के पास पहुंच) माता राम २ ॥

मा—आओ बेटी ! जीती रहो, आओ प्रसन्न तो हो ?

जयदेवी—हां माता ! आप की दया है, पर आप की समधन ने मुझे बुलाया है ॥

जैसीराम—(दरवाज़े पर पहुंच, आवाज़ दे, भीतर आ) मा जी ! प्रणाम॥

जयदेवी की मा-आओ बेटा ! जीते रहो । कहो प्रसन्न तो रहे ? तुम तो बहुत दिन में आये (और शिर पर हाथ फेर पुचकार) कहो बेटा ! अपनी मा के गये थे, तुम्हारी मा अच्छी तो है ? कहो क्या २ कह दिया है ?

जैसीराम—मा जी ! माता ने कहा है कि अपनी सास से कह देना कि अपनी बेटी का मुंह तो मुझे दिखला देवें ॥

जयदेवी की मा-अच्छा बेटा ! मैं आज ही तुम्हारे सुसरे से पूंछ जल्द ही विदा कर दूंगी ॥

जैसीराम-हां माजी ! कल या परसों विदा कर दीजिये तो बहुत अच्छा है, पर अब तो हम अपनी मा के ही रहेंगे । हमारे मा बाप ने बहुत ताकीद कर दी है । अब आप कृपा कर आज्ञा दे दीजिये और लाला जी से भी आज्ञा दिलवा दीजिये ॥

जयदेवी की मा—अच्छा कुंवर ! मैं आज ही इस का प्रबन्ध करूंगी, पर तुम कुछ मिठाई तो खालो (बांदी से) ए बांदी ! थोड़ी मिठाई तो ला ॥

जैसीराम—माजी ! यह तो मेरे खाने का समय नहीं, इस समय तो कृपा करो ॥

जयदेवी की मा–ना कुंवर ! कुछ तो खालो बहुत दिन में तो तुम मेरे पास आये हो और कुछ खाते भी नहीं ॥

जैसीराम–माजी ! इस समय तो माफ़ करो । सांझ को खा लूंगा और अब मैं दूकान को जाता हूं ॥

बाज़ार

जैसीराम दूकान पर पहुंचा और साले से मिल, यों बातचीत करने लगाः–

जैसीराम–भाई साहब ! मैं अपने घर गया था । मेरे मा बाप ने मुझ से बहुत ताक़ीद से कहदिया है कि अब तुम यहीं आ रहो और तुम्हारी माता भी राज़ी हैं । आप कृपा कर आज्ञा दिलवादीजिये । कल या परसों सवारियों समेत चले जावें, फिर जब कभी आप याद करेंगे, हाज़िर होता रहूंगा॥

साला—भाई साहब ! यहां आप को क्या दुःख था । मैं तो तुम को अपना छोटा भाई समझता था । मैंने तो आप की सेवा में कभी कसर नहीं की । क्या किसी ने तुम से कुछ कहीं कठोर बात कहदी कि जिस से अप्रसन्न हो गये ॥

जैसीराम–नहीं भाई साहब ! आपने या किसी घर के ने मुझ से कुछ भी नहीं कहा । हां, बाहर के मनुष्य रोटी खावा कहते थे । वह मुझे बुरा ज्ञात होता था । वैसे तो आप के पास बड़े आनन्द से रहा । भाई ! सच तो यह है कि आदमी की क़दर जो अपने घर है, वह सुसराल में नहीं । अब कृपा कर विदा करा ही दीजिये । आगे जब २ आप याद किया करेंगे, तब२ अवश्य आता रहूंगा । जो आप लाला जी और माजी से कहदेंगे तो वे तुरन्त ही आज्ञा देदेवेंगे ॥

साला–भाई ! अच्छा, तुम्हारे बिछड़ने से शोक तो बहुत होगा, पर तुम्हारी मर्ज़ी । हमारी तो इस में ही खुशी है, जहां रहो खुश रहो। पर भाई तुम्हारा हिसाब किताब भी तो देखना है । देखो, दो महीने में चिट्ठा तयार होगा, जब तक तो रहो ॥

जैसीराम–भाई साहब ! मेरा और आपका हिसाब ही क्या ? भला कहीं भाई २ का हिसाब हुआ है ? अजी ! आप के पास खूब आराम से रोटी

खाईं, कपड़े पहने, भला आप यह क्या कहते हैं? मैं कहीं आप से साझा बांटने को कहता हूं? भाई! क्या मैं ऐसा नालायक़ हूं कि यह कहलाऊं कि साले बहनोई ने साझा बांटा। राम २! यह बात तो मुझ से न होगी। एक यहां के रहने की स्याही तो मेरे मुंह से छुटती ही नहीं, यह दूसरी स्याही मेरे मुख से और लगाते हैं॥

साला—नहीं भाई! ऐसा ख़याल न करना चाहिये। देखो क्या तुम ने यहां कमाया नहीं? जो कुछ है, भाई! हिसाब करके अपना बांटलो॥

जैसीराम—नहीं भाई साहब! बांटने चोटने का नाम न लीजिये॥

साला—भला भाई! इस में मेरी भी तो बदनामी है। देखो सब गांव कहेगा कि बहनोई से दश वर्ष तक कमवाया और एक पैसा भी न दिया। यह तो मुझ से नहीं होगा और सिवाय इस के तुम्हारा माल हम रख सकते हैं? भाई! तुम को तो देना चाहिये न कि तुम्हारा रखना॥

जैसीराम—भाई साहब! वैसे तो जो आप मुझे देवेंगे, बड़ी प्रसन्नता से लेलूंगा, परन्तु बंट चुट का नाम न लीजिये। जो यही मर्ज़ी है तो जो उचित समझिये मेरे बाप के पास भेज दीजिये। इस में आप की भी नेकनामी होगी और मेरी भी प्रतिष्ठा बनी रहेगी और सब प्रकार ख़ूबी प्रकट रहेगी। ज़रा अपने मन में तो विचार कीजिये कि मैं तो आप का ताबेदार हूं, पर दुनियां के विचार को सोचना चाहिये॥

साला—(सोचकर) अच्छा मैं सोच कर अपनी राय प्रकट करूंगा॥

अब सांझ हुई और जैसीराम और जैसीराम का साला घर पहुंचे और जयदेवी का बाप व मा व पांचों भाई इकट्ठे हुवे और जैसीराम भी बुला लिया गया॥

मा—जयदेवी के लाला! अब जैसीराम जयदेवी के लेजाने को कहते हैं और उन की मर्ज़ी अपने घर रहने की है॥

बाप—अच्छा मैं तो प्रसन्न हूं, पर इस हरसहाय से भी तो पूछ लो, इस की क्या राय है॥

हरसहाय-(जयदेवी का बड़ा भाई) लाला जी! मैंने तो जैसीराम से कह दिया है कि दो महीने में चिट्ठा तयार होगा, दो महीने और ठहर जावें तो हिसाब बिल्कुल साफ़ कर दूं. परन्तु यह तो बहुत जल्दी कर रहे हैं॥

बाप-भाई! तुम्हारी मा कहती है कि अब तो इन को रवानह ही करदो।

मेरी समझ में तो अन्दाज़ा करके बतादो और जो अब दे सको तो बहुत अच्छा, नहीं तो पीछे से रुपया भेजदेना। पर भाई! जयदेवी को जो हवेली दी है, उस को भी तो क़ीमत देनी चाहिये, क्योंकि वह तो कुछ साथ लेजावेगी ही नहीं और एकबार उस को दे चुकेहैं। कहो बेटा जैसीराम! क्या सलाह है॥

जैसीराम-लाला जी! मैं तो भाईसाहब से कह चुका हूं कि जितने दिन यहां रहा, रोटी खाई। न्यारे साझे का झगड़ा? वहां भी तो आप की दया से सब कुछ है। यह लेने देने की बातें तो छोड़दीजिये, यहां भी सब आप का दिया ही है और यहां भी सब आप का ही है॥

बाप-नहीं बेटा! भला मान्य का धन हम कैसे अपने बर्ताव में लावें। तुम को तो सदैव देना चाहिये। तुम्हारा पैसा तो हम लोगों को किसी प्रकार रखना ठीक नहीं॥

हरसहाय-नहीं भाई! परमेश्वर ने सब कुछ देरखा है। देखो चलते हाथ पांव ऐसा कुकर्म न करना चाहिये (और बाप से) लालाजी! हवेली के रुपये मैं देदूंगा, अन्दाज़न तीन हज़ार रुपये का मुनाफ़ा तो दुकान के हिस्से का चाहिये। बाक़ी जो कुछ हिसाब से निकले। वह पीछे भेजदूंगा और एक हज़ार रुपये की हवेली जानो। यह सब चार हज़ार रुपये हुवे। इन में से दो हज़ार तो अब लेजावें, बाक़ी दो हज़ार या जो कुछ हिसाब से निकलें, कार्तिक में भेजदूंगा॥

बाप—अच्छा भाई! जो तुम्हारी मर्ज़ी, परन्तु परसों का दिन अच्छा है, कल इन की तैयारी कर दीजिये॥

बस तैयारी होने लगी और दूसरे दिन सब असबाब छकड़ों में लदवा तीसरे दिन जयदेवी को बहुत सामान दे, बिदा किया और जयदेवी अपने मालिक सहित सुसराल में पहुंची॥

जयदेवी की सुसराल

जिस समय जयदेवी की सास ने आनेकी ख़बर सुनी, बड़ी प्रसन्न हो, दर्वाज़े तक बहू के लेने को आई॥

जयदेवी- (गाड़ी से उतर, सास के पांव छू) माजी! पालागूं॥

सास-(छाती से लिपटाय) बहू! तू बूढ़ी सुहागन हो, सतपूती हो। (और घर में लेजाती है)

जयदेवी की द्यौरानियां—बीबी जी ! पालागन ॥

जयदेवी—जीती रहो, बूढ़ी सुहागन हो, सतपूती हो ॥

पड़ौसन—ए जी ! आज क्या बहु जयदेवी आई है ?

सास-(आंसू भर) हां बीबी ! अब आगई है (और जयदेवी से) बहू ! अपनी चचिया सास के पांअन लग ॥

जयदेवी-चची जी ! पाअन लगूं ॥

पड़ौसन- बहू ! बूढ़ी सुहागन हो, सतपूती हो । बस बहू ! यह बात है । देखो तो सही, तेरी सास की आत्मा में भी अब ठण्डक पड़ी । बहू ! जो तुम्हारी आवरू अपने घर है, वह मा के घर नहीं हो सकती ॥

जयदेवी-(खिसियानपन से लज्जित है और कुछ जवाब नहीं देती)

अब रात को खाने पीने से निवृत्त हो, सब सो रहे और सवेरा हुवा ॥

जयदेवी-(सवेरे ही उठ, शौचादिक से निवृत्त हो, झाड़ू हाथ में ले, मकान झाड़ना आरम्भ किया)

एक द्यौरानी—(बहुत जल्दी से उठ, झाड़ू पकड़) बीबी जी ! मैं झाड़ूंगी, तुम रहने दो ॥

जयदेवी-ना बीबी ! मैं झाड़े देती हूं । अब तो मुझे झाड़ लेने दो, कल से तुम झाड़लिया कीजियो ॥

द्यौरानी-ना बीबी जी ! यह काम मेरे करने का है, तुम्हारे करने का नहीं । यह तो मैं ही करूंगी ॥

जयदेवी-अच्छा तो जो तुम्हारी इच्छा (और मिट्टी ले, चौका लगाती है)

दूसरी द्यौरानी -(झपट कर) बीबी जी ! रहने दो, यह काम मैं करूंगी ॥

जयदेवी-ना बीबी ! मैं करलूंगी ॥

द्यौरानी-ना बीबी जी मैं करलूंगी, तुम रहने दो ॥

जयदेवी-अच्छा बीबी ! जो तुम्हारी इच्छा, पर मुझ को भी तो कुछ काम बतलाओ ॥

दोनों मिल कर-बीबी! तुम बैठी रहो, हम सब काम काज करलेंगी॥

जयदेवी—(सास से) मा जी! पालागूं॥

सास-(उठकर) बहू! बूढ़ सुहागन हो, सतपूती हो॥

अब सास पलङ्ग से उठी और जयदेवी ने बिछौना उठा, पलङ्ग को खड़ा कर दिया और सिवाय द्यौरानियों के (कि उन्हों ने अपना पलङ्ग और बिछौना उठाने न दिया था) सब बिछौने संभाल एक जगह रख दिये और सब चारपाई खड़ी कर दीं॥

एक बच्चा-(अपनी मा अर्थात् जयदेवी की द्यौरानी से) मा! हम को भूख लगी है॥

द्यौरानी-मुन्ना! अपनी ताई से मांगो। अब तो तुम्हारी ताई आगई हैं॥

बच्चा-ताई! हम को भूख लगी है॥

जयदेवी-अच्छा मुन्ना! मैं अभी तैयार करती हूं, तुम अपने सब बहन भाइयों को बुला लो॥

बच्चे-(सब बच्चों को बुलाते हैं)

जयदेवी-(थोड़ा सा आटा गेहूं व चने का ले) उस में नमक व सोंठ डाल, आग सुलगा, ताज़ी रोटी छोटी २ तैयार कर, घी रख) लो मुन्ना! खालो॥

अब सब बच्चे नमकीन रोटी खा, प्रसन्न हो, जयदेवी के गिर्द घूम २ बहुत प्रीति से देख रहे हैं॥

जयदेवी—(एक बच्चे से) मुन्ना! तुम्हारा तो कुर्ता बड़ा मैला है॥

बच्चा—ताई! मेरा कुर्ता धोबी के गया है, अभी नहीं आया, इस लिये मैला है॥

जयदेवी-अच्छा तो मैं तुम को आज नया कुर्ता बना दूंगी॥

दूसरा बच्चा—ताई! हम को भी कुर्ता बना दो॥

तीसरा बच्चा—और ताई! हम को भी॥

छोटा बच्चा—ताई! अम भी कुलता लेंगे॥

जयदेवी-(बच्चों को पुचकार) मुन्ना! मैं अभी तुम सब को बनाये देती हूं॥

पहिला—कब बनाओगी ? अभी बना दो ॥

दूसरा- ताई ! हम को भी बना दो ॥

तीसरा-और हम को भी ॥

चौथा-(तुतलाता हुआ) औल ताई अम टो बी ॥

जयदेवी-हां, तुम सब को बनाऊंगी । मैं अभी कपड़ा निकालती हूं ॥

बच्चे-(सब मिल कर) टो निकालो ॥

दौरानी—(इशारे से बच्चे को नाह करती है)

जयदेवी-ना बहन ! नाह मत करो । अब तुम मुझे काम काज तो करने ही नहीं देतीं, क्या इन की सेवा में भी कुछ उज़र है। तुम को ऐसा न चाहिये ॥

दौरानी—(कुछ लज्जित हो) ना बीबी जी ! मैं तो कपड़े को मना नहीं करती थी, परन्तु यह कि तुम को दुःखी न करें ॥

जयदेवी-(अपने कपड़े खोल, दो तीन थान निकाल, बच्चों से) अच्छा पसन्द कर लो; कौन से के कुरते लोगे ॥

एक बच्चा—(एक थान पर हाथ रख) हम तो इस के लेंगे ॥

दूसरा-(दूसरे थान पर हाथ रख) हम इस के लेंगे ॥

तीसरा व चौथा—हम भी इस के लेंगे ॥

जयदेवी-(दोनों को गोद में ले, पुचकार) अच्छा, हाथ रख कर बतलाओ, कौन से में से बनाओगे ?

बच्चे-(एक थान पर हाथ रख) इस में से ॥

अब जयदेवी ने तीनों थान निकाल क़ैंची ले हर एक का कुरता नाप चारों बालकों को दो २ कुरते और दो २ टोपी कतरीं और सुई डोरा ले सीने को बैठ गई ॥

बच्चे-ताई ! लाओ कुलता (कुरता) देदो ॥
जयदेवी-बस मुन्ना ! अभी अब सिए देती हूं ॥
बच्चा-तो सींओ ॥

जयदेवी—(एक कुर्ता बहुत जल्दी से बड़े बच्चे को पहना) लो तुम्हारा तो बन गया ॥

दूसरा—और हमारा ?

तीसरा—और हमाला (हमारा) ॥

चौथा—(गले से लिपट) और ताई ! अमाला कुलता ॥

जयदेवी—(सब को पुचकार) तुम थोड़ी देर बैठ जाओ । मैं अभी २ बनाये देती हूं ॥

चौथा—(गले से लिपटा हुआ) नहीं ताई ! हम तो अभी लेंगे (और मचल कर) तुम ने पहिले भय्या को क्यों दे दिया । पहिले तो हम लेंगे ॥

जयदेवी—(बड़े बच्चे से) ला मुन्ना ! तू उतार दे, सब के बन जाने दे, जब तुझ को भी पहना दूंगी ॥

बच्चा—(उदास हो) नहीं । मैं तो अब नहीं उतारूंगा ॥

पांचवां बच्चा—(सरकता हुआ, हाथ उठा) पहिले अम (हम)

जयदेवी—(पुचकार कर) बैठ जा मुन्ना ! तुझ को भी बनाती हूं ॥

पहिला बच्चा कुर्ता पहने वहां से दरवाज़े को भागता है ॥

जयदेवी—(सोच कर) अरे मुन्ना ! इस में तो गोट लगनी बाक़ी है । देखो अभी तो इस में गोट भी नहीं लगी । ला गोट तो लगादूं ॥

पहिला—हम तो ऐसा ही पहनेंगे ॥

जयदेवी—अच्छा तो फिर नहीं सीऊंगी (पुचकार) मानजा मुन्ना ! मानजा (और घुड़क) अच्छा तो मत मानें, देख मैं इन के कुर्तों में गोट लगाती हूं (और दूसरा कुर्ता दिखला) देख ऐसी गोट ॥

छोटा बच्चा—ताई ! तुम हमारा तैयार कर दो, इसे जाने दो । चल (पर) हम के में गोट ना ?

पहिला बच्चा—(सीते हुए कुर्ते को देख और अपने कुर्ते को हाथ में ले, मज़र कर) अच्छा तो पहिले मेरे में गोट लगा दो ॥

जयदेवी—हां, ला, पहिले तेरे ही में लगाऊंगी । (अब एक छोटा बच्चा मचल गया है और कह रहा है कि मेला कुलता (और रोकर) मेलाकुलता

ऊंऊं मेरा कुलता। और जयदेवी बड़े बच्चे का उतारा हुवा कुरता ले) अच्छा ले यह यह ले, चुप होजा। देख भैया ने भी देदिया, अब तो बैठा होजा और और तुम सब मेरे सामने बैठ जाओ। मैं अभी २ सींयें देती हूं। छोटा बच्चा अपने भाई की ओर देख बैठा हुवा है और सब बच्चे सामने बैठे तक़ाज़ा कर रहे हैं कि लाओ, ताई! (कुलता लाओ) और जयदेवी कहती जाती है अभी देती हूं। बच्चे कह रहे हैं—अहा जी कुलता लेंगे, अहा जी हमारा कुर्ता सीया है, अहा जी हम तो नया कुर्ता लेंगे)

जयदेवी—(एक द्यौरानी से) बीबी! तुम थोड़ी देर मेरे पास बैठ कर जलदी से कुर्ता सिलवा लो। अब एक २ सीं कर देती हूं, तो यह लड़ते हैं और बराबर तक़ाज़ा कर रहे हैं और (हंस कर प्रसन्नता से) मुन्ना! बैठे रहो, अभी २ तुम को कुर्ता पहनाती हूं॥

द्यौरानी-अच्छा मैं आती हूं, पर शाम तक तैयार होंगे। छोटी बहू जी को और बुलालो तो जल्द होसकते हैं॥

जयदेवी-(छोटी बहू से) बीबी तू भी आ जा, इन को जल्दी से तैयार करा ले॥

द्यौरानी-अच्छा आती हूं (और छोटे बच्चे से) जो हमारी गोद में आजाओ तो हम तुझे अभी कुर्ता पहना देवें॥

बच्चा-(तुरन्त गोद में बैठ) लाओ॥

द्यौरानी-लो अभी २ सीती हूं, बैठ जाओ॥

दूसरा बच्चा-(बांह पकड़) पहिले हमाला (हमारा)॥

द्यौरानी—तुम भी लो॥

पहिला—पहिले मेला (मेरा)

द्यौरानी-हां तुम भी लो॥

अब तीनों ने बैठ बहुत जल्दी से बच्चों का एक २ कुर्ता तैयार कर एक एक को पहना दिये। अब बच्चे खुश २ फिर रहे हैं और कह रहे हैं—अहा जी, नया कुर्ता, अहा जी नया कुर्ता॥

जयदेवी-(सब से) अच्छा अपने बाबा जी को दिखला आओ और उन को राम २ करना॥

सब बच्चे—(आकर) बाबा जी ! राम २ । बाबा जी ! राम २॥

बाबा जी-(पुचकार सब को बिठलाते हैं) कहो बेटा क्या कहते हो ?

एक—बाबा ! आज ताई ने हम को कुर्ता बनाया है ॥

दूसरा-और हम को भी॥

तीसरा-और अमटो भी ॥

चौथा-(हाथ पकड़) देठो (देखो) बाबा ! हम ॥

पांचवां-ऐं ऐं (कुर्ता पकड़ दिखला रहा है) ऐं ऐं (अब बूढ़े सब को पुचकार पूंछते हैं । किस ने कुर्ता बनाया है ?)

सब बच्चे-बाबा जी ! ताई ने बनाये हैं ॥

अब रोटी का समय हुआ और जयदेवी ने रोटी करने का मनोरथ किया कि तीसरी द्यौरानी उठी और बोली कि बीबी ! मैं तैयार करती हूं । तुम रहने दो और उस ने रोटी चढ़ादी । अब दुपहर की रोटी खा पीकर सब निवृत्त हुए । तीसरे वक्त बच्चों ने खाने का तक़ाज़ा किया । जयदेवी ने कड़ाई चढ़ा, पकौड़ी पूरी बना, सब को खिलादीं और सब खुश २ फिरने लगे । शाम हुई और द्यौरानी ने रोटी चढ़ाई, सब खा पी चुके । अब बच्चे जयदेवी के सिर हैं और उस की चारपाई पर बराबर २ सो रहे हैं कि इतने में सासने अपनी खाट बिछाने का मनोरथ किया और जयदेवी ने बहुत जल्दी से झट सास से चारपाई ले, आप बिछा, उस पर बिछौना कर दिया और पलङ्ग के पास एक पीढ़ी पर लोटा पानी भर कर रख दिया ॥

जयसीराम-माजी ! मेरे साले ने चार हज़ार रुपये का मुनाफ़ा दुकान का अन्दाज़ा किया और एक हज़ार रुपये का हवेली का, जिस में से दो हज़ार रुपये नक़द दिये हैं और बाक़ी के लिये कह दिया है कि दो महीने में चिट्ठा पूरा होगा, सब हिसाब कर भेजदूंगा ॥

बाप-(बाहर से आ) आज मा बेटों में क्या बात चीत हो रही हैं ?

मा—बात चीत तो कुछ नहीं हो रहीं, ये दो हज़ार रुपये जैसीराम अपनी कमाई के लाया है, उस का ज़िकर था ॥

बाप-क्या दो हज़ार ! ये दो हज़ार कैसे ? (जैसीराम से) बेटा ! रुपये कैसे ?

जैसीराम-लाला जी ! जब मैंने यहां आने को कहा तो मेरे साले ने

कहा कि दो महीने ठहर जाओ। दो महीने में चिट्ठा तैयार हो जायगा, उस समय तुम्हारा सब रुपया दे देवेंगे। मैंने कहा कि रुपया पैसा कैसा? भाई! आख़िर ख़र्च भी तो हुआ है। यहीं कमाया यहीं ख़र्च किया, परन्तु उन्होंने न माना और चार हज़ार रुपये लागत का मकान समेत मेरे हिस्से का अन्दाज़ा किया जिस में से दो हज़ार यह दे दिया है और बाक़ी को कह दिया है कि जिस वक़्त चिट्ठा तैयार हो जावेगा, रुपये भेज दूंगा॥

बाप-क्यों न हो, बेटा! आख़िर तो वह कुल योग्य है। कभी उन्होंने मुंहपर मक्खी नहीं बैठने दी। बेटा! भला तुम्हारा रुपया कैसे रखलेते?

हरदेवी का घर

चावली-(चन्द्रमुखी से) चची! तुमने सीताचरित्र तो अच्छा सुनाया परन्तु अब कोई ऐसा उपाय सोचो कि स्त्रियों के यह बखेड़े न हुआ करें॥

हरदेवी-हां बीबी! प्रबन्ध तो अवश्य करना चाहिये और ऐसा फ़िकर करना चाहिये कि लड़कियों की पहले ही से प्रकृति न बिगड़े॥

चन्द्रमुखी-बहन! यह तो जब हो सक्ता है कि लड़कियों को विद्या पढ़ाई जावे और उन को पतिव्रतधर्म और गृहस्थाश्रम की शिक्षा दी जावे॥ और भले प्रकार समझाया जावे कि सदा मिल जुल कर रहना चाहिये॥

हरदेवी-हां बीबी! यही मेरा प्रयोजन है कि इन के सुधार में कोशिश की जावे॥

चन्द्रमुखी-बीबी इस काम के लिये एक योग्य पाठिका की ज़रूरत है और पाठिका मिलना कठिन है॥

हरदेवी-फिर बीबी! कुछ तो प्रबन्ध होना चाहिये। आप पहिले कह-चुकी हैं कि करने से सब कुछ हो सकता है॥

चन्द्रमुखी-बीबी! यह तो मुझ से हो सकता है कि दो घण्टे रोज़ दुपहरी में लड़कियों को पढ़ा दिया करूं और जब तक चावली मौजूद है, यह भी दो चार घण्टे रोज़ पढ़ा सकती है (और चावली की मा से) बीबी! तुम दो घण्टे रोज़ की चावली को आज्ञा दे दो तो यह और मैं लड़की पढ़ानी आरम्भ करदें॥

-()चौथा भाग समाप्त हुआ()-

नोटिस १

नीचे लिखे पुस्तकें और सलाई निम्नलिखित पते से मिलती हैं:-

१ पं० तुलसीराम स्वामी स्वामियन्त्रालय मेरठ

२ ला० केदारनाथ स्टाम्पफ़रोश तहसील के आगे-मेरठ

३ पं० किशोरीलाल बुकसेलर बज़ाज़ा बाज़ार-मेरठ

(अ) सीताचरित्र नावल हर भाग ।-) कुल चारों भाग १।)

(इ) यजुर्वेद का उर्दू भाष्य सजिल्द २)

(ई) कुल्लियात नत्थूलाल जिस में विवाहनाटकादि सब किताब लाला नत्थूलाल वकील ग़ाज़ियाबाद की बनाई हैं उर्दू ॥)

(उ) विधवाश्रम की सलाई जो सायं प्रातः खाली आंख में फेरने से सब रोग दूर करती है ≡)

डाक ख़र्च ख़रीदार के ज़िम्मे परन्तु ५ के ग्राहक को छटी कमीशन है ॥

नोटिस २

" वेदों का पढ़ना पढ़ाना आर्यों का परम धर्म है "

इस नियम के पूरा करने को हमने ऋग्वेद का प्रथम अष्टक छपवाया है और मन्त्र के नीचे पदार्थ और भावार्थ उर्दू में लिखा है और ५१२ सुफ़े का वलायती काग़ज़ पर है। मूल्य बहुत थोड़ा केवल ।॥=) रक्खा है जिस की १०० कापी श्री मती रानी साहबा बरोली ने मुफ़्त बांटने को ली हैं और ५ के ग्राहक को छः जिल्द मिलती हैं। और २ जगह से मिलता है। सब स्त्री पुरुष इस को पढ़ कर लाभ उठावें ॥

१ ला० केदारनाथ स्टाम्पफ़रोश तहसील के आगे-मेरठ

२ पं० किशोरीलाल काग़ज़ी व बुकसेलर बज़ाज़ा बाज़ार-मेरठ